Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ग्रन्थावली

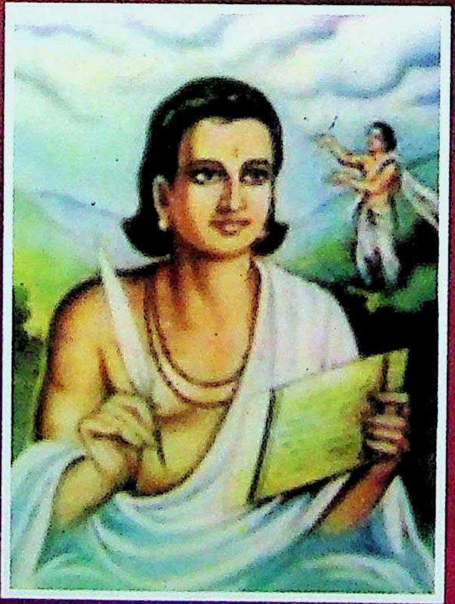

संपादक

डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

178

प्रस्तुत 'कालिदास-ग्रन्थावली' के अन्तर्गत कालिदास के सम्पूर्ण ग्रन्थों को अध्ययन-सौकर्य की दृष्टि से दो भागों में संग्रहीत किया गया है। प्रथम भाग में ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, कुमारसम्भवम् एवं रघुवंशम् को प्रस्तुत किया जा चुका है। अतः इस द्वितीयभाग में महाकवि के नाट्यग्रन्थों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

संस्कृत-साहित्य में नाटकों की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है। भारतीय साहित्य की विभिन्न काव्यविधाओं में लोकप्रियता की दृष्टि से नाटकों को सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त है। सर्वविदित तथ्य है कि महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यकार एवं गीतिकाव्यकार होने के साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ नाटककार भी थे। उनकी सुदीर्घ सांसारिक अनुभूति, शास्त्रीयज्ञान एवं लोकव्यवहार की प्रगाढ़ प्रवीणता का परिचय उनके नाटकों के अवलोकन से प्राप्त किया जा सकता है।

महाकवि कालिदास ने कुल तीन नाट्य ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें मानव-हृदय की विभिन्न परिस्थितियों में उदीयमान वृत्तियों का अत्यन्त सजीव एवं लोकव्यवहार के सामंजस्य से परिपूर्ण चित्रण किया गया है; यद्यपि इन तीनों नाटकों के आख्यान मूलतः प्रेममूलक ही हैं, तथापि इनमें प्रेम की विविध अवस्थाओं का विश्लेषण अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक ढंग से किया गया है। कालक्रमानुसार इन नाटकों 'मालविकाग्निमित्रम्' महाकवि की प्रथम नाट्यकृति है। 'विक्रमोर्वशीयम्' द्वितीय एवम् 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' अन्तिम तथा काव्य सरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसादस्वरूप है।

ISBN 81-7487-528-X (Set)

(दो भाग में) मूल्य 1650/-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ०८१ पाण्डे - श्री   आगत संख्या 145178

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

145178

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ग्रन्थावली

भाग-एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ग्रन्थावली

भाग-एक

सम्पादक

डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

पुस्तकालय
145178
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

राधा पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली -110002

145178

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© सुरक्षित

नवीन संस्करण : 2007
ISBN: 81-7487-528-X (set)
ISBN :81-7487-529-8 (भाग-1)
ISBN :81-7487-530-1 (भाग-2)

R
022
पाण्डे-का

राधा पब्लिकेशन्स
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली—110002
फोन : 23247003, 23254306
e-mail: radhapubnitin@yahoo.com

नितिन गर्ग द्वारा राधा पब्लिकेशन्स के लिए प्रकाशित। शुभम् लेजर प्रिंटर्स, दिल्ली द्वारा शब्द-संयोजन तथा एशियन ऑफसेट प्रिंटर्स, मोजपूर दिल्ली -53 में मुद्रित।

kaalidas Granthavali Edited by Mithilesh Pandey

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

	प्राक्कथन	*1-2*
	भूमिका	*3-68*
1.	ऋतुसंहारम्	69-98
2.	मेघदूतम्	99-134
3.	कुमारसम्भवम्	135-294
4.	रघुवंशम्	295-522
	परिशिष्ट-I	*523-538*
	परिशिष्ट-II	*539-566*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन
(Foreword)

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' से समुपबृंहित महाकवि कालिदास की कृतियाँ अपने लालित्यपूर्ण साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के कारण किसी भी देश, काल एवं भाषा की दृष्टि से सर्वथा अतुलनीय हैं। भाषा एवं भाव से विभूषित ऐसे ही दिव्यरसनिष्यन्दी साहित्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के प्रतिपादन में सर्वथा समर्थ होते हैं–"लीयते परमानन्दे ययाऽऽत्मा सा परा कला।" यही कारण है कि प्राच्य एवं पाश्चात्य सभी देशों के अध्ययनशील साहित्यमर्मज्ञ, कविकुलगुरु कालिदास की कालजयी रचनाओं की ओर आकृष्ट होकर तथा उनके आद्योपान्त अध्ययन से कृतकृत्य होकर, उन कृतियों के विविध अनुसंधानात्मक पक्षों को उद्भासित करने में प्रवृत्त हुए।

ज्ञातव्य है कि महाकवि कालिदास की कृतियाँ वर्ण्य कथानकों के प्रकाशन के साथ-साथ विविध प्रकार के व्यापक शास्त्रीय ज्ञान से भी ओत-प्रोत हैं। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक, कामशास्त्रीय विषयों एवं सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्तादि विविध दार्शनिक पक्षों से संवलित चतुर्विध पुरुषार्थ के सम्पादन में सर्वथा समर्थ हैं।

उपयोगिता की दृष्टि से महाकवि की समस्त कृतियों को अविकल रूप में प्रस्तुत करने की उत्कंठा ने मुझे महाकवि के ग्रन्थों के सम्पादन की ओर प्रेरित किया। इस सारस्वत प्रेरणा का ही प्रतिफल है कि महाकवि कालिदास के समस्त ग्रन्थों को शुद्धातिशुद्ध रूप में दो भागों में प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थावली के इस प्रथम भाग में विश्वकवि कालिदास के कार्यों को संग्रहीत किया गया है, जिसमें ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, कुमारसम्भवम् एवं रघुवंशम्, ये चार काव्यकृतियाँ सम्मिलित हैं; जिनका विस्तृत परिचय भूमिका के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त महाकवि कालिदास एवं उनके ग्रन्थों से सम्बद्ध विविध पक्षों पर भी भूमिका के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है; जिससे सामान्यतया महाकवि कालिदास के ग्रन्थों को समझने अथवा उनके भावों को आत्मसात् करने में सरलता होगी। इस ग्रन्थावली के अन्त में **कालिदास** के ग्रन्थों से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकलन करके एक स्थान पर उपस्थापित करने का प्रयास किया गया है। ये सूक्तियाँ इतने गम्भीर भावों से सम्पृक्त हैं कि श्रोता एवं वक्ता के अन्तस्तल को आह्लादित करने में सर्वथा समर्थ हैं। इन सूक्तियों के बाद कालिदास के विविध काव्यों में प्रयुक्त श्लोकों को अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है, जिससे उन श्लोकों अथवा उन श्लोकों से सम्बद्ध स्थलों का अन्वेषण यथाशीघ्र किया जा सके।

इस प्रकार महाकवि कालिदास के ग्रन्थों के सम्पादन जैसा कष्टसाध्य कार्य जो सम्पन्न किया जा सका, उसमें पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के ग्रन्थों की भूमिका अत्यन्त सराहनीय है; जिनके अभाव में पाठों का सम्यक् निर्धारण अथवा अशुद्धियों का परिमार्जन सम्भव नहीं था। एतदर्थ मैं सभी पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के प्रति सविनय आभार व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

मेरे परमपूज्य गुरुदेव प्रो. श्रीनारायण मिश्र (पूर्वविभागाध्यक्ष, संस्कृत-विभाग एवं पूर्वसंकायप्रमुख, कलासंकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी) के सदुपदेश एवं दिशा-निर्देश के अभाव में तो यह कार्य सम्भव ही नहीं था। अतः मैं अपने पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में कोटिशः नमन करता हूँ।

मेरे माता-पिता, जिनकी प्रेरणाओं एवम् आशीर्वचनों के बल पर मैं सतत अपने कर्तव्यपथ पर आगे बढ़ता रहा हूँ, उन पिताश्री प्रताप नारायण पाण्डेय एवं माता श्रीमती शारदा देवी के श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम करता हूँ।

समय-समय पर जिन सुहृदों तथा शुभचिन्तकों ने मुझे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपनी सम्मति से लाभान्वित किया है; उनमें डॉ. श्यामानन्द मिश्र (वरिष्ठ-प्रवक्ता, संस्कृत-विद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी), डॉ. राधाकृष्ण दीक्षित (वरिष्ठ–प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग, के.ए. कॉलेज, कासगंज, एटा), डॉ. कमलेश कुमार सिंह (वरिष्ठ प्रवक्ता, राजनीति-विज्ञान विभाग के. ए. कॉलेज, कासगंज), डॉ. श्रीकान्त मिश्र (वरिष्ठ–प्रवक्ता, वेदान्त-दर्शन-विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवाँ, मध्य प्रदेश), श्री प्रेम नारायण तिवारी (सुरैला, उमरी, जौनपुर) तथा डॉ. विजय कुमार कर्ण (वरिष्ठ–प्रवक्ता, संस्कृत-विभाग, विद्यान्त महाविद्यालय, लखनऊ) के प्रति सविनय आभार व्यक्त करते हुए अपनी सहधर्मिणी श्रीमती दुर्गावती पाण्डेय को शतसः साधुवाद देता हूँ।

जिनके स्नेहसिक्त क्षणों को छीनकर इस महनीय कृत्य का सम्पादन किया गया है, वे पुत्रद्वय प्रणव कुमार पाण्डेय तथा प्रभव कुमार पाण्डेय एवं पुत्री कु. प्रज्ञा पाण्डेय भी साधुवाद के पात्र हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थावली के प्रकाशन की सुचारु व्यवस्था के लिए प्रकाशक महोदय श्री नितिन गर्ग (राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली) भी धन्यवाद के सत्पात्र हैं, जो सारस्वत जगत् की श्रीवृद्धि में सतत संलग्न हैं।

अन्त में एक बार मैं पुनः सभी गुरुजनों एवं ग्रन्थकारों के श्रीचरणों में नमन करते हुए, इस कृति को सुधी विद्वानों एवं विदुषी बहनों के कर-कमलों में समर्पित करता हूँ।

–डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका
(Preface)

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाणभारती।।

वेद, उपनिषद्, ऋषि, मुनि एवं प्राचीन महापुरुषों के उपदेशों की भाषा, भारतीय धर्म-संस्कृति एवं दर्शनों की भाषा संस्कृत विश्व की समस्त भाषाओं में सर्वप्राचीन, वैज्ञानिक एवं संस्कारित है इसीलिए यह जननीस्वरूपा है। दर्शनशास्त्र, स्मृतिग्रन्थ, पुराण, इतिहास, काव्य आदि सभी भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध तथा लोकाभ्युदय एवं निःश्रेयस के साधक ज्ञान-विज्ञानपरक ग्रन्थों की रचना इसी संस्कृत भाषा में हुई है। यह भाषा प्रकृति-प्रत्यय आदि के विभाजन-संयोजन आदि से संस्कारित होने के कारण संस्कृत (संस्कार युक्त) कहलाई। समय समय पर इन्द्र, पाणिनि, कात्यायन, भट्टि, पतंजलि आदि भाषाविदों के नियमों से संस्कारित होती रही। इसीलिए ईसा पूर्व रामायण महाभारत काल से आजतक अविच्छिन्न रूप से विश्व में सर्वत्र एकरूप में प्रवहमान है।

संस्कृत भाषा के मुख्यतः दो रूप हैं (1) वैदिक संस्कृत (2) लौकिक संस्कृत। वस्तुतः वैदिक संस्कृत भाषा का ही विकसित रूप लौकिक संस्कृत है। कालक्रमानुसार वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा सूत्रसाहित्य के पश्चात् अनेक ऐसे शब्दों का विकास हुआ जो वैदिक भाषा से पृथक् हो गए, इतना ही नहीं अनेक शब्दों के अर्थों में, रचनाविधि में, एवं प्रतिपादन शैली में भी अन्तर आ गया। यह परिवर्तित या विकसित रूप ही लौकिक संस्कृत के नाम से पृथक् सत्तावान् हो गया और अब तो 'संस्कृत' शब्द केवल लौकिक संस्कृत के लिए ही रूढ़ हो गया है।

यदि संस्कृत के समष्टिगत स्वरूप को देखें तो रचना-शैली की दृष्टि से संस्कृत को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है। **प्रथम काल**—जिसमें वैदिक संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक और उपनिषद् लिखे गए (यह विशुद्ध वैदिक संस्कृतकाल है) इसे श्रुतिकाल की संज्ञा भी दी जा सकती है। **द्वितीय काल**—इसमें पुराण, स्मृति, धर्मशास्त्र, सूत्र साहित्य वेदाङ्ग एवं रामायण, महाभारत आदि रचे गए। इन रचनाओं में वैदिक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौकिक दोनों प्रकार की संस्कृत का प्रयोग प्राप्त होता है। इस द्वितीय काल को स्मृतिकाल की भी संज्ञा दी जा सकती है। **तृतीय काल**—यह काल पूर्णतया लौकिक संस्कृतकाल है। इसी काल में काव्य, नाटक, गद्य, आख्यान, काव्यशास्त्र आदि की रचना की गई। इनमें पाणिनि आदि वैयाकरणों के नियमों का दृढ़ता से पालन किया गया। अपवाद स्वरूप यदि कहीं वैदिक शब्द या छन्द का प्रयोग हो गया तो 'आर्ष प्रयोग' कहकर उसे स्वीकृत कर लिया गया। इस तृतीय काल को लौकिक साहित्य काल या संस्कृत साहित्य काल की संज्ञा दी जा सकती है। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में मूलभूत अन्तर और समानताएँ हैं किन्तु यहाँ उनका विवरण देना समीचीन न होगा। अनावश्यक विस्तार अरुचिकारक होता है। विवेच्य ग्रन्थ 'रघुवंश महाकाव्य' की भाषा लौकिक संस्कृत है। लौकिक संस्कृत का और उसकी आधारभूत वैदिक भाषा का सामान्य बोध कराना या अन्तर स्पष्ट करना ही यहाँ अभीष्ट था।

संस्कृत भाषा मूलतः धातु आधारित है निरुक्तकार ने सभी शब्दों को 'आख्यातज' कहा है जिसके अनुसार अर्थ विशेष से युक्त धातु में प्रत्यय, उपसर्ग आदि की योजना कर जिन शब्दों का निर्माण किया गया, वे शब्द धातु के उसी मूल अर्थ को व्यक्त करते हैं। प्रत्यय आदि के योग से उनके अर्थों में कमी वेशी या अर्थपरिवर्तन किए जाते थे। इस प्रकार संस्कार युक्त भाषा संस्कृत में च, नु, तु, हि आदि कतिपय अव्ययों के अतिरिक्त कोई भी शब्द निरर्थक प्राप्त नहीं होता। परिणामतः संस्कृत में जो लिखा जाता है वही उच्चारित होता है और उसी शब्द से अर्थ बोध भी होता है। शायद यही कारण है इक्कीसवीं शती के इस यान्त्रिक युग में संगणक (Computer) के लिए सबसे उचित भाषा 'संस्कृत' ही है, ऐसी अमरीकी वैज्ञानिकों की मान्यता उचित एवं सत्य प्रतीत होती है।

संस्कृत साहित्य

किसी भी देश की संस्कृति, सभ्यता का मूल वाहक उस देश का साहित्य ही होता है; क्योंकि उसमें उस देश की संस्कृतियों के उत्थान, पतन, परिवर्तन और परिवर्धन का इतिहास सुरक्षित होता है। साहित्य ही उस देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक मर्यादाओं, विचारों, चिन्तन, कला, उन्नति, अवनति, आचार-विचार, मान्यताओं, विश्वासों आदि को प्रतिबिम्बित कर हमें उनसे परिचित कराता है। स्पष्ट है कि साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य इतिहास से पृथक् होता है। इतिहास जहाँ तथ्यात्मक होता है वहीं साहित्य कलात्मक होता है। उसका उद्देश्य माधुर्य, आनन्द आदि के साथ-साथ वस्तुस्थिति से परिचय कराना है, जबकि इतिहास का माधुर्य या आनन्द से कोई प्रयोजन नहीं।

संस्कृत साहित्य इस दिशा में कुछ अधिक ही प्रभावकारी रहा है। गद्य, पद्य, नाटक, काव्य, कथा आदि के माध्यम से संस्कृत साहित्यकारों ने विपुलतम साहित्य की सर्जना की। संस्कृत साहित्य का संक्षेप में निम्नांकित रूप में अवलोकन किया जा सकता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

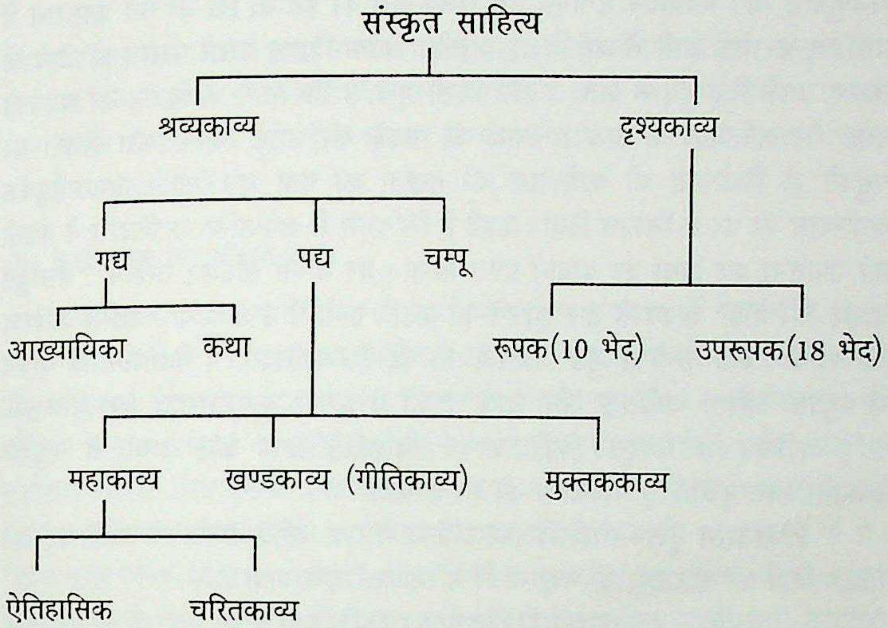

ज्ञातव्य है कि संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि और व्यास के बाद महाकवि कालिदास का नाम ही सर्वोपरि है, जिन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य (गीतिकाव्य) एवं नाटकों के द्वारा भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम स्वरूप को अत्यन्त लालित्यपूर्ण शैली के माध्यम से इस प्रकार सजा-सँवार कर प्रस्तुत किया है कि वह सूर्य की प्रदीप्त आभा की भाँति कभी भी धूमिल नहीं हो सकता। महाकवि के जीवन-काल, जन्म-स्थान एवं उसकी कृतियों से सम्बद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को यहाँ पर प्रस्तुत किया गया, जिससे कालिदास के व्यक्तित्व को अत्यन्त सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

(i) महाकवि कालिदास और उनका जीवनवृत्त–

संस्कृत साहित्य में मूर्धन्य स्थान प्राप्त करने वाले महाकवि कालिदास ने अपने जीवन-वृत्त, स्थान एवं समय आदि के सम्बन्ध में कोई भी उल्लेख नहीं किया है। शायद लोकैषणा की भावना से रहित कालिदास केवल रसमयी रचना के द्वारा जनसामान्य को साहित्यामृत पान कराना ही एकमात्र लक्ष्य लेकर काव्य-सृजन करते रहे। यही कारण है कि उनकी कृतियों में अन्तः साक्ष्य के रूप में कुछ भी प्राप्त नहीं होता। अन्य विद्वानों या अन्य साहित्य में भी कालिदास के विषय में कोई खास उल्लेख न होने के कारण बहिःसाक्ष्य का भी प्रायः अभाव ही है। हाँ कुछ किंवदन्तियाँ अवश्य प्रचलित हैं किन्तु उनसे कालिदास के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में इदमित्थं रूप से कुछ कह पाना सम्भव नहीं है। फिर भी उन किंवदन्तियों का संक्षिप्त अवलोकन कर लेना चाहिए।

1. विद्योत्तमा सम्बन्धी किंवदन्ती–कहा जाता है कि आरम्भिक जीवन में कालिदास अति मूर्ख थे। उसी काल में विद्योत्तमा नाम की एक ज्ञानगर्विता विदुषी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमारी थी। रूपयौवन सम्पन्ना उस राजकुमारी का हठ था कि जो उसे शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा उसी से वह विवाह करेगी। अनेक विद्वान् उससे परास्त हो जाने के कारण उससे चिढ़े हुए थे अतः उन्होंने किसी मूर्ख से विद्योत्तमा के विवाह का षडयन्त्र रचा और कालिदास के साथ शास्त्रार्थ का नाटक कर उससे विवाह करा दिया। घर पहुँचते ही विद्योत्तमा को कालिदास की मूर्खता का पता चल गया। अपमानपूर्वक कालिदास को घर से निकाल दिया। कहते हैं कि पत्नी से अपमानित कालिदास ने काली की उपासना कर विद्या का वरदान प्राप्त किया। घर वापस लौटकर उन्होंने "अनावृत कपाट द्वारं देहि" वाक्य से द्वार खोलने को कहा। पत्नी ने उत्तर दिया "अस्ति कश्चिद वाग्विशेषः" क्या वाणी में कुछ विशेषता आ गई है। कालिदास ने विद्योत्तमा के वाक्य में प्रयुक्त 'अस्ति' 'कश्चित्' और 'वाक्' शब्दों से क्रमशः कुमारसम्भव (अस्त्युत्तेरस्यां. ...।) कश्चित् से मेघदूत (कश्चित्कान्ता विरह....) तथा वाक् शब्द से रघुवंश (वागंर्थाविवसम्पृक्तौ....) महाकाव्य की रचना की।

2. नवरत्न वृत्त—ज्योतिर्विदामरण ग्रन्थ में एक श्लोक है जिसमें कालिदास को विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों में परिगणित किया गया है—

"धान्वन्तरिक्षयणकामरसिंहशंकु—
वेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।।

परन्तु यह विक्रमादित्य कौन है और कब हुए यह विद्वानों में पर्याप्त मतभेद का विषय है।

3. कुमारदास वृत्त—किंवदन्ती है कि अपने जीवन के अन्तिम समय में कालिदास लंका के महाराज कुमारदास (500 ई.) के यहाँ निवास करते थे वहाँ पर धन के लोभ में एक वेश्या ने उनकी हत्या कर दी थी।

4. भोज से सम्बन्ध—एक कवि के अनुसार कालिदास धारा नरेश भोज (1005 से 1054 ई.) के दरबारी कवियों में सर्वाभ्रणी थे।

महाकवि के जीवन सम्बन्धी इन किंवदन्तियों का यद्यपि कोई प्रभाव नहीं है फिर भी यह प्रसिद्ध है कि कालिदास का सम्बन्ध विक्रमादित्य राजा के दरबार से अवश्य था। वर्णाश्रम धर्म में उनकी प्रगाढ़ आस्था थी। शैव, ब्राह्मण एवं वैदिक आचार व्यवहार, तपोवन, गुरुकुल और भारतीय संस्कृति के प्रति वे प्रगाढ़ निष्ठावान थे। भावुक हृदय होकर भी विनोदी प्रकृति के थे और प्राकृतिक वातावरण से उन्हें विशेष प्रेम था।

महाकवि के ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट है कि कालिदास ने नियमित अध्ययन कर सर्वाङ्गीण ज्ञान प्राप्त किया था। धर्म, दर्शन, शास्त्र, पुराण, ज्योतिष, काव्यशास्त्र, इतिहास, भूगोल, राजनीति, कला, संस्कृति, नाट्यशास्त्र, एवं धनुर्वेद आदि का पूर्णज्ञान था।

तभी तो महाकवि कालिदास प्रौढ़, परिष्कृत, प्रांजल एवं मनोज्ञशैली के प्रवर्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि बन सके। उनके द्वारा उपस्थापित आदर्श परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय हो गए। उच्च कल्पनाओं से ओत-प्रोत सरस, सालंकार काव्य निर्झरिणी कालिदास रूपी शैल शिखर से प्रवाहित हुई। इसी श्रृंखला से भारवि, माघ और श्रीहर्ष के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(ii) कालिदास का जीवन-काल

कालिदास के समय निर्धारण में चारों ओर गहन अंधकार ही है, क्योंकि न तो स्वयं कालिनदास ने और न ही समकालीन किसी कवि, लेखक या इतिहासकार ने उनके विषय में कुछ लिखा है। अतः केवल अनुमान के आधार पर उनके समय निर्धारण की प्रक्रिया संस्कृत-साहित्य का इतिहास लिखने वालों में चली आ रही है और आजतक इदमित्थं रूप से उनका समय निर्धारित नहीं किया जा सका है। हाँ प्रायः सभी विद्वानों का यह अभिमत अवश्य है कि कालिदास विक्रमादित्य के राजकवि या नवरत्नों में थे। किन्तु राजा विक्रमादित्य के विषय में भी मतभेद है। कुछ लोग ई.पू. प्रथमशती के शकार विक्रमादित्य के राज्य काल में और कुछ चतुर्थ शती के विक्रमादित्य उपाधिधारी चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य में कालिदास की सत्ता स्वीकारते हैं।

यहाँ हम कालिदास की रचनाओं के कुछ इंगितों और कुछ अन्य कवियों के उल्लेखों के आधार पर कालिदास के समय की पूर्वापर सीमाओं का निर्धारण कर कालिदास के समय निर्धारण का प्रयास करेंगे।

कालिदास के समय की पूर्व सीमा

कालिदास ने अपने एक नाटक मालविकाग्निमित्र में शुंगवंशी राजा पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को नायक बनाया है। राजा अग्निमित्र का समय 150 ई. पूर्व के लगभग इतिहासकारों ने निर्धारित किया है, अतः कालिदास को 150 ई.पू. से पहले का नहीं माना जा सकता।

अपर सीमा–(1) सम्राट हर्षवर्धन (606 ई. से 648 ई.) के आश्रित कवि बाणभट्ट ने हर्षचरित की भूमिका के 16वें श्लोक में कालिदास का नाम आदरपूर्वक लिया है। अतः कालिदास को 606 ई. के बाद का नहीं माना जा सकता।

दूसरा प्रमाण–(2) ऐहोल शिलालेख (634 ई.) में कवि रविकीर्ति ने स्वयं को कालिदास और भारवि के तुल्य महाकवि घोषित किया है–विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारविकीर्तिः।

तीसरा प्रमाण–(3) 473 ई. के मन्दसौर शिलालेख पर कालिदास के ग्रन्थों का स्पष्ट प्रभाव है।

अतः कालिदास ई.पू. 150 से ई.पू. की छठी शती के मध्य हुए।

महाकवि कालिदास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों को कुल चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. ईसा की छठी शती।
2. ईसा की चतुर्थ शती या गुप्तकाल।
3. ई. पू. द्वितीय शती।
4. ई. पू. प्रथम शती।

1. ईसा की छठी शती का मत—पाश्चात्य विद्वान् डॉ. फर्ग्युसन (Fergusson), डॉ. हार्नली, प्रो. मैक्समूलर और भारतीय विद्वान् श्री हरप्रसाद शास्त्री ने कालिदास का स्थितिकाल छठी शती ई. मानते हुए अनेक तर्क दिए हैं जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं—

(i) 544 ई. में शकों और हूणों को पराजित कर उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् चलाया था जो 600 वर्ष पूर्व से अर्थात् ई.पू. 57 से प्रचारित किया गया था। कालिदास ने भी भारत पर हूणों के आक्रमण का उल्लेख किया है। अतः कालिदास छठी शती में हुए थे।

(ii) छठी शती के प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर ने आषाढ़ मास से वर्षा का आरम्भ माना है। कालिदास ने भी अपने मेघदूत काव्य में "आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुम्" लिखकर इसी मास से वर्षा ऋतु स्वीकार की है।

(iii) कालिदास ने मेघदूत में ही 'दिङ्नाग' बौद्ध आचार्य का उल्लेख है। आचार्य दिङ्नाग का काल भी छठी शती ई. है।

(iv) संस्कृत का पुनरुत्थान काल छठी शती में ही हुआ था।

(v) ज्योतिर्विदामरण नामक ग्रन्थ की रचना स्वयं कालिदास ने विक्रमादित्य के राज्य में रहकर की थी। ये वही विक्रमादित्य हैं जिन्होंने शक, हूणों को पराजित किया था। इसीलिए इन्हें शकारी विक्रमादित्य भी कहा जाता है इनका काल छठी शती ई. है।

छठी शती ई. मत की समीक्षा—कालिदास को ईसा की छठी शती में मानने वाले विद्वानों ने जो तर्क दिए हैं वे पुष्ट एवं प्रामाणिक नहीं हैं क्योंकि—

(1) इतिहास में ऐसा कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता कि किसी राजा ने अपने समय से 600 वर्ष पहले से अपने नाम से कोई संवत् चलाया हो और जनता ने उसे स्वीकार किया हो। यह तर्क व्यावहारिक भी नहीं है।

(2) 423 ई. एवं 436 ई. के शिलालेखों में विक्रम संवत् 'मालवानां गणस्थित्या' 'मालवगणस्थितिवशात्' अर्थात् 'मालव' नाम से उल्लिखित है।

(3) छठी शती ई. में विक्रमादित्य नाम का या विक्रमादित्य उपाधिधारी किसी राजा का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता।

(4) रघुवंश में हूणों का उल्लेख भारत की सीमा पर किया गया है। ई.पू. प्रथम और द्वितीय शती में हूण माह की उत्तरी सीमा पर थे ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण है।

(5) छठी शती में हर्ष ने नहीं अपितु यशोधर्मन ने हूणों को पराजित किया था।

(6) 473 ई. के मन्दसौर शिलालेख (वत्सभट्टि कृत प्रशस्ति) में मेघदूत और ऋतुसंहार, कालिदास की कृतियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) संस्कृत की उन्नति तो ई.पू. से ही होती आ रही थी।

(8) आषाढ़ से वर्षा ऋतु के आरम्भ की परम्परा वराहमिहिर से पहले से ही प्रचलित रही है।

(9) दिङ्नाग शब्द का प्रयोग कालिदास ने बौद्ध आचार्य दिङ्नाग के लिए नहीं अपितु दिशाओं के हाथियों के लिए किया है। दिङ्नाग बौद्ध आचार्य छठी शती में नहीं अपितु ई. की 4थी शती में हुए थे।

(10) ज्योतिर्विदामरण ग्रन्थ कालिदास का है यह न तो प्रामाणिक है और न ही कालिदास की कृतियों में इसकी कहीं समानता ही है।

अतः कालिदास का स्थितिकाल ईसा की छठी शती कथापि स्वीकार नहीं किया जा सकता।

2. ईसा की चतुर्थ शती का मत—पाश्चात्य विद्वान् प्रो. कीथ, मैक्डोनल एवं भारतीय विद्वान् प्रो. के.वी. पाठक, प्रो. वा.वि. मिराशी, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल एवं डॉ. रमाशंकर तिवारी कालिदास का काल ईसा की चतुर्थ शती का अन्त या 5वीं शती का प्रारम्भ मानते हैं। इस मत के समर्थकों की सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—

(क) कालिदास के विषय में प्रसिद्ध है कि वे राजा विक्रमादित्य की राजसभा में थे। शकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय (365 ई. से 413 ई.) ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। अतः कालिदास इसी राजा के आश्रित कवि थे।

(ख) कालिदास के रघुवंश में वंक्षु नदी के तट पर हूणों को पराजित करने का उल्लेख है। यह नदी बाह्लीक देश की आक्सस नदी है। यहीं 460 ई. में हूणों ने साम्राज्य स्थापित किया था और बाद में भारत पर आक्रमण किया था। अतः कालिदास इस घटना के समकालीन थे।

(ग) कालिदास के काव्यों में वर्णित वैभव गुप्तकालीन समृद्धि का परिचायक है।

(घ) चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर कालिदास ने कुमारसम्भव की रचना की थी।

(ङ) रघुदिग्विजय यात्रा चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजय यात्रा से प्रभावित है।

(च) कालिदास की कृतियों में चन्द्र और गुप्त शब्दों का भूयसा प्रयोग है जो गुप्त राजाओं का परिचायक है।

(छ) विक्रमोर्वशीय नाटक का नामकरण विक्रमादित्य उपाधि का सूचक है।

(ज) गुप्त काल संस्कृत भाषा का स्वर्ण काल है।

(झ) चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पूर्व प्रचलित मालव संवत् को बदल कर विक्रम संवत् नाम दिया था।

(ञ) अभिज्ञान शाकुन्तलम में स्त्री शिक्षा (सुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने....) विषयक उल्लेख वात्स्यायन के कामसूत्र पर आधारित है। वात्स्यायन का काल ई. की तीसरी शती है। अतः कालिदास इनसे परवर्ती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

ईसा की चतुर्थ शती में कालिदास को मानने वाले विद्वानों ने जो तर्क दिए हैं उनमें कुछ अवास्तविक और कुछ भावनात्मक हैं। यथा–

(i) प्रचलित रूढ़ियों से यह सत्य है कि कालिदास विक्रमादित्य की राज्यसभा में थे। किन्तु यह भी सत्य है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने जब विक्रमादित्य की उपाधि धारण की तो स्पष्टतः कोई वीर विक्रमादित्य राजा पहले अवश्य हुआ होगा। यह वीर विक्रमादित्य जिसके नाम पर उपाधियाँ वितरित होने लगीं ई.पू. प्रथम शती में हुआ था और उसी ने ई.पू. 57 में शकों पर विजय प्राप्त करने की स्मृति में विक्रम संवत् चलाया था। कालिदास इसी की राजसभा में थे।

(ii) हूणों को 5वीं शती ई. में ही मानना युक्तिसंगत नहीं है। महाभारत और बौद्ध ग्रन्थों में भी हूणों व शकों का उल्लेख मिलता है।

(iii) गुप्त वंश से पहले भी भारत में वैभव व विलासिता का साम्राज्य था। पुराणों, महाभारत एवं श्रीमद्भागवत में ऐसे अनेक राजाओं का वर्णन है जिनकी समृद्धि के सामने गुप्त कालीन वैभव नगण्य प्रतीत होता है।

(iv) कुमारसम्भव की रचना कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर हुई थी इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। काव्य में कुमार शब्द शिवपुत्र कार्तिकेय के लिए रूढ़ि है। कालिदास शैव परम्परा के थे एवं शिवपुत्र का जन्म एक विशिष्ट दैवीय घटना के लिए अति प्रसिद्ध है जो पौराणिक भी है।

(v) रघु की दिग्विजय यात्रा चन्द्रगुप्त या समुद्रगुप्त की विजय यात्रा का प्रतीक भी नहीं मानी जा सकती क्योंकि अनेक पुराणों व महाकाव्यों में अनिवार्यतः विजययात्राओं का वर्णन होता था, क्या उन सभी को चन्द्रगुप्त की विजययात्रा से जोड़ना उचित होगा।

दूसरी बात यह भी है कि चन्द्रगुप्त अपनी एक यात्रा में पाण्ड्य राजाओं से पराजित हुआ था। पराजित व्यक्ति की विजययात्रा का वर्णन अस्वाभाविक ही नहीं अनुचित भी है।

(vi) कालिदास के ग्रन्थों में चन्द्र और गुप्त शब्दों का बाहुल्येन प्रयोग का तर्क भी नगण्य है। प्रकृति प्रेमी कवि चन्द्र आदि का बाहुल्येन प्रयोग तो करेगा ही। गुप्त शब्द का जहाँ भी प्रयोग हुआ है वहाँ 'गुपू' रक्षणे धातु के अर्थ में ही हुआ है न कि गुप्त साम्राज्य या जाति विशेष के लिए।

(vii) इसी प्रकार वात्स्यायन के कामसूत्र के आधार पर स्त्री-शिक्षा की कल्पना अपुष्ट ही नहीं अस्वाभाविक है। भारतीय संस्कृति में कन्याओं को इस प्रकार की शिक्षा देने की परम्परा अनादिकाल से प्रचलित रही है।

(viii) विक्रमोर्वशीयम् में विक्रम शब्द को विक्रमादित्य उपाधि से जोड़ने की कल्पना हास्यास्पद है क्योंकि वहाँ पुरुरवा के पराक्रम को ध्यान में रखकर ही नाटक का नामकरण किया गया है। दूसरी बात यह है कि इतिहास में चार विक्रमादित्य हुए हैं फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कैसे माना जाए कि विक्रमोर्वशीयम् का विक्रम चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपाधि से ही सम्बन्धित है।

अतः यह मानना कि कालिदास चौथी शती ई. में हुए थे, स्वीकरणीय नहीं हैं।

3. ई.पू. द्वितीय शती का मत—डॉ. कुन्हन राजा ने मालविकाग्निमित्रम् नाटक के भरतवाक्य में वर्णित कल्याण कामना में अग्निमित्र का सम्बन्ध ई.पू. द्वितीय शती के शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र से मानकर कालिदास को इन्ही का राजकवि मानते हुए कालिदास का समय ई.पू. द्वितीय शती निर्धारित किया।

समीक्षा

कालिदास ने अग्निमित्र का उल्लेख किया किन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि वे उनके समकालीन थे। हाँ इतना अवश्य सिद्ध होता है कि कालिदास ई.पू. द्वितीय शती से पूर्ववर्ती नहीं हो सकते। यह सम्भव है कि कालिदास को काल तक शुंगवंश की स्थिति, लोकप्रियता अच्छी रही हो जिससे कि कवि ने उनकी प्रशंसा में अग्निमित्र का उल्लेख किया हो।

4. ई.पू. प्रथम शती का मत—प्राचीन भारतीय अनुश्रुति के अनुसार कालिदास विक्रम संवत् के प्रवर्त्तक विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। विक्रमादित्य का समय ई.पू. प्रथम शती था। इनके पिता का नाम महेन्द्रादित्य था। विक्रमादित्य न्यायप्रिय एवं पराक्रमशाली राजा था।

इस मत के विरुद्ध (अर्थात् ई.पू. में विक्रमादित्य नामक राजा की सत्ता के विरुद्ध) कुछ आक्षेप हैं। जिनका निराकरण सर्वप्रथम अपेक्षित है।

आक्षेप-1—प्रथम शती ई.पू. में विक्रमादित्य राजा के होने का कोई प्रमाण नहीं है।

निराकरण-1—गुणाढ्य (78 ई. के लगभग) की वृहत्कथा पर आधारित सोमदेवकृत कथासरित्सागर में उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का उल्लेख है। इतना ही नहीं यह भी उल्लेख है कि राजा महेन्द्रादित्य अपने पुत्र विक्रमादित्य को राज्यभार सौंपकर वाराणसी चले गए और विक्रमादित्य ने विधिवत पैतृक साम्राज्य पर शासन किया—

ततश्च यौवनस्थं तं विलोक्य प्राज्यविक्रमम्।
अभिषिच्य सुतं राज्ये यथाविधि जनप्रियम्।।
महेन्द्रादित्य नृपतिः समार्या सचिवोऽपि सः।
वृद्धो वाराणसी गत्वा शरणं शिश्रिये शिवम्।।
सोऽपि तद् विक्रमादित्यो राज्यमासाद्य पैतृकम्।
नमो भास्वानिवारेमे राजा प्रतपितुं क्रमात्।।

(कथासरित् सागर 28/59-61)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे स्पष्ट है कि प्रथम ई. का कवि गुणाढ्य ई.पू. प्रथम शती के राजाओं से सुपरिचित था। इसलिए विक्रमादित्य को ई.पू. प्रथम शती का मानने में एवं उसकी सत्ता में कोई सन्देह नहीं है।

(2) ईसा की प्रथम शती के सातवाहन राजा हाल ने अपने ग्रन्थ गाथा सप्तशती में एक उदार, दानी राजा विक्रमादित्य का उल्लेख किया है।

(3) विश्व के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है कि कोई व्यक्ति हुआ ही न हो और उसके नाम से उपाधि या संवत् चल पड़े। या कोई परवर्ती राजा 600 वर्ष पूर्व से अपना संवत् प्रचलित करे।

(4) गुप्त राजाओं की राजधानी पाटलिपुत्र रही है उज्जयिनी नहीं। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय को उज्जयिनी का राजा नहीं माना जा सकता।

(5) विन्सेंट स्मिथ और एडगर्टन ने ई.पू. प्रथम शती में विक्रमादित्य का होना सम्भव बताया है।

(6) मेरुतुंगाचार्य ने—जैनचरित पद्यावली में उल्लेख किया है कि महावीर स्वामी के निर्वाण के 470वें वर्ष में विक्रमादित्य राजा था। महावीर का निर्वाण ई.पू. 527 में हुआ था। अतः 527-470 = 57 ई.पू. विक्रमादित्य का समय सिद्ध होता है।

आक्षेप-2—विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं हुआ अपितु यह कुछ राजाओं की उपाधिमात्र थी।

निराकरण-2—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उपाधि बिना किसी के हुए नहीं हो सकती। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य के आदर्श और पराक्रम के अनुरूप स्वयं को सिद्ध करने के लिए ही स्वकीय नाम के साथ विक्रमादित्य की उपाधि जोड़कर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य कहलाया। इतना ही नहीं उसके पुत्र कुमारगुप्त ने स्वयं को अपने पिता से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अपने नाम के साथ विक्रमादित्य के पिता महेन्द्रादित्य का नाम उपाधिरूप से जोड़ा। अतः कोई भी उपाधि नाम बिना पूर्व पुरुष के प्रचलित ही नहीं हो सकती।

कालिदास को ई.पू. प्रथमशती में मानने के कारण

1. भाषा शैली—कालिदास की भाषा और शैली रामायण और महाभारत की भाषा शैली के बहुत समीप है। क्योंकि इसमें कृत्रिमता, समास बहुलता, क्लिष्टता आदि का अभाव है। जबकि गुप्तकालीन साहित्य और शिलालेखों में कृत्रिमता आदि प्राप्त होती है। दृष्टव्य-प्रयाग प्रशस्ति स्तम्भ लेख जिसमें 30-35 पंक्तियों के एक वाक्य का प्रयोग हो।

2. अपाणिनीय प्रयोग—कालिदास की रचनाओं में अपाणिनीय प्रयोग एवं वैदिक छन्दों का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है जो इस बात का प्रमाण है कि कालिदास का काल रामायण, महाभारत की रचना के समीप ही है।

3. वैदिक शब्दावली—परमेष्ठी, पेलव, घिषूण्य आदि वैदिक शब्दों का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास को लौकिक संस्कृत काल के आरम्भिक समय में सिद्ध करता है।

4. मालविकाग्निमित्र की रचना—कालिदास का मालविकाग्निमित्रम् नाटक में शुंगवंशी राजा पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को नायक बनाना तथा भरत वाक्य में अग्निमित्र विषयक तथ्यों का उल्लेख करना यह सिद्ध करता है कि कालिदास अग्निमित्र (ई.पू. 150) के अधिक समीप था।

5. परशुराम को अवतार न मानना—परशुराम को अवतार न मानकर केवल ऋषि के रूप में ही वर्णन करना यह सिद्ध करता है कि कालिदास ईसा पूर्व में हुए थे, क्योंकि परशुराम को अवतार मानने की परम्परा ईसवी सन् में प्रारम्भ हुई थी।

6. अश्वघोष पर प्रभाव—महाकवि अश्वघोष (78 ई. के लगभग) के ऊपर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है जैसे—रति विलाप का प्रभाव अश्वघोष के सौन्दरमन्द में सुन्दरी विलाप पर इसी प्रकार अज विलाप का नन्द विलाप पर, शिवदर्शनार्थ एवं अजदर्शनार्थ का गौतमदर्शनार्थ स्त्रियों की भीड़ एवं उनकी चेष्टाओं का वर्णन। यह सिद्ध करता है कि कालिदास ईसा की प्रथम शती से पूर्व हुए थे।

7. पाण्ड्य राजा का वर्णन—इतिहास प्रमाणित है कि ई.पू. प्रथम शती में पाण्ड्य राजा थे। चतुर्थ ई. में पाण्ड्य राज्य समाप्त हो गया था। कालिदास ने रघुवंश में रघु के द्वारा पाण्ड्य राजा पर विजय प्राप्त की थी ऐसा उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि कालिदास गुप्तकालीन नहीं है।

8. वैदिक कर्मकाण्ड का समर्थन—रघुवंश, कुमारसम्भव और शाकुन्तलम में कालिदास ने वैदिक कर्मकाण्ड का समर्थन किया है। ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म के तीव्र विरोध में कालिदास ने वैदिक कर्मकाण्ड की वकालत की है। इससे भी कालिदास ई.पू. प्रथम शती के ही सिद्ध होते हैं क्योंकि ये परिस्थितियाँ ईसा पूर्व में ही थीं।

9. उत्तराधिकार के नियम—विधवा स्त्री को पति की सम्पत्ति पर अधिकार, चोरी के लिए दण्ड-व्यवस्था आदि का जो वर्णन किया है वह ई.पू. में प्रचलित विधानसंहिता से मेल खाता है।

अतः उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर कालिदास का समय ई.पू. प्रथम शती में मानना सर्वथा उचित है।

(iii) कालिदास का जन्म-स्थान

जिस प्रकार कालिदास का स्थितिकाल विवादित है उसी प्रकार उनका जन्मस्थान भी अनिश्चितता से घिरा हुआ है। स्वयं कालिदास ने अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा, परवर्ती साहित्यकारों ने भी इस विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है। हिमालय आदि पर्वतीय स्थलों का मनोहारी चित्रण करने के कारण कश्मीरी विद्वान् उन्हें कश्मीर का मानते हैं तो बंगाल के विद्वान् कालिदास का जन्मस्थान बंगाल बतलाते हैं। उज्जैन के विद्वान् उन्हें उज्जैन का कहते हैं।

यदि हम कालिदास के काव्यों का अवलोकन करें और विशेष रूप से मेघदूत को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखें तो ज्ञात होता है कि कालिदास का उज्जयिनी के प्रति विशेष आग्रह एवं आदरभाव है। शिप्रा नदी और मालव क्षेत्र की रमणियों का चित्रण करते समय वे भाव-विभोर हो जाते हैं। उज्जैन के महाकाल मन्दिर का वर्णन अति भाव-प्रवणता के साथ करते हुए उन्होंने उज्जयिनी नगरी के सौन्दर्य वर्णन में विशेष रूचि प्रदर्शित की है। इससे यह संकेत अवश्य मिलता है कि कालिदास या तो उज्जयिनी के निवासी थे या फिर दीर्घकाल तक वे उज्जयिनी में रहे थे। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने मेघ को मार्ग का निर्देश करते हुए कहा था कि ''यद्यपि तुम्हें अपना मार्ग बदलना पड़ेगा किन्तु उज्जयिनी की अट्टालिकाओं पर बाल सुखाने वाली रमणियों को यदि नहीं देखोगे तो तुम नैसर्गिक सौन्दर्य से वंचित रह जाओगे। अतः उज्जयिनी अवश्य जाना आदि।

अतः कालिदास का जन्मस्थान उज्जयिनी क्षेत्र मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

(iv) कालिदास की कृतियों का सामान्य परिचय

संस्कृत साहित्य में लालित्यपूर्ण, सरस, सरल और भाव-प्रधान काव्य रचना के क्षेत्र में कालिदास का स्थान सर्वोपरि है यही कारण हे कि अनेक परवर्ती कवियों ने स्वयं को प्रतिष्ठित करने के लिए कालिदास का नाम धारण किया। परिणामतः आज कालिदास के नाम से 41 कृतियों का उल्लेख मिलता है। ये सभी रचनाएँ महाकवि कालिदास की नहीं हो सकतीं।

अतः अन्तः, बाह्य साक्ष्यों के आधार पर ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्, इन सात कृतियों को ही कालिदास-विरचित स्वीकार किया जाता है।

1. ऋतुसंहारम्
(RITUSAMHARAM)

'ऋतुसंहारम्' महाकवि कालिदास की प्रथम काव्य-रचना मानी जाती है। प्रस्तुत रचना ऋतुओं पर लिखी जाने वाली एकमात्र कृति है। इस ललित लघु-काव्य में महाकवि ने षड्ऋतुओं की नैसर्गिक सुषमा को काव्यबद्ध करने का सफल प्रयास किया है। इस ग्रन्थ को छः सर्गों में क्रमशः ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर तथा बसन्त ऋतु का गीत्यात्मक स्वरों का वर्णन किया गया है। इन सर्गों की श्लोक संख्या 16 से 38 के बीच में है।

इस काव्य में कवि का प्रकृति के प्रति सहज एवं स्वाभाविक प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। प्रत्येक ऋतु के सन्दर्भ में प्रकृति की स्वतन्त्र छवियों, प्राकृतिक व्यापारों तथा ऋतुगत प्रभाव के कारण प्रेमी जनों के अन्तस्तल पर पड़ने वाले प्रभावों का अत्यन्त हृदयाह्लादक चित्रण किया गया है। अर्थात्, प्रकृति के विभिन्न रूपों का मानव-हृदय पर कैसा प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है? यह तथ्य विभिन्न ऋतुओं में उन्मुक्त विलासरत प्रेमी-युगल की चेष्टाओं से स्वतः स्पष्ट है।

प्रो. मैक्डोनाल्ड ने ऋतुसंहारम् की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "प्रकृति की रमणीयताओं के सजीव चित्रणों में, जिनमें प्रणयमूलक दृश्य बिखरे पड़े हैं, कवि ने अत्यन्त निपुणतापूर्वक उनमें मानवीय भावों की अभिव्यक्तियों को भी जोड़ दिया है। कदाचित् कालिदास की कोई भी अन्य रचना प्रकृति के प्रति उनके अनुराग को, अवेक्षण की उनकी तीव्र शक्तियों को और नितान्त सजीव तथा चमकीले रंगों से युक्त भारतीय भू-दृश्य का चित्रण करने में उनके नैपुण्य को इतने आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त नहीं करती।"

महर्षि अरविन्द के मत में ऐन्द्रियता का आस्वाद 'ऋतुसंहारम्' की साहसिक विशेषता है। आनन्दवादी सभ्यता के इस उद्भावक ने अपने उपादानों को पूर्ण दृढ़ता एवं निश्चय के साथ पकड़ा है। प्रकृति में प्राप्त ऐन्द्रिय धरातल का सशक्त अनुवर्तन तथा सौन्दर्य की महत्ता से परिपूर्ण मानव-जीवन के तत्त्वों को ऐन्द्रिय-आलोक में प्रक्षेपित कर, उन्हें रस-स्निग्ध पदावली में अभिव्यक्ति प्रदान करना 'ऋतुसंहारम्' की सबसे बड़ी विशेषता रही है।

ग्रीष्म-वर्णन के प्रथम श्लोक में ही अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए कवि उपालम्भ के स्वर में कहता है कि सूर्य की प्रचण्डता वाले काल में कामदेव एकदम शान्त हो गया है,—"अभ्युपशान्तमन्मथः।" अतः उसने कामदेव को उद्दीपित करने वाले उपचारों का भी कथन कर दिया है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि ग्रीष्म के प्रभाव का जैसा चित्रण ऋतुसंहारम् में उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। स्वयं महाकवि कालिदास ने भी 'रघुवंशम्' के सोलहवें सर्ग में ग्रीष्म-ऋतु का वर्णन किया है; किन्तु ऋतुसंहारम् के ग्रीष्म-वर्णन के सामने वह फीका पड़ जाता है।

वर्षा-ऋतु का स्वागत महाकवि ने एक राजा के रूप में किया है—"सशीकराम्भोधर"। अर्थात्, कवि अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए कहता है, "देखो प्यारी! जलकणों से ओत-प्रोत मदमस्त मेघ रूपी हाथी पर चढ़ा हुआ, चमकती हुई बिजली की पताकाओं को फहराता हुआ तथा मेघों की गर्जना का नगाड़ा बजाता हुआ, कामीजनों का प्यारा यह वर्षाकाल राजाओं के समान साज-सजाकर आ पहुँचा है।" इस प्रकार ग्रीष्मकालीन विभीषिका को वर्णित करने के बाद वर्षा-ऋतु का अत्यन्त स्फूर्तिमय एवं नवोल्लास युक्त चित्रण किया गया है। वर्षा के आगमन से पशु-पक्षियों एवं वनस्पतियों में नव-जीवन संचरित होता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार कामदेव के राज्य में वर्षा के महत्त्व को कवि ने अत्यन्त अतिशयता के साथ प्रस्तुत किया है।

शरद्-ऋतु को महाकवि ने रमणीय नववधू के रूप में उपस्थापित किया है, जो फूले हुए कॉश की साड़ी पहने, मतवाले हंसों के कलरव रूपी बिछुओं को धारण किए हुए, पके हुए धान से युक्त चारु शरीर वाले तथा खिले हुए कमलों जैसे मुख-मण्डल के धारण करते हुए, सभी लोगों के चित्त को बलात् आकर्षित कर लेती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशांशुका विकचपद्म मनोज्ञ-वक्ता,
सोन्मादहंसरव-नूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः,
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या।। 3।1।।

महाकवि की दृष्टि में 'नदियाँ' मतवाली कामिनियों के समान मन्दगति से संचरण कर रही हैं। उछलती हुई मनोज्ञ 'मछलियाँ' मानों उनकी किंकिणियाँ हैं, तट पर बैठे हुए श्वेत पक्षियों की 'पंक्तियाँ' मानों उनकी मालाएँ हैं और 'ऊँचे टीले' मानो उनके पुष्ट नितम्ब हैं–

चञ्चन्मनोज्ञशफरी-रसना-कलापाः,
पर्यन्तसंस्थित-सिताण्डज-पंक्तिहाराः।
नद्यो विशाल-पुलिनान्तनितम्बबिम्बा,
मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य।। 3।।

हेमन्त का वर्णन अन्य ऋतुओं की अपेक्षा सामान्य प्रतीत होता है। हेमन्त में जौ, गेहूँ के नए अंकुरों, लोध के फूलों, पके हुए धानों, पीली प्रियंगुलता के दृश्यों तथा सुरतोत्सव मनाने वाली प्रमदाओं के सुख-विलास की छटा वर्णित है। प्रातः काल घास पर लटकी हुई ओस की बूँदों को देखकर कवि कल्पना करता है कि मानों युवतियों के पुष्ट स्तनों के दर्शन से सुख पाने वाला शीतकाल उन स्तनों को प्रेमियों के हाथों द्वारा मर्दित किए जाने के दुःख से दुःखी होकर आँसू बहा रहा है–

पीनस्तनोरः स्थलभागशोभाम्
आसाद्य तत्पीडनजातखेदः।
तृणाग्रलग्नैस्तुहिनैः पतद्भि-
राक्रन्दतीवोषसि शीतकालः।।4।7।।

शिशिर-ऋतु को पूर्णतः भोग-विलास से ओत-प्रोत दिखाया गया है। रति एवं सुरतान्त के चित्र विविध भाव-भंगिमाओं के साथ उपस्थापित किए गए हैं। इस सर्ग के अन्तिम पद्य में साररूप में कवि लिखता है कि जिस शिशिर ऋतु में मिठाइयाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं, स्वादिष्ट चावल एवं ईख चारों ओर सुशोभित होते हैं, लोग काम-क्रीड़ा में निमग्न हो जाते हैं; मदन का मद अत्यधिक बढ़ जाता है तथा प्रिय जनों से विश्लेषित व्यक्ति अत्यन्त सन्तप्त चित्त होकर किसी तरह समय को व्यतीत करते हैं; वह शिशिर-ऋतु आप लोगों का कल्याण करें–

प्रचुरगुडविकारः स्वादुशालीक्षुरम्यः,
प्रबलसुरतकेलिर्जातकन्दर्पदर्पः।
प्रियजनरहितानां चित्तसंतापहेतुः,
शिशिरसमय एष श्रेयसे वोऽस्तु नित्यम्।।5।6।।

बसन्त-ऋतु के वर्णन में महाकवि ने सर्वाधिक मनोयोग का परिचय दिया है। इस सर्ग में पद्यों की कुल संख्या 38 तक पहुँच गई है। प्रायः इन सभी पद्यों में बासन्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों के मानव मनों पर पड़ने वाले प्रभाव का ही कथन किया गया है। बसन्त के मदनोद्दीपक स्वरूप का पथिकों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि आम के पेड़ों को देखकर वे अपने नेत्रों को बन्द करके रोने-बिलखने लगते हैं; साथ-ही-साथ हाथों से अपनी नाक को बन्द कर लेते हैं। कि आम्र-मंजरियों की महक नाक में पहुँचकर कहीं हमारी प्रेमिका की याद न दिला दे–

"नेत्रे निमीलयति रोदति याति शोकं
घ्राणं करेण विरुणद्धि विरौति चोच्चैः।।" 6।28।।

इस प्रकार सम्पूर्ण बसन्त-वर्णन प्रमदाओं की विलास-रचना से ओत-प्रोत है। इसमें रमणीय संन्ध्या, आह्लादकारी चन्द्रिका, कोयल की कूक, सुरभित पवन, भ्रमरों का गुंजन, रमणियों के स्तन की पीनता, नितम्बों की पुष्टता, अधरों से टपकने वाले दिव्य रस का स्वाद, रात्रिकालीन वारुणी-पान इत्यादि उद्दीपकों की प्रधानता है।

2. मेघदूतम्
(MEGHADUTAM)

कालिदासेन या सृष्टिः समृद्धा खलु कल्पिता।
अपूर्वं कमनीयत्वं तस्या लोकेषु विश्रुतम्।।

महाकवि कालिदास-विरचित *"मेघदूतम्"* एक 'खण्डकाव्य' है, जिसे आधुनिक विद्वानों (खास करके प्रो. मैक्डॉनल) ने *'गीतिकाव्य'* (Lyricd)[1] की संज्ञा दे रखी है। इसका नायक अलकापुरी का नागरिक यक्ष (देवयोनि-विशेष); धीर, प्रशान्त तथा एक ही नायिका में आसक्त होने के कारण *'अनुकूल'*[2] नायक है। यक्ष की पत्नी विनय, सरलता, आदि गुणों से संयुक्त, घर के कामों में तत्पर तथा पतिव्रता होने से स्वीकीया[3] नायिका है। प्रवासात्मक विप्रलम्भश्रृंगार ही 'अङ्गीरस' है। विरहवर्णन के लिए अत्यन्त अनुकूल प्रवृत्ति वाला छन्द 'मन्दाक्रान्ता' है। नायक-नायिका (यक्ष-यक्षपत्नी) ये दोनों आलम्बन-विभाव हैं। मेघप्रादुर्भाव आदि उद्दीपन-विभाव हैं। ज्ञानशून्यत्व आदि अनुभाव हैं। ग्लानि इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं तथा रति स्थायिभाव है। साहित्यदर्पण /8/8 की प्रस्तुत उक्ति–

"चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।।"

के अनुसार यहाँ पर प्रधानतया प्रसादगुण है। कहीं-कहीं माधुर्यगुण भी देखा जाता है।

---

1. मेघदूताह्वयं काव्यं गीतिकाव्यमुदीर्यते। अद्भुतकल्पनायोगैः भावुकानां हृदिस्थितम्।।
2. "अनुकूल एकनिरतः"।। साहित्यदर्पण/3/37।।
3. "विनयाऽऽर्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया"।। साहित्यदर्पण/3/57।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण ग्रन्थ दो भागों 'पूर्वमेघ' और 'उत्तरमेघ' में विभक्त है, जिसमें बल्लभदेव की टीका के अनुसार कुल 111 पद्य हैं; जबकि आचार्य मल्लिनाथ ने अपनी टीका में कुल 118 पद्य दिए हैं, जिनमें किसी विरही यक्ष के द्वारा विरहानलसन्तप्त अपनी कान्ता (प्रिया) के पास सन्देश भेजने की एक मौलिक कल्पना की गई है, यद्यपि कुछ लोग इसकी उपजीव्यता का श्रेय 'रामायण' को देते हैं। इसकी कथावस्तु का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

विषयवस्तु
(Subject-matter)

जिस विषय को लेकर महाकवि कालिदास ने मेघदूतम्[1] की रचना की, वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी है–

कोई यक्ष अपने स्वामी कुबेर के कार्य में प्रमाद करने के कारण कुबेर के शाप से केलास पर्वत में अवस्थित, अलकापुरी में एक वर्ष तक के लिए निर्वासित कर दिया गया। इस प्रकार अपने स्थान से निर्वासित होकर अपनी प्राणेश्वरी प्रियतमा से बिछड़ने के शोक से कृशकाय होकर वह कामुक यक्ष रामगिरि पर्वत के निर्जन आश्रमों में रहा करता था। उस पर रहते हुए उस कामी यक्ष ने आठ मास व्यतीत करके आषाढ़ मास के प्रथम दिन में पहाड़ की चोटी से सम्बद्ध और वप्रकीड़ा में तिरछा दन्तप्रहार करने वाले हाथी के समान मेघ को देखते रहे, अपनी प्रियतमा की स्मृति से शोकाकुल होकर कुबेर के उस भृत्य (यक्ष) ने आँखों में आँसू भरकर उत्कण्ठा की उत्पत्ति करने वाले उस मेघ के सामने अत्यन्त अधीर होने दिया चेतनाचेतन की भेदबुद्धि खो देने के कारण उस नवीन मेघ को ही प्रिया को सन्देश भेजने हेतु दूत बनाने का निश्चय करते हुए, याचना का भाव लिए मेघ की प्रशंसा करते हुए कहा–

हे मेघ! मैं जानता हूँ कि तुम विश्वप्रसिद्ध पुष्कर और आंवर्तक नाम वाले मेघों (बादलों) के कुल में उत्पन्न हुए हो तथा अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाले व इन्द्र के खास व्यक्ति हो। इस कारण से दुर्भाग्यवशात् अपनी पत्नी से बिछुड़ा हुआ मैं तुमसे दौत्यकर्म हेतु याचना करता हूँ, क्योंकि अधिक गुण वाले व्यक्ति से की गई याचना निष्फल होने पर भी कुछ अच्छी है, परन्तु निर्गुण व्यक्ति से की गई याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं होती। इसके अतिरिक्त तुम सन्तप्तों के रक्षक हो, अतः कुबेर के कोप से पत्नी से बिछुड़े हुए मेरे सन्देश को प्रिया के समीप ले जाओ। बाहर के उद्यान में विद्यमान शिवजी के शिर में स्थित चाँद की चाँदनी से उज्ज्वल धनिकों के भवनों से सम्पन्न अलका नाम की पुरी में तुम्हें मेरे सन्देश की मेरी प्राण-प्रिया तक पहुँचाना है।

इस प्रकार मेघ से सन्देश पहुँचाने की याचना करने के पश्चात्; मेघ को किस-किस मार्ग का अवलम्बन करना होगा और क्या-क्या दृश्य देखना पड़ेगा? इन

---

1. "मेघ एवं दूतो मेघदूतः, मेघो दूतो यस्मिन् तत् मेघदूतम्।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबको यक्ष ने एक-एक करके 'पूर्वमेघ' में विस्तारपूर्वक बतलाते हुए, रामगिरि (चित्रकूट) पर्वत से उत्तराभिमुख होकर अमरकूट-पर्वत, नर्मदा नदी, विदिशा नगरी, वेत्रवती नदी, उज्जयिनी पुरी' और कुरुक्षेत्र का अतिक्रमण करके अपने मूलनिवास-स्थान अलकापुरी में जाने के लिए मेघ को दिशा-निर्देश दिया है।

'उत्तरमेघ' में यक्ष अलकापुरी और वहाँ पर विद्यमान अपने प्रासाद (महल) का अतिशय मनोहारी वर्णन करता है। वह उद्वेलित-हृदय से अपनी प्रियतमा की सौन्दर्यसम्पत्ति का कथन करते-करते कल्पना के बल पर उसकी विरहावस्था का अत्यन्त करुणभाव से वर्णन करने लगता है। अपनी प्राणेश्वरी को पहचानने के लिए उसके लक्षणों को बताकर—**"मैं एक वर्ष के अन्त में (शापनिवृत्ति होने पर) प्रिया के पुनर्मिलन की प्रत्याशा से प्राण धारण कर रहा हूँ।"** इस वार्ता को प्रियतमा से कहने के लिए और उसे धैर्य बँधाने के लिए मेघ से सविनय निवेदन करता है।

'मेघदूतम्' का उपजीव्य

महोपाध्याय मल्लिनाथजी के अनुसार—भगवान् रामचन्द्र ने सीताजी के लिए हनुमान को जो सन्देश दिया था, उसी को मन में रखकर महाकवि कालिदास ने 'मेघदूतम्' की रचना की है। सूक्ष्म विचार करने पर यह बात समीचीन लगती है। **"जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु"** पूर्वमेघ/1/; **"रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु"** पूर्वमेघ/12/; **"दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः"** पूर्वमेघ/58/. तथा **"इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा।"** उत्तरमेघ/37/. इन श्लोकों को देखने से भी रामायण की उपजीव्यता ही दृष्टिगोचर होती है। 'रामायण' में हनुमानज़ी का हाथी व पर्वत की चोटी से जो सादृश्य दिखाया गया है तथा कामरूपत्व प्रदर्शित किया गया है, उसको महाकवि कालिदास ने भी प्रस्तुत ग्रन्थ में दर्शाया है[1] इसी प्रकार 'सुबेल-पर्वत' पर स्थित 'लंका' के समान कैलास-पर्वत पर स्थित 'अलका' का वर्णन करने से; 'लंङ्का' में हनुमान् के समान 'अलका' में सायंकाल में मेघ का प्रवेश कराने से; लंका में प्रवेश के समय हनुमानूजी के द्वारा छोटा रूप धारण करने के ही समान यक्ष द्वारा सन्देशकथन में मेघ को छोटा रूप धारण किए जाने के निर्देश से; अशोकवाटिका में शोकसन्तप्ता सीताजी की ही भाँति अलका में यक्षपत्नी की करुणावस्था का वर्णन करने से; तथा सन्देश कहने के समय रामायण के ही समान अभिज्ञान-प्रदान से सुस्पष्ट है कि महाकवि कालिदास ने अपनी कृति मेघदूतम् में 'रामायण' का ही भली-भाँति अनुकरण किया है; वैसे सामान्य रूप में किसी को दूत बनाकर किसी आत्मीय के पास सन्देश भेजने की बात वेदों में भी प्राप्त होती है।

'मेघदूतम्' के कथानक का उपजीव्य

1. **"वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।"** मेघदूतम्/पूर्वमेघ/2/ **"जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।।"**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेघदूतम्' के कथानक की उपजीव्यता का श्रेय 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' को प्राप्त है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में विद्यमान 'योगिनी' नाम की आषाढ़कृष्ण एकादशी के माहात्म्य में एक कथा वर्णित है; जिसके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रोता युधिष्ठिर हैं। कथा इस प्रकार है–

अलकाधिपति यक्षराज कुबेर भगवान् शङ्कर के परम भक्त थे, जो प्रतिदिन शिवजी की पूजा-अर्चना किया करते थे। कुबेर की शिवपूजा में प्रतिदिन फूलों को तोड़कर लाने वाला 'हेममाली' नाम का एक यक्ष अनुचर था। परमसुन्दरी 'विशालाक्षी' उसकी पत्नी थी। एक दिन हेममाली 'मानस-सरोवर' से बहुत से फूलों को तोड़कर कामवशात् अपने स्वामी कुबेर के पास न जाकर अपनी पत्नी विशालाक्षी के ही पास पड़ा रहा; जबकि यक्षराज कुबेरजी मध्याह्न में शिवजी की पूजा करने के लिए फूलों की प्रतीक्षा में बैठे थे। पूजा में नियतकाल का अतिक्रमण जान करके कुबेरजी ने उस शिवजी के तिरस्कार करने वाले हेममाली नामक यक्ष को कुष्ठरोगी होने तथा वर्षपर्यन्त कान्ता (पत्नी) से बिछुड़ कर मर्त्यलोक में रहने का शाप दिया। इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने भी अलकापुरी में रहने वाले किसी यक्ष को शापवशात् 'चित्रकूट-पर्वत' (रामगिरि) के आश्रमों में रहने वाला बताया है। आषाढ़ कृष्णपक्ष की 'योगिनी' नामक एकादशी का व्रत करने से यक्ष शापनिर्मुक्त हो गया, इस पौराणिक अंश को काव्य के अनुगुण न होने से महाकवि ने छोड़ दिया है, तथा मेघ के द्वारा प्रिया को सन्देश-प्रेषण के प्रसङ्ग में अपनी अनुपम कल्पना-शक्ति का प्रदर्शन किया है। ऐसे ही विषय को लेकर कहा भी गया है–

''न हि कवेरितिवृत्तमात्रेणात्मलाभः इतिहासादेरेव तत्सिद्धेव।''

(ध्वन्यालोक)

ब्रह्मवैवर्तपुराणस्थ योगिनन्येकादशी माहात्म्य कथा

योगिन्येकादशीमाहात्म्योपोद्घातरूपेण भगवान् योगेश्वरः कृष्णो धर्मराजम् अकथयत्–

अलकाधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः।
तस्यासीत्पुष्पबटुको हेममालीति नामतः।।6।।
तस्य पत्नी सुरूपासीत् विशालाक्षीति नामतः।
स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशं गतः।।7।।
मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः।
पत्नीप्रेमसमायुक्तो न कुबेरालयं गतः।।8।।
कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम्।
मध्याह्नसमये राजन्पुष्पाणि प्रसमीक्षते।।9।।
हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह।
यक्षराट् प्रत्युवाचाऽथ कालातिक्रमकोपितः।।10।।
कस्मान्नायाति भो यक्षा हेममाली दुरात्मवान्।
नेश्चयः क्रियतामस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः।।11।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15178 R 029 पाण्डे-का

यक्षा ऊचुः—

बनिता-कामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप।
तेषां बाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः।। 12।।
आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम्।
ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः।। 13।।
आजगाम नमस्कृत्य कुबेरस्याग्रतः स्थितः।
तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः।। 14।।
प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताधरः।

धनद उवाच—

रे पाप! दुष्ट! दुर्वृत्त! कृतवान्दैवहेलनम्।। 15।।
अतो भव श्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सह।
अस्मात्स्थनादपध्वस्तो गच्छ स्थानमथाऽधमम्।। 16।।
इत्युक्ते वचने तेन तस्मात्स्थानात् पपात सः।
....इति।।

मेघदूतम् : एक समालोचनात्मक अध्ययन

महाकवि 'कालिदास' विरचित 'मेघदूतम्' न केवल दूतकाव्यों में अपितु विश्व के समस्त काव्यों में अप्रतिम स्थान रखता है। जर्मनी के दार्शनिक तथा कविश्रेष्ठ **गेटे** (Goethe) और उनके मित्र **शीलर** (Schiller) ने प्रस्तुत ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। शीलर ने तो **'मेरिया ष्टुअर्ट'** (Maria Stuart) लिखकर इसे चिरस्मरणीय बना दिया है।

सन्देश पहुँचाने वाले को 'दूत' कहते हैं, जो निसृष्टार्थ, मितार्थ तथा सन्देशहारक भेद से तीन प्रकार का होता है। इनमें जो दोनों के (जिसने भेजा है, तथा जिसके पास भेजा गया है) भावों को जानकर सन्देश कहता है, और कार्य को सफल करता है, उसे **'निसृष्टार्थ'** कहते हैं। यह सबसे उत्तम होता है। **'मितार्थ'** वह होता है; जो परिमित बात करके कार्यसिद्धि में सहायक होता है; इसे मध्यम कहते हैं। **निकृष्ट** अथवा **'सन्देशहारक'** वह कहलाता है; जो कल्पनाशक्ति के अभाव वाला होता है, अर्थात् भेजने वाले ने जितना कहा है, उतना ही कहने वाले को 'सन्देशहारक' कहते हैं। ध्यातव्य है कि 'मेघदूतम्' का दूत धूमज्योतिसलिलमरुतमात्रवृत्ति वाला अचेतन व्यक्ति होने से उपर्युक्त तीनों में से कोई भी नहीं है। यही महाकवि कालिदास की बुद्धि का प्रकाश है, जो उन्होंने उसी चेतन व्यक्ति का ग्रहण न करके यक्ष के द्वारा मेघ (बादल) को सन्देहवाहक (दूत) बनाकर अपनी नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

प्रस्तुत दूतकाव्य 'मेघदूत' में अत्यन्त कमनीय कल्पनाएँ विन्यस्त हुई हैं। प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विभिन्न पदार्थों का स्वरूप कल्पना से निखर उठा है। अलका तथा यक्षपत्नी ये दोनों कल्पना की रश्मियों से भास्वर हो उठी हैं। यहाँ प्रकृति और मानव-जीवन दोनों ही अत्यन्त समृद्ध हैं। 'अलका' तो अलौकिक है ही, साथ-साथ यक्षपत्नी (विशालाक्षी) सुन्दरता की पराकाष्ठा है। 'पूर्वमेघ' मानवलोक तथा 'उत्तरमेघ' दिव्यलोक है। दोनों का अत्यन्त सुन्दर संयोग है।

'मेघदूतम्' की कथा और योजना पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मेघ का मार्ग साधक का मार्ग है और अलका साधक का लक्ष्य-बिन्दु है। अलका चेतना-स्थली है, जो परमस्पृहणीय पदार्थों की नगरी है। उसकी प्राप्ति के लिए साधक प्रयत्न करता है। अपने प्रेमास्पद पदार्थ की प्राप्ति हेतु तड़प रहा है। इस प्रकार महाकवि ने प्रकृति और मानव के सुन्दर व्यापारों के साथ-साथ साधक और साधना की मधुमय स्थिति का प्रस्तुत ग्रन्थ में सन्निवेश किया है।

'मेघ' का गर्जन जैसे मनोहर ध्वनिवाला है, उसी तरह काव्यध्वनि भी अत्यन्त गम्भीर तथा मर्मस्पर्शी है। यक्ष कैसे अपने कर्तव्य से च्युत हुआ और उसका कनकवलय कैसे भ्रष्ट हुआ इसका अनुमान तो सहृदय व्यक्ति ही लगा सकता है। दुःसह ग्रीष्म के अवसान से मेघ का आलोक होने पर मनुष्य के हृदय में विशेषतः प्रणयी और प्रणयिनी के हृदय में कैसी भावधारा प्रवाहित होने लगती है, यह विषय सहृदय व्यक्ति के हृदय से ही संवेद्य हो सकता है। महाकवि ने पूर्वमेघ में केवल उद्दीपक पदार्थों का वर्णन किया है। उत्तरमेघ में उनका वर्ण्यविषय है—अलकापुरी, यक्ष का आवासगृह और उसकी प्राणप्रिया। इस प्रकार महाकवि ने संभोग शृंगार की पुष्टि हेतु शापप्रवासमूलक विप्रलम्भशृंगार का अत्यन्त मनोहरी प्रदर्शन किया है। कहा भी गया है—

"न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्द्धते।।"

महाकवि कालिदास यद्यपि अनेक छन्दों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं, तथाऽपि उन्होंने इसमें अत्यन्त श्रुतिमधुर **'मन्दाक्रान्ता'** छन्द का सहारा लिया है। कालान्तर में प्रायः समस्त दूतकाव्यों में इसका अनुकरण किया जाने लगा। प्रस्तुत प्रबन्ध का नायक यक्ष विरह से कातर है। शोक और दुःख के कारण उसकी क्रियाशक्ति अत्यन्त मन्द पड़ गई है। इसीलिए वह एक विरही के समान अत्यन्त करुण तथा मर्मस्पर्शी स्वर में मन्दाक्रान्ता छन्द में रुक-रुककर कान्ता के निमित्त मेघ को सन्देश सुना रहा है। यहाँ पर हृदयगत भाव के साथ छन्द का अपूर्व साहचर्य हो गया है। काव्य की ध्वनि, छन्द और रीति यक्ष के करुण-कण्ठ में मिश्रित होकर एक अपूर्व काव्यसृष्टि करते हैं।

भारतवर्ष के मानचित्र में जिन-जिन स्थानों का नाम-निर्देश देखा जाता है, महाकवि कालिदास के इस काव्यरूपी मानचित्र में उन-उन स्थानों की मनोरम झाँकी हमें मिल जाती है। कहीं पर मयूर कण्ठ को उन्नत किए हुए दिखाई पड़ता है, तो कहीं पर नदी के विमल सलिल में उद्वर्तन करती हुई शफरी दृष्टिगोचर होती है। कहीं राजपथ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवतियों की कवरी से गिरा हुआ पुष्प देखा जाता है, तो कहीं पर कोई अङ्गना कर-तालिका से मयूर को नचा रही है। इस प्रकार महाकवि ने प्रकृति के मनोरम भव्य चित्रों से अपनी इस कृति को सजाया है, परन्तु इस लोकोत्तर रचना में केवल प्रकृति का मनोरम चित्र ही नहीं है, अपितु विचारपूर्वक निरीक्षण करने वाले सहृदयों को इसमें चरित्र का अनुकरणीय आदर्श भी मिल जाता है।

3. कुमारसम्भवम्
(KUMARASAMBHAVAM)

''कुमारसम्भवे प्रीतिस्तपश्चापि प्रतिष्ठितम्।
हितं कामयमानेन लोकस्य कविना कृतम्।।''

अर्थात्–'**कुमारसम्भवम्**' में प्रीति और तपस्या की प्रतिष्ठा की गई है। संसार के हित की कामना से ही **महाकवि कालिदास** ने कुमारसम्भवम् का निर्माण किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में महाकवि कालिदास ने विशुद्ध प्रेम की प्रतिष्ठा की है। उनका आकर्षण-बिन्दु है, 'आध्यात्मिक सौन्दर्य'। भगवान् शिव आध्यात्मिक सौन्दर्य के प्रतीक हैं। उन्हें शारीरिक सौन्दर्य आकृष्ट नहीं कर सकता। हिमालयपुत्री पार्वती पहले अपने शारीरिक सौन्दर्य के द्वारा शिव को आकृष्ट करना चाहती है, परन्तु सफल नहीं होती। भगवान् शिव पार्वती के सामने ही अपने नेत्र की ज्वाला से कामदेव को भस्मसात् कर देते हैं। तब वह अपने रूप को तपश्चर्या द्वारा सफल बनाना चाहती है, क्योंकि शिव को प्राप्त करने का एक मात्र यही उपाय है। जब पार्वती का शारीरिक सौन्दर्य तपस्या की ज्वाला में संतप्त होकर और निखर आता है, अर्थात् जब आध्यात्मिक सौन्दर्य स्फुरित होता है, तब भगवान् शिव उनके दास बन जाते हैं–

''अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि! तवास्मि दासः।
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौली।।''

।। कुमारसम्भवम्।। /5/86।।

महाकवि कालिदास ने प्रेम और तपस्या रूपी साधनों के द्वारा कुमारोत्पत्ति रूपी साध्य की प्राप्ति का संकल्प किया था, परन्तु यह संकल्प-गाथा सम्भवतः अधूरी ही है, क्योंकि विद्वत्समुदाय प्रारम्भिक आठ सर्गों को ही कालिदास की रचना स्वीकार करता है। शेष 9 सर्ग किसी साधारण कवि द्वारा लिखित प्रक्षेपमात्र स्वीकार किए जाते हैं। आलंकारिकों तथा सूक्तिसंग्रहकर्ताओं ने इन्हीं प्रारम्भिक आठ सर्गों में से पद्यों को उद्धृत किया है। इन आठ सर्गों में विषय की दृष्टि से भी पूर्णतः ऐक्यभाव दिखाई देता है। विषय की विविधता, उज्ज्वल कल्पना और दीप्ततर भावों के कारण '**कुमारसम्भवम्**' आधुनिक रुचि के अधिक अनुकूल है। इस महाकाव्य में बसन्त की रमणीयता और वैवाहिक प्रेम के आमोद-प्रमोद से लेकर प्रियतम की मृत्यु से उत्पन्न होने वाले अगाध शोक तक के वर्णन की विविधता पाई जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारसम्भवम् का सारांश
(Substance of Kumarasambhavam)

पूर्वार्द्ध (First-Half)—मात्र पूर्वार्द्धभाग ही कालिदास की रचना स्वीकार किया जाता है। इसका सारांश निम्नलिखित है—

प्रथम सर्ग का प्रारम्भ शिव के निवासस्थान 'हिमालय' के उज्जवल वर्णन से होता है। महाकवि कालिदास को बहुत से प्राचीन और अर्वाचीन पाश्चात्य कवियों की भाँति पर्वतों से घृणा नहीं है, अपितु उनकी कल्पना पर्वतों को देवयोनियों का आवास बनाती है; जो उनकी कन्दराओं में क्रीड़ा करते हैं। ज्वालामुखी नामक औषधियाँ वनेचर-मिथुनों के सम्भोग-काल में बिना तेल के दीपक का काम करती है।[1] ऐसे समय में प्रियतम के द्वारा वस्त्रों के हटाए जाने से अत्यन्त लज्जित होने वाली निर्वस्त्र किन्नरस्त्रियों के लिए गुफा रूपी सम्भोग भवन के द्वार पर अपने आप लटकने वाले बादल ही पर्दे का काम करते हैं।[2] स्वर्ग से उतरती हुई गंगा के निर्झर सीकरों से आर्द्र वायु देवदारु के तनों को झकझोरती हुई, मृगों का अन्वेषण करने वाले किरातों के स्वल्प आच्छादनरूप मोर पंखों को विश्लिष्ट कर देती है।[3] इस प्रकार विविध विलासों से सम्पन्न पर्वतराज हिमालय अपने ही अनुरूप महारानी मैना के साथ वैवाहिक सुखों को भोगते हुए समय के सापेक्ष क्रमशः मैनाक नामक पुत्र तथा पार्वती नामक पुत्री को प्राप्त किया। वह पार्वती शुक्लपक्ष की चन्द्रकला की भाँति दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी तथा ज्योत्स्नामयी कलाओं की भाँति बढ़े हुए रूपलावण्य वाली उस पार्वती से सहज में ही पूर्वजन्म की समस्त विद्याएँ समविष्ट हो गई, जैसे शरत्काल में गंगा में स्वयमेव हंस-पंक्तियाँ तथा रात्रि में महौषधियों में प्रकाश आ जाता है।[4] इस प्रकार सर्वगुणसम्पन्न पार्वती के शरीर में धीरे-धीरे नवयौवन के प्रवेश करने से उसका लावण्यमय शरीर तूलिका (कूँची) से उकेरे गए चित्र तथा सूर्यकिरणों से विकसित कमल के समान पूर्णतः निखर उठा[5], मानों सम्पूर्ण विश्व के सृष्टा ब्रह्माजी ने संसार के सम्पूर्ण सौन्दर्य को एक ही स्थान पर एक साथ देखने की इच्छा से खोज-खोज कर चन्द्र, कमल, तिल, कुसुम आदि सुप्रसिद्ध सुन्दर उपमानों का मुख, नयन, नासिका आदि अवयवों में यथायोग्य प्रयोग करके पार्वती की रचना की हो—

> ''सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
> सा निर्मित विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।।''

कुमारसम्भवम्/। 1/49।।

दूसरी ओर भोग-विलासमय वातावरण के सर्वथा विपरीत, भगवान् शिव अत्यन्त गम्भीर समाधि में बैठे हुए किसी अनिर्वचनीय कामना से तपश्चर्या में संलग्न हैं। इसी

---

1. कुमारसम्भवम्।। 1/10।।
2. कुमारसम्भवम्।। 1/14।।
3. कुमारसम्भवम्।। 1/15।।
4. कुमारसम्भवम्।। 1/30।।
5. कुमारसम्भवम्।। 1/32।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच पर्वतराज हिमालय, अपने शिखर पर रहने वाले देवाधिदेव महादेवजी की अर्घ्यादि द्वारा देवाधिदेव महादेव की यथायोग्य पूजा करके जया और विजया नामक दो सखियों के साथ, देवर्षि नारद की भविष्यवाणी के अनुसार शिव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए, नियमादि से पवित्र पार्वती को अनुमति दे देते हैं। हिमालय-पुत्री पार्वती, यद्यपि शिव की तपस्या में विघ्नरूप थी, फिर भी सेवा में लगी हुई अनिन्द्य सुन्दरी पार्वती को भगवान् शिव ने वहाँ रहने की स्वीकृति दे दी और वह सुकुमारी पार्वती, पूजन के निमित्त पुष्पों का चयन करती हुई, वेदिका को साफ रखती हुई, नित्यकर्म हेतु, जल तथा कुशों का आहरण करती हुई; शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की अमृतमयी किरणों से अपनी थकान को मिटाती हुई नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक शिव की सेवाशुश्रूषा करने लगी।[1]

द्वितीय सर्ग में देवता लोग महान् संकट में फँसे हुए दिखाई देते हैं, क्योंकि तारकासुर की बढ़ी हुई शक्ति तथा उसके अत्याचारों ने देवताओं की स्वतन्त्रता छीन कर उन्हें श्रीहीन कर दिया है। इन्द्रधनुष के समान रंग-बिरंगी कांतिमयी किरणों को समेटे हुए, वृत्रासुर को भी मार डालने वाला इन्द्र का वज्र कुण्ठित हो गया है। वरुण के हाथ में सुशोभित होने वाला दुर्जेय पाश, मन्त्रबल से पराभूत सर्प के समान अत्यन्त दीन दिखाई दे रहा है।[2] यमराज भी अपने तेजहीन दण्ड से भूमि कुरेद रहे हैं, जो अमोघ होते हुए भी बुझी हुई उल्का के समान तुच्छ एवं व्यर्थ हो गया है।[3] चन्द्रमा अपनी समस्त कलाओं के साथ तारकासुर की सेवा में लगा रहता है, केवल भगवान् शिव के मस्तक की चूड़ामणिभूत एक कला ही अवशिष्ट है।[4] स्वयं देवराज इन्द्र भी कल्पवृक्ष के पुष्परूपी आभूषणों को दूतों द्वारा बार-बार तारकासुर की सेवा में भेजकर, उसे अपने अनुकूल बनाए रखने का प्रयत्न करता है।[5] बलपूर्वक पकड़कर बन्दिनी बनाई गई देवांगनाएँ, आँसुओं की वर्षा करती हुई उस सोते हुए तारकासुर पर चँवर डुलाया करती हैं।[6] इतना ही नहीं देवताओं के सबसे बड़े सहायक विष्णु का सुदर्शनचक्र भी, जब उसके गले से टकराता है, तो उससे निकलने वाली चिनगारियाँ, ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो उसके गले में माला पहना दी गई हो–

> ''जयाशा यत्र चास्मांक, प्रतिघातोत्थिताऽर्चिषा।
> हरिचक्रेण तेनास्य, कण्ठे निष्कमिवार्पितम्।।''
>
> ।। कुमारसम्भवम्/2/49।।

इस प्रकार अत्यन्त दैन्यभाव को प्राप्त श्रीहीन देवगण अपने वैभव की पुनर्प्राप्ति हेतु ब्रह्मा जी की स्तुति करते हैं। स्वयं ब्रह्माजी भी तारकासुर के वध में अपने को असमर्थ बतलाते हुए कहते हैं कि उस दैत्य ने मेरे द्वारा ही ऐश्वर्य की प्राप्ति की है; अतः मेरे द्वारा ही उसका विनाश होना न्यायसंगत नहीं है; क्योंकि अपने हाथ से लगाए गए विषवृक्ष को भी अपने ही हाथों से काटना ठीक नहीं होता है–

1. कुमारसम्भवम्।। 1/59-60।।
2. कुमारसम्भवम्।। 2/20-21।।
3. कुमारसम्भवम्।। 2/23।।
4. कुमारसम्भवम्।। 2/34।।
5. कुमारसम्भवम्।। 2/39।।
6. कुमारसम्भवम्।। 2/42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्।।"

।। कुमारसम्भवम्/2/55।।

अपनी तपस्या के समय तारकासुर ने देवताओं से अवध्य होने का ही वरदान मुझसे माँगा और मैंने उसे दे भी दिया; क्योंकि उस समय उसके तप की ज्वाला को शान्त करने के लिए दूसरा कोई रास्ता था ही नहीं। अब तो उसका सामना नीललोहित भगवान् शंकरजी के वीर्य से उत्पन्न उनके अंश को छोड़कर अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता। अतः तुम लोग शिव के चित्त को पार्वती की ओर आकृष्ट करने के लिए हरसम्भव प्रयास करो; क्योंकि जिस प्रकार मेरे निषिक्त (क्षरित) वीर्य को शिव की जलमयी मूर्ति के अतिरिक्त अन्य कोई भी धारण नहीं कर सकता; उसी प्रकार भगवान् शिव के निषिक्त वीर्य को पार्वती के अतिरिक्त अन्य कोई भी धारण करने में समर्थ नहीं हो सकता। इस प्रकार शिव-पार्वती से उत्पन्न पुत्र आप देवताओं का सेनापति बनकर अपने आकृष्ट पराक्रम से तारकासुर के द्वारा हरण की गई देवांगनाओं के उलझे हुए बालों को सुलझाते हुए तारकासुर का वध करेगा। जगत्पिता ब्रह्मा के मुख से ऐसा सुनकर देवराज देवताओं के साथ स्वर्ग को प्रस्थान करते हैं और शिव-पार्वती-समागम के हरसम्भव प्रयासों में तल्लीन हो जाते हैं।

तृतीय सर्ग में देवराज इन्द्र की हजारों आँखें वहाँ पर उपस्थित समस्त देवताओं को छोड़कर पुष्पधन्वा कामदेव के ऊपर जा पड़ती हैं, क्योंकि इन्द्र की दृष्टि में शिव की समाधि को भंग करने में कामदेव ही समर्थ हो सकता है। अतः इन्द्र ने कामदेव को अपने बगल में यथोचित आसन पर बैठाते हुए कहा, "मित्र कामदेव! मेरे तो दो ही हथियार हैं, एक मेरा वज्र और दूसरे तुम। इनमें से हमारा वज्र तो तपोबल से प्रबल लोगों के सम्मुख व्यर्थ सिद्ध होता है, किन्तु तुम्हारी गति निर्बाध होने से तुम्हारे लिए सबकुछ साध्य है। मैं तुम्हारी क्षमता को भली-भाँति जानता हूँ; इसलिए तुम्हें अपने ही समान समझकर एक बहुत बड़ा कार्य सौंप रहा हूँ। इन श्रीहीन देवगणों की ओर देखो, जो तारकासुर को पराजित करने के लिए शिव के वीर्य से उत्पन्न पुत्र को अपना सेनापति बनाना चाहते हैं, किन्तु इस समय भगवान् शिव, ब्रह्मचिन्तन में समाधिस्थ हैं। अतः तुम अपने बाण-प्रयोग द्वारा, विषय-वासनाओं से पराङ्मुख शिव के मन में पार्वती की चाह उत्पन्न करने का प्रयत्न करो, सम्पूर्ण विश्व में एकमात्र पार्वती ही शिव के वीर्य को धारण करने में सर्वथा समर्थ हैं; जो इस समय अपने पिता पर्वतराज हिमालय की आज्ञा से समाधिस्थ शिव की उपासना कर रही हैं, अर्थात् पार्वती तुम्हारे कार्य की सिद्धि में स्वयं सहायक बनी हुई हैं। अतः तुम्हारे बाण शिव के मन में बहुत आसानी से विकार उत्पन्न करने में समर्थ हो सकते हैं।[1] इसके अतिरिक्त बसन्त तुम्हारा साथ देने के लिए स्वतः तैयार है। अतः देवताओं की कार्यसिद्धि के लिए तुम प्रस्थान करो।"

1. कुमारसम्भवम् ।। 3/12-17।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामदेव ने इन्द्र के समक्ष अपनी शक्ति का परिचय देते हुए कहा, "देवेन्द्र! यदि आपकी कृपा बनी रही, तो केवल अपने मित्र बसन्त की सहायता से मैं अपने इस अत्यन्त कोमल पुष्पबाणों द्वारा ही पिनाक जैसे कठोर धनुष को धारण करने वाले शिव का धैर्य नष्ट कर दूँगा।"[1]

कामदेव ने देवराज इन्द्र की आज्ञा को प्रसाद रूप में दी गई माला के समान सिर झुकाकर स्वीकार किया और प्रिय मित्र बसन्त तथा प्राणप्रिया रति के साथ अत्यन्त शंकित हृदय से हिमालय के शिखर पर स्थित भगवान् शिव के आश्रम की ओर चल पड़ा। उसने यह निश्चय कर लिया कि प्राण भले ही चले जाएँ, किन्तु कार्यसिद्धि अवश्य होनी चाहिए। फिर क्या कहना; जब पुष्प का धनुष चढ़ाए हुए अपनी पत्नी रति के साथ कामदेव ने शिव के आश्रम में प्रवेश किया, तो सभी चराचर प्राणियों के जोड़े प्रेमरस में सने हुए अपने-अपने रतिभावों को, चुम्बनालिंगनरूपी क्रियाओं द्वारा प्रकट करने लगे। कुछ ही क्षणों के पश्चात् देवदारु वृक्ष के नीचे बनी हुई वेदी पर व्याघ्रचर्म का आसन लगाए समाधिस्थ त्रिनेत्रधारी भगवान् दिखाई दिए। उनकी जटाएँ सर्पों से बँधी थीं। नेत्रों की चमकती हुई पुतलियों को स्थिर करके निर्निमेषभाव से नीचे की ओर तेज फैलाने वाली तीनों आँखों से वे नासिका के अग्रभाग को एकटक देख रहे थे। इस प्रकार मन से भी अगम्य त्रिनेत्र भगवान् शिव को अत्यन्त समीप से देखकर कामदेव इतना आतंकित हो उठा कि उसके काँपते हुए हाथ से धनुष-बाण छूटकर गिर गया। पार्वती के भी शिवपूजन का समय हो गया और वह भी आश्रम में प्रविष्ट् हुईं। इधर भगवान् शिव ने भी अपने अन्तःकरण में परमज्योति का अलौकिक साक्षात्कार करके अपनी समाधि को सामप्त किया। पार्वती ने भी अपना मस्तक झुकाकर शिवजी को प्रणाम करते हुए कमलों के बीजों की माला को शिवजी को भेंट किया। भक्तवत्सल होने के कारण पार्वती की दी हुई उस माला को लेने के लिए शिवजी ने जैसे ही अपना हाथ बढ़ाया; वैसे ही अवसर की प्रतीक्षा में बैठे कामदेव ने अपने पुष्प-धनुष पर सम्मोहन बाण चढ़ाकर संधान के लिए तैयार हो गया; जिससे शिवजी भी अधीर हो उठे। पार्वती का सम्पूर्ण शरीर प्रफुल्लित हो उठा, ऐसी परिस्थिति में जितेन्द्रिय शिव ने किसी तरह बलपूर्वक अपनी इन्द्रियों की चंचलता का दमन किया तथा तपस्या में विघ्न पड़ने के कारण अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे; उनके तीसरे नेत्र से एकाएक चिनगारियाँ बिखेरती हुई आग की लपटें निकल पड़ीं। आकाश में देवता लोग चीख उठे, लेकिन तब तक कामदेव सम्पूर्ण रूप से जलकर भस्म हो चुका था। इस असह्य विपत्ति को सहन न कर सकने से रति मूर्च्छित हो गई तथा भगवान् शिव भी अपने गणों समेत वहाँ अन्तर्ध्यान हो गए। पार्वती भी अत्यन्त सहमी हुई तथा लज्जित हुई-सी हिमालय-भवन की ओर चल पड़ीं।

चतुर्थ सर्ग का प्रारम्भ काम-पत्नी 'रति' के करुण-क्रन्दन से होता है। बेसुध पड़ी हुई रति की मूर्च्छा जब समाप्त होती है, तो उसे पुरुष के आकार में कामदेव के शरीर

1. कुमारसम्भवम् ।। 3/10।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भस्मावशेष दिखाई पड़ा; जिसे देखकर अस्त-व्यस्त बालों तथा वस्त्रों वाली रति पृथ्वी पर लोटती तथा छटपटाती हुई करुणाक्रन्दन करने लगी; जिसे सुनकर सम्पूर्ण वनस्थली करुणा के सागर में डूब गई। रति का यह कारुणिक मर्मभेदी विलाप, काम-मित्र 'बसन्त' से नहीं सहा गया। वह रति को सान्त्वना देने के लिए उसके सामने प्रकट हुआ; परन्तु बसन्त को देखते ही रति और भी जोर से छाती पीट-पीट कर रोने लगी। बसन्त को लक्ष्य करके वह बोली, ''यदि उस समय मेरी मृत्यु न हो सकी तो बाद में ही सही। तुम मेरे लिए अग्नि प्रज्ज्वलित करके मुझे मेरे पति के पास पहुँचा दो। जैसे चाँदनी, चन्द्रमा के साथ अस्त हो जाती है; बिजली, बादलों के बीच विलीन हो जाती है; उसी प्रकार मैं भी अपने पति के भस्मावशेष में अपने को विलीन कर दूँगी।''[1]

जिस प्रकार अकस्मात् होने वाली प्रथम वर्षा की पहली बूँद सूखे हुए तालाब की अधमरी मछली में प्राण का संचार कर देती है; उसी प्रकार शरीर त्यागने के लिए तैयार अधमरी 'रति' को अचानक होने वाली आकाशवाणी ने शान्ति प्रदान करते हुए कहा, ''हे कामप्रिये! तुम्हारा पति तुम्हें शीर्घ ही प्राप्त हो जाएगा। उसके भस्म होने का कारण यह है कि एक बार उस कामदेव ने ब्रह्मा की इन्द्रियों को इतना विचलित कर दिया था कि उनके मन में अपनी पुत्री (सरस्वती) के ही प्रति कामभावना पैदा हो गई थी; उसी समय ब्रह्मा ने कामदेव को शाप दिया था; जिसका परिणाम, उसका यह भस्मीभूत शरीर है, परन्तु सृष्टिरक्षा को ध्यान में रखते हुए, ब्रह्माजीं ने शाप की अवधि को कम करते हुए कहा कि जब पार्वतीजी की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवंजी पार्वती से विवाह कर लेंगे, तो आनन्दित होकर कामदेव को जीवनदान दे देंगे। इसलिए हे सुन्दरी! तुम अपने इस शरीर से भविष्य में होने वाले प्रियतम के समागम को प्राप्त करोगी।'' इस प्रकार किसी अदृश्य तत्त्व ने आकर रति के शरीरत्याग के संकल्प को शिथिल कर दिया। उसी की सहायता लेकर काममित्र 'बसन्त' ने भी अपनी अर्थपूर्ण वाणी से रति को आश्वासन दिया। तत्पश्चात् पतिवियोग से खिन्न तथा क्षीण शरीर वाली रति, शापनिकली की अवधि समाप्त होने की उसी प्रकार प्रतीक्षा करने लगी, जिस प्रकार दिन में हुई तथा किरणों के अभाव से धुँधली और तेजहीन चन्द्रमा की कला रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा करती है।[2]

पञ्चम सर्ग के प्रारम्भ में अपने प्रथम प्रयास में असफल होने के कारण पार्वती बहुत लज्जित दिखाई देती हैं। वह अपने रूप-सौन्दर्य को धिक्कारने लगती है कि उस सौन्दर्य से क्या लाभ, जिससे अपने प्रियतम को मुग्ध न किया जा सके। अब उसने समाधि लगाकर तपश्चर्या की ज्वाला में अपने शारीरिक रूप की आहुति देकर आध्यात्मिक रूप के द्वारा भगवान् शिव को मुग्ध करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसके इस संकल्प की सूचना जब उसकी माँ मैना को मिली, तो वह व्याकुल हो गई। पार्वती को हर तरह से समझाया, परन्तु सफल न हो सकी। अन्त में पर्वतराज हिमालय की

---

1. कुमारसम्भवम् ।। 4/32-33 ।।
2. कुमारसम्भवम् ।। 4/39-46 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमति लेकर पार्वती तपश्चर्या करने के निमित्त हिमालय के उस शिखर पर चली गईं, जो आज भी 'गौरी-शिखर' के नाम से जाना जाता है।

समस्त राजकीय वस्त्राभूषणों का परित्याग कर देने वाली पार्वती, स्नान करने के पश्चात् अग्नि में हवन करती थीं, तथा नूतन वल्कलवस्त्र धारण करके स्तुतियों आदि का अध्ययन करने बैठ जाती थीं। अपने शरीर की कोमलता का ध्यान किए बिना ग्रीष्मकाल में चारों ओर धधकती हुई अग्नि के बीच में बैठकर आँखों में चकाचौंध पैदा करने वाली सूर्य की किरणों पर विजय प्राप्त करके निर्निमेष नेत्रों से सूर्य की ओर देखती रहती थीं। बिना माँगे मिला हुआ केवल वर्षा का जल तथा चन्द्रमा की अमृतमयी किरणें; यही दो वस्तुएँ व्रत के उपरान्त उनकी पारणा थीं। तीव्र आँधी के साथ होने वाली घनघोर वर्षा में भी खुले आकाश के नीचे रहने वाली तथा एक शिला पर लेटी हुई पार्वती की कठोर तपस्या के साक्ष्य के रूप में रातें अपनी चमकती हुई बिजली रूपी आँखों से उन्हें देखा करती थीं। पेड़ पर से अपने आप गिरे हुए पत्तों को खाकर जीवन-निर्वाह करना तपस्या की पराकाष्ठा कही गई है, परन्तु पार्वती ने उन्हें भी खाना छोड़ दिया, जिससे उनका 'अपर्णा' नाम पड़ा।

पार्वती की इस कठोर तपश्चर्या से आह्लादित-हृदय वाले भगवान् शिव उसकी तपश्चर्या तथा उनके विचारों की परीक्षा लेने के लिए एक वृद्ध तपस्वी के वेष में उसके सामने उपस्थित होते हैं। यथोचित आतिथ्य स्वीकार करने के बाद पार्वती से उसकी तपश्चर्या का कारण जानकर बहुत ही कठोर शब्दों में शिवनिन्दा करते हुए, पार्वती के हृदय को झकझोरने लगते हैं तथा स्पष्ट शब्दों में शिव से अपना चित्त हटाकर व्रतभंग करने का आदेश देते हैं। वृद्ध तपस्वी द्वारा कहे गए शिवनिन्दक वचनों को सुनकर पार्वती के होंठ क्रोध से फड़फड़ाने लगे, उसकी भौंहें टेढ़ी तथा आँखें लाल हो गईं। वह बोलीं, वास्तव में तुम्हारे जैसा मूर्ख शिव के विषय में जान ही नहीं सकता। वे स्वयं दरिद्र होते हुए भी समस्त सम्पत्तियों के जन्मदाता हैं। श्मशानभूमि में निवासं करते हुए भी तीनों लोकों के स्वामी हैं। भयंकर रूप होने पर भी शिव (कल्याण) शब्द से पुकारे जाते हैं। ताण्डवनृत्य के समय उनके शरीर से झड़कर गिरी हुई चिताभस्म को देवतालोग भी अपने शिर पर धारण करते हैं। क्रोधावेश में इस प्रकार बोलती हुई उस शिवनिन्दक वातावरण से दूर हो जाने के लिए इतने झटके से घूमीं कि उनके स्तनों पर से वल्कल आँचल हट गया, उसी समय तापसवेषधारी भगवान् शिव ने अपने वास्तविक रूप को धारण करके मुस्कराते हुए पार्वती को पकड़ लिया। भगवान् शिव को देख करके पार्वती काँपने लगीं। पसीने से सराबोर हो गईं; तब भगवान् शिव ने कहा, "हे सुन्दरि! आज मैं तपस्या द्वारा तुम्हारा खरीदा गया दास हो गया हूँ।" भगवान् शिव के मुख से ऐसा सुनकर पुलकित पार्वती अपने तपस्याजन्य समस्त कष्टों को तत्काल ही भूल गईं।

षष्ठम सर्ग का प्रारम्भ एक सखी के माध्यम से पार्वती के द्वारा शिव को भेजे गए उस सन्देश से होता है, जिसमें पार्वती कहती है, "हे सखि! विश्वात्मा शिवजी से कह दो कि मेरे पिता पर्वतराज हिमालय ही मुझे आपको दे सकते हैं। अतः मेरे विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मेरे पिताजी से ही अनुरोध करना होगा।'' पार्वती का सन्देश सुनकर कामहन्ता भगवान् शिव ने, ''अच्छा ऐसा ही करूँगा'', ऐसी प्रतिज्ञा करके किसी प्रकार पार्वती को वहाँ से विदा करने के पश्चात् परम तेजस्वी सप्त ऋषियों का ध्यान किया और वे सप्तर्षि अपने कान्तिमण्डल से आकाश को प्रकाशित करते हुए अरुन्धती के साथ तत्काल ही शिवजी के सामने उपस्थित हो गए। भगवान् शिव ने सप्तर्षियों से कहा, ''आप लोग तो यह जानते ही हैं कि मेरी कोई भी प्रवृत्ति स्वार्थ से प्रेरित नहीं होती है। जिस प्रकार प्यास से व्याकुल चातक स्वातिनक्षत्रगत बादलों से जल की याचना करते हैं, उसी प्रकार शत्रुओं से व्याकुल देवताओं ने पार्वतीसमागमजन्य मुझसे सन्तान की याचना की है। अतः देवताओं के कार्य को ध्यान में रखते हुए मैं भी सन्तानप्राप्ति के लिए पार्वती को अपने घर में लाने की इच्छा कर रहा हूँ। इसलिए आप लोग मेरी ओर से जाकर हिमालयराज से पार्वती की याचना कीजिए।'' भगवान् शिव की ऐसी वाणी सुनकर सप्तर्षियों ने ''बहुत अच्छा'' ऐसा कहकर हिमालय-भवन औषधिप्रस्थ की ओर प्रस्थान किया।

मुक्तकण्ठ से स्तुतिगान करते हुए पर्वतराज हिमालय के द्वारा समुचित आतिथ्य प्राप्त करने के पश्चात् सप्तर्षियों में वाक्पटु अंगिरा ने हिमालयराज से कहा, ''अच्छा, अब हम लोग जिस काम से आए हैं, उसे ध्यान से सुनो और सच पूछो तो वह तुम्हारा ही काम है। वह काम यह है कि समस्त संसार के भले-बुरे सभी कर्मों के साक्षात् द्रष्टा भगवान् शिवजी ने हम लोगों के मुख से सन्देश भेजकर स्वयं अपने लिए तुम्हारी पुत्री पार्वती की याचना की है। इसलिए जिस प्रकार वाणी का सम्बन्ध अर्थ से हुआ है, उसी प्रकार तुम भी अपनी कन्या का सम्बन्ध शिवजी से कर दो।''

जिस समय अंगिरा ऋषि शिव-पार्वती विषयक बातें कर रहे थे, उस समय नम्रमुखी पार्वती अपने पिता के पास बैठकर लज्जावश नीले-कमल-पंत्रों को गिन रही थीं। यद्यपि हिमालय ने पार्वती को शंकरजी के लिए देने का निश्चय बहुत पहले ही कर लिया था, फिर भी ऋषि अंगिरा की बातें सुनकर उन्होंने अपनी पत्नी मैना की ओर देखा; मैना ने भी पति की इच्छा के अनुकूल ही शिव-पार्वती-विवाह की स्वीकृति दे दी। हिमालयराज द्वारा विवाह की तिथि पूछने पर सप्तर्षियों ने ''चौथे दिन उचित होगी'' ऐसा कहकर, हिमालयराज से विदा लेकर भगवान् शिव के पास चल दिया और हिमालयराज-मैना की स्वीकृति का समाचार शिवजी को सुनाकर शिवजी से आज्ञा लेकर अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया। इधर देवाधिदेव महादेव जी ने पार्वती से मिलने की उत्सुकता में उन तीन दिनों के समय को किसी तरह बड़ी कठिनाई से व्यतीत किया।

सप्तम सर्ग में तीन दिन के बाद पर्वतराज हिमालय ने चन्द्रमा के शुक्लपक्ष में आने पर लग्न के सातवें स्थान की शुद्धि से युक्त मांगलिक तिथि को अपने बान्धवों को एकत्रित करके पुत्री पार्वती के विवाहसंस्कार की विधि आरम्भ कर दी। पूरे ओषधिप्रस्थ नगर में हर्षोल्लास का वातावरण छा गया। नगर का कोना-कोना, गली-गली सभी विविध अलंकरणों से अलंकृत कर दिए गए। पार्वती की सखियों ने पार्वती के अंग-प्रत्यंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को विविध वस्त्राभूषणों से सजा-सँवार कर ऐसा बना दिया; मानों फूलों से भरी-पूरी लता या, तारों से जगमगाती हुई रात्रि सुशोभित हो रही हो। स्वयं पार्वती भी अपने इस अनुपम स्वरूप को देखकर शिवजी से मिलने के लिए विह्वल हो उठीं।

जिस समय पार्वती का वैवाहिक प्रसाधन किया जा रहा था, उसी समय कैलाश पर्वत पर ब्राह्मी आदि सप्तमातृकाओं ने शृंगार की उन समस्त सामग्रियों को भगवान् शंकर के सम्मुख उपस्थित कर दिया, जिनका उपयोग उन्होंने प्रथमविवाह के अवसर पर किया था। भगवान् शंकर के द्वारा उन सामग्रियों का स्पर्शमात्र करते ही उनकी इच्छानुसार प्रत्येक अंग यथोचित अलंकरणों से अलंकृत हो गया, तब चिताभस्म तथा विविध सर्पों से विभूषित शिवजी बैल पर सवार होकर सप्तमातृकाओं द्वारा अनुगम्यमान, विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्रादिक समस्त देवताओं के साथ हिमालयभवन, औषधिप्रस्थ को प्रस्थान किए। पर्वतराज हिमालय ने अपने बन्धु-बान्धवों समेत नगर के मुख्यद्वार पर पहुँचकर अगवानी किया। नगर के सभी बाल, वृद्ध, नर, नारी, शिव के अनुपम सौन्दर्य को देखने के लिए अपने समस्त क्रिया-कलापों को छोड़कर टूट पड़े।

शुभ-मुहूर्त में वैवाहिक-विधि के अनुसार पुरोहित ने विवाह का कार्य प्रारम्भ किया। हिमालय के पुरोहित ने लाल-लाल उँगलियों वाली पार्वती के हाथ को आगे बढ़ाया, जिसे शिवजी ने ग्रहण किया। हाथों के इस समागम (पाणिग्रहण) से पार्वती को रोमांच हो गया और शिवजी की उँगलियाँ पसीने से सराबोर हो गईं। इसके बाद शिव और पार्वती ने परस्पर स्पर्शसुख से आँखें मूँदे हुए अग्नि की तीन प्रदशिक्षणाएँ पूरी कीं; तब पुरोहित ने वधू पार्वती के हाथों से उस जलती हुई अग्नि में धान की खीलों से आहुति डलवाई। तदनन्तर शिव-पार्वती ने आकाश में ध्रुव का दर्शन किया। इस प्रकार शास्त्रज्ञ पुरोहित द्वारा विवाहसंस्कार सम्पूर्ण करा देने पर समस्त संसार के माता-पिता, पार्वती और शिव ने कमलासन पर विराजमान ब्रह्मा जी को प्रणाम किया।

इसके पश्चात् शिव-पार्वती ने कुछ देर तक अप्सराओं द्वारा अभिनीत शृंगारादि रसों तथा सुन्दर हाव-भाव से युक्त नाटक का रसास्वादन किया। नाटक की समाप्ति पर इन्द्रादिक देवताओं ने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर भगवान् शिव को प्रणाम करते हुए कामदेव को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की। पार्वतीसमागमजन्य आह्लाद से आह्लादित भगवान् शिव ने देवताओं की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कामदेव को जीवनदान देकर अपने ऊपर बाण चलाने की अनुमति भी दे दी। इसके बाद चन्द्रशेखर शिव ने इन्द्रादिक देवताओं से विदा लेकर पार्वती के हाथ को पकड़े हुए पुष्पसुसज्जित शैयावाले शयनगृह में प्रवेश किया।

अष्टम सर्ग 'कामशास्त्र' के सिद्धान्तों के अनुसार नव-दम्पती शिव-पार्वती के आमोद-प्रमोदमय सम्भोगशृंगार से लबालब भरा हुआ है। विवाह की प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद सुहागरात के समय, यद्यपि पार्वती जी के मन में रतिभावना जागृत हो चुकी थी, किन्तु कामकला से अनभिज्ञ होने के कारण वह कुछ झिझक भी रही थीं। उनकी इस उत्कण्ठा एवं हिचक से युक्त कामभावना को व्यक्त करने वाले उनके शरीर-सौन्दर्य ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकरजी के लिए और भी मनमोहक दृश्य उपस्थापित कर दिया। यद्यपि सखियाँ पार्वतीजी को सिखाया करती थीं कि तुम इन-इन विधियों द्वारा बिना किसी हिचक के कामक्रीड़ा में शंकरजी की सेवा करना, किन्तु शिवजी के सामने आते ही, वह इतना घबरा उठती थीं कि सखियों के उपदेश याद ही नहीं पड़ते थे, लेकिन पार्वतीजी के नाममात्र के हल्के दिखावटी विरोध के बाद होता वही था, कामदेव को भी कृतकृत्य कर देने वाले शिवजी ने पार्वती के साथ हिमालय भवन में पूरे एक महीने का समय व्यतीत कर दिया; तब वहाँ से जाने की इच्छा प्रकट करते हुए कन्या की विदाई के दुःख से दुःखी हिमालय की आज्ञा पाकर, निर्बाधगति वाले नन्दी पर सवार होकर पार्वती के साथ शिवजी इधर-उधर, घूमते-फिरते हुए, काम-पिपासा को शान्त करते हुए मेरुगिरि पर जा पहुँचे। वहाँ से मन्दराचल तथा मन्दराचल से कुबेर की राजधानी कैलाश-पर्वत पर जा पहुँचे। कैलाश से मलयाचल तथा मलयाचल से चलकर नन्दनवन आ पहुँचे। नन्दनवन से गन्धमादनवन में पहुँचकर प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेते हुए; पार्वती के साथ मनमानी करने की इच्छा से पार्वती को मदिरा पिलाकर मनचाहे सम्भोगसुख का आनन्द लेते हुए, वह रात्रि वहीं पर व्यतीत कर दिया।

इस प्रकार भगवान् शिव ने पार्वतीजी के साथ दिन-रात कामक्रीड़ा करते हुए सैंकड़ों ऋतुओं को एक रात्रि की भाँति बिता दिया, किन्तु उनकी काम-पिपासा उसी प्रकार पूरी नहीं हुई, जैसे निरन्तर समुद्र के जल में रहने पर भी वडवाग्नि की प्यास नहीं बुझती।

विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि महाकवि कालिदास ने **'कुमारसम्भवम्'** की रचना यहीं तक की है, यद्यपि उनका लक्ष्य कुमार कैर्तिकेय की उत्पत्ति तक का वर्णन करना था। किन्हीं कारणों से यह रचना अधूरी ही रह गई।

उत्तरार्द्ध (Latter Half)–'कुमारसम्भवम्' का उत्तरार्द्ध-भाग (नवें सर्ग से सत्रहवें सर्गपर्यन्त) प्रक्षिप्त माना जाता है। इस प्रक्षिप्त भाग की रचना किसने की? कब की? यह आज तक पूर्णरूप से अज्ञात है। इसका सारांश निम्नलिखित है–

नवम सर्ग के प्रारम्भ में कामक्रीड़ा में संलग्न शिव-पार्वती के शयनकक्ष में देवदूत अग्नि ने कबूतर (पक्षी) के रूप में प्रवेश किया। सर्वान्तिर्यामी शिव ने अत्यन्त शीघ्र ही कपटवेशधारी अग्नि को पहचान लिया और क्रोध से तमतमा उठे। उनके इस भयानक रूप को देखते ही कपटवेश छोड़ कर अग्निदेव प्रकट हुए और हाथ जोड़कर सिर झुकाकर बोले, ''प्रभो! दुष्ट राक्षसों के त्रास से संत्रस्त देवता लोग, आपके दर्शन के लिए लालायित हैं। आज सैंकड़ों वर्षों से देवी पार्वती के साथ कामक्रीड़ा में संलग्न, अज्ञातवासी आपका पता लगाने के लिए इन्द्रादिक देवताओं ने मुझे भेजा है। मैंने यह जानकर कि इस समय आप सम्भोग क्रिया में ही लगे होंगे, पक्षी के रूप में यहाँ आने की धृष्टता की है। अतः मेरा अपराध क्षमा करते हुए शीघ्र ही एक ऐसा पुत्र उत्पन्न कीजिए; जो इन्द्र के सेनापति बनकर देवताओं की विपत्ति दूर कर सके।''

अग्निदेव की यथार्थ प्रार्थना को सुनकर शिवजी प्रस्तुत हो गए तथा कामक्रीड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंग होने के कारण, प्रलयकारी अग्नि के समान असह्य तथा उत्पादन में अचूक सम्भोग स्खलित वीर्य, अग्नि को समर्पित कर दिया। अग्निंदेव का शरीर परम तेजस्वी होने के बाद भी शिव के महातेजस्वी रूप को धारण करते ही तेजहीन होकर (झुलसकर) धुँधला हो गया। इधर देवीं पार्वती भी सम्भोगकाल में अग्नि के द्वारा निर्वस्त्र रूप में देख ली जाने से तथा सम्भोग सुख में उसके उपस्थित होने से, अग्नि को शाप देती हुई बोलीं, "अग्नि तुम पवित्र और अपवित्र सभी वस्तुओं का भक्षण करने उन्हें जलाने का भीषण कार्य करने वाले तथा कुष्ठाभिभूत हो जाओगे और सर्वदा धुएँ से आच्छादित रहोगे।

उचित समय की प्रतीक्षा कर रहे देवराज इन्द्र भी अब देवताओं के साथ भगवान् शिव के समक्ष उपस्थित पार्वती के साथ भगवान् शिव ने देवताओं को दर्शन देकर उनका समुचित सत्कार करके उन्हें विदा किया तथा साथ ही पार्वती के साथ वृषभारूढ़ होकर कैलास की ओर किया। शीघ्र ही कैलास पर पहुँचकर नन्दी तथा गले में पहले कालिका के नृत्य का आनन्द लेते हुए, पार्वती ने अनेक भाव-भंगिमाओं से भरी कामक्रीड़ाओं से प्रफुल्लित किए जाते हुए भगवान् शिव अपने कैलासवासी गणों के साथ कैलास-पर्वत की शोभा बढ़ाने लगे।

दशम सर्ग में अग्निदेव भगवान् शिव के परमतेजस्वी वीर्य को लिए हुए देवराज इन्द्र के समक्ष उपस्थित होते हैं। उनके अत्यन्त भद्दे, बेढंगे तथा काले स्वरूप को देखकर इन्द्र समेत सभी देवता बहुत दुःखी होते हैं तथा वीर्य के तेज से सन्तप्त अग्नि की व्याकुलता का कारण पूछते हैं। अग्निदेव भी कबूतर के रूप में शिव के शयनकक्ष में प्रविष्ट होने से लेकर शाप प्राप्ति तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना देते हैं तथा कहते हैं, "हे देवेन्द्र! भगवान् शिव के वीर्य के असह्य तेज से मैं जला जा रहा हूँ। अब मुझमें अपने शरीर को भी धारण करने की शक्ति नहीं रह गई है। अतः मुझे इस महाभयानक तेज में भस्म होने से बचा लीजिए।"

अग्निदेव की अत्यन्त करुणाभरी बात सुनकर देवराज इन्द्र ने अग्नि के अंगों पर हाथ फेरते हुए कहा, "हम लोगों ने बहुत पहले ही भगवती गंगाजी को अपनी भक्ति-भावना से सन्तुष्ट कर लिया है। अतः उनकी धारा में डुबकी लगाते ही शिव के इस परमतेजस्वी वीर्य को गंगा को समर्पित करके तुम इस ताप से मुक्त हो जाओगे।" इन्द्र के इन अमृतोपम वचनों को सुनकर तथा इन्द्र से आज्ञा लेकर, उस वीर्य से जलते हुए, अग्निदेव तुरन्त गंगा-तट पर पहुँचे और गंगा की धारा में कूद पड़े।

गंगा की धारा में डुबकी लगाते ही, भीतर ही भीतर तेज से दहकता हुआ भगवान् शिव का वीर्य, अग्निदेव के शरीर से निकल कर गंगा की समुन्नत तरंगों में प्रविष्ट हो गया। अग्निदेव ने तो परमशान्ति का अनुभव करते हुए देवलोक को प्रस्थान किया, परन्तु भगवती गंगा उस महातेजस्वी वीर्य के असह्य ताप के कारण उबल उठीं। माघ का महीना था छओं कृत्तिकाएँ गंगास्नान के लिए आईं और एक साथ गंगा के निर्मल जल में भली-भाँति मग्न होकर स्नान किया। स्नान करते ही शिव का वह अचूक वीर्य, गंगा के जल से निकल कर उन कृत्तिकाओं के शरीर में प्रविष्ट हो गया। उस असह्य तेज को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करने में असमर्थ होने से अत्यन्त व्याकुल होकर, अपने भीतर जलती हुई आग-सी लिए हुए बाहर निकल आईं। परिस्थितियों के अनुकूल होने से उस वीर्य ने गर्भ का रूप धारण कर लिया। जब कृत्तिकाओं ने अपने को गर्भवती देखा, तो अपने पतियों के भय और लाज के मारे अत्यन्त दुःखी हो उठीं और अपना-अपना गर्भ सरपत के एक जंगल में उत्सर्जित करके अपने-अपने घर लौट गईं।

उन कृत्तिकाओं ने चन्द्रमा की किरणों के समान कोमल तथा अत्यन्त तेजस्वी जिन गर्भों को वहाँ छोड़ा था, वे इतने तेजस्वी बन गए कि आकाश के बीच स्थित सैंकड़ों सूर्य से भी ज्यादा प्रखर हो उठे और अपने छः मुखों से चतुर्मुख ब्रह्मा को भी मानो चुनौती देने लगे।

एकादश सर्ग शिव-पुत्र 'कार्तिकेय' की बाल-लीलाओं से ओत-प्रोत है। इन्द्रादिक समस्त देवताओं के विनम्र-निवेदन पर भगवती गंगाजी स्त्री का रूप धारण करके सरपतों के उस जंगल में शीघ्र ही उपस्थित हुईं और उस बालक को अपना अमृत से भरा हुआ स्तन पिलाने लगीं। तब तक छओं कृत्तिकाएँ भी आकर बालक की सेवा शुश्रूषा में लग गईं और वह बालक स्पष्टरूप से प्रतिपल बढ़ने लगा। ऐसे अपूर्व बालक को देखकर गंगाजी, अग्निदेव तथा छओं कृत्तिकाओं की आँखें आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो गईं और वे उस दिव्य-बालक को अपना पुत्र बनाने के लिए आपस में झगड़ने लगे; इसी बीच पार्वती के साथ आकाश में विहार करते हुए भगवान् शिव भी वहाँ आ पहुँचे। सद्यः प्रसूत उस छः मुख वाले बालक को देखकर शिव-पार्वती आनन्द से गद्गद् हो उठे। अग्नि, गंगा तथा कृत्तिकाओं के विवाद के विषय में पूछने पर भगवान् शिव ने बालक के जन्मसम्बन्धी सम्पूर्ण वृत्तान्त को पार्वती को सुनाते हुए कहा, "इस वीर बालक की माता होने का श्रेय तुम्हीं को प्राप्त है।" इतना सुनते ही पार्वती वात्सल्यरस से सराबोर हो गईं। उनके स्तनों से दूध की धारा फूट पड़ी और वे बालक को गोद में लेकर दूध पिलाने लगीं। तदनन्तर भगवान् शिव ने अपने हाथों का सहारा देते हुए, पार्वती को अपने गगनचुम्बी विमान में बैठाया और कैलास के लिए प्रस्थान किया। अतिशीघ्र ही बालक को गोद में लिए हुए पार्वती के साथ शिवजी अपने कैलास-भवन जा पहुँचे और पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में बहुत बड़े उत्सव का आयोजन किया। प्रतिपल बढ़ता हुआ यह अपूर्व बालक अपनी बाल-लीलाओं से शिव-पार्वती को प्रफुल्लित करने लगा तथा अपने जन्म से छठवें दिन ही बहुत बड़ा बुद्धिमान तथा जवान बन गया और उसने शस्त्रास्त्र विद्याओं को भलीभाँति सीख लिया–

"अलभत परां बुद्धिं षष्ठे दिने नवयौवनं।
स किल सकलं शास्त्रं विवेद विभुर्यथा।।"

कुमारसम्भवम्/11/50।।

द्वादश सर्ग में तारकासुर के असह्य अत्याचारों से संत्रस्त इन्द्र समस्त देवताओं के साथ भगवान् शिव के पास कैलास-भवन पहुँचते हैं, जहाँ भगवान् शिव के समक्ष शस्त्राभ्यास करते हुए परमवीर कुमार कार्तिकेय को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं के साथ भगवान् शिव की स्तुति करने के पश्चात् कहते हैं, "भगवान् आपको तो ज्ञात ही है कि तारकासुर इस समय स्वर्ग का मालिक बन बैठा है। समस्त विभवों से हीन हम सभी देवता एकमात्र चतुर्मुख ब्रह्मा जी की भविष्यवाणी (शिव-पुत्र देवताओं का सेनापति बनकर तारकासुर का वध करेगा) के सहारे तरह-तरह के क्लेशों तथा अपमानों को सहते हुए अपने समय को व्यतीत कर रहे हैं। हे नाथ! अब आप अपने इस आनन्ददायक पुत्र को हम देवताओं का सेनापति बनने की आज्ञा देकर हम लोगों को जीवनदान देने की कृपा करें।"

देवताओं के अत्यन्त दीनतापूर्ण वचनों तथा तारकासुर के अत्याचारों को सुनकर भगवान् शिव अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और बोले, "आत्मसंयम द्वारा समाधि लगा लेने पर भी मैंने पार्वती के साथ जो विवाह किया था, वह केवल इसीलिए कि उससे उत्पन्न होने वाला पुत्र इस तारकासुर जैसे शत्रु का वध कर सके। इसलिए अपने कार्य के योग्य इस कुमार को आप लोग अपनी सेना का सेनापति बनाकर उस तारकासुर का वध कीजिए।" इसके बाद भयंकर युद्ध को भी उत्सव के समान समझने वाले अपने पुत्र कार्तिकेय से भगवान् शंकर ने कहा, "पुत्र! अब तुम जाओ और युद्धभूमि में देवताओं के शत्रु तारकासुर का वध करो।"

कुमार कार्तिकेय ने एक आदर्श पुत्र की भाँति सिर झुकाकर भगवान् शिव की आज्ञा को स्वीकार किया; जिसे देखकर देवराज इन्द्र समेत समस्त देवता विजय की आशा से आनन्दमग्न हो गए।

त्रयोदश सर्ग के प्रारम्भ में कुमार कार्तिकेय, यात्रा के योग्य सुन्दर वेश में सभी देवताओं के आगे स्थित होकर तीनों लोकों के स्वामी भगवान् शिव तथा जगद्जननी माँ पार्वती के श्रीचरणों में प्रणाम किया। भगवान् शिव ने आशीर्वाद देतें हुए कहा, "पुत्र! युद्ध में इन्द्र के शत्रु तारकासुर का वध करो और इन्द्र के पद को पुनः स्थिर कर दो।" पुत्रवत्सला माँ पार्वती ने कुमार को गोद में लेकर गले लगा लिया और आशीर्वाद दिया, "पुत्र! तुम शत्रु को जीतकर यह सिद्ध कर दो मैं सचमुच एक परमवीर पुत्र की माँ हूँ।"

कुमार कार्तिकेय के साथ समस्त देवतागण थोड़ी ही देर में स्वर्ग में जा पहुँचे, परन्तु तारकासुर के भय से कोई भी देवता स्वर्ग में प्रवेश करने को तैयार नहीं हुआ; तब कुमार कार्तिकेय ने कहा कि देवताओं हमारे रहते आप लोगों को चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हम इसी स्थान पर शत्रु का शिर काट कर आप लोगों को आनन्दित कर देना चाहते हैं। कुमार कार्तिकेय की वाणी ने देवताओं में शक्ति तथा उत्साह का संचार किया और वे स्वर्ग में प्रवेश करने को तैयार हो गए।

देवताओं के साथ स्वर्ग में विचरण करते हुए कुमार कार्तिकेय ने देखा कि स्वर्ग की सारी व्यवस्थाएँ छिन्न-भिन्न हो गईं हैं; नन्दनवन के वृक्ष तोड़ तथा काट लिए गए हैं, बड़े-बड़े महल ढहा दिए गए हैं, तरह-तरह के मणि-मणिका तोड़-फोड़ दिए गए हैं, या दैत्यों द्वारा निकाल दिए गए हैं। तारकासुर के इस अत्याचार से कुमार की तारकवध की अभिलाषा और बलवती हो गई। अन्त में देवता लोग कुमार के साथ कल्पवृक्ष के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचे तथा दैत्यों के आदिपति कश्यप ऋषि, माता अदिति को कुमार समेत सभी देवताओं ने प्रणाम करके विजयलाभ का आशीर्वाद प्राप्त किया। तदनन्तर इन्द्रादि देवताओं ने हर्षोल्लास पूर्वक कुमार कार्तिकेय को अपना सेनापति बना दिया। कुमार कार्तिकेय ने भी देवताओं के इस अत्यन्त चुनौतीपूर्ण पद को स्वीकार करके इन्द्रादि का क्लेश दूर कर दिया।

चतुर्दश सर्ग में विजय की अभिलाषा से युद्ध के लिए अत्यन्त उत्सुक कुमार कार्तिकेय की प्रेरणा से अपने शत्रु तारकासुर को मारने के लिए सभी देवताओं ने शीघ्रता के साथ अस्त्र-शस्त्र बाँधना प्रारम्भ कर दिया। मन के समान गति वाले अपने 'जित्वर' नामक रथ पर कुमार के बैठ जाने पर समस्त देवता अपने-अपने वाहनों के साथ कुमार कार्तिकेय के पीछे-पीछे चल दिए। पृथ्वी से स्वर्गपर्यन्त सम्पूर्ण देवसेना व्याप्त हो गई है। भीषण जनसम्मर्द के कारण घनी धूल के चारों ओर छा जाने से उस समय लोगों की आँखों में ऐसा अंधेरा छा गया कि ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, कहीं कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। आकाश में इधर-उधर घूमने वाले बड़े-बड़े हाथी ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों बड़ी भारी आँधी से पहाड़ी चट्टानें उड़ रही हों और पृथ्वी पर चलने वाले रथ बड़े-बड़े बादलों के समान प्रतीत हो रहे थे। इस प्रकार उस देवसेना के विजयप्रयाण ने ऐसा भ्रम उपस्थित कर दिया कि पृथ्वी के पहाड़ आकाश में तथा आकाश के बादल पृथ्वी पर छाए हुए प्रतीत हो रहे थे।

पञ्चदश सर्ग में जब दैत्यों की नगरी में हृदय को दहला देने वाला यह समाचार पहुँचा कि बल नामक दैत्य का विनाश करने वाला इन्द्र, शिवपुत्र कुमार कार्तिकेय को सेनापति बनाकर उनके पीछे-पीछे चल रही विशाल देवसेना के साथ युद्ध करने के लिए आ रहा है, तो सम्पूर्ण दैत्य हृदय से काँप उठे और यह सूचना दैत्यराज तारकासुर को दी गई। यह समाचार सुनते ही तारकासुर के होंठ क्रोध से फड़फड़ाने लगे और उसने युद्ध के लिए सेना को तैयार होने का आदेश दिया। आदेश की प्रतीक्षा में बैठी तारकासुर की सेना देखते ही देखते प्रलयकालीन बादल के समान नगर के मुख्य द्वार पर इकट्ठी हो गई।

युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाले तारकासुर के सामने अमंगल की सूचना देने वाले असंख्य अपशकुन होकर मानों इस बात का संकेत देने लगे कि अब तारकासुर अत्यन्त गहरे दुःखरूपी समुद्र में डूबने वाला ही है। निकट भविष्य में दैत्यों के मांस खाने की अभिलाषा से गिद्ध, कौआ आदि मांसभोजी बुरे पक्षियों की पंक्ति दैत्यसेनाओं के ऊपर मँडराने लगी। भयंकर आँधी चलने से दैत्यसेना के छत्र और पताकाएँ टूट-टूटकर छिन्न-भिन्न हो गईं। भीषण सर्पों की पंक्तियाँ दैत्यसेना का रास्ता काटती हुई सामने से निकलने लगीं तथा दिन में ही चंचल तारे अत्यन्त वेग से टूट-टूट कर गिरने लगे। भूमि काँपने लगी, समुद्र में ज्वार आ गया, पहाड़ों में दरारें पड़ने लगीं, तारकासुर के विशाल हाथी लड़खड़ाने लगे, कुत्ते सूर्य की ओर देखते हुए रोने लगे। इन भयानक परिणामों वाले अपशकुनों को देखकर अनिष्ट की आशंका से विद्वानों ने यद्यपि तारकासुर को बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोका, लेकिन वह रुक न सका। उस समय आकाश में देववाणी सुनाई पड़ी, "अरे मदान्ध तारक! शिवपुत्र कार्तिकेय के साथ तू युद्ध मत कर, अपितु उन्हीं की शरण में चला जा। इसी में तेरा कल्याण है।" यह सुनकर कालविवश तारकासुर कुमार समेत देवताओं को अपशब्द कहता हुआ, म्यान से तलवार निकाल कर अपने रथ को इन्द्र की ओर दौड़ा दिया, तव प्रतीक्षारत इन्द्र के देवसैनिकों ने भी दैत्यों की सेना पर धावा बोल दिया।

जिस प्रकार प्रलय करने के लिए अपने तटों की मर्यादा भंग करके चारों ओर फैलते हुए, सारी दुनिया को अपने में समेटते हुए, काल का स्वागत करने वाले दो समुद्र एक-दूसरे से टकराते हुए भीषण कोलाहल के साथ चढ़ते चले आते हैं, उसी प्रकार ताड़वृक्षों से भरी हुई पहाड़ों की तलहटी को फाड़ने में समर्थ देवताओं तथा असुरों की भयानक सेना अत्यन्त भीषण ध्वनि करती हुई तथा कालरूपी अतिथि को भोजन का निमन्त्रण देती हुई समस्त ब्रह्माण्ड में फैल गई।

षोडश सर्ग का प्रारम्भ एक-दूसरे पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने वाली देव तथा दैत्य सेना के भीषण-संग्राम से होता है। पैदल सैनिक पैदलों से, रथवाले रथवालों से, घुड़सवार घुड़सवारों से तथा हाथीसवार हाथीसवारों से युद्ध करने लगे। चारण लोग निर्भयतापूर्वक एक-दूसरे पर प्रहार करने वाले वीरों का नाम ले-लेकर प्रशंसा करने लगे। वहाँ सैनिकों की तलवारों की करारी चोटों से कटे हुए कवचों के भीतर से निकली हुई रुई आकाश तथा दिशाओं में इस प्रकार फैल गई कि सम्पूर्ण दिशाएँ पके हुए बालों के समान सफेद दिखाई पड़ने लगीं। कोई रथी योद्धा, किसी रथी योद्धा को हथियारों से मूर्च्छित कर देने पर फिर प्रहार नहीं करता था, अपितु उरासे पुनः लड़ने के लालच में उसके होश में आने की कामना से वहीं खड़ा रहता था। इस प्रकार देवताओं तथा दैत्यों के इस महासंग्राम में दैत्यों के विनाश को देखकर क्रोध के कारण टेढ़ी भौहों तथा लाल-लाल नेत्रों वाला देवशत्रु तारकासुर युद्ध की अभिलाषा से शीघ्र ही इन्द्रादिक दिक्पालों के सामने आकर डट गया।

सप्तदश सर्ग के प्रारम्भ में इन्द्रादिक दिक्पालों के साथ लड़ते हुए तारकासुर ने हँसते-हँसते बाणों की भीषण वर्षा से देवताओं को ढक दिया। उस दैत्य के नागपाश जैसे बाणों में बँधने के कारण इन्द्रादि देवता लोग युद्धविमुख होकर शिवपुत्र कार्तिकेय के पास पहुँचे और कुमार कार्तिकेय के देखने मात्र से बन्धनमुक्त हो गए। यह देखकर तारकासुर क्रोध से लाल हो गया और ललकारते हुए शिवपुत्र कार्तिकेय के पास जाकर बोला, "अरे तपस्वी शंकर के बच्चे! अपनी भुजाओं के बल का अभिमान छोड़ दे और देवताओं के इस कार्य से अलग हो जा। तुम शिव-पार्वती की एकमात्र सन्तान हो। मेरे भयंकर बाणों से टकराकर काल के गाल में क्यों जाना चाहते हो? जाओ! रण छोड़ कर भाग जाओ। मैं तुम्हें जीवनदान देता हूँ।"

युद्धभूमि में तारकासुर की अनर्गल बातें सुनकर कुमार कार्तिकेय के होंठ काँपने लगे और वे तारकासुर से बोले, "वीरश्रेष्ठ दैत्यराज! मैं आपके उत्कृष्ट बाहुबल को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखना चाहता हूँ। अतः अब आप शस्त्र ग्रहण कीजिए और अपने धनुष की डोरी चढ़ा लीजिए।" कुमार की बातों ने तारकासुर की क्रोधाग्नि में घी का कार्य किया और कुमार कार्तिकेय तथा तारकासुर के बीच भीषण-संग्राम शुरू हो गया। अपने को असफल होता हुआ देखकर तारकासुर ने अपनी मायावी शक्ति के साथ युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु कुमार के समुचित प्रतिकार करने से उसकी वे शक्तियाँ भी प्रभावहीन दिखाई देने लगीं। यह देखकर दैत्यसम्राट् तारकासुर की भौंहें टेढ़ी हो गईं। वह अपने हाथों में लपलपाती हुई तलवार लेकर रथ से कूदकर कुमार कार्तिकेय के ऊपर झपटा। कुमार ने भी प्रलयकाल की अग्नि के समान भयंकर अपने भाले से तारकासुर पर प्रहार किया, जिसने उसके हृदय के बीच प्रवेश करते हुए उसकी जीवनलीला को समाप्त कर दिया और सम्पूर्ण देवता प्रसन्नता से नाच उठे। इन्द्र पुनः स्वर्ग के अधिपति बनाए गए और समस्त देवताओं ने अपनी मुकुट-मणियों सहित अपना मस्तक इन्द्र के कदमों में झुकाकर उनकी स्तुति किया।

4. रघुवंशम्
(RAGHUVANSHAM)

महाकवि कालिदासकृत "रघुवंशम्" को भारतीय आचार्यों (आलङ्कारिकों) ने लक्षित-महाकाव्य को सर्वोत्तम निदर्शन स्वीकार किया है। ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय समय-समय पर निर्मित 40 टीकाओं के अस्तित्व से स्वतः सुस्पष्ट है। रघु के जन्म के पूर्वपीठिका से ही इस ग्रन्थ का प्रारम्भ होने से "रघुवंशम्" शीर्षक सर्वथा उचित ही है।

"रघुवंशम्" इस नाम को चरितार्थ करने के लिए काव्यरूप में सबसे पहले इक्ष्वाकु का नाम ऋग्वेद में मिलता है; जिनका वंश रामायण तथा पुराणों में विख्यात है। यह विस्तृत विषय कवि को अपनी वर्णनशक्ति के उपयोग के लिए पूर्ण अवसर प्रदान करता है। युद्ध और राज्याभिषेक, स्वयंवर में राजकुमारी के द्वारा अपने पति का चुना जाना, विवाह-संस्कार, एक प्रिय-पत्नी का मरण और शोकाकुल पति का विलाप, ग्राम, नगर और ऋतुएँ, दिग्विजय की महान् घटनाएँ, पृथ्वी को जीतने की इच्छा वाले एक नृपति की विजययात्रा; से सब कवि के नैपुण्य प्रदर्शन के लिए उपर्युक्त अवसर प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य प्रथम सर्ग में ही हमें एक विचित्र वातावरण में पहुँचा देता है। दिलीप एक राजा है; किन्तु उनके कोई सन्तान नहीं है। कारण के रूप में दिलीप को उस घटना की याद आती है; जब इन्द्र के दर्शन करके लौटते हुए उन्होंने कामधेनु के प्रति सम्मान नहीं दिखाया था। अतः उस कामधेनु ने उन्हें शाप दे दिया। अपने उस अपराध का परिमार्जन करने के लिए महाराज दिलीप, गुरुवशिष्ठ के आदेशानुसार पृथ्वी पर उपस्थित उसकी पुत्री नन्दिनी की सेवा का संकल्प लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय सर्ग में निष्ठा व श्रद्धापूर्वक अपने व्रत को निभाते हुए अपने शरीर का उत्सर्ग करके एक सिंह से उस नन्दिनी की रक्षा करते हैं। नन्दिनी दिलीप की अपूर्व सेवा-भक्ति से प्रसन्न होकर उनकी हार्दिक इच्छा पूर्ण करती है।

तृतीय सर्ग में महाराज दिलीप को स्व-सुत-मुखावलोकन का चिरप्रतीक्षित अवसर प्राप्त होता है और चन्द्रदर्शन से उठे हुए महोदधि के समान उनका हृदय हर्ष से आप्लावित हो जाता है।

बालक 'रघु' शीघ्रता से बढ़ने लगता है। उसे युवराज बना दिया जाता है तथा अपने पिता दिलीप द्वारा संचालित अश्वमेधयज्ञ में एक वर्ष तक भ्रमण करने वाले यज्ञिय-अश्व की रक्षा का भार भी 'रघु' के ही कन्धों पर छोड़ दिया जाता है। अश्व लुप्त हो जाता है, लेकिन नन्दिनी की सहायता से रघु को उस लुप्त-अश्व का पता चल जाता है, जो इन्द्र के द्वारा पूर्व दिशा में ले जाया गया है। इन्द्र के विरुद्ध रघु का पराक्रम असफल होता है, लेकिन इन्द्र रघु के पराक्रम से प्रसन्न होकर अश्व को छोड़े बिना, रघु की प्रत्येक इच्छा पूर्ण करने को तैयार हो जाते हैं और रघु अपने पिता के लिए यज्ञ का सम्पूर्ण फल माँग लेते हैं।

यज्ञ के समाप्त होने पर महाराज दिलीप, अपने पुत्र रघु को राजचिह्न के रूप में श्वेत-छत्र प्रदान करते हैं, तथा अपने कुल की परम्परा के अनुसार तपस्वी का जीवन बिताने के लिए संन्यास-आश्रम की मर्यादा को आत्मसात् कर लेते हैं।

चतुर्थ-सर्ग में भारत-विजेता के रूप में रघु के साहसिक कृत्यों का वर्णन है। वे सुह्मो के विरुद्ध अभियान करते हैं तथा बंगाल के राजाओं को पराजित करते हुए गंगा के द्वीपों में अपने विजय स्तंभ को स्थापित करते हैं। महेन्द्र पर्वत उनके सामने झुक जाता है और वे कावेरी पार करके दक्षिण में आक्रमण करते हैं तथा पाण्ड्य राजाओं से मुक्ताओं की भेंट प्राप्त करके दक्षिण-विजय को सफल बनाते हैं। वहाँ से उत्तर की ओर मुड़कर मलय तथा दुर्दुर पर्वतों से होकर उनका विशाल सैन्य सह्यपर्वत के लम्बे ढालों को पार करता है। सेना के पाद-प्रहार से उड़ाई गई धूल केरल की नारियों के केशों में भर जाती है। मुरला नदी तथा त्रिकूटपर्वत उनके यश के साक्षी होते हैं। वहाँ से एक धार्मिक राजा की भाँति स्थलमार्ग का अनुसरण करते हुए पारसीकों और यवनों के विरुद्ध अभियान करते हैं। युद्ध की धूल में लड़ती हुई सेनाएँ छिप जाती हैं। केवल धनुषों की टंकार मात्र से ही उनकी उपस्थिति का आभास होता है। यवन शत्रुओं से धरती पट जाती है। मृत्यु से बचे हुए शत्रु शरणागति के प्रतीक के रूप में अपने शिरस्त्राण उतार देते हैं।

थके हुए विजेता सैनिक सुरापान करके अपनी प्यास बुझाते हैं; उसके बाद रघु अपने अश्वों को सिन्धु की सैकतभूमि में बढ़ने की आज्ञा देते हैं और हूणों तथा काम्बोजों को पराजित करते हैं। हिमालय का पवन कीचकों (खोखले बाँसों) से रघु की विजय का गीत गवाता है। पर्वतीय जातियाँ रघु की शक्ति का अनुभव करती हैं। भालों और बाणों की वर्षा के नीचे पर्वततटों पर अग्नि चमकती है तथा उत्सव नामक गण सदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए उत्सवों के आनन्द से रहित हो जाते हैं। लौहित्या नदी को पार करके प्राग्ज्योतिष को जीत लिया जाता है तथा कामरूप 'रघु' को जंगली हाथियों का उपहार प्रदान करता है। उत्साह और वीरता से परिपूर्ण इस वर्णन में पाश्चात्य विद्वानों ने समुद्रगुप्त की महान् विजयों का प्रतिबिम्ब देखने को हास्यास्पद प्रयास किया है।

पञ्चम सर्ग में महाकवि ने एक बिल्कुल भिन्न विषय का सन्निवेश किया है। रघु की उदारता उसे निर्धन बना देती है। विश्वजित यज्ञ में वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान करके मिट्टी के बर्तनों में भोजन करना प्रारम्भ कर दिया है। इन्हीं दिनों विद्याध्ययन करके लौटा हुआ ब्राह्मण-बालक कौत्स, अपने गुरु को गुरुदक्षिणा देने के लिए चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राओं की याचना करता है। ऐसी विषम परिस्थिति में भी 'रघु' विचलित नहीं होता है, क्योंकि उसे अपनी भुजाओं पर पूर्ण भरोसा है। कौत्स को गुरुदक्षिणा की राशि देने के लिए वह धनपति 'कुबेर' पर चढ़ाई करने का निश्चय करता है; परन्तु कुबेर के द्वारा आकाश से की गई स्वर्णवर्षा, रघु के विजय-अभियान को स्थगित कर देती है तथा गुरुदक्षिणा की राशि से सन्तुष्ट कौत्स 'रघु' को पुत्रप्राप्ति का वरदान देकरके प्रस्थान करता है।

कौत्स की वाणी फलीभूत होती है और 'रघु' अज नामक पुत्र को प्राप्त करता है, जो शीघ्र ही अपने पिता के समान गुण, रूप व पराक्रम को प्राप्त कर लेता है। एक स्वयंवर में, जिसमें एक पड़ोसी राजा की बहन अपने पति का वरण करने वाली थी, सम्मिलित होने की आज्ञा प्राप्त करके अज चल देता हैं मार्ग में वह एक वन्यगज पर वीरतापूर्वक आक्रमण करता है, जो उसके प्रहार से एक गन्धर्व के रूप में परिणत हो जाता है; जिसे यह शाप प्राप्त था कि जब तक किसी इक्ष्वाकुवंशी के बाण से वह आहत नहीं होगा, तब तक उसकी शाप से मुक्ति नहीं होगी। मुक्त हुआ, वह शापित गन्धर्व पारितोषिक के रूप में अज को एक सम्मोहन अस्त्र प्रदान करता है।

षष्ठ सर्ग में महाकवि ने स्वयंवर का अत्यन्त उज्ज्वल चित्र खींचा है। अपनी सखी सुनन्दा को पार्श्व में लेकर राजकुमारी सामने खड़े हुए उत्कण्ठित राजाओं को एक-एक करके छोड़ती चली जाती है उसको कोई अच्छा नहीं लगता है। इस प्रकार वह जिस राजा को छोड़करके आगे बढ़ जाती है, वह अत्यन्त म्लान दिखाई देता है—

''संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभावं स स भूमिपालः।।''

रघुवंशम् /6/67।।

सुनन्दा व्यर्थ ही अंगराज के लिए राजकुमारी से आग्रह करती है। राजकुमारी कहती है कि उनमें सब गुण उपस्थित हैं, फिर भी लोगों की रुचि अलग-अलग हुआ करती है। राजकुमारी इन्दुमती पुष्पहार को लिए हुए आगे बढ़ती है और ज्यों ही अज को देखती है, अपना हृदय हार बैठती है तथा अपनी लज्जा पर अंकुश लगाते हुए पुष्पहार को अज के गले में पहना देती है, जो अज को राजकुमारी इन्दुमती का पति सूचित करता है। विवाह संस्कार सम्पन्न हो जाता है और नवदम्पती अपने घर के लिए प्रस्थान करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम सर्ग में लज्जित राजाओं की प्रतिशोध की भावना सीमा का अतिक्रमण कर जाती है; वे अपने को सम्भाल नहीं पाते हैं और बलपूर्वक राजकुमारी इन्दुमती का अपहरण करना चाहते हैं। अज का उन दुष्ट राजाओं के साथ भीषण-संग्राम होता है। अन्त में गन्धर्व के द्वारा दिया हुआ अस्त्र 'अज' के काम आता है; जिससे वह शत्रु-सेना पर विजय प्राप्त करके उनका मान छीन लेता है, परन्तु उनके प्राणों को न छीनते हुए, उन्हें जीवनदान देता है।

अष्टम सर्ग में अज का शासन अत्यन्त समृद्ध परम्परा को द्योतित करता हुआ दिखाई देता है; जबकि रघु एक तपस्वी के रूप में अपनी इन्द्रियों को वश में करते हैं। जब रघु का देहावसान होता है, तो अज उन्हें एक योगी की अन्त्येष्टि का पूरा सम्मान प्रदान करता है। अपने शत्रुओं का शमन करके, अज चारों दिशाओं में अपनी कीर्ति-पताका फहरा देता है, लेकिन अज की यह खुशहाली विधि को स्वीकार्य नहीं है। उसके सामने एक भयंकर विपत्ति उपस्थित होती है। महर्षि नारद के वीणा पर शोभायमान, वायुवेग से उड़ाई गई पुष्पमाला आकाश मार्ग का अनुसरण करती हुई महारानी इन्दुमती की छाती पर गिर पड़ती है ओर उसकी मृत्यु का कारण बनती है, यद्यपि सही अर्थों में उसकी मृत्यु का तात्पर्य शारीरिक बन्धन से उसकी मुक्ति थी; क्योंकि वस्तुतः वह एक अप्सरा थी, जो शापवशात् इस मृत्युलोक में जन्म धारण की थी। अज इस वज्रपात को सहन न कर सका। स्वजनों के बार-बार समझाने पर भी कि मृतव्यक्ति के लिए शोक करना मूर्खता है; अज के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जीवन की क्षणभंगुरता और राजाओं के कर्तव्यों के सम्बन्ध में दी गई सान्त्वना का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परिणामस्वरूप भग्नहृदय अज की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर दशरथ सिंहासनारूढ़ हुए।

नवम सर्ग में दशरथ के सम्बन्ध में बताने के लिए कोई विशेष बात नहीं है, केवल बसन्त के उज्ज्वल वर्णन के पश्चात् हमें एक सांघातिक आखेट की सूचना दी जाती है, जबकि शक्ति और करुणा का समान रूप से प्रदर्शन करने के बाद एक हाथी का पीछा करते हुए महाराज दशरथ एक ब्राह्मण युवक को बुरी तरह से घायल कर देते हैं। श्रवणकुमार नामक उस मरते हुए नवयुवक को लेकर महाराज दशरथ उसके वृद्ध माता-पिता के पास जाते हैं और उनसे समान-दुर्भाग्यशाली होने का अर्थात् पुत्रविरह में मरने का शाप प्राप्त करते हैं।

दसवें सर्ग में जीवन की वस्तुस्थितियों को छोड़कर दशरथ से उत्पन्न पुत्रों में विष्णु के मायामय अवतार का ज्ञान होता है। रामजन्म व उनकी बाल-लीलाओं से सम्बद्ध यह सर्ग भी अपने आपमें काफी महत्त्वपूर्ण है।

ग्यारवें सर्ग में राम की युवावस्था, उनका ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में जाना, राक्षसी ताड़का का वध करना, जनक के सीतास्वयंवर राजसभा की यात्रा, सीता का पाणिग्रहण, परशुराम की पराजय, तथा परशुराम के द्वारा ईश्वर के रूप में राम को स्वीकार करना; इत्यादि बातों का बहुत शीघ्रता से वर्णन किया गया है। कैकेयी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षड्यन्त्र से राम का वनवास, राम और सीता का वनवासी-जीवन, रावण द्वारा सीताहरण, लङ्का की खोज, बानर-सेना के साथ समुद्र पार करना तथा राम और रावण के महान् युद्ध का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।

बारहवें-तेरहवें सर्ग में राम, सीता के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या वापस लौटते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रसंग के माध्यम से भारतवर्ष के दृश्यों के वर्णन में कालिदास की वर्णन-शक्ति को उपयुक्त विषय मिल जाता है। राम के मुख से भारतवर्ष के स्थानों का इतना रुचिर व मनोहारी वर्णन कालिदास की प्रतिभा का विलास ही है।

इसके पश्चात् उज्ज्वल चित्रणों की एक परम्परा आरम्भ होती है। राम और सीता; विधवा राजमाताओं को देखने के लिए जाते हैं, जो अपने आँसुओं के कारण बड़ी कठिनाई से उनको देख पाती हैं। माताओं के वे आँसू शीघ्र ही आनन्द के आँसुओं में बदल जाते हैं। अकेली सीता अपनी सुन्दरता के कारण, पति को प्राप्त हुए कष्टों के लिए रोती हैं, जो विपत्ति का संसूचक है।

चौदहवें सर्ग में कुछ समय के लिए चारों ओर उल्लास छा जाता है; तत्पश्चात् राज्याभिषेक का अतिशोभन संस्कार सम्पन्न होता है; किन्तु विपत्ति भी समीप में ही है। मात्सर्य-युक्त कुछ व्यक्ति महाराज राम की निन्दा करते हैं, जिनकी पत्नी सीता एक लम्बे समय तक राक्षसराज रावण के घर में रह चुकी है। राम कर्तव्य को प्रेम से बढ़कर मानते हैं और उस गर्भवती सीता को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ले जाकर छोड़ आने के लिए लक्ष्मण को आदेश देते हैं। सीता अपने भाग्य की निन्दा करती है, किन्तु पति को कोई उपालम्भ नहीं देती। राम एकाकी ही राज्य करते हैं। उनके द्वारा सम्पादित अश्वमेध यज्ञ में पत्नी की अनिवार्यता के कारण स्वर्णिम सीता की प्रतिमूर्ति की योजना की जाती है।

पन्द्रहवें सर्ग में शोकग्रस्त राम का ध्यान यमुना-तीर के राक्षस शत्रुओं के उन्मूलन की ओर आकृष्ट किया जाता है। उधर वाल्मीकि-आश्रम में सीता भी दो बच्चों को जन्म देती है; जो महर्षि वाल्मीकि से अपने पिता के कार्यों की कथा सुनकर और सुनाकर सीता के शोकपीड़ित हृदय को सान्त्वना देते हैं। वह दिन भी आ जाता है, जब राम अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय करते हुए सीता की स्वर्णिम प्रतिमा को यज्ञशाला में अर्धांगिनी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। यज्ञ का अश्व लव, कुश के द्वारा पकड़ लिया जाता है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा सिखाई गई रामायणी कथा का लव, कुश के द्वारा संगीमय गान किया जाता है। समस्त जनता के साथ स्वयं राम भी लव और कुश को अपना बेटा समझते हैं। महर्षि वाल्मीकि राम से सीता को स्वीकार करने की प्रार्थना करते हैं। राम चाहते हैं कि सीता की निष्कलंकता पुरवासियों के सामने सुस्पष्ट कर दी जाए। सीता उनके सामने आती हैं और पवित्र जल से आचमन करके अपने सतीत्व की शपथ लेती हैं। सबके देखते ही देखते भगवती पृथ्वी देवी प्रकट होती हैं और सीता को अपने अंक में लेकर पाताल में प्रविष्ट हो जाती हैं।

भगवती सीता की पुनः प्राप्ति और सद्यः विरह से शोकातुर राम अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भाल पाने में असमर्थ हो जाते हैं तथा राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंप कर कालान्तर पुरवासियों के साथ नगर से बाहर निकलते हैं और स्वर्गीय विमान पर बैठकर चले जाते हैं। इस प्रकार अत्यन्त प्रभावी ढंग से सीता के पाताल-गमन तथा राम के स्वर्गारोहण से महाकाव्य की मुख्य कथा समाप्त हो जाती है, फिर भी महाकवि कालिदास ने परवर्ती राजाओं के चरित्र को बहुत सावधानीपूर्वक चित्रित किया है; जिन्हें सर्वथा वैशिष्ट्यहीन नहीं कहा जा सकता है।

सोलहवें सर्ग में राम के पुत्र 'कुश' कुशावती में शासन करते हैं। अयोध्या उन्हें स्वप्न में प्रोषित-पतिका नारी के रूप में दिखाई देती है तथा अपनी दीन-हीन अवस्था के लिए उनकी भर्त्सना करती है और उन्हें लौटने की आज्ञा देती है कुश अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। अयोध्या एक बार पुनः अपने सौभाग्य को प्राप्त कर लेती है और ग्रीष्मकालीन आमोद-प्रमोद का वर्णन नवम सर्ग के वसन्तवर्णन से होकर लगाता हुआ दिखाई देता है, परन्तु उसकी बराबरी नहीं कर पाता है।

सत्रहवें से उन्नीसवें सर्गपर्यन्त 'रघुवंशम्' के अवशिष्ट भाग में रोचकता कम होती जाती है; क्योंकि महाकवि कालिदास के पास उन अयोग्य राजाओं के नामों को छोड़कर और कुछ भी बताने को शेष नहीं था; जिनके जीवन की सारी अभिरुचि अन्तःपुरों तक ही सीमित थी। सत्रहवें सर्ग में कुश के पुत्र 'अतिथि' की कथा वर्णित है। अट्ठारहवें और उन्नीसवें सर्ग में निषध नल, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक, विश्वसह, हिरण्यनाभ, कौशल्य, पुत्र पौण्ड्र, ध्रुवसन्धि, सुदर्शन और अग्निवर्ण की कथा वर्णित है। अति विलासिता के कारण अग्निवर्ण की क्षयरोग से मृत्यु हो जाती है। उनकी गर्भवती रानी मन्त्रियों के परामर्श से राज्य का संचालन करती है।

वस्तुतः इस काव्य में कालिदास जी, महर्षि वाल्मीकि के सर्वाधिक ऋणी हैं तथा यत्र-तत्र एक-दूसरे से आगे बढ़ जाते हैं। यद्यपि कालिदास की तुलना महर्षि वाल्मीकि से नहीं की जा सकती, फिर भी कहीं-कहीं कालिदास का पल्ला अपनी विशिष्ट वर्णनशैली के कारण भारी दिखाई देता है। राम को न पहचानने वाले उनके पुत्रों से उनके मिलने का कालिदास द्वारा खींचा गया चित्र सुन्दर है, फिर भी वाल्मीकि की मन्दगति वाली शैली में यह और भी अधिक प्रभावोत्पादक है। कालिदास सीता के द्वारा अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के दृश्य को अधिक प्रभावशाली बना पाने में असफल सिद्ध हुए हैं, परन्तु अयोध्या को लौटने के वर्णन जैसे स्थलों में उनकी विशेषता स्पष्टरूप से प्रतिभासित होती है। परवर्ती कवियों ने कालिदास का अनुकरण करने का प्रयास किया, परन्तु कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सका। आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में महाकाव्य के जिन प्रभावी लक्षणों का उल्लेख किया है, वे सभी महाकवि की इस रचना में पूर्णरूपेण घटित हो जाते हैं। यही कारण है कि भारतीय आलोचनाशास्त्र 'रघुवंशम्' को एक आदर्श प्रतिनिधि-महाकाव्य के रूप में स्वीकार करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(v) कालिदास की भाषा-शैली (STYLISTIC OF KALIDAS)

महाकवि कालिदास भारतीय काव्य-शैली के सर्वोत्तम आचार्य हैं। इनकी कविता देववाणी का शृंगार है। माधुर्य का मधुर निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरस शैया, अर्थ का सौष्ठव, अलंकारों का मञ्जुल प्रयोग तथा कमनीय काव्य के समस्त लक्षण इनके काव्य में निहित हैं। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। यही कारण है कि इनकी पद-योजना बहुत ही स्वाभाविक है। भाषा परिष्कृत, सुसंस्कृत, सरस, सरल, मनोहर, चुस्त-दुरुस्त तथा मुहावरेदार है; जो विषय को अत्यन्त आकर्षक बना देती है।

महाकवि कालिदास अपनी रचना की पूर्णता एवं परिमार्जन की दृष्टि से अश्वघोषादि कवियों से श्रेष्ठ हैं और काव्य के उत्तरकालीन महान् लेखकों की कृतियों को नष्ट करने वाली अत्युक्तियों से बिल्कुल मुक्त हैं। आचार्य दण्डी ने अपनी प्रिय रीति **'वैदर्भी'** के सन्दर्भ में जो विशेषताएँ बताई हैं, वे पूर्ण रूप से कालिदास के काव्य में निहित हैं।

रसमयी-पद्धति अथवा सुकुमार-मार्ग के इस कवि ने अपने भावों की तीव्रता तथा उदात्तता के संचार के लिए अलंकारों का भी प्रयोग बहुत ही औचित्यपूर्ण ढंग से किया है। **'उपमा कालिदासस्य'** का भारतीय-आभणक वस्तुतः सच ही है। उनकी उपमाएँ लोक तथा प्रकृति के मार्मिक स्थलों से संगृहीत की गई हैं तथा विषय को उज्ज्वल बनाने और काव्यसुषमा की वृद्धि करने में सर्वथा समर्थ हैं। अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् से चुने जाने के कारण इन उपमाओं में एक विलक्षण चमत्कार है।

स्वयंवर में उपस्थित भूपालों को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ती जाती है, तब वे; राजमार्ग पर दीपशिखा के द्वारा छोड़े गए महलों के समान प्रतीत होते हैं। यहाँ राजाओं की विपण्णता तथा उदासी की अभिव्यक्ति निम्नलिखित उपमा के द्वारा बहुत ही सुन्दर ढंग से की गई है–

"संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।"

रघुवंशम् /6/67।।

इसी उपमा-सौन्दर्य के कारण कवियों ने कालिदासजी को **'दीपशिखा-कालिदास'** के विरुद्ध से सम्मानित किया।

कालिदास की शैली की एक मूलभूत विशेषता यह भी है कि वे अभिधा की अपेक्षा व्यंजना का अधिक आश्रय लेते हैं। उनके परवर्ती कवि प्रायः समझते थे कि तत्तद् विषय पर कथनीय सब कुछ कहकर ही वे अपनी योग्यता प्रदर्शित कर सकते हैं, किन्तु कालिदास एक निश्चित प्रभाव उत्पन्न करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं और शेष सभी बातें व्यञ्जना के लिए छोड़ देते हैं।

महाकवि के चित्रण की वास्तविक निम्नलिखित सरस, सरल व मर्मस्पर्शी पद्यों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखी जा सकती है; जहाँ अज के आँसुओं का औचित्य स्वयं मानवप्रकृति में सन्निहित हैं—

"विललाप स वाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।।"

अर्थात्—उस अज ने अपनी स्वाभाविक धीरता का परित्याग करके आँसुओं से रुँधे हुए स्वर से विलाप किया। लोहा भी तपाए जाने पर नरम हो जाता है, फिर शरीरधारियों की बात ही क्या है?

अज को ऐसा लगता है कि इन्दुमती ने उसके प्रेम पर सन्देह किया है—

"ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव।
परलोकमसन्निवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः।।"

अर्थात्—हे मधुर मुस्कान वाली निश्चित ही तुमने मुझे बहानेबाज शठ समझ लिया था; तभी तो बिना मुझसे विदा लिए ही तुम यहाँ से कभी न लौटने के लिए परलोक चली गई हो।

कालिदास के काव्य में सामान्य तौर पर प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण है और केवल एक क्रिया पर अनेक विशेषण और विशेषणस्थानीय संज्ञाशब्द (Apposition) तथा उपवाक्य (Relative Clauses) भी कम नहीं हैं; लेकिन सामान्य तौर पर बहुत बड़े-बड़े समासों का प्रयोग नहीं हुआ है। मन्दाक्रान्ता छन्द में अवश्य कहीं-कहीं समासों की दीर्घता दिखाई देती है। अलंकारों में शब्दालंकारों का प्रयोग पर्याप्त रूप से, किन्तु अत्यन्त निपुणता के साथ किया गया है। **'निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु'** जैसे अनुप्रास के साधारण उदाहरणों के साथ अधिक महत्त्वपूर्ण यमक भी प्राप्त होता है। नौवाँ और अट्ठारहवाँ सर्ग यमकालंकारों से परिपूर्ण है।

छन्दशास्त्र की दृष्टि से पहले, चौथे, दशवें, बारहवें, पन्द्रहवें, और सत्रहवें, चौदहवें, सोलहवें और अट्ठारहवें सर्ग में इन्द्रवज्रा वृत्त का; तृतीय सर्ग में वंशस्थ वृत्त का; आठवें में वैतालीय वृत्त का; तथा ग्यारहवें और उन्नीसवें सर्ग में रथोद्धता वृत्त का प्रयोग किया गया है। नवाँ सर्ग चौव्वनवें पद्य तक द्रुतविलम्बित वृत्त में है और उसके बाद महाकवि ने जानबूझकर नैपुण्य-प्रदर्शन हेतु; औपछन्दसिक, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मञ्जुभाषिणी, मत्तमयूर, वसन्ततिलक, वैतालीय, शालिनी और स्वागता वृत्त का प्रयोग किया है। इस प्रकार **'कुमारसम्भवम्'** के आठ वृत्तों की तुलना में **'रघुवंशम्'** में महाकवि ने कुल उन्नीस वृत्तों का प्रयोग किया है। इन छन्दों में से किसी में भी यति इत्यादि के सम्बन्ध में कोई दोष नहीं पाया जाता है। इस प्रकार महाकवि कालिदास की शैली एक आदर्श काव्यशैली के रूप में देखी जाती है।

(vi) कालिदास की भावव्यञ्जना

कालिदास मूलतः ललित सुकुमार भावों के कवि हैं फिर भी उनकी रचनाओं में परस्पर विरोधी भावों का मधुरोपन्यास है। एक ओर यदि वे शालीन सम्भोग का चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खींचते हैं तो अपरच वियोग की भीषण ज्वाला। एकत्र भावनाओं का ज्वार है तो अपरच जीवनदर्शन की व्याख्या। उनके कल्पना महलों पर मनोभावों के कृष्णमेघ स्निग्ध रसवृष्टि का प्रत्येक भावुक हृदय को भिगो देने की सामर्थ्य न रखे, ऐसा कैसे हो सकता है? पार्वती के शरीर में यौवन ने कितना कमाल दिखाया है। इस विषय में कवि की तूलिका से निःसृत ये पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं–

"उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुसिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन।।"

कुमारसम्भवम् 1/32

तूलिका से रंग भरने पर जैसे चित्र खिल उठता है, सूर्य किरणों के संस्पर्श से जैसे कमल खिल उठता है, उसी प्रकार यौवन के संस्पर्श से पार्वती का अंग-प्रत्यंग खिल उठा। इसी प्रकार जीवन मरण का दर्शन भी अत्यन्त सरलता के साथ भावातिशयपूर्ण शब्दों में कवि ने प्रकट किया है।

"मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवान सौ।।"

(रघुवंशम् 8/87)

कालिदास का हृदय पात्र के हृदय से तादात्म्य स्थापित कर लेता है परिणामतः पात्र के भावों में जीवन्तता का संचार हो जाना स्वाभाविक है। ब्रह्मचारी वेशधारी शिव के द्वारा तपोनिरता पार्वती की परीक्षा के समय शंकर विषयक निन्दाओं का पार्वती ने कितनी दृढ़ता से उत्तर दिया, अवलोकनीय है–

"अकिंचनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।।"

पिनाकधारी भगवान् शंकर के यथार्थरूप में जानने वाले लोग हैं ही कहाँ? शिव तो अकिंचन होकर भी सम्पत्तियों के जन्मदाता हैं। श्मशानवासी होकर भी तीनों लोकों के स्वामी हैं। अशिववेश होने पर भी कल्याणरूप ही हैं। इस प्रकार के गुण उदात्त पति-परायणा नारी में ही सम्भव है।

वस्तुतः कालिदास हृदय प्रधान कवि हैं विनोदी, विलासी और अनुराग के सहज प्रेमी होकर भी उनके हृदय में देवी-देवताओं के प्रति आस्था, सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और भारतीय संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा है। कालिदास की मान्यता है कि युवावस्था में मनोहर रूप के दो पक्ष होते हैं–

(1) वह जो पापवृत्ति की ओर उन्मुख नहीं होता–**"यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपभित्यव्यभिचारि तद्वचः।"** (2) प्रिया के रूप में वह शक्ति होनी चाहिए जो पति को लुभा सके, आकृष्ट कर सके और उसे जीत सके–**"प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।"** इसका अभिप्राय यही है कि रूप सौन्दर्य केवल आकृतिमय से श्रेष्ठ नहीं हो सकता उसमें गुणों की सत्ता एवं भावात्मकता भी होनी चाहिए। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में कवि ने इसका स्पष्ट संकेत किया है–**"न तादृशाः आकृतिविशेषाः गुणविरोधिनो**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति।'' कालिदास भावनाओं के अतिशय रूप का चित्रण तो करते हैं किन्तु औचित्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करते। जहाँ औचित्य का पालन नहीं होता वहीं रसानुभूति में बाधा होती है जैसा कि काव्यशास्त्रियों की मान्यता है—**''अनौचित्याहते नान्यद् रस-भंगस्य कारणम्।''**

रघुवंश 19 सर्गों का विशाल महाकाव्य है, लेकिन प्रत्येक सर्ग एक नया भाव, नया आधार लेकर आता है। न तो कहीं पुनरावृत्ति है न कहीं एकरूपता। नवीन-नवीन भावों की उद्भावना कोई कवि तभी कर सकता है जब उसने उचित अवसर पर उचित वातावरण की सृष्टि की हो। कोई भाव स्वयं में कितना ही महनीय हो किन्तु वह काव्यात्मक अनुभूति का विषय अथवा प्रभावक तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसे अनुकूल वातावरण न मिले। कालिदास ने माघ, भारवि या श्रीहर्ष की भाँति रघुवंश को एक सीमित वातावरण में बन्द नहीं रखा अपितु उसे भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक कोने तक पहुँचाया है।

कवि ने जब जीवन के मधुर भाव की सरलता एवं निश्छलता की व्यंजना करनी चाही तो वह नगरीय छल छद्म से दूर ग्रामीण वातावरण के बीच पाठक को पहुँचा देता है और जब शान्त भाव की सृष्टि करना चाहता है तो तपोवन के पवित्र प्रांगण की भावभूमि उपस्थित करता है। नन्दिनी पर सिंह के आक्रमण की भयानक स्थिति का चित्रण करने के लिए हिमालय की गहन कन्दराओं और सघन वनराजि का आश्रय लेता है—**''गंगा प्रपातान्त विरुढ शष्पं गौरीगुरोर्गह्वरभाविवेश।''** दूसरी ओर इन्दुमती की रूपमाधुरी पर राजाओं के चित्तचांचल्य का चित्रण करने के लिए राजसभा मण्डप और स्वयंवर का दृश्य उपस्थित करता है। देश देश की सैर किए बिना न तो हमारे मन पर प्रतापी रघु की दिग्विजयम् का चित्र उभर सकता है। और न अतिथि राज दरबार में पहुँचे बिना राजसी ठाठ-बाट के दर्शन ही हो सकते हैं।

कालिदास ने काव्य का आरम्भ करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि हमें रघुवंश का वर्णन करना है—**''सोऽहमाजन्म शुद्धानां आफलोदय कर्मणाम्....रघूणाभन्वयं वक्ष्ये''**। स्पष्ट है कि इस काव्य में एक कुल के अनेक राजाओं का वर्णन करना है। द्वितीय, रघु, अज, दशरथ, राम, कुश आदि सभी 39 राजाओं के राज्य में राजदरबार, विजययात्रा, दाम्पत्य, राज्याभिषेक आदि की समान घटनाएँ होंगी ही, किन्तु सभी का सबकुछ वर्णन करने में पुनरुक्ति दोष की सम्भावना थी। इसीलिए कवि ने पात्रानुकूल पृथक् पृथक् घटनाओं को ही अपने वर्णन का विषय बनाया। इससे जहाँ वे पुनरुक्ति दोष से बच गए वहीं नवीन भावधाराओं की सृष्टि करके अलग अलग राजाओं की अलग अलग विशेषताओं का चित्रण कर पाठकों के हृदय में नवीन उत्सुकता और कौतूहल को उत्पन्न कर सकें।

कालिदास भावना प्रधान कवि हैं। सबकुछ अपनी ही वाणी या लेखनी से कहने की अपेक्षा सहृदय के लिए भावना करने का अवसर भी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए यह श्लोक ही देखें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेध नियात चूर्णिताः।
वलीसु तस्याः स्खलिताः प्रयेदिरे क्रमेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः।।"

कुमारसम्भव के इस श्लोक में तपोरत पार्वती के शरीर पर वर्षा की प्रथम बूँदों का वर्णन है–'वर्षा की बूँदें पार्वती की पलकों पर क्षण भर रूकीं फिर उन्होंने अधरोष्ठ को ताड़ित किया। उरोजों पर गिरकर चकनाचूर हो गईं और बाद में वे त्रिवली पर फिसलती हुई नाभि में समा गईं।' यहाँ जहाँ वर्षा की बूँदों की स्वाभाविक गति का सरल वर्णन है वहीं पार्वती के यौवन-जन्य सौन्दर्य गूढ़भाव व्यञ्जना भी है जैसे–

1. **स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु से**–पार्वती के नेत्र लोमों (बरौनियों) का घनत्व, आँखों का अर्धनिमीलित होना ध्वनित है वहीं नेत्रों का सौन्दर्य (कजरारे नयन) भी व्यक्त होता है।

2. **ताडिताधराः से**–अधरोष्ठ का अतिशय कोमलत्व एवं मुख का बन्द होना व्यञ्जित है।

3. **दयोधरोत्सेधनियात चूर्णिताः से**–स्तनों की पुष्टता, कठोरता और शारीरिक निश्छलता भी ध्वनित होती है।

4. **वलीसु स्खलिताः से**–उदर रेखाओं या सलवटों का चिक्कणत्व व्यञ्जित है।

5. **नाभिं प्रवेदिरेः से**–नाभि का पर्याप्त गहरा होना व्यंग्य है।

6. **क्रमेण से**–पार्वती का निश्चल होकर तपस्यारत रहना तथा उन्हें न पोंछने का भाव भी व्यञ्जित होता है।

इस प्रकार इन सभी ध्वनियों में पार्वती के विविध अंगों का सौन्दर्य तथा उनकी उत्कृष्ट तपस्या को कवि ने एक ही श्लोक के द्वारा व्यञ्जित कर अपने 'मितं च सारं च' भाव को मूर्तरूप प्रदान किया है।

इसी प्रकार कवि की मनोभावनाओं को प्रकट करने की अद्भुत क्षमता का ज्ञान इस श्लोक में अवलोकनीय है।

एवं वादिनि देवर्षो पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमल पत्राणिं गणयामास पार्वती।।

(कुमारसम्भव)

अपने ही विवाह की वार्ता के समय पिता के पास बैठी हुई पार्वती सिर नीचा किए हुए एक कमल की पंखुड़ियों को गिन रही है। इसमें कमलदल गिनने की क्रिया से उसकी लज्जालु मनोभावना और पतिविषयक प्रेमभावना की उत्सुकता व्यञ्जित है। वह सबकुछ सुनना चाहती है जो नारद जी शिव के विषय में कह रहे हैं इसीलिए वहाँ से उठकर जाती नहीं है अपितु कमल पंखुड़ियों को गिनने के माध्यम से उस उत्सुकता को प्रकट भी नहीं होने देना चाहती। अधोमुखी शब्द से उसका लज्जालु भाव भी व्यक्त होता है। यही कवि की विशिष्ट भाव-व्यञ्जना पद्धति है जो उनकी सभी कृतियों में सर्वत्र प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(vii) कालिदास का रसनिरूपण

रस ही काव्य की आत्मा है, इस पर सभी भारतीय आचार्य प्रायः एकमत हैं। 'रसो वै सः' इस वाक्य से भी रस को ब्रह्मास्वाद सहोदर की संज्ञा से विभूषित कर काव्य का चरम उद्देश्य निर्धारित किया गया। जैसे आत्मारहित शरीर शव, प्रेत या मुर्दा कहलाता है उसी प्रकार रसहीन काव्य, अकाव्य ही होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य का प्राणत्व रस ही है।

महाकवि कालिदास का पुण्यस्मरण रससिद्ध कवीश्वर के रूप में ही किया जाता है। रस का आस्वाद बुद्धि अथवा तर्क का विषय न होकर भाव अथवा राग का विषय है। इस भाव-स्थिति में सहृदय सचेता आत्मविस्मृत होकर प्रकृति पुरुष के भेद को भूल जाता है। उसके विचारों का बन्दीगृह ढह जाता है और आत्मा शाश्वत सम्वेदनशील भावाकाश में उन्मुक्त विचरण करने लगता है।

किसी भी काव्य में भाव, वातावरण, रूप आदि का निरूपण रस को ही दृष्टि में रख कर किया जाता है और उनका महत्त्व भी रसपरक होने में ही होता है। कालिदास मूलतः शृंगार के शीर्षस्थ कवि हैं। सम्भोग और विप्रलतम दोनों प्रकार के शृंगार वर्णन में वे सिद्धहस्त हैं। करुण, वीर, अद्भुत और शान्त रसों की व्यंजना भी उन्होंने मार्मिकता के साथ की हैं हास्यरस का भी प्रयोग यत्र-तत्र प्राप्त होता है। अपने नाटकों में कालिदास ने विदूषक के माध्यम से हास्यरस का अच्छा परिपाक किया है।

कुमारसम्भव महाकाव्य में सम्भोग शृंगार रस के पर्याप्त उदाहरण हैं। पार्वती के अधरक्षत की औषधि शिवशिरः स्थित चन्द्रकला को बतलाते हुए कवि कहता है—

दष्टमुक्तमधरोष्ठमम्बिका वेदनाविधुत हस्तपल्लवा।
शीतलेन निरवापयता क्षणं मौलिचन्द्रशकलेन शूलिनः।।

अधरक्षत की पीड़ा से व्यथित पार्वती को चन्द्रकला की शीतलता से आराम मिल गया।

विप्रलम्भ शृंगार की व्यञ्जना का उदाहरण पूरा मेघदूत है जिसमें कवि ने विरही यक्ष के द्वारा यक्षिणी को मेघ द्वारा सन्देश दिया गया है। वस्तुतः कालिदास के काव्यों में सम्भोग शृंगार की अपेक्षा विप्रलम्भ शृंगार का चित्रण अधिक मनोरम है। मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी की रूपमाधुरी का वर्णन करता है—

तन्वीश्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराधेव धातुः।।

(हे मेघ) अलकापुरी की स्त्रियों में विधाता की पहली रचना मेरी प्रिया (यक्षिणी) छरहरी देह, नवयौवन, कली जैसी दन्तपंक्ति, पक्वविम्बफल सा अधरोष्ठ, क्षीणकटि, चकित हरिणी सदृश चंचल नयन, गहरी नाभि, गुरु नितम्ब भार से मन्दगति, पुष्ट एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नत उरोज भार से झुकी हुई बदन वाली थी।

यक्ष के इस वर्णन में विभिन्न अंग प्रत्यंगों का सौन्दर्य ही व्यंग्य नहीं है अपितु अपने सौन्दर्य से किसी भी व्यक्ति के हृदय में तड़प पैदा करने की सामर्थ्य उसमें थी यह भी व्यञ्जित होता है। यक्ष कहना चाहता है कि वह विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी किन्तु आज मेरे विरह से उसकी न जाने क्या दशा होगी। स्वयं कल्पना करता हुआ उसकी वर्तमान दशा बतलाता है–''जातं मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनी वान्यरूपाम्'' शीतऋतु में पाले (तुषारपात) से मसली हुई कमलिनी की भाँति आज वह शोभाहीन हो गई होगी।

कालिदास की यह बड़ी विशेषता है कि वे प्रकृति के माध्यम से वर्णनीय वस्तु, व्यक्ति या भाव का एक चित्र-सा उकेर देते हैं जिससे वह सहृदय हृदय में प्रत्यक्षानुभूति करा देता है। वस्तुतः प्रेम की महिमा स्थापित करना ही मेघदूत का उद्देश्य प्रतीत होता है किन्तु उसमें भारतीय मर्यादा है उन्मुक्त आचरण नहीं। कवि ने अपनी प्रिया के विषय में इंगित किया है कि 'वह पति का नाम एवं गुणगान कर उसका चित्र बना कर, उसे स्वप्न में देख कर अपनी दीर्घ वियोग की अवधि को काट देगी लेकिन पर पुरुष की ओर दृष्टिपात भी नहीं करेगी। इस प्रकार श्रृंगार में भी भारतीय सांस्कृतिक मर्यादा का उन्हें निरन्तर बोध रहता है।

श्रृंगार के बाद करुण रस की मार्मिक व्यंजना में भी कालिदास बेजोड़ हैं। कामदेव के भस्म हो जाने पर उसकी पत्नी रति भी जीवनधारण करना नहीं चाहती। वह कहती है–

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित प्रलीयते।
प्रभदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्न हि विचेतनैरपि।।

(कुमारसम्भव 4/33)

अर्थात् चन्द्रमा के साथ चाँदनी और मेघ के साथ बिजली चली जाती है। पत्नी पति के साथ जाती है यह नियम अचेतनों में भी दृष्टिगोचर होता है।

रघुवंश में पुष्पमाला से इन्दुमती की मृत्यु पर अज विलाप करता हुआ कहता है–

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निर्हिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं वचचिद् भवेदमृतां वा विषमीश्वरेच्छया।।

यदि यह पुष्पमाला जीवन का हरण करने वाली हो तो मेरे हृदय पर रखने से यह मुझे क्यों नहीं मार डालती। ईश्वर की इच्छा से अमृत कभी या कहीं विष और विष अमृत हो जाता है। क्योंकि यही पुष्पमाला इन्दुमती के लिए विष बन गई और अज के लिए अमृत।

इसी प्रकार राजा दिलीप के बाहुप्रतिष्टम्भ में, शाकुन्तलम में अप्सरा तीर्थ से शाकुन्तला को आकाश में उठा लेने आदि स्थलों में अद्‌भुत रस का; तपोवन के वर्णनों में शान्तरस का एवं युद्धादि प्रसंगों में रौद्र रस का सम्यक् परिपाक है। अतः स्थाली पुलाक न्याय से कालिदास की रस व्यंजना का यहाँ संक्षिप्त परिचय प्रदान किया है। **किसी ने ठीक ही कहा है–**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्पष्ट दोषा नलिनीव हृधा हारावलीव ग्रथिता गणौधैः।
प्रियांकपालीव प्रकामहृधा न कालिदासादपरस्य वाणी।।

(viii) कालिदास का अलंकार निरूपण

प्रत्येक कवि को अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का आश्रय तो लेना ही पड़ता है। उसमें सौन्दर्य का आधान करने के लिए अलंकारों की भी आवश्यकता होती ही है। आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति की व्याख्या करते हुए लिखा है—"**वैदग्ध्यं विदग्धभावः कविकर्मकौशलं तस्य विच्छित्तिः तया भणितिः विचित्रैव अमिधा वक्रोक्ति**" अर्थात् उक्तिवैचित्र्य ही वक्रोक्ति है और उक्तिवैचित्र्य प्रकारान्तेर से अलंकार भी है। कतिपय काव्यशास्त्रियों ने तो काव्य में अलंकारों की सत्ता को अनिवार्य भी माना है—

"न कान्तमपि निर्मूषं विभाति वनिताभनम्।"
"किं तया कवितया राजन् किं वा वनितया तया।
पद विन्यासमात्रेण मनो नापहृतं यथा।"

इसके विपरीत अधिकांश साहित्यशास्त्रियों का अभिमत है कि काव्य में अलंकारों को मुख्यता प्रदान नहीं की जा सकती क्योंकि वे तो शरीर के आंगिक आभूषणों की भाँति शब्द और अर्थ को सजाने वाले ही होते हैं।

आत्मस्थानीय तत्त्व तो रस ही है—

"अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत।
वपुष्पललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम्।।"
(अग्निपुराण 1/349)

आचार्य मम्मट ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

"उपर्कुवन्ति तं सन्तं ये ऽ ङ्गद्वारेणं जातुचित्
हारादिवदलंकारास्ते ऽ नुप्रासोपमादयः।"

वस्तुतः कालिदास ध्वंनिप्रधान कवि ही हैं किन्तु वे भाषा में लालित्य लाने के लिए उचित अलंकारों के प्रयोग में भी पूर्ण सिद्धहस्त हैं। उनके काव्यों में कहीं भी कृत्रिम अलंकारों का बोझ भाषा नी नहीं आने पाया है। रूपवती सुभूषित नारी की भाँति उनकी भाषा पाठक का मन मोहने में पूर्ण समर्थ है। यही कारण है कि उनकी कविता में स्वाभाविक अलंकार स्वतः ही आ जाते हैं। श्रमसाध्य, कठोर और विद्वतापूर्ण अलंकार जैसे यमक, श्लेष आदि शब्दालंकार तथा पर्यायोक्त, काव्यलिङ्ग आदि अर्थालंकारों का उन्होंने यथासम्भव परित्याग किया है। अधिकांशतः उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, व्यतिरेक और अपह्नुति जैसे अलंकारों से उनकी भाषा अपने आप मनमोहक हो गई है।

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उपमा अलंकार के प्रयोग में कालिदास बेजोड़ हैं। उपमा उनका सर्वप्रिय अलंकार है जिसकी विविधता, सुन्दरता आदि का विश्लेषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उपमा कालिदासस्य' शीर्षक में किया जाएगा। यहाँ कतिपय उदाहरणों के द्वारा उनकी अन्य अलंकार सम्बन्धी विशेषताओं का चित्रण किया जा रहा है।

अर्थान्तरन्यास अलंकार में कवि ने जिस अर्थान्तर का प्रयोग किया है, वह न केवल उपयुक्त होता है अपितु सुन्दर सार्थक और प्रभावशाली भी होता है जैसे–

"इतिध्रुवेच्छा मनुशासती सतां शशाक मेना न नियन्तुभुद्यमात्।
क ईप्सितार्थस्थिर निश्चय मनः पयश्चनिम्नार्भिमुखं प्रतीपयेत।।"

दृढ़निश्चयी पार्वती को उसकी माता मैना अपने निश्चय से नहीं रोक सकी (सत्य ही तो है) दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के मन को और नीचे की ओर बहते हुए जल की कौन रोक सकता है। यहाँ पार्वती के दृढ़ निश्चयी स्वभाव का समर्थन कवि ने एक शाश्वत सत्य के द्वारा किया है।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा के प्रयोगों में उन्होंने हृदयस्पर्शी भावों को साकारता प्रदान की है–

रघुवंश महाकाव्य में–

"सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरागारविन्द विश्लेषदुःखादिव बद्धभौनम्।।"

श्री राम लंका से लौटते समय सीता को वह स्थान दिखाते हैं जहाँ उन्हें सीता का नूपुर मिला था। वे कहते हैं हे सीते–यह वही स्थल है जहाँ तुम्हें खोजते समय तुम्हारे पैर से गिरा नूपुर मिला था ऐसा लग रहा था जैसे तुम्हारे पैरों के वियोग से दुःखी होने के कारण ही मानों उसमें मौन धारण कर लिया था। यहाँ राम के हृदय की पीड़ा इस उत्प्रेक्षा अलंकार से इस प्रकार व्यक्त हो रही है कि जब एक अचेतन नूपुर तुम्हारे वियोग में इतना व्यथित था तो सोचो भला मैं तुम्हारे वियोग में कितना व्यथित रहा होऊँगा, लेकिन कवि की यही विशेषता है कि वह जिस भाव को स्पष्ट कहने में संकोच कर रहे थे या शास्त्रीय नियमों की मर्यादा की रक्षा कर रहे थे वही भाव उनके मार्मिक अलंकार के द्वारा अभिव्यक्ति पा रहा है। स्पष्ट है कि कालिदास के अलंकार प्रयोग न केवल स्वाभाविक हैं अपितु मर्मस्पर्शी भी हैं और मधुर व्यञ्जनाओं के व्यञ्जक भी हैं।

इसी प्रकार "न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।" जैसी लोकोक्तियों की तर्ज पर अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग पार्वती के ओष्ठवर्णन और उन ओष्ठों पर फैली मधुर मुस्कान के वर्णन में किया है–

"पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुयदि, विशदस्यतस्यास्ताभ्रौष्ठ पर्यस्तरुचः स्मितस्य।।"

(कुमारसम्भव)

पार्वती के ताम्रवर्ण ओष्ठों पर स्थित मुस्कान की समानता तभी हो सकती है जब किसी कोंपल पर श्वेत पुष्प टंका हो या मूंगे पर मोती रखा हो। अर्थात् न कभी कोंपल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में श्वेत पुष्प टंका होगा और न कभी पार्वती के ओष्ठों की मुस्कान की समानता हो सकती है।

दीपक, अपह्नुति, विरोधाभास आदि अलंकारों के उदाहरणों में भी इसी प्रकार का सौन्दर्य जो रसानुभूति में चार चाँद लगा देते हैं उनके काव्यों में भरे पड़े हैं।

अर्थालंकारों में उपमा उनका सर्वप्रिय अलंकार है किन्तु अर्थान्तरन्यास के औचित्यपूर्ण प्रयोग में भी उनकी अद्भुत सामर्थ्य है। मेघदूत में यक्ष अचेतन मेघ से प्रिया के पास सन्देश ले जाने की याचना करता है। मेघ जो **'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्नियातः'** अर्थात् धूम, अग्नि, जल और वायु का संयोग मात्र है भला वह किसी का सन्देश कैसे ले जा सकता है यह याचना अनौचित्यपूर्ण न हो जाए, इसलिए उस यक्ष की याचना को औचित्यपूर्ण बनाने के लिए कवि अर्थान्तरन्यास अलंकार के माध्यम से कहता है–

''इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन, गुह्यकस्तं ययाचे।
कामातौ हि प्रकृतिकृपाणाश्चेतनाचेतनेषु।।''[1]

(पूर्वमेघ-5)

कामपीड़ित व्यक्तियों को चेतन अचेतन का बोध ही नहीं हो पाता। यक्ष की चरम कामपीड़ा का भाव भी इससे ध्वनित हो रहा है तथा याचना के औचित्य की रक्षा भी हो रही है। हिन्दी के महाकवि तुलसी ने इसी आधार पर सीता हरण के पश्चात् पशु, पक्षी, भ्रमरादिकों से राम के द्वारा सीता का पता पूछने का उल्लेख किया है–

''हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृगनयनी।''

(रामचरितमानस)

अर्थान्तरन्यास में समर्थक वाक्य प्रायः सूक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है। रघुवंश में **'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया'** –(रघुवंश 14/46), कुमारसम्भव में–**''एको हि दोषो गुणसन्नियाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः''**–(1/3), अभिज्ञान शाकुन्तलम में–**''किमिव हिं मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्''**–(1/19), आदि दृष्टव्य हैं। इसी प्रकार कुछ शाश्वत् सत्य कवि के अर्थान्तरन्यास में सूक्तिमय रूप में मूर्तिमन्त हो गए हैं–**''मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्'' ''नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण''**, **''हंसो हि क्षीर-मादत्ते तन्मिश्रं वर्जयत्यपः''** आदि। कुल मिलाकर विचार किया जाए तो कालिदास का अलंकार निरूपण औचित्य, रस, भाव, पात्र और वर्णन आदि के अनुकूल एवं मनोवैज्ञानिकतापूर्ण है तथा रसानुभूति को और अधिक प्रवणता प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो उनके अलंकार कविता कामिनी के अंगों पर सुशोभित होने वाले वस्त्राभूषणों की भाँति न होकर स्वयं उसके शरीरलावण्य के अंग बन गए हैं। यही कारण है कि कालिदास के अलंकारों की गणना कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष में करना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। क्योंकि भावों के साथ उनका इतना अधिक तादात्म्य हो जाता है कि उनकी पृथक् सत्ता प्रतीत ही नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपमा कालिदासस्य

महाकवि कालिदास का सर्वप्रिय अलंकार उपमा है। पद पद पर उन्होंने इसका प्रयोग किया है या यों कहें कि वह स्वयं ही अनेक कलात्मक आवरणों के साथ उनकी रचनाओं में अवतरित हुई है। यूँ तो शायद ही कोई कवि हो जिसमें उपमा का प्रयोग न किया हो किन्तु कालिदास की उपमाओं में जो सरलता, स्वाभाविकता, लालित्य, सौन्दर्य, औचित्य, चमत्कार, व्यावहारिकता, विविधता और हृदयस्पर्शिता है वैसी अन्यत्र प्राप्त होना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। जब हम कालिदास की उपमाओं पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि अन्य कवियों की अपेक्षा उनकी उपमाओं में सहज रमणीयता है। स्थान, पात्र, काल और भावनाओं तथा प्रयोजन की अनुकूलता है उसमें कृत्रिमता या प्रयत्नसाध्यता का सर्वथा अभाव है। सम्भवतः उनके इसी गुण को ध्यान में रखकर समीक्षकों ने 'उपमा कालिदासस्य' कह कर उपमा का एकछत्र सम्राट घोषित किया है। कल्पनाशक्ति के आधार पर यदि उनकी उपमाओं पर दृष्टिपात करें तो उनकी उपमाओं को आगम और स्वरूप के भेद से निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. सृष्टि पदार्थीय उपमाएँ
2. शास्त्रीय उपमाएँ
3. आध्यात्मिक उपमाएँ
4. व्यावहारिक उपमाएँ

स्वरूपभेद से भी कालिदास की उपमाओं को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. यथार्थता प्रधान उपमाएँ
2. रम्यता विशिष्ट उपमाएँ
3. औचित्यपूर्ण उपमाएँ
4. पूर्णतायुक्त उपमाएँ

(1) सृष्टि पदार्थीय उपमाएँ

कालिदास ने पृथ्वी पर उत्पन्न विविध लता, वृक्ष, फल, फूल, विभिन्न जातियों के प्राणी, आकाशीय गृह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र आदि सृष्टि के समस्त पदार्थों से उपमानों का चयन कर अपनी कल्पनाशक्ति को उपमा के माध्यम से साकार किया है। उदाहरणार्थ–

1. कण्व जैसे कठोर संन्यासी को प्राप्त शकुन्तला की उपमा अर्क पर पतित नवमालिका पुष्प से देते हुए कालिदास कहते हैं–

सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्।।

(अभि.शाकु. 2/8)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें मेनका (देवाप्सरा) की सन्तान होने के कारण शकुन्तला की कोमल नवमल्लिका पुष्प से तथा 'अर्क' से कठोरव्रती कण्व की कल्पना पात्रों के स्वभाव एवं प्रकृति के अनुरूप भी है और चेतन की अचेतन से उपमा भी साकार हुई है। साथ ही शकुन्तला की कोमलता और ऋषि की कठोरता भी व्यंजित हुई है।

2. कुमारसम्भव में भगवान् शंकर द्वारा कामदेव को भस्म कर देने पर पति वियोग में बिलखती हुई रति की उपमा सूखे हुए तालाब में तड़पती हुई मछली से देकर कालिदास ने जहाँ भूतल का बारीकी से अवलोकन किया था वहीं आकाशीय नक्षत्रादिकों का भी उन्हें पूर्ण ज्ञान था।

3. तीनों लोकों को अपने बल-पराक्रम से सताने वाले तारकासुर की उपमा उन्होंने धूमकेतु से दी है। धूमकेतु अनिष्ट का संकेतक है। आकाश में उदित होते ही यह अनुमान हो जाता है कि अब सृष्टि में अवश्य ही कुछ अनर्थ या विनाश घटित होने वाला है।

सृष्टि पदार्थीय उपमाओं में कालिदास ने प्राकृतिक लता, पुष्प, वनस्पति आदि को अधिकांशतः उपमान बनाया है। शकुन्तला हो या इन्दुमती, पार्वती हो या अन्य स्त्रीपात्र। सभी के शारीरिक सौन्दर्य प्राकृतिक पदार्थों से उपमित किए गए हैं। इससे जहाँ उनकी अलंकार प्रियता का बोध होता है वहीं प्रकृति के प्रति उनकी अपार श्रद्धा भी व्यक्त होती है।

4. शकुन्तला लता की भाँति ही है इसका वर्णन कितना सहज, सरल और सुन्दरता से कालिदास ने किया है—

'अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणी बाहू।
कुसुममिवलोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम।।

(अभि. शाकुन्तलम्)

5. रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने दिलीप गोसेवा का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया है जिसमें राजा दिलीप, रानी सुदक्षिणा और नन्दिनी गाय इन तीनों की एक ही श्लोक में क्रमशः दिन, रात्रि और सन्ध्या समय की तीन धाराओं से उपमा दी है—

"पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिव धर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।।"

इसमें वन से लौट रही नन्दिनी के पीछे राजा है और नन्दिनी का स्वागत करने के लिए आगे रानी सुदक्षिणा है। इस प्रकार रानी और राजा के मध्य नन्दिनी गाय की उपमा सन्ध्या से देकर कालिदास ने अनेक भावों, परम्पराओं और मान्यताओं को इस छोटे से श्लोक में उपमा के माध्यम से पिरो दिया है

जैसे—

(i) राजा दिन के समान है, दिन कैसा? ढलता हुआ क्योंकि सायंकाल वन से लौटना हुआ है दिलीप का। इससे राजा दिलीप की उम्र भी ढलान पर है और अभी तक उनके कोई सन्तान नहीं है इससे उनकी प्रखरता ढलते हुए सूर्य की भाँति क्षीण हो रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है यह एक भाव का अभिव्यक्त होता है।

(ii) सुदक्षिणा की उपमा रात्रि से दी है। रात्रि में अन्धकार होता है जिसमें यात्रा करने पर आगे कुछ भी दिखाई नहीं देता। सुदक्षिणा ने भी किसी सन्तान को जन्म नहीं दिया है इसलिए वह रात्रि के समान है जिससे आगे उनके वंश की गति दिखाई नहीं पड़ रही है।

(iii) भारतीय संस्कृति में सन्तानहीन वन्ध्या नारी रात्रि के समान अन्धकारयुक्त मानी गई है क्योंकि उससे वंश की वेल ही छिन्न हो जाती है।

(iv) नन्दिनी की उपमा सन्ध्या से दी है। सन्ध्या काल के आगे रात्रि और पीछे दिन होता है। यहाँ स्वागतार्थो सुदक्षिणा आगे और राजा दिलीप पीछे है दोनों के मध्य नन्दिनी है। अतः क्रम का औचित्य भी है। ढलता दिन और निस्तेज व्यक्ति धुंधला और रात्रि काली तथा दोनों के मध्य सन्ध्या ताम्रवर्णा होने से वर्ण का औचित्य भी है।

(v) प्रातःकाल से लेकर दिनभर किए गए पापों, दुष्कर्मों का विनाश सन्ध्या से हो जाता है इसी प्रकार रात्रिजन्य पापों का विनाश भी प्रातः सन्ध्या से हो जाता है। स्पष्ट है कि सन्ध्या में विशेष शक्ति है इसीलिए हिन्दू संस्कृति में 'सन्ध्या' की उपासना का विधान किया गया—"अहरहः सन्ध्यामुपासीत्" नन्दिनी की उपमा सन्ध्या से देकर कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि राजा दिलीप और सुदक्षिणा के पापों का विनाश नन्दिनी ही कर सकती है और तभी राजा को पुत्र प्राप्ति होने से वंशवेल आगे बढ़ सकती है इसीलिए महाप्रतापी चक्रवर्ती सम्राट दिलीप को राजपाट, वैभव, सुख-सुविधाएँ सबकुछ छोड़कर वन वन नन्दिनी के पीछे छाया भी भाँति भटकना पड़ा। अतः सन्ध्या और नन्दिनी का उपमानोपमेयभाव अनेक भावों को उकेरता हुआ है इतना ही नहीं कालिदास ने समय के साथ-साथ स्थान का भी ध्यान रखा। यह स्थान है वशिष्ठ का आश्रम। आश्रम में उस समय सभी ब्रह्मचारी सन्ध्या की उपासना में लीन होंगे। इसलिए भी नन्दिनी की उपमा समायोचित है।

इस प्रकार उपमा के अद्‌भुत शिल्पी कालिदास ने इस श्लोक के माध्यम से लिंग, वर्ण, समय, पात्र और स्थान के औचित्य की रक्षा की है हिन्दू संस्कृति की आध्यात्मिक मान्यताओं को महत्त्व देते हुए राजा और रानी की आशाओं को पूर्णता प्रदान करने में समर्थ पापविनाशिनी सन्ध्या को गाय का उपमान बनाकर कवि ने सर्वांगीण सुन्दरता, औचित्य और पूर्णता का विशेष ध्यान रखा है। इस प्रकार की उपमाओं के अनेक उदाहरण उनकी कृतियों में विद्यमान हैं।

(2) शास्त्रीय उपमाएँ

महाकवि कालिदास की उपमाओं में विविधता का बाहुल्य है। उन्होंने व्याकरण, दर्शन, राजनीति, आयुर्वेद आदि क्षेत्रों से उपमानों का चयन कर अपने शास्त्रीय ज्ञान का परिचय ही नहीं दिया है अपितु अपनी कलात्मक प्रतिभा को बहुआयामी रूप भी प्रदान किया है। उदाहरणार्थ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।"

(रघुवंश 1/1)

इस श्लोक में भगवान शिव और पार्वती की वन्दना करते हुए कवि ने पार्वती की उपमा वाक् (वाणी अर्थात् शब्द) से और शिव की अर्थ से देकर व्याकरण शास्त्रीय इस सिद्धान्त को सहजता से प्रतिपादित कर दिया है कि शब्द और अर्थ अन्योन्याश्रित हैं। बिना अर्थ के शब्द और बिना शब्द के अर्थ दोनों ही अधूरे हैं, अपूर्ण हैं। भगवान् शिव को अर्धनारीश्वर कहा गया है, उनके आधे शरीर में भगवती पार्वती की सत्ता है अर्थात् जैसे वाणी और अर्थ एक ही तत्त्व के दो आयाम हैं उसी प्रकार पार्वती और शिव एक ही शरीर के दो भाग हैं।

कुमारसम्भव में कवि ने तारकासुर की उपमा सन्निपात ज्वर से देकर अपने आयुर्वेदज्ञान का परिचय दिया है। जैसे उग्र सन्निपात ज्वर में औषधियाँ व्यर्थ हो जाती हैं उसी प्रकार तारकासुर के समक्ष देवताओं की समस्त शक्तियाँ व्यर्थ हो जाती हैं।

रघुवंश में दिलीप गोसेवा प्रसङ्ग में कवि ने राजा दिलीप की पत्नी साम्राज्ञी सुदक्षिणा के द्वारा नन्दिनी के मार्ग का अनुसरण करते समय तीन उपमान दिए। सुदक्षिणा का स्मृति, नन्दिनी का श्रुति और मार्ग का अर्थ से।

"तस्याः खुरन्यास पवित्र पांशुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीय।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत।।"

नन्दिनी के खुरों से पवित्र मार्ग का, सच्चरित्र स्त्रियों में सर्वोपरि सुदक्षिणा ने उसी प्रकार अनुसरण किया जैसे वेदों के अर्थ का अनुसरण स्मृतियाँ करती हैं। यहाँ कवि ने स्मृति से सुदक्षिणा को उपमित कर इस धर्मशास्त्रीय मान्यता को उजागर किया है कि स्मृतियाँ समस्त ज्ञान-विज्ञान के कोश वेदों के अर्थ के अनुसार ही हैं उनमें कोई बाह्य कल्पना या जल्प नहीं है। नन्दिनी गौ होते हुए भी सर्वशक्तिसामर्थ्ययुक्त हैं तभी तो उसे कामदुधा कहा गया है। इच्छानुसार वर देने की उसमें शक्ति है। यही मान्यता श्रुति अर्थात् वेदों में है। जितने भी यज्ञ किए जाते हैं उनमें वेदमन्त्रों के द्वारा ही अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। यह धर्मशास्त्र की मान्यता है और इनका प्रयोग भी किया गया है, फल भी प्राप्त हुआ है अतः नन्दिनी की उपमा श्रुति से पूर्णतः सार्थक है।

जैसे वेदमन्त्रों का अर्थ पवित्र होता है उसी प्रकार नन्दिनी के खुरों के संस्पर्श मात्र से वह मार्ग पवित्र हो गया है जिस मार्ग से नन्दिनी वन को जा रही है अतः मार्ग का उपमान वेदार्थ से देना भी सर्वथा सार्थक है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कालिदास एक उपमा देते समय उसके साथ अनेक उपमानों की योजना कर उसे न केवल पूर्णता प्रदान करते हैं अपितु इस बात का भी विशेष ध्यान रखते हैं कि कहीं भी अस्पष्टता या पाठक को सन्देह न रह जाए।

व्याकरण शास्त्रीय धातु और उपसर्ग की पारस्परिक सम्बद्धता को अति सरलता से कवि ने उपमा के माध्यम से व्यक्त किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थ सिद्धये।
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत।।

(रघु. 15/9)

श्री राम के आदेश से सेना ने शत्रुघ्न का इस प्रकार अनुसरण किया जैसे इङ् धातु का अधि उपसर्ग कभी साथ नहीं छोड़ता। यहाँ कवि कहना चाहता है कि अध्ययनार्थक इङ् धातु के साथ अधि उपसर्ग सदैव सम्बद्ध रहता है तभी अध्ययन शब्द बनता है। एकाकी इङ् धातु का प्रयोग नहीं होता है। इसी प्रकार राम की सेना ने शत्रुघ्न का कभी साथ नहीं छोड़ा। इस प्रकार व्याकरण की गुत्थियों को उपमा के माध्यम से सुलझाते हुए कालिदास ने शास्त्रीय उपमानों का सटीक प्रयोग किया है।

ब्राह्म सरोवर से निकलने वाली सरयू नदी की अव्यक्त तत्त्व (प्रकृति) से उद्भूत महत् तत्त्व से उपमा देकर कवि ने सांख्य दर्शन सिद्धान्त का अनुसरण किया है। इस प्रकार की शताधिक उपमाएँ उनकी कृतियों में उपलब्ध हैं। इससे स्पष्ट होता है कि साहित्यकार होते हुए भी कालिदास की शास्त्रीय क्षेत्र में न केवल गहरी पैठ थी अपितु शास्त्रीय सिद्धान्तों को साहित्य के साथ समायोजित करने का अद्भुत कौशल भी उनमें था।

(3) आध्यात्मिक उपमाएँ

साधारण कवि भी मूर्तजगत् से उपमानों का चयन कर सकता है पर अमूर्त्त मनोव्यापारों का उपमानों के रूप में चयन कालिदास जैसा अद्भुत शिल्पी ही कर सकता है कतिपय उदाहरणों से उनका परिचय इस प्रकार है–

(1) **तां देवतापित्रतिथिक्रियाऽर्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः।
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोयपन्ना।।**

(रघु. 2/16)

इस श्लोक में ऋषि वशिष्ठ की गाय नन्दिनी के पीछे चलने वाले दिलीप की उपमा श्रद्धायुक्त विधि से देकर कवि ने इस आध्यात्मिक तत्त्व की व्याख्या की है कि कोई भी कार्यविधि तब तक फलीभूत नहीं होती जब तक वह श्रद्धापूर्वक न की गई हो। इस प्रकार अमूर्त उपमान की सार्थक योजना इसमें है जो आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है।

(2) इसी प्रकार माता को अलंकृत करने वाले भरत की उपमा सम्पत्ति को शोभा देने वाले विनय से देकर कवि ने मूर्त की अमूर्त से उपमा दी है–

कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान्।
जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम्।।

(रघु. 10/80)

(4) व्यावहारिक उपमाएँ

'सत् शिष्य को दी गई विद्या जैसे शोक के योग्य नहीं होती उसी प्रकार दुष्यन्त को समर्पित शकुन्तला शोक के योग्य नहीं है' कण्व ऋषि का यह कथन पूर्ण व्यावहारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं अनुभव पर आधारित है। "सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता" (अभि. शाकु.)। इसी प्रकार–

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।।

(रघु. 1/88)

वशिष्ठ ऋषि दिलीप को आदेश देते हैं कि 'अभ्यास से विद्या के समान तुम अपनी सेवा से नन्दिनी को प्रसन्न करो' यहाँ एक व्यावहारिक अनुभव को उपमा के माध्यम से कवि ने व्यक्त किया है।

स्वरूप की दृष्टि से भी कालिदास की उपमाओं में असाधारण सौन्दर्य और प्रसादात्मकता के दर्शन होते हैं। "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" इस वाक्य के द्वारा स्वयं कालिदास ने क्षण क्षण में नवीनता सृजन को रमणीयता का आधार माना है। यह नवीनता उनकी उपमाओं में भी पदे पदे परिलक्षित होती है।

मेघदूत में–'रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे' इत्यादि श्लोक में विन्ध्यपर्वत की तलहटी में रेवा नदी के प्रवाह को चित्र विचित्र रंग के बेलबूटों से सज्जित हाथी के शरीर से उपमित कर रूपगत रमणीयता को रेखांकित किया है। रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में गंगा-यमुना के संगम में अनेकविद्य उपमा उत्प्रेक्षा के माध्यम से नवीन नवीन उपमानों की कल्पना कर कालिदास ने रम्यता विशिष्ट उपमाओं को मूर्तायित किया है।

कालिदास की उपमाओं में जीवन की यथार्थता का स्पष्ट दर्शन होता है। अभिज्ञानं शाकुन्तलम् में **"मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्"** में तपस्वियों के बीच में कोमलांगी शकुन्तला पीले पके हुए पत्तों के मध्य किसलय अर्थात् कोंपल जैसी प्रतीत हो रही है।

इसी प्रकार मेघदूत में **"आशाबन्धः कुसुम सदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानाम्"** में स्त्रियों के मधुर, प्रेममय, स्वल्पविरह से व्याकुल हो जाने वाले हृदय को कुसुम से उपमित कर कवि ने यथार्थ को ही चित्रित किया है। पात्र, स्थान और समय, स्वभाव आदि के औचित्य तो उनकी सभी उपमाओं में देखे जा सकते हैं इसलिए औचित्यपूर्ण उपमाओं के पृथक् विवेचन की कोई आवश्यकता नहीं है। विदूषक जैसे प्राणी को चन्द्रमा भी शक्कर का लड्डू जैसा प्रतीत होता है तो मोटा विदूषक कालिदास की कलम से सांड के रूप में चित्रित किया गया है। यह पात्रानुकूल औचित्य ही है।

जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है, कालिदास की उपमाओं में प्रायः पूर्णता ही उपलब्ध होती है क्योंकि कुछ अंश छोड़कर कवि क्लिष्टता उत्पन्न करना नहीं चाहता। जहाँ तक पूर्णोपमा का प्रश्न है रघुवंश के इन्दुमती स्वयंवर का यह श्लोक ही दृष्टव्य है–

"संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिवंरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।"

स्वयंवर सभा में बैठे जिस जिस राजा के सामने से इन्दुमती निकल जाती थी उसकी क्या दशा होती थी इसका सम्पूर्ण चित्र खींचते हुए कवि ने उपमान, उपमेय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण धर्म और उपमावाचक, पूर्णोपमा के इन चारों तत्त्वों को पूर्णतः प्रस्तुत करते हुए असाधारण चमत्कार की सृष्टि की है। इसी उपमा से कालिदास को 'दीपशिखा' की उपाधि से सम्मानित किया गया। यहाँ इन्दुमती उपमेय, संचारिणी दीपशिखा उपमान, राजागण उपमेय, नरेन्द्रमार्गाट्ट उपमान, विवर्णभाव साधारणधर्म और इव उपमावाचक है।

वस्तुतः जैसे रात्रि के अंधकार में दीपशिखा लेकर चलने पर जिस राजभवन या महल के सामने दीपशिखा पहुँचती है वह भवन एकदम से चमक उठता है किन्तु दीपशिखा आगे बढ़ जाने पर वह भवन पुनः अंधकार में डूब जाता है। ठीक इसी प्रकार इन्दुमती वरमाला के साथ जिस राजा के सामने पहुँचती थी वह क्षण भर के लिए इस आशा से कि मेरे गले में ही वरमाला पड़ेगी प्रसन्नता से खिल उठता था, किन्तु जब इन्दुमती उसे छोड़ कर आगे बढ़ जाती थी तो उसके मुख की कान्ति निराशा अथवा ग्लानि से मलिन हो जाती थी। एक एक कर राजाओं की यही गति होती थी और वे विवर्णभावता को प्राप्त हो रहे थे। अतः इन्दुमती की संचारिणी दीपशिखा से उपमा अत्यन्त सार्थक, रमणीय एवं स्वाभाविक तथा पूर्ण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास की उपमाओं में पात्रों की अनुरूपता, वर्णनीय विषय की सुन्दरता, औचित्य की रक्षा और पूर्णता का ध्यान तो रखा ही गया है सर्वत्र सरलता, सहृदयता, रमणीयता, पर भी विशेष प्रयत्न है। कालिदास के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवियों में प्रायः इस सरलता, स्वाभाविकता एवं सुन्दरता का निर्वाह नहीं है। कहीं परिणामगत दोष हैं तो कहीं स्वरूपगत। कहीं भाव की उपेक्षा हैं तो कहीं समयगत औचित्य का अभाव। सम्भवतः कालिदास ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने उपमा अलंकार का सर्वविध औचित्य ध्यान में रखते हुए सर्वाधिक प्रयोग किया है और कहीं भी रस, भाव आदि में दोष नहीं आने पाया है। रसानुभूति को उन्होंने सर्वोपरि मान्यता दी है और औचित्य की रक्षा की है।

कालिदास की कुछ अन्य सुन्दर उपमाओं का संकेत भी यहाँ करना अनिवार्य है जैसे—

(i) 'आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव'—(रघु. 1/11)
(ii) 'ब्राह्मं सरः कारणमाप्रवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।—(रघु. 13/60)
(iii) फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव। —(रघु. 1/20)
(iv) 'अपवाद इवोत्सर्गः व्यावर्तयितुमीश्वरः' — (रघु. 15/7)
(v) 'हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्रा चन्द्रमसोरिवः' — (रघु. 1/16)
(vi) वभूव रामः सहसा सवाष्पः तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः — (रघु. 14/84)
(vii) पश्चिमाद् यामिनीयामात् प्रसादमिव चेतना — (रघु. 17/1)
(viii) प्रभाहत्यां शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः — (कुमार. 1/28)
(ix) पर्याप्तपुष्पस्तवकानम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव — (कुमार. 3/54)
(x) साभूद् रामाश्रया भूयो नदीवोभय कूल भाक् — (रघु. 12/35)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ix) कालिदास का प्रकृतिचित्रण

संस्कृत साहित्य के समस्त कवियों में कालिदास एक ऐसा विशिष्ट व्यक्तित्व है जिसकी व्यापक दृष्टि में समस्त सृष्टि चेतन अचेतन के भेद को भूलकर एकाकार हो गई है। भावात्मक दृष्टि से एक ही सत्ता प्रकृति और पुरुष के रूप में साकार हुई है। यही कारण है कि कालिदास प्रकृति पुरुष में कोई अन्तर नहीं रखते। चेतन जगत की भाँति ही अचेतन दिखाई पड़ने वाली प्रकृति भी सुख-दुःख, हर्षोल्लास, आदेश, उपदेश, शिक्षिका, सेविका आदि भावों की न केवल अनुभूति करती है अपितु इन भावों की अभिव्यक्ति भी करती दिखाई पड़ती है। वह मानव की सहभागिनी बन कर कथा को प्रवाह देती है, अलंकारों को सौन्दर्य देती है और भावों को चमत्कृत करती है। कालिदास ने अपनी कृतियों में कथावस्तु का विशाल पटल चुना। कहीं प्रतापी नरेशों के ऐश्वर्य, पराक्रम और वैभव विलासिता को रेखांकित किया तो कहीं नाटकों के माध्यम से प्रेमकथाओं को दृश्यता प्रदान की। कहीं कहीं तो प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण का ही चेतन पुरुषवत् साकार चित्रण कर साहित्य के क्षेत्र में एक अद्भुत सृजनकर्ता के रूप में स्वयं को उपस्थापित किया है। इस विशाल वाङ्मय की रचना में उनका प्रकृति चित्रण दिव्य पाथेय बनकर पाठक को चेतना को सतत सजग बनाए रखता है।

कालिदास की प्रत्येक रचना में प्रकृति का वर्णन है। ऋतुसंहार और मेघदूत की सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति के प्राङ्गण में ही की गई है जहाँ लतावृक्षादि भी स्त्रीपुरुष के समान सम्वेदनशील और भावुक हैं। धूम, अग्नि, सलिल और मरुत के सन्निपात से निर्मित मेघ कुशल सन्देशवाहक की भूमिका निभाता है। लताएँ पौरकन्या का और वृक्ष राजपुरुष की भाँति राजा दिलीप का वन में स्वागत करते दिखाई पड़ते हैं।

कण्वाश्रम से विदा होती हुई शकुन्तला को वस्त्राभूषण प्रदान कर आश्रम के वृक्ष पितृत्व का दायित्व वहन करते हैं तो लताएँ पतिपत्ररूपी आँसू टपकाकर सखीभाव को निभाती प्रतीत हो रही हैं। इतना ही नहीं सखी वियोग को न सह सकने वाली हरिणियों ने मुख का कौर उगल दिया और मयूरों ने नाचना बन्द कर दिया है–

> "उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
> अपसृत पाण्डुपत्रा मुञ्चन्तय श्रूणीव लताः।।
>
> (अभि. शाकु.)

उपनिषदों के पश्चात् प्रथम वाद कालिदास ने ही वन देवता की कल्पना की है। रामायण महाभारत में ऐसी कल्पना नहीं है। इसका कारण यही है कि कालिदास चेतन अचेतन जगत सभी में केवल चैतन्य भाव ही स्वीकार करते हैं क्योंकि कालिदास ने प्राकृतिक वैभव तथा मानवीय वैभव को बहुत निकट से देखा तथा उसका आस्वादन भी किया था, ऐसा प्रतीत होता है। कवि कलाकार तो होता ही है इसलिए वह जानता है कि किसका किस रूप में उपयोग किया जाना चाहिए। कालिदास प्रसंग और भाव के अनुसार प्रकृति के रूप बदलते हुए चलते हैं। इससे जहाँ भावों में अधिक स्पष्टता आ जाती है वहीं भाषा और अलंकारों में अधिक सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ने अपने महाकाव्यों में भी प्रकृति चित्रण करते हुए यही तथ्य प्रस्तुत किया कि समस्त चेतना चेतनात्मक सृष्टि में एक ही तत्त्व भरा है और वह है चैतन्य। अतएव स्त्री पुरुष के समान ही लतावृक्षादि भी उसी चैतन्य से चेतन हैं। मानव के साथ इनका अटूट सम्बन्ध है। मानव अपने सुख-दुख का रूप प्रकृति में देखता है. प्रकृति भी मानव से संश्लिष्ट है, उसके प्रति वह पूर्ण सहानुभूति रखती है। कहा जा सकता है कि कोई भी मानव व्यवहार प्रकृति के क्षेत्र से बाहर नहीं हैं। कालिदास ने इसीलिए प्रकृति के अन्तः एवं बाह्य रूपों को बहुत ही खूबी के साथ अपनी रचनाओं में उकेरा है जिन्हें कतिपय उदाहरणों से आगे परिचित कराया जाएगा। पाश्चात्य विद्वान् राइडर महोदय तो कालिदास की प्रकृति चित्रण क्षमता से प्रभावित होकर यह कहने को विवश हो गए कि–"ऐसे कम ही व्यक्तियों ने पृथ्वी पर चरणक्षेप किया होगा जिन्होंने जीवित प्रकृति के इतने अधिक रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण किया हो जितना कालिदास ने, यद्यपि उनका निरीक्षण कवि का था वैज्ञानिक का नहीं....कालिदास का प्रकृतिज्ञान केवल सहानुभूतिमूलक ही नहीं है अपितु वह सूक्ष्मतया सटीक है। हिमालय को हिमराशि तथा पवन-संगीत और पवित्र गंगा की शक्तिशालिनी धारा ही केवल उनके अधिकार की वस्तुएँ नहीं हैं, छोटी-छोटी सरिताएँ, विटप तथा छोटे से छोटा फूल भी उनकी सृष्टिव्यापिनी दृष्टि से बाहर नहीं जा सके हैं।"

कालिदास के नाटकों में अभिज्ञान शाकुन्तलम के कुछ प्रकृतिदृश्य अवश्य अवलोकनीय हैं जहाँ प्रकृति के विभिन्न उपादान दुष्यन्त और शाकुन्तलम के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं को सूचित करती हैं। जैसे–दीर्घापांग नामक मृगशिशु मानों किसी अज्ञात सहत वृक्षि के द्वारा दुष्यन्त द्वारा किए जाने वाले शकुन्तला के भावी प्रत्याख्यान को जान गया था, अतएव दुष्यन्त के हाथ से पानी नहीं पी रहा था और शकुन्तला की विदाई के समय वहीं मृगशिशु उसका पल्लू पकड़ कर मानों शकुन्तला को रोक रहा था कि तू जहाँ जा रही है वहाँ तेरा अपमान ही होगा।

इसी प्रकार चक्रवाकी के द्वारा बुलानें पर भी चक्रवाक कोई उत्तर न देकर मानों यह बता देना चाहता है कि शकुन्तले! तेरी यात्रा का परिणाम भी ऐसा ही होगा अर्थात् तेरे द्वारा याद दिलाने पर भी वह (राजा दुष्यन्त) तुम्हें पहचान नहीं पाएगा। प्रकृति के इन दृश्यों में प्रतीकात्मकता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

कालिदास की दृष्टि में मानवीय सौन्दर्य का मानदण्ड प्रकृति ही है। केसर वृक्ष के नीचे खड़ी शाकुन्तला से वह वृक्ष लतासनाथ प्रतीत होता है क्योंकि शकुन्तला की भुजा लता की टहनी, अधरोष्ठ की लालिमा लताकिसलय की लालिमा और अंग प्रत्यंग में निखरा यौवन ही उसकी पुष्प समृद्धि है। इस प्रकार लता के रूप वाली शकुन्तला से वह केसर वृक्ष दम्पति के रूप में लतासनाथ प्रतीत हो रहा है।

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणी बाहू।
कुसुभमिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।।

(अभि. शाकुन्तलम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास की मान्यता है कि प्रकृति सौन्दर्य मानवीय सौन्दर्य से बढ़कर है। प्रकृति सौन्दर्य से मानव सौन्दर्य की श्रीवृद्धि होती है—**"इयमधिक मनोज्ञा बल्कलेनापि तन्वी"** वाक्य इसका उदाहरण है। किन्तु कई स्थलों पर उन्होंने मानव सौन्दर्य को प्रकृति सौन्दर्य से बढ़कर भी बताया है। कुमारसम्भव में वे कहते हैं कि पार्वती की भुजाएँ शिरीष से भी कोमल हैं। सम्भवतः यही कारण था कि कामदेव के जो पुष्प बाण भगवान् शिव को वशीभूतं न बना सके उन शिव को पार्वती की भुजलता रूपी पाश ने आबद्ध कर लिया। वस्तुतः ये दोनों ही रूप कालिदास की इस धारणा को ही पुष्ट करते हैं कि प्रकृति और मानव सौन्दर्य दोनों एक रूप हैं अभिन्न हैं, चेतन हैं, अन्योन्याश्रित हैं, एक दूसरे के पूरक या उपकारक हैं। फिर भी अधिकांशतः कवितत्व सौन्दर्य की दृष्टि से कालिदास ने मानवीय सौन्दर्य के मापदण्ड के रूप में ही प्रकृति का अधिक वर्णन किया है। इसलिए वह कहीं आलम्बन, कहीं उद्दीपन, कहीं उपमान, कहीं शिक्षिका, कहीं गुरु, कहीं मित्र और कहीं कहीं उपमेय के रूप में प्रकट हुई है।

वस्तुतः कालिदास का प्रकृतिचित्रण अतिसूक्ष्म मार्मिक एवं हृदयावर्जक हैं। परम्परा प्रथित वर्णनों से हटकर उन्होंने प्रकृति के जो चित्र खींचे, उनमें सहृदयता, रसिकता और ताजगी का स्पन्दन है, कल्पना की उड़ान है और मधुरतर भावों की मधुर अभिव्यंजना है। रघुवंश महाकाव्य में—दिलीप के जंगल पहुँचने पर लताएँ पुष्प बिखेर कर पौरकन्या का कार्य करती हैं तो पार्श्ववर्ती वृक्ष सेवकों का।

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्तमानम्।
अवाकिरन बाललता प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः।। 2/10

मेघदूत और ऋतुसंहार के बाद रघुवंश का नवम् एवं त्रयोदश सर्ग प्रकृति के सुन्दरतम निदर्शन हैं। मानवीय व्यापारों का किस प्रकार सुन्दर प्रतिरोपण इनमें किया गया है यह दृष्टव्य है। नदियाँ अपने मुखों को अपने पति समुद्र को समर्पित करने में कुशल हैं तो समुद्र भी अपना तरंग रूपी अधरोष्ठ प्रदान कर परस्पर एक-दूसरे का अधरोष्ठ पान कर रहे हैं—

मुखार्पणेषु प्रकृति प्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदान दक्षः।
अनन्य सामान्यकलभवृत्तिः पिवत्यसौ पाययते च सिन्धूः।। 13/9

कालिदास ने प्रकृति के अन्तः एवं बाह्य दोनों रूपों का गम्भीरता से अवलोकन किया था और उसके सर्वांगीण वैभव को भलीभाँति समझ सके थे। तभी तो उनकी दृष्टि में प्रकृति का कोई सुन्दर पहलू छूटने नहीं पाया इसीलिए चाहे महाकाव्य हो, खण्डकाव्य या गीतिकाव्य हो या फिर नाटक सभी में उन्होंने प्रकृति का विस्तार से वर्णन किया है। अभिज्ञान शाकुन्तलम नाटक का आरम्भ प्रकृति से होता है और समापन भी प्रकृति से ही। ऋतुसंहार की कथा-वस्तु प्रकृति की उपादान छः ऋतुएँ एवं उनके लता पुष्प आदि ही तो हैं। मेघदूत में वर्षाऋतु उद्दीपक के रूप में यक्षहृदय पर आघात करती है परिणामतः कवि यक्षहृदय में प्रवेश कर **"कामार्ताः हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु"** कहकर पुरुष और प्रकृति के मध्य चेतन अचेतन की दीवार ढहा कर अभेद स्थापित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता है। परिणामतः मेघ **'धूमज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः'** एक कुशल सन्देशवाहक की भूमिका में वियोगी यक्ष का गूढ़ सन्देश अलकापुरी में उसकी प्रियतमा यक्षिणी को पहुँचाने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। सम्पूर्ण मार्ग के प्राकृतिक उपादान उसके मार्गजन्य श्रम को दूर करने में करबद्ध दिखाई पड़ते हैं। नदियाँ उसका आलिंगन, चुम्बन करने को आतुर और वर्षा बिन्दुओं से रोमांचित भूमि सगर्भा होने को आतुर हो उठी है। कुल मिलाकर संक्षेप में कहें तो सम्पूर्ण मेघदूत में मानव दम्पति श्रांगारिक भावनात्मक एवं व्यापारमूलक क्रियाकलापों का बिम्बप्रतिबिम्ब जैसा दृश्य विद्यमान है। कवि कल्पना का इतना उदात्त हृदयस्पर्शी साङ्गोपाङ्ग वर्णन शायद ही कहीं किसी अन्य कवि ने किया है।

कुमारसम्भव में भी प्रकृति के आलम्बन उद्दीपन दोनों रूपों का संश्लिष्ट चित्रण है किन्तु सम्भोग शृंगार प्रधान होने के कारण इसमें प्रकृति के उद्दीपक दृश्यों की बहुलता है। रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने मुख्यतया तीन रूपों में प्रकृति को स्थान दिया है। वे हैं—वस्तुविधान, भावविधान और अलंकार विधान विस्तारमय से इन सभी के उदाहरण नहीं दिए जा रहे हैं जिज्ञासुजन वस्तुविधान परक प्रकृति चित्रण रघुवंश के 4/16-24, 37, 42, 46, 48, 51, 57, 65, 72-76; 9/26-48; 16/42-70 श्लोकों को देखें। भावविधान की दृष्टि से प्रथम, द्वितीय, पंचम, षष्ठ सर्गों को एवं अलंकार विधान की दृष्टि से भी इन्हीं प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ सर्ग का अध्ययन करें।

नाटकों में अभिज्ञान शाकुन्तलम् प्रकृति चित्रण का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। यह कवि के उत्कृष्ट प्रकृति प्रेम का उसके प्रकृतिदृश्यों के सूक्ष्म निरीक्षण का, तथा उसकी कमनीय कल्पनाओं का निदर्शन है। कवि की प्रकृति-विषयक भावनाओं का, उसकी एतद्विषयक सर्वोच्च प्रतिभा का और प्रकृति सन्देश के मार्मिक उद्घाटन का शाकुन्तलम् से बढ़ कर अन्यत्र उदाहरण मिलना असम्भव है जो कार्य मनुष्य नहीं कर सकते उसे प्रकृति ने कर दिखाया। उदाहरणार्थ—शकुन्तला की विदाई के समय महर्षि कण्व का गला रुंध जाता है और आँसू आँख को डब-डबा देते हैं किन्तु अचेतन समझी जाने वाली लताएँ सखी वियोग में आँसुओं को रोक नहीं पातीं। वनज्योत्सना शाखाबहुओं को फैलाकर आलिङ्गनातुर दिखाई पड़ती है। वस्तुतः यहाँ प्रकृति की सहानुभूति प्रदर्शन मात्र ही नहीं सम्वेदनशील है जो शकुन्तला के दुःख में दुःखी है। कुल मिलाकर कहें तो शाकुन्तलम् में प्रकृति पूर्ण जीवन्त सुख दुःख सम्वेदिनी के रूप में पूर्णतः मानवीय भावनाओं को अभिव्यंजित करती हुई ही दिखाई पड़ती है। मारीच ऋषि के आश्रम में प्रकृति प्रांगण के बीच पुनः दो बिछुड़े प्रेमियों का परस्पर मिलन होता है। यह मिलन केवल दो प्रेमियों का मिलन ही नहीं अपितु अन्तः एवं बाह्य प्रकृति के चिरन्तन संयोग की पुनः प्रतिष्ठा है। राजदरबारी कवि होते हुए भी कवि कालिदास में प्रकृति के प्रत्यक्ष निरीक्षण की स्निग्धता, सहृदयता की पराकाष्ठा और कल्पना की कमनीयता का दर्शन होता है। इसे पढ़कर किसी अन्य काव्य में बुद्धि का रमना असम्भव सा लगता है। ठीक ही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री कालिदासस्य वचो विचार्य नैवान्य काव्ये रमते मतिर्मे।
किं पारिजातं परिहृत्य हन्त भृङ्गालिरानन्दति सिन्दुवारे।।

(x) कालिदास का छन्दोविधान

भारतीय काव्यधारा का एक प्रमुख अङ्ग 'छन्द' भी है। क्योंकि छन्दों का हमारे मनोभावों के साथ बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। परिष्कृत संस्कृति और सभ्यता के समान ही परिष्कृत काव्य जगत में भी मनोभावों का विशेष ध्यान रखा जाता है। इतना ही नहीं वन्य एवं आदिवासी जातियों में भी गीतों की लय भावानुसारी होती हैं। काव्यशास्त्र के अनुसार भाव आदि की व्यंजनानुकूल पृथक् पृथक् वर्णों के प्रयोग का विधान है उसी प्रकार विविध भावों, रसों और वर्णनों के अनुकूल भिन्न-भिन्न छन्दों के प्रयोग से काव्य में नैसर्गिकता, प्रवाह और आनन्दानुभूति का सृजन होता है क्योंकि संगीत का और भाव-व्यंजना का पारस्परिक अद्‌भुत संयोग होता है। मानव स्वभाव इसका प्रमाण है कि विशेष मनोयोगों की स्थिति में हमारी मनः स्थितियाँ परिवर्तित होती हैं और उनकी अभिव्यक्ति में हमारी वाणी का स्वर और लय स्वतः परिवर्तित हो जाता है। कभी हमारी वाणी की गति मन्द होती है कभी तरल; कभी रूक-रूक कर और कभी उछलती कूदती हुई प्रतीत होती है और उस वाणी की गति से व्यक्ति के मन के हर्ष, विषाद, शान्ति, उद्‌वेग आदि का सहज अनुमान लगा लिया जाता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने इसीलिए छन्दों के विषय में स्पष्ट निर्देश दिया है कि–

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्व वृत्तानां विनियोगं विभागवित्।।

क्षेमेन्द्र ने सुवृक्षतिलक नामक अपने ग्रन्थ में इसी प्रकार महाकाव्यों में छन्दों की समुचित व्यवस्था पर जोर देते हुए स्पष्ट कहा है–

सुवर्णार्ह प्रबन्धेषु यथास्थाननिवेशिनाम्।
रत्नानामपि वृत्तानां भवत्वभ्यधिका रुचिः।।

अर्थात् महाकाव्य में यदि यथास्थान समुचित छन्द-योजना की जाए तो वह मणिकांचन संयोग की भाँति अधिकाधिक रुचि उत्पन्न करने वाली होती है। सम्भवतः कालिदास के काव्यों का अवलोकन करने के पश्चात् ही क्षेमेन्द्र यह धारणा बनी होगी।

काव्यशास्त्रियों ने छन्दोयोजना की इसी महत्ता को ध्यान में रखकर ही **"छन्दोभङ्गं न कारयेत्"** जैसे निर्देश दिए एवं **'हतवृत्तता'** को काव्य का दोष निर्धारित किया। कालिदास जैसे महाकवि ने इस विषय में कोई चूक नहीं की। छन्दों के प्रति विशेष सतर्कता एवं उनमें सुन्दरता के समायोजन की भावना उनके काव्यों में सर्वत्र परिलक्षित होती है। वर्षाकाल में मार्ग गीला हो जाने से जैसे प्रवासी पथिक की मन्द हो जाती है उसी प्रकार मन्दाक्रान्ता छन्द की रचना यति नियम से मन्द हो जाती है अतः वर्षाकाल और प्रवास के प्रकरण में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग अधिक सार्थक रुचिकर एवं मनोऽनुकूल होता है। इसीलिए क्षेमेन्द्र ने निर्देश दिया–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रावृट् प्रवाससमये मन्दाक्रान्ता विराजते"

कालिदास ने मन्दाक्रान्ता छन्द की मधुरता, मन्दता और सुन्दरता का ध्यान रखते हुए ही सम्पूर्ण मेघदूत की रचना मन्दाक्रान्ता छन्द में ही की। क्योंकि जैसा नाम से ही स्पष्ट है मेघदूत वर्षा ऋतु का काव्य है और इसमें प्रवासी यक्ष की विरह वेदना का ही साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। अतः मन्दाक्रान्ता के अतिरिक्त अन्य किसी छन्द का प्रयोग काव्य की रसानुभूति का बाधक ही होता जो इतवृत्तता दोषाधायक ही होता। डा. ए. वी. **कीथ** ने कालिदास की इसी कला को ध्यान में रखकर ठीक ही कहा—**"कालिदास भारतीय काव्यशैली के निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ स्वामी हैं।"**

कालिदास ने दो महाकाव्यों कुमारसम्भव और रघुवंश की रचना की है। चूँकि महाकाव्यों का प्रबन्धन इतना विशाल और सर्वाङ्गीण होता है कि जैसे उसमें एक ही वर्णन एक ही भावधारा में पाठक के मन को उबा देने वाला होने के कारण नहीं किया जाता। सर्गानुसार उनमें परिवर्तन अत्यपेक्षित होता है उसी प्रकार एक ही छन्द का प्रयोग असम्भव और जनरुचि के प्रतिकूल होता है जो कर्णकटु या उबाऊ होता है। अतः छन्द परिवर्तन एक अपरिहार्य आवश्यकता होती है। कालिदास इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे इसलिए उन्होंने न केवल छन्दों में परिवर्तन किया अपितु वर्णनों, भावों, मनःस्थितियों के अनुकूल छन्दों की योजना कर कहीं भी रसानुभूति में व्यवधान नहीं आने दिया।

मानव स्वभाव है कि वह बहुत देर तक एक ही मनःस्थिति में एक ही प्रकार की संगीत माधुरी का आस्वादन नहीं कर सकता। उसका मन उस एकरसता से उकता जाता है। वह भिन्न-भिन्न स्वरविन्यास को सुनने के लिए आतुर हो उठता है। श्रेष्ठ कवि इस तथ्य को भलीभाँति समझता है। परिणामतः वह अपने महाकाव्य जैसे दीर्घ कलेवरात्मक काव्य में थोड़ी-थोड़ी दूर पर न केवल भाव-परिवर्तन करता है अपितु उन भावों व वर्णनों के अनुकूल छन्द परिवर्तन भी करता चलता है। कालिदास ने इस दिशा में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। परिणामतः उनका छन्दोविधान अनायास ही उत्तरवर्ती कवियों के लिए आदर्श बन गया। इतना ही संस्कृत काव्यशास्त्र के सभी शास्त्रकारों ने कालिदास के कारकों को आधार बनाकर ही लक्षणों का निर्धारण किया, ऐसा प्रतीत होता है।

शास्त्रकारों ने महाकाव्य में सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन का विधान किया है—

"एकवृत्तमयैः पद्यैश्वसानेऽन्यवृत्तकैः"

(सा. दर्पण)

कालिदास ने इस नियम का पालन तो किया ही साथ ही उन्होंने रस, भाव, व्यापार आदि के विभाजन के समान ही छन्दों का भी एक योजनाबद्ध तरीके से विभाजन किया। इसीलिए सम्पूर्ण रघुवंश में आदि से अन्त तक कहीं भी लगातार दो सर्गों में एक छन्द का प्रयोग नहीं किया। यदि प्रथम सर्ग में अनुष्टुप् है तो द्वितीय में उपजाति तृतीय में वंशस्थ और चतुर्थ में पुनः अनुष्टुय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ने अपने काव्यों में निम्नलिखित छन्दों का प्रयोग किया है—

(1) मेघदूत में — मन्दाक्रान्ता

(2) ऋतुसंहार में—उपजाति, वसन्ततिलका, और मालिनी का ही अधिक प्रयोग किया है।

(3) कुमारसम्भव में—उपजाति, मालिनी, वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, वंशस्थ, पुष्पिताग्रा, शार्दूल विक्रीडित, रथोद्धता, हारिणी, मुख्य हैं।

(4) रघुवंश में—कुमारसम्भव में प्रयुक्त छन्दों के साथ ही तोटक, वैतालीय, द्रुतविलम्बित, मत्तमयूर, नाराच आदि का भी प्रयोग है।

कालिदास ने किस विषय, भाव या रस के लिए किस छन्द का विशेष प्रयोग योजनाबद्ध रूप से किया है इसका विवरण एक विद्वान् के अनुसार इस प्रकार है—

(i)	उपजाति—	वंशवर्णन, नायक नायिका सौन्दर्य तथा तपस्या वर्णन में।
(ii)	अनुष्टुप्—	दीर्घकथा एवं उपदेश देने में।
(iii)	वंशस्थ—	वीरता के प्रकरण युद्ध या युद्ध की तैयारी में।
(iv)	वैतालीय—	करुण रस की अभिव्यक्ति में।
(v)	द्रुतविलम्बित—	सुख एवं समृद्धि के वर्णनों में।
(vi)	रथोद्धता—	कामक्रीड़ा, आखेट या अन्य खेदजनक वर्णनों में।
(vii)	मन्दाक्रान्ता—	वर्षा, प्रवास एवं विपत्ति वर्णनों में।
(viii)	मालिनी—	सर्गान्त में सफलता मूलक वर्णनों में।
(ix)	प्रहर्षिणी—	हर्ष के साथ पूर्ण होने वाले सर्ग के अन्त में। मध्य में—दुःखधारा में हर्ष तथा हर्षधारा में हर्षातिरेक की अभिव्यक्ति के लिए।
(x)	हारिणी—	नायक के अभ्युत्थान तथा सौभाग्य वर्णन में।
(xi)	वसन्ततिलका—	कार्य की सफलता, ऋतुवर्णन एवं ऋतुओं की सफलता पर।
(xii)	पुष्पिताग्रा—	सफलता के लिए प्रस्थान या प्राप्ति में।
(xiii)	तोटक—	निराशा के साथ निवृति में।
(xiv)	शालिनी—	कृतकृत्यता में
(xv)	शार्दुलविक्रीडित—	वीरता प्रदर्शन में।

उपर्युक्त वर्गीकरण मुख्यता के आधार पर किया गया है। अन्यभावों में भी यत्र-तत्र इन छन्दों का प्रयोग है इसी प्रकार वर्गीकृत भावों के लिए भी कहीं कहीं अन्य छन्दों का भी प्रयोग प्राप्त होता है। वस्तुतः कालिदास सच्चे अर्थों में कवि थे, छन्द, अलंकार, सौन्दर्य आदि तो उनकी भावधारा के अंग बनकर स्वतः ही अवतरित हो जाते हैं उनके लिए न तो कवि को ताकना पड़ता है और न ही प्रयत्न करना पड़ता है। संक्षेप में कहा जाए तो कालिदास जितने छन्दो विधान की विविधता के पक्षपाती एवं उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षता रखते हैं उतने ही वे पाठक की मनःस्थिति के कुशल पारखी हैं। वे थोड़ी देर कथानक को संक्षेप में कह कर फिर विशेष वर्णन की भावभूमि ले आते हैं और फिर संगीत की कथा अनुष्टुप् में कहकर 11वें सर्ग में रथोद्धाता की उछलकूद शुरू हो जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी ऐसे ही उतार-चढ़ाव काव्य के अन्तः एवं बाह्य सौन्दर्य को अन्योन्याश्रित रूप से और अधिक सुन्दरता प्रदान करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. ऋतुसंहारम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतुसंहारम्

।। प्रथमः सर्गः ।।

ग्रीष्मवर्णनम्

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये।। 1 ।।
निशाः शशाङ्कक्षतनीलराजयः क्वचिद्विचित्रं जलयन्त्रमन्दिरम्।
मणिप्रकाराः सरसं च चन्दनं शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य सेव्यताम्।। 2 ।।
सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पितं मधु।
सुतन्त्रिगीतं मदनस्य दीपनं शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः।। 3 ।।
नितम्बबिम्बैः सदुकूलमेखलैः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः।
शिरोरुहैः स्नानकषायवासितैः स्त्रियो निदाघं शमयन्ति कामिनाम्।। 4 ।।
नितान्तलाक्षारसरागरञ्जितैर्नितम्बिनीनां चरणैः सनूपुरैः।
पदे पदे हंसरुतानुकारिभिर्जनस्य चित्तं क्रियते समन्मथम्।। 5 ।।

पहला सर्ग
गर्मी का वर्णन

प्रिये! गर्मी के दिन के दिन आ गए हैं। धूप बड़ी कड़ी हो गई है और चन्द्रमा बड़ा सुहावना लगता है। कोई चाहे तो आजकल दिन-रात गहरे जल में स्नान कर सकता है। इन दिनों साँझ बड़ी लुभावनी होती है और कामदेव तो एकदम ठंडा पड़ गया है।।1।। देखो प्यारी! आजकल तो लोग यह चाहते हैं कि चारों ओर खिले हुए चन्द्रमा की चाँदनी छिटकी हुई हो, रंग-बिरंगे फव्वारों के तले हम लोग बैठे हुए हों, इधर-उधर रंग-बिरंगे रत्न बिखरे पड़े हों और सुगन्धित चन्दन चारों ओर छिड़का हुआ हो।।2।। प्रेमियों को भी इन दिनों मन बहलाने के लिये ऐसी-ऐसी काम को उभारनेवाली वस्तुएँ चाहिए जैसे सुन्दर सुगन्धित जल, धुला हुआ भवन का तल, प्यारी के मुँह की भाप से उफनाती हुई मदिरा और सुन्दर वीणा के साथ गाए हुए गीत।।3।। इन दिनों सब प्रेमिकाएँ अपने गर्मी से सताए हुए प्रेमियों की तपन मिटाने के लिये उन्हें अपने उन नितम्बों पर लिटाती हैं, जिन पर रेशमी वस्त्र और करधनी पड़ी होती है, अपने उन चन्दन पुते हुए ठंडे स्तनों से लिपटाती हैं जिनपर हार और दूसरे गहने पड़े होते हैं और अपने उन जूड़ों की गन्ध सुँघाती हैं जो उन्होंने स्नान के समय सुगन्धित फुलेलों में बसा लिए थे।।4।। आजकल स्त्रियों के उन महावर से रँगे पैरों को देखकर लोगों का जी मचल उठता है, जिनमें हंसों के समान रुनझुन करनेवाले बिछुए बजा करते हैं।।5।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पयोधराश्चन्दनपङ्कचर्चितास्तुषारगौरार्पितहारशेखराः ।
नितम्बदेशाश्च सहेममेखलाः प्रकुर्वते कस्य मनो न सोत्सुकम् ।। 6 ।।
समुद्गतस्वेदचिताङ्गसंधयो विमुच्य वासांसि गुरूणि साम्प्रतम् ।
स्तनेषु तन्वंशुकमुन्नतस्तना निवेशयन्ति प्रमदाः सयौवनाः ।। 7 ।।
सचन्दनाम्बुव्यजनोद्भवानिलैः सहारयष्टिस्तनमण्डलार्पणैः ।
सवल्लकीकाकलिगीतनिस्वनैर्विबोध्यते सुप्त इवाद्य मन्मथः ।। 8 ।।
सितेषु हर्म्येषु निशासु योषितां सुखप्रसुप्तानि मुखानि चन्द्रमाः ।
विलोक्य नूनं भृशमुत्सुकश्चिरं निशाक्षये याति ह्रियेव पाण्डुताम् । 9 ।।
असह्यवातोद्धतरेणुमण्डला प्रचण्डसूर्यातपतापिता मही ।
न शक्यते द्रष्टुमपि प्रवासिभिः प्रियावियोगानलदग्धमानसैः ।। 10 ।।
मृगाः प्रचण्डातपतापिता भृशं तृषा महत्या परिशुष्कतालवः ।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नाञ्जनसन्निभं नभः ।। 11 ।।
सविभ्रमैः सस्मितजिह्मवीक्षितैर्विलासवत्यो मनसि प्रवासिनाम् ।
अनङ्गसंदीपनमाशु कुर्वते यथा प्रदोषाः शशिचारुभूषणाः ।। 12 ।।

इन दिनों स्त्रियों के हिम के समान उज्ज्वल और अनूठे हार से सजे हुए चन्दन-पुते स्तन देखकर और सुनहरी करधनी से बँधे हुए नितम्ब देखकर भला किसका मन नहीं ललच उठेगा ।।6।। ऊँचे-ऊँचे स्तनोंवाली जिन युवतियों के अंगों के जोड़ से गर्मी के मारे पसीना छूटा करता है वे भी इस गर्मी में अपने मोटे वस्त्र उतारकर पतले-पतले कपड़े पहनने लगी हैं।।7।। आजकल लोग कामदेव को उसी प्रकार जगाया करते हैं, जैसे कोई स्त्री, अपने सोए हुए प्रेमी को चन्दन में बसे हुए ठंडे जल से भीगे हुए पंखों की ठंडी हवा झलकर या मोतियों के हारों की लटकती हुई झालरों से सज़े हुए अपने गोल-गोल स्तन प्रेमी की छाती पर रखकर, या वीणा के साथ अपने मीठे गले से गीत गा-गाकर जगाया करती हैं।। 8।। रात के समय उजले भवन में सुख से सोई हुई युवती का मुख निहारने को उतावला रहनेवाला चन्द्रमा जब बहुत देर तक उनका मुँह देख लेता है तो लाज के मारे वह रात के पिछले प्रहर में उदास हो जाता है।।9।। परदेस में गये हुए जिन प्रेमियों का हृदय अपनी प्रेमिकाओं के वियोग की तपन से झुलस गया है, वे आँधी के झोंकों से उठी हुई धूल के बवंडरोंवाली और कड़ी धूप की लपटों से तपी हुई धरती की ओर देखते हैं तो उनसे देखा नहीं जाता।।10।। जलते हुए सूर्य की किरणों से झुलसे हुए जिन जंगली पशुओं की जीभ प्यास से बहुत सूख गई है, वे धोखे में उन जंगलों की ओर दौड़े जा रहे हैं जहाँ के आँजन के समान नीले आकाश को ही वे पानी समझ बैठे हैं।।11।। चमकते हुए चन्द्रमावाली सन्ध्या के समान जो सुन्दरियाँ चन्द्रमा के समान उजले चन्द्रहार आदि आभूषणों से सजी हुई बड़ी प्यारी लग रही हैं, वे बड़ी चटक-मटक और मुस्कुराहट के साथ अपनी चितवन चलाकर परदेसियों के मन में झट से कामदेव को जगा देती है।।12।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः।
अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फणी मयूरस्य तले निषीदति।। 13।।

तृषा महत्या हतविक्रमोद्यमः श्वसन्मुहुर्दूरविदारिताननः।
न हन्त्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वरो विलोलजिह्वश्चलिताग्रकेसरः।। 14।।

विशुष्ककण्ठोद्गतसीकराम्भसो गभस्तिभिर्भानुमतोऽनुतापिताः।।
प्रवृद्धतृष्णोपहता जलार्थिनो न दन्तिनः केसरिणोऽपि बिभ्यति।। 15।।

हुताग्निकल्पैः सवितुर्गभस्तिभिः कलापिनः क्लान्तशरीरचेतसः।
न भोगिनं घ्नन्ति समीपवर्तिनं कलापचक्रेषु निवेशिताननम्।। 16।।

सभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं सरः खनन्नायतपोतृमण्डलैः।
रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम्।। 17।।

विवस्वता तीक्ष्णतरांशुमालिना सपङ्कतोयात्सरसोऽभितापितः।
उत्प्लुत्य भेकस्तृषितस्य भोगिनः फणातपत्रस्य तले निषीदति।। 18।।

समुद्धृताशेषमृणालजालकं विपन्नमीनं द्रुतभीतसारसम्।
परस्परोत्पीडनसंहतैर्गजैः कृतं सरः सान्द्रविमर्दकर्दमम्।। 19।।

देखो! धूप से एकदम तपा हुआ और रास्ते की गर्म धूल से झुलसा हुआ यह सर्प अपना मुँह नीचे छिपाकर बार-बार फुफकारता हुआ मोर की छाया में कुंडल मारे बैठा हुआ है पर मोर भी गर्मी के मारे उसे कुछ नहीं कह रहा है।।13।। देखो! हाथियों के पास होने पर भी यह सिंह उन्हें मार नहीं रहा है; क्योंकि गर्मी इतनी पड़ रही है कि प्यास के मारे इसका साहस ठंडा पड़ गया है, अपना पूरा मुँह खोलकर यह बार-बार हाँफ रहा है, अपनी जीभ से अपने ओठ चाटता जा रहा है और हाँफने से इसके कंधे के बाल हिलते जा रहे हैं।।14।। जो हाथी धूप और प्यास से बेचैन होकर अपने सूखे मुँह से झाग फेंकते हुए पानी की खोज में इधर-उधर घूम रहे हैं वे इस समय सिंह से भी नहीं डर रहे हैं।।15।। हवन की अग्नि के समान जलते हुए सूर्य की किरणों से जिन मोरों के शरीर और मन दोनों सुस्त पड़ गए हैं, वे अपने पास कुंडल मारकर बैठे हुए साँपों को भी नहीं मारते; वरन् उल्टे धूप से अपना मुँह बचाने के लिये अपना गला उनकी पूँछ की कुंडल में डाले चुपचाप बैठे हुए हैं।।16।। धूप से एकदम झुलसा हुआ यह जंगली सूअरों का झुंड अपने लंबे-लंबे थूथनों से नागरमोथे से भरे हुए बिना कीचड़वाले गड्ढे को खोदता हुआ ऐसा लगता है, मानो धरती में घुसा जा रहा हो।।17।। धूप से तपे हुए मेंढक, गँदले जलवाले पोखरे से बाहर निकल-निकलकर प्यासे साँपों के फन की छाती के नीचे आ-आकर बैठ रहे हैं।।18।। यह देखो, यहाँ पर हाथियों ने इकट्ठे होकर आपस में लड़-भिड़कर इस ताल के सब कमल उखाड़ डाले, मछलियों को रौंद डाला और सारसों को डराकर भगा दिया है।।19।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रविप्रभोद्भिन्नशिरोमणिप्रभो विलोलजिह्वाद्वयलीढमारुतः ।
विषाग्निसूर्यातपतापितः फणी न हन्ति मण्डूककुलं तृषाकुलः ।। 20 ।।
सफेनलालावृतवक्त्रसंपुटं विनिःसृतालोहितजिह्वमुन्मुखम् ।
तृषाकुलं निःसृतमद्रिगह्वरादवेक्षमाणं महिषीकुलं जलम् ।। 21 ।।
पटुतरदवदाहोच्छुष्कसस्यप्ररोहाः परुषपवनवेगोत्क्षिप्तसंशुष्कपर्णाः ।
दिनकरपरितापक्षीणतोयाः समन्ताद्विदधति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणा वनान्ताः ।। 22 ।।
श्वसिति विहगवर्गः शीर्णपर्णद्रुमस्थः कपिकुलमुपयाति क्लान्तमद्रेर्निकुञ्जम् ।
भ्रमति गवययूथः सर्वतस्तोयमिच्छञ्शरभकुलमजिह्मं प्रोद्धरत्यम्बु कूपात् ।। 23 ।।
विकचनवकुसुम्भस्वच्छसिन्दूरभासा प्रबलपवनवेगोद्भूतवेगेन तूर्णम् ।
तटविटपलताग्रालिङ्गनव्याकुलेन दिशि दिशि परिदग्धा भूमयः पावकेन ।। 24 ।।
ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां दरीषु स्फुटति पटुनिनादः शुष्कवंशस्थलीषु ।
प्रसरति तृणमध्ये लब्धवृद्धिः क्षणेन ग्लपयति मृगवर्गं प्रान्तलग्नो दवाग्निः ।। 25 ।।
बहुतर इव जातः शाल्मलीनां वनेषु स्फुरति कनकगौरः कोटरेषु द्रुमाणाम् ।
परिणतदलशाखानुत्पतन्प्रांशुवृक्षान्भ्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते ।। 26 ।।

जिस प्यासे साँप की मणि सूर्य की चमक से और भी चमक उठी है वह अपनी लपलपाती हुई दोनों जीभों से पवन पीता जा रहा है और धूप की लपटें और अपने विष की झार से जलने के कारण मेढकों को नहीं मार रहा है।। 20।। जुगाली करने से जिन भैंसों के मुँह से झाग निकल रही है और लार बह रही है वे अपना मुँह खोलकर अपनी लाल-लाल जीभें बाहर निकाले हुए प्यास के मारे ऊपर मुँह उठाए पहाड़ की गुफा से निकल-निकलकर जल की ओर लपकी चली जा रही हैं।। 21।। आजकल वन तो और भी डरावने लगने लगते हैं; क्योंकि वहाँ जंगल की आग की बड़ी-बड़ी लपटों से सब वृक्षों की टहनियाँ झुलस गई हैं, अंधड़ में पड़कर सूखे हुए पत्ते ऊपर उड़े जा रहे हैं और सूर्य की गर्मी से चारों ओर का जल सूख गया है।। 22।। जिन वृक्षों के पत्ते झड़ गए हैं, उनपर बैठी हुई सभी चिड़ियाँ हाँफ रही हैं, उदास बंदरों के झुंड पहाड़ की गुफाओं में घुसे जा रहे हैं, पशुओं के झुंड चारों ओर पानी की खोज में घूम रहे हैं और आठ पैरोंवाले शरभों का झुंड एक कुएँ से गटागट पानी पीता जा रहा है।।23।। पूरे खिले हुए नये कुसुम्भी फूल के समान और स्वच्छ सिन्दूर के समान लाल-लाल चमकनेवाली, आँधी से और भी धधक उठनेवाली और तीर पर खड़े हुए वृक्षों और लताओं की फुनगियों को चूमती हुई जानेवाली जंगल की आग से जहाँ-तहाँ धरती जल गई है।।24।। वन के बाड़े से उठती हुई और वायु से और भी भड़की हुई अग्नि की लपट, पहाड़ की घाटियों में फैलती हुई सभी पशुओं को जला डाल रही है, सूखे बाँसों में चटचटा रही है और क्षणभर में आगे बढ़कर घास पकड़ ले रही है।।25।। पवन से भड़काई हुई और सेमर के वृक्षों के कुंजों में फैली हुई आग वृक्ष के खोखलों में अपना सुनहला पीला प्रकाश चमकाती हुई और ऊँचे वृक्षों पर उछलती हुई वन में चारों ओर घूम रही है जिनकी डालियों के पत्ते बहुत गर्मी पड़ने से पक-पककर झड़ते जा रहे हैं।।26।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजगवयमृगेन्द्रा वह्निसंतप्तदेहा सुहृद इव समेता द्वन्द्वभावं विहाय।
हुतवहपरिखेदादाशु निर्गत्य कक्षाद्विपुलपुलिनदेशां निम्नगां संविशन्ति।। 27।।
कमलवनचिताम्बुः पाटलामोदरम्यः सुखसलिलनिषेकः सेव्यचन्द्रांशुहारः।
व्रजतु तव निदाघः कामिनीभिः समेतो निशि सुललितगीते हर्म्यपृष्ठे सुखेन।। 28।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ ऋतुसंहारे ग्रीष्मवर्णनो नाम प्रथम सर्गः।।

आग से घबराए हुए और झुलसे हुए हाथी, बैल और सिंह, आज मित्र बनकर साथ-साथ इकट्ठे होकर घास के जंगल से झटपट निकल आए हैं और नदी के चौड़े तथा बलुए तीर पर आकर विश्राम कर रहे हैं।।27।। जिस गर्मी की ऋतु में कमलों से भरे हुए और खिले हुए पाटल की गंध में बसे हुए जल में स्नान करना बहुत सुहाता है और जिन दिनों चन्द्रमा की चाँदनी और मोती के हार बहुत सुख देते हैं, वह ऋतु आपकी ऐसी बीते कि रात को आप अपने घर की छत पर लेटे हों, सुन्दरियाँ आपको घेरे बैठी हों और मनोहर संगीत छिड़ा हुआ हो।।28।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित के रचे हुए ऋतुसंहार नाम के महाकाव्य में गर्मी का वर्णन नाम का पहला सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीयः सर्गः ।।

प्रावृड्वर्णनम्

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरस्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्दलः ।
समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ।। 1 ।।
नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः क्वचित्प्रभिन्नाञ्जनराशिसंनिभैः ।
क्वचित्सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योम घनैः समन्ततः ।। 2 ।।
तृषाकुलैश्चातकपक्षिणां कुलैः प्रयाचितास्तोयभरावलम्बिनः ।
प्रयान्ति मन्दं बहुधारवर्षिणो बलाहकाः श्रोत्रमनोहरस्वनाः ।। 3 ।।
बलाहकाश्चाशनिशब्दमर्दलाः सुरेन्द्रचापं दधतस्तडिद्गुणम् ।
सुतीक्ष्णधारापतनाग्रसायकैस्तुदन्ति चेतः प्रसभं प्रवासिनाम् ।। 4 ।।
प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः ।
विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता वराङ्गनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः ।। 5 ।।
सदा मनोज्ञं स्वनदुत्सवोत्सुकं विकीर्णविस्तीर्णकलापिशोभितम् ।
ससंभ्रमालिङ्गनचुम्बनाकुलं प्रवृत्तनृत्यं कुलमद्य बर्हिणाम् ।। 6 ।।

दूसरा सर्ग

वर्षा का वर्णन

देखो प्यारी! जल की फुहारों से भरे हुए बादलों के मतवाले हाथी पर चढ़ा हुआ, चमकती हुई बिजलियों की झंडियों को फहराता हुआ और बादलों की गरज के नगाड़े बजाता हुआ यह कामियों का प्यारा पावस राजाओं जैसा ठाट-बाट बनाकर आ पहुँचा है।।1।। कहीं तो अत्यन्त नीले कमल की पंखड़ी जैसे नीले, कहीं गर्भिणी के स्तनों के समान पीले और कहीं घुटे हुए आँजन की ढेरी के समान काले-काले बादल आकाश में इधर-उधर छाए हुए हैं।।2।। देखो! जिन बादलों से पपीहे पिउ-पिउ करके पानी माँग रहे हैं, ऐसे पानी के भार से झुके हुए धुआँधार पानी बरसानेवाले और कानों को भली लगनेवाली गड़गड़ाहट करते हुए बादल धीरे-धीरे घिरते चले जा रहे हैं।।3।। मृदंग के समान गड़बड़ाते हुए, बिजली की डोरीवाला इन्द्रधनुष चढ़ाए हुए ये बादल अपनी तीखी धारों के पैने बाण बरसाकर परदेश में पहुँचे हुए लोगों का मन कसमसा रहे हैं।।4।। बिखरी हुई वैदूर्यमणि के समान दिखाई देनेवाली घास के कोमल अँकुवों से भरी हुई, ऊपर निकले हुए कुन्दली के पत्तों से लदी हुई और बीरबहूटियों से छाई हुई धरती उस नायिका जैसी दिखाई दे रही है जो धौले रत्न को छोड़कर और सभी रँग के रत्नोंवाले आभूषण से सजी हुई हो।।5।। देखो! सदा मीठी बोली बोलनेवाले, गरजते हुए बादलों की शोभा पर रीझकर मगन हो उठनेवाले और अपने पंख खोलकर फैलाने से सुहावने लगनेवाले इन मोरों के झुण्ड, झटपट अपनी प्यारी मोरनियों को गले लगाते हुए और चूमते हुए आज नाच उठे हैं।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान्प्रवृद्धवेगैः सलिलैरनिर्मलैः।
स्त्रियः सुदुष्टा इव जातिविभ्रमाः प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम्।। 7।।
तृणोत्करैरुद्गतकोमलाङ्कुरैश्चितानि नीलैर्हरिणीमुखक्षतैः।
वनानि वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गतपल्लवैर्द्रुमैः।। 8।।
विलोलनेत्रोत्पलशोभिताननैर्मृगैः समन्तादुपजातसाध्वसैः।
समाचिता सैकतिनी वनस्थली समुत्सुकत्वं प्रकरोति चेतसः।। 9।।
अभीक्ष्णमुच्चैर्ध्वनता पयोमुचा घनान्धकारीकृतशर्वरीष्वपि।
तडित्प्रभादर्शितमार्गभूमयः प्रयान्ति रागादभिसारिकाः स्त्रियः।। 10।।
पयोधरैर्भीमगभीरनिस्वनैस्तडिद्भिरुद्वेजितचेतसो भृशम्।
कृतापराधानपि योषितः प्रियान्परिष्वजन्ते शयने निरन्तरम्।। 11
विलोचनेन्दीवरवारिबिन्दुभिर्निषिक्तबिम्बाधरचारुपल्लवाः।
निरस्तमाल्याभरणानुलेपनाः स्थिता निराशाः प्रमदाः प्रवासिनाम्।। 12।।
विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितं भुजंगवद्वक्रगतिप्रसर्पितम्।
ससाध्वसैर्भेककुलैर्निरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम्।। 13।।
विपत्रपुष्पां नलिनीं समुत्सुका विहाय भृङ्गाः श्रुतिहारिनिस्वनाः।
पतन्ति मूढाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया।। 14।।

जैसे कुलटा स्त्रियाँ प्रेम में अन्धी होकर बिना सोचे-विचारे अपने को खो बैठती हैं, वैसे ही ये नदियाँ भी अपने मटमैले पानी की बाढ़ से जहाँ-तहाँ अपने किनारे के वृक्षों को ढहाती हुई वेग से दौड़ती हुई समुद्र की ओर चली जा रही हैं।।7।। हरिणियों के मुँह की कुतरी हुई हरी-हरी घासों और कोपलोंवाले वृक्षों से छाए हुए विन्ध्याचल के जंगल किसका मन नहीं लुभा लेते।।8।।कमल के समान सुहावनी चंचल आँखों के कारण सुन्दर मुखवाले डरे हुए हरिणों से भरा हुआ रेतीला जंगल हृदय को बरबस खींचे लिए जा रहा है।।9।। देखो! लुक-छिपकर अपने प्यारे के पास जानेवाली कामिनियाँ, गरजते हुए बादलों से घिरी हुई इस घनी अँधेरी रात में भी बिजली की चमक से आगे का मार्ग देखती हुई चली जा रही हैं।।10।। बादलों की घोर कड़क सुनकर और बिजली की तड़पन से चौंकी हुई स्त्रियाँ सोते समय अपने दोषी प्रेमियों से भी लिपटी जाती हैं।।11।। परदेश में गए हुए लोगों की स्त्रियाँ अपने बिंबाफल जैसे लाल और नई कोमलों जैसे कोमल होठों पर अपनी कमल जैसी आँखों से आँसू बरसाती हुई, अपनी माला, आभूषण, तेल, फुलेल, उबटन आदि सब कुछ छोड़कर गाल पर हाथ धरे बैठी हैं।।12।। छोटे-छोटे कीड़े, धूल और घास को बहाता हुआ मटमैला बरसाती पानी, साँप के समान टेढ़ा-मेढ़ा घूमता हुआ, ढाल से बहा आ रहा है और बेचारे मेंढक उसे साँप समझकर देख-देखकर डरे जा रहे हैं।।13।। कानों को सुहानेवाली मीठी तानें लेकर गूँजते हुए भौंरे, उस कमल को छोड़-छोड़कर चले जा रहे हैं, जिसके पत्ते और फूल झड़ गए हैं। वे भौंरे हड़बड़ी में भूल से, नाचते हुए मोरों के खुले पँखों को नये कमल समझकर उन्हीं पर टूट पड़ रहे हैं।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनद्विपानां नववारिदस्वनैर्मदान्वितानां ध्वनतां मुहुर्मुहुः।
कपोलदेशा विमलोत्पलप्रभाः सभृङ्गयूथैर्मदवारिभिश्चिताः।। 15।।
सितोत्पलाभाम्बुदचुम्बितोपलाः समाचिताः प्रस्रवणैः समन्ततः।
प्रवृत्तनृत्यैः शिखिभिः समाकुलाः समुत्सुकत्वं जनयन्ति भूधराः।। 16।।
कदम्बसर्जार्जुनकेतकीवनं विकम्पयँस्तत्कुसुमाधिवासितः।
ससीकराम्भोधरसङ्गशीतलः समीरणः कं न करोति सोत्सुकम्।। 17।।
शिरोरुहैः श्रोणितटावलम्बिभिः कृतावतंसैः कुसुमैः सुगन्धिभिः।
स्तनैः सहारैर्वदनैः ससीधुभिः स्त्रियो रतिं संजनयन्ति कामिनाम्।। 18।।
वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति रुदन्ति नृत्यन्ति समाश्रयन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गाः।। 19।।
तडिल्लताशक्रधनुर्विभूषिताः पयोधरास्तोयभरावलम्बिनः।
स्त्रियश्च काञ्चीमणिकुण्डलोज्ज्वला हरन्ति चेतो युगपत्प्रवासिनाम्।। 20।।
मालाः कदम्बनवकेसरकेतकीभिरायोजिताः शिरसि बिभ्रति योषितोऽद्य।
कर्णान्तरेषु ककुभद्रुममञ्जरीभिरिच्छानुकूलरचितानवतंसकाँश्च।। 21।।

नये-नये बादलों के गरजने से जब जंगली हाथी मस्त हो जाते हैं और उनके माथे से बहते हुए मद पर भौंरे लिपट जाते हैं, उस समय उन हाथियों के माथे स्वच्छ नीले कमल जैसे दिखाई देने लगते हैं।।15।। धौले कमल के समान उजले बादल जिन पहाड़ी चट्टानों को चूमते हुए चलते हैं और जिनपर मोर नाच रहे हैं, उन चट्टानों पर से बहनेवाले सैकड़ों झरनों को देखकर प्रेमियों के मन में हलचल मच जाती है।।16।। कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और केतकी से भरे हुए जंगल को कँपाता हुआ और उन वृक्षों के फूलों की सुगन्ध में बसा हुआ और चन्द्रमा की किरणों से तथा बादलों से ठंडा होकर बहनेवाला वायु किसे मस्त नहीं कर देता।।17।। आजकल स्त्रियाँ, अपने भारी-भारी नितम्बों पर केश लटकाकर, अपने कानों में सुगंधित फूलों के कनफूल पहनकर, छाती पर माला डालकर और मदिरा पीकर अपने प्रेमियों के मन में प्रेम उकसा रही हैं।।18।। बरसात में नदियाँ बहती हैं, बादल बरसते हैं, मस्त हाथी चिग्घाड़ते हैं, जंगल हरे-भरे हो जाते हैं, अपने प्यारों से बिछुड़ी हुई स्त्रियाँ रोती-कलपती हैं, मोर नाचते हैं, और बन्दर चुपी मारकर गुफाओं में जा छिपते हैं।।19।। एक ओर तो इन्द्रधनुष और बिजली के चमकते हुए और पतले धागों से सजी हुई और पानी के भार से झुकी हुई काली-काली घटाएँ और दूसरी ओर करधनी तथा रत्न जड़े कुण्डलों से सजी हुई स्त्रियाँ, ये दोनों ही परदेश में बैठे हुए लोगों का मन एक साथ हर लेती हैं।।20।। इन दिनों नई केसर, केतकी और कदम्ब के नये फूलों की मालाएँ गूँथकर स्त्रियाँ अपने जूड़ों में बाँधती हैं, और ककुभ के फूलों के मनचाहे ढंग से बनाए हुए कर्णफूल अपने कानों में पहनती हैं।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालागुरुप्रचुरचन्दनचर्चिताङ्ग्यः पुष्पावतंससुरभीकृतकेशपाशाः ।
श्रुत्वा ध्वनिं जलमुचां त्वरितं प्रदोषे शय्यागृहं गुरुगृहात्प्रविशन्ति नार्यः ।। 22 ।।
कुवलयदलनीलैरुन्नतैस्तोयनम्रैर्मृदुपवनविधूतैर्मन्दमन्दं चलद्भिः ।
अपहृतमिव चेतस्तोयदैः सेन्द्रचापैः पथिकजनवधूनां तद्वियोगाकुलानाम् ।। 23 ।।
मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्तात्पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव ।
हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां नवसलिलनिषेकच्छिन्नतापो वनान्तः ।। 24 ।।
शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेतां विकसितनवपुष्पैर्यूथिकाकुड्मलैश्च ।
विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः ।। 25 ।।
दधति वरकुचाग्रैरुन्नतैर्हारयष्टिं प्रतनुसितदुकूलान्यायतैः श्रोणिबिम्बैः ।
नवजलकणसेकादुद्गतां रोमराजीं ललितवलिविभङ्गैर्मध्यदेशैश्च नार्यः ।। 26 ।।
नवजलकणसङ्गाच्छीततामादधानः कुसुमभरनतानां लासकः पादपानाम् ।
जनितरुचिरगन्धः केतकीनां रजोभिः परिहरति नभस्वान्प्रोषितानां मनांसि ।। 27 ।।

जिन स्त्रियों के अंगों पर अगर-मिला चन्दन लगा हुआ है, जिनके बाल फूलों के गुच्छों से महक रहे हैं, वे बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर झट अपने घर के बड़े-बूढ़ों के पास से उठकर साँझ को ही अपने शयनघर में घुस जाती हैं।।22।। कमल के पत्तों के समान साँवले, पानी के भार से झुक जाने के कारण बहुत थोड़ी ऊँचाई पर ही छाए हुए और धीमे-धीमे पवन के सहारे धीरे-धीरे चलनेवाले जिन बादलों में इन्द्रधनुष निकल आया है, उन्होंने परदेश में गए हुए लोगों की उन स्त्रियों की सब सुध-बुध हर ली है जो प्यारों के बिछोह में व्याकुल हुई बैठी हैं।।23।। वन में चारों ओर खिले हुए कदम्ब के फूल ऐसे लग रहे हैं, मानो वर्षा के नये जल से गर्मी दूर हो जाने पर जंगल मगन हो उठा हो। पवन से झूमती हुई शाखाओं को देखकर ऐसा लगता है मानो पूरा का पूरा जंगल अपने हाथ मटका-मटकाकर नाच रहा हो। केतकी की उजली कलियों को देखकर ऐसा लगता है मानो जंगल खिलखिलाकर हँस रहा हो।।24।। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्यारी के लिए ढंग-ढंग के फूलों के आभूषण बनाये, वैसे ही वर्षा काल भी ऐसा लगता है मानो वह अपनी प्रेमिका के लिये जूही की नई-नई कलियों तथा मालती और मौलसिरी के फूलों की माला गूँथ रहा हो और उनके कानों के लिए खिले हुए नये कदम्ब के फूलों के कर्णफूल बना रहा हो।।25।। इन दिनों स्त्रियाँ, अपने बड़े-बड़े गोल-गोल उठे हुए सुन्दर स्तनों पर मोती की मालाएँ पहनती हैं और अपने भारी-भारी गोल-गोल नितम्बों पर महीन उजली रेशमी साड़ी पहनती हैं। उनके पेट पर दिखाई पड़नेवाली सुन्दर तिहरी सिकुड़नों पर जब वर्षा की नई फुहार पड़ती है तो वहाँ के नन्हें-नन्हें रोएँ खड़े हो जाते हैं।।26।। वर्षा के नये जल की फुहारों से ठंडा बना हुआ पवन, फूलों के बोझ से झुके हुए पेड़ों को नचा रहा है, केतकी के फूलों का पराग लेकर चारों ओर मनभावनी सुगंध फैला रहा है और परदेश गए हुए प्रेमियों के मन को चुरा रहा है।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलभरनमितानामाश्रयोऽस्माकमुच्चैरयमिति जलसेकैस्तोयदास्तोयनम्राः।
अतिशयपरुषाभिर्ग्रीष्मवह्नेः शिखाभिः समुपजनिततापं ह्लादयन्तीव विन्ध्यम्।। 28।।
बहुगुणरमणीयः कामिनीचित्तहारी तरुविटपलतानां बान्धवो निर्विकारः।
जलदसमय एष प्राणिनां प्राणभूतो दिशतु तव हितानि प्रायशो वाञ्छितानि।। 29।।

।। इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ ऋतुसंहारे
प्रावृड्वर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः।।

ये पानी के बोझ से झुके हुए बादल, गरमी की आग की लपटों से झुलसे हुए विन्ध्याचल की तपन अपने ठंडे जल की फुहार से मानो यह समझकर बुझा रहे हैं कि जब हम पानी के बोझ से लदकर आते हैं तो यही हमें सहारा देता है।। 28।। अपने बहुत से सुन्दर गुणों से सुहावनी लगनेवाली, स्त्रियों का जी खिलानेवाली, पेड़ों की टहनियों और बेलों की सच्ची सखी तथा जीवों का प्राण बनी हुई यह वर्षा ऋतु आपके मन की अभिलाषाएँ पूरी करे।। 29।।

महाकवि कालिदास-विरचित ऋतुसंहार नाम के
काव्य का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयः सर्ग ।।

शरद्वर्णनम्

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शरन्नवधूरिव रूपरम्या।।1।।
काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो हंसैजलानि सरितां कुमुदैः सरांसि।
सप्तच्छदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ताः शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः।।2।।
चञ्चन्मनोज्ञशफरीरसनाकलापाः पर्यन्तसंस्थितसिताण्डजपंक्तिहाराः।
नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्वविम्बा मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य।।3।।
व्योम क्वचिद्रजतशङ्खमृणालगौरैस्त्यक्ताम्बुभिर्लघुतया शतशः प्रयातैः।
संलक्ष्यते पवनवेगचलैः पयोदै राजेव चामरशतैरुपवीज्यमानः।।4।।
भिन्नाञ्जनप्रचयकान्ति नभो मनोज्ञं वन्धूकपुष्परजसाऽरुणिता च भूमिः।
वप्राश्च पक्वकलमावृतभूमिभागाः प्रोत्कण्ठयन्ति न मनो भुवि कस्य यूनः।।5।।
मन्दानिलाकुलितचारुतराग्रशाखः पुष्पोद्गमप्रचयकोमलपल्लवाग्रः।
मत्तद्विरेफपरिपीतमधुप्रसेकश्चित्तं विदारयति कस्य न कोविदारः।।6।।

तीसरा सर्ग

शरद् ऋतु का वर्णन

फूले हुए काश के कपड़े पहने, मस्त हंसों की बोली के सुहावने बिछुए पहने, पके हुए धान से मनोहर शरीरवाली और खिले हुए कमल के समान सुन्दर मुखवाली शरद् ऋतु, नव-विवाहिता रूपवती बहू के समान अब आ पहुँची है।।1।। काश की झाड़ियों ने धरती को, चन्द्रमा ने रातों को, हंसों ने नदियों के जल को, कमलों ने तालाबों को, फूलों के बोझ से झुके हुए छतिवन के वृक्षों ने जंगल को और मालती के फूलों ने फुलवारियों को उज्ज्वल बना डाला है।।2।। इस ऋतु में नदियाँ भी उसी प्रकार धीरे-धीरे बही जा रही हैं, जैसे करधनी और माला पहने हुए बड़े-बड़े नितम्बोंवाली कामिनियाँ चली जा रही हों; क्योंकि उछलती हुई सुन्दर मछलियाँ ही उन नदियों की करधनी हैं, तीर पर बैठी हुई उजली चिड़ियों की पाँतें ही उनकी मालाएँ हैं और ऊँचे-ऊँचे रेतीले टीले ही उनके गोल नितम्ब हैं।।3।। चाँदी, शंख और कमल के समान उजले जो सहस्रों बादल पानी बरसने से हल्के होकर, पवन के सहारे इधर-उधर घूम रहे हैं, उनसे भरा हुआ आकाश कहीं-कहीं ऐसा लगने लगता है मानो किसी राजा पर सैकड़ों चँवर डुलाए जा रहे हों।।4।। घुटे हुए आँजन की पिंडी-जैसा नीला सुन्दर आकाश, दुपहरिया के फूलों से लाल बनी हुई धरती और पके हुए धान से लदे हुए सुन्दर खेत, इस संसार में किस युवक के मन को चंचल नहीं कर देते।।5।। जिसकी शाखाओं की सुन्दर फुनगियों को धीमा-धीमा पवन झुला रहा है, जिसपर बहुत से फूल खिले हुए हैं, जिसकी पत्तियाँ बड़ी कोमल हैं और जिसमें से बहते हुए मधु की धार को मस्त भौंरे धीरे-धीरे चूस रहे हैं, ऐसा कचनार का वृक्ष किसका हृदय टुकड़े-टुकड़े नहीं कर देता।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारागणप्रवरभूषणमुद्वहन्ती मेघावरोधपरिमुक्तशशाङ्कवक्त्रा।
ज्योत्स्नादुकूलममलं रजनी दधाना वृद्धिं प्रयात्यनुदिनं प्रमेदव बाला।।7।।
कारण्डवाननविघट्टितवीचिमालाः कादम्बसारसकुलाकुलतीरदेशाः।
कुर्वन्ति हंसविरुतैः परितो जनस्य प्रीतिं सरोरुहरजोरुणितास्तटिन्यः।।8।।
नेत्रोत्सवो हृदयहारिमरीचिमालः प्रह्लादकः शिशिरसीकरवारिवर्षी।
पत्युर्वियोगविषदग्धशरक्षतानां चन्द्रो दहत्यतितरां तनुमङ्गनानाम्।।9।।
आकम्पयन्फलभरानतशालिजालान्यानर्तयँस्तरुवरान्कुसुमावनम्रान्।
उत्फुल्लपङ्कजवनां नलिनीं विधुन्वन्यूनां मनश्चलयति प्रसभं नभस्वान्।।10।।
सोन्मादहंसमिथुनैरुपशोभितानि स्वच्छप्रफुल्लकमलोत्पलभूषितानि।
मन्दप्रभातपवनोद्गतवीचिमालान्युत्कण्ठयन्ति सहसा हृदयं सरांसि।।11।।
नष्टं धनुर्बलभिदो जलदोदरेषु सौदामिनी स्फुरति नाद्य वियत्पताका।
धुन्वन्ति पक्षपवनैर्न नभो बलाकाः पश्यन्ति नोन्नतमुखा गगनं मयूराः।।12।।
नृत्यप्रयोगरहिताञ्शिखिनो विहाय हंसानुपैति मदनो मधुरप्रगीतान्।
मुक्त्वा कदम्बकुटजार्जुनसर्जनीपान्सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः।।13।।

बादल हटे हुए चन्द्रमा के मुँहवाली आजकल की रात भी तारों के सुहावने गहनों वाली और चाँदनी की उजली साड़ी वाली मुग्धा नायिका के समान दिन-दिन बढ़ती चली जा रही हैं।।7।। जिन नदियों का जल कमल के पराग से लाल हो गया है, जिनपर हंस कूज रहे हैं, जिनकी लहरें जल-पक्षियों की चोंचों से टकराती जा रही हैं, और जिनके तीर पर कदम्ब और सारस पक्षियों के झुण्ड घूम रहे हैं, वे नदियाँ लोगों को बड़ी सुहावनी लगती हैं।।8।। सबकी आँखों को भला लगनेवाले जिस चन्द्रमा की किरणें मन को बरबस अपनी ओर खींच लेती हैं, वही सुहावना और ठण्डी फुहार बरसाने वाला चन्द्रमा, उन स्त्रियों के अंग बहुत भूने डाल रहा है जो अपने पतियों के बिछोह के विषाक्त बाणों से घायल हुई घरों में पड़ी-पड़ी कलप रही हैं।।9।। अन्न भरी हुई बालियों से झुके धान के पौधों को कँपाता हुआ फूलों से लदे हुए सुन्दर वृक्षों को नचाता हुआ और खिले हुए कमलों से भरे तालों की कमलनियों को हिलाता हुआ शीतल वायु, युवकों का मन झकझोर रहा है।।10।। जिन तालों के तीर पर मस्त हंसों के जोड़े घूम रहे हैं, जिनमें स्वच्छ खिले हुए उजले और नीले कमल शोभा दे रहे हैं और जिनमें प्रातःकाल के धीमे-धीमे पवन से लहरें उठ रही हैं, वे ताल, अचानक हृदय को मस्त बना रहे हैं।।11।। आजकल न तो बादलों में इन्द्रधनुष रह गए हैं, न बगुले ही अपने पँख हिला-हिलाकर आकाश को पंखा कर रहे हैं और न मोरों के झुण्ड ही मुँह उठाकर आकाश की ओर देख रहे हैं।।12।। जिन मोरों ने नाचना छोड़ दिया है, उन्हें छोड़कर अब कामदेव उन हंसों के पास पहुँच गया है जो बड़ी मीठी बोली में रुनझुन-रुनझुन कर रहे हैं। फूलों की सुन्दरता भी कदम्ब, कुटज, अर्जुन, सर्ज और अशोक के वृक्षों को छोड़कर छतिवन के पेड़ पर जा बसी है।।13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेफालिकाकुसुमगन्धमनोहराणि स्वस्थस्थिताण्डजकुलप्रतिनादितानि।
पर्यन्तसंस्थितमृगीनयनोत्पलानि प्रोत्कण्ठयन्त्युपवनानि मनांसि पुंसाम्।।14।।
कह्लारपद्मकुमुदानि मुहुर्विधुन्वंस्तत्संगमादधिकशीतलतामुपेतः।
उत्कण्ठयत्यतितरां पवनः प्रभाते पत्रान्तलग्नतुहिनाम्बुविधूयमानः।।15।।
संपन्नशालिनिचयावृतभूतलानि स्वस्थस्थितप्रचुरगोकुलशोभितानि।
हंसैः ससारसकुलैः प्रतिनादितानि सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम्।।16।।
हंसैर्जिता सुललिता गतिरङ्गनानामम्भोरुहैर्विकसितैर्मुखचन्द्रकान्तिः।
नीलोत्पलैर्मदकलानि विलोचनानि भ्रूविभ्रमाश्च रुचिरास्तनुभिस्तरङ्गैः।।17।।
श्यामा लताः कुसुमभारनतप्रवालाः स्त्रीणां हरन्ति धृतभूषणबाहुकान्तिम्।
दन्तावभासविशदस्मितचन्द्रकान्तिं कङ्केलिपुष्परुचिरा नवमालती च।।18।।
केशान्नितान्तघननीलविकुञ्चिताग्रानापूरयन्ति वनिता नवमालतीभिः।
कर्णेषु च प्रवरकाञ्चनकुण्डलेषु नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति।।19।।
हारैः सचन्दनरसैः स्तनमण्डलानि श्रोणीतटं सुविपुलं रसनाकलापैः।
पादाम्बुजानि कलनूपुरशेखरैश्च नार्यः प्रहृष्टमनसोऽद्य विभूषयन्ति।।20।।

जिन उपवनों में शेफालिका के फूलों की मनभावनी सुगन्ध फैली हुई है, जिनमें निश्चिन्त बैठी हुई चिड़ियों की चहचहाहट चारों ओर गूँज रही है, जिनमें कमल जैसी आँखोंवाली हरिणियाँ जहाँ-तहाँ बैठी जुगाली कर रही हैं, उन्हें देख-देखकर लोगों के मन हाथ से निकल जाते हैं।।14।। प्रातःकाल पत्तों पर पड़ी हुई ओस की बूंदों को छितराता हुआ और कोकाबेल, कमल तथा कुमुद से छू-छूकर ठंडक लेता हुआ जो पवन धीमे-धीमे बह रहा है वह किसे मस्त नहीं बना देता है।।15।। जहाँ खेतों में भरपूर धान के पौधे लहलहा रहे हों, जहाँ घास के मैदान में बहुत-सी गाएँ चर रही हों, जहाँ बहुत से सारसों और हंसों के जोड़े अपनी मीठी बोली बोल रहे हों, ऐसे स्थान लोगों को आजकल बड़े अच्छे लगते हैं।।16।। इन दिनों हंसों ने सुन्दरियों की मनभावनी चाल को, कमलिनियों ने उनके चन्द्रमुख की चमक को नीले कमलों ने उनकी मदभरी आँखों को और छोटी लहरियों ने उनकी भौंहों की सुन्दर मटक को हर लिया है।।17।। जिन हरी बेलों की टहनियाँ फूलों के बोझ से झुक गई हैं, उनकी सुन्दरता ने स्त्रियों के गहनों से सजी हुई बाँहों की सुन्दरता छीन ली है और कंकेलि तथा नई मालती के सुन्दर फूलों ने दाँतों की चमक से खिल उठनेवाली स्त्रियों की मुस्कराहट की चमक को लज्जित कर दिया है।।18।। स्त्रियाँ अपनी घनी घुँघराली काली लटों में नये मालती के फूल गूँथ रही हैं और अपने जिन कानों में वे सोने के बढ़िया कुण्डल पहना करती थीं, उनमें उन्होंने अनेक प्रकार के नीले कमल लटका दिए हैं।।19।। आजकल स्त्रियाँ बड़ी उमंग से अपने स्तनों पर मोतियों के हार पहनती और चन्दन पोतती हैं, अपने भारी-भारी नितम्बों पर करधनी बाँधती हैं और अपने कमल जैसे कोमल सुन्दर पैरों में छम-छम बजनेवाले बिछुए पहनती हैं।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुटकुमुदचितानां राजहंसाश्रितानां मरकतमणिभासा वारिणा भूषितानाम् ।
श्रियमतिशयरूपां व्योम तोयाशयानां वहति विगतमेघं चन्द्रतारावकीर्णम् ।। 21 ।।

शरदि कुमुदसङ्गाद्वायवोवान्तिशीता विगतजलदवृन्दा दिग्विभागा मनोज्ञाः ।
विगतकलुषमम्भः श्यानपङ्का धरित्री विमलकिरणचन्द्रं व्योम ताराविचित्रम् ।। 22 ।।

करकमलमनोज्ञाः कान्तसंसक्तहस्ता वदनविजितचन्द्राः काश्चिदन्यास्तरुण्यः ।
रचितकुसुमगन्धि प्रायशो यान्ति वेश्म प्रबलमदनहेतोस्त्यक्तसंगीतरागाः ।। 23 ।।

सुरतरसविलासाः सत्सखीभिः समेता असमशरविनोदं सूचयन्ति प्रकाशम् ।
अनुपममुखरागा रात्रिमध्ये विनोदं शरदि तरुणकान्ताः सूचयन्ति प्रमोदान् ।। 24 ।

दिवसकरमयूखैर्बोध्यमानं प्रभाते वरयुवतिमुखाभं पङ्कजं जृम्भतेऽद्य ।
कुमुदमपि गतेऽस्तं लीयते चन्द्रबिम्बे हसितमिव वधूनां प्रोषितेषु प्रियेषु ।। 25 ।।

असितनयनलक्ष्मीं लक्षयित्वोत्पलेषु क्वणितकनककाञ्चीं मत्तहंसस्वनेषु ।
अधररुचिरशोभां बन्धुजीवे प्रियाणां पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचितः ।। 26 ।।

खिले हुए चन्द्रमा और छिटके हुए तारों से भरा हुआ आजकल का खुला आकाश उन तालों के समान दिखाई पड़ रहा है जिनमें नीलम के समान चमकता हुआ जल भरा हुआ हो, जिनमें एक राजहंस बैठा हुआ हो और जिनमें यहाँ-वहाँ बहुत से कुमुद खिले हुए हों ।।21 ।। आजकल कमलों को छूता हुआ शीतल पवन बह रहा है, बादलों के उड़ जाने से चारों ओर सुहावना दिखाई दे रहा है, पानी का गँदलापन दूर हो गया है, धरती का सारा कीचड़ सूख गया है और आकाश में स्वच्छ किरणोंवाला चन्द्रमा और तारे निकल आए हैं ।।22 ।। चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर मुखवाली युवतियाँ अपना गाना-बजाना छोड़कर अत्यन्त कामातुर होकर अपने सुन्दर कमल जैसे हाथ अपने प्रेमी के हाथों में डालकर उन घरों में चली जा रही है, जिनमें सुगंधित फूलों की सेज बिछी हुई है ।।23 ।। शरद् में संभोग का रस लेनेवाली और अनूठे प्रकार से मुँह रँगनेवाली युवतियाँ जब अपनी सखियों के साथ बैठती हैं, तो आपस में एक दूसरी को सब बातें बता डालती हैं कि रात में कैसे-कैसे आनन्द लूटा गया ।।24 ।। प्रातःकाल जब सूर्य अपने करों से कमल को जगाता है, तब वह कमल सुन्दर युवती के मुख के समान खिल उठता है और जैसे प्रिय के परदेस चले जाने पर स्त्रियों की मुस्कराहट चली जाती है, वैसे ही चन्द्रमा के छिप जाने पर कोई भी सकुचा जाती है ।।25 ।। जब परदेश में गए हुए लोग नीले कमलों में अपनी प्रियतमा की काली आँखों की सुन्दरता देखते हैं, मस्त हंसों की ध्वनि में उनकी सुनहली करधनी की रुनझुन सुनते हैं और बन्धुजीव के फूलों में उनके निचले ओठों की चमकती हुई सुन्दरता की चमक पाते हैं, तब तो वे बेचारे सब सुध-बुध भूलकर रोने ही लग जाते हैं ।।26 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रीणां विहाय वदनेषु शशाङ्कलक्ष्मीं
काम्यं च हंसवचनं मणिनूपुरेषु।
बन्धूककान्तिमधरेषु मनोहरेषु
क्वापि प्रयाति सुभगा शरदागमश्रीः।। 27।।
विकचकमलवक्त्रा फुल्लनीलोत्पलाक्षी
विकसितनवकाशश्वेतवासो वसाना।
कुमुदरुचिरकान्तिः कामिनीवोन्मदेयं
प्रतिदिशतु शरद्वश्चेतसः प्रीतिमग्रयाम्।। 28।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ ऋतुसंहारे शरद्वर्णनं नाम तृतीयः सर्गः।

शरद् की सुन्दर शोभा कहीं तो चन्द्रमा की चमक को छोड़कर स्त्रियों के मुँह पर पहुँच गई है, कहीं हंसों की मीठी बोली छोड़कर नवेलियों के रतन-जड़े बिछुओं में चली गई है और कहीं बन्धूक फूलों की लाली को छोड़कर उनके निचले ओठों में जा चढ़ी है।।27।। भगवान् करें, ये खिले हुए उजले कमल के मुखवाली, फूले हुए नीले कमल की आँखोंवाली कुमुदिनी के समान सुन्दर शरीरवाली और फूले हुए काँस की साड़ी पहननेवाली यह कामिनी के समान मस्त शरद् ऋतु आप लोगों के मन में नई-नई उमंग भरे।।28।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित ऋतुसंहार काव्य में शरद् का वर्णन नाम का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थः सर्गः ।।

हेमन्तवर्णनम्

नवप्रवालोद्गमसस्यरम्यः प्रफुल्ललोध्रः परिपक्वशालिः।
विलीनपद्मः प्रपततुषारो हेमन्तकालः समुपागतोऽयम्।। 1।।
मनोहरैश्चन्दनरागगौरैस्तुषारकुन्देन्दुनिभैश्च हारैः।
विलासिनीनां स्तनशालिनीनां नालंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि।। 2।।
न बाहुयुग्मेषु विलासिनीनां प्रयान्ति सङ्गं वलयाङ्गदानि।
नितम्वविम्बेषु नवं दुकूलं तन्वशुकं पीनपयोधरेषु।। 3।।
काञ्चीगुणैः काञ्चनरत्नचित्रैर्नो भूषयन्ति प्रमदा नितम्बान्।
न नूपुरैर्हंसरुतं भजद्भिः पादाम्बुजान्यम्बुजकान्तिभाञ्जि।। 4।।
गात्राणि कालीयकचर्चितानि सपत्रलेखानि मुखाम्बुजानि।
शिरांसि कालागुरुधूपितानि कुर्वन्ति नार्यः सुरतोत्सवाय।। 5।।
रतिश्रमक्षामविपाण्डुवक्त्राः संप्राप्तहर्षाभ्युदयास्तरुण्यः।
हसन्ति नोच्चैर्दशनाग्रभिन्नान्प्रपीड्यमानानधरानवेक्ष्य।। 6।।

चौथा सर्ग
हेमन्त वर्णन

देखो! यह पाला गिराती हुई हेमन्त ऋतु आ गई है, जिसमें गेहूँ, जौ आदि के नये-नये अंकुरों के निकल आने से चारों ओर सुहावना दिखाई देने लगा है, लोध के पेड़ फूलों से लद गए हैं, धान पक चला है और कमल दिखाई नहीं देते।।1।। इन दिनों मुग्धा स्त्रियाँ अपने बड़े-बड़े गोल-गोल स्तनों पर हिम, कुमुदिनी और चन्द्रमा के समान उजले और कुंकुम के रंग में रँगे हुए मनोहर हार नहीं पहनती हैं।।2।। आजकल न तो ये कामिनियाँ अपनी दोनों भुजाओं पर कंगन और भुजबन्ध ही पहनती हैं, न अपने गोल-गोल नितम्बों पर नये रेशमी वस्त्र ही लपेटती हैं और न अपने मोटे-मोटे स्तनों पर महीन कपड़े ही बाँधती हैं।।3।। न वे अपने नितम्बों पर सोने और रत्नों से जड़ी हुई करधनी पहनती हैं और न अपने कमल-जैसे सुन्दर पैरों में हंस के समान ध्वनि करनेवाले बिछुए ही डालती हैं।।4।। आजकल अपने पति से संभोग की तैयारी में युवतियाँ, अपने शरीर पर चन्दन मलती हैं, अपने कमल-जैसे मुँह पर अनेक प्रकार के बेल-बूटे बनाती हैं और कालागुरु का धूप देकर अपने केश सुगन्धित करती हैं।।5।। संभोग की थकान से पीले और मुरझाए हुए मुखोंवाली युवतियाँ, हँसने की बात पर भी यह समझकर मुँह खोलकर नहीं हँसती कि कहीं प्यारे के पैने दाँतों से काटे हुए ओठ दुखने न लगें।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीनस्तनोरःस्थलभागशोभामासाद्य तत्पीडनजातखेदः ।
तृणाग्रलग्नैस्तुहिनैः पतद्भिराक्रन्दतीवोषसि शीतकालः ।। 7 ।।
प्रभूतशालिप्रसवैश्चितानि मृगाङ्गनायूथविभूषितानि ।
मनोहरक्रौञ्चनिनादितानि सीमान्तराण्युत्सुकयन्ति चेतः ।। 8 ।।
प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि सोन्मादकादम्बविभूषितानि ।
प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि सरांसि चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ।। 9 ।।
मार्गं समीक्ष्यातिनिरस्तनीरं प्रवासखिन्नं पतिमुद्वहन्त्यः ।
अवेक्ष्यमाणा हरिणेक्षणाक्ष्यः प्रबोधयन्तीव मनोरथानि ।। 10 ।।
पाकं व्रजन्ती हिमजातशीतैराधूयमाना सततं मरुद्भिः ।
प्रिये प्रियङ्गुः प्रियविप्रयुक्ता विपाण्डुतां याति विलासिनीव ।। 11 ।।
पुष्पासवामोदसुगन्धिवक्त्रो निःश्वासवातैः सुरभीकृताङ्गः ।
परस्पराङ्गव्यतिषङ्गशायी शेते जनः कामरसानुविद्धः ।। 12 ।।
दन्तच्छदैः सव्रणदन्तचिह्नैः स्तनैश्च पाण्यग्रकृताभिलेखैः ।
संसूच्यते निर्दयमङ्गनानां रतोपभोगो नवयौवनानाम् ।। 13 ।।
काचिद्विभूषयति दर्पणसक्तहस्ता बालातपेषु वनिता वदनारविन्दम् ।
दन्तच्छदं प्रियतमेन निपीत सारं दन्ताग्रभिन्नमवकृष्य निरीक्षते च ।। 14 ।।

प्रातःकाल घास पर फैली हुई ओस की बूँदों को देखकर ऐसा लगता है मानो युवतियों के मोटे-मोटे स्तनों को उनकी छातियों पर देखकर सुख पानेवाला हेमन्त, उन स्तनों को प्रेमियों के हाथों से मले जाते देखकर दुःखी होकर आँसू बहा रहा हो। ।7।। गाँव के बाहर जिन खेतों में भरपूर धान लहलहा रहा है, हरिणियों के झुंड के झुंड चौकड़ियाँ भर रहे हैं और सारस बोल रहे हैं, उन खेतों को देखकर मन मचल पड़ता है। ।8।। जिन तालों में खिले हुए नीले कमल फैले हुए हैं, मस्त कलहंस इधर-उधर तैर रहे हैं और ठंडा निर्मल जल भरा हुआ है, उन्हें देखकर लोगों का जी खिल उठता है। ।9।। जिनके पति परदेश चले गए हैं, वे मृगनयनी स्त्रियाँ जब सूखे हुए मार्ग को देखती हैं तो परदेश में पड़े हुए अपने दुःखी पतियों के आने की बाट जोहती हुई यह सोचती हैं कि जब हमारे पति आयेंगे, तब हम यों मिलेंगी, यों बातें करेंगी और यों रूठेंगी। ।10।। हे प्यारी! पाले से भरे ठंडे वायु से हिलती हुई यह पकी हुई प्रियङ्गु की लता, वैसी ही पीली पड़ गई है, जैसे अपने पति से अलग होने पर युवती पीली पड़ जाती है। ।11।। फूलों के गंध की भीनी और मीठी सुगंधवाले मुँह से मुँह लगाकर और एक दूसरे की साँसों से सुगन्धित अंगों से अंग मिलाकर सभी स्त्री-पुरुष एक दूसरे से लिपटकर संभोग करते हुए सोते हैं। ।12।। इस समय नवयुवकों ने नवयुवतियों के ओठों पर दाँत से घाव कर दिए हैं और उनके स्तनों पर अपने नखों से चिन्ह बना दिए हैं, इससे यह जान पड़ रहा है कि उनके प्यारे उनका जी-जान से संभोग कर रहे हैं। ।13।। देखो एक स्त्री, हाथों में दर्पण लिए हुए प्रातःकाल की धूप में बैठी अपने कमल जैसे मुँह का सिंगार कर रही है और जिन ओठों का प्यारे ने रस पी लिया है तथा जिन पर प्यारे के दाँतों के घाव बने हुए हैं, उन ओठों को खींच-खींचकर देख रही हैं। ।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्या प्रकाशमसुरतश्रमखिन्नदेहा रात्रिप्रजागरविपाटलनेत्रपद्मा।
स्रस्तांसदेशलुलिताकुलकेशपाशा निद्रां प्रयाति मृदुसूर्यकराभितप्ता।। 15।।
निर्माल्यदाम परिभुक्तमनोज्ञगन्धं मूर्ध्नोऽपनीय घननीलशिरोरुहान्ताः।
पीनोन्नतस्तनभरानतगात्रयष्ट्यः कुर्वन्ति केशरचनामपरास्तरुण्यः।। 16।।
अन्या प्रियेण परिभुक्तमवेक्ष्य गात्रं हर्षान्विता विरचिताधरचारुशोभा।
कूर्पासकं परिदधाति नखक्षताङ्गी व्यालम्बिनीलललितालककुञ्चिताक्षी।। 17।।
अन्याश्चिरं सुरतकेलिपरिश्रमेण खेदं गताः प्रशिथिलीकृतगात्रयष्ट्यः।
संहृष्यमाणपुलकोरुपयोधरान्ता अभ्यञ्जनं विदधति प्रमदाः सुशोभाः।। 18।।
बहुगुणरमणीयो योषितां चित्तहारी परिणतबहुशालिव्याकुलग्रामसीमा।
विनिपतिततुषारः क्रौञ्चनादोपगीतः प्रदिशतु हिमयुक्तः काल एषः सुखं वः।। 19।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ ऋतुसंहारे हेमन्तवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः।।

अत्यन्त संभोग से थक जाने के कारण एक दूसरी स्त्री की कमल जैसी आँखें रातभर जागने से लाल हो गई हैं, उसके कंधे झूल गये हैं, उसके बाल इधर-उधर बिखर गए हैं और वह प्रातःकाल के सूर्य की कोमल किरणों में धूप खाती हुई सो गई है।।15।। लम्बे, काले और घने केशोंवाली जिन स्त्रियों के शरीर, मोटे और ऊँचे स्तनों के कारण झुक गए हैं, वे अपने सिर से वह मुरझाई हुई माला उतार रही हैं, जिसकी मधुर सुगन्ध का आनन्द रात में ले चुकने पर प्रातः फिर से अपने बालों को सँवार रही हैं।।16।। नखों के घावों से भरे हुए अंगोंवाली और लटकती हुई सुन्दर अलकों से ढकी हुई आँखोंवाली एक दूसरी स्त्री, अपने प्यारे से उपभोग किए हुए शरीर को देख-देखकर बड़ी मगन होती हुई अपने अधरों को फिर पहले की तरह सुन्दर बनाकर अपनी चोली पहनने लगी है।।17।। इसी प्रकार बहुत देर तक संभोग करते-करते जो युवतियाँ थक गई हैं, जिनके कोमल और लचकीले शरीर ढीले पड़ गए हैं जिनकी जाँघों और स्तनों पर रोमाञ्च हो आया है, वे युवतियाँ बैठी अपने शरीर पर तेल मलवा रही हैं।।18।। भगवान् करे यह हेमन्त ऋतु आपको सुख दे, जो अनेक गुणों से मन को मुग्ध करनेवाली और स्त्रियों के चित्त को लुभानेवाली है, जिसमें गाँवों के आस-पास पके हुए धानों के खेत लहलहाते हैं, पाला गिरता है और सारस बोलते हैं।।19।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित ऋतुसंहार काव्य में हेमन्तवर्णन
नाम का चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चमः सर्गः ।।

शिशिरवर्णनम्

प्ररूढशालीक्षुचयावृतक्षितिं क्वचित्स्थितक्रौञ्चनिनादराजितम् ।
प्रकामकामं प्रमदाजनप्रियं वरोरु कालं शिशिराह्वयं शृणु ।। 1 ।।
निरुद्धवातायनमन्दिरोदरं हुताशनो भानुमतो गभस्तयः ।
गुरूणि वासांस्यबलाः सयौवनाः प्रयान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम् ।। 2 ।।
न चन्दनं चन्द्रमरीचिशीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम् ।
न वायवः सान्द्रतुषारशीतला जनस्य चित्तं रमयन्ति सांप्रतम् ।। 3 ।।
तुषारसंघातनिपातशीतलाः शशाङ्कभाभिः शिशिरीकृताः पुनः ।
विपाण्डुतारागणचारुभूषणा जनस्य सेव्या न भवन्ति रात्रयः ।। 4 ।।
गृहीतताम्बूलविलेपनस्रजः पुष्पासवामोदितवक्त्रपङ्कजाः ।
प्रकामकालागुरुधूपवासितं विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः ।। 5 ।।
कृतापराधान्बहुशोऽभितर्जितान्सवेपथून्साध्वसलुप्तचेतसः ।
निरीक्ष्य भर्तृन्सुरताभिलाषिणः स्त्रियोऽपराधान्समदा विसस्मरुः ।। 6 ।।

पाँचवाँ सर्ग

शिशिर का वर्णन

हे सुन्दर जाँघोंवाली! जिस ऋतु में धान और ईख के खेत भर जाते हैं. जिसमें कभी-कभी सारस की बोली भी गूँज जाती है और काम भी बहुत बढ़ जाता है, वह स्त्रियों की प्यारी शिखिर ऋतु आ पहुँची है।।1।। आजकल लोग अपने घरों के भीतर खिड़कियाँ बन्द करके, आग तापकर, धूप खाकर, मोटे-मोटे कपड़े पहनकर और युवती स्त्रियों से लिपटकर दिन बिताते हैं।।2।। इन दिनों न किसी को चन्द्रमा की किरणों से संसिक्त चन्दन ही अच्छा लगता है न शरद् के चन्द्रमा के समान निर्मल छतें सुहाती हैं, न घनी ओस से ठंडा बना हुआ वायु ही मन को भाता है।।3।। इन दिनों घने पाले से कड़कड़ाते जाड़ोंवाली, चन्द्रमा की किरणों से और भी ठंडी बनी हुई और पीले-पीले तारोंवाली रातों में कोई भी बाहर नहीं निकलता।।4।। फूलों के आसव पीने से जिनका कमल जैसा मुँह सुगन्धित हो गया है, वे स्त्रियाँ पान खाकर, फुलेल लगाकर और मालाएँ पहनकर, काले अगर के धुएँ से महकनेवाले अपने शयन-घरों में बड़े चाव से चली जा रही हैं।।5।। मदमाती स्त्रियों ने अपने जिन पतियों को अपराध करने पर डाँटा-फटकारा था, वे जब काँपते हुए और डर से घबराए हुए उनके पास संभोग करने के लिये आते हैं, तो उन्हें देखते ही वे स्त्रियाँ उनका सब अपराध भूलकर उनसे संभोग करने लगती हैं।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकामकामैर्युवभिः सुनिर्दयं निशासु दीर्घास्वभिरामिताश्चिरम् ।
भ्रमन्ति मन्दं श्रमखेदितोरवः क्षपावसाने नवयौवनाः स्त्रियः ।। 7 ।।
मनोज्ञकूर्पासकपीडितस्तनाः सरागकौशेयकभूषितोरवः ।
निवेशितान्तः कुसुमैः शिरोरुहैर्विभूषयन्तीव हिमागमं स्त्रियः ।। 8 ।।
पयोधरैः कुंकुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभिः ।
विलासिनीभिः परिपीडितोरसः स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ।। 9 ।।
सुगन्धिनिःश्वासविकम्पितोत्पलं मनोहरं कामरतिप्रबोधकम् ।
निशासु हृष्टाः सह कामिभिः स्त्रियः पिबन्ति मद्यं मदनीयमुत्तमम् ।। 10 ।।
अपगतमदरागा योषिदेका प्रभाते कृतनिविडकुचाग्रा पत्युरालिङ्गनेन ।
प्रियतमपरिभुक्तं वीक्षमाणा स्वदेहं व्रजति शयनवासाद्वासमन्यं हसन्ती ।। 11 ।।
अगुरुसुरभिधूपामोदितं केशपाशं गलितकुसुममालं कुञ्चिताग्रं वहन्ती ।
त्यजति गुरुनितम्वा निम्ननाभिः सुमध्या उपसि शयनमन्या कामिनी चारुशोभा ।। 12 ।।
कनककमलकान्तैश्चारुताम्राधरोष्ठैः श्रवणतटनिषक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः
उषसि वदनबिम्बैरंससंसक्तकेशैः श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोऽद्य ।। 13 ।।

जिन नवयुवतियों ने युवकों के साथ आजकल की लम्बी रातों में बहुत देर तक जी भरकर और कसकर संभोग का आनन्द लूटा है, वे स्त्रियाँ, रात के परिश्रम से दुखती हुई जाँघों के कारण प्रातःकाल बड़े धीरे-धीरे चल रही हैं।।7।। सुन्दर चोलियों से अपने स्तन कसे हुए, जाँघों पर रेशमी कपड़े पहने हुए और बालों में फूल गूँथे हुए स्त्रियाँ ऐसी लग रही हैं मानो जाड़े के स्वागत का उत्सव मनाने के लिये शृंगार कर रही हों।।8।। इन दिनों प्रेमी लोग केसर से रँगे हुए लाल स्तनोंवाली और सुख से लूटी जानेवाली जवानी की गर्मी से भरी हुई कमनियों को कसकर छाती से लिपटाए हुए जाड़ा भगाकर सोते हैं।।9।। इन दिनों स्त्रियाँ बड़े हर्ष से अपने प्रेमियों के साथ रात को, रुचिकर, बढ़िया, मद बहानेवाली और काम-वासना जगानेवाली वह मन्दिरा पीती हैं, जिसमें पड़े हुए कमल, उन कामिनियों की सुगंधित साँस से बराबर हिलते रहते हैं।।10।। देखो! प्रातःकाल होने पर एक स्त्री अपने प्रियतम से उपभोग किए हुए अपने शरीर को देखती हुई अपने शयन-घर से दूसरे घर में चली जा रही है। इस समय इसके मुख पर मद की लाली भी नहीं रह गई है और पति की छाती से लगे रहने के कारण उसके स्तनों की घुण्डियाँ भी कड़ी हो गई हैं।।11।। एक दूसरी भारी नितम्बवाली, गहरी, नाभिवाली, लचकदार कमरवाली और मनभावनी सुन्दरतावाली स्त्री अगर के धुएँ में वसी हुई अपनी बिना मालावाली घनी घुँघराली लटें हाथ में थामे प्रातःकाल पलँग छोड़कर उठ रही है।।12।। इन दिनों प्रातःकाल के समय स्त्रियों के सुन्दर लाल-लाल ओठोंवाले, लाल कोरों से सजी हुई बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, कंधों पर फैले हुए बालोंवाले और सुनहले कमल के समान चमकनेवाले गोल-गोल मुखों को देखकर ऐसा लगता है मानो लक्ष्मी घर-घर में आ वसी हों।।13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथुजघनभरार्ताः किंचिदानम्रमध्याः स्तनभरपरिखेदान्मन्दमन्दं व्रजन्त्यः।
सुरतसमयवेषं नैशमाशु प्रहाय दधति दिवसयोग्यं वेशमन्यास्तरुण्यः।।14।।
नखपदचितभागान्वीक्षमाणाः स्तनान्तानधरकिसलयाग्रं दन्तभिन्नं स्पृशन्त्यः।
अभिमतरतवेषं नन्दयन्त्यस्तरुण्यः सवितुरुदयकाले भूषयन्त्याननानि।।15।।
प्रचुरगुडविकारः स्वादुशालीक्षुरम्यः प्रबलसुरतकेलिर्जातकन्दर्पदर्पः।
प्रियजनरहितानां चित्तसंतापहेतुः शिशिरसमय एष श्रेयसे वोऽस्तु नित्यम्।।16।।

इति महाकविश्रीकालिदासविरचिते ऋतुसंहारकाव्ये शिशिरवर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः।।

अपने मोटे नितम्बों के बोझ से दुखी, अपने स्तनों के बोझ से झुकी हुई कमरवाली और थकने के कारण बहुत धीरे-धीरे चलनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ रात के संभोगवाले वस्त्र उतारकर दिन में पहनने के कपड़े पहन रही हैं।।14।। अपने प्यारे के नखों के घाव से भरी अपनी छाती देखती हुई, प्यार वशात् दाँतों से काटे हुए अपने कोंपलों के समान कोमल अधरों को छूती हुई और इस प्रकार अपने मनचाहे संभोग के वेश पर खिलखिलाती हुई स्त्रियाँ प्रातःकाल अपने मुँह सजा रही हैं।।15।। जिस शिशिर ऋतु में मिठाइयाँ बहुतायत से मिलती हैं, सुस्वादु चावल और ईख चारों ओर सुहाते हैं, लोग बहुत संभोग करते हैं, कामदेव भी पूरे वेग से बढ़ जाता है और प्यारों के बिना अकेले दिन काटनेवाले लोग मन मसोसकर रह जाते हैं वह शिशिर ऋतु आप लोगों का भला करे।।16।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित ऋतुसंहार काव्य में शिशिर ऋतु का
वर्णन नाम का पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षष्ठः सर्गः ।।

वसन्तवर्णनम्

प्रफुल्लचूताङ्कुरतीक्ष्णसायको द्विरेफमालाविलसद्धनुर्गुणः ।
मनांसि भेत्तुं सुरतप्रसंगिनां वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये ।। 1 ।।
द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः ।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते ।। 2 ।।
ईषत्तुषारैः कृतशीतहर्म्यः सुवासितं चारु शिरश्च चम्पकैः ।
कुर्वन्ति नार्योऽपि वसन्तकाले स्तनं सहारं कुसुमैर्मनोहरैः ।। 3 ।।
वापीजलानां मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम् ।
चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः ।। 4 ।।
कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलैर्नितम्वविम्वानि विलासिनीनाम् ।
तन्वंशुकैः कुङ्कुमरागगौरैलंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि ।। 5 ।।
कर्णेषु योग्यं नवकर्णिकारं चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम् ।
पुष्पं च फुल्लं नवमल्लिकायाः प्रयान्ति कान्तिं प्रमदाजनानाम् ।। 6 ।।
स्तनेषु हाराः सितचन्दनार्द्रा भुजेषु सङ्गं वलयाङ्गदानि ।
प्रयान्त्यनङ्गातुरमानसानां नितम्विनीनां जघनेषु काञ्च्यः ।। 7 ।।

छठा सर्ग

वसन्त का वर्णन

प्यारी! फूले हुए आम की मंजरियों के पैने बाण लेकर और अपने धनुष पर भौंरों की पाँतों की डोरी चढ़ाकर वीर वसन्त संभोग करनेवाले रसिकों को बेधने आ पहुँचा है।।1।। देखो प्यारी! वसन्त के आते ही सब वृक्ष फूलों से लद गए हैं, जल में कमल खिल गए हैं, स्त्रियाँ मतवाली हो गई हैं, वायु में सुगन्ध आने लगी है, सन्ध्या सुहावनी हो चली हैं और दिन लुभावने हो गए हैं। सचमुच सुन्दर वसन्त में सब कुछ सुहावना लगने लगता है।।2।। वसन्त में घरों की छतों पर ठंडी ओस आ गई है, चम्पा के फूलों से सबके जूड़े महकने लगे हैं और स्त्रियाँ भी अपने स्तनों पर मनोहर फूलों की मालाएँ पहनने लगी हैं।।3।। वसन्त के आने से बावड़ियों का जल, मणियों से जड़ी करधनियाँ, चाँदनी, मञ्जरी से लदी आमों की डालें अब और भी सुहावने लगने लगी हैं।।4।। कामिनियों ने अपने गोल-गोल नितम्बों पर कुसुम के लाल फूलों से रँगी रेशमी साड़ी पहन ली है और स्तनों पर केशर में रँगी हुई महीन कपड़े की चोली पहन ली है।।5।। स्त्रियों के कानों में लटके हुए सजीले कनैर के फूल बड़े सुहावने दिखाई पड़ रहे हैं और उनकी चंचल, काली, घुँघराली लटों में अशोक के फूल और नवमल्लिका की खिली हुई कलियाँ बड़ी सुहावनी लगने लगी हैं।। 6।। अपने प्रेमी से संभोग करने को उतावली नारियों ने अपने स्तनों पर धौले चन्दन से भींगे हुए मोती के हार पहन लिए हैं, हाथों में भुजबन्ध और कंगन डाल लिए हैं और अपने नितम्बों पर करधनी बाँध ली हैं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपत्रलेखेषु विलासिनीनां वक्त्रेषु हेमाम्बुरुहोपमेषु।
रत्नान्तरे मौक्तिकसङ्गरम्यः स्वेदागमो विस्तरतामुपैति।।8।।
उच्छ्वासयन्त्यः श्लथबन्धनानि गात्राणि कंदर्पसमाकुलानि।
समीपवर्तिष्वधुना प्रियेषु समुत्सुका एव भवन्ति नार्यः।।9।।
तनूनि पाण्डूनि मदालसानि मुहुर्मुहुर्जृम्भणतत्पराणि।
अङ्गान्यनङ्गः प्रमदाजनस्य करोति लावण्यससंभ्रमाणि।।10।।
छायां जनः समभिवाञ्छति पादपानां नक्तं तथेच्छति पुनः किरणं सुधांशोः।
हर्म्यं प्रयाति शयितुं सुखशीतलं च कान्तां च गाढमुपगूहति शीतलत्वात्।।11।।
नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डुः कठिनः स्तनेषु।
मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः स्त्रीणामनङ्गो बहुधा स्थितोऽद्य।।12।।
अङ्गानि निद्रालसविभ्रमाणि वाक्यानि किंचिन्मदिरालसानि।
भ्रूक्षेपजिह्मानि च वीक्षितानि चकार कामः प्रमदाजनानाम्।।13।।
प्रियङ्गुकालीयककुङ्कुमाक्तं स्नतेषु गौरेषु विलासिनीभिः।
आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभिर्मदालसाभिर्मृगनाभियुक्तम्।।14।।
गुरूणि वासांसि विहाय तूर्णं तनूनि लाक्षारसरञ्जितानि।
सुगन्धिकालागुरुधूपितानि धत्ते जनः काममदालसाङ्गः।।15।।

सुनहरे कमल के समान सुहावने स्त्रियों के मुखों पर फैली हुई पसीने की बूँदें ऐसी दिखाई पड़ती हैं मानो अनेक प्रकार के रत्नों के बीच बहुत से मोती जड़ दिए गए हों।।8।। कामवासना से पीड़ित स्त्रियाँ अपने प्रेमियों के सामने अपने अंग उघाड़ती हुई उन्हें ललचा भी रही हैं और अपनी अधीरता भी दिखा रही हैं।।9।। इन दिनों स्त्रियों में इतनी काम-वासना भर आती है कि उनके अंग दुबले पतले और पीले पड़ जाते हैं, वे मद से अलसाई-सी हो जाती हैं, बार-बार जँभाइयाँ लेती हैं और उनके सारे शरीर में कुछ अनोखा ही रसीलापन आ जाता है।।10।। इन दिनों लोग दिन में तो वृक्षों की शीतल छाया में रहना चाहते हैं, रात में चन्द्रमा की किरणों का आनन्द लेना चाहते हैं, सोने के लिये सुहावनी ठंडी कोठी में पहुँच जाते हैं और थोड़ी-थोड़ी ठंड पड़ने के कारण अपनी प्यारियों को कसकर छाती से लिपटाए रहते हैं।।11।। इन दिनों कामदेव भी स्त्रियों की मदमाती आँखों में चञ्चलता, उनके गालों में पीलापन, स्तनों में कठोरता कमर में गहरापन और नितम्बों में मोटापा बनकर आ बैठता है।।12।। काम से स्त्रियाँ अलसा जाती हैं, मद से उनका चलना-बोलना भी कठिन हो जाता है और टेढ़ी भौंहों से उनकी चितवन बड़ी कँटीली जान पड़ने लगती है।।13।। मद से अलसाई हुई रसीली स्त्रियाँ प्रियङ्गु, कालीयक और केसर के घोल में कस्तूरी मिलाकर अपने गोरे-गोरे स्तनों पर चन्दन का लेप कर रही हैं।।14।। इन दिनों कामदेव के मद में अलसाई हुई स्त्रियाँ अपने मोटे वस्त्र उतारकर महावर से रँगे हुए और कालागुरु के धुएँ से सुगन्धित किए हुए महीन कपड़े पहनती हैं।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुँस्कोकिलश्चतूरसासवेन मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः।
कूजद् द्विरेफाऽप्ययमम्बुजस्थः प्रियं प्रिपायाः प्रकरोति चाटु।।16।।
ताम्रप्रवालस्तबकावनम्राश्चूतद्रुमाः पुष्पितचारुशाखाः।
कुर्वन्ति कामं पवनावधूताः पर्युत्सुकं मानसमङ्गनानाम्।।17।।
आमूलतो विद्रुमरागताम्रं सपल्लवाः पुष्पचयं दधानाः।
कुर्वन्त्यशोका हृदयं सशोकं निरीक्ष्यमाणा नवयौवनानाम्।।18।।
मत्तद्विरेफपरिचुम्बितचारुपुष्पा मन्दानिलाकुलितनम्रमृदुप्रवालाः
कुर्वन्ति कामिमनसां सहसोत्सुकत्वं बालातिमुक्तलतिकाः समवेक्ष्यमाणाः।।19।।
कान्तामुखद्युतिजुषामचिरोद्गतानां शोभां परा कुरबकद्रुममञ्जरीणाम्।।
दृष्ट्वा प्रिये सहृदयस्य भवेन्न कस्य कंदर्पबाणपतनव्यथितं हि चेतः।।20।।
आदीप्तवह्निसदृशैर्मरुताऽवधूतैः सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनम्रैः।
सद्यो वसन्तसमयेन समाचितेयं रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः।।21।।
किं किंशुकैः शुकमुखच्छविभिर्न भिन्नं किं कर्णिकारकुसुमैर्न कृतं नु दग्धम्।
यत्कोकिलः पुनरयं मधुरैर्वचोभि- र्यूनां मनः सुवदनानिहितं निहन्ति।।22।।

देखो! यह नर कोयल आम की मञ्जरियों के रस में मदमस्त होकर अपनी प्यारी को बड़े प्रेम से प्रसन्न होकर चूम रहा है। कमल पर बैठकर गुनगुनाता हुआ यह भौंरा भी अपनी प्यारी का मनचाहा काम कर रहा है।।16।। लाल-लाल कोंपलों के गुच्छों से झुके हुए और सुन्दर मञ्जरियों से लदी हुई शाखाओं वाले आम के पेड़ जब पवन के झोंके में हिलने लगते हैं, तो उन्हें देख-देखंकर स्त्रियों के मन उछलने लगते हैं।।17।। अशोक के जिन वृक्षों में कोंपलें फूट निकली हैं और जिनमें मूँगे जैसे लाल-लाल फूल नीचे से ऊपर तक खिल जाते हैं, उन अशोक के वृक्षों को देखते ही नवयुवतियों के हृदय में शोक होने लगता है।।18।। जिन छोटी-छोटी अतिमुक्त लताओं के फूलों को मतवाले भौंरे चूस रहे हैं और जिनके नये कोमल पत्ते मन्द-मन्द पवन में झूल रहे हैं, उन्हें देख-देखकर कामिनियों का मन अचानक चंचल हो जाता है।।19।। हे प्यारी! अभी खिले हुए और स्त्रियों के मुख के समान सुन्दर लगनेवाले कुरबक के फूलों की अनोखी शोभा देखकर किस रसिक का मन कामदेव के बाण से घायल नहीं हो जाता।।20।। वसन्त के दिनों में पवन के झोंके से हिलती हुई जिन पलास के वृक्षों की फूली हुई शाखाएँ जलती हुई आग की लपटों के समान दिखाई देती हैं, ऐसे पलास के जंगलों से ढकी हुई पृथ्वी ऐसी लग रही है, मानो लाल साड़ी पहने हुए कोई नई दुल्हन हो।।21।। अपनी प्यारियों के मुखड़ों पर रीझे हुए प्रेमियों के हृदय को सुग्गे की ठोर के समान लाल टेसू के फूलों ने ही क्या कुछ कम टूक-टूक कर रखा था या कनैर के फूलों ने भी कुछ कम जला रखा था कि यह कोयल भी अपनी मीठी कूक सुना-सुनाकर उन्हें और मार डालने पर उतारू हो रही है।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुँस्कोकिलैः कलवचोभिरुपात्तहर्षैः
कूजद्भिरुन्मदकलानि वचांसि भृङ्गैः।
लज्जान्वितं सविनयं हृदयं क्षणेन
पर्याकुलं कुलगृहेऽपि कृतं वधूनाम्।। 23।।

आकम्पयन्कुसुमिताः सहकारशाखा
विस्तारयन्परभृतस्य वचांसि दिक्षु।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां
नीहारपातविगमात्सुभगो वसन्ते।। 24।।

कुन्दैः सविभ्रमवधूहसितावदातै-
रुद्द्योतितान्युपवनानि मनोहराणि।
चित्तं मुनेरपि हरन्ति निवृत्तरागं
प्रागेव रागमलिनानि मनांसि यूनाम्।। 25।।

आलम्बिहेमरसनाः स्तनसक्तहाराः
कंदर्पदर्पशिथिलीकृतगात्रयष्ट्यः।
मासे मधौ मधुरकोकिलभृङ्गनादै-
र्नार्या हरन्ति हृदयं प्रसभं नराणाम्।। 26।।

नानामनोज्ञकुसुमद्रुमभूषितान्ता-
न्हृष्टान्यपुष्टनिनदाकुलसानुदेशान्।
शैलेयजालपरिणद्धशिलातलान्ता-
न्दृष्ट्वा नतः क्षितिभृतो मुदमेति सर्वः।। 27।।

मगन होकर मीठे स्वर में कूकनेवाले नर कोयलों ने और मस्ती से गूँजते हुए भौंरों ने सती स्त्रियों के लाज और मर्यादा-भरे हृदय को भी थोड़ी देर के लिये अधीर कर दिया है।।23।। वसन्त में पाला तो पड़ता नहीं है, इसलिए आजकल मञ्जरियों से लदी आम की डालों को हिलानेवाला और कोयल के संदेशों को चारों ओर फैलानेवाला सुन्दर वसन्ती पवन लोगों का मन हरता हुआ बह रहा है।।24।। कामिनियों की मस्तानी हँसी के समान उजले कुन्द के फूलों से चमकते हुए मनोहर उपवन जब मोह-माया से दूर रहनेवाले मुनियों तक का मन हर लेते हैं तब नवयुवकों के प्रेमी हृदय की तो बात ही क्या?।।25।। चैत में जब कोयल की कूक सुनाई देने लगती है, भौंरे गूँजने लगते हैं, उस समय कमर में सोने की करधनी बाँधे, स्तनों पर मोती के हार लटकाए और काम की उत्तेजना से ढीले शरीरवाली स्त्रियाँ बलपूर्वक लोगों का मन अपनी ओर खींचे लेती हैं।।26।। जिन पर्वतों की चोटियों के ओर-छोर पर सुन्दर फूलों के पेड़ खड़े हैं, जिनपर कोयलों की कूक और भौंरों की गूँज सुनाई दे रही है और जिनपर चट्टानें फैली हुई हैं, उन पथरीले पहाड़ों को देख-देखकर सबको आनन्द मिलता है।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोकं
घ्राणं करेण विरुणद्धि विरौति चोच्चैः।
कान्तावियोगपरिखेदितचित्तवृत्ति-
र्दृष्ट्वाऽध्वगः कुसुमितान्सकारवृक्षान्।। 28।।

समदमधुकराणां कोकिलानां च नादैः।
कुसुमितसहकारैः कर्णिकारैश्च रम्यः।
इषुभिरिव सुतीक्ष्णैर्मानसं मानिनीनां
तुदति कुसुमासो मन्मथोद्दीपनाय।। 29।।

रुचिरकनकान्तीन्मुञ्चतः पुष्पराशी-
न्मृदुपवनविधूतान्पुष्पिताँश्चूतवृक्षान्।
अभिमुखमभिवीक्ष्य क्षामदेहोऽपि मार्गे
मदनशरनिघातैर्मोहमेति प्रवासी।। 30।।

परभृतकलगीतैर्ह्लादिभिः सद्वचांसि
स्मितदशनमयूखान्कुन्दपुष्पप्रभाभिः।
करकिसलयकान्तिं पल्लवैर्विद्रुमाभै-
रुपहसति वसन्तः कामिनीनामिदानीम्।। 31।।

अपनी स्त्रियों से दूर रहने के कारण जिनका चित्त बेचैन हो रहा है, वे यात्री जब मञ्जरियों से लदे हुए आम के पेड़ों को देखते हैं, तब अपनी आँख बन्द करके रोते हैं; पछताते हैं, अपनी नाक बन्द कर लेते हैं कि कहीं मञ्जरियों की भीनी-भीनी महक नाक में पहुँचकर स्त्री की याद न दिला दे और फूट-फूटकर रोने लगते हैं।।28।। कोयल और मदमाते भौंरों के स्वरों से गूँजनेवाले बौरे हुए आम के पेड़ों से भरा हुआ और कनैर के फूलोंवाले अपने पैने बाणों से यह वसन्त मानिनी स्त्रियों के मन इसलिये बींध रहा है कि उनमें प्रेम जग जाय।।29।। परदेश में पड़ा हुआ यात्री एक तो यों ही बिछोह से दुबला-पतला हुआ रहता है इसके बाद भी जब वह मन्द-मन्द बहनेवाले पवन के झोंके से हिलते हुए और सुन्दर सुनहले बौर गिरानेवाले, बौरे हुए आम के वृक्षों को अपने सामने मार्ग में देखता है तो वह कामदेव के बाणों की चोट खाकर मूर्छित होकर गिर पड़ता है।।30।। इस समय चित्त हुलसानेवाले कोकिल के गीत सुना-सुनाकर यह वसन्त, सुन्दरियों की रसभरी बातों की खिल्ली उड़ा रहा है। अपने कुन्द के फूलों की चमक दिखाकर यह वसन्त स्त्रियों की मुसकान पर चमक उठनेवाले दाँतों की दमक की हँसी उड़ा रहा है और मूँगे जैसी लाल-लाल कोमल पत्तों की ललाई दिखाकर उन कामिनियों की कोपलों जैसी कोमल और लाल हथेलियों को जला रहा है।।31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनककमलकान्तैराननैः पाण्डुगण्डै-
रुपरिनिहितहारैश्चन्दनार्द्रैः स्तनान्तैः
मदजनितविलासैर्दृष्टिपातैर्मुनीन्द्रा-
न्स्तनभरनतनार्यः कामयन्ति प्रशान्तान्।। 32।।

मधुसुरभि मुखाब्जं लोचने लोध्रताम्रे
नवकुरवकपूर्णः केशपाशो मनोज्ञः।
गुरुतरकुचयुग्मं श्रोणिबिम्बं तथैव
न भवति किमिदानीं योषितां मन्मथाय।। 33।।

आकम्पितानि हृदयानि मनस्विनीनां
वातैः प्रफुल्लसहकारकृताधिवासैः।
उत्कूजितैः परभृतस्य मदाकुलस्य
श्रोत्रप्रियैर्मधुकरस्य च गीतनादैः। 34।।

रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः
पुँस्कोकिलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः
मत्तालियूथविरुतं निशि सीधुपानं
सर्व रसायनमिदं कुसुमायुधस्य।। 35।।

रक्ताशोकविकल्पिताधरमधुर्मत्ताद्विरेफस्वनः
कुन्दापीडविशुद्धदन्तनिकरः प्रोत्फुल्लपद्माननः।
चूतामोदसुगन्धिमन्दपवनः शृङ्गारदीक्षागुरुः
कल्पान्तं मदनप्रियो दिशतु वः पुष्पागमो मङ्गलम्।। 36।।

स्तनों के बोझ से झुकी हुई स्त्रियाँ अपने स्वर्ण कमल के समान सुनहरे गालोंवाले मुँह से, गीले चन्दन से लिप्त और मोतियों के हार पड़े हुए स्तन से और मतवाली चंचलता भरी चितवन से, शान्त चित्तवाले तपस्वियों का मन भी डिगा देती हैं।।32। आसव से महकता हुआ स्त्रियों का कमल के समान मुख उनकी लोध जैसी लाल-लाल आँखें, नए कुरबक के फूलों से सजे हुए उनके सुन्दर जूड़े उनके बड़े-बड़े गोल-गोल स्तन और वैसे ही बड़े-बड़े गोल-गोल नितम्ब क्या लोगों के मन में कामदेव को नहीं जगा रहे हैं।।33।। बौरे हुए आम के पेड़ों में बसे हुए पवन से मदमस्त कोकिल की कूक से और भौंरों की मनभावनी गुँजारों से मनस्विनी स्त्रियों के मन भी डिग जाते हैं।।34।। लुभावनी सन्ध्या, छिटकी चाँदनी, कोयल की कूक, सुगन्धित पवन, मतवाले भौंरों की गुँजार और रात में आसव पीना, ये सब कामदेव को जगाए रखनेवाले रसायन ही हैं।।35।। अमृत-भरे अधरों के समान लाल अशोक से मतवाले भौंरों की गूँज से, दाँत की चमकती हुई पाँतों जैसे उजले कुन्द के हारों से, भली-भाँति खिले हुए कमल के समान मुखों से आम के बौरों की सुगन्ध में बसे हुए मन्द-मन्द पवन से यह शृंगार की शिक्षा देनेवाला और काम का मित्र वसन्त आप लोगों को सदा प्रसन्न रखे।।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयपवनविद्धः कोकिलालापरम्यः
सुरभिमधुनिषेकाल्लब्धगन्धप्रबन्धः ।
विविधमधुपयूथैर्वेष्ट्यमानः समन्ता-
द्भवतु तव वसन्तः श्रेष्ठकालः सुखाय ।। 37 ।।

आम्री मञ्जुलमञ्जरी वरशरः सत्किंशुकं यद्धनु-
र्ज्या यस्यालिकुलं कलङ्करहितं छत्रं सितांशुः सितम् ।
मत्तेभो मलयानिलः परभृता यद्वन्दिनो लोकजि-
त्सोऽयं वो वितरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः ।। 38 ।।

।। इति महाकवि श्री कालिदास विरचिते ऋतुसंहारकाव्ये
वसन्तवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ।।

मलय के वायुवाला, कोकिल की कूक से चित्त को लुभानेवाला, सदा सुगन्धित मधु बरसानेवाला और चारों ओर भौंरों से घिरा हुआ वसन्त आपको सुखी और प्रसन्न रखे ।।37।। जिसके आम के बौर ही बाण हैं, टेसू ही धनुष हैं, भौंरों की पाँत डोरी है, मलयाचल से आया हुआ पवन ही मतवाला हाथी है, कोयल ही गायक है और शरीर न रहते हुए भी जिसने संसार को जीत लिया है वह कामदेव वसन्त के साथ आपका कल्याण करे ।।38।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित ऋतुसंहार काव्य में
वसन्त-वर्णन नाम का छठा सर्ग पूर्ण हुआ।

।। ऋतुसंहार काव्य पूर्ण हुआ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. मेघदूतम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

145178 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मेघदूतम्

।। पूर्वमेघः ।।

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः।
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।। 1।।
तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।। 2।।
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।। 3।।

पूर्वमेघ

[अलकापुरी में कुबेर के यहाँ एक यक्ष प्रतिदिन मानसरोवर से स्वर्णकमल लाने के काम पर लगाया गया था, जिसने प्रमादवशात् अपने काम में कुछ ढिलाई कर दी। जिससे कुबेर ने झल्लाकर उसे यह कहकर देश-निकाला दे दिया कि अब एक वर्ष तक तू अपनी पत्नी से नहीं मिलने पायगा।] इस शाप से उसका सारा राग-रंग जाता रहा और शाप के दिन काटने के लिये उसने रामगिरि के उन आश्रमों में जाकर डेरा डाला जहाँ के कुंडों, तालाबों और बावड़ियों का जल श्री जानकीजी के स्नान से पवित्र हो गया था और जहाँ घनी छायावाले बहुत-से वृक्ष लहलहा रहे थे।।1।। अपनी पत्नी के बिना जो एक क्षण नहीं रह पाता था, वह यक्ष अपनी पत्नी से बिछुड़ने पर सूखकर काँटा हो गया। उसके हाथ के सोने के कंगन भी ढीले होकर निकल गए और यों ही रोते-कलपते उसने कुछ महीने तो उस पहाड़ी पर जैसे-तैसे काट दिए। पर असाढ़ के पहले ही दिन वह देखता क्या है कि सामने बादलों से लिपटी हुई पहाड़ी की चोटी ऐसी लग रही है, मानो कोई हाथी अपने माथे की टक्कर से मिट्टी के टीले को ढहाने का खेल कर रहा हो।।2।। मन में प्रेम उकसानेवाले उन बादलों को देखकर महाराज कुबेर का सेवक आँसू रोके ज्यों-त्यों खड़ा हुआ बहुत देर तक सोचता ही रह गया, क्योंकि बादलों को देखकर जब सुखी लोगों का मन भी डोल जाता है, तब उस वियोगी का तो कहना ही क्या, जो दूर देश में पड़ा हुआ अपनी प्यारी के गले लगने के लिये दिन-रात तड़प रहा हो।।3।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वगतं व्याजहार।।4।।

धूमज्ज्योतिःसलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः।
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।5।।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।6।।

बादल को देखते ही उसे ध्यान आया कि असाढ़ बीतते ही सावन भी आ जायेगा और उस समय मेरी कोमल प्रिंया अपने को सँभाल न पायेगी। इसलिये उसने सोचा कि अपनी प्यारी को ढाढ़स बँधाने के लिये और उसके प्राण बचाने के लिये क्यों न इन बादलों के द्वारा ही अपना कुशल-समाचार भेज दूँ! यह ध्यान आते ही वह मगन हो उठा। उसने झट कुटज के खिले हुए फूल उतारकर पहले तो मेघ की पूजा की और फिर कुशल-मंगल पूछकर उसका स्वागत किया।।4।। भला बताइए, कहाँ तो धुएँ, अग्नि, जल और वायु के मेल से बना हुआ बादल और कहाँ संदेश की वे बातें, जिन्हें बड़े चतुर लोग ही पहुँचा सकते हैं। पर यक्ष को अपने तन-मन की तो सुध थी ही नहीं, फिर भला उसका ध्यान यहाँ तक पहुँच कैसे पाता? इसीलिये वह यक्ष अपने सँदेशे भेजने के लिये बादल के आगे गिड़गिड़ाने लगा। सच है, प्रेमियों को यह जानने की सुध ही कहाँ रहती है कि कौन जड़ है और कौन चेतन।।5।। बादल की बड़ाई करते हुए यक्ष कहने लगा—'हे मेघ! संसार में पुष्कर और आवर्त्तक नाम के जो बादलों के दो प्रसिद्ध और ऊँचे कुल हैं, उन्हीं में तुमने जन्म लिया है। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम इन्द्र के दूत हो और जैसा चाहो वैसा अपना रूप भी बना सकते हो, इसीलिये अपनी प्यारी से इतनी दूर लाकर पटका हुआ मैं अभागा तुम्हारे ही आगे हाथ पसार रहा हूँ, क्योंकि गुणी के आगे हाथ फैलाकर रिक्त हाथों लौट आना अच्छा है, पर नीच से सफलेच्छा हो जाना भी अच्छा नहीं।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।। 7।।
त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः।
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः।। 8।।
तां चावश्यं दिवसगणनात्परामेकपत्नी
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणाद्धि।। 9।।
मन्दं मन्दं नुदति पवनश्वानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।। 10।।

अकेले तुम्हीं तो संसार के तपे हुए प्राणियों को ठंडक देनेवाले हो, इसलिये हे मेघ! कुबेर के क्रोध से निकाले हुए और अपनी प्यारी से दूर पटके हुए मुझ वियोगी का संदेशा भी तुम्हीं मेरी प्यारी के पास पहुँचा आओ। देखो! यह संदेश लेकर तुम्हें बड़े ठाठ-बाट से रहनेवाले यक्षों की अलका नाम की उस बस्ती को जाना होगा, जहाँ के भवनों में, बस्ती के बाहर वाले उद्यान में बनी हुई शिवजी की मूर्ति के सिर पर जड़ी हुई चन्द्रिका से सदा उजाला रहा करता है।।7।। जब तुम वायु पर पैर रखकर ऊपर चढ़ोगे तब परदेसियों की स्त्रियाँ अपनी अलकें ऊपर उठा-उठाकर बड़े भरोसे से ढाढ़स पाकर तुम्हारी ओर एकटक देखेंगी, क्योंकि मुझ-जैसे पराधीन को छोड़कर और कौन ऐसा निर्दयी होगा, जो तुम्हें उमड़ा हुआ देखकर भी वियोग में तड़पनेवाली अपनी पत्नी से मिलने को उतावला न हो उठे।।8।। हे मेघ! ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ तुम्हारी पहुँच न हो, इसलिये तुम अपनी इस पतिव्रता भाभी को अवश्य ही पा जाओगे, जो बैठी हुई मेरे लौटने के दिन गिन रही होगी; क्योंकि देखो, प्रेमियों का फूल-जैसा कोमल हृदय, बस मिलने की आशा पर ही टिका रहता है। इसलिये स्त्रियों के जो हृदय अपने प्रेमियों से बिछुड़ने पर एक क्षण नहीं टिके रह सकते हैं, वे इसी आशा के सहारे उन स्त्रियों को जिंदा रखते हैं।।9।। देखो! सकुन भी सब अच्छे हो रहे हैं तुम्हारा साथी वायु धीरे-धीरे तुम्हें आगे बढ़ा रहा है। इधर अपनी आन का पक्का यह चातक भी बाईं ओर अपनी मीठी बोली बोल रहा है। अभी थोड़ी ही देर में तुम्हारा यह आँखों को सुहानेवाला रूप देखकर बगुलियाँ भी समझ लेंगी कि हमारे गर्भधारण करने का समय आ गया है और वे पाँत बाँध-बाँधकर अपने पंखों से तुम्हें पंखा झलने के लिये अवश्य ही आकाश में उड़-उड़कर अभी आ रही होंगी।।10।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आकैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।। 11।।

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम्।। 12।।

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
संदेशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपभुज्य।। 3।।

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान्।। 14।।

तुम्हारे जिस गर्जन से कुकुरमुत्ते निकल आते हैं और धरती उपजाऊ हो जाती है, वही कानों को भला लगनेवाला तुम्हारा गरजना सुनकर, मानसरोवर जाने को उतावले राजहंस अपनी चोंचों में कमल की अगली डंठल लिए कैलासपर्वत तक तुम्हारे साथ-साथ आकाश में उड़ते हुए जायँगे।।11।। हे मेघ! जिस पहाड़ पर तुम लिपटे हुए हो, इसकी ढालों पर भगवान् रामचन्द्रजी के उन पैरों की छाप जहाँ-जहाँ पड़ी है, जिन्हें सारा संसार पूजता है, जब-जब तुम इससे मिलने आते हो, तब-तब यह भी बहुत दिनों पर मिलने के कारण तुम्हारे साथ अपने गरम-गरम आँसू बहाकर अपना प्रेम प्रकट करता है।। इसलिये अपने इस प्यारे मित्र पहाड़ की चोटी से जी-भर गले मिलकर इससे बिदा ले लो।।12।। अच्छा, पहले मैं तुम्हें वह मार्ग समझा दूँ जिधर से जाने में तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा। मार्ग समझा देने पर मैं अपना प्यारा सँदेसा भी बता दूँगा। देखो! मार्ग में चलते हुए जब कभी थकने लगो, तो मार्ग में पड़ती हुई पर्वत की चोटियों पर ठहरते जाना, और जब-जब तुम पानी की कमी से दुबले पड़ने लगो तब-तब झरनों का हल्का-हल्का जल पीते हुए जाना।।13।। लहलहाते खेतों से लदी हुई इस पहाड़ी से जब तुम ऊपर उड़ोगे, तब तुम्हारा उड़ना देखकर सिद्धों की भोली-भाली स्त्रियाँ आँखें फाड़-फाड़कर तुम्हारी ओर देखती हुई सोचेंगी कि कहीं पहाड़ की चोटी को ही तो पवन नहीं उड़ाए लिए चला जा रहा है? इस प्रकार ठाट से उड़ते हुए तुम दिग्गजों की मोटी सूँड़ों की फटकारों को धकेलते हुए उत्तर की ओर घूम जाना।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।। 15।।
त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानाभिज्ञैः।
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किंचित्पश्चाद्व्रजलघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।। 16।।
त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।। 17।
छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थाम्
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।। 18।।

देखो! वहाँ सामने बाँबी के ऊपर उठा हुआ इन्द्रधनुष का एक टुकड़ा ऐसा सुन्दर दिखाई पड़ रहा है, मानो बहुत से रत्नों की चमक, एक साथ वहाँ लाकर इकट्ठी कर दी गई हो। इस इन्द्रधनुष से सजा हुआ तुम्हारा साँवला शरीर ऐसा सुन्दर लगने लगा है, जैसे मोरमुकुट पहने हुए ग्वाले का वेश बनाए हुए श्रीकृष्णजी ही आकर खड़े हो गए हों।।15।। देखो! खेती का होना न होना भी सब तुम्हारे ही भरोसे है, इसलिये किसानों की वे भोली-भाली स्त्रियाँ भी तुम्हें बड़े प्रेम और आदर से देखेंगी, जिन्हें भौं चलाकर रिझाना नहीं आता है। वहाँ तुम मालदेश के उन खेतों पर बरस जाना जहाँ अभी जोत्ते जाने के कारण सोंधी-सोंधी सुगन्ध निकल रही हो। वहाँ से थोड़ा पच्छिम की ओर घूमकर फिर झटपट उत्तर की ओर बढ़ जाना।।16।। जब तुम मूसलाधार पानी बरसाकर आम्रकूट पहाड़ के जंगलों की आग बुझाओगे तो वह तुम्हारा उपकार मानकर और तुम्हें थका हुआ समझकर, बड़े प्रेम से तुम्हें मित्र बनाकर अपनी चोटी पर आदर के साथ ठहरायेगा, क्योंकि जब दरिद्र लोग भी आए हुए मित्र के उपकार का ध्यान करके उसका सत्कार करने में नहीं चूकते, तब आम्रकूट-जैसे ऊँचों का तो कहना ही क्या।।17।। देखो! पके हुए फलों से लदे आम के वृक्षों से घिरा हुआ आम्रकूट पर्वत पीला-सा हो गया होगा। उसकी चोटी पर जब तुम कोमल बालों के जूड़े के समान साँवला रंग लेकर चढ़ोगे, तब वह पर्वत, देवताओं के दम्पतियों को दूर से ऐसा दिखाई देगा मानो वह पृथ्वी का उठा हुआ ऐसा स्तन हो, जिसके बीच में काला गोला हो और चारों ओर पीला हो।।18।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाध्यमानः।
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु।।19।।

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य।।20।।

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।
अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।।21।।

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
जग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः।
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्।।22।।

हे मेघ! जब तुम थककर आम्रकूट पर्वत पर पहुँचोगे, तब वह प्रशंसनीय आम्रकूट पर्वत तुम्हें अपनी ऊँची चोटी पर भली-भाँति ठहरायेगा। उस समय तुम भी जल बरसाकर उसके जंगलों में लगी हुई गर्मी की आग बुझा देना; क्योंकि यदि सच्चे मन से बड़ों पर उपकार कर दिया जाये, तो वे अपने ऊपर भलाई करनेवाले का आदर करने में देर नहीं लगाते।।19।। उस आम्रकूट के जिन कुञ्जों में जंगली स्त्रियाँ घूमा करती हैं, वहाँ थोड़ी ही देर ठहरना और फिर पग बढ़ाकर चल देना, क्योंकि जल बरसा देने से तुम्हारी देह का भारीपन भी दूर हो जाएगा और तुम्हारी चाल भी बढ़ जाएगी। वहाँ से आगे चलने पर तुम्हें विन्ध्याचल के ऊबड़-खाबड़ पठार पर बहुत-सी धाराओं में फैली हुई रेवा नदी मिलेगी, जो तुम्हें ऊपर से ऐसी दिखाई देगी मानो किसी ने बड़े से हाथी का शरीर भभूत से लीप दिया हो।।20।। देखो! वहाँ जब जल बरसा चुको, तो जंगली हाथियों के सुगन्धित मद में बसा हुआ और जामुन की कुञ्जों में बहता हुआ रेवा का जल पीकर आगे बढ़ना। जल पीकर जब तुम भारी हो जाओगे तो वायु तुम्हें इधर-उधर झुला नहीं सकेगा। देखो! जिसके हाथ रिक्त होते हैं उसी को सब दुरदुराते हैं, और जो भरा-पूरा होता है, उसका सभी आदर करते हैं।।21।। देखो! जिस समय तुम जल बरसाते चले जा रहे होंगे, उस समय अधपके हरे-पीले कदम्ब के फूलों पर मँडराते हुए भौंरे, दलदलों में नई फूली हुई कन्दली की पत्तियों को चरते हुए हिरण और जंगली धरती की तीखी गन्ध सूँघते हुए हाथी, तुम्हें मार्ग बताते चलेंगे।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुराँश्चातकान्वीक्षमाणाः।
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि।। 23।।

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत्।। 24।।

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः। 25।।

तेषा दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।। 26।।

ऊपर ही ऊपर बूँदें घोंटते हुए चातकों को देखनेवाले, और पाँत बाँधकर उड़ती हुई बगुलियों को एक-एक करके गिनने वाले सिद्धों की प्यारी स्त्रियाँ जब तुम्हारा गर्जन सुनकर झट से घबराकर उनके पास गले लग जायेंगी, तब वे सिद्ध लोग तुम्हारा बड़ा भला मनायेंगे।।23।। मित्र यह तो मैं जानता हूँ कि तुम मेरे काम के लिये बिना रुके झटपट जाना चाहोगे फिर भी मैं समझता हूँ कि कुटज के फूलों से लदे हुए उन सुगन्धित पहाड़ों पर तुम्हें ठहरते ही जाना होगा, जहाँ के मोर, नेत्रों में आनन्द के आँसू भरकर अपनी कूक से तुम्हारा स्वागत कर रहे होंगे। पर मुझे आशा है कि तुम वहाँ से जैसे भी होगा झटपट चल दोगे।।24।। हे मेघ! जब तुम दशार्णदेश के पास पहुँचोगे, तब फूले हुए केवड़ों के कारण वहाँ के फूले हुए उपवनों की बाड़ उजली दिखाई देंगी, गाँव के मन्दिर, कौओं आदि पक्षियों के घोंसलों से भरे मिलेंगे, वहाँ के जंगल, पकी हुई काली जामुनों से लदे मिलेंगे और हंस भी वहाँ पर कुछ दिनों के लिये आ बसे होंगे।।25।। दशार्णदेश की विदिशा नाम की प्रसिद्ध राजधानी में पहुँचते ही तुम्हें विलास की सब सामग्री मिल जायेगी; क्योंकि जब तुम वहाँ की सुहावनी, मनभावनी और नाचती हुई लहरोंवाली वेत्रवती नदी के तीर पर गर्जन करके उसका मीठा जल पीओगे तब तुम्हें ऐसा लगेगा मानो तुम किसी कटीली भौंहोंवाली कामिनी के ओठों का रस पी रहे हो।।26।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि।। 27।।

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम्।। 28।।

वक्रःपन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि।। 29।।

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भवरसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।। 30।।

वहाँ पहुँचकर तुम 'नीच' नाम की पहाड़ी पर थकावट मिटामे के लिये उतर जाना। वहाँ पर फूले हुए कदंब के वृक्षों को देखकर ऐसा जान पड़ेगा मानो तुमसे भेंट करने के कारण उनके रोम-रोम फहरा उठे हों। उसी पहाड़ी की गुफाओं में से उन सुगंधित पदाथों की गंध निकल रही होगी, जो वहाँ के कामी पुरुष वेश्याओं के रति साथ करने के समय काम में लाते हैं। इससे तुम्हें यह भी ज्ञात हो जाएगा कि वहाँ के नागरिक कितना खुल्लम-खुल्ला यौवन का रस लेते हैं।।27।। वहाँ थकावट मिटाकर, तुम जंगली नदियों के तीरों पर उपवन में खिली हुई जूही की कलियों को अपने जल की फुहारों से सींचते हुए और वहाँ की फूल उतारनेवाली उन मालिनों के मुँह पर छाया करके थोड़ी सी जान-पहचान बढ़ाते हुए आगे बढ़ जाना, जिनके कानों में लटके हुए कमल की पंखुड़ियों के कनफूल उनके गालों पर बहते हुए पसीने से लग-लगकर मैले हो गए होंगे।।28।। उत्तर की ओर जाने में यद्यपि उज्जयिनी वाला मार्ग कुछ टेड़ा पड़ेगा, फिर भी तुम उस नगर के राजभवनों को देखना न भूलना। तुम्हारी बिजली की चमक से डरकर वहाँ की स्त्रियाँ जो चंचल चितवन चलायेंगी उनपर यदि तुम न रीझे, तो समझ लो कि तुम्हारा जन्म व्यर्थ ही हुआ।।29।। उज्जयिनी की ओर जाते हुए तुम उतरकर उस निर्विन्ध्या नदी का भी रस ले लेना जिसकी उछलती हुई लहरों पर पक्षियों की चहचहाती हुई पातें ही करघनी-सी दिखाई देंगी और जो ऐसे सुन्दर ढंग से रुक-रुककर बह रही होगी कि उसमें पड़ी हुई भँवर तुम्हें उसकी नाभि जैसी दिखाई देगी, क्योंकि स्त्रियाँ चटक-मटक दिखाकर ही अपने प्रेमियों को अपने प्रेम की बात कह देती हैं।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेणीभूतप्रतनुसलिलाऽसावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः।।31।।

प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालाम् विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्।।32।।

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः।
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः।।33।।

हाराँस्ताराँस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषः।।34।।

देखो! निर्विन्ध्या नदी की धारा तुम्हारे वियोग में चोटी के समान पतली हो गई होगी और तीर के वृक्षों के पीले पत्तों के झड़-झड़कर गिरने से उसका रंग भी पीला पड़ गया होगा। इस प्रकार, हे बड़भागी मेघ! अपनी यह वियोग की दशा दिखाकर वह यही बता रही होगी कि मैं तुम्हारे वियोग में सूखी जा रही हूँ। देखो तुम ऐसा उपाय करना कि उस बेचारी का दुबलापन दूर हो जाय [अर्थात् जल बरसाकर उसे भर देना]।।31।। अवन्ति देश में पहुँचकर तुम धन-धान्य से भरी हुई उस विशाला नगरी की ओर चले जाना जिसकी चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ और जहाँ गाँव के बड़े बूढ़े लोग, महाराजा उदयन की कथा भली प्रकार जानते हैं। वह नगरी ऐसी लगती है मानो स्वर्ग में अपने पुण्यों का फल भोगनेवाले पुण्यात्मा लोग अपने पुण्य समाप्त होने से पहले ही, अपने बचे हुए पुण्य के बदले, स्वर्ग का कोई चमकीला भाग लेकर उसे अपने साथ धरती पर उतार लाए हों।।32।। उस नगरी में, मतवाले सारसों की मीठी बोली को दूर-दूर तक फैलाता हुआ, प्रातःकाल खिले हुए कमलों की गन्ध में बसा हुआ और शरीर को सुहावना लगने वाला शिप्रा का वायु, स्त्रियों के संभोग की थकावट को उसी प्रकार दूर कर रहा होगा जैसे चतुर प्रेमी, मीठी-मीठी बातें बनाकर और पंखा झलकर संभोग से थकी हुई अपने प्यारी की थकावट दूर कर लेता है।।33।। [उज्जयिनी की हाटों में तुम्हें कहीं तो करोड़ों मोतियों की ऐसी मालाएँ सजी हुई दिखाई देंगी जिनके बीच-बीच में बड़े-बड़े रत्न गुँथे हुए होंगे, कहीं करोड़ों शंख और सीपियाँ रखी हुई मिलेंगी और कहीं पर नई घास के समान नीले और चमकीले नीलम बिछे दिखाई देंगे। उन्हें देखकर यही जान पड़ेगा कि रत्न तो सब यहाँ निकालकर लाकर रखे हुए हैं और समुद्र में केवल पानी ही पानी बचा छोड़ दिया गया है]।।34।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य
दर्पादित्यागन्तूनरमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः।। 35।।

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा
लक्ष्मीं पश्यंल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु।। 36।।

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः।। 37।।

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।। 38।।

[वहाँ के जानकार लोग, यह कथा सुना-सुनाकर बाहर से आए हुए अपने सम्बन्धियों का मन बहला रहे होंगे कि यहाँ पर वत्सदेश के राजा उदयन ने उज्जयिनी के महाराज प्रद्योत की प्यारी कन्या वासवदत्ता को हरा था, यहीं उनका बनाया हुआ ताड़ के पेड़ों का सुनहरा उपवन था और यहीं पर मद में भरा हुआ नलगिरि नाम का हाथी, खूँटा उखाड़ के इधर-उधर पागल होकर घूमता फिरता था]।।35।। वहाँ की स्त्रियों के बालों को सुगंधित करके, अगर की धूप का जो धुआँ झरोखों से निकलता होगा, उससे तुम्हारा शरीर बढ़ेगा ही और तुम्हें अपना सगा समझकर, वहाँ के पालतू मोर भी नाच-नाचकर तुम्हारा सत्कार करेंगे। तब तुम फूलों की गन्ध से महकते हुए वहाँ के उन भवनों की सजावट देखकर अपनी थकावट दूर कर लेना, जिनमें सुन्दरियों के चरणों में लगी हुई महावर से लाल पैरों की छाप बनी हुई होंगी।।36।। वहाँ से तुम तीनों लोकों के स्वामी और चंडी के पति महाकाल के पवित्र मन्दिर की ओर चले जाना। वहाँ शिवजी के गण, तुम्हें अपने स्वामी शिवजी के कंठ के समान ही नीला देखकर, तुम्हें बड़े आदर से निहारेंगे। वहाँ जल-विहार करनेवाली युवतियों के स्नान करने से महकता हुआ और कमल के गंध में बसी हुई गंधवती नदी की ओर से आनेवाला पवन, इस मन्दिर के उपवन को बार-बार झुला रहा होगा।।37।। हे मेघ! यदि तुम महाकाल के मंदिर में शाम होने से पहले पहुँच जाओ तो वहाँ तब तक ठहर जाना जब तक सूर्य भली प्रकार आँखों से ओझल न हो जाय और जब महादेवजी की शाम की सुहावनी आरती होने लगे तब तुम भी अपने गर्जन का नगाड़ा बजाने लगना। तुम्हें अपने मंद गंभीर गर्जन का पूरा-पूरा फल मिल जाएगा।।38।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान्।। 39।।
पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः।
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या।। 40।।
गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लावास्ताः।। 41।।
तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।। 42।।

सन्ध्या को नाच में पैरों पर थिरकती हुई जिन वेश्याओं की करधनी के घुंघरू बड़े मीठे-मीठे बज रहे होंगे और जिनके हाथ, कंगन के नगों की चमक से दमकते हुए डंडोंवाले चँवर डुलाते-डुलाते थक गए होंगे, उन वेश्याओं के नख-क्षतों पर जब तुम्हारी ठंडी-ठंडी बूँदें पड़ेंगी तब वे बड़े प्रेम से अपनी भौंरों की पाँतों के समान बड़ी-बड़ी चितवन तुम पर डालेंगी।।39।। सायंकालीन पूजा हो चुकने पर जब महाकाल ताण्डवनृत्य करने लगें, उस समय तुम सन्ध्या की लालिमा लेकर उन वृक्षों पर छा जाना जो उनकी ऊँची उठी हुई बाँह के समान खड़े होंगे। ऐसा करने से शिवजी के मन में जो हाथी की खाल ओढ़ने की इच्छा होगी वह भी पूरी हो जाएगी। यह देखकर पहले तो पार्वती डर जाएँगी कि यह हाथी की खाल आ कहाँ से गई, पर फिर तुम्हें पहचानकर उनका डर दूर हो जाएगा और वे एकटक होकर शिवजी में तुम्हारी इतनी भक्ति देखती रह जाएँगी।।40।। वहाँ पर जो स्त्रियाँ अपने प्यारों से मिलने के लिए ऐसी घनी अँधेरी रात में निकली होंगी, उन्हें जब सड़कों पर अँधेरे के मारे कुछ भी न सूझता होगा, तब तुम कसौटी में सोने के समान दमकनेवाली अपनी बिजली चमकाकर उन्हें ठीक-ठीक मार्ग दिखा देना; पर देखो! तुम गरजना-बरसना मत। नहीं तो वे घबरा उठेंगी।।41।। बहुत देर तक चमकते-चमकते थकी हुई अपनी प्यारी बिजली को लेकर तुम किसी ऐसे मकान के छज्जे पर रात बिता देना जिसमें कबूतर सोए हुए हों और फिर दिन निकलते ही वहाँ से चल देना, क्योंकि जो अपने मित्रों का काम करने का बीड़ा उठाता है, वह आलस्य नहीं किया करता।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खंडितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः।
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः।। 43।।

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि।। 44।।

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।। 45।।

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।। 46।।

देखो! उस समय बहुत से प्रेमी लोग अपनी उन प्यारियों के आँसू पोंछ रहे होंगे जिन्हें रात को अकेली छोड़कर वे कहीं दूसरी ठौर पर रमे होंगे। इसलिए उस समय तुम सूर्य को भी मत ढकना; क्योंकि वे भी उस समय अपनी प्यारी कमलिनी के मुख-कमल पर पड़ी हुई ओस की बूँदें पोंछने के लिये आ गए होंगे। तुम उनके हाथ न रोक बैठना, नहीं तो वे बुरा मान जाएँगे।।43।। हे मेघ! तुम्हारे सहज-सलोने शरीर की परछाई गंभीरा नदी के उस जल में अवश्य दिखाई देगी, जो चित्त जैसा निर्मल है। उसमें किलोलें करती हुई कुमुद के समान उजली मछलियों को देखकर तुम यही समझना कि वह नदी तुम्हारी ओर अपनी प्रेम-भरी चंचल चितवन चला रही है। कहीं तुम अपनी रुखाई से उसके प्रेम का निरादर न कर बैठना।।44।। जब तुम गंभीरा नदी का जल पी लोगे तो उसका जल कम हो जाएगा और उसके दोनों तट नीचे तक दिखाई देने लगेंगे। उस समय जल में झुकी हुई बेंत की लताओं को देखने से ऐसा जान पड़ेगा मानो गंभीरा नदी अपने तटरूपी नितम्बों पर से अपने जल के वस्त्र खिसक जाने पर लज्जा से अपनी बेंत की लताओं के हाथों से अपने जल का वस्त्र थामे हुए है। यह सब देखकर भैया मेघ! उसपर झुके हुए तुम वहाँ से जा न पाओगे, क्योंकि जवानी का रस ले चुकनेवाला ऐसा कौन रंगीन होगा जो कामिनी की खुली हुई जाँघों को देखकर उसका रस लिए बिना ही वहाँ से चल दे।।45।। वहाँ से चलकर जब तुम देवगिरि पहाड़ की ओर जाओगे तब वहाँ धीरे-धीरे बहता हुआ वह शीतल पवन तुम्हारी सेवा किया करेगा जिसमें तुम्हारे बरसाए हुए जल से आनन्द की साँस लेती हुई धरती की गंध भरी रहेगी, जिसे चिंघाड़ते हुए हाथी अपनी सूँड़ों से पी रहे होंगे और जिसके चलने से वन के गूलर पकने लग गए होंगे।।46।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगंगाजलार्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः।।47।।
ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य वर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चाददिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः।। 48।।
आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः।
व्यालम्बेयाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।। 49।।
त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।। 50।।

उसी देवगिरि पर्वत पर स्कन्द भगवान् भी सदा निवास करते हैं। इसलिये वहाँ पहुँचकर तुम फूल बरसानेवाले बादल बनकर उनपर आकाशगंगा के जल से भीगे हुए फूल बरसाकर उन्हें स्नान करा देना। देखो! स्कन्द भगवान् को तुम ऐसा-वैसा देवता न समझना। इन्द्र की सेनाओं को बचाने के लिये शिवजी ने सूर्य से भी बढ़कर जलता हुआ अपना जो तेज अग्नि में डालकर इकट्ठा किया था, उसी तेज से स्कन्द का जन्म हुआ है।।47।। वहाँ पहुँचने पर तुम अपनी गरज से पर्वत की गुफाओं को गुँजा देना, उसे सुनकर स्वामी कार्त्तिकेय का वह मोर नाच उठेगा जिसके नेत्रों के कोने सदा शिवजी के सिर पर स्थित चन्द्रमा की चमक से दमकते रहते हैं। उस मोर के झड़े हुए उन पंखों से चमकीली किरणें निकल रही होंगी, जिन्हें पार्वतीजी, पुत्र पर प्रेम दिखाने के लिये अपने उन कानों पर सजा लेती हैं, जिन पर वे कमल की पँखुड़ी सजाया करती थीं।।48।। स्कन्द भगवान् की पूजा करके जब तुम आगे बढ़ोगे तो हाथों में वीणा लिए हुए अपनी स्त्रियों के साथ वे सिद्ध लोग तुम्हें मिलेंगे जो वीणा के भीगकर बिगड़ जाने के डर से तुमसे दूर ही दूर रहेंगे। तुम कुछ दूर जाकर उस चर्मण्वती नदी का आदर करने के लिये नीचे उतर जाना जो राजा रन्तिदेव के गवालंभ यज्ञ करने की कीर्त्ति बनकर धरती पर बह रही है।।49।। हे मेघ! जब तुम विष्णु भगवान् का साँवला रूप चुराकर चर्मण्वती का जल पीने के लिये झुकोगे, उस समय आकाश में विचरनेवाले सिद्ध, गन्धर्व आदि को दूर से पतली दिखाई देनेवाली उस नदी की चौड़ी धारा के बीच में तुम ऐसे दिखाई दोगे मानो पृथ्वी के गले में पड़े हुए एकलड़े हार के बीच में एक बड़ी मोटी-सी इन्द्रनीलमणि लगा दी गई हो।।50।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरि विलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्।। 51।।

ब्रह्मावर्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः।
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि।। 52।।

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेणकृष्णः।। 53।।

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः।
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।। 54।।

चर्मण्वती नदी को पार करके तुम दशपुर की ओर बढ़ जाना और अपना रूप दिखाकर वहाँ की उन रमणियों को रिझाना, जिनकी काली-काली कँटीली भौंहें ऐसी जान पड़ेंगी मानो उन्होंने कुन्द के फूलों पर मँडरानेवाले भौंरों की चमक चुरा ली हो।।51।। वहाँ से चलकर ब्रह्मावर्त्त देश पर छाया करते हुए तुम उस कुरुक्षेत्र पर चले जाना जो कौरवों और पाण्डवों की घरेलू लड़ाई के कारण आज तक बदनाम है और जहाँ गाण्डीवधारी अर्जुन ने अपने शत्रु राजाओं के मुखों पर उसी प्रकार अनगिनत बाण बरसाए थे जैसे कमलों पर तुम अपनी जलधारा बरसाते हो।।52।। देखो! कौरव और पाण्डव दोनों पर एक-सा प्रेम करनेवाले जो बलरामजी, महाभारत के युद्ध में किसी की ओर से भी नहीं लड़े, वे अपनी प्यारी रेवती के नेत्रों की छाया पड़ी हुई प्यारी मदिरा को छोड़कर जिस सरस्वती नदी का जल पीते थे, वही जल यदि तुम भी पी लोगे तो बाहर से काले होने पर भी तुम्हारा मन उजला हो जाएगा।।53।। कुरुक्षेत्र से चलकर तुम कनखल पहुँच जाना। वहाँ तुम्हें हिमालय की घाटियों से उतरी हुई वे गंगाजी मिलेंगी, जिन्होंने सीढ़ी बनकर सगर के पुत्रों को स्वर्ग पहुँचा दिया और जिनकी उजली फेन ऐसी लगती है मानो वे इस फेन की हँसी से खिल्ली उड़ाती हुई उन पार्वतीजी का निरादर कर रही हों जो सौतिया डाह से गंगाजी पर भौंहें तरेर रही हों, और अपनी लहरों के साथ चन्द्रमा पर टेककर शिवजी के केश पकड़कर पार्वतीजी को यह बता रही हों कि तुमसे बढ़कर शिवजी मेरी मुट्ठी में हैं।।54।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा।।55।।

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः।
शोभा शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्।।56।।

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम्।।57।।

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभंगाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम्।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः।।58।।

यदि वहाँ पहुँचकर तुम दिग्गजों के समान अपना पिछला भाग ऊपर उठाकर और आगे का भाग झुकाकर, गंगाजी का स्फटिक के समान उजला जल तिरछे होकर पीना चाहोगे, तब तुम्हारी चलती हुई छाया, गंगाजी की धारा में पड़कर ऐसी सुन्दर लगेगी मानो प्रयाग पहुँचने के पहले ही गंगाजी से यमुनाजी मिल गई हों।।55।। वहाँ से चलकर जब तुम हिमालय की उस हिम से ढकी चोटी पर बैठकर थकावट मिटाओगे जहाँ से गंगाजी निकली हैं और जिसकी शिलाएँ कस्तूरी हिरणों के सदा बैठने से महकती रहती हैं, तब उस चोटी पर बैठे हुए तुम वैसे ही दिखाई दोगे, जैसे महादेवजी के उजले साँड़ के सींगों पर मिट्टी के टीलों पर टक्कर मारने से कीचड़ जमा हो।।56।। हे मेघ अंधड़ चलने पर देवदार के वृक्षों के आपस में रगड़ने से जब जंगल में आग लग जाय और उसके उड़ते हुए अंगारे, चमरीगाय के लंबे-लंबे रोएँ जलाने लगें, तब तुम धुआँधार पानी बरसाकर उसे बुझा देना; क्योंकि भले लोगों के पास जो कुछ भी होता है वह दीन-दुखियों का दुःख मिटाने के लिये ही तो होता है।।57।। देखो! हिमालय पर जब शरभ जाति के हिरण तुम्हारे दूर होने पर भी तुमपर बिगड़कर उछलने के लिये मचलें और अपने हाथ-पैर तुड़वाने के लिये तुमपर सींग चलाने को झपटें, तब तुम उनके ऊपर धुआँधार ओले बरसाकर उन्हें तितर-बितर कर देना; क्योंकि जो बेकाम का काम करने लगते हैं, उन्हें ऐसे ही ठीक करना चाहिए।।58।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः।।59।।

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।।60।।

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः।।61।।

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।।62।।

वहीं हिमालय पर्वत की एक शिला पर तुम्हें शिवजी के पैर की छाप बनी हुई मिलेगी जिस पर सिद्ध लोग बराबर पूजा चढ़ाया करते हैं, तुम भी भक्ति-भाव से झुककर उसकी प्रदक्षिणा कर लेना; क्योंकि श्रद्धा-भरे लोगों का पाप उसके दर्शन से ही धुल जाता है और वे शरीरत्याग करने पर सदा के लिये शिवजी के गण हो जाते हैं।।59।। हे मेघ! वहाँ के पोले बाँसों में जब वायु भरने लगता है तब उनमें से मीठे-मीठे स्वर निकलने लगते हैं और किन्नरों की स्त्रियाँ भी स्वर मिलाकर त्रिपुरविजय का गीत गाने लगती हैं। उस समय यदि तुम भी गरजकर पहाड़ की खोहों को गुँजाकर मृदंग के समान शब्द कर दोगे, तो शिवाजी के संगीत के सब अंग पूरे हो जाएँगे।।60।। हिमालय पर्वत के आस-पास जितने सुहावने स्थान हैं, उन सबको देखकर तुम उस क्रौञ्चरंध्र ें से होते हुए उत्तर की ओर निकल जाना जिसमें से होकर हंस भी मानसरोवर की ओर जाते हैं और जिसे परशुराम ने अपने बाण से छेदकर अपना नाम अमर कर लिया है। उस सँकरे मार्ग में तुम वैसे ही लंबे और तिरछे होकर जाना जैसे बलि को छलने के समय भगवान् विष्णु का साँवला चरण लंबा और तिरछा हो गया था।।61।। वहाँ से ऊपर उठकर तुम उस कैलास पर्वत पर पहुँच जाओगे जिसकी चोटियों को रावण के बाहुओं ने हिला डाले थे, जिसमें देवताओं की स्त्रियाँ अपना मुँह देखा करती हैं और जिसकी कुमुद जैसी उजली चोटियाँ आकाश में इस प्रकार फैली हुई हैं मानो वह प्रतिदिन का इकट्ठा किया हुआ शिवजी का अट्ठहास हो।।62।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य।
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव।। 63।।

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी।
भङ्गी भक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायग्रयायी।। 64।।

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भीषयेस्ताः।। 65।।

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्।। 66।।

हे मेघ! तुम तो हो चिकने घुटे हुए आँजन के समान काले, और कैलास है तुरंत काटे हुए हाथी दाँत के समान गोरा। इसलिये जब तुम कैलास के ऊपर पहुँचोगे उस समय तुम मेरी समझ में बलराम के कंधों पर पड़े हुए चटकीले वस्त्र के समान ऐसे मनोहर लगोगे कि आँखें एकटक तुम्हें ही देखती रह जायँ।।63।। उस कैलास पर जब पार्वतीजी उन महादेवजी के हाथ में हाथ डाले टहल रही हों, जिन्होंने पार्वतीजी के डर से अपने साँपों के कड़े हाथ से उतार दिए होंगे और वे मणि-शिखरों पर चढ़ रही हों, उस समय तुम बरसना मत, अपितु आगे बढ़कर सीढ़ी के समान बन जाना जिससे उन्हें ऊपर चढ़ने में सुविधा हो।।64।। हे मित्र! उस पर्वत पर बहुत-सी अप्सराएँ अपने नग-जड़े कंगनों की नोक तुम्हारे शरीर में चुभोकर तुम्हारे शरीर से जल-धाराएँ निकाल लेंगी और तुम्हें फुहारे का घर बना डालेंगी। उस समय यदि वे अपने गर्म शरीर को ठंडक मिलने के कारण तुम्हें न छोड़ें, तो तुम उन खिलाड़ी देवांगनाओं से छुटकारा पाने के लिये कान फाड़नेवाला अपना गर्जन सुनाकर उन्हें डरा देना।।65।। देखो! वहाँ पहुँचकर पहले तो तुम उस मानसरोवर का जल पीना जिसमें सुनहरे कमल खिला करते हैं। ऐरावत के मुँह पर थोड़ी देर तक कपड़े-सा छाकर उसका मन बहला देना, फिर जाकर कल्पद्रुम के कोमल पत्तों को महीन कपड़े की भाँति हिला देना। ऐसे-ऐसे बहुत-से खेल करते हुए तुम कैलासपर्वत पर जी भरकर घूमना।।66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।। 67।।

।। इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ मेघदूते काव्ये पूर्वमेघः समाप्तः।।

उसी कैलासपर्वत की गोद में अलकापुरी वैसे ही बसी हुई है, जैसे अपने प्यारे की गोद में कोई कामिनी बैठी हो और वहाँ से निकली हुई गंगाजी की धारा ऐसी लगती है मानो उस कामिनी के शरीर पर से सरकी हुई उसकी साड़ी हो। यह नहीं हो सकता कि ऐसी अलका को देखकर तुम पहचान न पाओ। ऊँचे-ऊँचे भवनोंवाली अलका पर वर्षा के दिनों में बरसते हुए बादल ऐसे छाए रहते हैं, जैसे कामिनियों के सिर पर मोती गुँथे हुए जूड़े।।67।।

।। महाकवि श्रीकालिदास-विरचित मेघदूत काव्य में पूर्वमेघ समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। उत्तरमेघः ।।

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।। 1।।

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीतालोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।। 2।।

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः,।। 3।।

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति।। 4।।

उत्तरमेघ

हे मेघ! अलकापुरी के ऊँचे-ऊँचे भवन सब बातों में तुम्हारे जैसे ही हैं। यदि तुम्हारे साथ बिजली है, तो उन भवनों में भी चटकीली नारियाँ हैं, यदि तुम्हारे पास इन्द्रधनुष है, तो उन भवनों में भी रंग-बिरंगे चित्र लटके हुए हैं। यदि तुम मृदु-गम्भीर गर्जन कर सकते हो; तो वहाँ भी संगीत के साथ मृदंग बजते हैं, यदि तुम्हारे भीतर नीला जल है, तो उनकी धरती भी नीलम से जड़ी हुई है और यदि तुम ऊँचे चढ़े हुए हो, तो उनकी अटारियाँ भी आकाश चूमती हैं।।1।। देखो! वहाँ की कुल-वधुएँ हाथों में कमल के आभूषण पहनती हैं, अपनी चोटियों में नये खिले हुए कुन्द के फूल गूँथती है, अपने मुँह को लोध्र के फूलों का पराग मलकर गोरा करती हैं अपने जूड़े में नये कुरबक के फूल लगाती हैं, अपने कानों पर सिरस के फूल रखती हैं और वर्षा में फूलने वाले कदंब के फूलों से अपनी माँग सँवारा करती हैं।।2।। वहाँ पर सदा फूलनेवाले ऐसे बहुत से वृक्ष मिलेंगे, जिनपर मतवाले भौरे गुनगुनाते होंगे। वहाँ बारहमासी कमल और कमलिनियों को हंसों की पाँतें घेरे रहती हैं। वहाँ सदा चमकीले पंखोंवाले पालतू मोर ऊँचा सिर किए हुए रात-दिन बोलते रहते हैं और वहाँ की रातें सदा चाँदनी रहने से बड़ी उजली और मनभावनी होती हैं।।3।। वहाँ रहनेवाले यक्षों की आँखों में केवल आनन्द के ही आँसू आते हैं। प्यारे के मिलने से दूर हो जानेवाली विरह की जलन को छोड़कर और किसी प्रकार की जलन वहाँ नहीं होती। प्रेम में रूठने को छोड़कर और कभी किसी का किसी से बिछोह नहीं होता और जवानी की अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था वहाँ नहीं पाई जाती।।4।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु।।5।।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः।।6।।

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः।।7।।

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमि-
रालेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः।
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति।।8।।

वहाँ के यक्ष अपनी अलबेली स्त्रियों को लेकर स्फटिक मणि से बने हुए अपने उन भवनों पर बैठते हैं, जिनकी छत पर पड़ी हुई तारों की छाया ऐसी जान पड़ती है मानो फूल टँके हुए हों। वहाँ बैठकर वे लोग कामदेव को उभारनेवाला वह मधु पी रहे होंगे, जो उन बाजों के मन्द-मन्द बजने पर कल्पवृक्ष से निकलता है जो तुम्हारे गंभीर गर्जन के समान ही गूँजा करते हैं।।5।। वहाँ की कन्याएँ इतनी सुन्दर हैं कि देवता भी उन्हें पाने के लिये तरसते हैं।। वे कन्याएँ, मंदाकिनी के जल की फुहार से शीतल हुए पवन में, तट पर खड़े हुए कल्पवृक्षों की छाया में अपनी तपन मिटाती हुई, अपनी मुट्ठियों में रत्न लेकर उनको सुनहरे बालू में डालकर छिपाने और ढूँढ़ने का खेल खेला करती हैं।।6।। वहाँ के प्रेमी लोग् संभोग के लिये अपने चंचल हाथों से अपनी प्यारियों की कमर की गाँठें खोलकर जब उनकी ढीली साड़ियों को हटाने लगते हैं तब वे लाज से इतनी सकुचा जाती हैं कि वे और कुछ न पाकर मुट्ठी में गुलाल भरकर ही जगमगाते हुए रत्न-दीपों पर फेंकने लगती हैं, पर उनका गुलाल फेंकना सब व्यर्थ ही जाता है।।7।। हे मेघ! तुम्हारे जैसे बहुत से बादल, वायु के झोंके के साथ वहाँ के सत-खंडे भवनों के ऊपरी खंडों में घुसकर दीवार पर टँगे हुए चित्रों को अपने जलकणों से भिगोकर मिटा देते हैं और फिर, वे धुएँ का रूप बनाने में चतुर बादल, डर के मारे झट से झरोखों की जालियों में से छितरा-छितराकर निकल भागते हैं।। 8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानां-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः।।9।।

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किंनरैर्यत्र सार्धम्।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति।।10।।

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्।।11।।
वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं स किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।।12।।

उस बावड़ी के तीर पर एक बनावटी पहाड़ है, जिसकी चोटी नीलमणि की बनी हुई है और जो चारों ओर से सोने के केलों से घिरा होने के कारण देखते ही बनता है। देखो वहाँ आधी रात के समय, खुली चाँदनी में, झालरों में लटके हुए चन्द्रकान्त मणियों से टपकता हुआ जल उन स्त्रियों की थकावट दूर करता है जिनके शरीर प्रियतम की भुजाओं में कसे रहने से ढीले पड़ जाते हैं।।9।। वहाँ अथाह संपत्तिवाले कामी लोग, अप्सराओं के साथ बातें करते हुए और ऊँचे स्वर में मीठे गलों से कुबेर का यश गानेवाले किन्नरों के साथ बैठे हुए वैभ्राज नाम के बाहरी उपवन में रात-दिन विहार किया करते हैं।।10।। वहाँ की कामिनी स्त्रियाँ जब रात को अपने प्रेमियों के पास जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर जाने लगती हैं, उस समय उनकी चोटियों में गुँथे हुए कल्पवृक्ष के फूल और पत्ते खिसकर निकल जाते हैं, कानों में पहने हुए सोने के कमल गिर जाते हैं और हारों से टूटे हुए मोती भी इधर-उधर बिखर जाते हैं। दिन निकलने पर इन वस्तुओं को मार्ग में बिखरा हुआ देखकर लोग समझ लेते हैं कि वे कामिनी स्त्रियाँ किधर से होकर अपने प्रेमियों के पास पहुँची होंगी।।11।। वहाँ रंग-बिरंगे वस्त्र, नेत्रों में बाँकापन बढ़ानेवाली मदिरा, कोमल पत्ते और फूल, ढंग-ढंग के आभूषण, पैरों में लगाने का महावर आदि स्त्रियों के सिंगार की जितनी वस्तुएँ हैं सब अकेले कल्पवृक्ष से ही मिल जाती हैं।।12।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः।
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः।।13।।
मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।
सभ्रूभंगप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः।।14।।
तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः।।15।।
वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः।।16।।
तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि।।17।।

पत्ते के समान साँवले वहाँ के घोड़े अपने रंग और अपनी चाल में सूर्य के घोड़ों को भी कुछ नहीं समझते। पहाड़-जैसे ऊँचे-ऊँचे डील-डौलवाले वहाँ के हाथी वैसे ही मद बरसाते हैं, जैसे तुम पानी बरसाते हो और वहाँ के योद्धा अपने सब आभूषण छोड़कर बस उन घावों के चिह्नों को ही आभूषण समझते हैं, जो उन्होंने रावण से लड़ते हुए उसकी चन्द्रहास नाम की तलवार से खाए थे।।13।। वहीं पर कुबेर के मित्र शिवजी भी रहा करते हैं, इसलिये डर के मारे कामदेव अपना भौंरों की डोरीवाला धनुष वहाँ नहीं चढ़ाता, वरन् वहाँ की छबीली चतुर स्त्रियाँ जो अपने प्रेमियों की ओर बाँकी चितवन चलाती हैं, उसी से कामदेव अपना धनुष का काम निकाल लेता है।।14।। वहीं कुबेर के भवन से उत्तर की ओर इन्द्रधनुष के समान सुन्दर गोल फाटकवाला हमारा घर तुम्हें दूर से ही दिखाई पड़ेगा। उसी के पास एक छोटा-सा कल्पवृक्ष है, जिसे मेरी स्त्री ने पुत्र के समान पाल रखा है। वह फूलों के गुच्छों से इतना झुका हुआ होगा कि नीचे खड़े-खड़े ही वे गुच्छे हाथ से तोड़े जा सकते हैं।।15।। भीतर घर में जाने पर तुम्हें एक बावड़ी मिलेगी, जिसकी सीढ़ियों पर नीलम जड़ा हुआ है और जिसमें चिकने वैदूर्यमणि की डण्ठलवाले बहुत-से सुनहरे कमल खिले हुए होंगे। उसके जल में बसे हुए हंस इतने सुखी हैं कि मानसरोवर के इतने पास होते हुए भी तुम्हें देखकर वे वहाँ नहीं जाना चाहेंगे।।16।। मित्र! पर्वत मेरी घरवाली को बड़ा प्यारा है, इसलिये जब मैं तुम्हें बिजली के साथ देखता हूँ तब मेरा मन अकेला होने से उदास हो जाता है और वह पहाड़ मेरी आँखों के आगे नाचने लगता है।।17।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नो कुरबककवृतेर्माधवीमण्डपस्य।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः।। 18।।

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
र्मूले वद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।
तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः।। 19।।

एभिः साधो! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा।
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्।। 20।।

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।
अर्हस्यन्तर्भवनपतिता कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्।। 21।।

उस बनावटी पर्वत पर कुरबक के वृक्षों से घिरे हुए माधवी-मंडप के पास ही एक तो चंचल पत्तोंवाला लाल अशोक का वृक्ष खड़ा है और दूसरा मौलसिरी का पेड़ है। जैसे मैं तुम्हारी सखी के पैर की ठोकर खाने के लिये तरस रहा हूँ, वैसे ही वह अशोक भी फूलने का बहाना लेकर मेरी पत्नी के बाएँ पैर की ठोकर खाने के लिए तरस रहा होगा और दूसरा मौलसिरी का पेड़ भी उसके मुँह से निकले हुए मदिरा के छींटे पाना चाहता होगा।।18।। उन दोनों वृक्षों में नये बाँस के समान चमकीले मणियों से बनी हुई एक चौकी है, जिसके ऊपर स्फटिक की एक चौकोर पटिया रखी हुई है। उस पटिया पर जड़ी हुई एक सोने की छड़ पर तुम्हारा मित्र मोर नित्य शाम को आकर बैठा करता है और मेरी स्त्री उसे अपने घुँघरूदार कड़ेवाले हाथों से तालियाँ बजा-बजाकर नचाया करती है।।19।। हे साधु! यदि तुम मेरे बताए हुए ये चिह्न भली-भाँति स्मरण रखोगे और मेरे द्वार पर शंख और पद्म के चित्र देख लोगे, तो तुम मेरा घर अवश्य पहचान लोगे। मेरे बिना वह भवन बड़ा सूना-सा और उदास-सा दिखाई देता होगा; क्योंकि सूर्य के छिप जाने पर तो कमल उदास हो ही जाता है।।20।। देखो! यदि तुम्हें मेरे घर में झट से प्रविष्ट होना हो तो चट से हाथी के बच्चे जैसे छोटे बनकर घर के खेल के लिए बनाई हुई पहाड़ी की सुहावनी चोटी पर जा बैठना और फिर अपनी बिजली की आँखें जुगनुओं के समान थोड़ी-सी चमकाकर मेरे घर के भीतर झाँकना।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।। 22।।

तां जनीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्।। 23।।

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति।। 24।।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।। 25।।

वहाँ जो दुबली-पतली, नन्हे-नन्हे दाँतोंवाली, पके हुए बिंबाफल के समान लाल ओठोंवाली, पतली कमरवाली, डरी हुई हिरणी समान आँखोंवाली, गहरी नाभिवाली, नितम्बों के बोझ से धीरे-धीरे चलनेवाली और स्तनों के भार से कुछ आगे को झुकी हुई युवती तुम्हें दिखाई दे वही मेरी पत्नी होगी। उसकी सुन्दरता देखकर यही जान पड़ेगा मानो ब्रह्मा की सबसे बढ़िया कारीगरी वही हो।।22।। अपने साथी से बिछुड़ी हुई चकवी के समान अकेली रहनेवाली और कम बोलनेवाली उस सुन्दरी को देखकर ही तुम समझ लोगे कि वह मेरा दूसरा प्राण ही है। विरह के कठोर दिन बड़ी उतावली से बिताते-बिताते उसका रूप भी बदल गया होगा और उसे देखकर तुम्हें यह धोखा हो सकता है कि यह कोई बाला है या पाले से मारी हुई कोई कमलिनी है।।23।। देखो मेघ! मेरे बिछोह में रोते-रोते मेरी प्यारी की आँखें सूज गई होंगी, गर्म साँसों से उसके ओठों का रंग फीका पड़ गया होगा, चिन्ता के कारण गालों पर हाथ रखने से और बालों के मुँह पर आ-जाने से उसका अधूरा दिखाई देनेवाला मुँह मेघ से ढके हुए चन्द्रमा के समान धुँधला और उदास दिखाई दे रहा होगा।।24।। देखो मेघ! या तो वह तुम्हें वहाँ देवताओं को पूजा चढ़ाती मिलेगी या अपनी कल्पना से मेरे इस विरह से दुबले शरीर का चित्र बनाती मिलेगी या पिंजड़े में बैठी हुई मिठबोली मैना से यह पूछती मिलेगी कि हे मैना! तुम अपने जिस पति की प्यारी हो, उसे भी कभी स्मरण करती हो?।।25।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचि-
द्भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।। 26।।

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः।। 27।।

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।
मत्संदेशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः।। 28।।

स्निग्धाः सख्यः कथमपि दिवा तां न मोक्ष्यन्ति तन्वी-
मेकप्रख्या भवति हि जगत्यङ्गनानां प्रवृत्तिः।
स त्वं रात्नौ जलद शयनासन्नवातायनस्थः
कान्तां सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः।। 29।।

या भैया! वह मैले कपड़े पहने हुए, गोद में वीणा लिए, ऊँचे स्वर से मेरे नामवाले गीत गाती मिलेगी। उस समय वह अपनी आँखों के आँसुओं से भीगी हुई वीणा को तो जैसे-जैसे पोंछ लेगी, पर मेरा स्मरण आ जाने से वह ऐसी बेसुध हो जाएगी कि अपने सधे हुए स्वरों के उतार-चढ़ाव को भी वह बार-बार भूलती जा रही होगी।।26।। या फिर मेरे विरह के दिन से ही वह देहली पर जो फूल नित्य रखती है उन्हें धरती पर फैलाकर गिन रही होगी कि अब विरह के कितने महीने बच गए हैं। या फिर वह मेरे साथ किए हुए संभोग के आनन्द का मन ही मन रस लेती हुई बैठी होगी, क्योंकि अपने प्यारों के वियोग में स्त्रियाँ प्रायः ऐसी ही बातों में अपने दिन काटती हैं।।27।। हे मित्र! तुम्हारी सखी के इन कामों में लगे रहने के कारण दिन में तो उसे मेरा वियोग कुछ नहीं सताता होगा, पर मुझे डर है कि रात के लिये कुछ काम न होने से उसकी रात बड़े कष्ट से बीतती होगी। इसलिये मेरा संदेश सुनाकर उसे सुख देने के लिये तुम आधी रात को मेरे भवन के झरोखों पर बैठकर उसे देखना, क्योंकि उस समय वह तुम्हें धरती पर उनींदी-सी पड़ी मिलेगी।।28।। देखो! उसकी प्यारी सखियाँ, उस कोमल देहवाली को दिन में कभी अकेली नहीं छोड़ेंगी, क्योंकि संसार में सभी स्त्रियाँ, अपनी सखियों के दुःख में कभी उनका साथ नहीं छोड़तीं। इसलिये तुम उसके पलंग के पासवाली खिड़की पर बैठकर थोड़ी देर परखना और जब वे सखियाँ सो जायँ तब रात को मेरी जागती हुई प्यारी के पास पहुँच जाना।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
तत्पर्यङ्कप्रगलितनवैश्छिन्नहारैरिवास्रैः।
भूयो भूयः कठिनविषमां सादयन्तीं कपोला-
दामोक्तव्यामयमितनखेनैकवेणीं करेण।।30।।
आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्।।31।।
पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा-
न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव।
चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्।।32।।
निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।
मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्।।33।।

और वहाँ तुम मेरी प्यारी को ढूँढ़ लेना, जो वहीं-कहीं धरती पर एक करवट पड़ी होगी। उसके आस-पास मोतियों के हार के टूटे हुए टुकड़ों के समान आँसू बिखरे हुए होंगे और वह अपने बढ़े हुए नखोंवाले हाथ से अपनी उस इकहरी चोटी के उन रूखे और उलझे हुए बालों को अपने गालों पर से बार-बार हटा रही होगी जो अब शाप के बीतने पर ही सुलझाए जा सकेंगे।।30।। देखो! जो प्यारी, मेरे साथ जी भरकर संभोग करके पूरी रात क्षणभर के समान बिता देती थी वही आज बिछोह की चिन्ता से सूखी हुई और सूने पलंग पर एक करवट लेटी हुई पूरब के क्षितिज पर पहुँचे हुए एक कलाभर बचे हुए चन्द्रमा के समान दुवली होकर अपनी रातें गर्म आँसू बहा-बहाकर बिता रही होगी।।31।। जालियों में से छनकर जो चन्द्रमा की किरणें आ रही होंगी, उन्हें वह समझती होगी कि पहले सुख के दिनों में वे जैसी अमृत के समान ठण्डी थीं वैसी ही अब भी होंगी और यही समझकर वह उन किरणों की ओर मुँह करेगी, पर फिर विरह के कारण जब वे किरणें उसे जलाने लगेंगी तब वह अपनी आँसू-भरी आँखें पलकों से ढक लेगी। उस समय मेरी प्यारी ऐसी दिखाई देगी जैसे बदली के दिन धरती पर खिलनेवाली कोई अधखिली कमलिनी हो।।32।। मेरे विरह में वह आजकल कोरे जल से ही नहाती होगी इसलिये उसके रूखे और बिना सँवारे हुए बाल, उसके गालों पर लटककर उसके पतले ओठों को तपानेवाली साँसों से हिल रहे होंगे। वह बार-बार यह सोचकर अपनी आँखों में नींद बुला रही होगी कि किसी प्रकार स्वप्न में ही प्यारे से संभोग हो जाय और आँखों से लगातार बहते हुए आँसू, उसकी आँखें भी नहीं लगने देते होंगे।।33।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण।।34।।
सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद्दुःखदुःखेन गात्रम्।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।।35।।
जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।
वाचालं मां न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्भ्रातरुक्तं मया यत्।।36।।
रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति।।37।।
वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजाल चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।

बिछुड़ने के दिन से ही उसने अपने जूड़े की माला खोलकर जो वह इकहरी चोटी बाँध ली थी, जिसे छूने में भी उसे पीड़ा होती है और जिसे शाप बीतने पर मैं ही सुख से खोलकर बाँधूँगा, उसी उलझी और बिखरी हुई रूखी चोटी को वह अपने उभरे हुए नखोंवाले हाथों से अपने भरे हुए गालों पर से बार-बार हटा रही होगी।।34।। जब तुम देखोगे कि वह बेचारी बार-बार दुःख से पछाड़ खा-खाकर पलँग के पास पड़ी हुई, किसी-किसी प्रकार अपने बिना आभूषण वाले कोमल शरीर को सँभाले हुए है तब तुम भी उसकी दशा पर अपने नए जल के आँसू बहाए बिना न रह सकोगे; क्योंकि दूसरों का दुःख देखकर कौन ऐसा कोमल हृदय वाला है जो द्रवित न हो जाय।।35।। मैं जानता हूँ कि तुम्हारी सखी मुझे जी भरकर प्यार करती है, इसीलिये मैं सोचता हूँ कि वह इस प्रथम वियोग से दुबली हो गई होगी। यह न समझो कि ऐसी पतिव्रता स्त्री का पति होने के सौभाग्य से मैं इतना बढ़-बढ़कर बोल रहा हूँ; वरन् भैया! मैंने जो कुछ कहा है वह सब तुम्हारी आँखों के सामने ही आ जाएगा।।36।। जब तुम उसके पास पहुँचोगे तब उस मृगनयनी की वह बाईं आँख फड़क उठेगी, जिस पर बाल फैले हुए होंगे, जो अंजन न लगने से रूखी हो गई होगी और जो बहुत दिनों से मदिरा न पीने के कारण भौंहें चलाना भी भूल गई होगी। उस समय फड़कती हुई वह बाईं आँख उस नीले कमल जैसी सुन्दर दिखाई देगी जो मछलियों के इधर-उधर आने-जाने से काँप उठा करता है।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम्।।38।।
तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।
माभूदस्याः प्रणयिनी मयि स्वप्नलब्धे कथंचि-
त्सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्।।39।।
तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः।।40।।
भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि।।41।।
इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठाच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैवम्।
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात्किंचिदूनः।।42।।

तुम्हारे पहुँचते ही, नये केले के खंभे के समान उसकी वह गोरी-गोरी बाँईं जाँघ भी फड़क उठेगी जिसे मैं संभोग कर चुकने पर अपने हाथ से दबाया करता था। उस जाँघ पर न तो तुम्हें मेरे हाथ के नख चिह्न ही बने मिलेंगे और न दुर्भाग्यवश उस पर वह मोतियों की करघनी ही पड़ी मिलेगी, जिसे वह बहुत दिनों से पहनती चली आ रही थी।।38।। हे मेघ! तुम्हारे पहुँचने पर यदि कुछ नींद आने लगे तो तुम उसके पीछे चुपचाप एक पहर ठहरे रहना, जिससे यदि मेरी प्यारी कही स्वप्न में मुझसे कसकर लिपटी हुई हो तो मेरे कंठ में पड़ी हुई उसकी भुजाएँ अचानक नींद टूटने से छूट न पड़ें।।39।। एक प्रहर ठहरने पर भी वह आँखें न खोले तो तुम मालती के नये फूलों के समान कोमल मेरी प्यारी को, अपने जल की फुहारों से ठण्डा किया हुआ वायु चलाकर, जगा देना! आँखें खोलने पर जब वह झरोखे से तुम्हारी ओर एकटक देखे तो तुम अपनी बिजली को छिपा लेना और अपने धीमे गर्जन के शब्दों में उस मानिनी से बातचीत चला देना।।40।। उससे कहना—हे सौभाग्यवती! मैं तुम्हें यह बता दूँ कि मैं तुम्हारे पति का मित्र मेघ, तुम्हारे पास उनका संदेश लेकर आया हूँ। मैं अपनी धीमी और मीठी गरज से उन थके हुए बटोहियों के मन में भी घर लौटने की हड़बड़ी मचा देता हूँ, जो अपनी स्त्रियों की उलझी हुई इकहरी चोटियाँ सुलझाने के लिये उतावले रहते हैं।।41।। यह सुनकर मेरी प्यारी तुम्हारी ओर मुँह करके बड़े चाव से, बड़े खिले हुए जी से और बड़े आदर से कान लगाकर तुम्हारा सब संदेश उसी प्रकार सुनेगी जैसे सीताजी ने हनुमानजी की बातें सुनी थीं। हे भैया! मित्र के मुँह से पति का संदेश पाकर स्त्रियों को अपने प्रिय के मिलन से कुछ कम सुख थोड़े ही मिलता है?।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूयादेवं तव सचहरो रामगिर्याश्रमस्थः।
अव्यापन्नः कुशलमवले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव।।43।।
अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।
उष्णोछ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः।।44।।
शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता-
त्कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।
सोऽतिक्रांतः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृष्ट-
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह।।45।।
श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हंतैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।।46।।

हे आयुष्मन्! तुम मेरे कहने से और दूसरे की भलाई करने का पुण्य लेने के लिये उससे जाकर कहना है—हे अबला! तुम्हारा बिछुड़ा हुआ साथी रामगिरि के आश्रम में कुशल से है और तुम्हारी कुशल जानना चाहता है; क्योंकि देखो! जिन लोगों पर अचानक विपत्ति आ गई हो, उनसे पहले-पहल यही पूछना ठीक होता है।।43।। उससे कहना—दूर बैठे हुए प्यारे साथी का मार्ग तो बैरी ब्रह्मा रोके बैठा है, इसलिये वह तुमसे मिल भले ही न सके, फिर भी वह अपने दुबलेपन, तपन, लगातार बढ़ते हुए आँसू, मिलने का चाव और गर्म उसाँसों को देख-देखकर ही मन में समझ लेता है कि तुम भी वैसे ही वियोग में दुबली हो गई होगी, विरह से तप रही होगी, आँखों से झर-झर आँसू बहा रही होगी, मिलने को उतावली होगी और दिन-रात लंबी-लंबी गर्म उसाँसें ले रही होगी।।44।। हे अबला! तुम्हारे प्यारे को जब तुमसे कोई ऐसी भी बात कहनी होती थी जो तुम्हारी सखियों के आगे ऊँचे स्वर से कही जा सकती थी तब भी वह तुम्हारा मुँह चूमने के लोभ से तुम्हारे कान में ही कहने को तुला रहता था। अब तुम अपने उस प्यारे की न तो बातचीत ही सुन सकती हो और न उसे आँख भर देख ही सकती हो, इसलिये उसने बड़े चाव से मेरे मुँह से यह कहला भेजा है।।45।। कि—हे प्यारी! मैं यहाँ बैठा, प्रियंगु की लताओं में तुम्हारे शरीर, डरी हुई हिरणी की आँखों में तुम्हारी चितवन, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख, मोरों के पंखों में तुम्हारे बाल और नदी की छोटी-छोटी लहरियों में तुम्हारी कटीली भौंहें देखा करता हूँ। तो भी हे चण्डी! मुझे दुःख है कि इनमें से कोई एक भी पूरे ढंग से तुम्हारी बराबरी नहीं कर पाता।।46।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।।47।।

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पञ्चबाणः क्षिणोति।
घर्मान्तेऽस्मिन्विगणय कथं वासराणि व्रजेयु-
र्दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि।।48।।

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशः पतन्ति।।49।।

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति।।50।।

जब मैं पत्थर की पटिया पर गेरू से तुम्हारी रूठी हुई मूर्ति का चित्र खींचकर यह चित्रित करना चाहता हूँ कि तुम्हें मनाने के लिये मैं तुम्हारे पैरों पर पड़ा हूँ उस समय आँसू ऐसे उमड़े रहते हैं कि भर आँख देखने भी नहीं देते। निर्दयी काल को हमारा चित्र में मिलना भी नहीं सुहाता।।47।। हे बाला! एक तो मैं यों ही तुम्हारे उसं मुख से दूर रहने के कारण सूखा जा रहा हूँ, जिसमें से ऐसी सोंधी गंध आती है जैसे पानी पड़ने पर धरती में से आती है, उसपर यह पाँच बाणोंवाला कामदेव मुझे और भी सताए जा रहा है। अब तुम्हीं सोच लो कि गर्मी के बीतने पर जब चारों ओर उमड़ी हुई घने बादलों की घटा सूर्य पर छा जाएगी उस समय मैं किसके सहारे अपने दिन काट पाऊँगा।।48।। जब कभी मैं स्वप्न में तुम्हें देखकर कसकर छाती से लगाने के लिये अपने हाथ ऊपर फैलाता हूँ, उस समय वन के देवता भी मेरी दशा पर तरस खाकर अपने मोती के समान बड़े-बड़े आँसू वृक्षों के कोमल पत्तों पर बहुधा लुढ़काया करते हैं।।49।। हे गुणवती! देवदारू के कोमल पत्तों को अपने झोंकों से तत्काल तोड़कर और उसके रस की गंध लेकर हिमालय के जो पवन दक्षिण की ओर चले आ रहे हैं, उन्हें मैं यही समझकर अपने हृदय से लगा रहा हूँ कि ये उधर से तुम्हारा शरीर छूकर आ रहे होंगे।।50।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः।। 51।।

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।। 52।।

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।। 53।।

भूयश्चाहं त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा।
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं मयेति।। 54।।

हे चंचल नैनोंवाली! मैं मन से यही मनाया करता हूँ कि किसी प्रकार रात के लंबे-लंबे तीन प्रहर क्षणभर के समान छोटे हो जायँ और दिन की तपन भी किसी प्रकार सदा के लिये जाती रहे। पर मेरी यह दुर्लभ प्रार्थना बेकार हो जाती है। उस पर इस तिल-तिल जलानेवाली वियोग की जलन से तो मेरा जी बैठा जा रहा है।।51।। पर हे कल्याणी! बहुत कुछ सोच-विचारकर मैं अपने मन को अपने से ही ढाढ़स बँधा लेता हूँ, इसलिये तुम भी बहुत दुखी मत होना। देखो! दुःख या सुख किसी पर सदा नहीं रहा करते। ये तो पहिए के चक्कर के समान कभी नीचे कभी ऊपर यों ही आया-जाया करते हैं।।52।। देखो! अगली देवोत्थापिनी एकादशी को जब विष्णु भगवान् शेषनाग की शय्या से उठेंगे, उसी दिन मेरा शाप भी बीत जाएगा। इसलिये इन बचे हुए चार महीनों को भी किसी-किसी प्रकार आँख मूँदकर बिता डालो। फिर भी हम दोनों, वियोग के दिनों में सोची हुई अपने मन की सब साधें शरद की सुहावनी चाँदनी रात में पूरी कर ही डालेंगे।।53।। हे अबला! तुम्हारे प्यारे ने यह भी कहलाया है कि एक बार जब तुम मेरे गले से लगी हुई मेरे पलँग पर सो रही थीं, उस समय तुम अचानक चिल्लाकर रोती हुई जाग पड़ी थीं और जब मैंने बार-बार तुमसे रोने का कारण पूछा, तब तुमने मीठी मुसकान के साथ उत्तर दिय था कि हे छली! मैंने स्वप्न में देखा कि तुम किसी दूसरी स्त्री के साथ रमण कर रहे हो, इसलिये मैं रो पड़ी थी।।54।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनाच्चकितनयने मय्यविश्वासिनी भूः।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।।55।।

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः।।56।।

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।।57।।

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।
इष्टान्देशाञ्जलद विचर प्रावृषा संभृतश्री-
र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।।58।।

हे काली आँखोंवाली! इस पहचान से ही तुम समझ लेना कि मैं कुशल से हूँ। लोगों के कहने से तुम मेरे प्रेम में संदेह न कर बैठना। न जाने लोग यह क्यों कहा करते हैं कि विरह में प्रेम कम हो जाता है। सच्ची बात तो यह है कि जब चाही हुई वस्तुएँ नहीं मिलतीं तभी उन्हें पाने के लिये प्यास बढ़ जाती है और ढेरों प्रेम आकर इकट्ठा हो जाता है।।55।। देखो मेघ! पहली बार के वियोग से दुखी अपनी भाभी को इस प्रकार ढाढ़स बँधाकर, उससे कुशल समाचार पाकर और पहचान लेकर तुम मेरे पास जल्दी ही उस कैलासपर्वत से लौट आना जिसकी चोटियाँ महादेवजी के साँड़ ने उखाड़ दी हैं। और फिर यहाँ आकर प्रातःकाल खिले हुए कुन्द के फूल के समान चू पड़नेवाले मेरे प्राणों की रक्षा करना।।56।। क्यों भैया! तुमने मेरा यह प्यारा काम करने की ठान ली है या नहीं? इस पूछने से यह न समझ बैठना कि मैं तुमसे हुंकारी भरवाने पर ही तुम्हें इस काम के योग्य समझूँगा। तुम्हें मैं जानता हूँ कि जब पपीहे तुमसे जल माँगते हैं, तब तुम बिना उत्तर दिए उन्हें जल दे देते हो। सज्जनों की रीति ही यह है कि जब कोई उनसे कुछ माँगे तो वे मुँह से कुछ न कहकर, काम पूरा करके ही उत्तर दे डालते हैं।।57।। हे मेघ! मैंने जो तुम्हे काम बताया है वह तुमसे कराना बड़ी ढिठाई होगी, पर चाहे मित्रता के नाते, चाहे मुझ विरही पर तरस खाकर तुम पहले मेरा प्यारा काम कर देना और फिर अपना बरसाती रूप लेकर जहाँ मन चाहे वहाँ घूमना। मैं यही मनाता हूँ कि प्यारी बिजली से एक क्षण के लिये भी तुम्हारा वैसा वियोग न हो, जैसा मैं भोग रहा हूँ।।58।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मादद्रेर्निगदितमथो शीघ्रमेत्यालकायां
यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टिचिह्नैर्विदित्वा ।
मत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्नात्
तद्गेहिन्या सकलमवदत्कामरूपी पयोदः ।। 59 ।।

इत्याख्याते सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु
स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप ।
मत्वागारं कनकरुचिरं लक्षणैः पूर्वमुक्तैः
तस्योत्संगे क्षितितलगतां तां च दीनां ददर्श ।। 60 ।

तं संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाचचक्षे
प्राणाँस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमना सापि तस्थौ स्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ।। 61 ।।

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दंपती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ।। 62 ।।

यक्ष की ये बातें सुनकर मनचाहा रूप धारण करनेवाला वह बादल, रामगिरि से चलकर अलका पहुँच गया और बताए हुए चिह्नों को देखकर उसने यक्ष का वह भवन पहचान लिया जिसकी सब शोभा फीकी पड़ गई थी। वहाँ उसने यक्ष की प्यारी से वह प्यार-भरा मधुर संदेश सुनाया, जिसे यक्ष ने बड़े जतन से भेजा था ।59।। यह सुनकर बादल वहाँ से चल दिया और कभी पहाड़ियों पर, कभी नदियों के पास और कभी नगर में ठहरता हुआ थोड़े ही दिनों में कुबेर की राजधानी अलका में पहुँच गया। वहाँ अपने मित्र के बताए चिह्नों से उसने वियोगी यक्ष का, सोने के समान चमकता हुआ भवन पहचान लिया और उसने वहाँ देखा कि यक्ष की स्त्री बेचारी उस भवन में धरती पर पड़ी हुई है। ।60।। वहाँ पहुँचकर सबका भला करनेवाले उस भले मेघ ने दैवी शब्दों में यक्ष की स्त्री के प्राण बचाने के लिये सब संदेश सुना डाला। यक्ष की स्त्री भी, अपने प्यारे का कुशल समाचार पाकर फूली न समाई। सच है, जब अच्छे लोगों से कोई काम करने को कहा जाये तो वह अवश्य पूरा होता ही है। ।61।। उस कुबेर ने यह बात सुनी कि बादल ने यक्ष की स्त्री को ऐसा संदेश दिया है, तब उनके मन में बड़ी दया आई, उनका क्रोध उतर गया और उन्होंने अपना शाप लौटाकर उन दोनों पति-पत्नी को फिर मिला दिया। इस मिलने से उनका सब दुःख जाता रहा और वे फिर बड़े प्रसन्न हो गए। कुबेर ने उन दोनों के लिये ऐसे सुख लूटने का प्रबन्ध कर दिया कि उन्हें फिर कभी दुःख मिला ही नहीं। ।62।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्थंभूतं सुरचितपदं मेघदूताभिधानं
कामक्रीडाविरहितजने विप्रयुक्ते विनोदः।
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता बुद्धिभावः कवीनां
नत्वार्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार।।63।।

।।इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ मेघदूते काव्ये उत्तरमेघः समाप्तः।।

कवि कालिदास ने आयदिवी काली के चरण-कमलों में प्रणाम करके सुन्दरता से सजाए हुए शब्दों में यह ऊपर कही हुई मेघदूत नाम की कविता रची है। यह कविता वियोग के समय उन लोगों का भी मन बहलायेगी, जिन्हें विलास मिला ही नहीं साथ ही इसमें मेघ की अत्यन्त चतुराई का और कवियों की कल्पना का परिचय भी मिल जाएगा।।63।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित मेघदूत काव्य में उत्तरमेघ समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. कुमारसम्भवम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। श्रीः ।।

।। कुमारसम्भवम् ।।

।। प्रथमः सर्गः ।।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।। 1 ।।
यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ।। 2 ।।
अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ।। 3 ।।
यश्चाप्सरोविभ्रमण्डनानां संपादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसंध्यामिव धातुमत्ताम् ।। 4 ।।
आमेखलं संचरतां घनानां छायामधःसानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ।। 5 ।।

।। पहला सर्ग ।।

भारत के उत्तर में देवता के समान पूजनीय हिमालय नाम का बड़ा भारी पहाड़ है। यह पूर्व और पश्चिम के समुद्रों तक फैला हुआ ऐसा लगता है, मानो वह पृथ्वी को नापने (तौलने) का मापदंड हो।।1।। राजा पृथु के कहने से सब पर्वतों ने मिलकर इसे बछड़ा बनाया और दुहने में चतुर मेरुपर्वत को ग्वाला बनाकर पृथ्वी-रूपी गौ से चमकीले रत्न और जड़ी-बूटियाँ दुहकर निकाल लीं।।2।। अनगिनत रत्न उत्पन्न करने वाले इस हिमालय की शोभा हिम के कारण कुछ कम नहीं हुई, क्योंकि जहाँ बहुत से गुण हों वहाँ यदि एक अवगुण भी आ जाय तो उसका वैसे ही पता नहीं चलता, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है।।3।। हिमालय की कुछ चोटियों पर गेरु आदि धातुओं की अनेक रंग-बिरंगी चट्टानें हैं। इसलिये कभी-कभी उन चट्टानों के पास पहुँचे हुए बादलों के टुकड़े उनके रंग की छाया पड़ने से सन्ध्या के बादलों जैसे रंग-बिरंगे दिखाई पड़ने लगते हैं। उन्हें देखकर सन्ध्या होने के पहले ही वहाँ की अप्सराओं को यह भ्रम हो जाता है कि सन्ध्या हो गई और इस हड़बड़ी में वे सायंकाल के नाच-गाने के लिये अपना शृंगार करना प्रारम्भ कर देती है।।4।। इसकी कुछ चोटियाँ इतनी ऊँची उठी हैं कि मेघ भी उनके बीच तक पहुँचकर रह जाते हैं, उनके ऊपर का आधा भाग मेघों के ऊपर निकला रहता है। इसलिये निचले भाग में छाया का आनन्द लेने वाले सिद्ध लोग जब अधिक वर्षा होने से घबरा उठते हैं, तब वे बादलों के ऊपर उठी हुई उन चोटियों पर जा कर रहने लगते हैं जहाँ उस समय धूप बनी रहती है।।5।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम्।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः।। 6।।
न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम्।।7।।
यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम्।। 8।।
कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितनां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति।। 9।।
वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः।। 10।।
उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागान्मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः।। 11।।
दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव।। 12।।

यहाँ के सिंह जब हाथियों को मारकर चले जाते हैं, तब रक्त से लाल उनके पंजों की पड़ी हुई छाप हिम की धारा से धुल जाती है। फिर भी उन सिंहों के नखों से गिरी हुई गज मुक्ताओं को देखकर यहाँ के किरात जान लेते हैं कि सिंह किधर गए हैं।।6।। इस पर्वत पर उत्पन्न होने वाले जिन भोज-पत्रों पर लिखे हुए अक्षर हाथी की सूँड पर बनी हुई लाल बुँदकियों जैसे दिखाई पड़ते हैं उन्हें विद्याधारियाँ अपने प्रेम-पत्र लिखने के काम में लाया करती हैं।।7।। इस पहाड़ पर ऐसे छिद्र वाले बाँस बहुतायत से होते हैं जो वायु भर जाने पर बजने लगते हैं। तब ऐसा जान पड़ता है मानो ऊँचे स्वर से गाने वाले किन्नरों के गीतों के साथ ये संगत कर रहे हों।।8।। जब यहाँ के हाथी अपनी कनपटी खुजलाने के लिये देवदारु के पेड़ों से माथा रगड़ते हैं तब उनसे ऐसा सुगन्धित दूध बहने लगता है कि उसकी महक से पर्वत की सभी चोटियाँ एक साथ चमक उठती हैं।।9।। यहाँ की गुफाओं में रात को चमकने वाली जड़ी-बूटियाँ भी बहुत होती हैं। इसलिये यहाँ के किरात लोग जब अपनी-अपनी प्रियतमाओं के साथ उन गुफाओं में बिहार करने आते हैं, तब ये चमकीली जड़ी-बूटियाँ ही उनकी काम-क्रीड़ा के समय बिना तेल के दीपक बन जाती हैं।।10।। वहाँ की किन्नरियाँ जब जमे हुए हिम के मार्गों पर चलती हैं, तब उनकी उँगलियाँ और एड़ियाँ ऐंठ जाती हैं, पर वे करें क्या! अपने भारी नितम्बों और स्तनों के बोझ के मारे वे वेचारी शीघ्रता से चल नहीं पातीं और चाहते हुए भी वे अपनी स्वाभाविक मन्द गति को छोड़ नहीं पातीं।।11।। हिमालय की लम्बी गुफाओं में दिन में भी अँधेरा छाया रहता है। ऐसा लगता है मानो अँधेरा भी दिन से डरने वाले उल्लू के सामान इसकी गहरी गुफाओं में जा कर दिन में छिप जाता है और हिमालय उसे अपनी गोद में शरण दे देता है; क्योंकि जो महान होते हैं वे अपनी शरण में आए हुए नीच लोगों से भी वैसा ही अपनापन बनाए रहते हैं जैसा सज्जनों के साथ।।12।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लांगूल-लविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः।। 13।।
यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषाङ्गनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति।। 14।।
भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः।। 15।।
सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान्परिवर्तमानः।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्युर्ध्वमुखैर्मयूखैः।। 16।।
यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्।। 17।।
स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे।। 18।।
कालक्रमेणाथ तयोः प्रवृत्ते स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसङ्गे।
मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या गर्भोऽभवद्भूधरराजपत्न्याः।। 19।।

जिन हरिणियों की पूँछों के चँवर बनते थे, वे चमरी हरिणियाँ जब यहाँ चन्द्रमा की किरणों के समान अपनी धौली पूँछों को इधर-उधर घुमाती हुई चलती हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे इस पर्वतराज पर पूँछ के चँवर डुलाकर इनका गिरिराज नाम सच्चा कर रही हों।।13।। जब यहाँ की गुफाओं में किन्नरियाँ अपने प्रियतमों के साथ काम-क्रीड़ा करती रहती हैं, उस समय जब वे शरीर पर से वस्त्र हट जाने के कारण लजाने लगती हैं, तब बादल उन गुफाओं के द्वारों पर आ कर ओट करके अँधेरा कर देते हैं।।14।। गंगा के झरनों की फुहारों से लदा हुआ, बार-बार देवदारु के वृक्ष को कँपाने वाला और किरातों की पेटी में बँधे हुए मोर पंखों को फरफराने वाला यहाँ का शीतल-मंद-सुगन्ध पवन उन किरातों की थकान मिटाता चलता है, जो मृगों की खोज में हिमालय पर इधर-उधर घूमते रहते हैं।।15।। इसकी ऊँची चोटियों पर सरोवरों में खिलने वाले कमलों को स्वयं सप्तर्षिगण पूजा के लिये अपने सप्तर्षिमण्डल से आ कर तोड़ ले जाया करते हैं। उनके चुनने से जो कमल बचे रहते हैं उन्हें नीचे उदय होने वाला सूर्य अपनी किरणें ऊँची करके खिलाया करता है।।16।। यज्ञ में काम आने वाली सामग्रियों को उत्पन्न करने के कारण और पृथ्वी को सँभाले रखने की शक्ति होने के कारण इस हिमालय को स्वयं ब्रह्मा जी ने उन पर्वतों का स्वामी बना दिया, जिन्हें यज्ञ में भाग पाने का अधिकार मिला हुआ है।।17।। समेरु के मित्र मर्यादा को जानने वाले हिमालय ने अपना वंश चलाने के लिये मेना नाम की उस कन्या से शास्त्र के अनुसार विवाह किया, जो पितरों के मन से उत्पन्न हुई थी, जिसका मुनि लोग भी आदर करते थे और जो हिमालय के समान ही ऊँचे कुल और शील वाली थी।।18।। विवाह हो जाने पर हिमालय और मेना दोनों ने मनचाहा भोग विलास किया और कुछ दिनों में हिमालय की वह सुन्दर और युवती पत्नी मेना गर्भवती हो गई।।19।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम्।
क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्राववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम्।।20।।
अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्व पत्नी।
सती सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे।।21।।
सा भूधराणमधिपेन तस्यां समाधिमत्यामुदपादि भव्या।
सम्यक्प्रयोगादपरिक्षतायां नीताविवोत्साहगुणेन संपत्।।22।।
प्रसन्नदिक्पांसुविविक्तवातं शङ्खस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि।
शरीरिणां स्थावरजंगमानां सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव।।23।।
तया दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुरत्प्रभामण्डलया चकासे।
विदूरभूमिर्नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव।।24।।
दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान्विशेषाञ्ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि।।25।।
तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव।
उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।।26।।

मेना के उस गर्भ से मैनाक नाम का वह पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने नागकन्या के साथ विवाह किया, समुद्र के साथ मित्रता की और पर्वतों के पंख काटने वाले इन्द्र के रुष्ट होने पर भी उनके वज्र की चोट अपने शरीर पर नहीं लगने दी।।20।। मैना के जन्म के कुछ ही दिनों के बाद महादेवी जी की पहली पत्नी और दक्ष की कन्या परम साध्वी सती ने अपने पिता से अपमानित होने के कारण योग-बल से अपना शरीर छोड़ दिया और दूसरा जन्म लेने के लिये वे मेना की गर्भ में आ बसीं।।21।। ठीक-ठीक काम में लाई जाने से न बिगड़ने वाली नीति जिस प्रकार उत्साह का मेल पाकर बड़ी सम्पत्ति उत्पन्न करती है, उसी प्रकार हिमालय ने पतिव्रता मेना के द्वारा उस कल्याणी को जन्म दिया।।22।। उनके जन्म के दिन आकाश खुला हुआ था। पवन में धूल का नाम भी नहीं था, आकाश से शंख बजने के साथ-साथ फूल बरस रहे थे और चर-अचर सभी उनके जन्म से प्रसन्न हो उठे थे।।23।। जैसे नये मेघ के गरजने पर विदूरपर्वत के रत्नों में अंकुर फूट आते हैं और उनके प्रकाश से विदूरपर्वत की भूमि चमक उठती है, वैसे ही तेजो मण्डल से भरे मुख वाली उस कन्या को गोद मं पा कर मेना भी खिल उठीं।।24।। धीरे-धीरे पार्वती जी चन्द्रकला के समान दिन-दिन बढ़ने लगीं, और जैसे चाँदनी के बढ़ने के साथ-साथ चन्द्रमा की और सभी कलाएँ भी बढ़ने लगती हैं, वैसे ही ज्यों-ज्यों पार्वती जी बढ़ने लगीं त्यों-त्यों उनके सुन्दर अंग भी सुडौल हो कर बढ़ने लगे।।25।। पर्वत से उत्पन्न होने के कारण पिता ने और कुटुम्बियों ने सबकी दुलारी उस कन्या को पार्वती कहना आरम्भ कर दिया। कालान्तर में जब पार्वती को उनकी माता ने उमा [उ=हे (वत्से) मा = मा (तप मत करो।)] कहकर तपस्या करने से रोका था, तब से उनका नाम 'उमा' पड़ गया।।26।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीभृतः पुत्रवतोऽपिदृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।
अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा।। 27।।
प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च।। 28।।
मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीड़ारसं निर्विशतीव बाल्ये।। 29।।
तां हंसमालाःशरदीव गङ्गा महौषधिं नक्तमिवात्मभासः।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः।। 30।।
असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साथ वयः प्रपेदे।। 31।।
उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्त्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन।। 32।।
अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ ।
आजह्वतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्।। 33।।

जैसे भौंरों की पाँतें बसन्त के ढेरों फूलों को छोड़कर आम की मंजरियों पर ही मँडराती रहती है वैसे ही अनेक संतानों के होते हुए भी हिमवान की आँखें पार्वती पर ही अटकी रहती थीं।।27।। जैसे अत्यंत प्रकाशमान लौ को पाकर दीपक, मन्दाकिनी को पाकर स्वर्ग का मार्ग और व्याकरण से शुद्ध वाणी को पाकर विद्वान् लोग पवित्र और सुन्दर लगने लगते हैं। वैसे ही पार्वत जी को पाकर हिमवान् भी पवित्र और सुन्दर हो गए।।28।। पार्वती जी अपनी सखियों के साथ कभी तो गंगा जी के बलुए तट पर वेदियाँ बनाती थीं, कभी गेंद खेलती थीं और कभी गुड़ियाँ बना-बनाकर सजाती थीं। इस प्रकार खेल-कूद में उनका पूरा बचपन बीत गया।।29।। जब अत्यन्त तीव्रबुद्धि वाली पार्वती जी ने पढ़ना प्रारम्भ किया, उस समय पूर्वजन्म की सभी विद्याएँ उन्हें उसी प्रकार अपने आप स्मरण हो आईं, जैसे शरद् ऋतु के आ जाने पर गंगा जी में हंस आ जाते हैं या जैसे अपने आप चमकने वाली जड़ी-बूटियों में रात को चमक आ जाती है।।30।। इस प्रकार धीरे-धीरे उनका बचपन बीत गया और उनके शरीर में वह यौवन फूट पड़ा जो शरीर की लता का स्वाभाविक शृंगार है, जो मदिरा के बिना ही मन को मतवाला बना देता है और जो कामदेव का बिना फूलों वाला बाण है।।31।। जैसे कूँची से ठीक-ठीक रंग भरने पर चित्र खिल उठता है और सूर्य की किरणों का स्पर्श पाकर कमल का फूल खिल उठता हे, उसी प्रकार पार्वती का शरीर भी नवयौवन पाकर बहुत खिल उठा।।32।। जब वे चलती थीं तब उसके स्वाभाविक लाल और कोमल पैरों के उठे हुए अँगूठों के नखों से निकलने वाली चमक को देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वे पैर ललाई उगल रहे हैं और जब वे अपने इन चरणों को उठा-उठाकर रखती हुई चलती थीं तब तो ऐसा जान पड़ता था मानो वे पग-पग पर स्थलकमल उगाती चल रही हों।।33।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा राजहंसैरिव संनताङ्गी गतेषु लीलाञ्चितविक्रमेषु।
व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादित्सुभिर्नूपुरसिञ्जितानि।। 34।।
वृत्तानुपूर्वे च न चातिदीर्घे जङ्घे शुभे सृष्टवतस्तदीये।
शेषाङ्गनिर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः।। 35।।
नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषाः।
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः।। 36।।
एतावता नन्वनुमेयशोभि काञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः।
आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चादनन्यनारीकमनीयमङ्कम्।। 37।।
तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवलोमराजिः।
नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेरिवार्चिः।। 38।।
मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्।। 39।।
अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम्।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम्।। 40।।

यौवन के भार से झुकी हुई जब वे हाव-भाव से चलती थीं उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उनके बिछुओं से निकलने वाली मधुर ध्वनि को सीखने के लिए ललचाये हुए राजहंसों ने अपनी हाव-भरी चाल उन्हें पहले ही बदले में सिखा दी हो।।34।। उनके समूचे शरीर को सुन्दर बनाने के लिये ब्रह्मा ने सुन्दरता की जितनी सामग्रियाँ इकट्ठी की थीं वे सब तो उनकी चढ़ाव-उतार वाली, गोल और ठीक मोटाई वाली जाँघों के बनाने में ही समाप्त हो गई। इसलिये शेष अंगों को बनाने के लिये सुन्दरता की और सामग्रियाँ फिर जुटाने में ब्रह्मा जी को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा।।35।। पार्वती की उन दोनों मोटी जाँघों की उपमा दो ही वस्तुओं से दी जा सकती थी—एक तो हाथी की सूँड़ से और दूसरे केले के खम्भ से। पर हाथी की सूँड़ कड़ी होती है और केले का खंभा बड़ा ठण्डा होता है इसलिये पार्वती जी की बड़ी-बड़ी जाँघों के जोड़ की कोई भी ठीक वस्तु न मिल सकी।।36।। उन अत्यन्त सुन्दर अंगों वाली पार्वती के नितम्ब कितने सुन्दर रहे होंगे यह तो इसी बात से आँका जा सकता है कि विवाह करने पर स्वयं शिव जी ने उन नितम्बों को अपनी उस गोद में रखा, जहाँ तक पहुँचने की कोई और स्त्री इच्छा भी नहीं कर सकती।।37।। नीवीबन्ध के ऊपर गहरी नाभि तक पहुँची हुई और नये यौवन के आने के कारण बालों की जो नई उगी पतली रेखा बन गई थी उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो नीवीबन्ध के ऊपर बँधी हुई उनकी मेखला के बीचों-बीच जड़ा हुआ नीलम चमक उठा हो।।38।। उन पतली कमर वाली और नये यौवन वाली के पेट पर जो तीन सिकुड़न की रेखाएँ पड़ी हुई थीं, उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव को ऊपर स्तन आदि अंगों तक चढ़ा ले जाने के लिये नये यौवन ने सीढ़ी बना दी हो।।39।। उन कमल के समान आँखों वाली पार्वती के, साँवली घुंडियों वाले गोरे-गोरे स्तन बढ़कर आपस में इतने सट गये थे कि उनके बीच में इतना भी स्थान नहीं रह गया कि कमल की नाल का एक रेशा भी उसमें समा सके।।40।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन।। 41।।
कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः।। 42।।
चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः।। 43।।
पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वास्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य।। 44।।
स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना।। 45।।
प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या।
तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः।। 46।।
तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्या।
तां वीक्ष्य लीलाचतुरामनङ्गः स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच।। 47।।

मेरी समझ से पार्वती जी की भुजाएँ शिरीष के फूल से भी अधिक कोमल थीं, इसीलिये तो फूलों के अस्त्र वाले कामदेव ने शिव जी से हार जाने पर उनके गले में इन्हीं भुजाओं का फन्दा बनाकर डाल दिया था।।41।। पार्वती जी का गोल-गोल गला और उसमें से उनके ऊँचे स्तनों पर लटका हुआ गोल मोतियों का हार, दोनों एक दूसरे की शोभा बढ़ा रहे थे। पार्वती जी के कण्ठ की शोभा हार बढ़ा रहा था और उस हार की शोभा उनका कण्ड बढ़ा रहा था।।42।। [जब तक वे उत्पन्न नहीं हुई थीं तब तक] चंचल शोभा वाली लक्ष्मी बड़ी दुविधा में पड़ी रहती थीं; क्योंकि रात को जब वे चन्द्रमा में पहुँचती थीं, तब उन्हें कमल का आनन्द नहीं मिल पाता था। पर जब दिन में वे कमल में आ बसती थीं, तब रात के चन्द्रमा का आनन्द उन्हें नहीं मिल पाता था। पर जब वे [चन्द्रमा और कमल दोनों के गुण वाले] पार्वती जी के मुख में आ बसीं तब से उन्हें [चन्द्रमा और कमल] दोनों का आनन्द एक साथ मिलने लगा।।43।। उनके लाल-लाल ओठों पर फैली हुई उनकी मुस्कराहट का उजलापन ऐसा सुन्दर लगता था जैसे लाल कोंपल में कोई उजला फूल रखा हुआ हो या स्वच्छ मूँगे के बीच में मोती जड़ा हुआ हो।।44।। वे मधुर वाणी में ज़ब बोलने लगती थीं, तब मानो अमृत की धारा फूट निकलती थी। उनकी मीठी बोली के आगे कोयल की कूक कानों को ऐसी कड़वी लगती थी, जैसे किसी अनाड़ी ने अनमिली वीणा के बेसुरे तार छेड़ दिए हों।।45।। उन बड़ी-बड़ी आँखों वाली की चितवन, आँधी से हिलते हुए नीले कमलों के समान चंचल थी। उसे देखकर यह पता नहीं चल पाता था कि यह कला उन्होंने हरिणियों से सीखी थी या हरिणियों ने ही उनसे सीखी थी।।46।। उनकी लम्बी और मनोहर भौंहें ऐसी लगती थीं, जैसे किसी ने तूलिका लेकर बनाई हो। वे भौंहे इतनी सुन्दर थीं कि कामदेव भी अपने धनुष की सुन्दरता का जो घमण्ड लिए फ़िरते थे, वह इन भौंहों के आगे चूर-चूर हो गया।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्वालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः।। 48।।

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशतेन।
सा निर्मिताविश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।। 49।।

तां नारदः कामचरः कदाचित्कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य।। 50।।

गुरुः प्रगल्भेऽपिवयस्यतोऽस्यास्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः।
ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजाँस्यपराणि हव्यम्।। 51।।

अयाचितारं नहि देवदेवमद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक।
अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टिऽप्यलम्बतेऽर्थे।। 52।।

यदैव पूर्वे जनने शरीरं सा दक्षरोषात्सुदती ससर्ज।
तदाप्रभृत्येव विमुक्तसङ्गः पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत्।। 53।।

उनके बाल इतने सुन्दर थे कि यदि पशु-पक्षियों में भी मनुष्य के समान लज्जा हुआ करती, तो अपने बालों पर इतराने वाली चमरी हिरणियाँ भी उनके बाल देखकर अपने चँवरों पर इठलाना भूल जातीं।।48।। पार्वती जी को देखकर ऐसा जान पड़ता था कि संसार को बनाने वाले ब्रह्मा जी पृथ्वी की सारी सुन्दरता एक साथ देखना चाहते थे। इसीलिये तो उन्होंने सुन्दर अंगों की उपमा में आने वाली सब वस्तुओं को यत्नपूर्वक बटोर कर उन्हें सब अंगों पर यथास्थान सजाकर सुन्दरता की मूर्ति पार्वती जी को बनाया था।।49।। अपने मन से इधर-उधर घूमने वाले नारद जी एक दिन घूमते-घूमते हिमालय के यहाँ पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि हिमालय के पास उनकी कन्या भी बैठी हुई है। उन्हें देखते ही नारद जी ने यह भविष्यवाणी कर दी कि यह कन्या अपने प्रेम से शिव जी के आधे शरीर की स्वामिनी और उनकी अकेली पत्नी बनकर रहेगी।।50।। यद्यपि पार्वती जी सयानी हो रही थीं पर नारद जी की बात से हिमालय इतने निश्चिन्त हो गए कि उन्होंने दूसरा वर खोजने की चिन्ता ही छोड़ दी; क्योंकि जैसे मन्त्र से दी हुई हवन की सामग्री, अग्नि को छोड़कर और कोई नहीं ले सकता, वैसे ही महादेवी जी को छोड़कर पार्वती जी को और ग्रहण ही कौन कर सकता था।।51।। पर हिमालय ने सोचा कि जब तक स्वयं महादेव जी ही कन्या माँगने नहीं आते, तब तक अपने आप उन्हें कन्या देने जाना ठीक नहीं है। जहाँ सज्जन लोगों को निरादर का डर होता है वहाँ वे अपने काम में किसी बिचवई को साथ ले लेते हैं।।52।। इधर जब से सती ने अपने पिता दक्ष के हाथों महादेव का अपमान होने पर क्रोध करके यज्ञ की अग्नि से अपना शरीर छोड़ा था, तभी से महादेव जी ने भी सब भोग-विलास छोड़ दिए थे और दूसरा विवाह भी नहीं किया था।।53।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारु।
प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगंधि किंचित्क्वणत्किन्नरमध्युवास।।54।।

गणा नमेरुप्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः।
मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु।।55।।

तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन्दर्पकलः ककुद्मान्।
दृष्टः कथंचिद्गवयैर्विविग्नैरसोढसिंहध्वनिरुन्ननाद।।56।।

तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।
स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार।।57।।

अनर्घ्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः स्वर्गौकिसामर्चितमर्चयित्वा।
आराधनायास्य सखीसमेतां समादिदेश प्रयतां तनूजाम्।।58।।

प्रत्यर्थिभूतामपि तां समाधेः शुश्रूषमाणं गिरिशोऽनुमेने।
विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।।59।।

इतना ही नहीं अपनी इन्द्रियों को जीतने वाले और गजचर्म ओढ़ने वाले भगवान् शंकर जी कस्तूरी की गन्ध में बसी हुई हिमालय की एक ऐसी सुन्दर चोटी पर जाकर तप करने लगे जहाँ के देवदारु के वृक्षों को गंगा जी की धारा बराबर सींचती और गन्धर्व दिन-रात गाते रहते थे।।54।। उनके पास ही सिर पर नमेरु के कोमल फूलों की माला बाँधे, शरीर पर भोज पत्र लपेटे और मैनसिल के रंग से अपने शरीर रंगे हुए उनके प्रमथ आदि गण शिलाजीत से पुती हुई चट्टानों पर बैठे पहरा देते रहते थे।।55।। उनके पास ही उनका गर्वीला नन्दी साँड भी रहता था, जो गरजते हुए सिंह की दहाड़ को सह सकने के कारण जब अपने खुरों से हिम की चट्टानों को खोदता हुआ डकार उठता था तब नीलगाएँ घबरा कर उसे देखती रह जाती थीं कि यह सिंह जैसा गरजने वाला दूसरा कौन आ पहुँचा।।56।। उसी चोटी पर सब तपस्याओं का स्वयं फल देने वाले शिव जी ने अपनी ही दूसरी मूर्ति अग्नि को समिधा से जगाकर न जाने किस फल की इच्छा से तप करना प्रारंभ कर दिया था।।57।। जिन महादेव जी को स्वर्ग के देवता पूजते हैं, उनकी पूजा के लिये हिमालय अपनी पुत्री के साथ महादेव जी की सेवा में बहुमूल्य पूजा की सामग्री लेकर पहुँचे। पहले उन्होंने स्वयं उनकी पूजा की और फिर अपनी कन्या को आज्ञा दी कि अपनी सखियों के साथ जा कर शिव जी की पूजा करो।।58।। यद्यपि पार्वती जी के वहाँ रहने से शिव जी के तप में बाधा पड़ सकती थी, फिर भी उन्होंने पार्वती जी की सेवा ली, क्योंकि सच्चा धीर महात्मा उन्हें ही समझना चाहिये, जिनका मन विकार उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के बीच रहकर भी तिल भर न डिगे।।59।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवचितबलिपुष्पा वेदिसंमार्गदक्षा
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः।। 60।।

इति महाकवि श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
उमोत्पत्तिर्नाम प्रथमः सर्गः।।

सुन्दर बालों वाली पार्वती जी वहाँ रहकर नियम से प्रतिदिन पूजा के लिये फूल चुन कर बड़े अच्छे ढंग से वेदी को धो-पोंछकर और नित्यकर्म के लिये जल और कुश लाकर बिना थकावट माने उनकी सेवा किया करतीं; क्योंकि महादेव जी के माथे पर बैठे हुए चन्द्रमा की ठण्डी किरणें पार्वती जी की थकान सदा मिटाती रहती थीं।। 60।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसम्भव नाम के
महाकाव्य में 'उमा-जन्म' नाम का पहला सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीयः सर्गः ।।

तस्मिन्विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः।
तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः।। 1।।
तेषामाविरभूद्ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम्।
सरसां सुप्तपद्मानां प्रातर्दीधितिमानिव।। 2।।
अथ सर्वस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम्।
वागीशं वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणिपत्योपतस्थिरे।। 3।।
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे।। 4।।
यदमोघमपामन्तरुप्तं बीजमज त्वया।
अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे।। 5।।
तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन्।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः।। 6।।
स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ।। 7।।

दूसरा सर्ग

उन्हीं दिनों तारक नाम के राक्षस ने देवताओं को इतना सता रखा था कि वे सब इन्द्र को आगे करके ब्रह्माजी के पास पहुँचे।।1।। उदास मुँह वाले देवताओं के सामने ब्रह्माजी उसी प्रकार आकर प्रकट हो गए, जैसे सरोवर में सोए कमलों के आगे प्रातःकाल का सूर्य निकलता है।।2।। ब्रह्माजी को सामने देखते ही वे सब देवता चार मुँह वाले और सारे जगत् को बनाने वाले ब्रह्माजी को प्रणाम करके अर्थयुक्त शब्दों में यह स्तुति करने लगे।।3।। 'हे भगवान्! संसार को रचने के पहले एक ही रूप में रहने वाले और संसार रचते समय, सत्त्व, रज और तम तीन गुण उत्पन्न करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम से तीन रूप में बन जाने वाले आपको प्रणाम है।।4।। हे ब्रह्मन्! आपने सबसे पहले जल उत्पन्न करके उनमें ऐसा बीज बो दिया, जो कभी अकारथ नहीं जाता और जिसमें एक ओर ये पशु, पक्षी, मनुष्य आदि चलने वाले जीव और दूसरी ओर वृक्ष, पहाड़ आदि न चलने वाला जगत् उत्पन्न हुआ है। इसीलिये आपको ही सब लोग संसार का उत्पन्न करने वाला बताते हैं।।5।। आप ही शिव, विष्णु और हिरण्यगर्भ इन तीन रूपों से अपनी शक्ति प्रकट करके संसार का नाश, पालन और उत्पादन करते हैं।।6।। आप ही जब स्त्री और पुरुष की सृष्टि करने चलते हैं, उस समय आपके ही स्त्री और पुरुष दो रूप बन जाते हैं। वे ही दोनों रूप सारे संसार के माता-पिता कहे जाते हैं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिन्दिवस्य ते।
यौ तु स्वप्नावबोधौ तौ भूतानां प्रलयोदयौ।।8।।
जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः।।9।।
आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना।
आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे।।10।।
द्रवः संघातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः।
व्यक्तो व्यक्तेतरश्चासि प्राकाम्यं ते विभूतिषु।।11।।
उद्घातः प्रणवो यासां न्यायैस्त्रिभिरुदीरणम्।
कर्म यज्ञः फलं स्वर्गस्तासां त्वं प्रभवो गिराम्।।12।।
त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थप्रवर्तिनीम्।
तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः।।13।।
त्वं पितृणामपि पिता देवानामपि देवता।
परतोऽपि परश्चासि विधाता वेधसामपि।।14।।
त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः।
वेद्यं च वेदिता चासि ध्याता ध्येयं च यत्परम्।।15।।

आपने समय की जो माप बना रखी है, उसके अनुसार जो दिन और रात होते हैं, उसमें जब आप सोते हैं, तब संसार का महाप्रलय हो जाता है और जब आप जागते हैं तब संसार की सृष्टि होती है।।8।। संसार को आपने उत्पन्न किया है; परन्तु आपको किसी ने उत्पन्न नहीं किया। आप संसार का अन्त करते हैं और आपका कोई अन्त नहीं कर सकता। आपने संसार का प्रारम्भ किया है, पर आपका कभी प्रारम्भ नहीं हुआ। आप संसार के स्वामी हैं, पर आपका कोई स्वामी नहीं है।।9।। आप, अपने को अपने में ही जानते हैं और अपने आप अपने को उत्पन्न करते हैं और जब आप अपना काम पूरा कर चुकते हैं तब अपने को अपने में ही लीन कर लेते हैं।।10।। आप तरल भी हैं, कठोर भी, मोटे भी हैं, पतले भी, छोटे भी हैं, बड़े भी, आप दिखाई भी देते हैं और नहीं भी दिखाई देते। इस प्रकार जितनी भी सिद्धियाँ हैं, वे सब आपके हाथ में हैं। आप जैसा चाहें वैसा बन सकते हैं।।11।। आपने ही वेद की वह वाणी उत्पन्न की है, जिसका प्रारम्भ ॐकार से होता है, जिसका उच्चारण उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों से होता है और जिसके मन्त्रों से यज्ञ करके लोग स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं।।12।। आपको ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये मनुष्य को उकसाने वाली मूलप्रकृति कहते हैं और आप ही उस प्रकृति का दर्शन करने वाले उदासीन पुरुष भी माने जाते हैं।।13।। आप पितरों के भी पिता, देवताओं के भी देवता, अच्छों से भी अच्छे और सृष्टि करने वाले प्रजापतियों की भी सृष्टि करने वाले है।।14।। आप ही सदा हवन की सामग्री भी हैं, भोग की वस्तुएँ भी हैं और आप ही हवन करने वाले भी हैं। आप ही भोग करने वाले भी हैं। आप ही जानने के योग्य हैं और आप ही जानने वाले हैं। आप ही ध्यान करने वाले हैं और आप ही वह सर्वश्रेष्ठ हैं जिनका ध्यान भी किया जाना चाहिए।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति तेभ्यः स्तुतीः श्रुत्वा यथार्था हृदयंगमाः।
प्रसादाभिमुखो वेधाः प्रत्युवाच दिवौकसः।। 16।।

पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता।
प्रवृत्तिरासीच्छब्दानां चरितार्था चतुष्टयी।। 17।।

स्वागतं स्वानधीकारान्प्रभावैरवलम्ब्य वः।
युगपद्युगबाहुभ्यः प्राप्तेभ्यः प्राज्यविक्रमाः।। 18।।

किमिदं द्युतिमात्मीयां न बिभ्रति यथा पुरा।
हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषीव मुखानि वः।। 19।।

प्रशमादर्चिषामेतदनुद्गीर्णसुरायुधम्।
वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठिता श्रीव लक्ष्यते।। 20।।

किंचायमरिदुर्वारः पाणौ पाशः प्रचेतसः।
मंत्रेण हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः।। 21।।

कुबेरस्य मनःशल्यं शंसतीव पराभवम्।
अपविद्धगदो बाहुर्भग्नशाख इव द्रुमः।। 22।।

यमोऽपि विलिखन्भूमिं दंडेनास्तमितत्विषा।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघेऽपि निर्वाणालातलाघवम्।। 23।।

देवताओं से सच्ची और मन-भावनी स्तुति सुनकर दयालु ब्रह्माजी जिस समय देवताओं से बोलने लगे।।16।। उस समय सबसे पुराने कवि ब्रह्माजी के चारों मुँहों से निकली हुई वाणी ने अपना चार [परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी] रूपों वाला होना सच्चा कर दिया।।17।। ब्रह्माजी बोले—एक साथ मिलकर आए हुए, अपनी शक्ति से अपने-अपने अधिकारों की रक्षा करने वाले और बड़ी-बड़ी बाहों वाले हे शक्तिशाली देवताओं! मैं आप लोगों का स्वागत करता हूँ।।18।। परन्तु यह तो बताइए कि आप लोगों के मुँह की पहले वाली कान्ति कहाँ चली गई। आप लोग कुहरे से ढके हुए धुँधले तारे के समान उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं।।19।। वृत्र को मारने वाला और इन्द्रधनुष के समान चमकीला वज्र भी आज चमक खोकर कुण्ठित क्यों दिखाई दे रहा है।।20।। शत्रुओं को नाश करने वाला यह वरुण देव के हाथ फन्दा बँधे हुए साँप के समान इतना दीन क्यों दिखाई दे रहा है।।21।। कुबेर का यह बाहु भी गदा के बिना ऐसा क्यों लग रहा है, जैसे कटी हुई शाखा वाला वृक्ष का ठूंठ हो। इससे ज्ञात होता है कि किसी बड़े तगड़े शत्रु से हार जाने का काँटा इनके हृदय में कसक रहा है।।22।। अपने निस्तेज दण्ड से पृथ्वी को कुरेदते हुए यमराज ऐसे क्यों लग रहे हैं, मानो उनका करारा दण्ड भी बुझी हुई लूक जैसा बेकाम हो गया हो।।23।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमी च कथमादित्याः प्रतापक्षतिशीतलाः।
चित्रन्यस्ता इव गताः प्रकामालोकनीयताम्।।24।।

पर्याकुलत्वान्मरुतां वेगभङ्गोऽनुमीयते।
अम्भसामोघसंरोधः प्रतीपगमनादिव।।25।।

आवर्जितजटामौलिविलम्बिशशिकोटयः।
रुद्राणामपि मूर्धानः क्षतहुंकारशंसिनः।।26।।

लब्धप्रतिष्ठाः प्रथमं यूयं किं बलवत्तरैः।
अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः परैः।।27।।

तद्ब्रूत वत्साः किमितः प्रार्थयध्वं समागताः।
मयि सृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता।।28।।

ततो मन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना।
गुरुं नेत्रसहस्त्रेण नोदयामास वासवः।।29।।

स द्विनेत्रं हरेश्चक्षुः सहस्त्रनयनाधिकम्।
वाचस्पतिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्जलजासनम्।।30।।

एवं यदात्थ भगवन्नामृष्टं नः परैः पदम्।
प्रत्येकं विनियुक्तात्मा कथं न ज्ञास्यसि प्रभो।।31।।

यह बारह आदित्य भी अपना तेज गँवा कर ठण्डे पड़े हुए, ऐसे चित्र लिखे से और मंदे क्यों दिखाई दे रहे हैं कि कोई भी जब तक चाहे उन्हें आँख गड़ाकर देखता रह जाय।।24।। जैसे ऊँचे की ओर बहने वाले जल का बहाव धीमा पड़ जाता है वैसे ही उनचासों पवन ऐसे क्यों दिखाई पड़ रहे हैं, जैसे वे भी घबराहट से मन्दे पड़ गये हों।।25।। खुली जटाओं में लटकती और हार के दुःख से झुकी हुई चन्द्रकलाओं वाले ग्यारह रुद्रों के माथे भी बता रहे हैं कि उनकी हुंकार करने की शक्ति भी जाती रही है।।26।। जैसे व्याकरण आदि शास्त्रों में किसी व्यापक नियम को अपवाद वाला नियम व्यर्थ कर देता है, वैसे ही क्या आप लोग भी किसी पराक्रमी शत्रु से अपना अपना अधिकार लुटवा बैठे हैं।।27।। हे देवताओं! मुझे बताइए कि आप लोग मेरे पास इकट्ठे होकर क्या कहने के लिये आए हैं? क्योंकि हमारा काम तो केवल संसार की सृष्टि करना भर है, उसकी रक्षा करना तो आप ही लोगों के हाथ में है।।28।। ब्रह्माजी की यह बात सुनकर इन्द्र ने अपने सहस्त्र नेत्रों को इस प्रकार चलाकर बृहस्पति जी को बोलने के लिये संकेत किया, जैसे मन्द पवन के चलने पर कमल का वन हिल उठता है।।29।। जिनके दो नेत्रों में ही इन्द्र के सहस्त्र नेत्रों से भी बढ़कर देखने की शक्ति थी, वे बृहस्पति जी, हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहने लगे।।30।। हे! ब्रह्मन् आप जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है। हम लोगों के सब स्थान शत्रुओं ने अपने हाथ में कर लिए हैं। आप, तो सबके घट-घट में रमे हुए हैं, भला आपसे कोई बात छिपी थोड़े रहती है।।31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवल्लब्धवरोदीर्णस्तारकाख्यो महासुरः।
उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थितः।। 32।।

पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम्।
दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते।। 33।।

सर्वाभिः सर्वदा चन्द्रस्तं कलाभिर्निषेवते।
नादत्ते केवलां लेखां हरचूडामणीकृताम्।। 34।।

व्यावृत्तगतिरुद्याने कुसुमस्तेयसाध्वसात्।
न वाति वायुस्तत्पार्श्वे तालवृन्तानिलाधिकम्।। 35।।

पर्यायसेवामुत्सृज्य पुष्पसंभारतत्पराः।
उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते।। 36।।

तस्योपायनयोग्यानि रत्नानि सरितां पतिः।
कथमप्यम्भसामन्तरानिष्पत्तेः प्रतीक्षते।। 37।।

ज्वलन्मणिशिखाश्चैनं वासुकिप्रमुखा निशि।
स्थिरप्रदीपतामेत्य भुजंगाः पर्युपासते।। 38।।

तत्कृतानुग्रहापेक्षी तं मुहुर्दूतहारितैः।
अनुकूलयतीन्द्रोऽपि कल्पद्रुमविभूषणैः।। 39।।

हे भगवान्! आपका वरदान पाकर तारक नाम का राक्षस ठीक उसी प्रकार सिर उठाता चला जा रहा है, जैसे संसार का नाश करने के लिये पुच्छल (धूमकेतु) तारा निकल आया हो।।32।। प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य भी उससे इतना डरता है कि उसके नगर पर वह केवल इतनी ही किरणें फैलाता है, जिनसे सरोवर के कमल खिल उठें।।33।। चन्द्रमा वहाँ पूरे महीने भर अपनी पूरी कला लेकर चमका करता है, केवल उस एक कला को छोड़ देता है, जिसे शिव जी ने अपने मस्तक का मणि बना लिया है।।34।। पवन भी उसके पास पंखे के वायु से अधिक वेग से नहीं बहता क्योंकि उसे डर है कि कहीं तारकासुर की फुलवारी के फूल न झड़ जायें और उसे चोर का दण्ड भोगना पड़े।।35।। छओं ऋतुएँ अपने समय का विचार छोड़कर एक साथ फुलवारी की मालिनों के समान एक दूसरी ऋतु के फूलों को बिना छेड़े हुए अपने-अपने ऋतु के फूल उपजा कर ताराकासुर की सेवा करती हैं।।36।। समुद्र भी उसके पास भेंट के योग्य रत्न भेजने के लिये तब तक जल के भीतर बाट जोहता रहता है, जब तक कि वे रत्न ठीक बढ़ न जायें।।37।। चमकते हुए मणि के मन वाले वासुकि आदि बड़े-बड़े साँप रात को अपनी मणियों के न बुझने वाले दीप ले-लेकर उसकी सेवा किया करते हैं।।38।। इन्द्र भी उसकी कृपा पाने के लिये बार-बार अपने दूतों के हाथ कल्पवृक्ष के सुन्दर सुन्दर रत्न उसके पास भेजकर उसे प्रसन्न रखा करते हैं।।39।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।
शाम्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः।।40।।

तेनामरवधूहस्तैः सदयालूनपल्लवाः।
अभिज्ञाश्छेदपातानां क्रियन्ते नन्दनद्रुमाः।।41।।

वीज्यते स हि संसुप्तः श्वाससाधारणानिलैः।
चामरैः सुरबन्दीनां बाष्पसीकरवर्षिभिः।।42।।

उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि क्षुण्णानि हरितां खुरैः।
आक्रीडपर्वतास्तेन कल्पिताः स्वेषु वेश्मसु।।43।।

मन्दाकिन्याः पयः शेषं दिग्वारणमदाविलम्।
हेमाम्भोरुहसस्यानां तद्वाप्यो धाम सांप्रतम्।।44।।

भुवनालोकनप्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूयते।
खिलीभूते विमानानां तदापातभयात्पथि।।45।।

यज्वभिः संभृतं हव्यं विततेष्वध्वरेषु सः।
जातवेदोमुखान्मायी मिषतामाच्छिनत्ति नः।।46।।

उच्चैरुच्चैःश्रवास्तेन हयरत्नमहारि च।
देहबद्धमिवेन्द्रस्य चिरकालार्जितं यशः।।47।।

इतनी सेवा करने पर भी वह असुर तीनों भुवनों को पीड़ा देता जा रहा है लात के देवता बात से नहीं मानते।।40।। नन्दन वन के जिन वृक्षों के कोमल पत्तों को देवताओं की स्त्रियाँ बड़ी कोमलता के साथ अपने कनफूल बनाने के लिये तोड़ा करती थीं, उन्हीं को वह राक्षस बड़ी निर्दयता से काट-काटकर गिरा रहा है।।41।। जब वह सोया करता है, उस समय देवताओं की बन्दी स्त्रियाँ गरम-गरम उसाँसे लेती हैं और आँसू बहाती हुई उस पर चँवर डुलाया करती हैं।।42।। सूर्य के घोड़ों के टापों से उखड़ी हुई मेरु की चोटियों को उखाड़-उखाड़ कर उसने अपने घर में लेजा-लेजा कर खेल के पहाड़ बना डाले हैं।।43।। मन्दाकिनी के स्वर्ण-कमल उखाड़-उखाड़ कर उसने अपने घर की बावलियों में लगा लिए हैं और इसीलिये मन्दाकिनी में आज-कल केवल दिग्गजों के मद से गँदला जल भर दिखाई दिया करता है।।44।। पहले देवता लोग विमानों पर चढ़कर इस लोक से उस लोक में घूमते-फिरते थे, परन्तु अब उसके आक्रमण के डर से आकाश में निकलना भी दूभर हो गया है।।45।। वह ऐसा भारी छलिया है कि जब यज्ञ में यजमान हम लोगों को आहुति देता है, तब वह हम लोगों के देखते-देखते अग्नि के मुँह से हमारा भाग छीन लेता है।।46।। उसने उच्चैःश्रवा नाम का वह सुन्दर घोड़ा छीन लिया है, जो बहुत दिनों से इकट्ठे किए हुए इन्द्र के यश के समान ही महान् था।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्नुपायाः सर्वे नः क्रूरे प्रतिहतक्रियाः।
वीर्यवन्त्यौषधानीव विकारे सान्निपातिके।। 48।।

जयाशा यत्र चास्माकं प्रतिघातोत्थितार्चिषा।
हरिचक्रेण तेनास्य कण्ठे निष्कमिवार्पितम्।। 49।।

तदीयास्तोयदेष्वद्य पुष्करावर्तकादिषु।
अभ्यस्यन्ति तटाघातं निर्जितैरावता गजाः।। 50।।

तदिच्छामो विभो स्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये।
कर्मबन्धच्छिदं धर्मं भवस्येव मुमुक्षवः।। 51।।

गोप्तारं सुरसैन्यानां यं पुरस्कृत्य गोत्रभित्।
प्रत्यानेष्यति शत्रुभ्यो बन्दीमिवजयश्रियम्।। 52।।

वचस्यवसिते तस्मिन्ससर्ज गिरमात्मभूः।
गर्जितानन्तरां वृष्टिं सौभाग्येन जिगाय सा।। 53।।

संपत्स्यते वः कामोऽयं कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम्।
न त्वस्य सिद्धौ यास्यामि सर्गव्यापारमात्मना।। 54।।

इतः स दैत्यः प्राप्तश्रीर्नेत एवार्हति क्षयम्।
विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्।। 55।।

जैसे सन्निपात में बड़ी-बड़ी औषधियाँ भी काम नहीं कर पातीं, उसी प्रकार हम भी उस दुष्ट को मारने के लिये जितने उपाय करते हैं वे सब व्यर्थ होते जा रहे हैं।।48।। विष्णु के जिस चक्र पर हम लोग जीत की आस लगाए बैठे थे, वह भी जब उसके गले पर जा कर टकराता है, तब उसमें से निकली हुई चिनगारियाँ ऐसी जान पड़ती हैं, मानो उस राक्षस के गले में माला पहना दी गई हो।।49।। आज ऐरावत को भी हरा देने वाले उसके हाथी पुष्करावर्त्तक आदि बादलों से टक्कर ले-लेकर टीले ढाहने का खिलवाड़ किया करते हैं।।50।। इसलिये हे प्रभो! जिस प्रकार मोक्ष पाने की इच्छा करने वाले लोग जन्म-मरण से छूटने के लिये कर्म के बन्धनों को काटने वाला उपाय खोजा करते हैं, वैसे ही हम लोग भी उस राक्षस को नष्ट करने के लिये एक ऐसा सेनापति उत्पन्न करना चाहते हैं।।51।। जिसे देवताओं की सेना का रक्षक बनाकर और उसे सेना के आगे करके भगवान् इन्द्र, शत्रुओं के हाथ में बन्दी के समान पड़ी हुई विजय-श्री को लौटा लायें।।52।। उनके कह चुकने पर ब्रह्माजी ऐसी मधुर वाणी बोले जो मेघ के गर्जन के पीछे होने वाली वर्षा के समान भली लगती थी।।53।। वे बोले, आप लोगों की इच्छा तो पूरी हो ही जायेगी, पर आप लोगों को थोड़े दिन और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; क्योंकि तारकासुर को मारने के लिये मैं स्वयं अवतार ले नहीं सकता।।54।। क्योंकि उस राक्षस को मैंने ही वरदान दिया है; इसलिये अपने हाथ उसे मारना मुझे ठीक नहीं लगता। अपने हाथ से लगाए हुए विष के पेड़ को भी अपने ही हाथ से काटना ठीक नहीं होता।।55।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तं तेनेदमेव प्राङ्मया चास्मै प्रतिश्रुतम्।
वरेण शमितं लोकानलं दग्धुं हि तत्तपः।।56।।

संयुगे सांयुगीनं तमुद्यतं प्रसहेत कः।
अंशादृते निषिक्तस्य नीललोहितरेतसः।।57।।

स हि देवः परंज्योतिस्तमःपारे व्यवस्थितम्।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना।।58।।

उमारूपेण ते यूयं संयमस्तिमितं मनः।
शंभोर्यतध्वमाक्रष्टुमयस्कान्तेन लौहवत्।।59।।

उभे एव क्षमे वोढुमुभयोर्बीजमाहितम्।
सा वा शंभोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम।।60।।

तस्यात्मा शितिकण्ठस्य सैनापत्यमुपेत्य वः।
मोक्ष्यते सुरबन्दीनां वेणीर्वीर्यविभूतिभिः।।61।।

इति व्याहृत्य विबुधान्विश्वयोनिस्तिरोदधे।
मनस्याहितकर्त्तव्यास्तेऽपि देवा दिवं ययुः।।62।।

तत्र निश्चित्य कन्दर्पमगमत्पाकशासनः।
मनसा कार्यसंसिद्धौ त्वराद्विगुणरंहसा।।63।।

उसने मुझसे उस समय जो वरदान माँगा था यदि मैं उसे न देता, तो उसकी तपस्या से सारा संसार जल उठता।।56।। महादेव जी के वीर्य से उत्पन्न होने वाले पुत्र के अतिरिक्त उस युद्ध-भूमि में लड़ने वाले प्रसिद्ध लड़ाकू तारकासुर का नाश और कोई दूसरा नहीं कर सकता।।57।। क्योंकि शंकर भगवान् अन्धकार के पार रहने वाले वे परम तेज हैं जिन्हें अविद्या छू नहीं पाती। इसलिये हम और विष्णु भी उनकी महिमा का ठिकाना अब तक नहीं लगा पाए हैं। अब आप लोग कोई ऐसा यत्न कीजिए कि जैसे चुम्बक से लोहा खिंच आता है, वैसे ही समाधि लगाए हुए शंकर जी का मन भी पार्वती जी के रूप की ओर खिंच आये।।59।। क्योंकि हमारे और शिव जी के वीर्य को धारण करना कोई सामान्य बात नहीं है। शिव जी के वीर्य को केवल पार्वत जी धारण कर सकती हैं और हमारे वीर्य को जल का रूप धारण करने वाली शिव जी की मूर्ति धारण कर सकती है।।60।। उन्हीं पार्वती जी से शंकर जी का जो पुत्र होगा, वही आप लोगों का सेनापति होकर अपने पराक्रम से देवताओं की बन्दी स्त्रियों को छुड़ाकर उनके उलझे हुए बाल सुलझा सकेगा।।61।। संसार को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी इतना कहकर आँख से ओझल हो गए और देवता लोग भी आगे का काम सोच-विचार कर स्वर्गलोक को चले गए।।62।। इन्द्र ने स्वर्गलोक में पहुँचकर भली भाँति सोच-विचाकर अपने काम के लिये मन में कामदेव को स्मरण किया।।63।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ स ललितयोषिद्भ्रूलताचारुशृङ्गं
रतिवलयपदाङ्के चापमासज्य कण्ठे।
सहचरमधुहस्तन्यस्तचूतांकुरास्त्रः
शतमखमुपतस्थे प्राञ्जलिः पुष्पधन्वा।। 64।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
ब्रह्मसाक्षात्कारो नाम द्वितीयः सर्गः।।

स्मरण करते ही रति के कंगन की छाप पड़े हुए गले में सुन्दर स्त्री की भौंहों के समान धनुष कंधे पर लटका कर और अपने साथी बसन्त के हाथ में आम के बौर का बाण देकर, कामदेव हाथ जोड़कर इन्द्र के आगे आ खड़ा हुआ।। 64।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में 'ब्रह्मा से भेंट'
नाम का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयः सर्गः ।।

तस्मिन्मघोनस्त्रिदशान्विहाय सहस्रमक्ष्णां युगपत्पपात।
प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु ।। 1 ।।
स वासवेनासननिकृष्टमितो निषीदेति विसृष्टभूमिः।
भर्तुः प्रसादं प्रतिनन्द्य मूर्ध्ना वक्तु मिथः प्राक्रमतैवमेनम् ।। 2 ।।
आज्ञापय ज्ञातविशेष पुंसां लोकेषु यत्ते करणीयमस्ति।
अनुग्रहं संस्मरणप्रवृत्तमिच्छामि संवर्द्धितमाज्ञया ते ।।3 ।।
केनाभ्यसूया पदकाङ्क्षिणा ते नितान्तदीर्घैर्जनिता तपोभिः।
यावद्भवत्याहितसायकस्य मत्कार्मुकस्यास्य निदेशवर्ती ।। 4 ।।
असम्मतः कस्तव मुक्तिमार्गं पुनर्भवक्लेशभयात्प्रपन्नः।
बद्धश्चिरं तिष्ठतु सुन्दरीणामारेचितभ्रूचतुरैः कटाक्षैः ।। 5 ।।
अध्यापितस्योशनसापि नीतिं प्रयुक्तरागप्रणिधिर्द्विषस्ते।
कस्यार्थधर्मौ वद पीडयामि सिन्धोस्तटावोघ इव प्रवृद्धः ।। 6 ।।
कामेकपत्नीव्रतदुःखशीलां लोलं मनश्चारुतया प्रविष्टाम्।
नितम्बिनीमिच्छसि मुक्तलज्जां कण्ठे स्वयंग्राहनिषक्तबाहुम् ।। 7 ।।

तीसरा सर्ग

कामदेव के आते ही इन्द्र की सहस्रों आँखें देवताओं पर से हटकर एक साथ आदर के साथ कामदेव की ओर घूम गईं; क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि स्वामी को अपने सेवकों से जब जैसा काम निकालना होता है, उसी के अनुसार वे उनका आदर भी किया करते हैं।।1 ।। इन्द्र ने कामदेव से कहा—'आओ यहाँ बैठो'। यह कहकर उसे अपने पास ही बैठा लिया। उसने भी सिर झुकाकर इन्द्र की कृपा स्वीकार कर ली और उनसे गुप-चुप बातचीत करने लगा।।2।। वह बोला—सबके गुणों को पहचानने वाले हे स्वामी! आप आज्ञा दीजिए, तीनों लोकों ऐसा कौन-सा काम है, जो आप मुझसे कराना चाहते हैं; क्योंकि मुझे स्मरण करके आपने जो कृपा की है, उसे मैं आपकी आज्ञा का पालन करके और भी बढ़ाना चाहता हूँ।।3।। कहिए तो ऐसा कौन पुरुष उत्पन्न हो गया है, जिसने बहुत बड़ी-बड़ी तपस्यायें करके आपके मन में ईर्ष्या जगा दी है। आप मुझे उसका नाम भर बता दीजिए फिर तो मैं अभी जाकर उसे अपने इस बाण चढ़े हुए धनुष से बात ही बात में जीत लाता हूँ।। 4।। बताइए तो ऐसा कौन पुरुष है, जो आपका शत्रु बनकर संसार के कष्टों से घबरा कर मोक्ष की ओर चल पड़ा है। मैं उसे अभी उन सुन्दरियों के नेत्रों में बहुत दिनों तक के लिये फँसाए देता हूँ, जो बाँकी चितवन चलाने में बड़ी चतुर हैं।।5।। आपका वह शत्रु यदि शुक्राचार्य से भी नीतिशास्त्र पढ़ कर आया होगा तो भी अत्यन्त भोग की इच्छा को दूत बनाकर मैं उसके पास भेजता हूँ, जो उसका धर्म और अर्थ दोनों का उसी प्रकार नाश कर देगा, जैसे बरसात में बढ़ी हुई नदी का बहाव दोनों तटों को बहा ले जाता है।।6।। या कौन-सी ऐसी सुन्दरी और हठीली प्रतिव्रता आपके चंचल मन में बैठ गई है। मैं अभी उस सुन्दरी पर ऐसा बाण चलाता हूँ कि वह सब लाज-शील छोड़कर आपके गले लग जायेगी।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कयासि कामिन्सुरतापराधात्पादानतः कोपनयावधूतः।
तस्याः करिष्यामि दृढानुतापं प्रवालशय्याशरणं शरीरम्।।8।।
प्रसीद विश्राम्यतु वीर वज्रं शरैर्मदीयैः कतमः सुरारिः।
बिभेतु मोघीकृतबाहुवीर्यःस्त्रीभ्योऽपि कोपस्फुरिताऽधराभ्यः।।9।।
तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा।
कूर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये।।10।।
अथोरुदेशादवतार्य पादमाक्रान्तिसंभावितपादपीठम्।
संकल्पितार्थे विवृतात्मशक्तिमाखण्डलः काममिदं बभाषे।।11।।
सर्वं सखे त्वय्युपपन्नमेतदुभे ममास्त्रे कुलिशं भवाँश्च।
वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठं त्वं सर्वतोगामि च साधकं च।।12।।
अवैमि ते सारमतः खलु त्वां कार्ये गुरुण्यात्मसमं नियोक्ष्ये।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः।।13।।
आशंसता बाणगतिं वृषाङ्के कार्यं त्वया नः प्रतिपन्नकल्पम्।
निबोध यज्ञांशभुजामिदानीमुच्चैर्द्विषामीप्सितमेतदेव।।14।।

हे कामी! ऐसी कौन सी स्त्री है, जो आपका संभोग न पाने पर क्रोध करके आपसे इतनी रूठी बैठी है कि पैरों पर गिरकर मनाने पर भी अभी तक नहीं मानी है। मैं उसके मन में ऐसा पछतावा उत्पन्न करता हूँ कि वह अपने आप आकर लाल कोंपलों के ठण्डे बिछौने पर लेट जायगी।।8।। हे वीर! आप चिन्ता छोड़कर अपने वज्र को भी विश्राम कर लेने दें। मुझे बताइए वह कौन-सा दैत्य है, जो मेरे बाणों की मार से ऐसा शक्तिहीन हो जाना चाहता है कि क्रोध से काँपते हुए ओठों वाली नारी तक उसे डरा दें।।9।। आपकी कृपा हो तो मैं केवल वसन्त को अपने साथ लेकर अपने फूल के बाणों से ही पिनाक धारण करने वाले स्वयं महादेव जी के छक्के छुड़ा दूँ, फिर और दूसरे धनुषधारियों की तो गिनती ही क्या।।10।। यह बात सुनकर इन्द्र को कुछ ढाढस हुआ और उन्होंने अपने पैर पाद-पीठिका पर रखे और जिस कामदेव ने उनके सोचे हुए काम में अपने आप इतना उत्साह दिखाया था, उससे बोले–।।11।। हे मित्र! तुम सब कुछ कर सकते हो; क्योंकि तुम और वज्र, ये ही तो मेरे दो अस्त्र हैं। पर इनमें से वज्र की धार तो शत्रुओं की तपस्या ने उतार दी है। अब तुम्हीं ऐसे बच रहे हो जो बेरोक-टोक सभी ओर जा भी सकते हैं और हमारा काम भी कर सकते हो।।12।। मैं तुम्हारी शक्ति भली-भाँति जानता हूँ, इसलिये मैं तुम्हें अपने जैसा मानकर इस बड़े काम में लगाना चाहता हूँ। जानते हो, प्रलय होने पर अपने सोने के लिये भगवान ने शेष को ही अपनी शय्या क्यों बनाया था? क्योंकि वे देख चुके थे कि शेषनाग जब पृथ्वी को धारण कर सकते हैं तो मेरा बोझ भी सह लेंगे।।13।। अभी-अभी तुमने कहा है कि हम अपने बाणों से शंकर जी को भी वश में कर सकते हैं। इसलिये एक प्रकार से तुमने काम करने का बीड़ा उठा लिया है। इसलिये समझ लो कि बलवान शत्रु से सताए हुए और डरे हुए देवता तुमसे यही काम कराना चाहते हैं।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमी हि वीर्यप्रभवं भवस्य जयाय सेनान्यमुशन्ति देवाः।
स च त्वदेकेषुनिपातसाध्यो ब्रह्माङ्गभूर्ब्रह्मणि योजितात्मा।। 15।।
तस्मै हिमाद्रेः प्रयतां तनूजां यतात्मने रोचयितुं यतस्व।
योषित्सु तद्वीर्यनिषेकभूमिः सैव क्षमेत्यात्मभुवोपदिष्टम्।। 16।।
गुरोर्नियोगाच्च नगेन्द्रकन्या स्थाणुं तपस्यन्तमधित्यकायाम्।
अन्वास्त इत्यप्सरसां मुखेभ्यः श्रुतं मया मत्प्रणिधिः सवर्गः।। 17।।
तद्गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यमर्थोऽयमर्थान्तरभाव्य एव।
अपेक्षते प्रत्ययमुत्तमं त्वां बीजांकुरः प्रागुदयादिवाम्भः।। 18।।
अस्मिन्सुराणां विजयाभ्युपाये तवैव नामास्त्रगतिः कृती त्वम्।
अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म।। 19।।
सुराः समभ्यर्थयितार एते कार्यं त्रयाणामपि विष्टपानाम्।
चापेन ते कर्म न चातिहिंस्रमहो बतासि स्पृहणीयवीर्यः।। 20।।
मधुश्च ते मन्मथ साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव।
समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य।। 21।।

ये देवता लोग चाहते हैं कि शत्रु को जीतने के लिये शिव जी के वीर्य से हमारा सेनापति उत्पन्न हो। इसलिये मन्त्र के बल से ब्रह्म में ध्यान लगाए हुए महादेवी जी की समाधि तुम्हीं अपने एक बाण से तोड़ सकते हो।।15।। अब तुम ऐसा यत्न करो कि समाधि में बैठे हुए महादेव जी के मन में हिमालय-कन्या पार्वती के लिये प्रेम उत्पन्न हो जाय, क्योंकि ब्रह्मा जी ने स्वयं यह बात बताई है कि स्त्रियों में वे ही एक ऐसी हैं जो शिव जी का वीर्य धारण कर सकती हैं।।16।। गुप्तचर का काम करने वाली अपनी अप्सराओं के मुँह से हमने सुना है कि पार्वती जी अपने पिता की आज्ञा से हिमालय पहाड़ पर तप करते हुए महादेव जी की सेवा कर रही हैं।।17।। इसलिये तुम जाओ और देवताओं का यह काम कर डालो; क्योंकि इस काम में बस एक कारण चाहिए था। जैसे बीज को अंकुर बनने के लिये जल की आवश्यकता पड़ती है वैसे ही यह काम भी तुम्हारी सहायता के भरोसे ही अटका हुआ है।।18।। देवताओं की जीत तुम्हारे ही बाणों से हो सकती है। तुम सचमुच बड़े भाग्यशाली हो; क्योंकि संसार में ऐसा असाधारण काम करने से ही यश मिलता है, जिसे कोई दूसरा कर न सके।।19।। और फिर एक तो सब देवता लोग तुम से इस काम के लिये भीख माँग रहे हैं, दूसरे यह कार्य तीनों ही लोक वालों का है और तीसरी बात यह है कि यद्यपि इस काम में तुम्हारा धनुष काम आयेगा, पर इससे किसी की हिंसा भी नहीं होगी। आज तुम्हें देखकर सबके मन में यह इच्छा जाग उठी है कि हमें भी तुम्हारी जैसी ही शक्ति मिल जाय।।20।। हे कामदेव! हमने तुम्हारी सहायता के लिये वसन्त का नाम इसलिये नहीं लिया कि वह तो तुम्हारा साथी है ही; क्योंकि भला पवन को कहीं यह थोड़े ही कहा जाता है कि तुम जा कर आग की सहायता करो। यह तो आग को भड़काता ही है चाहे कोई कहे या न कहे।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथेति शेषामिव भर्तुराज्ञामादाय मूर्ध्ना मदनः प्रतस्थे।
ऐरावतास्फालनकर्कशेन हस्तेन पस्पर्श तदङ्गमिन्द्रः।।22।।
स माधवेनाभिमतेन सख्या रत्या च साशङ्कमनुप्रयातः।
अङ्गव्ययप्रार्थितकार्यसिद्धिः स्थाण्वाश्रमं हैमवतं जगाम।।23।।
तस्मिन्वने संयमिनां मुनीनां तपः समाधेः प्रतिकूलवर्ती।
संकल्पयोनेरभिमानभूतमात्मानमाधाय मधुर्जजृम्भे।।24।।
कुवेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य।
दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीकनिःश्वासमिवोत्ससर्ज।।25।।
असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिञ्जितनूपुरेण।।26।।
सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतबाणे।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्नामाक्षराणीव मनोभवस्य।।27।।
वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजःप्रवृत्तिः।।28।।
बालेन्दुवक्त्राण्यविकासभावाद्बभुः पलाशान्यतिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्।।29।।

कामदेव बोला—'जैसी आज्ञा'। जैसे कोई उपहार में दी हुई माला लेकर सिर पर चढ़ा लेता है, वैसे ही कामदेव ने इन्द्र की आज्ञा सिर चढ़ा ली। जब वह चलने लगा तब इन्द्र ने उसकी पीठ पर अपना वह हाथ फेरकर उसे उत्साहित किया, जो ऐरावत को अंकुश लगाते-लगाते कड़ा पड़ गया था।।22।। उसने निश्चय कर लिया कि प्राण देकर भी मैं देवताओं का काम करूँगा। फिर वह वसन्त को साथ लेकर उधर चल दिया, जिधर शिव जी बैठे तपस्या कर रहे थे। इनके पीछे-पीछे बेचारी रति भी मन में डरती हुई चली जा रही थी कि आज न जाने क्या होने वाला है।।23।। उस वन में पहुँचकर मुनियों के तप की समाधि को डिगाने वाला और कामदेव का सहायक बनने का घमण्ड करने वाला वसन्त अपना पूरा रूप खोलकर चारों ओर छा गया।।24।। वसन्त के आते ही असमय में ही सूर्य भी दक्षिणायन से उत्तरायण चले गए। उस समय दक्षिण से बहता हुआ मलयपवन ऐसा प्रतीत होता था मानो अपने पति सूर्य के चले जाने पर दक्षिण दिशा दुखी होकर अपने मुँह से लम्बी-लम्बी उसाँसें छोड़ रही हो।।25।। अशोक का वृक्ष भी तत्काल नीचे से ऊपर तक फूल-पत्तों से लद गया और झन-झनाते बिछुओं वाली सुन्दरियों के चरणों के प्रहार की बाट भी उसने नहीं देखी।।26।। सुन्दर वसन्त ने नई कोंपलों के पंख लगाकर आम की मंजरियों के बाण तैयार कर दिए। उन पर उसने जो भौंरे बैठाए वे ऐसे लगते थे, मानो उन बाणों पर कामदेव नाम के अक्षर लिखे हुए हों।।27।। वहाँ फूले हुए कर्णिकार देखने में तो सुन्दर थे पर गन्ध न होने के कारण मन को भाते न थे। ब्रह्मा की कुछ ऐसी आदत ही पड़ गई है कि वे किसी भी वस्तु में पूरे गुण भरते ही नहीं।।28।। वसन्त के आते ही द्वितीया के चन्द्रमा के समान टेढ़े, अत्यन्त लाल-लाल अधखिले टेसू के फूल वन भूमि में फैले हुए ऐसे लग रहे थे, मानो वसन्त ने वनस्थलियों के साथ विहार करके उन पर अपने नखों के नये चिह्न बना दिये हों।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य।
रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार।।30।।
मृगाः प्रियालद्रुममञ्जरीणां रजःकणैर्विघ्नितदृष्टिपाताः
मदोद्धताः प्रत्यनिलाः विचेरुर्वनस्थलीर्मर्मरपत्रमोक्षाः।।31।।
चूतांकुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज।
मनस्विनीमानविघातदक्षं तदेव जातं वचनं स्मरस्य।।32।।
हिमव्यपायाद्विशदाधराणमापाण्डुरीभूतमुखच्छवीनाम्।
स्वेदोद्गमः किम्पुरुषाङ्गनानां चक्रे पदं पत्रविशेषकेषु।।33।।
तपस्विनः स्थाणुवनौकसस्तामाकालिकीं वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम्।
प्रयत्नसंस्तम्भितविक्रियाणां कथंचिदीशा मनसां बभूवुः।।34।।
तं देशमारोपितपुष्पचापे रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने।
काष्ठांगतस्नेहरसानुविद्धं द्वन्द्वानि भावं क्रियया विवव्रुः।।35।।
मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्त्तमानः।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः।।36।।
ददौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः।
अर्द्धोपभुक्तेन बिसेन जायां संभावयामास रथाङ्गनामा।।37।।

वहाँ उड़ते हुए भौंरे खिले हुए तिलक के फूल और प्रातःकाल के सूर्य की लाली से चमकने वाली कोंपलें ऐसी लगती थीं, मानो वसन्त की शोभा-रूपी स्त्री ने भौंरे-रूपी आँजन से अपना मुँह सजाकर, अपने माथे पर तिलक के फूल का तिलक लगाकर और प्रातःकाल के सूर्य की कोमल लाली से चमकने वाली आम की कोंपलों से अपने ओठ रंग लिए हों।।30।। आँखों में प्रियाल के फूलों के पराग के उड़-उड़कर पड़ने से जो मतवाले हरिण भली-भाँति देख नहीं पा रहे थे वे पवन से झड़े हुए सूखे पत्तों से मर्मर करती हुई वन की भूमि पर इधर-उधर दौड़ते फिर रहे थे।।31।। आम की मञ्जरियाँ खा लेने से जिस कोकिल का कंठ मीठा हो गया था वह जब मीठे स्वर से कूँक उठता था, तब उसे सुन-सुनकर रूठी हुई स्त्रियाँ अपना रूठना भी भूल जाती थीं।।32।। जाड़े के बीतने और गर्मी आ जाने से कोमल ओठों और सुन्दर गोरे मुखों वाली किन्नरियों के मुख पर की हुई चित्रकारी पर पसीना आने लगा।।33।। महादेव जी के साथ उस वन में रहने वाले तपस्वी लोगों ने असमय में वसन्त को आया हुआ देखकर अपना मन विकारों से हटाकर बड़ी कठिनाई से रोक रखा था।।34।। फिर जब अपने फूल के धनुष पर बाण चढ़ाकर रति को साथ लेकर कामदेव आया तब चर और अचरों की अत्यन्त बढ़ी हुई सम्भोग की इच्छा उनमें दिखाई देने लगी।।35।। भौंरा अपनी प्यारी भौंरी के साथ एक ही फूल की कटोरी में मकरन्द पीने लगा। काला हिरण अपनी हिरणी को सींग से खुजलाने लगा जो उसके स्पर्श का सुख लेती हुई आँख मूँद कर बैठी थी।।36।। हथिनी बड़े प्रेम से कमल के पराग में बसा हुआ सुगन्धित जल अपनी सूँड से निकालकर अपने हाथी को पिलाने लगी और चकवा भी आधी कुतरी हुई कमल की नाल लेकर चकवी को भेंट करने लगा।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः किंचित्समुच्छ्वा वासितपत्रलेखम्।
पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि प्रियामुखं किम्पुरुषश्चुचुम्बे।। 38।।
पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि।। 39।।
श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्हरः प्रसंख्यानपरो बभूव।
आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति।। 40।।
लतागृहद्वारगतोऽथ नन्दी वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्रः।
मुखार्पितैकाङ्गुलिसंज्ञयैव मा चापलायेति गणान्व्यनैषीत्।। 41।।
निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं मूकाण्डजं शान्तमृगप्रचारम्।
तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे।। 42।।
दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे।
प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं ध्यानास्पदं भूतपतेर्विवेश।। 43।।
स देवदारुद्रुमवेदिकायां शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम्।
आसीनमासन्नशरीरपातस्त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श।। 44।।
पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायतं सन्नमितोभयांसम्।
उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात्प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये।। 45।।

किन्नर लोग गीतों के बीच में ही अपनी प्रियाओं के वे मुख चूमने लगे, जिन पर थकावट के कारण पसीना छा गया था, जिन पर की हुई चित्रकारी लिप गई थी और जिनके नेत्र फूलों की मदिरा से मतवाले होने के कारण बड़े लुभावने लग रहे थे।।38।। वृक्ष भी अपनी झुकी हुई डालियों को फैला-फैलाकर उन लताओं से लिपटने लगे जिनके बड़े-बड़े फूलों के गुच्छों के रूप में स्तन लटक रहे थे और पत्तों के रूप में जिनके सुन्दर ओठ हिल रहे थे।।39।। इसी बीच अप्सराओं ने भी अपना नाच-गाना आरम्भ कर दिया; परन्तु महादेव जी टस से मस न हुए और अपने ध्यान में ही मग्न रहे; क्योंकि जो लोग अपना मन वश में कर लेते हैं, उनकी समाधि क्या कोई छुड़ा सकता है।।40।। उस समय नन्दी अपने बाएँ हाथ में सोने का डंडा लिए हुए लता मंडप के द्वार पर बैठा मुँह पर उँगली रखकर सब गणों को संकेत से मना कर रहा था कि तुम लोग नटखटपन छोड़कर चुपचाप बैठो।।41।। उसकी आज्ञा पाते ही वृक्षों ने हिलना बन्द कर दिया, भौंरों ने गूँजना बन्द कर दिया, सब जीव-जन्तु चुप हो गए और पशु भी जहाँ के तहाँ खड़े रह गए, यहाँ तक कि सारा वन उस एक ही संकेत में ऐसा लगने लगा मानो चित्र में खींचा हुआ हो।।42।। जैसे यात्रा करने के समय लोग सामने के शुक्र की दृष्टि बचाते हैं वैसे ही कामदेव भी नन्दी की आँखें बचाकर नमेरु की शाखाओं से घिरे हुए उस स्थान में जा घुसा जहाँ महादेव जी समाधि लगाए बैठे थे।।43।। थोड़ी ही देर में मृत्यु के मुँह में पहुँचने वाला वह कामदेव देखता क्या है कि देवदारु के पेड़ की जड़ में पत्थर की पाटियों से बनी हुई चौकी पर बाघम्बर बिछा हुआ है और उस पर महादेव जी समाधि लगाए बैठे हुए हैं।।44।। उन्होंने वीरासन लगा रखा है, अपना धड़ सीधा और अचल कर लिया है और अपने दोनों कन्धे झुकाकर अपनी गोद में कमल के समान दोनों हथेलियों को ऊपर किए वे बिना हिले-डुले बैठे हैं।।45।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजंगमोन्नद्धजटाकलापं कर्णावसक्तद्विगुणाक्षसूत्रम् ।
कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम् ।। 46 ।।
किंचित्प्रकाशस्तिमितोग्रतारैर्भ्रूविक्रियायां विरतप्रसङ्गैः ।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैर्लक्ष्यीकृतघ्राणमधोमयूखैः ।। 47 ।।
अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुत्तरंगम् ।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निर्वातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ।। 48 ।।
कपालनेत्रान्तरलब्धमार्गैर्ज्योतिःप्ररोहैरुदितैः शिरस्तः ।
मृणालसूत्राधिकसौकुमार्यां बालस्य लक्ष्मीं ग्लपयन्तमिन्दोः ।। 49 ।।
मनोनवद्वारनिषिद्धवृत्ति हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम् ।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्तमात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ।। 50 ।।
स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्रं पश्यन्नदूरान्मनसाप्यधृष्यम् ।
नालक्षयत्साध्वससन्नहस्तः स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तान् ।। 51 ।।
निर्वाणभूयिष्ठमथास्य वीर्यं संधुक्षयन्तीव वपुर्गुणेन ।
अनुप्रयाता वनदेवताभ्यामदृश्यत स्थावरराजकन्या ।। 52 ।।
अशोकनिर्भर्त्सितपद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् ।
मुक्ताकलापीकृतसिन्दुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती ।। 53 ।।

साँपों से उनकी जटा बँधी हुई है। दाहिने कान पर दुहरी रुद्राक्ष की माला टँगी है और गले की नीली चमक से और भी अधिक साँवली दिखाई पड़ने वाली मृगछाला उनके शरीर पर गाँठ मारकर कसी हुई हैं। ।46।। भौंहे तानकर कुछ-कुछ प्रकाश देने वाली, निश्चल, उग्र तारों वाली और अपनी किरणें नीचे डालने वाली आँखों से नाक के अगले भाग पर दृष्टि जमाए वे बैठे हुए हैं। ।47।। शरीर के भीतर चलने वाले सभी पवनों को रोक कर वे ऐसे अचल हुए बैठे हैं, जैसे न बरसने वाला बादल हो, बिना लहरों वाला निश्चल सरोवर हो या पवन-रहित स्थान में खड़ी लौ वाला दीपक हो। ।48।। उस समय उनके सिर और नेत्रों से जो तेज निकल रहा था, उसके आगे कमल के तन्तु से भी अधिक कोमल बाल-चन्द्रमा की शोभा भी कुछ नहीं थी। ।49।। वहाँ समाधि में बैठे हुए शंकर जी अपने उस अविनाशी आत्मा की ज्योति को अपने भीतर देख रहे थे, जिसे ज्ञानी लोग अपनी नवों इन्द्रियों के द्वार रोक कर मन को समाधि से वश में करके हृदय में रखकर जान पाते हैं। ।50।। तीन नेत्र वाले शंकर जी का जो रूप, बुद्धि और मन से भी परे था उसी रूप को इतने पास से देखकर कामदेव के हाथ डर के मारे ऐसे ढीले पड़ गए कि वह यह भी न जान सका कि मेरे हाथ से धनुष बाण छूटकर कब गिर गए।। 51 ।। डर के मारे कामदेव की शक्ति तो नष्ट हो गई थी; पर जब उसने मालिनी सौर विजया नाम की वन-देवियों के साथ अत्यन्त सुन्दरी पार्वती का मनोहर रूप देखा तब मानो उसकी खोई हुई शक्ति फिर जाग उठी। ।52।। उस समय पार्वती जी के शरीर पर लाल मणि को लज्जित करने वाले अशोक के पत्तों के, सोने की चमक को घटाने वाली कर्णिकार के फूलों की और मोतियों की माला के समान उज्ज्वल सिन्धुवार के वासन्ती फूलों के आभूषण सजे हुए थे। ।53।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम्।
पर्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव।। 54।।
स्रस्तां नितम्बादवलम्बमाना पुनः पुनः केसरदामकाञ्चीम्।
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण मौर्वीद्वितीयामिव कार्मुकस्य।। 55।।
सुगन्धिनिश्वासविवृद्धतृष्णं बिम्बाधरासन्नचरं द्विरेफम्।
प्रतिक्षणं संभ्रमलोलदृष्टिर्लीलारविन्देन निवारयन्ती।। 56।।
तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यां रतेरपि ह्रीपदमादधानाम्।
जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचापः स्वकार्यसिद्धिं पुनराशशंस।। 57।।
भविष्यतः पत्युरुमा च शंभोः समाससाद प्रतिहारभूमिम्।
योगात्स चान्तः परमात्मसंज्ञं दृष्ट्वा परं ज्योतिरुपारराम।। 58।।
ततो भुजंगाधिपतेः फणाग्रैरधः कथंचिद्धृतभूमिभागः।
शनैः कृतप्राणविमुक्तिरीशः पर्यङ्कबन्धं निविडं बिभेद।। 59।।
तस्मै शशंस प्रणिपत्य नन्दी शुश्रूषया शैलसुतामुपेताम्।
प्रवेशयामास च भर्तुरेनां भ्रूक्षेपमात्रानुमतप्रवेशाम्।। 60।।

स्तनों के बोझ से झुके हुए शरीर पर प्रातःकाल के सूर्य के समान लाल कपड़े पहने हुए वे ऐसी लग रही थीं, जैसे फूलों के गुच्छे के भार से झुकी हुई नई लाल-लाल कोंपलों वाली चलती-फिरती लता हो।।54।। उनकी कमर में पड़ी हुई केसर के फूलों की मेखला (करधनी) जब-जब नितम्ब से नीचे खिसक आती थी तब-तब वे उसे अपने हाथ में पकड़कर ऊपर सरका लेती थीं। वह मेखला ऐसी लगती थी मानो कहाँ क्या पहनना चाहिए इस बात को जानने वाले कामदेव ने अपने हाथ से उनकी कमर में अपने धुनष की दूसरी डोरी पहना दी हो।।55।। कामदेव ने देखा कि उनकी सुगन्धित साँस पर ललचाते हुए भौंरे जब-जब उनके लाल-लाल ओठों के पास आते हैं तब-तब वे घबराहट से आँखें नचाती हुई छोटे-छोटे कमलों से मारकर उन्हें भगा देती हैं।।56।। कामदेव ने जब रति को भी लजाने वाली, अधिक सुन्दर अंगों वाली पार्वती जी को देखा तब उसके मन में जितेन्द्रिय महादेव जी को वश में करने की आशा फिर हरी हो उठी।।57।। इसी बीच पार्वती जी भी अपने भावी पति शंकर जी के आश्रम के द्वार पर आ पहुँची। ठीक उसी समय महादेव जी ने भी परमात्मा की परम ज्योति का दर्शन करके अपनी समाधि तोड़ी।।58।। आँखें खोलकर उन्होंने धीरे-धीरे साँस लेना प्रारम्भ कर दिया और अपनी कठोर पलथी भी खोल दी। इसीलिये उनका वह शरीर जो समाधि के समय बहुत हल्का हो गया था अब इतना भारी हो गया कि उनके बैठने की भूमि को शेष भगवान बड़ी कठिनाई से अपने फणों पर सँभाल पाए।।59।। उनकी समाधि खुली देखकर नन्दी ने जाकर उन्हें प्रणाम करके कहा कि आपकी सेवा करने के लिये पार्वती जी आई हुई हैं। महादेव जी ने अपनी भौंहों से उन्हें बुलाने का संकेत किया और पार्वती जी को नन्दी भीतर ले आए।।60।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याः सखीभ्यां प्रणिपातपूर्वं स्वहस्तलूनः शिशिरात्ययस्य।
व्यकीर्यत त्र्यम्बकपादमूले पुष्पोच्चयः पल्लवभङ्गभिन्नः।। 61।।

उमापि नीलालकमध्यशोभि विस्रंसयन्ती नवकर्णिकारम्।
चकार कर्णच्युतपल्लवेन मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय।। 62।।

अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन।
न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्।। 63।।

कामस्तु बाणावसरं प्रतीक्ष्य पतङ्गवद्वह्निमुखं विविक्षुः।
उमासमक्षं हरबद्धलक्ष्यः शरासनज्यां मुहुराममर्श।। 64।।

अथोपनिन्ये गिरिशाय गौरी तपस्विने ताम्ररुचा करेण।
विशोषितां भानुमतो मयूखैर्मन्दाकिनीपुष्करबीजमालाम्।। 65।।

प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च।
संमोहनं नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम्।। 66।।

हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्वफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।। 67।।

पहले पार्वती जी की दोनों सखियों ने शंकर जी को प्रणाम किया और फिर अपने हाथ से चुने हुए, पत्तों के टुकड़े मिले हुए वासन्ती फूलों का ढेर उनके पैरों पर चढ़ा दिया।।61।। पार्वती जी ने भी शिव जी को प्रणाम करने के लिये ज्योंही अपना सिर झुकाया, त्यों ही उनके काले-काले बालों में गुँथे हुए कर्णिकार के फूल और कान पर रखे हुए पत्ते पृथ्वी पर गिर पड़े।।62।। प्रणाम करती हुई पार्वती जी को भगवान् शंकर ने यह सत्य आशीर्वाद दिया कि तुम्हें ऐसा पति मिले जो किसी भी स्त्री को न मिल सका हो। ठीक ही है, ऐसे ऐश्वर्यशालियों की वाणी कभी झूठी थोड़े ही होती है।।63।। जैसे कोई पतिंगा आग में कूदने को उतावला हो, वैसे ही कामदेव ने भी सोचा कि बाण छोड़ने का यह ठीक अवसर है। अतः वह पार्वती जी के आगे बैठे हुए शिव जी पर ताक-ताककर धनुष की डोरी खींचने ही लगा।।64।। उधर पार्वती जी ने प्रणाम करके समाधि से जागे हुए शंकर जी के गले में धूप में सूखाये हुए मन्दाकिनी के कमल के बीजों की माला अपने लाल-लाल हाथों से पहना दी।।65।। शिव जी ने भक्तपर प्रेम करने के नाते पार्वती जी की वह माला पहनी ही थी कि कामदेव ने भी सम्मोहन नाम का अचूक बाण अपने धनुष पर चढ़ा लिया।।66।। जैसे चन्द्रमा के निकलने पर समुद्र में ज्वार आ जाता है वैसे ही पार्वतीजी को देखकर महादेव जी के हृदय में भी कुछ हलचल सी होने लगी और वे पार्वतीजी के बिम्बा के समान लाल-लाल ओठों पर अपनी ललचाई आँखें डालने लगे।।67।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन।।68।।

अथेन्द्रियक्षोभमयुग्मनेत्रः पुनर्वशित्वाद्बलवन्निगृह्य।
हेतुं स्वचेतोविकृतेर्दिदृक्षुर्दिशामुपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम्।।69।।

स दक्षिणापाङ्गनिविष्टमुष्टिं नतांसमाकुञ्चितसव्यपादम्।
ददर्श चक्रीकृतचारुचापं प्रहर्त्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम्।।70।।

तपःपरामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य।
स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णः कृशानुः किल निष्पपात।।71।।

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार।।72।।

तीव्राभिषङ्गप्रभवेण वृत्तिं मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम्।
अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव।।73।।

तमाशु विघ्नं तपसस्तपस्वी वनस्पतिं वज्र इवावभज्य।
स्त्रीसंनिकर्षं परिहर्तुमिच्छन्नन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः।।74।।

पार्वती जी भी फले हुए नये कदंब के समान पुलकित अंगों से प्रेम प्रदर्शित करती हुई, लजीली आँखों से अपना अत्यन्त सुन्दर मुख तिरछा करके खड़ी रह गईं।।68।। पर महादेव जी तत्काल सँभल गए। संयमी होने के कारण उन्होंने तत्काल इन्द्रियों की चंचलता को बलपूर्वक रोक लिया और यह देखने के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाई कि मेरे मन में यह विकार लाया कौन।।69।। शंकर जी देखते क्या हैं कि अपना धनुष खींचकर गोल किये हुए, दाहिनी आँख की कोर तक चुटकी से डोरी खींचे हुए, दाहिना कन्धा झुकाकर बाएँ पैर का घुटना मोड़े हुए कामदेव मुझपर बाण चलाने ही वाला है।।70।। अपने तप में बाधा डालने वाले कामदेव पर महादेव को इतना क्रोध आया कि उनकी चढ़ी भौंहों वाले मुख की ओर देखना कठिन हो गया। झट उनका वह तीसरा नेत्र खुला और उसमें से सहसा जलती हुई आग की लपटें निकल पड़ीं।।71।। यह देखते ही एक साथ सब देवता आकाश में चिल्ला उठे हैं, रोकिए रोकिए अपने क्रोध को प्रभो! पर इतनी देर में तो महादेव की आँखों से निकलने वाली उस आग ने कामदेव को जलाकर राख कर डाला।।72।। अपने सिर पर आई हुई इस भारी विपत्ति को देखकर कामदेव की स्त्री तो मूर्छित होकर गिर पड़ी, उसकी इन्द्रियाँ स्तब्ध हो गई और ऐसा जान पड़ा मानो भगवान् ने कृपा करके उतनी देर के लिये पति की मृत्यु का ज्ञान हर कर उसे दुःख से बचाए रखा।।73।। जैसे बिजली किसी पेड़ पर गिरकर उसे तोड़ डालती है, उसी प्रकार अपनी तपस्या में बाधा डालने वाले कामदेव को जलाकर शिव जी ने निश्चय किया कि स्त्रियों का साथ छोड़ देना चाहिए। इसलिए तपस्वी महादेव जी तत्काल अपने भूतों-प्रेतों को साथ लेकर अन्तर्धान हो गए।।74।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैलात्मजापि पितुरुच्छिरसोऽभिलाषं व्यर्थं समर्थ्य ललितं वपुरात्मनश्च।
सख्योः समक्षमिति चाधिकजातलज्जा शून्या जगाम भवनाभिमुखी कथंचित्।। 75।।
सपदि मुकुलिताक्षीं रुद्रसंरम्भभीत्या दुहितरमनुकम्प्यामद्रिरादाय दोर्भ्याम्।
सुरगज इव बिभ्रत्पद्मिनीं दन्तलग्नां प्रतिपथगतिरासीद्वेगदीर्घीकृताङ्गः।। 76।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
मदनदहनो नाम तृतीयः सर्गः।।

यह देखकर पार्वती जी को इस बात की बड़ी लज्जा हुई कि आज सखियों के आगे मेरे ऊँचे सिर वाले पिता का मनोरथ और मेरी सुन्दरता अकारथ हो गई और वे बड़े उदास मन से किसी प्रकार घर लौट चलीं।।75।। तत्काल हिमालय भी वहाँ पहुँचे और जैसे ऐरावत अपने दाँतों पर कमलिनी को उठा ले, वैसे ही महादेव जी के क्रोध से डरकर आँख बन्द करके जाती हुई अपनी दुखी कन्या को हिमालय ने गोद में उठा लिया और वेग से सीधा शरीर किए हुए जिधर से आए थे उधर ही लौट गए।।76।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव नाम के
महाकाव्यों में 'मदन-दहन' नाम का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थः सर्गः ।।

अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विबोधिता।
विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधव्यमसह्यवेदनम्।। 1।।
अवधानपरे चकार सा प्रलयान्तोन्मिषिते विलोचने।
न विवेद तयोरतृप्तयोः प्रियमत्यन्तविलुप्तदर्शनम्।। 2।।
अयि जीवितनाथ जीवसीत्यभिधायोत्थितया तया पुरः।
ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम्।। 3।।
अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिङ्गनधूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम्।। 4।।
उपमानमभूद्विलासिनां करणं यत्तव कान्तिमत्तया।
तदिदं गतमीदृशीं दशां न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः।। 5।।
क्व नु मां त्वदधीनजीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृदः।
नलिनीं क्षतसेतुबन्धनो जलसंघात इवासि विद्रुतः।। 6।।
कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम्।
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते।। 7।।

चौथा सर्ग

महादेव जी के अन्तर्धान हो जाने पर और पार्वती जी के चले जाने पर अकेली काठ के समान मूर्छित पड़ी हुई कामदेव की पतिव्रता पत्नी को ब्रह्मा ने नये विधवापन का दुःख सहने के लिये जगा दिया।। 1।। मूर्छा समाप्त होते ही वह चारों ओर आँखें फाड़-फाड़क़र देखने लगी, पर वह जान ही नहीं पाई कि जिसे सदा अपने आगे देखते रहने पर भी आँखें अघाती नहीं थी, वही प्यारा सदा के लिये आँखों से कब ओझल हो गया।। 2।। हे प्राणनाथ! क्या तुम जीवित हो—यह कहती हुई ज्योंही वह खड़ी हुई, तो देखती क्या है कि महादेव जी के क्रोध से जली हुई पुरुष आकार की एक राख की ढेर सामने पृथ्वी पर पड़ी हुई है।। 3।। उस राख की ढेर को देखते ही रति बेहाल हो उठी और मिट्टी में लोट-लोट कर, बाल बिखेरकर ऐसी बिलख-बिलखकर रोने लगी, मानो समूची वन-भूमि ही उसके साथ-साथ रो रही हो।। 4।। वह रो-रोकर कहती जा रही थी—हे प्यारे! आज तक विलासियों के शरीर की तुलना तुम्हारे जिस सुन्दर शरीर से की जाती थी, उसे इस दशा में देखकर भी मेरी छाती फट नहीं गई। सचमुच स्त्रियों का हृदय बड़ा कठोर होता है।। 5।। जैसे पानी का बहाव बाँध को तोड़कर जल में बहने वाली कमलिनी को वहीं छोड़कर झट से निकल जाता है, वैसे ही तुम्हारे हाथ में अपने प्राण सौंपने वाली मुझ अभागिन से नाता तोड़कर तुम इतनी शीघ्रता से रूठकर कहाँ चल दिए।। 6।। प्यारे! तुमने कभी मेरी अनचाही बात नहीं की और मैंने भी कभी तुम्हारी बात नहीं टाली। फिर बिना बात के ही मुझ बिलखती हुई को तुम दर्शन क्यों नहीं दे रहे हो।। 7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरसि स्मर मेखलागुणैरुत गोत्रस्खलितेषु बन्धनम्।
च्युतकेशरदूषितेक्षणान्यवतंसोत्पलताडनानि वा।।8।।
हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचारपदं न चेदिदं त्वमनङ्गः कथमक्षता रतिः।।9।।
परलोकनवप्रवासिनः प्रतिपत्स्ये पदवीमहं तव।
विधिना जन एष वञ्चितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखम्।।10।।
रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः।
वसतिं प्रिय कामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः।।11।।
नयनान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे।
असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विडम्बना।।12।।
अवगम्य कथीकृतं वपुः प्रियबन्धोस्तव निष्फलोदयः।
बहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुतां दुःखमनङ्ग मोक्ष्यति।।13।।
हरितारुणचारुबन्धनः कलपुँस्कोकिलशब्दसूचितः।
वद संप्रति कस्य बाणतां नवचूतप्रसवो गमिष्यति।।14।।

हे कामदेव! पहले एक बार जब भूल से तुमने अपनी किसी दूसरी प्यारी का नाम ले डाला था, उस पर मैंने जो तुम्हें अपनी मेखला से बाँध दिया था, क्या वही स्मरण करके तुम मुझसे रूठ बैठे हो? या जब मैंने अपने कान में पहने हुए कमल से तुम्हें पीटा था उस समय उसका पराग पड़ जाने से जो तुम्हारी आँखें दुखने लगी थीं, क्या उसको स्मरण करके मुझ से रूठ गए हो।।8।। तुम मुझ से जो यह मीठी-मीठी बात बनाया करते थे कि तुम मेरे हृदय में सदा रहती हो, वह सब मेरी समझ में झूठ थीं, क्योंकि यदि वह बात केवल मेरा मन रखने भर को न होती तो तुम्हारे राख हो जाने पर तुम्हारी यह रति भला कैसे जीती बची रह जाती।।9।। तुम अभी-अभी स्वर्ग को गए हो, मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे वहीं चली आ रही हूँ। ब्रह्मा ने मुझे मूर्छित करके बड़ा धोखा दे दिया, नहीं तो मैं उसी समय तुम्हारे साथ चल देती; क्योंकि मेरा ही नहीं वरन् सारे संसार का सुख तुम अपने साथ लिए चले गए हो।।10।। बताओ प्यारे! अब वर्षा के दिनों में रात की घनी अँधियारी से भरे डरावने नगर के मार्ग में बिजली की कड़कड़ाहट से डर उठने वाली कामिनियों को उनके प्यारों के घर तुम्हारे बिना कौन पहुँचायेगा।।11।। अपने लाल-लाल नेत्र घुमाती हुई और एक-एक शब्द पर रुक-रुककर बोलती हुई प्रमदाओं का मदिरा पीना अब तुम्हारे न रहने पर भला किस काम का होगा।।12।। हे अनंग! तुम चन्द्रमा के बड़े प्यारे मित्र थे। जब उसे ज्ञात होगा कि तुम्हारा शरीर केवल क़हानी भर रह गया है, तब वह अकारथ उगा हुआ चन्द्रमा शुक्लपक्ष में भी बड़ी कठिनाई से अपना दुबलापन छोड़ पायेगा।।13।। सुन्दर, हरे और लाल रंग में बँधा हुआ और कोयल की मीठी कूक से गूँजता हुआ आम का नया बौर, बताओ अब किसका बाण बना करेगा।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलिपंक्तिरनेकशस्त्वया गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता।
विरुतैः करुणस्वनैरियं गुरुशोकामनुरोदितीव माम्।। 15।।
प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादिश तावदुत्थितः।
रतिदूतिपदेषु कोकिलां मधुरालापनिसर्गपण्डिताम्।। 16।।
शिरसा प्रणिपत्य याचितान्युपगूढानि सवेपथूनि च।
सुरतानि च तानि ते रहः स्मर संस्मृत्य न शान्तिरस्ति मे।। 17।।
रचितं रतिपण्डित त्वया स्वयमङ्गेषु ममेदमार्तवम्।
ध्रियते कुसुमप्रसाधनं तव तच्चारु वपुर्न दृश्यते।। 18।।
विबुधैरसि यस्य दारुणैरसमाप्ते परिकर्मणि स्मृतः।
तमिमं कुरु दक्षिणेतरं चरणं निर्मितरागमेहि मे।। 19।।
अहमेत्य पतङ्गवर्त्मना पुनरङ्काश्रयणी भवामि ते।
चतुरैः सुरकामिनीजनैः प्रिय यावन्न विलोभ्यसे दिवि।। 20।।
मदनेन विनाकृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण त्वामनुयामि यद्यपि।। 21।।
क्रियतां कथमन्त्यमण्डनं परलोकान्तरितस्य ते मया।
सममेव गतोऽस्यतर्कितां गतिमङ्गेन च जीवितेन च।। 22।।

जिन भौरों की पाँतों की तुम अनेक बार अपने धनुष की डोरी बना चुके हो उनकी दुखभरी गुंजार अब ऐसी जान पड़ती है, मानो वे भी मेरे दुःख में बिलखती हुई के साथ-साथ रो रहे हों।।15।। हे काम! तुम अपने इस राख के शरीर को छोड़कर पहले जैसा सुन्दर शरीर धारण करके स्वभाव से ही मधुर बोलने में चतुर इस कोयल को आज्ञा दो कि यह अपनी मधुर कूक से प्रेमियों को मिलने का स्थान बताना आरंभ कर दें।।16।। हे कामदेव! मुझे रूठी हुई को मनाने के लिये जब तुम मेरे पैरों को पड़कर काँपते हुए, मुझे मनाकर गले से लगाया करते थे और फिर मेरे साथ अनेक प्रकार से संभोग किया करते थे, अब उन बातों का स्मरण कर-करके मेरा जी फट जाता है।।17।। हे काम-क्रीड़ाओं में चतुर! तुमने अपने हाथों से मेरा जो वासन्ती शृंगार किया था, वह तो अभी ज्यों का त्यों बना हुआ है, पर तुम्हारा सुन्दर शरीर अब कहीं देखने को नहीं मिल रहा।।18।। अभी थोड़ी देर पहले जब तुम मेरे पैरों में महावर लगाने बैठे थे और केवल दाहिने पाँव में ही लगा पाए थे कि इसी बीच कठोर हृदय वाले देवताओं ने तुम्हें अपने काम के लिये बुला भेजा था। अब आकर मेरे इस बाएँ पैर में भी महावर क्यों नहीं लगा जाते।।19।। हे प्यारे! जब तक स्वर्ग की चतुर अप्सराएँ तुम्हें अपने रूप से लुभायें, उससे पहले ही मैं आग में जल कर तुम्हारी गोद में जा पहुँचती हूँ।।20।। हे रमण! यह तो निश्चय है कि मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आ रही हूँ, फिर भी मुझ पर यह कलंक का टीका तो सदा के लिये लग ही गया कि कामदेव के न रहने पर रति थोड़ी देर तक जीती रह गई।।21।। मुझे इसी बात का शोक है कि तुम अपना शरीर और प्राण दोनों एक साथ लेकर स्वर्ग चले गए अब मेरी समझ में ही नहीं आ रहा है कि तुम्हारे परलोक चले जाने पर शरीर का अंतिम शृंगार कैसे करूँ?।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋजुतां नयतः स्मरामि ते शरमुत्सङ्गनिषण्णधन्वनः।
मधुना सह सस्मितां कथां नयनोपान्तविलोकितं च तत्।। 23।।
क्व नु ते हृदयङ्गमः सखा कुसुमायोजितकार्मुको मधुः।
न खलूग्ररुषा पिनाकिना गमितः सोऽपि सुहृद्गतां गतिम्।। 24।।
अथ तैः परिदेविताक्षरैर्हृदये दिग्धशरैरिवाहतः।
रतिमभ्युपपत्तुमातुरां मधुरात्मानमदर्शयत्पुरः।। 25।।
तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसंबाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते।। 26।।
इति चैनमुवाच दुःखिता सुहृदः पश्य वसन्त किं स्थितम्।
तदिदं कणशो विकीर्यते पवनैर्भस्म कपोतकर्बुरम्।। 27।।
अयि संप्रति देहि दर्शनं स्मर पर्युत्सुक एष माधवः।
दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने।। 28।।
अमुना ननु पार्श्ववर्तिना जगदाज्ञां ससुरासुरं तव।
बिसतन्तुगुणस्य कारितं धनुषः पेलवपुष्पपत्त्रिणः।। 29।।
गत एव न ते निवर्त्तते स सखा दीप इवानिलाहतः।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम्।। 30।।

तुम्हारा वह गोद में धनुष रखकर बाण सीधा करना, बसन्त के साथ हँस-हँसकर बातें करना और बीच-बीच में मेरी ओर चितवन से देखना मुझे भूलता नहीं है।।23।। अब कहाँ गया वह तुम्हारे लिये फूलों का धनुष बनाने वाला प्यारा मित्र वसन्त; कहीं वह भी महादेव जी के तीखे क्रोध की आग में अपने मित्र के साथ-साथ भस्म तो नहीं हो गया।।24।। यह सुनते ही बिलखती हुई वियोगिनी रति को ढाढस बँधाने के लिये वसन्त वहाँ आ खड़ा हुआ। वह ऐसा दुःखी जान पड़ रहा था, मानो उसके हृदय को रति के विलाप-वचनों के बाणों ने बींध डाला हो।।25।। बसन्त को देखकर वह और भी फूट-फूटकर और छाती पीट-पीटकर रोने लगी; क्योंकि दुःखों में अपने स्वजनों को देखते ही दुःख उसी प्रकार बढ़ जाता है, जैसे रुकी वस्तु को बाहर निकालने के लिये बड़ा भारी द्वार मिल, जाय।।26।। वह रोती हुई बसन्त से बोली—हे बसन्त! बताओ तो, तुम्हारे मित्र की यह दशा कैसे हो गई? वह देखो! तुम्हारा मित्र राख बना हुआ पड़ा है। देखो! कबूतर के पंख के समान उसकी भूरी राख को यह पवन इधर-उधर बिखेर रहा है।।27।। हे कामदेव! तुम्हारा मित्र वसन्त तुम्हें देखने के लिये बड़ा उतावला है, आकर इसे दर्शन दो। क्योंकि पुरुष अपनी स्त्री से प्रेम करने में भले ही ढिलाई कर दे, पर अपने प्रेमी मित्रों में तो उसका प्रेम अटल ही होता है।।28।। तुम्हारे इस साथी बसन्त के ही कारण ये सब देवता और राक्षस तुम्हारे कमल की तन्तु से बनी हुई डोरी वाले फूलों के बाण वाले धनुष का लोहा मानते थे।।29।। हे वसन्त! देखो तुम्हारा मित्र पवन के झोंके से बुझे हुए दीप के समान जाकर अब लौटता नहीं है। अब अत्यन्त दुःख में भरी हुई मैं उस बुझे हुए दीपक की धुँधली बत्ती भर बची रह गई हूँ।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधिना कृतमर्द्धवैशसं ननु मां कामवधे विमुञ्चता।
अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी।। 31।।

तदिदं क्रियतामनन्तरं भवता वन्धुजनप्रयोजनम्।
विधुरां ज्वलनातिसर्जनान्ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम्।। 32।।

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि।। 33।।

अमुनैव कषायितस्तनी सुभगेन प्रियगात्रभस्मना।
नवपल्लवसंस्तरे यथा रचयिष्यामि तनुं विभावसौ।। 34।।

कुसुमास्तरणे सहायतां वहुशः सौम्य गतस्त्वमावयोः।
कुरु संप्रति तावदाशु मे प्रणिपाताञ्जलियाचितश्चिताम्।। 35।।

तदनु ज्वलनं मदर्पितं त्वरयेर्दक्षिणवातवीजनैः।
विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां विना।। 36।।

इति चापि विधाय दीयतां सलिलस्याञ्जलिरेक एव नौ।
अविभज्य परत्रं तं मया सहितः पास्यति ते स वान्धवः।। 37।।

हे वसन्त! क्या तुम समझते हो कि ब्रह्मा ने मुझे जीता छोड़कर मेरे आधे अंग कामदेव का वध करके केवल आधा ही वध किया है। उसने मुझे भी मार डाला है; क्योंकि तुम्हीं बताओ भला हाथी की टक्कर से वृक्ष के टूट जाने पर उसके सहारे चढ़ी हुई लता क्या कभी बची रह पाती है।।31।। अब तुम बन्धु होने के नाते मेरे लिये इतना तो कर दो कि मेरा दाह करके मुझे मेरे पति के पास पहुँचा दो।।32।। देखो! चाँदनी चन्द्रमा के साथ चली जाती है, बिजली बादल के साथ ही छिप जाती है, इसलिये पति के साथ जाना तो जड़ों में भी पाया जाता है, फिर मैं चेतन होकर अपने पति के पास क्यों न जाऊँ।।33।। अब मैं अपने सामने पड़े हुए प्यारे के शरीर की सुन्दर भस्म से अपने स्तनों का शृंगार करके चिता की आग में चढ़कर उसी प्रकार लेटी रहूँगी जैसे कोई नई-नई लाल कोंपलों से सजी हुई सेज पर जा सोये।।34।। हे वसन्त! तुमने बहुत बार हम लोगों को फूल के बिछौने बनाने में सहायता दी है, अत मैं तुम से हाथ जोड़कर पैरों में पकड़कर यह भीख माँगती हूँ कि तुम मेरे लिये शीघ्र ही चिता तैयार कर डालो।।35।। फिर शीघ्रता से दक्षिण पवन का पंखा झलकर उसमें बड़ी लपटें भी उठा दो, जिससे मैं अत्यन्त शीघ्र जल कर राख हो जाऊँ, क्योंकि तुम जानते ही हो कि मेरा प्यारा कामदेव मेरे बिना एक क्षण नहीं रह सकता है।।36।। जब मैं जल जाऊँ, तब तुम हम दोनों के लिये एक साथ जल से तर्पण करना, जिससे परलोक में गया हुआ तुम्हारा मित्र मेरे ही साथ जल पी सके।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकविधौ च माधव स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवाः।
निवपेः सहकारमञ्जरीः प्रियचूतप्रसवो हि ते सखा।।38।।
इति देहविमुक्तये स्थितां रतिमाकाशभवा सरस्वती।
शफरीं ह्रदशोषविक्लवां प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पयत्।।39।।
कुसुमायुधपत्नि दुर्लभस्तव भर्ता न चिराद्भविष्यति।
शृणु येन स कर्मणा गतः शलभत्वं हरलोचनार्चिषि।।40।।
अभिलाषमुदीरितेन्द्रियः स्वसुतायामकरोत्प्रजापतिः।
अथ तेन निगृह्य विक्रियामभिशप्तः फलमेतदन्वभूत्।।41।।
परिणेष्यति पार्वतीं यदा तपसा तत्प्रवणीकृतो हरः।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति।।42।।
इति चाह स धर्मयाचितः स्मरशापावधिदां सरस्वतीम्।
अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः।।43।।
तदिदं परिरक्ष शोभने भवितव्यप्रियसंगमं वपुः।
रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी।।44।।

हे वसन्त! जब तुम कामदेव का श्राद्ध करना तब उनके लिये पत्तों वाली आम की मंजरी अवश्य देना; क्योंकि तुम्हारे मित्र को आम की मञ्जरी बहुत प्यारी थी।।38।। जैसे अचानक बरसने वाली वर्षा की पहली बूँदें सूखते हुए तालाब की व्याकुल मछलियों को जिंदा कर देती हैं; वैसे ही अचानक सुनाई पड़ने वाली आकाशवाणी ने भी प्राण छोड़ने को उतारू रति पर यह कृपा की वाणी बरसा दी।।39।। हे कामदेव की पत्नी! तुम्हारा पति तुम्हें थोड़े ही दिनों में मिल जायेगा। यह महादेव जी की आँख की ज्वाला में पतंग बनकर कैसे जला वह सुनो।।40।। ब्रह्मा जी ने सृष्टि करते समय जब सरस्वती को उत्पन्न किया था उस समय कामदेव ने उनके मन में ऐसा पाप भर दिया कि वे सरस्वती के रूप पर मोहित हो गए और उससे संभोग करने की इच्छा करने लगे। पर इतने में ही वे कामदेव की काली करतूत जान गए और उन्होंने अपने मन को रोककर कामदेव को शाप दिया कि जाओ, तुम शिव जी के तीसरे नेत्र की अग्नि से जलकर राख बन जाओगे। उसी का यह फल है।।41। जब धर्म ने ब्रह्मा जी से सृष्टि की रक्षा के लिये कामदेव को जिंदा करने की प्रार्थना की तब ब्रह्मा जी ने कहा कि जब पार्वती जी की तपस्या से प्रसन्न होकर महादेव जी उनके साथ विवाह कर लेंगे, तब कामदेव को अपना सहायक समझकर उसे पहले जैसा शरीर दे देंगे और तभी हमारा शाप भी छूट जायेगा। सत्य है जैसे बादलों में बिजली और जल दोनों साथ-साथ रहते हैं, वैसे ही संयमी लोगों के मन में क्रोध और क्षमा दोनों इकट्ठे ही रहते हैं।।42-43।। इसलिये हे सुन्दरी! अपने प्यारे से मिलने के लिये तुम अपने शरीर की रक्षा करो। देखो! जो नदियाँ गर्मी में सूर्य की किरणों को अपना जल पिलाकर छिछली हो जाती हैं उन्हीं नदियों में वर्षा आने पर बाढ़ आ जाती है।।44।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्थं रतेः किमपि भूतमदृश्यरूपं मन्दीचकार मरणव्यवसायबुद्धिम्।
तत्प्रत्ययाच्च कुसुमायुधवन्धुरेनामाश्वासयत्सुचरितार्थपदैर्वचोभिः।। 45।।
अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं व्यसनकृशा परिपालयांवभूव।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम्।। 46।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
रतिविलापो नाम चतुर्थः सर्गः।।

इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर रति ने अपने प्राण देने का विचार छोड़ दिया और उस आकाशवाणी पर विश्वास करके कामदेव के मित्र वसन्त ने भी बहुत कुछ समझा-बुझाकर उसे ढाढस बँधाया।।45।। आकाशवाणी और वसन्त के धीरज बँधाने पर शोक से दुबली रति भी कामदेव के शाप बीतने की अवधि की उसी प्रकार प्रतीक्षा करने लगी जैसे दिन में दिखाई देने वाले निस्तेज चन्द्रमा की किरणें भी शाम होने की प्रतीक्षा करती है।।46।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव नाम के महाकाव्य में 'रति-विलाप'
नाम का चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चमः सर्गः ।।

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।। 1।।
इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः।। 2।।
निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात्।। 3।।
मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्त्रिणः।। 4।।
इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।। 5।।
कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी।
अयाचतारण्यनिवासमात्मनः फलोदयान्ताय तपःसमाधये।। 6।।

पाँचवाँ सर्ग

महादेव जी ने देखते-देखते कामदेव को भस्म कर डाला। यह देखकर पार्वती जी की सब आशाएँ धूल में मिल गई और वे जी भरकर अपनी सुन्दरता को कोसने लगीं, क्योंकि जो सुन्दरता अपने प्यारे को न रिझा सके उसका होना न होना दोनों बराबर हैं।।1।। उन्होंने निश्चय कर लिया कि जिसे मैं रूप से नहीं रिझा सकी उसे अब सच्चे मन से तपस्या करके पाऊँगी। बात भी ठीक है, क्योंकि ऐसा निराला प्रेम और ऐसा निराला पति बिना तपस्या के भी कहीं मिल सकता है।।2।। जब उसकी माँ मेना ने सुना कि हमारी पुत्री शिवजी पर रीझ कर उनके लिये तप करने पर तुली हुई है, तब पार्वती जी को गले लगाकर उन्हें इतनी कड़ी तपस्या करने से बचाती हुई वे बोली।।3।। वत्से! तुम्हारे घर में ही इतने बड़े-बड़े देवता हैं कि तुम जो चाहो उनसे माँग लो। फिर तपस्या करना कोई हँसी खेल नहीं है। बताओ, कहाँ तो तपस्या और कहाँ तुम्हारा कोमल शरीर। देखो! शिरीष के फूल पर भौंरे भले ही आकर बैठ जायँ, पर यदि कोई पक्षी उस पर आकर बैठने लगे तब तो वह नन्हाँ सा फूल झड़ ही जायगा।।4।। पर सब कुछ समझाने पर भी वे अपनी पुत्री की टेक नहीं टाल पाई; क्योंकि अपनी बात के धनी लोगों का मन और नीचे गिरते हुए पानी का वेग भला कौन टाल सकता है।।5।। हिमालय तो पार्वती जी के मन की बात जानते ही थे। इसी बीच एक दिन पार्वती जी ने अपनी प्यारी सखी से कहलाकर अपने पिताजी से पुछवाया कि क्या मैं तब तक के लिये वन में जा कर तपस्या कर सकती हूँ जब तक शिव जी मुझ पर प्रसन्न न हो जायें।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा।
प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत्।। 7।।
विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति।। 8।।
यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते।। 9।।
प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां व्रताय मौञ्जी त्रिगुणां बभार याम्।
अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया सरागमस्या रशनागुणास्पदम्।। 10।।
विसृष्टरागादधरान्निवर्तितःस्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्।
कुशांकुरादानपरिक्षताङ्गुलिः कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः।। 11।।
महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले।। 12।।
पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च।। 13।।

जब हिमालय ने समझ लिया कि पार्वती जी अपनी सच्ची टेक से डिगेंगी नहीं, तब उन्होंने पार्वती जी को तप करने की आज्ञा दे दी। अपने पूज्य पिता से आज्ञा पाकर वे हिमालय की उस चोटी पर तप करने पहुँची, जहाँ बहुत से मोर रहा करते थे और कालान्तर में जिसका नाम उन्हीं के नाम पर गौरीशिखर पड़ गया।।7।। अपनी प्रतिज्ञा की पक्की पार्वती जी ने अपना वह हार उतार फेंका, जिसके सदा हिलते रहने से उनकी छाती का हरिचन्दन उसमें लगा हुआ था। उसके स्थान पर उन्होंने प्रातःकाल के सूर्य के समान लाल-लाल वल्कल लपेट लिया।।8।। जटा रख लेने पर भी उनका मुख वैसा ही प्यारा लगता था, जैसा पहले सजी हुई वेणियों से लगता था। क्योंकि केवल भौंरों से ही कमल अच्छा नहीं लगता, वरन् शैवाल से लिपटा होने पर भी वैसा ही सजीला लगता है।।9।। उन्होंने तपस्या के लिये अपनी कमर में मूँज की तिहरी मेखला बाँध रखी थी, वह उनके कोमल शरीर पर इतनी चुभती थी कि उससे घड़ी-घड़ी वे काँप उठती थीं और पहले पहल उसे पहनने से उनकी सारी कमर लाल पड़ गई थी।।10।। कहाँ तो वे अपने हाथों से ओठ रँगा करती थीं और स्तन के अंगराग से लाल रँगी हुई गेंद खेला करती थीं, कहाँ उन कोमल हाथों में उन्होंने रुद्राक्ष की माला ले ली है और कुशा के अंकुर उखाड़ कर अपने उन्हीं हाथों की उँगलियों में घाव कर लिए हैं।।11।। अपने पिता के घर पर ठाट बाट से सजे हुए पलंग पर करवटें लेते समय अपने बालों से झड़े हुए फूलों के दबने से जो पार्वती जी सी-सी कर उठती थीं, वे ही अपने हाथों का तकिया बनाकर बिना बिछी हुई भूमि पर बैठी-बैठी सो जाती थीं।।12।। तप के समय वे ऐसी शान्त हो गई थीं, मानो तप करने के लिये उन्होंने अपना हाव-भाव कोमल लताओं और चंचल चितवन हिरणियों को धरोहर बनाकर दे दी हो।।13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत् ।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ।। 14 ।।
अरण्यवीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः ।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीत लोचने ।। 15 ।।
कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम् ।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।। 16 ।।
विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि ।
नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलं तपोवनं तच्च बभूव पावनम् ।। 17 ।।
यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम् ।
तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे ।। 18 ।।
क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत ।
ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ।। 19 ।।
शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मितामध्यगता सुमध्यमा ।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ।। 20 ।।

आलस छोड़कर उन्होंने वहाँ के जिन छोटे-छोटे पौधों को अपने स्तनों जैसे घड़ों के जल से सींच-सींचकर पाला था, उन्हें वे पुत्रों के समान इतना प्यार करती थीं कि जब स्वामी कार्त्तिकेय का जन्म हो गया तब भी उनका वात्सल्य प्रेम इन पौधों पर कम नहीं हुआ ।।14।। वहाँ के जिन हिरणों को उन्होंने अपने हाथ से तिन्नी के दाने खिला खिलाकर पाला पोसा था वे इतने परिचित हो गये थे कि कभी-कभी मन बहलाव के लिए अपनी सखियों के आगे उन्हें लाकर वे उन हिरणों के नेत्रों से अपने नेत्र मापा करती थीं ।।15।। यद्यपि पार्वती जी छोटी-सी ही थीं फिर भी वे स्नान करके, हवन करके, वल्कल की ओढ़नी ओढ़ कर बैठी हुई पूजा किया करती थीं, उस समय उन्हें देखने के लिये दूर-दूर से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनके पास आया करते थे। क्योंकि जो धर्म का जीवन बिताने में बढ़े-चढ़े होते हैं, उनके लिए फिर यह नहीं देखा जाता कि ये छोटे हैं या बड़े।।16।। उस तपोवन में रहने वाले सब पशु-पक्षियों ने अपना आपस का पिछला बैर छोड़ दिया था, वहाँ के वृक्ष इतने फल फूल से लद गए थे कि आए हुए अतिथि जो चाहते थे वही उन्हें मिल जाता था और वहाँ नई पर्णकुटी में सदा हवन की अग्नि जलती रहती थी। इन सब बातों से वह तपोवन बड़ा पवित्र हो गया था।।17।। पार्वती जी ने जब देखा कि इन प्रारम्भिक नियमों से काम नहीं सधता, तब उन्होंने अपने शरीर की कोमलता का ध्यान छोड़कर बड़ी कठोर तपस्या आरम्भ कर दी।।18।। जो पार्वती जी पहले गेंद खेलने में भी थक जाया करती थीं, उन्होंने अब मुनियों का कठोर व्रत ले लिया तब ऐसा जान पड़ने लगा मानों उनका शरीर सोने के कमलों से बना था, जो कमल से बने होने के कारण स्वभाव से कोमल भी था, पर साथ ही साथ सोने का बना होने से ऐसा पक्का भी था कि तपस्या से कुँभला न सके।।19।। पतली कमर वाली पार्वती जी गरमी के दिनों में अपने चारों ओर आग जलाकर उसी के बीच खड़ी रहने लगीं और चकाचौंध करने वाले सूर्य के प्रकाश को भी जीत कर वे सूर्य की ओर एकटक होकर देखती रहने लगीं।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथातितप्तं सवितुर्गभस्तिभिर्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।
अपाङ्गयोः केवलमस्यदीर्घयोः शनैः शैनः श्यामिकया कृतं पदम्।। 21।।
अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
वभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः।। 22।।
निकामतप्ता विविधेन वह्निना नभश्चरेणेन्धनसंभृतेन सा।
तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवैर्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम्।। 23।।
स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः।। 24।।
शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातपः साक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः।। 25।।
निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती।। 26।।
मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदां सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्।। 27।।

इस प्रकार तप करते रहने पर भी उनका मुख सूर्य की किरणों से तप कर कुम्हलाया नहीं, वरन् कमल के समान खिल उठा। हाँ इतना, अवश्य हुआ कि उनकी बड़ी-बड़ी आँखों की कोरों में धीरे-धीरे कुछ साँवलापन आने लगा।।21।। फिर वर्षा के दिनों में वे एक तो बिना माँगे अपने आप बरसे हुए जल को पीकर और दूसरे अमृत से भरी चन्द्रमा की किरणों को पीकर ही रह जाती। बस यह समझ लीजिये कि उन दिनों पार्वती जी का खाना पीना वही था, जो वृक्षों का होता है।।22।। वर्षा होने पर उधर तो गर्मी से तपी हुई पृथ्वी से भी भाप निकल उठी और इधर ईंधन की आग तथा सूर्य की गर्मी से तपे हुए पार्वती जी के शरीर से भाप निकल उठी।।23।। उनके सिर पर जो वर्षा का जल पड़ता था, वह पल भर तो उनकी पलकों में टिकता था फिर वहाँ से ढुलक कर उनके ओठों पर जा पड़ता था, वहाँ से उनके कठोर स्तनों पर गिरकर बूँद-बूँद बनकर छितरा जाता था और फिर उनके पेट पर बनी हुई सिकुड़नों (त्रिवली) में होता हुआ वह बड़ी देर में नाभि तक पहुँच पाता था।।24।। जिन दिनों घनघोर वर्षा के साथ-साथ रात-रात भर आँधियाँ चला करती थीं, उन दिनों भी ये खुले मैदान में पत्थर की पटिया पर ही पड़ी रहती थीं और अँधेरी रातें अपनी बिजली की आँखें खोल-खोलकर इस प्रकार उन्हें देखा करती थीं, मानो वे उनके कठोर तप की साक्षी हों।।25।। पूस की जिन रातों में वहाँ का सरसराता हुआ पवन चारों ओर हिम ही हिम बिखेरता चलता था, उन दिनों वे रात-रातभर जल में बैठे हुए बिता देती थीं और उनके सामने ही चकवे और चकवी का जो जोड़ा एक दूसरे से बिछुड़ा हुआ चिल्लाया करता था, उन्हें वे ढाढस बँधाया करती थीं।।26।। उन जाड़े की रात में जल के ऊपर पार्वती जी का मुँह भर दिखाई पड़ता था जाड़े से उनके ओठ काँपते थे और उनकी साँस से कमल की गन्ध के समान जो सुगन्ध निकल रही थी, उसकी गमक चारों ओर फैल जाती थी। उस समय जल में खड़ी हुई वे ऐसी लगती थीं मानो पाले से मारे हुए कमलों के जल जाने पर उनके मुख-कमल ने ही उस सरोवर को कमल वाला बनाए रखा हो।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्यतया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः।।28।।
मृणालिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सा।।29।।
अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा।।30।।
तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती।
भवन्ति साम्येऽपिनिविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः।।31।।
विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः।।32।।
अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।।33।।
अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतं प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम्।
चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते तुलां यदारोहति दन्तवाससा।।34।।

अपने आप झड़कर गिरे हुए पत्तों को खाकर रहना ही तप की पराकाष्ठा समझी जाती है, पर पार्वती जी ने पत्ते खाने भी छोड़ दिए, इसीलिए, मधुर भाषिणी पार्वती जी को पण्डित लोग कालान्तर में पत्ते न खाने वाली अपर्णा भी कहने लगे।।28।। कमलिनी के समान अपने कोमल अंग को इस प्रकार की तपस्या से रात दिन सुखाकर पार्वती ने कठोर शरीर वाले तपस्वियों को भी लज्जित कर दिया।।29।। इसी बीच एक दिन ब्रह्मचर्य के तेज से चमकता हुआ-सा हिरण की छाल ओढ़े और पलास का दंड हाथ में लिए हुए, गठीले शरीर वाला और चतुराई के साथ बोलने वाला एक जटाधारी ब्रह्मचारी उस तपोवन में आया। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो साक्षात् ब्रह्मचर्याश्रम ही उठा चला आ रहा हो।।30।। अतिथि का सत्कार करने वाली पार्वती जी ने बड़े आदर से आगे बढ़कर उसकी पूजा की, क्योंकि जिन्होंने अपने मन को भली प्रकार साध लिया है, वे यदि अपनी बराबर की अवस्था वाले तेजस्वी पुरुष से भी मिलते हैं तो बड़े आदर से मिलते हैं।।31।। उस ब्रह्मचारी ने भेंट पूजा लेकर और पलभर अपनी थकावट मिटाकर पार्वती जी की ओर एकटक देखते हुए बिना रुके बोलना प्रारम्भ कर दिया।।32।। —कहिए, आपको इस तपोवन में हवन के लिये समिधा, कुश और स्नान करने योग्य जल तो मिल जाता है न! और अपने शरीर की शक्ति के अनुसार ही तप कर रही हैं न! क्योंकि देखिए! धर्म के जितने काम हैं उनमें शरीर की रक्षा करना सबसे पहला काम है।।33।। हाँ, आपके हाथ से सींची हुई इन लताओं में कोमल लाल-लाल पत्तियों वाली वे कोपलें तो फूट आई होंगी जो आपके उन ओठों से होड़ करती होंगी, जो बहुत दिनों से लाली से न रँगे जाने पर भी लाल हैं।।34।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः करस्थदर्भप्रणयापहारिषु।
य उत्पलाक्षि प्रचलैर्विलोचनैस्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते।। 35।।
यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने तपस्विनामप्युपदेशतां गतम्।। 36।।
विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिस्तथा न गाङ्गैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः पावित एष सान्वयः।। 37।।
अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते।। 38।।
प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि।
यतः सतां सन्नतगात्रि संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते।। 39।।
अतोऽत्र किंचिद्भवतीं बहुक्षमां द्विजातिभावादुपपन्नचापलः।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि।। 40।।
कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः।
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपःफलं स्यात्किमतः परं वद।। 41।।
भवत्यनिष्टादपि नाम दुःसहान्मनस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी।
विचारमार्गप्रहितेन चेतसा न दृश्यते तच्च कृशोदरि त्वयि।। 42।।

और हे कमलनयनी! आपके हाथ से प्रेम से कुश छीनकर खाने वाले इन हिरणों में तो आपका मन बहला रहता है न, जिनकी आँखें आपकी आँखों के समान ही चंचल हैं।।35।। हे पार्वती जी! यह ठीक ही कहा जाता है कि सुन्दरता पाप की ओर कभी नहीं झुकती, क्योंकि हे सुन्दरी! आपका ही रहन-सहन देखें तो वह इतना सच्चा है कि बड़े-बड़े तपस्वी भी उससे सीख ले सकते हैं।।36।। सप्तऋषियों के हाथ से चढ़ाए हुए पूजा के फूल और आकाश से उतरी हुई गंगा की धाराएँ हिमालय पर गिरती हैं, पर इन सबसे भी हिमालय उतना पवित्र नहीं हुआ, जितना आपके पवित्र रहन-सहन से हुआ है।।37।। दे देवी! आपके इस आचरण से ही मैं समझ रहा हूँ कि धर्म, अर्थ और काम 'इन तीनों में धर्म ही सबसे बढ़कर है; क्योंकि आप अर्थ और काम से मन को हटाकर अकेले धर्म का पल्ला थामकर उसकी सेवा कर रही हैं।।38।। हे सुन्दरी! यह कहा जाता है कि सज्जन लोगों की पहली ही भेंट में उनकी मित्रता पक्की हो जाती है, इसलिये आपने जो मेरा सत्कार किया है, उसी से यह सिद्ध है कि आप मुझे कोई पराया नहीं समझती।।39।। हे तपस्विनी! यदि उसी अपनेपन के नाते मैं ब्राह्मण होने की ढिठाई करके आपसे कुछ ऐसी-वैसी बातें पूछ बैठूँ, तो आप बुरा न मानिएगा और यदि कोई छिपाने की बात न हो तो कृपा करके उत्तर भी दे दीजिएगा।।40।। मैं यही पूछना चाहता हूँ कि ब्रह्मा के वंश में आपका जन्म हुआ है, शरीर भी आपका ऐसा सुन्दर मानो तीनों लोकों की सुन्दरता आप में ही लाकर भरी हो, धन का सुख इतना कि कुछ पूछना ही क्या और जवानी भी अभी फूट ही रही है; फिर बताइए कि आपको तप करने की आवश्यकता क्या आ पड़ी।।41।। हाँ, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपने बैरी से बदला लेने के लिये भी मानिनी स्त्रियाँ कठोर तपस्या कर बैठती हैं, पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, ऐसी भी कोई बात आपके साथ नहीं है।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलभ्यशोकाभिभवेयमाकृतिर्विमानना सुभ्रु कुतः पितुर्गृहे।
पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये।।43।।
किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वयावार्द्धकशोभिवल्कलम्।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते।।44।।
दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः।
अथोपयन्तारमलं समाधिना न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।।45।।
निवेदितंनिश्वसितेन सोष्मणा मनस्तु मे संशयमेव गाहते।
न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम्।।46।।
अहो स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते।
उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः कपोलदेशे कमलाग्रपिङ्गलाः।।47।।
मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शितां दिवाकरप्लुष्टविभूषणास्पदाम्।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा सेचतसः कस्य मनो न दूयते।।48।।

क्योंकि हे सुन्दर भौहों वाली! आपका रूप ही ऐसा है कि न तो आप पर कोई क्रोध ही कर सकता है न आपका निरादर। पिता के घर में तो आपका निरादर करने वाला कोई है नहीं, और यह भी नहीं हो सकता कि कोई शत्रु आकर आपका अपमान करे, क्योंकि ऐसा कौन है जो साँप की मणि लेने के लिए उस पर हाथ डालेगा।।43।। इसलिये हे गौरी! आप यह तो बताइए कि इस भरी जवानी में आपने सुन्दर गहने छोड़कर ये वल्कल क्यों पहन लिए हैं? बताइए भला बढ़ती हुई रात की सजावट खिले हुए चन्द्रमा और तारों से होती है या प्रातःकाल के सूर्य की लाली से?।।44।। यदि आप स्वर्ग पाने की इच्छा से तप कर रही हो तब तो आपका सारा परिश्रम अकारथ है; क्योंकि आपके पिता हिमालय का जितना राज्य है उतने में ही तो सब देवता रहते हैं, और यदि आप अपने योग्य पति पाने के लिये तपस्या करती हों, तब भी तपस्या व्यर्थ है; क्योंकि मणि किसी को खोजने नहीं जाती, उल्टे मणि को ही लोग खोजते फिरते हैं।।45।। आपने जो लम्बी साँस ली है, इससे मैं समझ रहा हूँ कि आप योग्य पति पाने के लिये ही तपस्या कर रही हैं, पर मेरे जी में यह बड़ा भारी सन्देह उठ खड़ा हुआ है कि भला आप जिसे चाहती हों, वह आपको न मिले, यह बात कैसे हो सकती है; क्योंकि मुझे तो संसार में कोई ऐसा पुरुष नहीं जँचता जिसके पीछे आपको दौड़ना पड़े।।46।। यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस युवक को आप चाहती हों, वह ऐसा हठी हो कि बहुत दिनों से कर्णफूल से सूने आपके गालों पर लटकी हुई इन धान के बालों के समान पीली जटाओं को देखकर भी न पिघलता हो।।47।। ऐसा कौन जीता-जागता पुरुष होगा, जिसका जी तपस्या से अत्यन्त सूखे हुए आपके इस शरीर को देखकर रो न पड़े, जिस के अंग-अंग आभूषण न पहनने से अंग सूर्य की किरणों से झुलस गए हैं और जो दिन के चन्द्रमा की लेखा के समान उदास दिखाई पड़ रहा है।।48।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः।
करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः।। 49।।
कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः।
तदर्द्धभागेन लभस्व काङ्क्षितं वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम्।। 50।।
इति प्रविश्याभिहिता द्विजन्मना मनोगतं सा न शशाक शंसितुम्।
अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनीं विवर्तितानञ्जननेत्रमैक्षत।। 51।।
सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं निबोध साधो तव चेत्कुतूहलम्।
यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं कृतं तपः साधनमेतया वपुः।। 52।।
इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति।। 53।।
असह्यहुंकारनिवर्तितः पुरा पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः।
इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणोद्विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः।। 54।।
तदाप्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं तुषारसंघातशिलातलेष्वपि।। 55।।

मैं समझता हूँ कि जिसे आप प्यार करती हैं वह अपनी सुन्दरता का झूठा घमण्ड लिए फिरता है नहीं तो उसे अब तक यहाँ आकर अपने मुँह आपकी कटीली भौहों वाले सुन्दर नयनों का लक्ष्य बनना चाहिए।।49।। अच्छा, यह तो बताइए गौरी जी! कि आप कब तक यह तपस्या करती रहेंगी? देखिए, ब्रह्मचर्य की अवस्था में मैंने बहुत सी तपस्या इकट्ठी कर रखी है। उसका आधा भाग आप ले लीजिए और आपकी जो भी अभिलाषा हों, सब उनसे पूरी कर लीजिए। पर हाँ; इतना तो कम से कम बता दीजिए कि वह है कौन।।50।। उस ब्राह्मण ने इस ढंग से बातें कहीं, मानो पार्वती जी के हृदय में बैठकर सब बातें जान ली हों। उन्हें सुनकर पार्वती जी ऐसी लज्जित हो गईं कि वे अपने मन की बात भी अपने मुँह से कह न पाईं। इसलिये उन्होंने अपने पास बैठी हुई अपनी सखी को ही बिना काजल लगे नेत्रों से बताने का संकेत कर दिया।। 51।। तब पार्वती जी की सखी उस ब्रह्मचारी से बोली—हे साधो! यदि आप सुनना ही चाहते हैं तो मैं बताती हूँ कि जैसे कोई धूप बचाने के लिये कमल का छाता लगा ले वैसे ही इन्होंने भी अपना कोमल शरीर कठोर तपस्या में क्यों लगा दिया।।52।। महेन्द्र आदि बड़े-बड़े चारों दिग्पालों को छोड़कर ये मानिनी उन महादेव जी से विवाह करने पर तुली हुई हैं, जो अब कामदेव के नष्ट हो जाने पर केवल रूप दिखाकर नहीं रिझाए जा सकते।।53।। उस समय कामदेव ने शिव जी के ऊपर जो बाण चलाया था, वह उस समय तो उनकी हुंकार सुनकर ही लौट गया, पर उस जलकर राख बने हुए कामदेव का वह बाण मेरी सखी के हृदय में लगकर बड़ा भारी घाव कर गया है।।54।। तभी से ये बेचारी इतनी प्रेम की पीड़ा से व्याकुल हुई अपने पिता के घर पड़ी रहती थीं कि माथे पर पुते हुए चन्दन से बाल भर जाने पर भी और जमे हुए हिम की पटियों पर लेटे रहने पर भी इन्हें चैन नहीं मिलता था।।55।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम्।
अनेकशः किन्नरराजकन्यका वनान्तसंगीतसखीररोदयत्।। 56।।
त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना।। 57।।
यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम्।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्चमुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः।। 58।।
यदा च तस्याभिगमे जगत्पतेरपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती।
तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरोरियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम्।। 59।।
द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं फलं तपःसाक्षिषु दृष्टमेष्वपि।
न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते मनोरथोऽस्याःशशिमौलिसंश्रयः।। 60।।
न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभः कदा सखीभिरस्रोत्तरमीक्षितामिमाम्।
तपःकृशामभ्युपपत्स्यते सखीं वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम्।। 61।।
अगूढसद्भावमितीङ्गितज्ञया निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया।
अयीदमेवं परिहास इत्युमामपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः।। 62।।

जब ये महादेव जी के गीत गाने लगतीं थीं, तब वे वनवासिनी किन्नरी राज-कुमारियाँ भी इनके रुँधे हुए गले से निकले हुए शब्दों को सुन-सुनकर बहुत बार रो देती थीं जो इनकी संगीत की सखियाँ थीं।।56।। रात के पहले ही प्रहर में क्षण भर के लिये आँख लगी नहीं कि बिना बात के ये चौंककर बड़बड़ाती हुई जाग उठती थीं कि हे नीलकंठ! तुम कहाँ जा रहे हो और उसी सपने के धोखे में ये अपने हाथ ऐसे फैलाती थीं, मानो शिव जी के गले में हाथ डालकर उन्हें रोक रही हों।।57।। इस प्रकार नींद में उठकर ये अपने हाथ से बनाये हुए शंकर जी के चित्र को ही सच्चे शंकर जी समझकर उन्हें यह कह कहकर उलाहना देने लगती थीं कि आपके लिये पंडित लोग तो कहते हैं कि आप घट-घट की बातें जानते हैं, फिर आप मेरे जीकी जलन क्यों नहीं जान पाते, जो आपको सच्चे मन से प्यार करती है।।58।। जब उन संसार के स्वामी शिव जी को पाने का उन्हें कोई दूसरा उपाय न सूझा, तो ये अपने पिता की आज्ञा लेकर हम लोगों के साथ तप करने के लिये यहाँ तपोवन में चली आईं।।59।। हमारी सखी को यहाँ तपस्या करते हुए इतने दिन हो गए कि इनके हाथ के रोपे हुए जिन वृक्षों ने इनके तप को खड़े-खड़े देखा है वे भी फल गए पर महादेव जी को पाने की जो इनकी अभिलाषा थी उसमें अभी अँकुर भी नहीं फूट पाये।।60।। तप ने इन्हें ऐसा सुख दिया है कि इन्हें देखकर हमारी सखियों की आँखें भी डबडबा आती हैं। इतने पर भी जिस दुर्लभ वर को पाने के लिये ये इतना कष्ट भोग रही हैं, वह देखें कब हमारी सखी पर उसी प्रकार कृपा बरसाता है, जैसे जुती हुई होने पर भी पानी न बरसने से सूखी हुई धरती पर इन्द्र पानी बरसा देते हैं।।61।। इस प्रकार पार्वती के मन की बात जानने वाली सखी ने तपस्या करने का ठीक-ठीक कारण बता दिया। यह सुनकर उस ब्रह्मचारी पुरुष ने अपने मुख पर प्रसन्नता की एक रेखा भी नहीं पड़ने दी और उलटे पार्वती जी से पूछने लगा कि ये जो कुछ कह रही हैं वह क्या सत्य है, या ये हँसी कर रही हैं।।62।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौसमर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम्।
कथञ्चिद्रेस्तनया मिताक्षरं चिरव्यवस्थापितवागभाषत।। 63।।
यथा श्रुतं वेदविदां वर त्वया जनोऽयमुच्चैः पदलंघनोत्सुकः।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं मनोरथानामगतिर्न विद्यते।। 64।।
अथाह वर्णी विदितो महेश्वरस्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्त्तसे।
अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं तवानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे।। 65।।
अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।
करेण शंभोर्वलयीकृताहिना सहिष्यते तत्प्रथमावलम्वनम्।। 66।।
त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च।। 67।।
चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः परोऽपि को नाम तवानुमन्यते।
अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयोर्विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु।। 68।।
अयुक्तरूपं किमतः परं वद त्रिनेत्रवक्षःसुलभं तवापि यत्।
स्तनद्वयेऽस्मिन्हरिचन्दनास्पदे पदं चिताभस्मरजः करिष्यति।। 69।।

बहुत देत तक तो पार्वती जी लज्जा के कारण कुछ भी नहीं बोलीं, पर उन्होंने अपनी अंगुलियों को समेट कर स्फटिक की माला हाथ में पहन ली और बड़े नपे-तुले अक्षरों में वे किसी प्रकार बोलीं। ।63।। हे वेद के परम पंडित! आपने जैसा सुना है मेरे मन में वैसा ही ऊँचा पद पाने की इच्छा जाग उठी है और यह तप भी मैं उन्हीं को पाने के लिये कर रही हूँ, क्योंकि मनुष्य की अभिलाषा कहाँ तक पहुँचती है, इसका कोई ठिकाना तो है ही नहीं। ।64।। पार्वती जी की बात सुनकर ब्रह्मचारी बोला कि जिसने पहले ही आपके प्यार को ठुकरा दिया, उनको पाने के लिए क्या आपके मन में अभी तक अभिलाषा बनी हुई है? जब मैं उन भोंड़े वेशवाले शिव जी का विचार करता हूँ तब मेरा मन तो नहीं करता कि आपको इसके लिये सम्मति दूँ। ।65।। पार्वती जी! आप भी किन बेतुके से प्रेम करने चली हैं। बताइए तो, पाणिग्रहण के समय विवाह के मंगल सूत्र से सजा हुआ आपका यह हाथ शंकर जी के साँप लिपटे हुए हाथ को कैसे छू पायेगा? ।66।। आप स्वयं सोचिए कि कहाँ तो हंस छपी हुई चुँदरी ओढ़े हुए और कहाँ रक्त की बूँद टपकाती हुई महादेव जी के कन्धे पर पड़ी हुई हाथी की खाल! भला ये दोनों कहाँ मेल खा सकती हैं। ।67।। आप अभी तक फूल बिछे हुए चौक में चलती आई हैं। अब बताइए आप अपने महावर से रँगे पैरों को उस श्मशान की भूमि में कैसे रखेंगी जहाँ इधर-उधर भूत-प्रेतों के बाल बिखरे पड़े होंगे। यह बात तो आपका शत्रु भी आपके लिये नहीं चाहेगा। ।68।। बताइए, यदि शिव जी आपको मिल भी जायँ तो भी इससे बढ़कर भद्दी और क्या बात होगी कि आपके जिन स्तनों पर हरिचन्दन पुता हुआ है उन पर चिता की भस्म लाकर पोती जाय। ।69।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति।। 70।।
द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी।। 71।।
वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।। 72।।
निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा।
अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया।। 73।।
इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया।
विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते।। 74।।
उवाच चैनं परमार्थतो हरं न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।। 75।।
विपत्प्रतीकारपरेण मङ्गलं निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः।। 76।।

और सबसे बड़ी हँसी की बात तो तब होगी जब आप हाथी छोड़कर बूढ़े बैल पर चढ़कर अपनी ससुराल को चलेंगी और नगर के भले मानुस सब आपको देखकर तालियाँ बजायेंगे।।70।। मैं तो समझता हूँ कि शिव जी को पाने के फेर में दो के भाग फूट गए, एक तो चन्द्रमा की कला के, जो उनके माथे पर है और दूसरे आपके जो संसार के नेत्रों को खिलाने वाली हैं।।71।। देखिए, तीन तो उनके आँख, जन्म का उनके कोई ठिकाना नहीं, और उनके सदा नंगे रहने से ही आप समझ सकती होंगी कि उनके घर में क्या होगा? इसलिये हे मृग के छौने की आँख जैसी आँखवाली पार्वती जी! वर में जो गुण खोजे जाते हैं, उनमें से एक भी तो महादेव जी में नहीं है। [न रूप है, न कुल है और न धन] ।।72।। इसलिये आप अपने मन से यह भोंडी इच्छा हटा ही दीजिए। कहाँ तो महादेव और कहाँ सुन्दर लक्षणों वाली आप। देखिए, शूली देने के लिये श्मशान में जो खंभा गड़ा रहता है, उससे जिस प्रकार सज्जन लोग यज्ञ के खंभे का काम नहीं लेते हैं, वैसे ही इन महादेव जी को पति बनाना भी आपको शोभा नहीं देता।।73।। उस ब्राह्मण की ऐसी उल्टी-सीधी बातें सुनकर पार्वती जी के ओठ क्रोध से काँपने लगे, उनकी आँखें लाल हो गईं और उन्होंने भौहें तानकर उस ब्रह्मचारी की ओर आँखें तरेरकर देखा।।74।। और बोलीं तब आप महादेव जी को भली प्रकार जानते ही नहीं, जो मुझसे इस प्रकार कह रहे हैं। जो खोटे लोग होते हैं, वे उन महात्माओं के अनोखे कामों को बुरा बताते ही हैं जिन्हें पहचानने की उनमें योग्यता नहीं होती।।75।। लोग जो गन्ध आदि मंगल वस्तु काम में लाते हैं उसका कारण यह है कि या तो वे अमंगल दूर करने के लिये ऐसा करते हैं, या फिर अपनी तड़क-भड़क दिखाने के लिए पर जो तीनों लोकों की रक्षा करने वाले हैं और जिनके मन में कोई इच्छा नहीं रहती, वे शंकर जी इन वस्तुओं को लेकर करेंगे ही क्या?।।76।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकिञ्चनः सन्प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।। 77।।
विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः।। 78।।
तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते ध्रुवं चिताभस्मरजोविशुद्धये।
तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम्।। 79।।
असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
करोति पादावुपगम्य मौलिना विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली।। 80।।
विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति।। 81।।
अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते।। 82।।
निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।। 83।।

पास में कुछ न होते हुए भी सारी सम्पत्तियाँ उन्हीं से उत्पन्न होती हैं, श्मशान में रहते हुए भी वे तीनों लोकों के स्वामी हैं और डरावने दिखाई देने पर भी वे सबका कल्याण करने वाले कहे जाते हैं, इसलिये उनका सच्चा रूप संसार में कोई ठीक-ठीक समझ नहीं पाता है।।77।। संसार में जितने रूप दिखाई देते हैं वे सब उन्हीं के होते हैं, इसलिये उनका शरीर गहनों से चमकता हो या साँप से लिपटा हुआ हो, हाथी की खाल लटकाए हुए हों, या वस्त्र ओढ़े हुए हों, गले में खोपड़ियों की माला पहने हुए हों या माथे पर चन्द्रमा सजाये हुए हों, पर उस पर यह विचार नहीं किया जाता कि वह कैसा है कैसा नहीं।।78।। उनके शरीर से लगकर राख भी पवित्र हो जाती है, इसलिये जब वे तांडवनृत्य करने लगते हैं उस समय उनके शरीर से झड़ी हुई भस्म को देवता लोग बड़ी श्रद्धा से अपने माथे चढ़ाते हैं।।79।। जिन्हें आप दरिद्र बताते हैं वे जब अपने बैल पर चढ़कर चलने लगते हैं, जब मतवाले ऐरावत पर चढ़ने वाला इन्द्र भी आकर उनके पैरों पर मस्तक नवाया करता है और फूले हुए कल्पवृक्ष के पराग से उनके पैरों की उँगलियाँ रँगा करता है।।80।। आपने अपने दुष्ट स्वभाव से कहते-कहते कम से कम एक बात तो उनके लिये ठीक कह दी कि जो ब्रह्म तक को उत्पन्न करने वाला बताया जाता है, उस ईश्वर के जन्म और कुल को कोई जान ही कैसे सकता है।।81।। इसलिए, अब यह झगड़ा जाने दीजिए। आपने उन्हें जैसा सुना, वे वैसे ही सही, पर मेरा मन तो उन्हीं में रम गया है। जब किसी का मन किसी पर लग जाता है, तब वह किसी के कहने सुनने पर ध्यान थोड़े ही देता है।।82।। इतने में उन्होंने देखा कि ब्रह्मचारी कुछ और बोलना चाहता है। यह देखकर वे अपनी सखी से बोली-देखो सखी! इस ब्रह्मचारी के ओठ फड़क रहे हैं। ये फिर कुछ कहना चाहता है। इससे कह दो कि अब एक बात भी न बोले; क्योंकि जो बड़ों की निन्दा करता है, केवल वही पापी नहीं होता वरन् जो सुनता है उसे भी पाप लगता है।।83।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः समाललम्बे वृषराजकेतनः।।84।।
तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।।85।।
अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिरीति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।।86।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
तपःफलोदयो नाम पञ्चमः सर्गः।।

या तो मैं ही यहाँ से उठकर चली जाती हूँ। यह कहकर वे उठीं। इस हड़बड़ी में उनके स्तन पर पड़ा हुआ वल्कल हट गया और ज्यों ही उन्होंने चलने को पैर बढ़ाया, त्यों ही महादेव जी ने अपना सच्चा रूप धारण करके मुस्कराते हुए उनका हाथ थाम लिया।।84।। महादेव जी को देखते ही पार्वती जी के शरीर में कँपकँपी छूट गई। वे पसीने-पसीने हो गईं और आगे चलने को उठाए हुए, अपने पैर को उन्होंने जहाँ का तहाँ रोक लिया। जैसे धारा के बीच में पहाड़ पड़ जाने से न तो नदी आगे बढ़ पाती है न पीछे हट पाती है वैसे ही हिमालय की कन्या भी न तो आगे ही बढ़ पाई न खड़ी ही रह पाईं।।85।। शिवजी बोले—हे कोमल शरीर वाली! आज से तुम मुझे तप से मोल लिया हुआ अपना दास समझो। इतना सुनना भर था कि तपस्या से पार्वती जी को जितना कष्ट हुआ था; वह सब जाता रहा; क्योंकि जब काम पूरा हो जाता है, तब उसके लिये किया हुआ कष्ट फिर खटकता नहीं।।86।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में 'तप का फल' नामक पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षष्ठः सर्गः ।।

अथ विश्वात्मने गौरी संदिदेश मिथः सखीम्।
दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति।। 1।।
तया व्याहृतसंदेशा सा बभौ निभृता प्रिये।
चूतयष्टिरिवाभ्याशे मधौ परभृतोन्मुखी।। 2।।
स तथेति प्रतिज्ञाय विसृज्य कथमप्युमाम्।
ऋषीञ्ज्योतिर्मयान्सप्त सस्मार स्मरशासनः।। 3।।
ते प्रभामण्डलैर्व्योम द्योतयन्तस्तपोधनाः।
सारुन्धतीकाः सपदि प्रादुरासन्पुरः प्रभोः।। 4।।
आप्लुतास्तीरमन्दारकुसुमोत्करवीचिषु।
व्योमगंगाप्रवाहेषु दिङ्नागमदगन्धिषु।। 5।।
मुक्तायज्ञोपवीतानि बिभ्रतो हैमवल्कलाः।
रत्नाक्षसूत्राः प्रव्रज्यां कल्पवृक्षा इवाश्रिताः।। 6।।
अधः प्रस्थापिताश्वेन समावर्जितकेतुना।
सहस्ररश्मिना साक्षात्सप्रमाणमुदीक्षिताः।। 7।।

छठा सर्ग

तब पार्वती जी ने, घट-घट में रमने वाले शंकर जी को अपनी सखी के मुँह से धीरे से कहलाया कि मेरा विवाह करने या न करने वाले मेरे पिता हिमालय हैं, इसलिये यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते हों, तो पहले उन्हें जाकर मना लीजिए।।1।। प्रेम में पगी हुई पार्वती जी अपनी सखी के मुँह से महादेव जी को यह सन्देश कहलाती हुई वैसी ही सुशोभित हुई, जैसे कोयल की बोली में वसन्त के पास अपना सन्देश भेजती हुई आम की डाल शोभा देती है।।2।। महादेव जी ने कहा—अच्छी बात है और उन्होंने भारी मन से पार्वती जी को किसी न किसी प्रकार घर जाने की आज्ञा दी। पार्वती जी के चले जाने पर उन्होंने तेजो से जगमगाने वाले सप्त ऋषियों को झट से स्मरण किया।।3।। स्मरण करते ही अपने तेज मंडलों से उजाला करते हुए अरुन्धती को साथ लेकर तत्काल शंकर जी के आगे वे सातों तपस्वी आकर खड़े हो गए।।4।। उन्होंने उस आकाश-गंगा में स्नान कर रखा था, जो अपने तीर पर गिरे हुए कल्पवृक्ष के फूलों को अपनी लहरों से उछालती हुई चलती है और जिसके जल में दिग्गजों के मद की सुगन्ध आया करती है।।5।। उनके कन्धों पर मोती के यज्ञोपवीत लटक रहे थे, पीठ पर सोने के वल्कल पड़े हुए थे, हाथ में रत्नों की मालाएँ थीं और जो इस वेश में ऐसे जान पड़ते थे, मानो कल्पवृक्षों ने संन्यास ले लिया हो।।6।। उनके तले से जाता हुआ सूर्य अपने घोड़े नीचे रोककर और झंडी उतार कर बड़ी नम्रता से उन्हें ऊपर आँख उठाकर प्रणाम किया करता है।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसक्तबाहुलतया सार्धमुद्धृतया भुवा।
महावराहदंष्ट्रायां विश्रान्ताः प्रलयापदि।। 8।।

सर्गशेषप्रणयनाद्विश्वयोनेरनन्तरम्।
पुरातनाः पुराविद्भिर्धातार इति कीर्तिताः।। 9।।

प्राक्तनानां विशुद्धनां परिपाकमुपेयुषाम्।
तपसामुपभुञ्जानाः फलान्यपि तपस्विनः।। 10।।

तेषां मध्यगता साध्वी पत्युः पादार्पितेक्षणा।
साक्षादिव तपः सिद्धिर्बभासे बह्वरुन्धती।। 11।।

तामगौरवभेदेन मुनींश्चापश्यदीश्वरः।
स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम्।। 12।।

तद्दर्शनादभूच्छंभोर्भूयान्दारार्थमादरः।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्।। 13।।

धर्मेणापि पदं शर्वे कारिते पार्वतीं प्रति।
पूर्वापराधभीतस्य कामस्योच्छ्वसितं मनः।। 14।।

अथ ते मुनयः सर्वे मानयित्वा जगद्गुरुम्।
इदमूचुरनूचानाः प्रीतिकण्टकितत्वचः।। 15।।

जो प्रलय के समय वराह भगवान के जबड़ों से उठाई हुई पृथ्वी के साथ हाथ रूपी लता लगाए रखने के कारण पृथ्वी के साथ ही उनके जबड़े में विश्राम किया करते हैं। उनके लिये लोग कहते हैं कि ब्रह्मा के सृष्टि कर चुकने पर इन्हीं ऋषियों ने ही सृष्टि की थी और इसीलिये उन्हें इतिहास जानने वाले पुराने लोग विधाता कहा करते हैं।।9।। वे अपने पूर्वजन्म की तपस्या और पुण्यकर्मों का फल भोगते रहने पर भी अब तक तपस्या करते चले आ रहे हैं।।10।। उनके बीच में, अपने पति वशिष्ठ जी के चरणों की ओर निहारती हुई सती अरुन्धती ऐसी लगती थीं, मानो साक्षात् तप की सिद्धि ही आकर खड़ी हो गई हो।।11।। शंकरजी ने उन ऋषियों को बिना स्त्री-पुरुष के भेद-भाव किए समान आदर से देखा; क्योंकि सज्जन लोगों से व्यवहार करते समय यह नहीं देखा जाता कि यह पुरुष है या स्त्री, वरन् यही विचार किया जाता है कि इनका चरित्र कैसा है।।12।। शिव जी ने जब अरुन्धती जी को देखा तब उनके मन में यह बात और भी पक्की जम गई कि बिना पतिव्रता पत्नी से विवाह किए धार्मिक क्रियाएँ पूरी नहीं हो सकतीं।।13।। शंकर जी के मन में पार्वती जी से विवाह करने की इच्छा देखकर उस कामदेव के मन में भी कुछ-कुछ ढाढ़स होने लगा जो अभी तक अपने एक बार के किए हुए अपराध से डरा बैठा था।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्ब्रह्म सम्यगाम्नातं यदग्नौ विधिना हुतम्।
यच्च तप्तं तपस्तस्य विपक्वं फलमद्य नः।। 16।।
यदध्यक्षेण जगतां वयमारोपितास्त्वया।
मनोरथस्याविषयं मनोविषयमात्मनः।। 17।।
यस्य चेतसि वर्तेथाः स तावत्कृतिनां वरः।
किं पुनर्ब्रह्मयोनेर्यस्तव चेतसि वर्तते।। 18।।
सत्यमर्काच्च सोमाच्च परमध्यास्महे पदम्।
अद्य तूच्चैस्तरं ताभ्यां स्मरणानुग्रहात्तव।। 19।।
त्वत्संभावितमात्मानं वहुमन्यामहे वयम्।
प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः।। 20।।
या नः प्रीतिर्विरूपाक्ष त्वदनुध्यानसंभवा।
सा किमावेद्यते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम्।। 21।।
साक्षादृष्टोऽसि न पुनर्विद्मस्त्वां वयमञ्जसा।
प्रसीद कथयात्मानं न धियां पथि वर्तसे।। 22।।
किं येन सृजसि व्यक्तमुत येन विभर्षि तत्।
अथ विश्वस्य संहर्ता भागः कतम एष ते।। 23।।

तब वेद-वेदाङ्ग को जानने वाले और प्रेम से पुलकित शरीर वाले सप्त ऋषियों ने शंकर जी का पूजन करके उनसे कहा कि भली प्रकार वेद पढ़ने का, विधि पूर्वक हवन करने का और तप करने का जो कुछ भी फल हो सकता है वह सब आज हमें मिल गया।।16।। क्योंकि आपके जिस मन तक किसी की इच्छाएँ भी नहीं पहुँच सकतीं उसी मन से आप संसार के स्वामी ने हम लोगो को स्मरण किया।।17।। वैसे तो आप जिसके मन में बसते हैं, वही सबसे बड़ा पुण्यात्मा है, पर जो आपके चित्त में आकर बसता हो उसका तो फिर कहना ही क्या।।18।। यद्यपि हम लोग सूर्य और चन्द्रमा दोनों से ही ऊपर रहते हैं, पर आज आपने स्मरण करके हमें उनसे और भी ऊँचा चढ़ा दिया है।।19।। आपसे यह आदर पाकर हम अपने मन में फूले नहीं समाते; क्योंकि अपने गुणों पर लोगों को तभी सच्चा विश्वास होता है, जब सज्जन लोग उसके गुणों का आदर करें।।20।। हे शिव जी! आपने हमको जो स्मरण किया है, उससे हमारे मन में आपके लिये जो प्रेम उत्पन्न हुआ है, उसे हम अपने मुँह से आपके आगे क्या कहें, क्योंकि आप तो घट-घट की जानने वाले हैं।।21।। हे देव! यद्यपि हम आपको अपनी आँखों के आगे खड़ा देख रहे हैं, फिर भी हम आपका भेद ठीक-ठाक जान नहीं पा रहे हैं इसलिये आप कृपा करके अपना स्वरूप तो बताइए; क्योंकि हमारी बुद्धि तो आप तक पहुँच नहीं पाती।।22।। यह तो बताइए कि आपकी जो मूर्ति हम देख रहे हैं, यह क्या वही है जिससे आप सृष्टि उत्पन्न करते हैं, या वह है जिससे पालन करते हैं या वह है जिससे संसार का संहार करते हैं।।23।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा सुमहत्येषा प्रार्थना देव तिष्ठतु।
चिन्तितोपस्थिताँस्तावच्छाधि नः करवाम किम्।।24।।
अथ मौलिगतस्येन्दोर्विशदैर्दशनांशुभिः।
उपचिन्वन्प्रभां तन्वीं प्रत्याह परमेश्वरः।।25।।
विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित्प्रवृत्तयः।
ननु मूर्तिभिरष्टाभिरित्थंभूतोऽस्मि सूचितः।।26।।
सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टिं विद्युत्वानिव चातकैः।
अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रसूतिं प्रति याचितः।।27।।
अत आहर्तुमिच्छामि पार्वतीमात्मजन्मने।
उत्पत्तये हविर्भोक्तुर्यजमान इवारणिम्।।28।।
तामस्मदर्थे युष्माभिर्याचितव्यो हिमालयः।
विक्रियायै न कल्पन्ते संबन्धाः सदनुष्ठिताः।।29।।
उन्नतेन स्थितिमता धुरमुद्वहता भुवः।
तेन योजितसंबन्धं वित्त मामप्यवञ्चितम्।।30।।
एवं वाच्यः स कन्यार्थमिति वो नोपदिश्यते।
भवत्प्रणीतमाचारमामनन्ति हि साधवः।।31।।

पर देव! यह तो बड़ी लम्बी कथा है। इसे अभी रहने दीजिए और पहले यह बताइए कि आपने हमें इस समय किस काम के लिये स्मरण किया है। कहिए, हमें क्या करना होगा।।24।। अपनी मन्द हँसी के कारण चकमते हुए दाँतों की दमक से सिर पर बैठे हुए बाल-चन्द्रमा की मन्दी चमक को बढ़ाते हुए महादेवी जी उन सप्त ऋषियों से बोले।।25।। हे मुनियों! आप लोग तो जानते ही हैं कि हम अपने लिये कुछ नहीं करते और हमारी आठों मूर्तियाँ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और होता—(हवन करने वाले) इस बात के साक्षी भी हैं।।26।। जैसे प्यासे चातक, बादलों से जल की बूँदें माँगते हैं, वैसे ही शत्रुओं से सताए हुए देवता लोग भी मुझसे पुत्र उत्पन्न कराना चाहते हैं।।27।। इसलिये पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से मैं पार्वती जी को उसी प्रकार लाना चाहता हूँ, जैसे अग्नि उत्पन्न करने के लिये यजमान अरणि (रगड़कर आग उपजाने वाली लकड़ी) लाता है।।28।। तो आप लोग मेरी ओर से जाकर हिमालय से पार्वती जी को माँग लीजिए; क्योंकि सज्जन लोग बीच में पकड़कर जो सम्बन्ध करा देते हैं, उसमें फिर किसी प्रकार का झंझट नहीं होता।।29।। फिर ऐसी ऊँची प्रतिष्ठा वाले और पृथ्वी को धारण करने वाले हिमालय से सम्बन्ध करके मैं भी अपने को धन्य समझूँगा।।30।। आप लोगों को यह तो समझाना नहीं है कन्या को माँगने के लिये कैसे और क्या कहिएगा; क्योंकि इस प्रकार के शिष्टाचार की जो बातें दूसरे पण्डित लोग काम में ला रहे हैं वे सब आप ही लोगों ने तो बनाई हैं।।31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्याप्यरुन्धती तत्र व्यापारं कर्तुमर्हति।
प्रायेणैवंविधे कार्ये पुरंध्रीणां प्रगल्भता।। 32।।

तत्प्रयातौषधीप्रस्थं सिद्धये हिमवत्पुरम्।
महाकोशीप्रपातेऽस्मिन्संगमः पुनरेव नः।। 33।।

तस्मिन्संयमिनामाद्ये जाते परिणयोन्मुखे।
जहुः परिग्रहव्रीडां प्राजापत्यास्तपस्विनः।। 34।।

ततः परममित्युक्त्वा प्रतस्थे मुनिमण्डलम्।
भगवानपि संप्राप्तः प्रथमोद्दिष्टमास्पदम्।। 35।।

ते चाकाशमसिश्याममुत्पत्य परमर्षयः।
आसेदुरोषधिप्रस्थं मनसा समरंहसः।। 36।।

अलकामतिवाह्येव वसतिं वसुसंपदाम्।
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशितम्।। 37।।

गङ्गास्रोतःपरिक्षिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितौषधि।
बृहन्मणिशिलासालं गुप्तावपि मनोहरम्।। 38।।

जितसिंहभया नागा यत्राश्वा बिलयोनयः।
यक्षाः किम्पुरुषाः पौरा योषितो वनदेवताः।। 39।।

आर्या अरुन्धती भी इस काम में सहायता कर सकती हैं; क्योंकि इन बातों में प्रायः स्त्रियाँ अधिक चतुर होती हैं।।32।। इसलिये अब आप लोग हिमालय के औषधिप्रस्थ नगर में जाकर काम बनाइए और वहाँ से लौटकर महाकोशी नदी के झरने पर आकर आप लोग मुझसे मिल लीजिएगा।।33।। जब सप्त ऋषियों ने देखा कि संयमियों में श्रेष्ठ महादेव जी ही विवाह के लिए इतने उतावले हैं, तब उन लोगों के मन में विवाह की बातों में जो झिझक हुआ करती है वह सब जाती रही।।34।। तब ऋषि लोग ॐ कहकर चल दिए और भगवान् शंकर भी वहाँ पहुँच गए जहाँ उन्होंने ऋषियों से मिलने को कहा था।।35।। मन के समान वेग से चलने वाले वे परम ऋषि लोग कृपाण के समान नीले आकाश में उड़ते हुए औषधिप्रस्थ नगर में पहुँच गए।।36।। वह नगर ऐसा भरापूरा था, मानो उसने धन-सम्पत्ति से भरी हुई अलका को भी नीचा दिखा दिया हो और ऐसा जान पड़ता था, मानो स्वर्ग का बढ़ा हुआ धन निकालकर इसमें ही लाकर भरा गया हो।।37।। उस नगर के चारों ओर गंगा जी की धाराएँ बहती थीं, चमकने वाली जड़ी-बूटियाँ वहाँ प्रकाश करती थीं और मणियों के ऊँचे-ऊँचे परकोटों में छिपे रहने पर भी वह नगर बड़ा सुन्दर लग रहा था।।38।। वहाँ के हाथी ऐसे लगते थे कि सिंह को भी पायें तो पछाड़ दें, और घोड़े बिलयोनि के थे। वहाँ के नागरिक भी या तो यक्ष थे या किन्नर, और स्त्रियाँ तों वन देवियाँ ही थीं।।39।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिखरासक्तमेघानां व्यज्यन्ते यत्र वेश्मनाम्।
अनुगर्जितसंदिग्धाः करणैर्मुरजस्वनाः।।40।।
यत्रकल्पद्रुमैरेव विलोलविटपांशुकैः।
गृहयन्त्रपताकाश्रीरपौरादरनिर्मिता ।।41।।
यत्र स्फटिकहर्म्येषु नक्तमापानभूमिषु।
ज्योतिषां प्रतिबिम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम्।।42।।
यत्रौषधीप्रकाशेन नक्तं दर्शितसंचराः।
अनभिज्ञास्तमिस्राणां दुर्दिनेष्वभिसारिका।।43।।
यौवनान्तं वयो यस्मिन्नान्तकः कुसुमायुधात्।
रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा संज्ञाविपर्ययः।।44।।
भ्रूभेदिभिः सकम्पोष्ठैर्ललिताङ्गुलितर्जनैः।
यत्र कोपैः कृताः स्त्रीणामाप्रसादार्थिनः प्रियाः।।45।।
संतानकतरुच्छायासुप्तविद्याधराध्वगम् ।
यस्य चोपवनं बाह्यं गन्धवद्गन्धमादनम्।।46।।
अथ ते मुनयो दिव्याः प्रेक्ष्य हैमवतं पुरम्।
स्वर्गाभिसंधिसुकृतं वञ्चनामिव मेनिरे।।47।।

इस नगर के घरों पर दिन-रात बादल छाए रहते थे और जब कभी उन घरों में मृदंग बजने लगता था, तब लोगों को पहले यही भ्रम होने लगता था कि यह बादलों की गरज की गूँज है, पर फिर उनकी ताल से समझ जाते थे कि ये बादल नहीं गरज रहे हैं, वरन् मृदंग बज रहे हैं।।40।। कल्पवृक्ष की चंचल शाखाएँ ही उस नगरी की झंडियाँ थीं और यद्यपि उन्हें किसी नागरिक ने बनाया नहीं था, फिर भी वे ऐसी लग रही थीं, मानों घरों पर डंडे खड़े करके उनमें झंडियाँ बाँध दी गई हों।।41।। स्फटिक के भवनों में सजे हुए मदिरालय पर रात को जब तारों की परछाई पड़ती थी तब ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी ने फूल बिखेर दिए हों।।42।। बरसात के दिनों में रात को चमकने वाली जड़ी-बूटियाँ ऐसा प्रकाश देती थीं कि वहाँ की अभिसारिकाओं को बरसात की घनी अँधियारी में भी अँधेरा पता नहीं चलता था।।43।। वहाँ के लोग सदैव युवा थे, कामदेव को छोड़कर और कोई किसी को मारता नहीं था और संभोग की थकावट से जो नींद आती थी, वही वहाँ की मूर्छा थी।।44।। यों तो वहाँ कोई किसी को डाँटता-डपटता नहीं था पर हाँ, वहाँ की स्त्रियाँ भौहें चढ़ा-चढ़ाकर, ओठ कँपा-कँपाकर और सुन्दर उँगलियाँ चमका-चमका कर अपने प्रेमियों को तब तक अवश्य डाँटती थी जब तक वे प्रेमी भविष्य आगे के लिये कान न पकड़ लें।।45।। गन्धमादन नाम का सुगन्धित पर्वत ही उस नगर के बाहर का उपवन था, जिसके कल्प-वृक्षों की छाया में विद्याधर लोग चलते-चलते थकने पर नींद ले-लेते थे।।46।। हिमालय की उस राजधानी को देखकर उन दिव्य मुनियों ने सोचा कि स्वर्ग के लिए इतनी तपस्या करके हम लोग ठगे ही गए।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते सद्मनि गिरेर्वेगादुन्मुखद्वाःस्थवीक्षिताः।
अवतेरुर्जटाभारैर्लिखितानलनिश्चलैः ।।48।।

गगनादवतीर्णा सा यथावृद्धपुरस्सरा।
तोयान्तर्भास्करालीव रेजे मुनिपरम्परा।।49।।

तानर्घ्यानर्घ्यमादाय दूरात्प्रत्युद्ययौ गिरिः।
नमयन्सारगुरुभिः पादन्यासैर्वसुंधराम्।।50।।

धातुताम्राधरः प्रांशुर्देवदारुबृहद्भुजः।
प्रकृत्यैव शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति।।51।।

विधिप्रयुक्तसत्कारैः स्वयं मार्गस्य दर्शकः।
स तैराक्रमयामास शुद्धान्तं शुद्धकर्मभिः।।52।।

तत्र वेत्रासनासीनान्कृतासनपरिग्रहः।
इत्युवाचेश्वरान्वाचं प्राञ्जलिर्भूधरेश्वरः।।53।।

अपमेघोदयं वर्षमदृष्टकुसुमं फलम्।
अतर्कितोपपन्नं वो दर्शनं प्रतिभाति मे।।54।।

मूढं बुद्धमिवात्मानं हैमीभूतमिवायसम्।
भूमेर्दिवमिवारूढं मन्ये भवदनुग्रहात्।।55।।

चित्र में बनी हुई आग की निश्चल लपटों के समान अपनी जटाएँ लिए जब वे बड़े वेग से हिमालय के भवन पर उतरे, तब हिमालय के द्वार-रक्षक ऊपर मुँह उठा-उठाकर उन्हें आश्चर्य के साथ देखने लगे।।48।। आकाश में एक-एक करके उतरते हुए वे मुनि ऐसे शोभा देते थे, जैसे चलते हुए जल में पड़ी हुई सूर्य की बहुत सी परछाइयाँ हों।।49।। उन्हें देखकर हाथ में अर्घ्य पाद्य लेकर दूर से ही उनकी पूजा करने के लिये, जब हिमालय अपने ठोस बोझीले पैर बढ़ाता हुआ चला तो उसके पैरों की धमक से पृथ्वी भी पग-पग पर झुकती चली।।50।। मुनियों ने देखते ही पहचान लिया कि यह गेरु आदि धातुओं की लाल चट्टानों के समान ओठों वाला, देवदारु के बड़े-बड़े वृक्षों की भुजाओं वाला और स्वभाव से ही पत्थर की शिलाओं वाली चौड़ी और पक्की छाती वाला हिमालय ही है।।51।। हिमालय ने बड़ी विधि के साथ उन ऋषियों की पूजा की और उन सत्कर्म करने वाले ऋषियों को मार्ग दिखाता हुआ, उन्हें अपने साथ रनिवास में ले गये।।52।। हिमालय ने इन ऋषियों को बेंत के आसानों पर बैठा दिया और फिर हाथ जोड़कर उनसे कहा।।53।। आपका इस प्रकार अचानक आना मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे बिना बादलों के वर्षा हो गई हो या बिना फूल के आए ही फल निकल आया हो।।54।। मैं अपने को आज ऐसा समझ रहा हूँ, मानो मुझ मूर्ख को ज्ञान मिल गया हो, लोहे से सोना बन गया हूँ और पृथ्वी पर रहते हुए भी स्वर्ग में चढ़ गया हूँ।। 55।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्यप्रभृति भूतानामधिगम्योऽस्मि शुद्धये।
यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते।।56।।
अवैमि पूतमात्मनं द्वयेनैव द्विजोत्तमाः।
मूर्ध्नि गङ्गाप्रपातेन धौतपादाम्भसा च वः।।57।।
जङ्गमं प्रैष्यभावे वः स्थावरं चरणाङ्कितम्।
विभक्तानुग्रहं मन्ये द्विरूपमपि मे वपुः।।58।।
भवत्संभावनोत्थाय परितोषाय मूर्च्छते।
अपि व्याप्तदिगन्तानि नाङ्गानि प्रभवन्ति मे।।59।।
न केवलं दरीसंस्थं भास्वतां दर्शनेन वः।
अन्तर्गतमपास्तं मे रजसोऽपि परं तमः।।60।।
कर्तव्यं वो न पश्यामि स्याच्चेत्किं नोपपद्यते।
मन्ये मत्पावनायैव प्रस्थानं भवतामिह।।61।।
तथापि तावत्कस्मिंश्चिदाज्ञां मे दातुमर्हथ।
विनियोगप्रसादा हि किङ्कराः प्रभविष्णुषु।।62।।
एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम्।
ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु।।63।।

मैं आज से अपने को ऐसा बड़ा भारी तीर्थ समझने लगा हूँ, जहाँ आते ही लोग शुद्ध हो जायँ, क्योंकि सज्जन लोग जहाँ आकर बस जायँ वही तीर्थ हो जाता है।।56।। हे ब्रह्म ऋषियों! मैं अपने को दो प्रकार से पवित्र मानता हूँ, एक तो सिर पर गंगा जी की धारा गिरने से, दूसरे आप लोगों के चरण की धोवन पा लेने से।।57।। हे मुनियों! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आप लोगों ने मेरे चल और अचल दोनों शरीरों पर अलग-अलग कृपा की है; क्योंकि मेरे चल शरीर को आपने अपना दास बना लिया है और मेरे अचल शरीर पर आपने अपने पवित्र चरण रखे हैं।।58।। आप लोगों ने यहाँ आकर जो कृपा की है उससे मुझे इतनी प्रसन्नता हो रही है कि दूर-दूर तक फैले हुए, अपने इन बड़े अङ्गों में भी मैं फूला नहीं समा रहा हूँ।।59।। आप जैसे तेजस्वियों के दर्शन से केवल मेरी गुफाओं का ही अँधेरा नहीं मिटा, वरन् मेरे हृदय के अज्ञान का अँधेरा भी जाता रहा।।60।। मेरी समझ में आप किसी काम से तो यहाँ नहीं आये होंगे। क्योंकि आप में तो स्वयं इतनी शक्ति है कि किसी भी काम को बात ही बात में पूरा कर लें। इसलिये मैं तो यही समझता हूँ कि केवल मुझको पवित्र करने के लिये ही आप लोगों ने यहाँ आने का कष्ट किया है।।61।। पर जब आप आ ही गये हैं, तो मेरे लिए कोई सेवा बताइए। स्वामी को तभी प्रसन्न समझना चाहिए जब वे सेवक से कुछ करने को कहें।।62।। यहाँ आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये मैं आपके आगे खड़ा हूँ, ये मेरी स्त्रियाँ हैं और यह मेरे घर भर की प्यारी कन्या है। इनमें से जिससे भी आपका काम बने उसे आज्ञा दीजिए, क्योंकि धन-सम्पत्ति आदि जितनी बाहरी वस्तुएँ हैं, वे तो आपकी सेवा के लिये तुच्छ हैं इसलिये उनका नाम लेते हुए भी मुझे हिचक हो रही है।।63।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यूचिवाँस्तमेवार्थंगुहामुखविसर्पिणा ।
द्विरिव प्रतिशब्देन व्याजहार हिमालयः।। 64।।

अथाङ्गिरसमग्रण्यमुदाहरणवस्तुषु ।
ऋषयो नोदयामासुः प्रत्युवाच स भूधरम्।। 65।।

उपपन्नमिदं सर्वमतः परमपि त्वयि।
मनसः शिखराणां च सदृशी ते समुन्नतिः।। 66।।

स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथा हि ते।
चराचराणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः।। 67।।

गामधास्यत्कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः।
आरसातलमूलात्त्वमवालम्बिष्यथा न चेत्।। 68।।

अच्छिन्नामलसंतानाः समुद्रोर्म्यनिवारिताः।
पुनन्ति लोकान्पुण्यत्वाकीर्तयः सरितश्च ते।। 69।।

यथैव श्लाघ्यते गङ्गा पादेन परमेष्ठिनः।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया।। 70।।

हिमालय के कह चुकने पर गुफाओं से जो गूंज निकली वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो हिमालय ने अपनी बात फिर से दुहरा दी हो।।64।। तब ऋषियों ने महादेव जी का संदेश हिमालय से कहने के लिये अपने में से उन अंगिरा ऋषि को उकसाया जो बातचीत करने में बड़े चतुर थे। तब अंगिरा ऋषि ने हिमालय से कहा।।65।। हे हिमालय! जो कुछ आपने कहा है, वह और उससे भी अधिक जो कुछ कहा जाय, सब आपको शोभा देता है। क्योंकि आपका मन वैसा ही ऊँचा है जैसी आपकी चोटियाँ।।66।। आपको जो सब अचल पदार्थों का विष्णु कहा जाता है, वह ठीक ही है; क्योंकि चर और अचर सब आपकी गोद से सहारा पाते हैं, जितने रत्न हैं वे सब आपकी गोद में होते हैं और आपकी ही गोद से निकली हुई नदियों से आर्यावर्त्त जी रहा है।।67।। यदि आप पाताल के नीचे तक पृथ्वी को अपने बोझ से न दबाए रहें तो बताइए शेषनाग अपने कमल की नाल के समान कोमल फणों पर पृथ्वी को कैसे सँभालते।।68।। जैसे आपके यहाँ से निकलती हुई, निरन्तर बहती हुई और समुद्र की लहरों से भी टक्कर लेने वाली निर्मल नदियाँ अपनी पवित्रता से सारे संसार को पवित्र करती हैं वैसे ही आपकी कीर्ति भी सब लोकों को पवित्र करती है।।69।। जैसे गंगा जी विष्णु के, चरणों से निकलकर अपने को बहुत बड़ा मानती हैं उसी प्रकार आपके शिखर से निकलकर बहने में भी वे अपनी बड़ाई ही समझती हैं।।70।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमा हरेः।
त्रिविक्रमोद्यतस्यासीत्स तु स्वाभाविकस्तव।।71।।
यज्ञभागभुजां मध्ये पदमातस्थुषा त्वया।
उच्चैर्हिरण्मयं शृङ्गं सुमेरोर्वितथीकृतम्।।72।।
काठिन्यं स्थावरे काये भवता सर्वमर्पितम्।
इदं तु ते भक्तिनम्रं सतामाराधनं वपुः।।73।।
तदागमनकार्यं नः शृणु कार्यं तवैव तत्।
श्रेयसामुपदेशात्तु वयमत्रांशभागिनः।।74।।
आणिमादि - गुणोपेतमस्पृष्टपुरुषान्तरम्।
शब्दमीश्वर इत्युच्चैः सार्द्धचन्द्रं बिभर्ति यः।।75।।
कलितान्योन्यसामर्थ्यैः पृथिव्यादिभिरात्मभिः।
येनेदं ध्रियते विश्वं धुर्यैर्यानमिवाध्वनि।।76।।
योगिनो यं विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तरवर्तिनम्।
अनावृत्तिभयं यस्य पदमाहुर्मनीषिणः।।77।।
स ते दुहितरं साक्षात्साक्षी विश्वस्य कर्मणाम्।
वृणुते वरदः शंभुरस्मत्संक्रामितैः पदैः।।78।।

भगवान् विष्णु की महिमा संसार में तब फैली, जब उन्होंनें ऊपर, नीचे और तिरछे पैर रखकर वामन अवतार धारण करके तीन लोकों को माप डाला, पर आपकी महिमा तो पहले से ही तीनों लोकों में फैली हुई है।।71।। यज्ञ का भाग पाने वाला देवताओं में स्थान पाकर आपने सुमेरु पर्वत की सुनहरी और ऊँची चोटियों को भी नीचा दिखा दिया।।72।। आपने अपनी सारी कठोरता अपने अचल शरीर में भर ली है। आपका यह चल शरीर भक्ति से ऐसा झुका हुआ है कि सज्जन लोग आ-आकर इसकी पूजा किया करते हैं।।73।। इसलिये हम आपको आने का कारण बताते हैं और वह काम ऐसा है जिसमें आपकी ही भलाई है और यह भली बात आपको समझाने के बहाने हम लोगों को भी थोड़ी-सी बड़ाई मिल जायगी।।74।। आप तो जानते ही होंगे कि अणिमा आदि आठों सिद्धियों के जो स्वामी हैं, उन्हें छोड़कर दूसरा कोई ईश्वर कहला नहीं सकता, जिनके माथे पर आधा चन्द्रमा बसा हुआ है, जो अपने पृथ्वी-जल आदि उन आठों शरीर से पृथ्वी को जिलाए रहते हैं, जो एक दूसरे की शक्ति को बढ़ाने वाले और संसार को इस प्रकार ठीक से चलाने वाले हैं, जैसे घोड़े मार्ग में रथ को लीक में बाँधे रहते हैं, जिन्हें योगी लोग अपने शरीर के भीतर बैठा हुआ पाते हैं और जिनके लिये विद्वानों का कहना है कि वे जन्म-मरण के बन्धनों से बाहर ही है, उन्हीं संसार भर के कामों को देखने वाले और वर देने वाले शंकर जी ने हम लोगों के मुँह से संदेशा भेजकर स्वयं अपने लिये आपकी पुत्री पार्वती को माँगा है।।75-78।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता।। 79।।
यावन्त्येतानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
मातरं कल्पयन्त्वेनामीशो हि जगतः पिता।। 80।।
प्रणम्य शितिकण्ठाय विबुधास्तदनन्तरम्।
चरणौ रञ्जयन्त्वस्याश्चूडामणिमरीचिभिः।। 81।।
उमा वधूर्भवान्दाता याचितार इमे वयम्।
वरः शंभुरलं ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः।। 82।।
अस्तोतुः स्तूयमानस्य वन्द्यस्यानन्यवन्दिनः।
सुतासंबन्धविधिना भव विश्वगुरोर्गुरुः।। 83।।
एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।। 84।।
शैलः संपूर्णकामोऽपि मेनामुखमुदैक्षत।
प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः।। 85।।
मेने मेनापि तत्सर्वं पत्युः कार्यमभीप्सितम्।
भवन्त्यव्यभिचोरिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः।। 86।।

इसलिये आप शिव जी से अपनी पुत्री का वैसे ही अटूट सम्बन्ध कर दीजिए, जैसे वाणी का अर्थ से हो गया है, क्योंकि अच्छे पति से कन्या का विवाह हो जाय तो पिता की चिन्ता मिट जाती है।।79।। आप यह समझ लीजिए कि महादेव जी संसार के पिता हैं; इसलिये पार्वती जी भी संसार के चर और अचर सब प्राणियों की माता बन जायँगी और फिर इतनी पूजनीय हो जायँगी कि देवता लोग महादेव जी को प्रणाम करके अपने सिर पर धरे हुए मणियों की किरणों से पार्वती जी के ही चरण रँगा करेंगे।।80-81।। संयोग तो देखो कि उमा हों बहू, आप हों कन्यादान करने वाले, हम हों विवाह के लिये कहने वाले और महादेव जी हों वर। बताओ तुम्हारे कुल के लिये इससे बढ़कर और कौन-सी प्रतिष्ठा की बात होगी।।82।। और फिर, उनसे अपनी पुत्री का विवाह करके आप उन महादेव जी के भी बड़े बन जाइए जो स्वयं किसी की स्तुति नहीं करते पर संसार जिनकी स्तुति करता है और जो स्वयं किसी की वन्दना नहीं करते पर संसार जिनकी वन्दना करता है।।83।। देवर्षि लोग जिस समय यह कह रहे थे, उस समय पार्वती जी अपने पिता के पास नीचा मुँह किए खिलौने के कमल के पत्ते गिन रही थीं।।84।। यद्यपि हिमालय स्वयं तो इससे सहमत थे, फिर भी उन्होंने इसका उत्तर पाने के लिये मेना की ओर देखा; क्योंकि जब कभी कन्या के सम्बन्ध की कोई बात होती है, तो गृहस्थ लोग अपनी स्त्रियों से ही सम्मति लिया करते हैं।।85।। मेना ने भी अपने पति की हाँ में हाँ मिलाकर सब बातें मान लीं क्योंकि जो सती स्त्रियाँ हुआ करती हैं, वे किसी भी बात में पति से बाहर नहीं होतीं।। 86।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदमत्रोत्तरं न्याय्यमिति बुद्ध्या विमृश्य सः।
आददे वचसामन्ते मङ्गलालंकृतां सुताम्।।87।।

एहि विश्वात्मने वत्से भिक्षासि परिकल्पता।
अर्थिनो मुनयः प्राप्तं गृहमेधिफलं मया।।88।।

एतावदुक्त्वा तनयामृषीनाह महीधरः।
इयं नमति वः सर्वांस्त्रिलोचनवधूरिति।।89।।

ईप्सितार्थक्रियोदारं तेऽभिनन्द्य गिरेर्वचः।
आशीभिरेधयामासुः पुरःपाकाभिरम्बिकाम्।।90।।

तां प्रणामादरस्रस्तजाम्बूनदवतंसकाम्।
अङ्कमारोपयामास लज्जमानामरुन्धती।।91।।

तन्मातरं चाश्रुमुखीं दुहितृस्नेहविक्लवाम्।
वरस्यानन्यपूर्वस्य विशोकामकरोद्गुणैः।।92।।

वैवाहिकीं तिथिं पृष्टास्तत्क्षणं हरबन्धुना।
ते त्र्यहादूर्ध्वमाख्याय चेरुश्चीरपरिग्रहाः।।93।।

ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्राप्य च शूलिनम्।
सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः।।94।।

ऋषियों से कह चुकने पर हिमालय ने सुन्दर मांगलिक वस्त्रों से सजी हुई अपनी कन्या को बुलाया और कहा-यहाँ आओ वत्से! देखो, घट-घट में रमने वाले शिवजी ने मुझसे तुम्हें माँगा है और वह भिक्षा लेने के लिये ये सप्त ऋषि लोग आए हुए हैं। सचमुच आज मुझे गृहस्थ होने का सच्चा फल मिला है कि ऐसे माँगने वाले मेरे द्वार पर पधारे।।87-88।। अपनी पुत्री से इतना कहकर वे ऋषियों से बोले—यह महादेव जी की पत्नी आपको प्रणाम करती है।।89।। अपना काम पूरा हुआ देखकर सप्त ऋषियों ने हिमालय की प्रशंसा की। उन्होंने अम्बिका को ऐसे आशीर्वाद दिए, जो तत्काल फल देने वाले हों।।90।। ऋषियों को प्रणाम करने के लिए पार्वती जी ज्यों ही लजाती हुई झुकीं कि उनके कानों से सोने का कुण्डल खिसक गया और अरुन्धती जी ने उन्हें झट उठाकर अपनी गोद में बैठा लिया।।91।। मेना अपनी पुत्री के स्नेह में इतनी अधीर हो गईं कि उनकी आँखें डबडबा आईं; पर अरुन्धती जी ने उन्हें अनोखे वर के गुण सुनाकर बड़ा धीरज बँधाया।।92।। विवाह की तिथि पूछे जाने पर सप्त ऋषियों ने बताया कि तीन दिन बाद विवाह करना ठीक होगा। यह कहकर वे सब ऋषि वहाँ से विदा हो गए।।93।। हिमालय से विदा होकर उन्होंने महादेव जी से जाकर बताया कि सब ठीक हो गया है। और फिर उनसे आज्ञा लेकर वे आकाश में उड़ गए।।94।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशुपतिरपि तान्ययहानि कृच्छ्रादगमयदद्रिसुतासमागमोत्कः।
कमपरमवशं न विप्रकुर्युर्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः।। 95।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
उमाप्रदानो नाम षष्ठः सर्गः।।

पार्वती जी से मिलने के लिये महादेव जी इतने उतावले हो गए कि तीन दिन भी उन्होंने बड़ी कठिनाई से काटे। बताइए जब महादेव जी जैसों की प्रेम में यह दशा हो जाती है, तब भला दूसरे लोग अपने मन को कैसे सँभाल सकते हैं।।95।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित कुमारसंभव नाम के महाकाव्य में
'पार्वती जी की मँगनी' नाम का छठा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। सप्तमः सर्गः ।।

अथौषधीनामधिपस्य बृद्धौ तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम्।
समेतबन्धुर्हिमवान्सुताया विवाहदीक्षाविधिमन्वतिष्ठत्।।1।।
वैवाहिकैः कौतुकसंविधानैर्गृहे गृहे व्यग्रपुरन्धिवर्गम्।
आसीत्पुरं सानुमतोऽनुरागादन्तःपुरं चैककुलोपमेयम्।।2।।
संतानकाकीर्णमहापथं तच्चीनांशुकैः कल्पितकेतुमालम्।
भासोज्जवलत्काञ्चनतोरणानां स्थानान्तरं स्वर्ग इवावभासे।।3।।
एकैव सत्यामपि पुत्रपङ्क्तौ चिरस्य दृष्टेव मृतोत्थितेव।
आसन्नपाणिग्रहणेति पित्रोरुमा विशेषोच्छ्वसितं बभूव।।4।।
अङ्काद्ययावङ्कमुदीरिताशीः सा मण्डनान्मण्डनमन्वभुङ्क्त।
संवन्धिभिन्नोऽपि गिरेः कुलस्य स्नेहस्तदेकायतनं जगाय।।5।।
मैत्रे मुहुर्ते शशलाञ्छनेन योगं गतासूत्तरफल्गुनीषु।
तस्याः शरीरे प्रतिकर्म चक्रुर्बन्धुस्त्रियो याः पतिपुत्रवत्यः।।6।।
सा गौरसिद्धार्थनिवेशवद्भिर्दूर्वाप्रबालैः प्रतिभिन्नशोभम्।
निर्नाभि कौशेयमुपात्तबाणमभ्यङ्गनेपथ्यमलञ्चकार।।7।।

सातवाँ सर्ग

तीन दिन बाद हिमालय ने लग्न से सातवें घर में पड़ी हुई शुक्लपक्ष की शुभ तिथि को अपने भाई-बन्धुओं को बुलाकर शंकर जी के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।।1।। वहाँ के सब लोग हिमालय से ऐसा प्रेम करते थे कि उस नगर के घर-घर में सब स्त्रियाँ बड़ी धूमधाम के साथ विवाह का उत्सव मना रही थीं। घर और बाहर के लोग ऐसे हिलमिलकर काम कर रहे थे, मानो सब एक ही कुल के हों।।2।। बड़ी-बड़ी सड़कों पर कल्पवृक्ष के फूल बिछे हुए थे, दोनों और रेशमी झंडियाँ पातों में टँगी हुई थीं और द्वार-द्वार पर सोने के बन्दनवार बँधे हुए थे। इन सबकी चमक से जगमगाता हुआ वह नगर ऐसा जान पड़ता था, मानो स्वर्ग ही उतर कर वहाँ चला आया हो।।3।। यद्यपि हिमालय के बहुत से पुत्र थे फिर भी उस समय हिमालय और मेना दोनों की पार्वती जी ऐसी प्राण से बढ़कर प्यारी लग रही थीं, मानो बहुत दिनों पर मिली हों या अभी जी कर उठी हों; क्योंकि विवाह हो जाने पर वे अभी वहाँ से चली जाने वाली थीं।।4।। सब कुटुम्बियों ने पार्वती जी को बारी-बारी अपनी-अपनी गोदी में बैठाकर आशीर्वाद दिया और एक-से-एक बढ़कर गहने दिए। ऐसा जान पड़ता था, मानो हिमालय के सब कुटुम्बियों का स्नेह पार्वती जी में ही आकर भर गया हो।।5।। सूर्य निकलने के तीन मुहूर्त्त पीछे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में कुटुम्ब की सुहागिन और पुत्रवती स्त्रियाँ पार्वती जी का शृंगार करने लगीं।।6।। पहले दूब के अंकुरों और सरसों के दानों से उनका शृंगार किया गया फिर उन्हें नाभि तक ऊँची रेशमी साड़ी पहना कर उसमें एक बाण खोंस दिया गया। इस प्रकार तेल लगाकर शृंगार करने की सजावट पूरी हो गई।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वभौ च संपर्कमुपेत्य बाला नवेव दीक्षाविधिसायकेन।
करेण भानोर्बहुलावसाने संधुक्ष्यमाणेव शशाङ्कलेखा।।8।।
तां लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलामाश्यानकालेयकृताङ्गरागाम्।
वासो वसानामभिषेकयोग्यं नार्यश्चतुष्काभिमुखं व्यनैषुः।।9।।
विन्यस्तवैदूर्यशिलातलेऽस्मिन्नाद्धमुक्ताफलभक्तिचित्रे।
आवर्जिताष्टापदकुम्भतोयैः सतूर्यमेनां स्नपयांबभूवुः।।10।।
सा मङ्गलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा।
निर्वृत्तपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे।।11।।
तस्मात्प्रदेशाच्च वितानवन्तं युक्तं मणिस्तम्भचतुष्टयेन।
पतिव्रताभिः परिगृह्य निन्ये क्लृप्तासनं कौतुकवेदिमध्यम्।।12।।
तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य तन्वीं क्षणं व्यलम्बन्त पुरोनिषण्णाः।
भूतार्थशोभाह्रियमाणनेत्राः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्यः।।13।।
धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम्।
पर्याक्षिपत्काचिदुदारबन्धं दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना।।14।।
विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरङ्गं गोरोचनापत्रविभक्तमस्याः।
सा चक्रवाकाङ्कितसैकतायास्त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ।।15।।

इस नये विवाह का बाण कमर में खोंसकर पार्वती जी ऐसे चमकने लगीं जैसे शुक्लपक्ष में सूर्य की किरणें पाकर चन्द्रमा चकमने लगता है।।8।। तब सुहागिन स्त्रियों ने उनके शरीर पर मले हुए तेल को लोध्र की बुकनी से सुखाया और कुछ-कुछ गीला सुगन्धित तेल लेकर उनका शरीर रँगा। तब स्नान करने का कपड़ा पहनाकर, वे उन्हें चौकोर स्नान घर में लिवा ले गईं।।9।। उस स्नान घर में नीलमणि की एक सुन्दर चौकी बिछी हुई थी और चारों ओर रंग बिरंगी मोतियों की माला सजी हुई थीं उस चौकी पर उन स्त्रियों ने उसको बैठाया और गाते-बजाते हुए सोने के घड़ों के जल से पार्वती जी को नहला दिया।।10।। मंगलस्नान करने से पार्वती जी का शरीर अत्यन्त निर्मल हो गया और उन्होंने विवाह के वस्त्र पहन लिए। उस समय वे ऐसे लगने लगीं मानो गरजते हुए बादलों के जल से धुली हुई और काँस के फूलों से भरी हुई धरती शोभा दे रही हो।।11।। नहला-धुलाकर वे सुहागिनी पतिव्रताएँ पार्वती जी को सहारा देकर उस एकान्त भवन में ले गई जहाँ मणियों के खंभों पर चँदोवा तना हुआ था, बीच में मंगल-वेदी बनी हुई थी और उस पर सजा हुआ आसन बिछा हुआ था।।12।। वहाँ उन्होंने पार्वती जी को पूरब की ओर मुँह करके बैठा दिया। शृंगार की सब वस्तुएँ पास में होने पर भी वे सब पार्वती जी की स्वाभाविक शोभा पर ही इतनी लट्टू हो गईं कि कुछ देर तक तो वे सुध-बुध भूलकर उनकी ओर एकटक निहारती हुई बैठी रहीं।।13।। फिर, किसी ने अगर-चन्दन के धुएँ से उनके बाल सुखा कर बालों में फूल गूँथे और फिर दूब में पिरोई हुई पीले महुए के फूलों की माला उनके जूड़े में लपेटी।।14।। किसी ने उजले अगर से बनाया हुआ अंगराग उनके शरीर पर मला और फिर अत्यन्त लाल गोरोचन का उनके शरीर पर लेप लगाया। उस समय पार्वती जी इतनी सुन्दर लग रही थीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग्नद्विरेफं परिभूय पद्मं समेघलेखं शशिनश्च बिम्बम्।
तदाननश्रीरलकैः प्रसिद्धैश्चिच्छेद सादृश्यकथाप्रसङ्गम्।।16।।
कर्णार्पितो लोध्रकषायरूक्षे गोरोचनाक्षेपनितान्तगौरे।
तस्याः कपोले परभागलाभाद्बबन्ध चक्षूंषि यवप्ररोहः।।17।।
रेखाविभक्तः सुविभक्तगात्र्याः किंचिन्मधूच्छिष्टविमृष्टरागः।
कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यदासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठः।।18।।
पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान।।19।।
तस्याः सुजातोत्पलपत्रकान्ते प्रसाधिकाभिर्नयने निरीक्ष्य।
न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या कालाञ्जनं मङ्गलमित्युपात्तम्।।20।।
सा संभवद्भिः कुसुमैर्लतेव ज्योतिर्भिरुद्यद्भिरिव त्रियामा।
सरिद्विहङ्गैरिव लीयमानैरामुच्यमानाभरणा चकासे।।21।।
आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः।।22।।

कि उनके रूप के आगे उजली धारा वाली गंगा जी की शोभा भी फीकी पड़ गई जिनके तीर पर बालू में चकवे बैठे हों।।15।। भौंरों से घिरा हुआ कमल और बादल के टुकड़ों में लिपटा हुआ चन्द्रमा, कोई भी ऐसा न दिखाई दिया जो उनके गुथी हुई चोटी वाले मुख की सुन्दरता के आगे ठहर सके।।16।। उनके कानों पर लटकते हुए जौ के अंकुर और लोध्र से पुते तथा गोरोचन लगे हुए गोरे-गोरे गाल इतने सुन्दर लगने लगे कि सबकी आँखें बरबस उनकी ओर खिंच जाती थी।।17।। सुडौल अंगों वाली पार्वती जी का निचला ओठ ऊपर के ओठ से एक रेखा से अलग हो गया था जिस पर लगी हुई चिकनाई ने उस पर और भी लाली चढ़ाकर उसे सुन्दर बना दिया और जिसकी सुन्दरता बस फलने ही वाली थी। वह ओठ जब फड़कता था उस समय उसकी शोभा कही नहीं जा सकती।।18।। पार्वती जी के चरणों में जब सखी महावर लगा चुकी, तब उसने ठिठोली करते हुए आशीर्वाद दिया कि भगवान करे तुम इन पैरों से अपने पति के सिर की चंद्रकला को छूओ। इस पर पार्वती जी मुँह से तो कुछ न बोलीं पर एक माला उठाकर उसकी पीठ पर उन्होंने जड़ ही दी।।19।। शृंगार करने वाली स्त्री ने पार्वती जी को नीले कमल जैसी बड़ी-बड़ी और काली-काली आँखों में जो काजल लगाया, वह इसलिये नहीं कि आँजन से उनकी आँखों की कुछ शोभा बढ़ेगी; वरन् इसीलिये कि वह भी मंगल शृंगार की एक चलन थी।।20।। जैसे फूल आने पर लताएँ स्वयं ही खिल उठती है या जैसे तारे निकलने पर रात जगमगाने लगती है या जैसे रंग बिरंगे पक्षियों के आ जाने से नदी सुहावनी लगने लगती है, वैसे ही मणियों, मोतियों और सोने के गहने पहना दिए जाने पर पार्वती जी की स्वाभाविक सुन्दरता और भी निखर उठी।।21।। अपने इस सजीले रूप को दर्पण में देखकर पार्वत जी भी दंग रह गईं और महादेव जी से मिलने के लिये मचल उठीं; क्योंकि स्त्रियों का शृङ्गार तभी सफल होता है जब पति उसे देखे।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाङ्गुलिभ्यां हरितालमार्द्रं माङ्गल्यमादाय मनःशिलां च।
कर्णावसक्तामलदन्तपत्रं माता तदीयं मुखमुन्नमय्य।। 23।।
उमास्तनोद्भेदमनु प्रवृद्धो मनोरथो यः प्रथमं बभूव।
तमेव मेना दुहितुः कथंचिद्विवाहदीक्षातिलकं चकार।। 24।।
बबन्ध चास्राकुलदृष्टिरस्याः स्थानान्तरे कल्पितसन्निवेशम्।
धात्र्यङ्गुलीभिः प्रतिसार्यमाणमूर्णामयं कौतुकहस्तसूत्रम्।। 25।।
क्षीरोदवेलेव सफेनपुञ्जा पर्याप्तचन्द्रेव शरत्त्रियामा।
नवं नवक्षौमनिवासिनी सा भूयो बभौ दर्पणमादधाना।। 26।।
तामर्चिताभ्यः कुलदेवताभ्यः कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता।
अकारयत्कारयितव्यदक्षा क्रमेण पादग्रहणं सतीनाम्।। 27।।
अखण्डितं प्रेम लभस्व पत्युरित्युच्यते ताभिरुमा स्म नम्रा।
तया तु तस्यार्द्धशरीरभाजा पश्चात्कृताः स्निग्धजनाशिषोऽपि।। 28।।
इच्छाविभूत्योरनुरूपमद्रिस्तस्याः कृती कृत्यमशेषयित्वा।
सभ्यः सभायां सुहृदास्थितायां तस्थौ वृषाङ्कागमनप्रतीक्षः।। 29।।

इतने में पार्वती जी की माता मेना वहाँ आई और उन्होंने उमा का वह मुखड़ा ऊपर उठाया, जिसके दोनों और कानों में सुन्दर कर्णफूल झूल रहे थे। उस रूप को देखकर वे आनन्द से बेसुध हो गई, पर किसी प्रकार उन्होंने अपनी दो उँगलियों से गीली हरताल और मंगलसूचक मैनसिल का अपनी पुत्री के माथे पर विवाह-तिलक कर दिया। उस समय ऐसा जान पड़ा मानो मेनाने यह तिलक लगाकर, पार्वती जी के मन में जो जवानी आने के समय से ही शंकर जी को पाने की इच्छा बराबर बढ़ रही थी वह पूरी कर दी।।23-24।। आनन्द के मारे मेना की आँखों में आँसू भर आए, इसलिये ठीक-ठीक देख न सकने के कारण उन्होंने पार्वती जी के हाथ में जहाँ कंगन बाँधना था, वहाँ न बाँधकर कहीं और बाँध दिया। पर उनकी धाय ने अपनी उँगलियों से खिसका कर उनके कंगन को ठीक स्थान पर पहुँचा दिया।।25।। नई साड़ी पहने हुए और हाथ में नया दर्पण लिए हुए वे ऐसी लगने लगीं, मानो वे क्षीर समुद्र की उतराते हुए फेन वाली लहर हों।।26।। विवाह के सब रीति-ढंग जानने वाली मेना ने अपने कुल का यश बढ़ाने वाली पार्वती जी से सब कुल के देवताओं को प्रणाम करवाया और फिर सब सखियों के पैर छुआए।।27।। लज्जा से सकुचाती हुई पार्वती जी को सब सखियों ने यह आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे पति तुम्हें तन-मन से प्यार करें। पर पार्वती जी ने भगवान् शंकर के आधे शरीर में बसकर अपनी सखियों के आशीर्वाद छोटे कर दिए।।28।। हिमालय ने भी बड़े उत्साह से जी खोलकर पार्वती जी के विवाह के-समय के प्रारम्भिक काम निपटा दिए और फिर सभा में बैठकर भगवान् शंकर जी के आने की बाट जोहने लगे।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तावद्भवस्यापि कुबेरशैले तत्पूर्वपाणिग्रहणानुरूपम्।
प्रसाधनं मातृभिरादृताभिर्न्यस्तं पुरस्तात्पुरशासनस्य।। 30।।
तद्गौरवान्मङ्गलमण्डनश्रीः सा पस्पृशे केवलमीश्वरेण।
स एव वेषः परिणेतुरिष्टं भावान्तरं तस्य विभोः प्रपेदे।। 31।।
बभूव भस्मैव सिताङ्गरागः कपालमेवामलशेखरश्रीः।
उपान्तभागेषु च रोचनाङ्को गजाजिनस्यैव दुकूलभावः।। 32।।
शङ्खान्तरद्योति विलोचनं यदन्तर्निविष्टामलपिङ्गतारम्।
सान्निध्यपक्षे हरितालमय्यास्तदेव जातं तिलकक्रियायाः।। 33।।
यथाप्रदेशं भुजगेश्वराणां करिष्यतामाभरणान्तरत्वम्।
शरीरमात्रं विकृतिं प्रपेदे तथैव तस्थुः फणरत्नशोभाः।। 34।।
दिवापि निष्ठ्यूतमरीचिभासा बाल्यादनाविष्कृतलाञ्छनेन।
चन्द्रेण नित्यं प्रतिभिन्नमौलेश्चूडामणेः किं ग्रहणं हरस्य।। 35।।
इत्युद्भुतैकप्रभवः प्रभावात्प्रसिद्धनेपथ्यविधेर्विधाता।
आत्मानमासन्नगणोपनीते खड्गे निषक्तप्रतिमं ददर्श।। 36।।
स गोपतिं नन्दिभुजावलम्बी शार्दूलचर्मान्तरितोरुपृष्ठम्।
तद्भक्तिसंक्षिप्तबृहत्प्रमाणमारुह्य कैलासमिव प्रतस्थे।। 37।।

उसी समय कैलासपर्वत पर भी सप्त माताओं ने आकर शृंङ्गार की वे सब सामग्रियाँ लाकर महादेव जी के आगे रख दीं जो उनके पहले विवाह में काम आई थीं।।30।। शंकर जी ने माताओं का आदर करने के लिये वे मङ्गल शृङ्गार की समाग्रियाँ छू भर दीं, पहनी नहीं। उन्होंने अपनी शक्ति से अपने ही वेष को विवाह के योग्य बना लिया।।31।। उनके शरीर पर पुती हुई चिता की भस्म उजला अंग राग बन गई, कपाल ही गले के सुन्दर आभूषण बन गए और हाथी का चर्म ही ऐसा रेशमी वस्त्र बन गया जिसके आँचलों पर गोरोचन से हंस के जोड़े छपे हुए थे।।32।। उनके माथे में पीली पुतली वाला जो चमकता हुआ नेत्र था वही हरताल का सुन्दर तिलक बन गया।।33।। उनके शरीर के बहुत से अंगों में जो साँप लिपटे हुए थे वे भी उन-उन अंगों के आभूषण बन गए पर उनके फणों पर जो मणि थे वे ज्यों के त्यों चमकते रह गए।।34।। उनके मुकुट पर सदा रहने वाला जो चन्द्रमा दिन में भी अपनी किरणें चमकाता था और जिसके छोटे होने के कारण उसमें का कलंक दिखाई नहीं देता था वह चन्द्रमा ही उनका चूड़ामणि बन गया था, इसलिये वे दूसरा चूड़ामणि लेकर करते ही क्या।।35।। अपनी शक्ति से संसार के सभी शृंगार को बनाने वाले और सदा अनोखा काम करने वाले महादेव जी ने अपने पास बैठे हुए गण से खड्ग मँगाकर उसमें अपना मुँह देखा।।36।। फिर नन्दी के हाथ का सहारा लेकर वे अपने उस लम्बे चौड़े डील-डौल वाले बैल की पीठ पर चढ़े जिस पर सिंह की खाल बिछी हुई थी और जो ऐसा दिखाई पड़ता था मानो शंकर जी में भक्ति रखने के कारण कैलाश ने ही अपने बड़े रूप को छोटा बना लिया हो।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं मातरो देवमनुव्रज्यन्त्यः स्ववाहनक्षोभचलावतंसाः।
मुखैः प्रभामण्डलरेणुगौरैः पद्माकरं चक्रुरिवान्तरीक्षम्।। 38।।

तासां च पश्चात्कनकप्रभाणां काली कपालाभरणा चकासे।
बलाकिनी नीलपयोदराजी दूरं पुरःक्षिप्तशतह्रदेव।। 39।।

ततो गणैः शूलभृतः पुरोगैरुदीरितो मङ्गलतूर्यघोषः।
विमानशृङ्गाण्यवगाहमानः शशंस सेवावसरं सुरेभ्यः।। 40।।

उपाददे तस्य सहस्ररश्मिस्त्वष्ट्रा नवं निर्मितमातपत्रम्।
स तद्दुकूलादविदूरमौलिर्बभौ पतद्गङ्ग इवोत्तमाङ्गे।। 41।।

मूर्ते च गङ्गायमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम्।
समुद्रगारूपविपर्ययेऽपि सहंसपाते इव लक्ष्यमाणे।। 42।।

तमभ्यगच्छत्प्रथमो विधाता श्रीवत्सलक्ष्मा पुरुषश्च साक्षात्।
जयेति वाचा महिमानमस्य संवर्द्धयन्तौ हविषेव वह्निम्।। 43।।

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ।। 44।।

अपने तेजो मंडल की चमक से गोरे-गोरे मुख वाली सुन्दर माताएँ जब अपने-अपने रथों पर बैठकर पीछे-पीछे चलीं तो रथों के झटके से उनके कर्णफूल हिलने लगे। उस समय उनके मुंह आकाश में ऐसे लग रहे थे मानो किसी सरोवर में बहुत से कमल खिल गए हों।।38।। सोने के समान चमकने वाली उन माताओं के पीछे-पीछे उजले खप्परों से देह सजाए हुए भद्रकाली जी आ रही थीं, जो ऐसी लग रही थीं मानो बगुलों से भरी हुई और दूर तक चमकती हुई बिजली वाली नीले बादलों की घटा चली आ रही हो।।39।। महादेव जी के आगे-आगे चलने वाले गणों ने जो मंगल तुरही बजाई, उसकी ध्वनि ने देवताओं के विमानों की छतरियों में गूँजकर यह सूचना दी कि अब सबको अपने-अपने काम में जुट जाना चाहिए।।40।। सूर्य ने विश्वकर्मा के हाथ का बनाया हुआ नया छत्र लेकर शिव जी पर लगा दिया। उस समय शिव जी के सिर के पास छत्र से लटकता हुआ कपड़ा ऐसा जान पड़ता था मानो गंगा जी की धारा ही गिर रही हो।।41।। गंगा और यमुना भी अपना नदी का रूप छोड़कर महादेव जी पर चँवर डुलाने लगीं। वे चँवर ऐसे लगते थे मानो हंस उड़ रहे हों।।42।। जैसे आग में घी डालने से उसकी लपट बढ़ जाती है, वैसे ही ब्रह्मा और विष्णु ने आकर उनकी जय-जयकार करके उनकी महिमा और भी बढ़ा दी।।43।। सच्ची बात तो यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही मूर्ति के तीन रूप हो गए हैं और ये सब बराबर आपस में एक दूसरे से छोटे-बड़े हुआ ही करते हैं। कभी शिव जी विष्णु से बढ़ जाते हैं, कभी ब्रह्मा इन दोनों से बढ़ जाते हैं और कभी ये दोनों ब्रह्मा से बढ़ जाते हैं।।44।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं लोकपालाःपुरुहूतमुख्याः श्रीलक्षणोत्सर्गविनीतवेषाः।
दृष्टिप्रदाने कृतनन्दिसंज्ञास्तद्दर्शिताः प्राञ्जलयः प्रणेमुः।। 45।।
कम्पेन मूर्ध्नः शतपत्रयोनिं वाचा हरिं वृत्रहणं स्मितेन।
आलोकमात्रेण सुरानशेषान्सम्भावयामास यथा प्रधानम्।। 46।।
तस्मै जयाशीः ससृजे पुरस्तात्सप्तर्षिभिस्तान्स्मितपूर्वमाह।
विवाहयज्ञे विततेऽत्र यूयमध्वर्यवः पूर्ववृता मयेति।। 47।।
विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः संगीयमानत्रिपुरावदानः।
अध्वानमध्वान्तविकारलङ्घ्यस्ततार ताराधिपखण्डधारी।। 48।।
खे खेलगामी तमुवाह वाहः सशब्दचामीकरकिंकिणीकः।
तटाभिघातादिव लग्नपङ्के धुन्वन्मुहुः प्रोतघने विषाणे।। 49।।
स प्रापदप्राप्तपराभियोगं नगेन्द्रगुप्तं नगरं मुहूर्तात्।
पुरोविलग्नैर्हरदृष्टिपातैः सुवर्णसूत्रैरिव कृष्यमाणः।। 50।।
तस्योपकण्ठे घननीलकण्ठः कुतूहलादुन्मुखपौरदृष्टः।
स्वबाणचिह्नादवतीर्य मार्गादासन्नभूपृष्ठमियाय देवः।। 51।।

वहाँ अपना राजसी ठाट छोड़कर और विनीत वेश बनाकर इन्द्र आदि लोक-पाल जब उनके दर्शन करने को आए तो नन्दी ने संकेत से इन लोगों को महादेव जी के दर्शन करा दिए, तब इन लोगों ने हाथ जोड़कर शिव जी को प्रणाम किया।।45।। शिव जी ने ब्रह्मा जी की ओर सिर हिलाकर, विष्णु जी से कुशल मंगल पूछकर, इन्द्र की ओर मुस्कराकर और जितने देवता थे उन सबको केवल देखकर जो जैसा बड़ा छोटा था वैसे ही सबका आदर किया।।46।। फिर जब सप्त ऋषियों ने जय कहकर उन्हें आशीर्वाद दिया, तब शिव जी उनसे बोले कि इस बड़े भारी विवाह के काम में पुरोहित का काम मैंने पहले से ही आपके लिये रख छोड़ा है।।47।। सब विकारों से परे रहने वाले महादेव जी जब चलने लगे, उस समय उनके आगे-आगे विश्वावसु आदि प्रसिद्ध गंधर्व गवैये त्रिपुरासुर पर विजय पाने के गीत गाते चल रहे थे।।48।। बड़ी मीठी चाल से चलने वाला और अपने गले में लटकी हुई सोने की छोटी-छोटी घंटियों को टनटनाता हुआ वह बैल उन बादलों को अपने सींगों से बार-बार झँकारता हुआ चला जा रहा था जो उसके सींगों में इस प्रकार लगे हुए थे मानो नदी के तीर के टीले ढाते समय उनमें कीचड़ लग गई हो।।49।। किसी से भी कभी न हारने वाला वह बैल हिमालय के ओषधिप्रस्थ नाम वाले नगर में इस प्रकार क्षण भर में पहुँच गया, मानो आगे पड़ती हुई शिव जी की चितवन की सोने की डोरियाँ उसे खींचती हुई ले गई हों।।50।। उसी नगर के पास बादलों के समान नीले कण्ठ वाले महादेव जी उस आकाश से पृथ्वी पर उतरे जिसमें उन्होंने त्रिपुरासुर को मारते समय बहुत से बाण चलाकर चिह्न बना दिए थे। वे जब उतर रहे थे तो वहाँ के निवासी बड़े चाव से ऊपर मुँह उठाए हुए उन्हें देख रहे थे।।51।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमृद्धिमद्बन्धुजनाधिरूढैर्वृन्दैर्गजनां गिरिचक्रवर्ती।
प्रत्युज्जगामागमनप्रतीतः प्रफुल्लवृक्षैः कटकैरिव स्वैः।। 52।।
वर्गावुभौ देवमहीधराणां द्वारे पुरस्योद्घटितापिधाने।
समीयतुर्दूरविसर्पिघोषौ भिन्नैकसेतू पयसामिवौघौ।। 53।।
ह्रीमानभूद्भूमिधरो हरेण त्रैलोक्यवन्द्येन कृतप्रणामः।
पूर्वं महिम्ना स हि तस्य दूरमावर्जितं नात्मशिरो विवेद।। 54।।
स प्रीतियोगाद्विकसन्मुखश्रीर्जामातुरग्रेसरतामुपेत्य।
प्रावेशयन्मन्दिरमृद्धमेनमागुल्फकीर्णापणमार्गपुष्पम्।। 55।।
तस्मिन्मुहूर्ते पुरसुन्दरीणामीशानसंदर्शनलालसानाम्।
प्रासादमालासु बभूवुरित्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि।। 56।।
आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः।
बद्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः।। 57।।
प्रसाधिकाऽऽलम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान।। 58।।
विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसन्निकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती।। 59।।

महादेव जी के आने से पर्वतराज हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और अपने उन धनी कुटुम्बियों को हाथी पर चढ़ा-चढ़ाकर शिव जी की अगवानी के लिये ले चले, जो उसी प्रकार सुसज्जित थे जैसे हिमालय की ढाल पर फूलों से लदे हुए वृक्ष। ।52।। इन दोनों ही दलों का हल्ला दूर तक सुनाई पड़ रहा था और वे जब हिमालय की राजधानी के खुले फाटक वाले द्वार पर आकर मिले तो ऐसे लगने लगे मानो बाँध टूट जाने पर जल की दो धाराएँ आकर आपस में मिल गई हों। ।53।। शंकर जी ने जब पहले हिमालय को प्रणाम किया, तो वह लाज से गड़ गया, पर उसे यह नहीं पता चला कि प्रणाम करने के पहले ही उनकी महिमा से ही उसका सिर झुक चुका था। ।54।। इस सुन्दर सम्बन्ध से हिमालय बड़े प्रसन्न थे। आगे-आगे चलकर वे मणियों और बेलबूटों से सजे हुए अपने जामाता को उस मार्ग से ले गए जहाँ इतने फूल बिछे थे कि उन फूलों में पैर धँसे जा रहे थे। ।55।। उसी समय महादेव जी के दर्शन के लिये चाव से भरी हुई नगर की सब सुन्दरियाँ अपना-अपना सब काम-काज छोड़कर अपने भवनों की छतों पर आ खड़ी हुईं। ।56।। एक स्त्री ज्यों ही खिड़की की ओर हड़बड़ी में भागी कि उसके जूड़े में बँधी हुई फूल की माला खुल गई और वह उसे अपने हाथ से पकड़े हुए ही चल दी उसे बाँधने की सुध न रही। ।57।। एक स्त्री अपने पैर में महावर लगवा रही थी कि उसे अधूरा छोड़कर ही वह झटपट खिड़की के पास तक अपने महावर लगे पैरों की छाप बनाती हुई दौड़ गई। ।58।। एक स्त्री अपनी दाईं आँख में काजल लगा चुकी थी पर बाईं आँख में बिना काजल लगाए हाथ में सलाई लिए हुए ही खिड़की की ओर लपकी। ।59।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः।। 60।।
अर्द्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा।। 61।।
तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन्।। 62।।
तावत्पताकाकुलमिन्दुमौलिरुत्तोरणं राजपथं प्रपेदे।
प्रासादशृङ्गाणि दिवापि कुर्वञ्ज्योत्स्नाभिषेकद्विगुणद्युतीनि।। 63।।
तमेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा।। 64।।
स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयापि तप्तम्।
या दास्यमप्यस्य लभेत नारी सा स्यात्कृतार्था किमुताङ्कशय्याम्।। 65।।
परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत्।। 66।।

एक स्त्री ज्यों ही खिड़की की जालियों में जाकर झाँकने लगी कि उसकी कमर का नीवीबन्ध खुल गया और वह बिना बाँधे ही उसे हाथ से पकड़े हुए खड़ी हुई तो उसके हाथ के कंगन के रत्न की चमक से उसकी नाभि चमकती हुई दिखाई देने लगी।।60।। एक स्त्री डोरे में मणि पिरो रही थी। इतने में ही शंकर जी की बारात का हल्ला सुनकर वह हड़बड़ाकर उठी और खिड़की की ओर दौड़ी। हुआ यह कि खिड़की तक पहुँचते-पहुँचते मणियों के दाने तो सब बिखर गए पर पैर के अँगूठे में बँधा हुआ डोरा ज्यों का त्यों फँसा रह गया।।61।। उन चाव भरे-नैन-वालियों के आसव से महकते हुए और चंचल नेत्रवाले मुख खिड़कियों में झाँकते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो खिड़कियों की जालियों में भौंरों से भरे कमल टाँग दिए गये हों।।62।। इतने में ही उन चूने से पुते हुए उजले भवनों के कंगूरों को अपने सिर के चंद्रमा की चाँदनी से और भी अधिक चमकाते हुए महादेव जी ने ध्वजाओं और पताकाओं से सजे हुए राजमार्ग में प्रवेश किया।।63।। नगर की स्त्रियाँ सब सुध-बुध भूलकर इस प्रकार एकटक देखती हुई उन्हें अपने नेत्रों से पी रही थीं मानो उनकी सब इन्द्रियाँ आकर आँखों में ही समा गई हों।।64।। वे सोचने लगीं कि ऐसे वर के लिये सुकुमार पार्वती का तप करना ठीक ही था; क्योंकि ये तो ऐसे सुन्दर हैं कि जो स्त्री इनकी दासी भी हो जाय वह भी धन्य हो जाय, फिर जो इनकी गोद में जाकर लेटे उसका तो कहना ही क्या है।।65।। सुन्दरता में एक दूसरे से बढ़े-चढ़े हुए इस जोड़े का यदि विवाह न होता तो हम यही समझते कि ब्रह्मा जी ने इन दोनों का रूप गढ़ने में जो परिश्रम किया वह सब व्यर्थ ही था।।66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न नूनमारूढरुषा शरीरमनेन दग्धं कुसुमायुधस्य।
व्रीडादमुं देवमुदीक्ष्य मन्ये संन्यस्तदेहः स्वयमेव कामः।। 67।।
अनेन संबन्धमुपेत्य दिष्ट्या मनोरथप्रार्थितमीश्वरेण।
मूर्द्धानमालि क्षितिधारणोच्चमुच्चैस्तरं वक्ष्यति शैलराजः।। 68।।
इत्योषधिप्रस्थविलासिनीनां शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखास्त्रिनेत्रः।
केयूरचूर्णीकृतलाजमुष्टिं हिमालयस्यालयमाससाद।। 69।।
तत्रावतीर्याच्युतदत्तहस्तः शरद्घनाद्दीधितिमानिवोक्ष्णः।
क्रान्तानि पूर्वं कमलासनेन कक्ष्यान्तराण्यद्रिपतेर्विवेश।। 70।।
तमन्वगिन्द्रप्रमुखाश्च देवाः सप्तर्षिपूर्वाः परमर्षयश्च।
गणाश्च गिर्यालयमभ्यगच्छन्प्रशस्तमारम्भमिवोत्तमार्थाः।। 71।।
तत्रेश्वरो विष्टरभाग्यथावत्सरत्नमर्घ्यं मधुमच्च गव्यम्।
नवे दुकूले च नगोपनीतं प्रत्यग्रहीत्सर्वममन्त्रवर्जम्।। 72।।
दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधदक्षैः।
वेलासमीपं स्फुटफेनराजिनवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः।। 73।।
तया प्रवृद्धाननचन्द्रकान्त्या प्रफुल्लचक्षुः कुमुदः कुमार्या।
प्रसन्नचेतः सलिलः शिवोऽभूत्संसज्यमानः शरदेव लोकः।। 74।।

अब हमारी समझ में आ रहा है कि इन्होंने कामदेव को क्रोध करके भस्म नहीं किया है, वरन् कामदेव ही इनकी सुन्दरता को देखकर टीस के मारे स्वयं जल मरा।।67।। हे सखी! पर्वतेश्वर हिमालय बड़े भायवान हैं। एक तो पृथ्वी धारण करने से उनका सिर वैसे ही ऊँचा था, उस पर मनचाहे वर भगवान शंकर जी से सम्बन्ध करके उनका सिर और भी ऊँचा हो जायगा।।68।। ओषधिप्रस्थ की स्त्रियों की ऐसी मीठी-मीठी बातें सुनते हुए महादेव जी हिमालय के उस घर में पहुँचे, जहाँ इतनी भीड़ थी कि कुमारियाँ आचार दिखाने के लिये जो खीलें बिखेरी थीं, वे वहाँ के लोगों के भुजबंधों की रगड़ से ही पिसकर चूर्ण बन गई थीं।।69।। वहाँ पहुँचने पर विष्णु जी ने हाथ का सहारा देकर महादेव जी को इस प्रकार बैल से उतार लिया, मानो शरद् के उजले बादलों से सूर्य को उतार लिया हो। वहाँ से वे हिमालय के भवन की उस भीतर की कोठरी में पहुँचे जहाँ ब्रह्मा जी पहले से बैठे हुए थे।।70।। उनके पीछे-पीछे इन्द्र आदि देवता सप्तर्षियों के साथ महर्षि और महादेव जी के सभी गण हिमालय के घर में उसी प्रकार बैठे जैसे किसी काम के ठीक-ठीक प्रारंभ हो जाने पर उसके पीछे और भी बहुत से बड़े-बड़े काम सिद्ध हो जाते हैं।।71।। वहाँ आसन पर महादेव जी को बैठाकर हिमालय ने रत्न, अर्घ्य, मधु, दही और वस्त्र जो कुछ लाकर दिए, वे सब उन्होंने मंत्रों के साथ ले लिए।।72।। रेशमी वस्त्र पहने हुए महादेव जी को रनिवास के सेवक उसी प्रकार पार्वती जी के पास ले गए जैसे चंद्रमा की किरणें फेन वाले समुद्र को तट तक पहुँचा देती हैं।।73।। जैसे शरद् के आने पर लोग प्रसन्न हो जाते हैं, वैसे ही अत्यन्त चमकते हुए चन्द्रमा के समान मुखवाली पार्वती को देखकर शंकर जी के नेत्ररूपी कुमुद खिल गए और उनका मन जल के समान निर्मल हो गया।।74।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तयोः समापत्तिषु कातराणि किंचिद्व्यवस्थापितसंहृतानि।
ह्रीयन्त्रणां तत्क्षणमन्वभूवन्नन्योन्यलोलानि विलोचनानि।। 75।।
तस्याः करं शैलगुरूपनीतं जग्राह ताम्राङ्गुलिमष्टमूर्तिः।
उमातनौ गूढतनोः स्मरस्य तच्छङ्किनः पूर्वमिव प्ररोहम्।। 76।।
रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नाङ्गुलिः पुङ्गवकेतुरासीत्।
वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन समं विभक्तेव मनोभवस्य।। 77।।
प्रयुक्तपाणिग्रहणं यदन्यद्वधूवरं पुष्यति कान्तिमग्र्याम्।
सान्निध्ययोगादनयोस्तदानीं किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य।। 78।।
प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्।। 79।।
तौ दंपती त्रिः परिणीय वह्निमन्योन्यसंस्पर्शनिमीलिताक्षौ।
स कारयामास वधूं पुरोधास्तस्मिन्समिद्धार्चिषि लाजमोक्षम्।। 80।।
सा लाजधूमाञ्जलिमिष्टगन्धं गुरूपदेशाद्वदनं निनाय।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहुर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे।। 81।।

पार्वती जी के और शंकर जी के नेत्र थोड़ी देर के लिये मिलकर फिर हट जाते थे और इस प्रकार एक दूसरे की चाह-भरी चितवन से देखकर उनके हृदय में फिर बड़ी लज्जा भी आ जाती थी कि हमें देखकर दूसरे क्या कहते होंगे।।75।। तब हिमालय के पुरोहित ने पार्वती जी का हाथ आगे बढ़ाकर शंकर जी के हाथ पर रख दिया। पार्वती जी का वह लाल-लाल उँगलियों वाला हाथ ऐसा लगता था मानो महादेव जी के डर से छिपे हुए कामदेव के अंकुर पहले-पहल निकल रहे हों।।76।। हाथ पकड़ते ही पार्वती जी को भी रोमांच हो आया और महादेव जी की उँगलियों से भी पसीना छूटने लगा। ऐसा जान पड़ा मानो उन दोनों का हाथ मिलाकर कामदेव ने दोनों को एक साथ अपने वश में कर लिया हो।।77।। जो पार्वती और शंकर संसार भर में विवाह के समय स्मरण किए जाने पर बहू और वरों की शोभा बढ़ाते हैं उन्हीं पार्वती और शंकर का जब स्वयं ही विवाह हो रहा हो, तब उनकी शोभा का तो कहना ही क्या।।78।। ईंधन से जली हुई अग्नि का फेरा देते समय पार्वती और शंकर जी इस प्रकार शोभित हुए, मानो रात और दिन दोनों मिलकर सुमेरु पर्वत का फेरा लगा रहे हों।।79।। एक दूसरे को छूने के कारण पार्वती और शंकर जी आँख मूँदकर आनन्द लेते हुए अग्नि का फेरा लगा रहे थे। जब तीन बार जलती हुई अग्नि के फेरे हो गए तब पुरोहित जी ने अग्नि में धान की खीलों का हवन कराया।।80।। पार्वती जी ने पुरोहित जी के कहने से उस खील के होम से उठे हुए सुगन्धित धुएँ को अपने हाथ की अंजली से सूँघा। वह धुआँ उनके गालों के पास पहुँचकर क्षण भर के लिये उनके कानों का कर्णफूल बन जाता था।।81।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदीषदार्द्रारुणगण्डलेखमुच्छ्वासिकालाञ्जनरागमक्ष्णोः।
वधूमुखं क्लान्तयवावतंसमाचारधूमग्रहणाद्बभूव।।82।।
वधूं द्विजः प्राह तवैष वत्से वह्निर्विवाहं प्रति कर्मसाक्षी।
शिवेन भर्त्रा सह धर्मचर्या कार्या त्वया मुक्तविचारयेति।83।।
आलोचनान्तं श्रवणे वितत्य पीतं गुरोस्तद्वचनं भवान्या।
निदाघकालोल्वणतापयेव माहेन्द्रमम्भः प्रथमं पृथिव्या।।84।।
ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन।
सा दृष्ट इत्याननमुन्नमय्य ह्रीसन्नकण्ठी कथमप्युवाच।।85।।
इत्थं विधिज्ञेन पुरोहितेन प्रयुक्तपाणिग्रहणोपचारौ।
प्रणेमतुस्तौ पितरौ प्रजानां पद्मासनस्थाय पितामहाय।।86।।
वधूर्विधात्रा प्रतिनन्द्यते स्म कल्याणि वीरप्रसवा भवेति।
वाचस्पतिः सन्नपि सोऽष्टमूर्तौ त्वाशास्यचिन्तास्तिमितो बभूव।।87।।
क्लृप्तोपचारां चतुरस्रवेदीं तावेत्य पश्चात्कनकासनस्थौ।
जायापती लौकिकमेषणीयमार्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम्।।88।।
पत्रान्तलग्नैर्जलबिन्दुजालैराकृष्टमुक्ताफलजालशोभम्।
तयोरुपर्यायतनालदंडमाधत्त लक्ष्मीः कमलातपत्रम्।।89।।

उस हवन के गरम धुएँ से पार्वती जी के गाल कुछ लाल हो गए, मुँह पर पसीने की बूँदे छा गई, आँखों का काला आँजन फैल गया और कानों पर रखे हुए जवे भी धुँधले पड़ गए।।82।। तब पुरोहित जी ने पार्वती जी से कहा कि हे वत्से! यह अग्नि तुम्हारे विवाह का साक्षी है। आज से तुम सब प्रकार की शंका छोड़कर सदा शिव जी के साथ धर्म के काम करना।।83।। आँखों तक अपने कान फैलाकर पार्वती जी ने पुरोहित जी की बात वैसे ही आदर से सुनी, जैसे गर्मी से तपी हुई पृथ्वी वर्षा की पहली बूँदें ग्रहण करती है।।84।। जब शंकर जी ने कहा कि ध्रुव की ओर देखो, तब पार्वती जी ने ऊपर मुँह उठाकर बहुत लजाते हुए किसी-किसी प्रकार इतना कहा—हाँ देख लिया।।85।। इस प्रकार कर्मकाण्ड जानने वाले पुरोहित जी ने संसार के माता-पिता पार्वती और शंकर जी का विवाह पूरा करा दिया। तब कमल के आसन पर बैटे हुए ब्रह्मा जी को दोनों ने प्रणाम किया।।86।। ब्रह्मा जी ने बहू को तो यह आशीर्वाद दे दिया कि हे कल्याणी! तुम वीरपुत्र की माता बनो, किन्तु वाणी के स्वामी होते हुए भी उनकी यह समझ में नहीं आया कि सब इच्छाओं से परे रहने वाले शंकर जी को हम क्या आशीर्वाद दें।।87।। वहाँ से महादेव जी और पार्वती जी, फूलों से सजे हुए चौक में लाए गए और सोने के आसन पर बैठा दिए गए। तब उनके ऊपर लौकिक-विधि से लोगों ने गीले और पीले अक्षत छिड़के।।88।। उस समय स्वयं लक्ष्मी जी, पत्तों के कोरों पर लटकती हुई और मोती के समान चमकती हुई जल की बूँदों से भरे हुए लम्बी डंठल वाले कमल का छत्र उनके ऊपर लगाकर खड़ी हो गई।।89।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विधा प्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं वधूं सुखग्राह्यनिबन्धनेन।। 90।।
तौ सन्धिषु व्यञ्जितवृत्तिभेदं रसान्तरेषु प्रतिबद्धरागम्।
अपश्यतामप्सरसां मुहूर्तं प्रयोगमाद्यं ललिताङ्गहारम्।। 91।।
देवास्तदन्ते हरमूढभार्यं किरीटबद्धाञ्जलयो निपत्य।
शापावसाने प्रतिपन्नमूर्त्तेर्ययाचिरे पञ्चशरस्य सेवाम्।। 92।।
तस्यानुमेने भगवान्विमन्युर्व्यापारमात्मन्यपि सायकानाम्।
कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति।। 93।।
अथ विबुधगणाँस्तानिन्दुमौलिर्विसृज्य, क्षितिधरपतिकन्यामाददानः करेण।
कनककलशयुक्तं भक्तिशोभासनाथं, क्षितिविरचितशय्यं कौतुकागारमागात्।। 94।।
नवपरिणयलज्जाभूषणां तत्र गौरीं, वदनमपहरन्तीं तत्कृताक्षेपमीशः।
अपि शयनसखीभ्यो दत्तवाचं कथंचित्, प्रमथमुखविकारैर्हासयामास गूढम्।। 95।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
उमापरिणयो नाम सप्तमः सर्गः।।

और सरस्वती जी भी संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में शिव और पार्वती जी की प्रशंसा करने लगीं। संस्कृत में तो उन्होंने प्रशंसनीय वर की और सरलता से समझ में आने वाली प्राकृत भाषा में उन्होंने वधू की प्रशंसा की।।90।। तब पार्वती और शंकर ने शृंगार आदि रसों वाला और सुन्दर हाव-भाव से भरा पाँचों संधियों में अलग-अलग भाषा-शैलियों से सजा हुआ नाटक थोड़ी देर तक देखा, जो अप्सराओं ने खेला था।।91।। नाटक समाप्त हो चुकने पर इन्द्र आदि देवता विवाहित शंकर जी के पास आए और अपने किरीट बाँधे हुए शिर पर हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की कि आपका विवाह हो जाने से आपका दिया हुआ शाप भी समाप्त हो गया, इसलिये आप आज्ञा दें तो कामदेव फिर से जी उठे और आपकी सेवा करे।।92।। प्रसन्न मन वाले शंकर जी ने कहा—अच्छी बात है, अब कामदेव से कह दो कि वह जी भरकर हम पर अपने बाण चलाये। ठीक ही है जो चतुर सेवक यह जानते हैं कि स्वामी से कौन-सी बात कब कहनी चाहिए, तो वे स्वामी से जो प्रार्थना करते हैं वह अवश्य ही पूरी होती है।।93।। तब शंकर जी ने इन्द्र आदि सब देवताओं को विदा किया और पार्वती जी का हाथ अपने हाथ में लेकर उस शयन-घर में पहुँचे जहाँ सेज बिछी हुई थी, फूलों की मालाएँ सजी हुई थीं और सोने का कलश रखा था।।94।। नया विवाह होने से लजीली, महादेव जी के हाथ से आँचल खींचे जाने पर अपना मुँह छिपाने वाली और सखियों की चुटकियों का ज्यों-त्यों उत्तर देने वाली पार्वती जी के आगे आकर जब प्रमथ आदि गण अनेक प्रकार के मुँह बनाने लगे, तो पार्वती जी भी मन ही मन हँस दीं।।95।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में
'पार्वती जी का विवाह वर्णन' नाम का सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अष्टमः सर्गः ।।

पाणिपीडनविधेरनन्तरं शैलराजदुहितुर्हरं प्रति।
भावसाध्वसपरिग्रहादभूत्कामदोहदमनोहरं वपुः ।। 1 ।।
व्याहता प्रतिवचो न सन्दधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका।
सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ।। 2 ।।
कैतवेन शयिते कुतूहलात्पार्वती प्रतिमुखं निपातितम्।
चक्षुरुन्मिषति सस्मितं प्रिये विद्युताहतमिव न्यमीलयत् ।। 3 ।।
नाभिदेशनिहितः सकम्पया शंकरस्य रुरुधे तया करः।
तद्दकूलमथ चाभवत्स्वयं दूरमुच्छ्वसितनीविबन्धनम् ।। 4 ।।
एवमालि निगृहीतसाध्वसं शंकरो रहसि सेव्यतामिति।
सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत्प्रमुखवर्तिनि प्रिये ।। 5 ।।
अप्यवस्तुनि कथाप्रवृत्तये प्रश्नतत्परमनङ्गशासनम्।
वीक्षितेन परिवीक्ष्य पार्वती मूर्धकम्पमयमुत्तरं ददौ ।। 6 ।।
शूलिनः करतलद्वयेन सा संनिरुध्य नयने हतांशुका।
तस्य पश्यति ललाटलोचने मोघयत्नविधुरा रहस्यभूत् ।। 7 ।।

आठवाँ सर्ग

विवाह हो जाने पर पार्वती जी यह तो चाहती ही थीं कि शिव जी से दूर न रहूँ, पर साथ ही कुछ झिझकती भी थीं। उनके इस प्रेम और झिझक से भरे सुन्दर शरीर को ही देख-देखकर महादेव जी उन पर मुग्ध हुए जा रहे थे।।1।। वे इतनी लजा रही थीं कि शिव जी कुछ पूछते भी थे तो वे बोलती न थीं, यदि वे इनका आँचल थाम लेते, तो वे उठकर भागने लगती थीं और साथ सोते समय भी वे दूसरी ओर मुँह फेरकर ही सोती थीं। पर शिव जी को इन बातों में भी कम आनन्द नहीं मिलता था।।2।। जब कभी शिव जी सोने का बहाना करके आँख मूँदकर लेट जाते तब पार्वती जी उनकी ओर घूमकर उन्हें टकटकी बाँधकर देखा करतीं। इतने में ही शिव जी मुस्कराकर आँखें खोल देते और ये चट इस फुर्ती से अपनी आँखें बन्द कर लेतीं मानो बिजली की चकाचौंध से आँखें मिच गई हों।।3।। जब शंकर जी अपना हाथ उनकी नाभि की ओर बढ़ाते तब पार्वती जी काँपते हुए उनका हाथ थाम लेतीं, पर न जाने कैसे इनकी साड़ी की गाँठ ढीली पड़कर अपने आप खुल जाती।।4।। पार्वती जी की सखियाँ इन्हें सिखाया करतीं कि देखो सखी, तुम डरना मत और जैसे-जैसे हम सिखाती हैं, वैसे ही वैसे अकेले में शंकर जी के पास रहना, पर शिव जी के सामने पहुँचते ही वे इतनी घबरा जातीं कि सखियों की सब सीख इनके ध्यान से उतर जाती।।5।। जब कभी बात-बात में शिव जी ऊट-पटाँग बातें छेड़कर इनसे उत्तर माँगते, तो ये अपने मुँह से तो कुछ न कहतीं, बस अपनी आँखें ऊपर उठाकर और सिर घुमाकर यह जता देतीं कि मैं आपकी सब बातें मानती हूँ।।6।। जब कभी अकेले में शिव जी इनके कपड़े खींचकर इन्हें निर्वस्त्र कर देते तो वे अपनी दोनों हथेलियों से शिव जी के दोनों नेत्र बन्द कर लेतीं जिससे वे देख न पायें; परन्तु शिव जी भी ऐसे गुरु थे कि झट अपना तीसरा नेत्र खोल लेते और ये हार मानकर बैठ जातीं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुम्बनेष्वधरदानवर्जितं खिन्नहस्तसदयोपगूहनम्।
क्लिष्टमन्मथमपि प्रियं प्रभोर्दुर्लभप्रतिकृतं वधूरतम्।। 8।।
यन्मुखग्रहणमक्षताधरं दानमव्रणपदं नखस्य यत्।
यद्रतं च सदयं प्रियस्य तत्पार्वती विषहते स्म नेतरत्।। 9।।
रात्रिवृत्तमनुयोक्तुमुद्यतं सा प्रभातसमये सखीजनम्।
नाकरोदपकुतूहलं ह्रिया शंसितुं तु हृदयेन तत्वरे।। 10।।
दर्पणे च परिभोगदर्शिनीं पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः।
प्रेक्ष्य विम्बमुपविम्बमात्मनः कानि कानि न चकार लज्जया।। 11।।
नीलकण्ठपरिभुक्तयौवनां तां विलोक्य जननी समाश्वसत्।
भर्तृवल्लभतया हि मानसीं मातुरस्यति शुचं वधूजनः।। 12।।
वासराणि कतिचित्कथञ्चन स्थाणुना रतमकारि चानया।
ज्ञातमन्मथरसा शनैः शनैः सा मुमोच रतिदुःखशीलताम्।। 13।।
सस्वजे प्रियमुरोनिपीडनं प्रार्थितं मुखमनेन नाहरत्।
मेखलाप्रणयलोलतां गतं हस्तमस्य शिथिलं रुरोध सा।। 14।।

महादेव जी जब इन्हें चूमना चाहते तो ये अपना ओठ ही न बढ़ातीं और जब वे कसकर छाती लगाना चाहते तो ये अपने हाथ तक न उठातीं। इस प्रकार बाधाओं के साथ अधूरे रस के साथ भी शिव जी ने वधू के साथ जो संभोग किया उसमें उन्हें आनन्द ही मिला।।8।। धीरे-धीरे पार्वती जी की झिझक मिटने लगी और महादेव जी इन्हें चूमते समय काटते नहीं थे, चूमते हुए घाव नहीं करते थे और बहुत धीरे-धीरे संभोग करते थे तो ये आनाकानी नहीं करती थीं। पर जहाँ वे इससे आगे बढ़े कि ये घबरा उठतीं।।9।। पार्वती जी इतनी लजीली थीं कि जब इनकी सखियाँ इनसे रात की बातें पूछने लगतीं तो ये चाहते हुए भी लज्जा के मारे उनसे बता नहीं पाती थीं।।10।। जब ये हाथ में दर्पण लेकर उसमें अपने शरीर पर बने हुए संभोग के चिह्न देखतीं और उस समय कहीं पीछे से चुपचाप शिव जी पहुँच जाते, तो उनकी परछाहीं दर्पण में पड़ते ही वे ऐसी लजा जातीं कि झेंपके मारे क्या-क्या नहीं करने लगती थीं।।11।। मेना को यह देखकर बड़ा सन्तोष हुआ कि महादेव जी हमारी कन्या के यौवन का उपभोग कर रहे हैं, क्योंकि जब माता यह देख लेती है कि मेरी कन्या का पति कन्या को प्यार करता है तो उसका जी हल्का हो जाता है।।12।। कुछ दिनों तक तो महादेव जी ज्यों-त्यों करके पार्वती जी से संभोग करते रहे, पर धीरे-धीरे जब पार्वती जी को संभोग का रस मिलने लगा तब इनकी भी झिझक धीरे-धीरे जाती रही।।13।। इसलिये जब महादेव जी इन्हें कसकर छाती से लगाते तो ये भी उन्हें दोनों हाथों से कस लेतीं, जब वे चूमने को मुँह बढ़ाते तो ये अपना मुँह हटाती नहीं थीं और जब शंकर जी इनकी मेखला पकड़कर खींचते तो ये आधे मन से ही उनका हाथ रोकतीं।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावसूचितमदृष्टविप्रियं दार्ढ्यभाक्क्षणवियोगकातरम्।
कैश्चिदेव दिवसैस्तथा तयोः प्रेमगूढमितरेतराश्रयम्।। 15।।
तं यथात्मसदृशं वरं वधूरन्वरज्यत वरस्तथैव ताम्।
सागरादनपगा हि जाह्नवी सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक्।। 16।।
शिष्यतां निधुवनोपदेशिनः शंकरस्य रहसि प्रपन्नया।
शिक्षितं युवतिनैपुणं तया यत्तदेव गुरुदक्षिणीकृतम्।। 17।।
दष्टमुक्तमधरोष्ठमम्बिका वेदनाविधुतहस्तपल्लवा।
शीतलेन निरवापयत्क्षणं मौलिचन्द्रशकलेन शूलिनः।। 18।।
चुम्बनादलकचूर्णदूषितं शंकरोऽपि नयनं ललाटजम्।
उच्छ्वसत्कमलगन्धये ददौ पार्वतीवदनगन्धवाहिने।। 19।।
एवमिन्द्रियसुखस्य वर्त्मनः सेवनादनुगृहीतमन्मथः।
शैलराजभवने सहोमया मासमात्रमवसद्वृषध्वजः।। 20।।
सोऽनुमान्य हिमवन्तमात्मभूरात्मजाविरहदुःखखेदितम्।
तत्र तत्र विजहार संपतन्नप्रमेयगतिना ककुद्मता।। 21।।

थोड़े ही दिनों में दोनों की चाल-ढाल से यह जान पड़ने लगा कि अब ये बहुत घुल-मिल गये हैं; क्योंकि दोनों एक दूसरे की बड़ाई करते अघाते न थे। और जो कहीं क्षण भर के लिये भी एक दूसरे से अलग हुए कि बस तड़पने लगते।।15।। जैसे—समुद्र के पास जाकर और मिलकर गंगा जी वहाँ से लौटने का नाम तक नहीं लेतीं और समुद्र भी उन्हीं के मुख का जल ले-लेकर बराबर उनके प्रेम किया करता है, वैसे ही पार्वती जी भी जैसे-जैसे अपने प्रियतम का मन बहलातीं वैसे-वैसे महादेव जी भी उनके मन की ही बातें किया करते थे।।16।। पार्वती जी ने शंकर जी से अकेले में जो काम-कला की शिक्षा ली थी उस कला के अनुसार इन्होंने महादेव जी के साथ नई नवेलियों की चटक-मटक से भरा जो संभोग किया वही मानो कला सीखने की गुरुदक्षिणा थी।।17।। जब कभी पार्वती जी का ओठ महादेव जी काट लेते तो वे पीडा से अपने हाथ झटकने लगतीं और फिर तत्काल महादेव जी के सिर पर बसे हुए चन्द्रमा पर ज्यों ही ओठ रखतीं त्यों ही उन्हें ऐसी ठंढक मिलती कि उनकी सब पीड़ा जाती रहती।।18।। इसी प्रकार चुम्बन लेते समय जब पार्वती जी के केशों का चूर्ण झड़कर शिव जी के तीसरे नेत्र में पड़ता तो वह नेत्र दुखने लगता। तब खिले हुए कमल की गंध वाले पार्वती जी के मुँह की फूँक पाने के लिये वे अपना नेत्र उठाकर उनके मुँह तक पहुँचा देते।।19।। इस प्रकार जवानी का रस लेकर महादेव जी ने कामदेव पर बड़ी कृपा की और हिमालय के घर पर उमा के साथ रहते हुए उन्होंने एक महीना बिता दिया।।20।। तब उन्होंने हिमालय से जाने की आज्ञा माँगी। कन्या को अपने से अलग करने में हिमालय को दुःख तो बहुत हुआ पर उसने विदा दे दी। वहाँ से अपने बेरोक टोक चलनेवाले नन्दी पर चढ़कर वे घूम-घूमकर विहार करने लगे।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरुमेत्य मरुदाशुगोक्षकः पार्वतीस्तनपुरस्कृतान्कृती।
हेमपल्लवविभङ्गसंस्तरानन्वभूत्सुरतमर्दनक्षमान् ।।22।।
पद्मनाभचरणाङ्किताश्मासु प्राप्तवत्स्वमृतविप्रुषो नवाः।
मन्दरस्य कटकेषु चावसत्पार्वतीवदनपद्मषट्पदः।।23।।
रावणध्वनितभीतया तया कण्ठसक्तदृढबाहुबन्धनः।
एकपिङ्गलगिरौ जगद्गुरुर्निर्विवेश विशदाः शशिप्रभाः।।24।।
तस्य जातु मलयस्थलीरते धूतचन्दनलतः प्रियाक्लमम्।
आचचाम सलवङ्गकेसरश्चाटुकार इव दक्षिणानिलः।।25।।
हेमतामरसताडितप्रिया तत्कराम्बुविनिमीलितेक्षणा।
सा व्यगाहत तरङ्गिणीमुमा मीनपङ्क्तिपुनरुक्तमेखला।।26।।
तां पुलोमतनयालकोचितैः पारिजातकुसुमैः प्रसाधयन्।
नन्दने चिरमयुग्मलोचनः सस्पृहं सुरवधूभिरीक्षितः।।27।।
इत्यभौममनुभूय शंकरः पार्थिवं च दयितासखः सुखम्।
लोहितायति कदाचिदातपे गन्धमादनवनं व्यगाहत।।28।।

पवन के समान वेग से चलने वाले उस बैल पर चढ़कर और आगे पार्वती जी को बैठाकर उनके स्तन पकड़े हुए वे मेरु पर्वत पर जा पहुँचे और वहाँ सुनहरे पत्तों से बिछी हुई शय्या पर उन्होंने एक रात संभोग किया।।22।। पार्वती जी के मुख-कमल का रस लेने वाले महादेव जी वहाँ से चलकर मन्दराचल के उस ढाल पर पहुँचे जहाँ की चट्टानों पर विष्णु के चरणों की छाप और समुद्र मंथन के समय उड़े हुए अमृत की बूँद बूँदों के नये-नये छींटे पड़े हुए थे।।23।। वहाँ से चलकर वे कुबेर की राजधानी कैलास पर पहुँचे जहाँ रावण की ललकार सुनकर पार्वती जी ऐसी डर गई कि अपनी कोमल भुजाएँ शिव जी के गले में डालकर उनसे लिपट गईं। वहाँ रहकर शंकर जी ने उजली चाँदनी का भरपूर आनन्द लूटा।।24।। वहाँ से घूमते-घामते वे मलय पर्वत पर पहुँच गए जहाँ चन्दन की कोमल शाखाओं को हिलाने वाला और लौंग के फूलों की केसर उड़ाने वाला दक्षिण का वायु संभोग से थकी हुई पार्वती जी की थकावट उसी प्रकार दूर कर रहा था जैसे कोई मीठी-मीठी बातें करके किसी थके हुए का मन बहला रहा हो।।25।। कभी पार्वती जी उस आकाश-गंगा में जल-विहार करने लगतीं, जहाँ उनकी कमर के चारों ओर खेलने वाली मछलियाँ ऐसी लगती थीं मानों उन्होंने दूसरी करधनी पहन ली हो। वहाँ वे सोने के कमल तोड़-तोड़कर उनसे महादेव जी को मारतीं और महादेव जी भी ऐसा पानी उछालते कि इनकी आँखें बन्द हो जातीं।।26।। वहाँ से नन्दनवन में पहुँचकर महादेव जी पारिजात के उन फूलों से बहुत दिनों तक पार्वती जी का शृंगार करते रहे जिनसे इन्द्राणी के केश सजाए जाते थे। वहाँ की अप्सराएँ महादेव जी की इस कला को बड़े चाव से निहारा करतीं।।27।। इस प्रकार अपनी प्राणप्यारी के साथ सांसारिक और स्वर्गीय दोनों सुख भोगते हुए वे एक दिन गन्ध-मादन पर्वत पर जा पहुँचे। उस समय साँझ हो चली थी और सूर्य लाल-लाल दिखाई पड़ रहे थे।।28।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र काञ्चनशिलातलाश्रयो नेत्रगम्यमवलोक्य भास्करम्।
दक्षिणेतरभुजव्यपाश्रयां व्याजहार सहधर्मचारिणीम्।। 29।।

पद्मकान्तिमरुणत्रिभागयोः संक्रमय्य तव नेत्रयोरिव।
संक्षये जगदिव प्रजेश्वरः संहरत्यहरसावहर्पतिः।। 30।।

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी।। 31।।

दष्टतामरसकेसरस्रजोः क्रन्दतोर्विपरिवृत्तकण्ठयोः।
निघ्नयोः सरसि चक्रवाकयोरल्पमन्तरमनल्पतां गतम्।। 32।।

स्थानमाह्निकमपास्य दन्तिनः सल्लकीविटपभङ्गवासितम्।
आविभातचरणाय गृह्णते वारि वारिरुहवद्धषट्पदम्।।33।।

पश्य पश्चिमदिगन्तलम्बिना निर्मितं मितकथे विवस्वता।
लब्धया प्रतिमया सरोम्भसां तापनीयमिव सेतुबन्धनम्।।34।।

उत्तरन्ति विनिकीर्य पल्वलं गाढपङ्कमतिवाहितातपाः।
दंष्ट्रिणो वनवराहयूथपा दष्टभङ्गुरबिसांकुरा इव।। 35।।

वहाँ पहुँचकर वे सोने की एक चट्टान पर बैठ गए। उस समय सूर्य का तेज इतना कम हो गया था कि उसकी ओर भली-भाँति देखा जा सकता है। उसे देखकर अपनी बाईं भुजा के सहारे बैठी हुई अपनी धर्मपत्नी से महादेव बोले–।।29।। देखो प्यारी! इस समय सूर्य ऐसा दिखाई पड़ रहा है, मानो यह तुम्हारी तिहाई लाल आँखों के समान सुन्दर कमलों की शोभा को लजाकर उसी प्रकार दिन को समेट रहा है जैसे प्रलय के समय ब्रह्मा जी सारे संसार को समेट लेते हैं।।30।। देखो! ज्यों-ज्यों दिन ढलता जाता है, त्यों-त्यों सूर्य की किरण हिमालय के झरनों की फुहारों से हटती जाती हैं और उनके हटते ही उन फुहारों में बने हुए इन्द्र-धनुष भी छिपते जा रहे हैं।।31।। फूले हुए कमलों की केसर चोंच में उठाकर ये चकवी-चकवे एक दूसरे के कंठ से अलग होकर चिल्लाने लगे हैं और तालाब का छोटा सा किनारा भी इनके लिये बहुत बड़ा हो गया है।।32।। साल के वृक्षों के टूटने से जहाँ गन्ध फैल गई है और जहाँ हाथी दिन में रहा करते थे, उन स्थानों को अगले दिन तक के लिये छोड़-छोड़कर ये हाथी उस सरोवर की ओर बढ़े चले जा रहे हैं जहाँ कमलों में भौंरे बन्द पड़े हैं।।33।। हे मिठबोली! देखो पश्चिम में लटके हुए सूर्य ने अपनी परछाई से सरोवर के जल में एक सुनहरा पुल-सा बना डाला है।।34।। देखो! सरोवरों को मथकर उनके गाढ़े कीचड़ में लौट-लौटकर दिन भर की गर्मी बिताने वाले ये जो बड़े-बड़े दाँत वाले लंबे-चौड़े जंगली सूअर निकले चले आ रहे हैं, इनके दाँत ऐसे दिखाई देते हैं, मानो इनके जबड़ों में खाए हुए कमलों की डंठलें अटकी हुई हों।।35।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलम्।
हीयमानमहरत्ययातपं पीवरोरु पिबतीव बर्हिणः।। 36।।
पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभिर्व्यक्तपङ्कमिव जातमेकतः।
खं हृतातपजलं विवस्वता भाति किञ्चिदिव शेषवत्सरः।। 37।।
आविशद्भिरुटजाङ्गणं मृगैर्मूलसेकसरसैश्च वृक्षकैः।
आश्रमाः प्रविशदग्रधेनवो बिभ्रति श्रियमुदीरिताग्नयः।। 38।।
बद्धकोशमपि तिष्ठति क्षणं सावशेषविवरं कुशेशयम्।
षट्पदाय वसतिं ग्रहीष्यते प्रीतिपूर्वमिव दातुमन्तरम्।। 39।।
दूरमग्रपरिमेयरश्मिना वारुणी दिगरुणेन भानुना।
भाति केसरवतेव मण्डिता बन्धुजीवतिलकेन कन्यका।। 40।।
सामभिः सहचराः सहस्रशः स्यन्दनाश्वहृदयङ्गमस्वनैः।
भानुमग्निपरिकीर्णतेजसं संस्तुवन्ति किरणोष्मपायिनः।। 41।।
सोऽयमानतशिरोधरैर्हयैः कर्णचामरविघट्टितेक्षणैः।
अस्तमेति युगभुग्नकेसरैः सन्निधाय दिवसं महोदधौ।। 42।।

सामने पेड़ की शाखा पर बैठे हुए मोर की पूँछ में बसी हुई गोल-गोल और सोने के पानी के समान सुनहरी चन्द्रिकाओं को देखने से ऐसा लगता है, मानो यह बैठा हुआ साँझ की सब धूप पीये डाल रहा हो और उसी से दिन ढलता जा रहा हो।।36।। देखो! सूर्य ने आकाश से धूप का पानी खींच लिया है इसलिये आकाश उस तालाब के समान दिखाई दे रहा है, जिसमें पूर्व की ओर अँधेरा बढ़ आने से यह जान पड़ता है कि उधर कीचड़ बचा रह गया है और पश्चिम में कुछ-कुछ उजाला रहने से ऐसा लग रहा है कि उधर अभी थोड़ा-थोड़ा पानी बचा रह गया है।।37।। पर्ण-कुटियों के आँगन में आते हुए हिरणों से, सींचे हुए जड़ वाले हरे-भरे पौधों से लौटकर आती हुई सुन्दर दुधारू गौओं और हवन की जलती हुई अग्नि से आश्रम कैसे सुहावने लग रहे हैं।।38।। देखो! ये कमल इस समय बन्द हो चले, फिर भी पल भर के लिये अपना मुँह थोड़ा-सा इसलिये खुला रखे हुए हैं कि जो भौंरे बाहर रह गए हों उन्हें हम प्रेम से भीतर बसा लें।।39।। हे सुन्दरी! बहुत दूर पर सूर्य की हल्की-सी झलक दिखाई पड़ने से पश्चिम दिशा उस कन्या के समान लग रही है, जिसने अपने माथे पर केसर से भरे बन्धुजीव के फूल का तिलक लगा रखा हो।।40।। किरणों की गर्मी पी जाने वाले और सहस्रों के झुण्ड में रहने वाले बालखिल्य आदि ऋषि इस समय सूर्य के रथ के घोड़ों को भला लगने वाला सामवेद के मन्त्र गा-गाकर उस सूर्य की स्तुति कर रहे हैं, जिन्होंने इस समय अपना तेज अग्नि को सौंप दिया है।।41।। दिन को समुद्र में डुबोकर अपने उन घोड़ों को लिए हुए सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहे हैं जिनके सिर नीचे की ओर उतरने के कारण झुके हुए हैं, जिनके कानों की चौरियाँ रह-रहकर आँखों पर झूल जाती हैं और जिनके केशर कंधे पर रखे हुए लग-लगकर छितरा गए हैं।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खं प्रसुप्तमिव संस्थिते रवौ तेजसो महत ईदृशी गतिः।
तत्प्रकाशयति यावदुद्गतं मीलनाय खलु तावतश्च्युतम्।। 43।।
संध्ययाप्यनुगतं रवेर्वपुर्वन्द्यमस्तशिखरे समर्पितम्।
येन पूर्वमुदये पुरस्कृता नानुयास्यति कथं तमापदि।। 44।।
रक्तपीतकपिशाः पयोमुचां कोटयः कुटिलकेशि भान्त्यमूः।
द्रक्ष्यसि त्वमिति संध्ययानया वर्तिकाभिरिव साधुमण्डिताः।। 45।।
सिंहकेसरसटासु भूभृतां पल्लवप्रसविषु द्रुमेषु च।
पश्य धातुशिखरेषु भानुना संविभक्तमिव सांध्यमातपम्।। 46।।
अद्रिराजतनये तपस्विनः पावनाम्बुविहिताञ्जलिक्रियाः।
ब्रह्म गूढमभिसंध्यमादृताः शुद्धये विधिविदो गृणन्त्यमी।। 47।।
तन्मुहूर्तमनुमन्तुमर्हसि प्रस्तुताय नियमाय मामपि।
त्वां विनोदनिपुणः सखीजनो वल्गुवादिनि विनोदयिष्यति।। 48।।
निर्विभुज्य दशनच्छदं ततो वाचि भर्तुरवधीरणापरा।
शैलराजतनया समीपगामाललाप विजयामहेतुकम्।। 49।।
ईश्वरोऽपि दिवसात्ययोचितं मन्त्रपूर्वमनुतस्थिवान्विधिम्।
पार्वतीमवचनामसूयया प्रत्युपेत्य पुनराह सस्मितम्।। 50।।

सूर्य के छिपते ही सारा आकाश सोया हुआ-सा जान पड़ रहा है। देखो! तेजस्वियों की ऐसी ही बात होती हैं कि वे जहाँ निकलते हैं वहाँ उजाला हो जाता है और जहाँ वे छिपते हैं, वहाँ अँधेरा छा जाता है।।43।। देखो! पूजनीय सूर्य अस्ताचल को चले तो सन्ध्या भी उनके पीछे-पीछे चल दी, क्योंकि प्रातःकाल उदय के समय जो सूर्य के आगे-आगे रही, वह सूर्य की विपत्ति के समय उनका साथ भला कैसे छोड़ दे।।44।। हे घुँघराले बालों वाली! ये सामने लाल-पीले और भूरे बादल के टुकड़े फैले हुए ऐसे लग रहे हैं, मानो सन्ध्या ने उन्हें यह समझकर तूलिका से रंग दिया हो कि तुम उन्हें देखोगी।।45।। हिमालय के सिंहों के लाल-लाल केसरों को, नये-नये पत्तों से लदे हुए वृक्षों को और रंगीन धातु वाली हिमालय की चोटियों को देखने से ऐसा जान पड़ रहा है मानो अस्त होते हुए सूर्य ने अपनी लाल धूप इन सबको बाँट दी है।।46।। हे पार्वती! सब क्रिया जानने वाले ये तपस्वी, पवित्र जल से सूर्य को सन्ध्या के समय अर्घ्य देकर बड़ी श्रद्धा के साथ अपनी आत्म-शुद्धि के लिये रहस्य-भरे गायत्री मंत्र का जप कर रहे हैं।।47।। हे मधुरभाषिणी! अब शाम हो चली है, इसलिये तुम भी मुझे थोड़ी देर की छुट्टी दो तो मैं सन्ध्या कर डालूँ। उतनी देर तक मन बहलाव के काम में चतुर तुम्हारी सखियाँ तुम्हारा मन बहलाती रहेंगी।।48।। यह सुनकर पार्वती जी ने महादेव की बात अनुसुनी-सी करके अपना ओठ बिचका दिया और पास बैठी हुई विजय से उन्होंने इधर-उधर की बेसिर-पैर की बातें छेड़ दीं।।49।। मन्त्रों के साथ अपनी सन्ध्या पूरी करके महादेव जी उन पार्वती जी के पास पहुँचे, जो चुप्पी साधकर रूठी हुई बैठी थीं। महादेव जी उनसे मुस्कराते हुए कहने लगे।।50।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुञ्च कोपमनिमित्तकोपने संध्यया प्रणमितोऽस्मि नान्यया।
किं न वेत्सि सहधर्मचारिणं चक्रवाकसमवृत्तिमात्मनः।। 51।।
निर्मितेषु पितृषु स्वयंभुवा या तनुः सुतनु पूर्वमुज्झिता।
सेयमस्तमुदयं च सेवते तेन मानिनि ममात्र गौरवम्।। 52।।
तामिमां तिमिरवृद्धिपीडितां शैलराजतनयेऽधुना स्थिताम्।
एकतस्तटमालमालिनीं पश्य धातुरसनिम्नगामिव।। 53।।
सान्ध्यमस्तमितशेषमातपं रक्तलेखमपरा बिभर्ति दिक्।
सांपरायवसुधासशोणितं मण्डलाग्रमिव तिर्यगुज्झितम्।। 54।।
यामिनीदिवससन्धिसम्भवे तेजसि व्यवहिते समेरुणा।
एतदन्धतमसं निरङ्कुशं दिक्षु दीर्घनयने विजृम्भते।। 55।।
नोर्ध्वमीक्षणगतिर्न चाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः।
लोक एष तिमिरौघवेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि।। 56।।
शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जवगुणान्वितं च यत्।
सर्वमेव तमसा समीकृतं धिङ्महत्त्वमसतां हृतान्तरम्।। 57।।
नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसो निषिद्धये।
पुण्डरीकमुखि पूर्वदिङ्मुखं केतकैरिव रजोभिराहतम्।। 58।।

बिना बात के क्रोध करने वाली भामिनी! देखो, क्रोध न करो! मैं सन्ध्या करने ही तो गया था। सदा तुम्हारे ही साथ धर्म का काम करने वाले मुझको क्या तुम चकवे के जैसा सच्चा प्रेमी नहीं समझती हो।।51।। देखो सुन्दरी! ब्रह्मा ने जब पितरों को रचा था, उस समय उन्होंने अपनी एक छोटी-सी मूर्ति बना छोड़ी थी। वही मूर्ति सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सन्ध्या के रूप में पूजी जाती है। इसीलिये हे मानिनि! मैं भी सन्ध्या का इतना आदर करता हूँ।।52।। हे पार्वती! एक ओर से बढ़ते हुए अन्धकार से घिरी हुई सन्ध्या इस समय ऐसी जान पड़ रही है, मानो बहते हुए गेरू की धारा के एक किनारे तमाल के पेड़ छाए हुए हों।।53।। और दूसरी ओर अस्त होने से बचे हुए सन्ध्या के प्रकाश की लाल रेखा पश्चिम में ऐसी दिखाई पड़ रही है, मानो युद्ध-भूमि में टेढ़ी चलाई हुई लहू भरी करवाल हो।।54।। हे बड़ी-बड़ी आँखों वाली! सूर्यास्त हो जाने से रात और दिन का मेल करने वाली सन्ध्या का सब प्रकाश सुमेरु पर्वत के बीच में आ जाने से जाता रहा और अब यह घोर अँधेरा मनमाने ढंग से चारों ओर फैलता जा रहा है।।55।। अँधेरा फैल जाने से न तो इस समय ऊपर कुछ दिखाई दे रहा है न नीचे, न आस-पास, न आगे-पीछे। इस रात के समय सारा संसार इस प्रकार अँधेरा में घिर गया है जैसे गर्भ की झिल्ली (जरायु) में लिपटा हुआ बालक पड़ा हो।।56।। इस समय अँधेरे में, उजले और मैले, खड़े और चलते, सीधे और टेढ़े सब एक से हो गए हैं।।57।। हे कमल के समान मुखवाली! पूर्व दिशा का अगला भाग कुछ-कुछ ऐसा उजला दिखाई पड़ रहा है, मानो केतकी के फूल का पराग उधर फैला हुआ हो। इससे यह निश्चय जान पड़ रहा है कि रात का अँधेरा दूर करने के लिये चन्द्रमा निकले चले जा रहे हों।।58।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दरान्तरितमूर्तिना निशा लक्ष्यते शशभृता सतारका।
त्वं मया प्रियसखीसमागता श्रोष्यतेव वचनानि पृष्ठतः।। 59।।
रुद्धनिर्गमनमादिनक्षयात्पूर्वदृष्टतनु चन्द्रिकास्मितम्।
एतदुद्गिरति चन्द्रमण्डलं दिग्रहस्यमिव रात्रिचोदितम्।। 60।।
पश्य पक्वफलिनीफलत्विषाविम्वलाञ्छितवियत्सरोम्भसा।
विप्रकृष्टविवरं हिमांशुना चक्रवाकमिथुनं विडम्ब्यते।। 61।।
शक्यमोषधिपतेर्नवोदयाः कर्णपूररचनाकृते तव।
अप्रगल्भयवसूचिकोमलाश्छेत्तुमग्रनखसंम्पुटैः कराः।। 62।।
अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्वतीव रजनीमुखं शशी।। 63।।
पश्य पार्वति नवेन्दुरश्मिभिर्भिन्नसान्द्रतिमिरं नभस्तलम्।
लक्ष्यते द्विरदभोगदूषितं सप्रसादमिव मानसं सरः।। 64।।
रक्तभावमपहाय चन्द्रमा जात एष परिशुद्धमण्डलः।
विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया।। 65।।

यद्यपि अभी चन्द्रोदय हुआ नहीं है, पर आकाश में तारे निकल आए हैं। इसलिये इस समय मन्दराचल के पीछे छिपे हुए चन्द्रमा इस तारों वाली रात में ठीक ऐसे लगते हैं जैसे मैं तुम्हारे पीछे आकर तुम लोगों की बात उस समय सुनता हूँ, जब तुम अपनी सखियों के साथ बैठकर बातें करती हो।।59।। जो चन्द्रमा दिन भर दिखाई नहीं देता था, वह इस समय निकला हुआ ऐसा लगता है, मानो रात के कहने से यह चाँदनी के रूप में मुस्कुराता हुआ पूर्वदिशा के सब भेद खोल दे रहा हो।।60।। हे पार्वती! यह उदय होता हुआ चन्द्रमा इस समय पके हुए प्रियंगु के फल के समान लाल दिखाई पड़ रहा है। इस समय आकाश का चन्द्रमा और सरोवर के पानी में पड़ी हुई चन्द्रमा की परछाई, दोनों ऐसे लगते हैं मानो रात होने से चकवी-चकवे का जोड़ा दूर-दूर जा पड़ा हो।।61।। चन्द्रमा की निखरती हुई नई किरणें नये और कोमल जौ के अँकुरों के समान कोमल हैं। तुम चाहो तो अपने कर्णफूल बनाने के लिये अपने नखों की नोक से उन्हें तोड़ लो।।62।। इस समय कमल बन्द हो गए हैं और चाँदनी फैल जाने से अँधेरा मिट गया है। इसलिये इस समय चन्द्रमा ऐसा लग रहा है मानो वह अपनी किरण-रूपी उँगलियों से रात-रूपी नायिका के मुँह पर फैले हुए अँधेरे-रूपी बालों को हटाकर उसका मुँह चूम रहा हो और रात भी उस चुम्बन का रस लेने के लिये अपने कमल-रूपी नेत्र बन्द किये बैठी हो।।63।। हे पार्वती! उठे हुए चन्द्रमा की किरणों से घना अँधेरा मिट जाने पर आकाश ऐसा जान पड़ रहा है, मानो हाथियों की जल-क्रीड़ा से गँदला मानसरोवर निर्मल हो चला हो।।64।। अब चन्द्रमा का मण्डल ललाई छोड़कर धीरे-धीरे उजला होने लगा है। ठीक भी है, क्योंकि जो निर्मल स्वभाव वाले होते हैं, उनमें यदि समय के फेर से कभी दोष आ भी जाता है तो बहुत दिनों तक नहीं टिक पाता।65।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता निम्नसंश्रयपरं निशातमः।
नूनमात्मसमदृशी प्रकल्पिता वेधसा हि गुणदोषयोर्गतिः।। 66।।
चन्द्रपादजनितप्रवृत्तिभिश्चन्द्रकान्तजलबिन्दुभिर्गिरिः।
मेखलातरुषु निद्रितानमून्बोधयत्यसमये शिखण्डिनः।। 67।।
कल्पवृक्षशिखरेषु संप्रति प्रस्फुरद्भिरिव पश्य सुन्दरि।
हारयष्टिरचनामिवांशुभिः कर्तुमागतकुतूहलः शशी।। 68।।
उन्नतावनतभाववत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम्।
भक्तिभिर्वहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिव मत्तहस्तिनः।। 69।।
एतदुच्छ्वसितपीतमैन्दवं वोढुक्षममिव प्रभारसम्।
मुक्तषट्पदविरावमञ्जसा भिद्यते कुसुदमानिबन्धनात्।। 70।।
पश्य कल्पतरुलम्बि शुद्धया ज्योत्स्नया जनितरूपसंशयम्।
मारुते चलति चण्डिके बलाद्व्यज्यते विपरिवृत्तमंशुकम्।। 71।।
शक्यमङ्गुलिभिरुत्थितैरधः शाखिना पतितपुष्पपेशलैः।
पत्रजर्जरशशिप्रभालवैरेभिरुत्कचयितुं तवालकान्।। 72।।

पर्वतों की चोटियों पर तो चाँदनी फैल गई है, पर घाटियों और खड्ढों में अभी अँधेरा बना हुआ है। सचमुच ब्रह्मा ने गुण और दोष की कुछ चाल ही ऐसी बनाई है कि गुण तो ऊँचे पर रहता है और दोष नीचे की ओर चला जाता है।। 66।। चन्द्रमा की किरण पड़ने के कारण इस पर्वत के चन्द्रकान्तमणि की चट्टानों से जल की बूँदें टपक रही हैं। इसलिये पर्वत की ढाल पर वृक्षों की छाया में सोए हुए मोर, इन बूँदों को वर्षा की बूँदें समझकर बिना वर्षा आए ही जाग खड़े हुए हैं।।67।। हे सुन्दरी! इस समय कल्पवृक्ष के किसलयों पर चमकती हुई किरणों को देखकर ऐसा जान पड़ रहा है मानो चन्द्रमा अपनी किरणों से कल्पवृक्षों में चन्द्रहार बनाने आ पहुँचा हो।। 68।। पहाड़ के ऊँचे-ऊँचे होने से कहीं तो चाँदनी पड़ रही है और कहीं अँधेरा है। इसलिये यह ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो किसी मतवाले हाथी पर अनेक प्रकार की चित्रकारी कर दी गई हो।।69।। यह जो भौंरों की गूंज से भरा हुआ कुमुद खिल रहा है, वह ऐसा लगता है मानो साँस ले-लेकर इसने जो भरपेट चाँदनी पी ली थी उसे पचा न सकने के कारण इसका पेठ फट गया हो और यह कराह रहा हो।।70।। हे चण्डिके! कल्पवृक्षों में लटके हुए कपड़ों और चन्द्रमा की निर्मल किरणों के एक-से होने के कारण उनमें धोखा हो जाता है, पर वायु के चलने पर जब कपड़े हिलने लगते हैं तब अपने आप पता चल जाता है कि यह कपड़ा ही है।।71।। पत्तों के बीच से छनकर धरती पर पड़ने वाली चाँदनी ऐसी सुन्दर और सुहावनी दिखाई दे रही है, जैसे पेड़ों से झड़े हुए फूल हों। इसलिये तुम चाहो तो फूलों के समान दिखाई पड़ने वाले इन चाँदनी के फूलों से ही तुम्हारे केश गूंथ दिए जायँ।।72।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एष चारुमुखि योग्यतारया युज्यते तरलबिम्बया शशी।
साध्वसादुपगतप्रकम्पया कन्ययेव नवदीक्षया वरः।। 73।।
पाकभिन्नशरकाण्डगौरयोरुल्लसत्प्रकृतिजप्रसादयोः।
रोहतीव तव गण्डलेखयोश्चन्द्रबिम्बनिहिताक्षि चन्द्रिका।। 74।।
लोहितार्कमणिभाजनार्पितं कल्पवृक्षमधु बिभ्रति स्वयम्।
त्वामियं स्थितिमतीमुपागता गन्धमादनवनाधिदेवता। 75।।
आर्द्रकेसरसुगन्धि ते मुखं मत्तरक्तनयनं स्वभावतः।
अत्र लब्धवसतिर्गुणान्तरं किं विलासिनि मदः करिष्यति।। 76।।
मान्यभक्तिरथवा सखीजनः सेव्यतामिदमनङ्गदीपनम्।
इत्युदारमभिधाय शंकरस्तामपाययत पानमम्बिकाम्।। 77।।
पार्वतीं तदुपयोगसम्भवां विक्रियामपि सतां मनोहराम्।
अप्रतर्क्यविधियोगनिर्मितामाम्रतेव सहकारतां ययौ।। 78।।
तत्क्षणं विपरिवर्तितह्रियोर्नेष्यतोः शयनमिद्धरागयोः।
सा बभूव वशवर्तिनी द्वयोः शूलिनः सुवदना मदस्य च।। 79।।
घूर्णमाननयनं स्खलत्कथं स्वेदबिन्दु मदकारणस्मितम्।
आननेन न तु तावदीश्वरश्चक्षुषा चिरमुमामुखं पपौ।। 80।।

जैसे नई-नई बहू पहली बार संभोग के डर से काँपती हुई अपने पति के पास जाती है, वैसे ही हे सुन्दरी! ये टिमटिमाती हुई तारिकायें भी काँपती हुई चन्द्रमा के पास जा रही हैं।।73।। हे सुन्दरी! तुम जो चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाकर देख रही हो, तो पके हुए सरकंडे समान गोरे-गोरे और अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता से खिले हुए तुम्हारे गाल ऐसे लग रहे हैं मानो उन पर चाँदनी चढ़ती आ रही हो।।74।। तुम्हें यहाँ बैठी हुई देखकर लाल सूर्यकान्तमणि के प्यालों में कल्पवृक्ष की मदिरा लिए हुए गन्धमादन की वन देवी अपने आप तुम्हारी आवभगत करने आ पहुँची हैं।।75।। तुम्हारी मतवाली आँखें भी स्वभाव से ही लाल हैं, इसलिये मदिरा पीने से भी तुम पर कोई प्रभाव तो पड़ेगा नहीं।।76।। सखियों आग्रह टालना भी नहीं चाहिए, इसलिये लो, यह काम को उकसाने वाली मदिरा पी ही डालो। यह लुभावनी बात कहकर शंकर जी ने बड़ी उदारता से वह मदिरा पार्वती को पिला दी।।77।। जैसे वसन्त में ब्रह्मा की कृपा से आम का पेड़ अधिक सुगन्धित होकर सहकार बन जाता है, वैसे ही मदिरा पीने से पार्वती जी का रूप कुछ ऐसा हो गया कि उनकी स्वाभाविक सुन्दरता और भी बढ़ गई।।78।। मदिरा पीने से सुन्दर मुखवाली पार्वती जी ऐसी मद में चूर होकर शंकर जी की गोद में गिरीं कि उनकी लाज जाती रही, उनका काम बढ़ गया और उसी दशा में वे शयनागार में पहुँचाई गईं।।79।। पार्वती जी की आँखें चंचलता से नाच रही थीं, मद के कारण मुँह से सीधी बोली नहीं निकल रही थी, मुँह पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं और बिना बात के ही वे हँस पड़ रही थीं। पार्वती जी के उस मुख को भगवान् शंकर ने अपने मुँह से चूमा नहीं, वरन् देर तक अपनी आँख से ही उनकी सुन्दरता को पीते रहे।।80।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तां विलम्बितपनीयमेखलामुद्वहञ्जघनभारदुर्वहाम्।
ध्यानसंभृतविभूतिरीश्वरः प्राविशन्मणिशिलागृहं रहः।।81।।
तत्र हंसधवलोत्तरच्छदं जाह्नवीपुलिनचारुदर्शनम्।
अध्यशेत शयनं प्रियासखः शारदाभ्रमिव रोहिणीपतिः।।82।।
क्लिष्टकेशमवलुप्तचन्दनं व्यत्ययार्पितनखं समत्सरम्।
तस्य तच्छिदुरमेखलागुणं पार्वतीरतमभून्न तृप्तये।।83।।
केवलं प्रियतमादयालुना ज्योतिषामवनतासु पङ्क्तिषु।
तेन तत्प्रतिगृहीतवक्षसा नेत्रमीलनकुतूहलं कृतम्।।84।।
स व्यबुध्यत बुधस्तवोचितः शातकुम्भकमलाकरैः समम्।
मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः किन्नरैरुषसि गीतमङ्गलः।।85।।
तौ क्षणं शिथिलितोपगूहनौ दम्पती चलितमानसोर्मयः।
पद्मभेदपिशुनाः सिषेविरे गन्धमादनवनान्तमारुताः।।86।।
ऊरुमूलनखमार्गराजिभिस्तत्क्षणं हृतविलोचनो हरः।
वाससः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वतीं प्रियतमामवारयत्।।87।।

सोने की करधनी लटकाकर अपने भारी नितम्बों के बोझ से धीरे-धीरे चलने वाली पार्वती जी को लिए हुए भगवान् शिव, मणिशिला के बने हुए उस सुनसान घर में पहुँचे जहाँ सुख की सभी सामग्रियाँ उनके सोचने भर से उत्पन्न हो गई थीं।।81।। जैसे रोहिणी के पति चन्द्रमा उजले बादलों में विश्राम करते हुए से जान पड़ते हैं, वैसे ही उस शयनागर में हंस के समान उजली चादर वाले और गंगातीर के समान मनोहर दिखाई देने वाले पलंग पर भगवान् शंकर अपनी प्रियतमा के साथ लेट गए।।82।। दोनों एक दूसरे को हराने के लिए तुले हुए थे, इसलिये उमा और शंकर जी ने ऐसा संभोग किया कि दोनों के केश छितरा गए, चन्दन पुछ गया, नख-चिह्न भी इधर के उधर हो गए और पार्वती जी की करधनी भी टूट गई फिर भी पार्वती जी के साथ संभोग करके शंकर जी का जी नहीं भरा।।83।। पर रात के पिछले पहर में जब तारे छिपने जा रहे थे तब केवल अपनी प्रियतमा पर दया करके शंकर जी ने उमा के हाथों में बँधे-बँधे ही सोने के लिये अपनी आँखें मूँद ली।।84।। और जब सुनहले कमल खिलने लगे और वीणा-धारी गन्धर्व अलाप भरते हुए शंकर जी का मंगल-गान करने लगे, उस उषा-काल में देवताओं के पूज्य शिव जी जाग उठे।।85।। उस समय गन्धमादन वन का जो पवन मानसरोवर में लहरियाँ उठाता हुआ मन्द-मन्द बह रहा था और जिसे छू जाने से ही मानो कमल खिलते जा रहे थे, उस वायु का उन दोनों ने थोड़ी देर तक अलग होकर आनन्द लिया।।86।। वायु के झोंके से कपड़ा हट जाने से पार्वती की नंगी जाँघों पर जो नखों के चिह्नों की पाँत दिखाई दे रही थी, उसे शिव जी एकटक होकर देख रहे थे और जब अपने हटे हुए कपड़े को पार्वती जी ठीक करने लगीं, तो शिव जी ने उनका हाथ थाम लिया।।87।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स प्रजागरकषायलोचनं गाढदन्तपरिताडिताधरम्।
आकुलालकमरँस्त रागवान्प्रेक्ष्य भिन्नतिलकं प्रियामुखम्।। 88।।
तेन भिन्नविषमोत्तरच्छदं मध्यपिण्डितविसूत्रमेखलम्।
निर्मलेऽपिशयनं निशात्यये नोज्झितं चरणरागलाञ्छितम्।। 89।।
स प्रियामुखरसं दिवानिशं हर्षवृद्धिजननं सिषेविषुः।
दर्शनप्रणयिनामदृश्यतामाजगाम विजयानिवेदनात्।। 90।।
समदिवसनिशीथं सङ्गिनस्तत्र शंभोः
शतमगमदृतूनां साग्रमेका निशेव।
न तु सुरतसुखेभ्यश्छिन्नतृष्णो बभूव
ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौघैः।। 91।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
उमासुरतवर्णनं नामाष्टमः सर्गः।।

रात भर जागने से पार्वती जी की आँखें लाल हो रही थीं, ओठों पर शिव जी के दाँतों के घाव भरे पड़े थे, सँवारे हुए केश इधर-उधर छितरा गए थे और उनका तिलक भी पुँछ गया था। अपनी प्रियतमा के ऐसे मुख को देखकर प्रेमी भगवान् शंकर मगन हो उठे।।88।। जिस पलंग पर वे सोए थे उसकी चादर में सलवटें पड़ गई थीं, बिना डोरी वाली टूटी करधनी उस पर इकट्ठी हुई पड़ी थी और उस पर कहीं-कहीं पाँव के महावर की छाप भी जहाँ-तहाँ लगी हुई थी। वह पलंग महादेव जी को ऐसा प्यारा हो गया था कि दिन निकल आने पर भी उन्होंने पलंग छोड़ने का नाम न लिया।।89।। प्रियतमा के सुख बढ़ाने वाले ओठों का रस दिन-रात पीने की इच्छा करने वाले शिव जी की यह दशा हो गई कि यदि कोई उनके दर्शन को आता तो विजया से सूचना पाने पर भी वे दर्शन देने तक को बाहर न निकलते।।90।। भगवान् शंकर ने बराबर दिन-रात पार्वती जी के साथ संभोग करते हुए सैकड़ों वर्ष ऐसे बिता दिए मानो एक रात हो। पर भगवान् शंकर जी का जी इतने संभोग से भी उसी प्रकार नहीं भरा जैसे समुद्र के जल में रहने पर भी बडवानल की प्यास नहीं बुझ पाती।।91।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में 'शंकर-पार्वती जी की काम-क्रीड़ा-वर्णन' नाम का आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। नवमः सर्गः ।।

तथाविधेऽनङ्गरसप्रसंगे मुखारविन्दे मधुपः प्रियायाः।
संभोगवेश्मप्रविशन्तमन्तर्ददर्श पारावतमेकमीशः।।1।।
सुकान्तकान्तामणितानुकारं कूजन्तमाघूर्णितरक्तनेत्रम्।
प्रस्फारितोन्नम्रविनम्रकण्ठं मुहुर्मुहुर्न्यञ्चितचारुपुच्छम्।।2।।
विशृङ्खलं पक्षतियुग्ममीषद्दधानमानन्दगतिं मदेन।
शुभ्रांशुवर्णं जटिलाग्रपादमितस्ततो मण्डलकैश्चरन्तम्।।3।।
रतिद्वितीयेन मनोभवेन ह्रदात्सुधायाः प्रविगाह्यमानात्।
तं वीक्ष्य फेनस्य चयं नवोत्थमिवाभ्यनन्दत्क्षणमिन्दुमौलिः।।4।।
तस्याकृतिं कामपि वीक्ष्य दिव्यामन्तर्भवश्छद्मविहंगमग्निम्।
विचिन्तयन्संविविदे स देवो भ्रूभङ्गभीमश्च रुषा बभूव।।5।।
स्वरूपमास्थाय ततो हुताशस्त्रसन्चलत्कम्पकृताञ्जलिः सन्।
प्रवेपमानो नितरां स्मरारिमिदं वचो व्यक्तमथाध्युवाच।।6।।
असि त्वमेको जगतामधीशः स्वर्गौकसां त्वं विपदो निहंसि।
ततः सुरेन्द्रप्रमुखाः प्रभो त्वामुपासते दैत्यवरैर्विधूताः।।7।।

नवाँ सर्ग

जिन दिनों पार्वती जी के मुख कमल पर भौंरे के समान मुग्ध होकर शिव जी संभोग कर रहे थे, उन्हीं दिनों एक बार शिव जी देखते क्या हैं कि जिस घर में वे संभोग कर रहे थे, उसी में एक कबूतर घुस आया है।।1।। यह कबूतर वैसा ही मीठा बोल रहा था जैसे संभोग के समय सुन्दरियाँ बोलती हैं। उसकी लाल-लाल आँखें इधर-उधर नाच रही थीं, वह कभी अपना कंठ ऊँचा कर लेता था, कभी झुका लेता था और बार-बार अपनी पूँछ सिकोड़ता था।।2।। चन्द्रमा के समान उजले रंगवाला कबूतर अपने पंजे समेटे हुए दोनों पंख खोले मस्ती का आनन्द लेता हुआ इधर-उधर उड़ता हुआ चक्कर लगा रहा था।।3।। उस कबूतर को देखकर शिव जी बड़े प्रसन्न हुए; क्योंकि वह उन्हें ऐसा दिखाई दे रहा था मानो वह उस अमृत कुण्ड की नई फेन का पिंड हो जिसमें कामदेव ने रति के साथ डुबकी लगा-लगाकर नहाया हो।।4।। परन्तु जब भगवान् शंकर ने उसका रंग-ढंग कुछ देवताओं जैसा देखा तो उनका माथा ठनका और ध्यान लगाते ही वे समझ गए कि अग्नि ही यह कपटवेश बनाकर आया है। यह देखते ही क्रोध से उनकी टेढ़ी भौंहे डरावनी बनकर तन गई।।5।। शिव जी का यह रूप देखकर अग्नि ने अपना सच्चा रूप बनाकर, काँपते हुए दोनों हाथ जोड़कर, डर से अत्यन्त थरथराते हुए, सब बातें सच्ची-सच्ची कह सुनाईं।–।6।। भगवन्! संसार के आप ही तो एक स्वामी हैं। आप ही स्वर्ग में रहने वाले देवताओं की विपत्तियों को मिटाने वाले हैं। हे प्रभो! इसीलिए इन्द्र आदि देवता जब-जब दैत्यों से हारते हैं, तब-तब वे आपकी ही शरण में आते हैं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वया प्रियाप्रेमवशंवदेन शतं व्यतीये सुरतादृतूनाम्।
रहःस्थितेन त्वदवीक्षणार्तो दैन्यं परं प्राप सुरैः सुरेन्द्रः।।8।।
त्वदीयसेवावसरप्रतीक्षैरभ्यर्थितः शक्रमुखैः सुरैस्त्वाम्।
उपागतोऽन्वेष्टुमहं विहंगरूपेण विद्वन्समयोचितेन।।9।।
इति प्रभो चेतसि संप्रधार्य तन्नोऽपराधं भगवन्क्षमस्व।
पराभिभूता वद किं क्षमन्ते कालातिपातं शरणार्थिनोऽमी।।10।।
प्रभो प्रसीदाशु सृजात्मपुत्रं यं प्राप्य सेनान्यमसौ सुरेन्द्रः।
स्वर्लोकलक्ष्मीप्रभुतामवाप्य जगत्त्रयं पाति तव प्रसादात्।।11।।
स शंकरस्तामिति जातवेदोविज्ञापनामर्थवतीं निशम्य।
अभूत्प्रसन्नः परितोषयन्ति गीर्भिर्गिरीशा रुचिराभिरीशम्।।12।।
प्रसन्नचेता मदनान्तकारः स तारकारेर्जयिनो भवाय।
शक्रस्य सेनाधिपतेर्जयाय व्यचिन्तयच्चेतसि भावि किंचित्।।13।।
युगान्तकालाग्निमिवाविषह्यं परिच्युतं मन्मथरङ्गभङ्गात्।
रतान्तरेतः स हिरणयरेतस्यथोर्ध्वरेतास्तदमोघमाधात्।।14।।
अथोष्णवाष्पानिलदूषितान्तर्विशुद्धमादर्शमिवात्मदेहम्।
बभार भूम्ना सहसा पुरारिरेतःपरिक्षेपकुवर्णमग्निः।।15।।

आपने अपनी प्रिया के प्रेम में सौ वर्ष तो संभोग में ही बिता दिया, आप यहाँ ऐसे अकेले में रहने लगे कि आपका दर्शन न पाने से इन्द्र और दूसरे देवता लोग घबराने लगे थे।।8।। हे भगवन्! वे सब इन्द्र आदि देवता अब आपके दर्शन के लिये बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हीं के कहने से मैं आप को ढूँढ़ने निकला था। मैंने यही जानकर पक्षी का रूप बना लिया कि आप इस समय संभोग कर रहे होंगे।।9।। इसलिये हे प्रभो! आप मेरा अपराध क्षमा कीजिए। आप ही सोचकर देखिए कि शत्रुओं से हारकर और अपमानित होकर आपकी शरण में आए हुए देवता लोग भला कितने दिनों तक मन मारे बैठे रह सकते थे।।10।। इसलिए हे प्रभो! आप प्रसन्न होकर शीघ्र ही अपने वीर्य से एक ऐसा पुत्र उत्पन्न कीजिए, जिसे सेनापति बनाकर इन्द्र भगवान् फिर से स्वर्ग-लोक के स्वामी बनकर आपकी कृपा से तीनों लोकों का पालन करें।।11।। अग्नि की ठीक-ठीक बात सुनकर शंकर जी का क्रोध जाता रहा; क्योंकि जिन्हें बात करने का ढंग आता है, वे अपनी बातों से अपने स्वामियों को प्रसन्न कर ही लेते हैं।।12।। तब कामदेव को जलाने वाले हँसमुख शंकर जी ने ऐसा पुत्र उत्पन्न करने का विचार किया, जो तारक राक्षस को जीत सके और सेनापति बनकर इन्द्र को जिता सके।।13।। अपने वीर्य को ऊपर खींच सकने वाले शंकर जी का अचूक वीर्य जो प्रलयाग्नि के समान किसी से सहा न जा सकने वाला था, संभोग के अन्त में निकल पड़ा, उसे शंकर जी ने अग्नि को दे दिया।।14।। उसे लेते ही अग्नि का उजला शरीर एकदम ऐसा धुँधला पड़ गया जैसे मुँह की भाप से दर्पण धुँधला पड़ जाता है।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं सर्वभक्षो भव भीमकर्मा कुष्ठाभिभूतोऽनलधूमगर्भः।
इत्थं शशापाद्रिसुता हुताशं रुष्टा रतानन्दसुखस्य भङ्गात्।। 16।।
दक्षस्य शापेन शशी क्षयीव प्लुष्टो हिमेनेव सरोजकोशः।
वहन्विरूपं वपुरुग्ररेतश्चयेन वह्निः किल निर्जगाम।। 17।।
स पावकालोकरुषा विलक्षां स्मरत्रपास्मेरविनम्रवक्त्राम्।
विनोदयामास गिरीन्द्रपुत्रीं शृङ्गारगर्भैर्मधुरैर्वचोभिः।। 18।।
हरो विकीर्णं घनघर्मतोयैर्नेत्राञ्जनांकं हृदयप्रियायाः।
द्वितीयकौपीनचलाञ्चलेनाहरन्मुखेन्दोरकलङ्किनोऽस्याः।। 19।।
मन्देन स्विन्नाङ्गुलिना करेण कम्पेन तस्या वदनारविन्दात्।
परामृशन्घर्मजलं जहार हरः सहेलं व्यजनानिलेन।। 20।।
रतिश्लथं तत्कबरीकलापमंसावसक्तं विगलत्प्रसूनम्।
स पारिजातोद्भवपुष्पमय्या स्रजा बबन्धामृतमूर्तिमौलिः।। 21।।
कपोलपाल्यां मृगानाभिचित्रपत्रावलीमिन्दुमुखः सुमुख्याः।
स्मरस्य सिद्धस्य जगद्विमोहमन्त्राक्षरश्रेणिमिवोल्लिलेख।। 22।।

उधर संभोग के सुख में इस प्रकार बाधा पड़ जाने से पार्वती जी भी आग-बबूला हो उठीं और उन्होंने अग्नि को शाप दिया जाओ, तुम आज से पवित्र-अपवित्र सब वस्तुएँ खाओ और संसार की वस्तुओं को जलाने का भयानक काम करो कोढ़ी हो जाओ और सदा धुएँ से भरे रहो।।16।। महादेव जी का वीर्य लेने से अग्नि का रूप ऐसा बिगड़ गया, जैसे दक्ष के शाप से क्षयरोग वाले चन्द्रमा का रूप, या पाले से मारे हुए कमल के कोश का रूप। वही रूप लेकर अग्नि वहाँ से बाहर निकले।।17।। अग्नि ने अचानक संभोग के समय ही उन्हें देख लिया था, इसीलिये पार्वत जी क्रोध के मारे आपे से बहार हो गईं। काम और लाज के मारे अपनी झेंप मुस्कराहट में छिपाती हुई और नीचा मुँह किए बिगड़ी बैठी हुई पार्वती जी को प्रेमभरे मीठे वचनों से शंकर भगवान् बहलाने लगे।।18।। घने पसीने की बूँदों के कारण पार्वती जी की आँखों का आँजन उनके मुँह पर इधर-उधर फैल गया था। शंकर जी की प्राणप्रिया के मुखचन्द्र पर वे आँजन के चिह्न ऐसे लग रहे थे मानो वे चन्द्रमा के कलंक हों। महादेव जी ने फैला हुआ आँजन अपने कन्धे के कौपीन से पौंछ डाला।।19।। अपनी गीली अँगुलियों वाले हाथों को पंखे के समान झलकर शिव जी ने धीरे-धीरे पार्वती के मुख कमल का सब पसीना सुखा दिया।।20।। संभोग के समय जूड़ा खुल जाने से पार्वती जी के बाल कंधों पर फैल गए थे और जूड़े में लगे हुए सब फूल भी निकल गये थे। उस जूड़े को महादेव जी ने फिर से पारिजात के फूलों की माला से बाँध दिया।।21।। चन्द्र के समान मुख वाले शंकर जी ने सुन्दर मुख वाली पार्वती जी के गाल कस्तूरी के लेप से लीप दिए। उसे देखकर यह जान पड़ा मानो वह चित्रकारी भी सिद्ध कामदेव के हाथों से लिखे हुए वे मंत्र हों, जिनसे वह संसार को वश में कर लिया करता है।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथस्य कर्णावभि तन्मुखस्य ताटङ्कचक्रद्वितयं न्यधात्सः।
जगज्जिगीषुर्विषमेषुरेष ध्रुवं यमारोहति पुष्पचापः।। 23।।
तस्याः स कण्ठे पिहितस्तनाग्रां न्यधत्त मुक्ताफलहारवल्लीम्।
य प्राप मेरुद्वितयस्य मूर्ध्नि स्थितस्य गाङ्गौघयुगस्य लक्ष्मीम्।। 24।।
नखव्रणश्रेणिवरे बवन्ध नितम्वबिम्वे रशनाकलापम्।
चलस्वचेतोमृगवन्धनाय मनोभुवः पाशमिव स्मरारिः।। 25।।
भालेक्षणाग्नौ स्वयमञ्जनं स भङ्क्त्वादृशोः साधु निवेश्य तस्याः।
नवोत्पलाक्ष्याः पुलकोपगूढे कण्ठे विनीलेऽङ्गुलिमुज्जघर्ष।। 26।।
अलक्तकं पादसरोरुहाग्रे सरोरुहाक्ष्याः किल संनिवेश्य।
स्वमौलिगङ्गासलिलेन हस्तारुणत्वमक्षालयदिन्दुचूडः।। 27।।
भस्मानुलिप्ते वपुषि स्वकीये सहेलमादर्शतलं विमृज्य।
नेपथ्यलक्ष्म्याः परिभावनार्थमदर्शयज्जीवितवल्लभां सः।। 28।।
प्रियेण दत्ते मणिदर्पणे सा संभोगचिह्नं स्ववपुर्विभाव्य।
त्रपावती तत्र घनानुरागं रोमाञ्चदम्भेन बहिर्बभार।।29।।

शंकर जी ने पार्वती जी के दोनों कानों में दो गोल कर्णफूल पहना दिए। उनसे इनका मुख ऐसा सुन्दर दिखाई पड़ने लगा, मानो यह कामदेव का ऐसा रथ हो जिस पर बैठकर वह तीनों लोकों को जीतने निकला हो और ये दोनों कर्णफूल उस रथ के दोनों पहिए हों।।23।। शंकर जी ने पार्वती के गले में जो मोतियों का हार पहनाया, वह उनके स्तनों की घुंडियों को छूकर छाती पर लटका हुआ ऐसा जान पड़ता था, मानो दो समेरु पर्वतों की चोटियों से गंगा जी की दो धाराएँ गिर रही हो।।24।। शंकर जी ने पार्वती जी के उन नितम्बों पर करधनी पहना दी, जिन पर उनके हाथों से बने हुए, नखों के चिह्न चमक रहे थे। वह करधनी ऐसी लगती थी मानों कामदेव ने अपने चंचल चित्तरूपी मृगी को बाँधने के लिये फाँस लगा दी हो।।25।। उन्होंने अपने ललाट में जलने वाले नेत्र से स्वयं आँजन बनाकर नये कमल-जैसी आँखों वाली पार्वती जी के नयनों में काजल लगा दिया और फिर उँगली में लगा हुआ आँजन पोंछने के लिए वह उँगली अपने नीले कंठ में रगड़ ली।।26।। तब उन कमलनयनी पार्वती जी के चरण कमल के पंजों में शंकर जी ने महावर लगाकर अपने सिर पर बहती हुई गंगा की धारा में अपने हाथ का रंग धो डाला।।27।। यह सब करके बड़े प्रसन्न होकर उन्होंने अपने भस्म लगे हुए शरीर पर दर्पण रगड़कर पोंछा और फिर अपनी प्राण-प्यारी को शृंगार की सजावट दिखाने के लिये वह दर्पण उनके आगे कर दिया।।28।। शंकर जी के हाथ से दिखाए हुए उस दर्पण में अपने शरीर पर बने हुए संभोग के चिह्न देखने से उन्हें लाज के मारे जो रोमांच हो आया, उसी से उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि वह शंकर जी से कितना प्रेम करती हैं।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपथ्यलक्ष्मीं दयितोपक्लृप्तां सस्मेरमादर्शतले विलोक्य।
अमँस्त सौभाग्यवतीषु धुर्यामात्मानमुद्भूतविलक्षभावा।।30।।
अन्तः प्रविश्यावसरेऽथ तत्र स्निग्धे वयस्ये विजया जया च।
सुसंपदोपाचरतां कलानामङ्के स्थितां तां शशिखण्डमौलेः।।31।।
व्यधुर्बहिर्मङ्गलगानमुच्चैर्वैतालिकाश्चित्रचरित्रचारु ।
जगुश्च गन्धर्वगणाः सशङ्खस्वनं प्रमोदाय पिनाकपाणेः।।32।।
ततः स्वसेवावसरे सुराणां गणाँस्तदालोकनतत्पराणाम्।
द्वारि प्रविश्य प्रणतोऽथ नन्दी निवेदयामास कृताञ्जलिः सन्।।33।।
महेश्वरो मानसराजहंसीं करे दधानस्तनयां हिमाद्रेः।
संभोगलीलालयतः सहेलं हरो बहिस्तानभि निर्जगाम।।34।।
क्रमान्महेन्द्रप्रमुखाः प्रणेमुः शिरोनिबद्धाञ्जलयो महेशम्।
प्रालेयशैलाधिपतेस्तनूजां देवीं च लोकत्रयमातरं ते।।35।।
यथागतं तान्विबुधान्विसृज्य प्रसाद्य मानक्रियया प्रतस्थे।
स नन्दिना दत्तभुजोऽधिरुह्य वृषं वृषाङ्कः सह शैलपुत्र्या।।36।।
मनोतिवेगेन ककुद्मता स प्रतिष्ठमानो गगनाध्वनोऽन्तः।
वैमानिकैः साञ्जलिभिर्ववन्दे विहारहेलागतिभिर्गिरीशः।।37।।

अपने प्यारे पति के हाथ से किए हुए शृंगार की शोभा जब उन्होंने दर्पण में देखी, तो वे मुस्कुरा दीं और सब क्रोध छोड़कर ऐसी प्रसन्न हो गईं कि वे अपने को संसार की सब सौभाग्यवती स्त्रियों में सबसे बढ़कर समझने लगी।।30।। तब जया और विजया नाम की सखियों ने देखा कि अब ठीक अवसर है तब वे झट भीतर गईं और शंकर जी की गोद में बैठी हुई पार्वती जी का शृंगार करने लगीं।।31।। उसी समय शंकर जी को प्रसन्न करने के लिये चारणों ने उनके सुन्दर चरित्र के मनोहर मंगलगीत गाने प्रारंभ कर दिए और गन्धर्व लोग भी शंख बजा-बजाकर गाने लगे।।32।। महादेव जी की सेवा करने का ठीक अवसर जानकर नन्दी भी भीतर जा पहुँचे और उन्होंने शंकर जी से प्रार्थना की देवता लोग आपके दर्शन के लिये बाहर आए खड़े हैं।।33।। यह सुनकर अपनी प्राण-प्यारी के हाथ में हाथ डाले भगवान् शंकर देवताओं से मिलने के लिये उस संभोग गृह से बाहर निकल आए।।34।। आते ही इन्द्र आदि देवताओं ने धीरे-धीरे बारी-बारी से शिव जी को तथा तीनों लोकों की माता पार्वती जी को हाथ जोड़कर और सिर नवाकर प्रणाम किया।।35।। शंकर जी ने सब देवताओं का सम्मान करके उन्हें प्रसन्न किया और विदा किया। तब नन्दी के हाथ के सहारे से पार्वती जी के साथ बैल पर चढ़कर वे स्वयं वहाँ से चल पड़े।।36।। मन से भी अधिक वेग से चलने वाले उस बैल पर चढ़कर जब ये आकाशमार्ग में जा रहे थे, उस समय जो देवता लोग अपने-अपने विमानों पर चढ़कर आकाश में घूम रहे थे, उन सबने शिव जी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्वाहिनीवारिविहारचारी रतान्तनारीश्रमशान्तिकारी।
तौ पारिजातप्रसवप्रसङ्गो मरुत्सिषेवे गिरिजागिरीशौ।। 38।।
पिनाकिनापि स्फटिकाचलेन्द्रः कैलासनामा कलिताम्वरांशः।
धृतार्द्धसोमोऽद्भुतभोगिभोगो विभूतिधारी स्व इव प्रपेदे।। 39।।
विलोक्य यत्र स्फटिकस्य भित्तौ सिद्धाङ्गनाः स्वं प्रतिविम्बमारात्।
भ्रान्त्या परस्या विमुखीभवन्ति प्रियेषु मानग्रहिला नमत्सु।। 40।।
सुविम्वितस्य स्फटिकांशुगुप्तेश्चन्द्रस्य चिह्नप्रकरः करोति।
गौर्यार्पितस्येव रसेन यत्र कस्तूरिकायाः शकलस्य लीलाम्।। 41।।
यदीयभित्तौ प्रतिविम्बिताङ्गमात्मानमालोक्य रुषा करीन्द्राः।
मत्तान्यकुम्भिभ्रमतोऽतिभीमदन्ताभिघातव्यसनं वहन्ति।। 42।।
निशासु यत्र प्रतिविम्बितानि ताराकुलानि स्फटिकालयेषु।
दृष्ट्वा रतान्तच्युततारहारमुक्ताभ्रमं बिभ्रति सिद्धवध्वः।। 43।।

उस समय आकाशगंगा के जल की फुहारों से शीतल, पारिजात के फूलों में बसे हुए और संभोग करके थकी हुई नारी की थकावट मिटाने वाले पवन ने आकर शंकर जी और पार्वती जी की बड़ी सेवा की।।38।। चलते-चलते भगवान् शंकर स्फटिक के बने हुए पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर जा पहुँचे। यह पहाड़ शंकर जी के समान ही लगता था; क्योंकि अपने बड़प्पन से शंकर जी सारे आकाश में व्याप्त हैं और कैलास के भी चारों ओर आकाश है। इसलिये दोनों ही आकाश से सजे हैं। सोम कहलाने वाले भगवान् शंकर जी इस पर्वत पर रहते हैं और सोम कहलाने वाला चन्द्रमा महादेव जी के माथे पर रहता है। इसीलिये दोनों ही सोम को धारण करने वाली हैं। इस पर्वत पर भोगी या कामी अनूठा संभोग करते हैं और महादेव जी पर भोगी (अर्थात् साँप) अनूठे ढंग से लिपटे रहते हैं। इसलिये दोनों ही अनूठे भोगी हैं। इस पर्वत पर बहुत विभूति (अर्थात् रत्नमणि) आदि पाए जाते हैं और महादेव जी के शरीर पर विभूति (अर्थात् भस्म) हैं। इसलिये दोनों ही विभूतिवाले भी हैं।।39।। जब सिद्धों की स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ कैलासपर्वत की स्फटिक की दीवारों के पास पहुँचकर अपनी परछाई देखती हैं, तो उन्हें यह धोखा हो जाता है कि हमारे पति किसी दूसरी स्त्री को तो साथ नहीं लिए हुए हैं। फल यह होता है कि अपने पतियों के मनाते रहने पर भी वे रूठी ही रहती हैं।।40।। जब उस स्फटिक के बने हुए कैलास पर चन्द्रमा की सुन्दर परछाहीं पड़ती है तब चन्द्रमा के कलंक की छाया तो दिखाई पड़ती है पर चन्द्र की छाया उसी में मिल जाती है। वह कलंक की छाया ऐसी लगती है मानो पार्वती जी ने कस्तूरी पीसकर और उसकी पिंडी बनाकर वहाँ छाप दी हो।।41।। इसी पर्वत की भीतों पर अपने अंगों की छाया देखकर मतवाले हाथी उसे दूसरा मतवाला हाथी समझ बैठते हैं। इसलिये क्रोध में भरकर अपने दाँतों से उन पर तीव्र टक्करें लेने लगते हैं।।42।। यहाँ के स्फटिक के बने हुए भवनों पर तारों की परछाहीं पड़ती है, तो सिद्धों की स्त्रियों को यह धोखा हो जाता है कि ये कहीं संभोग के समय टूटकर गिरे हुए मोतियों के दाने तो नहीं है।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नभश्चरीमण्डनदर्पणश्रीः सुधानिधिर्मूर्द्धनि यस्य तिष्ठन्।
अनर्घ्यचूडामणितामुपैति शैलाधिनाथस्य शिवालयस्य।। 44।।
समीयिवांसो रहसि स्मरार्ता रिरंसवो यत्र सुराः प्रियाभिः।
एकाकिनोऽपिप्रतिबिम्बभाजो विभान्ति भूयोभिरिवान्विताः स्वैः।। 45।।
देवोऽपि गौर्या सह चन्द्रमौलिर्यदृच्छया स्फाटिकशैलशृङ्गे।
शृङ्गारचेष्टाभिरनारताभिर्मनोहराभिर्व्यहरच्चिराय ।। 46।।
देवस्य तस्य स्मरसूदनस्य हस्तं समालिङ्ग्य सुविभ्रमश्रीः।
सा नन्दिना वेत्रभृतोपदिष्टमार्गा पुरोगेण कलं चचाल।। 47।।
चलच्छिखाग्रो विकटाङ्गभङ्गः सुदन्तुरः शुक्लसुतीक्ष्णतुण्डः।
भ्रुवोपदिष्टः स तु शंकरेण तस्या विनोदाय ननर्त भृङ्गी।। 48।।
कण्ठस्थलीलोलकपालमाला दंष्ट्राकरालाननमभ्यनृत्यत्।
प्रीतेन तेन प्रभुणा नियुक्ता काली कलत्रस्य मुदे प्रियस्य।। 49।।
भयङ्करौ तौ विकटं नदन्तौ विलोक्य बाला भयविह्वलाङ्गी।
सरागमुत्सङ्गमनङ्गशत्रोर्गाढं प्रसह्य स्वयमालिलिङ्ग।। 50।।
उत्तुङ्गपीनस्तनपिण्डपीडं .ससंभ्रमं तत्परिरम्भमीशः।
प्रपद्य सद्यः पुलकोपगूढः स्मरेण रूढप्रमदो ममाद।। 51।।

अप्सराओं के दर्पण के समान सुन्दर लगने वाला चन्द्रमा जब इस कैलास की चोटी पर आ पहुँचता है, तब यह उस हिमालय का अनमोल चूड़ामणि-सा लगने लगता है जिस पर शिव जी निवास करते हैं।।44।। काम से पीड़ित देवता लोग अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ लेकर जब यहाँ एकान्त में विहार करने आते हैं तब स्वयं अकेले होने पर भी अनेक परछाइयाँ पड़ने के कारण उन्हें ऐसा जान पड़ता है, मानो हमारे बहुत से रूप हो गए हों।।45।। उसी सुन्दर कैलास की स्फटिक की चोटी पर शंकर जी ने भी पार्वती जी के साथ बहुत दिनों तक लगातार जी भरकर अनेक प्रकार की काम-क्रीड़ाएँ कीं।।46।। अपनी रसीली चटक-मटक से जी लुभाने वाली पार्वती जी भी शंकर जी के हाथ में हाथ दिए हुए उन पथों पर घूमा करती थीं जहाँ हाथ में बेंत का डण्डा लिए हुए नन्दी आगे-आगे मार्ग बताता हुआ चलता था।।47।। शंकर जी की भौंहों का संकेत पाकर बड़े-बड़े दाँतों वाले, लहराती हुई चोटी वाले, टेढ़े-मेढ़े अंगों वाले और उजले बेढंगे मुँह वाले भृंगी ने पार्वती जी का मन बहलाने के लिये बड़ा नाच दिखलाया।।48।। हँसमुख दिखाई पड़ने वाले शंकर जी की आज्ञा पाकर हिलती हुई खोपड़ियों की माला कण्ठ में पहनने वाली कालिका ने भी अपने डरावने दाँतों वाला मुँह बना-बनाकर अपने स्वामी की प्यारी का मन बहलाने के लिये नाच दिखलाया।।49।। इस प्रकार विकट रूप से भयंकर शब्द करते हुए भृंगी और काजी को देखते ही पार्वती जी की इस घबराहट में उनके उठे हुए और मोटे-मोटे स्तनों के अपनी छाती पर लगते ही शंकर जी मगन हो उठे और उनके मन में इतना काम उत्पन्न हो गया कि वे प्रेम में मतवाले हो उठे।।51।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति गिरितनुजाविलासलीला
विविधविभङ्गिभिरेष तोषितः सन्।
अमृतकरशिरोमणिर्गिरीन्द्रे
कृतवसतिर्वशिभिर्गणैर्ननन्द ।।52।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
कैलासगमनो नाम नवमः सर्ग।।

इस प्रकार श्री पार्वती जी की अनेक हाव-भाव भरी लीलाओं और अनेक प्रकार के संभोग से सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकर जी अपने साथ कैलास पर रहने वाले गणों के साथ बड़े प्रसन्न हुए।। 52।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में 'कैलासगमन'
नाम का नवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। दशमः सर्गः ।।

आससाद सुनासीरं सदसि त्रिदशैः सह।
एष त्रैयम्बकं तीव्रं वहन्वह्निमहन्महः।।1।।
सहस्रेण दृशामीशः कुत्सिताङ्गं च सादरम्।
दुर्दर्शनं ददर्शाग्निं धूम्रधूमितमण्डलम्।।2।।
दृष्ट्वा तथाविधं वह्निमिन्द्रः क्षुब्धेन चेतसा।
व्यचिन्तयच्चिरं किञ्चित्कन्दर्पद्वेषिरोषजम्।।3।।
स विलक्ष्यमुखैर्देवैर्वीक्ष्यमाणः क्षणं क्षणम्।
उपाविशत्सुरेन्द्रेणादिष्टं सादरमासनम्।।4।।
हव्यवाह त्वयासादि दुर्दशेयं दशा कुतः।
इति पृष्टः सुरेन्द्रेण निःश्वस्य वचोऽवदत्।।5।।
अनतिक्रमणीयात्ते शासनात्सुरनायक।
पारावतं वपुः प्राप्य वेपमानोऽतिसाध्वसात्।।6।।
अभिगौरि रतासक्तं जगामाहं महेश्वरम्।
कालस्येव स्मरारातेः स्वं रूपमहमासदम्।।7।।
दृष्ट्वा छद्मविहङ्गं मां सुज्ञो विज्ञाय जम्भभित्।
ज्वलद्भालानले होतुं कोपतो माममन्यत।।8।।

दसवाँ सर्ग

शंकर जी के उस जलते हुए वीर्य को लेकर अग्निदेव उस सभा में पहुँचे, जहाँ इन्द्र भगवान् देवताओं के साथ बैठे हुए थे।।1।। इन्द्र ने बड़े आदर के साथ अपनी सहस्रों आँखों से उन अग्नि की ओर देखा, जिनके अंग बेढंगे भद्दे और धुएँ से काले पड़ गए थे।।2।। अग्नि का यह रूप देखकर इन्द्र बड़े दुखी हुए और थोड़ी देर सोचते ही वे समझ गए कि शंकर जी के क्रोध से ही अग्नि की यह दशा हुई है।।3।। जिस अग्नि की ओर सब देवता बड़े दुखी होकर बराबर देख रहे थे, उन्हें इन्द्र ने संकेत से एक आसन पर बैठा दिया।।4।। और उन्होंने अग्निदेव से पूछा—'कहिए! आपकी यह दुर्दशा कैसे हो गई!' तब लंबी साँस लेकर अग्निदेव कहने लगे—।।5।। 'हे देवेन्द्र! आपकी अटल आज्ञा से मैं कबूतर बनकर बहुत डरता-डरता महादेव जी के पास पहुँचा। उस समय वे पार्वती जी के साथ संभोग कर रहे थे। मुझे पहचानते ही जब वे क्रोध के मारे महाकाल के समान भयंकर हो गए, तब मैंने कबूतर का रूप छोड़कर डरके मारे अपना सच्चा रूप प्रकट कर दिया।।6-7।। हे इन्द्र! मुझे पक्षी के कपटवेष में देखकर सब कुछ जानने वाले शंकर जी को ऐसा क्रोध आया कि वे मुझे अपने ललाट की जलती हुई आग में झोंक ही देते।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचोभिर्मधुरैः सार्थैर्विनम्रेण मया स्तुतः।
प्रीतिमानभवद्देवः स्तोत्रं कस्य न तुष्टये।।9।।

शरण्यः सकलत्राता मामत्रायत शंकरः।
क्रोधाग्नेर्ज्वलतो ग्रासात्त्रासतो दुर्निवारतः।।10।।

परिहृत्य परीरम्भरभसं दुहितुर्गिरेः।
कामकेलिरसोत्सेकाद्व्रीडया विरराम सः।।11।।

रङ्गभङ्गच्युतं रेतस्तदामोघं सुदुर्वहम्।
त्रिजगद्दाहकं सद्यो मद्विग्रहमधि न्यधात्।।12।।

दुर्विषह्येण तेनाहं तेजसा दहनात्मना।
निर्दग्धमात्मनो देहं दुर्वहं वोढुमक्षमः।।13।।

रौद्रेण दह्यमानस्य महसातिमहीयसा।
मम प्राणपरित्राणप्रगुणो भव वासव।।14।।

इति श्रुत्वा वचो वह्नेः परितापोपशान्तये।
हेतुं विचिन्तयामास मनसा विबुधेश्वरः।।15।।

तेजोदग्धानि गात्राणि पाणिनास्य परामृशन्।
किंचित्कृपीटयोनिं तं दिवस्पतिरभाषत।।16।।

परन्तु मैंने बहुत गिड़गिड़ाकर बड़े अर्थ-भरे मीठे शब्दों में उनकी बड़ी स्तुति की तो वे पिघल गए, क्योंकि अपनी प्रशंसा भला किसको नहीं अच्छी लगती।।9।। यह तो आप जानते ही है कि शंकर जी की शरण में जो पहुँच जाता है, उसकी और सारे जगत् की वे रक्षा करते ही है। इसलिए उनके क्रोध की जलती हुई जिस आग से कोई बच नहीं सकता, उसकी आहुति बनते-बनते मैं बच गया।।10।। उन्होंने झट पार्वती जी के कसकर बँधे हुए हाथों से अपने को छुड़ा लिया और लज्जा के कारण, सम्भोग के सुख की इच्छा छोड़कर वे हट गए।।11।। संभोग के बीच में ही रंग में भंग होने से उनका जो तीनों लोकों को जलाने वाला और किसी से भी सहा न जा सकने वाला अचूक वीर्य निकला, वह उन्होंने मेरे शरीर में डाल दिया।।12।। अब मैं उस असह्य जलते हुए तेज से इतना जला जा रहा हूँ कि मुझे अपना शरीर भी भारी हो रहा है।।13।। हे इन्द्र! महादेव जी के इस अत्यन्त भयानक तेज से मेरा सारा शरीर जला जा रहा है। इसलिए अब आप किसी भी प्रकार मेरे प्राण बचाने का यश लीजिए।।14।। अग्नि की ये बातें सुनकर देवराज इन्द्र अपने मन में कोई ऐसा उपाय सोचने लगे, जिससे अग्नि की जलन मिट जाय।।15।। महादेव जी के तेज से जलते हुए अग्नि के अंगों पर हाथ फेरते हुए इन्द्र बोले–।।16।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रीतः स्वाहास्वधाहन्तकारैः प्रीणयसे स्वयम्।
देवान्पितृन्यमनुष्याँस्त्वमेकस्तेषां मुखं यतः।।17।।
त्वयि जुह्वति होतारो हवींषि ध्वस्तकल्मषाः।
भुञ्जन्ति स्वर्गमेकस्त्वं स्वर्गप्राप्तौ हि कारणम्।।18।।
हवींषि मन्त्रपूतानि हुताश त्वयि जुह्वतः।
तपस्विनस्तपःसिद्धिं यान्ति त्वं तपसां प्रभुः।।19।।
निधत्से हुतमर्काय स पर्जन्योऽभिवर्षति।
ततोऽन्नानि प्रजास्तेभ्यस्तेनासि जगतः पिता।।20।।
अन्तश्चरोऽसि भूतानां तानि त्वत्तो भवन्ति च।
ततो जीवितभूतस्त्वं जगतः प्राणदोऽसि च।।21।।
जगतः सकलस्यास्य त्वमेकोऽस्युपकारकृत्।
कार्योपपादने तत्र त्वत्तोऽन्यः कः प्रगल्भते।।22।।
अमीषां सुरसंघानां त्वमेकोऽर्थसमर्थने।
विपत्तिरपि संश्लाघ्योपकारव्रतिनोऽनल।।23।।
देवी भागीरथी पूर्वं भक्त्यास्माभिः प्रतोषिता।
निमज्जतस्त्वोदीर्णं तापं निर्वापयिष्यति।।24।।

हे अग्नि! देखो, जब हवन करने वाले लोग स्वाहा, स्वधा और वषट् कहकर हवन करते हैं तो उस समय तुम प्रसन्न होकर देवों, पितरों और मनुष्यों को प्रसन्न करते हो, क्योंकि तुम्हारे ही मुख से तो सबको अपना-अपना भाग मिलता है।।17।। होता लोग तुम में हवन करके पाप से छूटकर स्वर्गलोक में जाकर सुख भोगते हैं। वे एक तुम्हारे ही सहारे तो स्वर्ग तक पहुँच पाते हैं।।18।। हे अग्नि! यज्ञ करने वाले तपस्वी लोग मन्त्र पढ़कर जो तुम्हें आहुति देते हैं, उससे वे अपनी तपस्या का पूरा फल पा जाते हैं; क्योंकि तप के देवता भी तो तुम्हीं हो।।19।। सूर्य के लिये जो आहुति दी जाती है उसे तुम धरोहर की भाँति लेकर उन्हें दे देते हो। सूर्य उसे बादल बनाकर बरसा देते हैं, जिससे अन्न पैदा होता है और फिर उसी अग्नि से संसार के प्राणियों का पेट पलता है। इस प्रकार सारे संसार के पिता भी तुम्हीं हो।।20।। हे अग्नि! सब प्राणियों के भीतर तुम्हीं तो रहते हो और वे सब तुम्हीं से उत्पन्न होते हैं। इसलिये तुम्हीं संसार के जीवन और प्राण देने वाले हो।।21।। इस समूचे संसार का भला करने वाले एक तुम्हीं तो हो, इसलिए ऐसा कष्टपूर्ण काम तुम्हें छोड़कर और सहन ही कौन कर सकता है।।22।। हे अग्नि! तुम्हीं तो एक ऐसे हो जो देवताओं का काम सिद्ध कर सकते हो। देखो! जो दूसरों की भलाई करने का बीड़ा उठाते हैं, वे जो कष्ट सहते हैं वह भी बड़े गौरव और बड़ाई की बात होती है।।23।। देखो! हम लोगों ने पहले से ही बहुत हाथ-पैर जोड़कर गंगा जी को प्रसन्न कर लिया है। बस, ज्यों ही तुम उनकी धारा में स्नान करोगे, त्यों ही वे इस घोर जलन को शान्त कर देंगी।।24।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गां तद्गच्छ मा कार्षीर्विलम्बं हव्यवाहन।
कार्येष्ववश्यकार्येषु सिद्धये क्षिप्रकारिता।।25।।

शंभोरम्भोमयी मूर्तिः सैव देवी सुरापगा।
त्वत्तः स्मरद्विषो बीजं दुर्धरं धारयिष्यति।।26।।

इत्युदीर्य शुनासीरो विरराम स चानलः।
तद्विसृष्टस्तमापृच्छ्य प्रतस्थे स्वर्धुनीमभि।।27।।

हिरण्यरेतसा तेन देवी स्वर्गतरङ्गिणी।
तीर्णाध्वना प्रपेदे सा निःशेषक्लेशनाशिनी।।28।।

स्वर्गारोहणनिःश्रेणिमोक्षमार्गाधिदेवता।
उदारदुरितोद्गारहारिणी दुर्गतारिणी।।29।।

महेश्वरजटाजूटवासिनी पापनाशिनी।
सगरान्वयनिर्वाणकारिणी धर्मधारिणी।।30।।

विष्णुपादोदकोद्भूता ब्रह्मलोकादुपागता।
त्रिभिः स्रोतोभिरश्रान्तं पुनाना भुवनत्रयम्।।31।।

जातवेदसमायान्तमूर्मिहस्तैः समुत्थितैः।
आजुहावार्थसिद्ध्यै तं सुप्रसादधरेव सा।।32।।

इसलिए हे अग्नि! तुम झट-पट गंगा जी के पास जाओ, देर न करो, जिस काम को पूरा करने की बात जी में ठान ली जाये उसे पूरा करने में देर नहीं करनी चाहिए।।25।। देखो! श्रीगंगा जी तो शंकर जी की ही जलवाली मूर्ति हैं, वे उनके तेजस्वी वीर्य को तुमसे लेकर अपने में रख लेंगी।।26।। इतना कहकर इन्द्र चुप हो गए और अग्निदेव भी उनसे विदा होकर गंगा जी की ओर चल पड़े।।27।। और चलकर उन गंगा जी के तीर पर जा पहुँचे, जो सब दुःखों को मिटा देती हैं, सीढ़ी बनाकर भक्तों को स्वर्ग पहुँचा देती हैं, मोक्ष दे डालती हैं, बड़े-बड़े पाप हर लेती हैं, कठिनाइयाँ दूर कर देती हैं, शंकर जी के जटा-जूट में रहती हैं, सगर के पुत्रों को भी तारने वाली हैं, धर्म की रक्षा करने वाली हैं, विष्णु के चरण से जल के रूप में निकलकर ब्रह्मलोक से आई हैं और अपनी तीन धाराओं से तीनों लोकों को सदा पवित्र करती हैं।।28-31।। वहाँ गंगा जी की जो लहरें उठ रही थीं, वे ऐसी लगती थीं मानो दूर से आते हुए अग्नि को देखकर वे प्रसन्न मन से अपनी लहरों के हाथों से उनका काम साधने के लिये उन्हें दूर सी ही बुला रही हों।।32।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संमिलद्भिर्मरालैः सा कलं कूजद्भिरुन्मदैः ।
ददे श्रेयांसि दुःखानि निहन्मीति तमभ्यधात् ।। 33 ।।

कल्लोलैरुद्गतैरर्वाचीनं तटमभिद्रुतैः ।
प्रीतेव तमभीयाय स्वर्धुनी जातवेदसम् ।। 34 ।।

अथाभ्युपेतस्तापार्तो निममज्जानलः किल ।
विपदापरिभूताः किं व्यवस्यन्ति विलम्बितुम् ।। 35 ।।

गङ्गावारिणि कल्याणकारिणि श्रमहारिणि ।
स मग्नो निर्वृतिं प्राप पुण्यभारिणि तारिणि ।। 36 ।।

तत्र माहेश्वरं धाम संचक्रम हविर्भुजः ।
गङ्गायामुत्तारंगायामन्तस्तापविपद्धृति ।। 37 ।।

कृशानुरेतसो रेतस्यादृते सरिता तया ।
निश्चक्राम ततः सौख्यं हव्यवाहो वहन्वहु ।। 38 ।।

सुधासारैरिवाम्भोभिरभिषिक्तो हुताशनः ।
यथागतं जगामाथ परां निर्वृतिमादधत् ।। 39 ।।

सा सुदुर्विषहं धाम कामजितो महत् ।
आदधाना परीतापमवाप व्योमवाहिनी ।। 40 ।।

वहाँ बहुत से राजहंस एक साथ मिलकर मतवाले बने हुए जो कल-कल शब्द कर रहे थे वह ऐसा लग रहा था, मानो गंगा जी अग्नि से कह रही हों कि मैं सबका भला किया करती हूँ और दुःख हर लिया करती हूँ। ।33।। गंगा जी की ऊँची उठती हुई और हर-हर करके आगे बढ़ती हुई तरंगें जो ढलुवे तट पर बढ़ती आ रही थीं, वे ऐसी लगती थी मानो गंगा जी कुछ आगे बढ़कर अग्नि का स्वागत करने चली आ रही हों। ।34।। ताप से जलते हुए अग्नि ने वहाँ पहुँचकर झट गंगा जी में डुबकी लगाई। सच है बिपदा के मारे लोगों को कहीं कुछ देर रुककर सोचने की सुध थोड़े ही रहती है। ।35।। सबका कल्याण करने वाली, थकावट दूर करने वाली, परम पवित्र तथा सबको तारने वाला गंगा जी के जल में डुबकी लगाकर अग्नि को बड़ा सुख मिला। ।36।। अपनी ज्वाला से दहकता हुआ शंकर जी का वीर्य अग्नि से निकलकर ऊँची तरंगों वाली गंगा जी में पहुँच गया। ।37।। जब गंगा जी ने बड़े आदर से शंकर जी का वीर्य ले लिया, तब अग्निदेव बहुत प्रसन्न होकर जल से बाहर निकल आए। ।38।। और अमृत की धारा के समान गंगा-जल से अत्यन्त ठंडे होकर और अत्यन्त सुख पाकर वे जहाँ से आए थे वहाँ चले गए। ।39।। शंकर जी के असह्य वीर्य को पाकर आकाश में बहने वाली गंगा जी भी एकदम उबल उठीं। ।40।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहिरार्ता युगान्ताग्नेस्तप्तानीव शिखाशतैः।
हित्वोष्णानि जलान्यस्या निर्जग्मुर्जलजन्तवः।। 41।।

तेजसा तेन रौद्रेण तप्तानि सलिलान्यपि।
समुदच्चन्ति चण्डानि दुर्धराणि बभार सा।। 42।।

जगच्चक्षुषि चण्डांशौ किंचिदभ्युदयोन्मुखे।
जग्मुः षट्कृत्तिका माघे मासि स्नातुं सुरापगाम्।। 43।।

शुभ्रैरभ्रंकषैरूर्मिशतैः स्वर्गनिवासिनाम्।
कथयन्तीमिवालोकावगाहाचमनादिकम्।। 44।।

सुस्नातानां मुनीन्द्राणां बलिकर्मोचितैरलम्।
बहिः पुष्पोत्करैः कीर्णतीरां दूर्वाक्षतान्वितैः।। 45।।

ब्रह्मध्यानपरैर्योगपरैर्ब्रह्मासनस्थितैः।
योगनिद्रागतैर्योगपट्टबन्धैरुपाश्रिताम्।। 46।।

पादाङ्गुष्ठाग्रभूमिस्थैः सूर्यसंबद्धदृष्टिभिः।
ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपसेविताम्।। 47।।

अथ दिव्यां नदीं देवीमभ्यनन्दन्विलोक्य ताः।
कं नाभिनन्दयत्येषा दृष्टा पीयूषवाहिनी।। 48।।

जैसे प्रलय की आग की सैकड़ों लपटों से तपे हुए गरम जल को छोड़कर जल के जीव पानी से बाहर निकल आते हैं, वैसे ही गंगा जी के तपते हुए जल को छोड़कर सब जीव भी घबराकर बाहर निकल आए।।41।। रुद्र के उस भयानक तेज से जब वह जल अत्यन्त तप चला तब वह भयंकर जल उबलकर ऐसा गरम हो गया कि छुआ तक नहीं जा सकता था, फिर भी गंगा जी उसे लिए ही रहीं।।42।। एक दिन माघ के महीने में जब संसार के नेत्ररूप प्रचंड किरणों वाले भगवान् सूर्य थोड़े-थोड़े निकल रहे थे, उस समय छओं कृत्तिकाएँ नहाने के लिये गंगा जी के तीर पर आईं।।43।। उस समय गंगा जी की उजली और आकाश चूमने वाली सैकड़ों तरंगें उछल-उछलकर मानो यह बता रही थीं कि स्वर्ग में रहने वाले देवता लोग यहीं आकर दर्शन, स्नान और आचमन किया करते हैं।।44।। वहाँ तीर पर फूल, दूब, अक्षत आदि वे सब पूजा की सामग्री बिखरी पड़ी थीं, जो मुनियों ने भली प्रकार स्नान पूजा करके वहाँ चढ़ा रखी थीं।।45।। उसी तीर पर कुश के आसनों पर पद्मासन बाँधकर ब्रह्म का ध्यान करते हुए और समाधि लगाए हुए, ऋषि लोग कमर से घुटने तक कपड़े ओढ़े सदा बैठे रहते हैं।।46।। और वहीं पर पाँव के अँगूठों पर खड़े होकर सूर्य की ओर आँख लगाए हुए ब्रह्मर्षि परमब्रह्म का ध्यान किया करते हैं।।47।। ऐसी दिव्य नदी को उन छओं कृत्तिकाओं ने प्रणाम किया। भला ऐसी अमृत की धारा वाली गंगा जी को देखकर कौन नहीं मुग्ध हो जायगा।।48।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रचूडामणिर्देवो यामुद्वहति मूर्द्धनि।
यस्या विलोकनं पुण्यं श्रद्दधुस्ता मुदा हृदि।। 49।।

दिव्यां विष्णुपदीं देवीं निर्वाणपददेशिनीम्।
निर्धूतकल्मषां मूर्ध्ना सुप्रह्वास्ताववन्दिरे।। 50।।

सौभाग्यैः खलु सुप्रापां मोक्षप्रतिभुवं सतीम्।
भक्त्यात्र तुष्टुवुस्तां ताः श्रद्दधाना दिवोधुनीम्।। 51।।

मुक्तिस्त्रीसङ्गदूत्यङ्गैस्तत्र ता विमलैर्जलैः।
प्रक्षालितमलाः सस्नुः सुस्नातास्तपसान्विताः।। 52।।

स्नात्वा तत्र सुलभ्यायां भाग्यैः परिपचेलिमैः।
चरितार्थं स्वमात्मानं बहु ता मेनिरे मुदा।। 53।।

कुशानुरेतसो रेतस्तासामभिकलेवरम्।
अमोघं संचचाराथ सद्यो गङ्गावगाहनात्।। 54।।

रौद्रं सुदुर्द्धरं धाम दधाना दहनात्मकम्।
परितापमवापुस्ता मग्ना इव विषाम्बुधौ।। 55।।

अक्षमा दुर्वहं वोढुमम्बुनो बहिरातुराः।
अग्निं ज्वलन्तमन्तस्ता दधाना इव निर्ययुः।। 56।।

स्वयं भगवान् शंकर, जिन गंगा जी को मस्तक पर रखते हैं, जिनके दर्शन करने से ही पुण्य होता है, उन गंगा जी को देखकर छओं कृत्तिकाएँ मन में बड़ी प्रसन्न हुई और उनके मन में गंगा जी के लिये बड़ी श्रद्धा जाग उठी।।49।। उन कृत्तिकाओं ने, मुक्ति देने वाली, विष्णु के चरणों से निकलने वाली और पापों का नाश करने वाली गंगा जी की बड़ी भक्ति से वन्दना की।।50।। जिनका बड़े सौभाग्य से दर्शन होता है और जो साक्षात् मोक्ष ही हैं, उन गंगा जी की स्तुति कृत्तिकाओं ने बड़ी भक्ति के साथ की।।51।। तब उन तपस्विनी कृत्तिकाओं ने जी भर मलमल कर गंगा जी के उस निर्मल जल में स्नान किया, जो ऐसा लगता था मानो मुक्ति के पास ही पहुँचा रहा हो।।52।। जिन गंगा जी में पिछले जन्म के पुण्यवान् लोग ही स्नान कर पाते हैं, उन गंगा जी में बड़े आनन्द के साथ स्नान करके उन कृत्तिकाओं ने अपने भाग्य को बड़ा उत्साहपूर्वक सराहा।।53।। जब वे गंगा जी में स्नान कर रही थीं, उस समय शंकर जी का अचूक वीर्य गंगा जी से निकलकर उन कृत्तिकाओं के शरीर में पैठ गया।।54।। तब शिव जी के उस भयंकर असह्य अग्नि के समान वीर्य के आ जाने से वे बहुत तप्त हो उठीं और उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो हम विष के समुद्र में ही डूब गई हैं।।55।। उस असह्य तेज को बहुत देर तक न सह सकने के कारण वे भीतर ही भीतर जलती हुई, उस तेज को लिए जल से बाहर निकलीं।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमोधं शांभवं बीजं सद्यो नद्योज्झितं महत्।
तासामभ्युदरं दीप्तं स्थितं गर्भत्वमागमत्।। 57।।

सुज्ञा विज्ञाय ता गर्भीभूतं तद्वोढुमक्षमाः।
विषादमदधुः सद्यो गाढं भर्तृभिया ह्रिया।। 58।।

अकामकरणं जातमकाण्डे भाविनोऽर्यतः।
संभूयान्योन्यमात्मानं शुश्रुवुस्तास्तदाविलम्।। 59।।

ततः शारवणे सार्धं भयेन व्रीडया च ताः
तद्गर्भजातमुत्सृज्य स्वान्गृहानभिनिर्ययुः।। 60।।

ताभिस्तत्रामृतकरकलाकोमलं भासमानं
तद्विक्षिप्तं क्षणमभिनभोगर्भमभ्युज्जिहानैः।
स्वैस्तेजोभिर्दिनपतिशतस्पर्धमानैरमानै-
र्वक्त्रैः षड्भिः स्मरहरगुरुस्पर्धयेवाजनीव।। 61।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
कुमारोत्पत्तिर्नाम दशमः सर्गः।।

शंकर जी का वह भभकता हुआ अचूक वीर्य गंगा जी से छूट जाने पर उन कृत्तिकाओं के पेट में पहुँचकर गर्भ बन गया।।57।। जब उन कृत्तिकाओं ने देखा कि वह तेज तो गर्भ बन गया है और हमसे सँभाले नहीं सँभलेगा, तब वे बुद्धिमती कृत्तिकाएँ अपने-अपने पतियों के डर से और लाज के मारे बड़ी दुखी हो गई।।58।। और उस अनिच्छित अनवसर के गर्भ की उन छहों कृत्तिकाओं ने परस्पर मिलकर सेवा की।।59।। और तब उस लज्जा और भय के कारण वे एक सरपत के जंगल में अपने-अपने गर्भ छोड़कर अपने-अपने घर लौट गईं।।60।। कृत्तिकाओं ने उस सरपत के जंगल में जो चन्द्रमा की किरणों के समान कोमल और तेजस्वी गर्भ छोड़े थे, वे ऐसे तेजस्वी बन गए कि उनका तेज उदय होते हुए सैकड़ों सूर्यों से भी होड़ करता था और अपने छः मुखों से वे चार मुख वाले ब्रह्मा को भी मानो चुनौती दे रहे थे।।61।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में
'कुमार का जन्म वर्णन' नाम का दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। एकादशः सर्गः ।।

अभ्यर्थ्यमाना विबुधैः समग्रैः प्रह्वैः सुरेन्द्रप्रमुखैरुपेत्य।
तं पाययामास सुधातिपूर्णं सुरापगा स्वं स्तनमाशु मूर्ता।। 1।।
पिबन्स तस्याः स्तनयोः सुधौघं क्षणं क्षणं साधु समेधमानः।
प्रापाकृत्तिं कामपि षड्भिरत्य निषेव्यमाणः खलु कृत्तिकाभिः।। 2।।
भागीरथीपावककृत्तिकानामानन्दवाष्पाकुललोचनानाम्।
तं नन्दनं दिव्यमुपात्तुमासीत्परस्परं प्रौढतरो विवादः।। 3।।
अत्रान्तरे पर्वतराजपुत्र्या समं शिवः स्वैरविहारहेतोः।
नभो विमानेन विगाहमानो मनोतिवेगेन जगाम तत्र।। 4।।
निसर्गवात्सल्यवशाद्विवृद्धचेतःप्रमोदौ गलदश्रुनेत्रौ।
अपश्यतां तं गिरिजागिरीशौ षडाननं षड्दिनजातमात्रम्।। 5।।
अथाह देवी शशिखण्डमौलिं कोऽयं शिशुर्दिव्यवपुः पुरस्तात्।
कस्याथवा धन्यतमस्य पुंसो मातास्य का भाग्यवतीषु धुर्या।। 6।।
स्वर्गापगासावनलोऽयमेताः षट्कृत्तिकाः किं कलहायमानाः।
पुत्रो ममायं न तवायमित्थं मिथ्येति वैलक्ष्यमुदाहरन्ति।। 7।।

ग्यारहवाँ सर्ग

इन्द्र आदि सब देवताओं ने जब गंगा जी के पास आकर बड़ी नम्रता से प्रार्थना की, तब वे स्त्री का रूप धारण करके अपना अमृत से भरा हुआ स्तन उस बालक को पिलाने लगीं।।1।। वह छः मुखों वाला बालक अमृत की धारा पी-पीकर पल-पल में वेग से बढ़ने लगा और जब छहों कृत्तिकाएँ भी आकर उसकी देखभाल करने लगीं, तब तो उसका रूप-रंग कुछ अनोखे ही ढंग से सुन्दर हो उठा।।2।। उस दिव्यरूप वाले बालक को देखकर, गंगा जी, अग्नि और छहों कृत्तिकाएँ सब आँखों में प्रेम के आँसू भरकर उस बालक को अपना-अपना पुत्र बनाने के लिये आपस में बड़ा झगड़ा करने लगीं।।3।। इसी बीच शिवजी भी पार्वती जी के साथ यों ही घूमते-घूमते मन के समान वेग से चलने वाले विमान पर चढ़े हुए आकाश में उड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे।।4।। छह दिनों के उस छह मुँह वाले बालक को देखते ही शिव जी और पार्वती जी की आँखें स्वाभाविक पुत्र-प्रेम की प्रसन्नता के मारे छलछला उठीं।।5।। और शंकर जी से पार्वती जी पूछने लगीं कि यह दिव्य शरीर वाला बालक कौन है? किस बड़भागी का पुत्र है और कौन सबसे बड़भागी स्त्री इसकी माता है?।।6।। ये अग्नि, गंगा और छहों कृत्तिकाएँ सब आपस में यह कह-कहकर क्यों झगड़ा कर रही हैं कि यह मेरा पुत्र है, तुम्हारा नहीं। ये इस प्रकार की बेतुकी और झूठी-झूठी बातें क्यों बक रही है।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतेषु कस्येदमपत्यमीशाखिलत्रिलोकीतिलकायमानम्।
अन्यस्य कस्याप्यथ देवदैत्यगन्धर्वसिद्धोरगराक्षसेषु।।8।।
श्रुत्वेति वाक्यं हृदयप्रियायाः कौतूहलिन्या विमलस्मितश्रीः।
सान्द्रप्रमोदोदयसौख्यहेतुभूतं वचोऽवोचत चन्द्रचूडः।।9।।
जगत्त्रयीनन्दन एष वीरः प्रवीरमातुस्तव नन्दनोऽस्ति।
कल्याणि कल्याणकरः सुराणां त्वत्तोऽपरस्याः कथमेष सर्गः।।10।।
देवि त्वमेवास्य निदानमास्सेः सर्गे जगन्मङ्गलगानहेतोः।
सत्यं त्वमेवेति विचारयस्व रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम्।।11।।
अतः शृणुष्वावहितेन वृत्तं बीजं यदग्नौ निहितं मया तत्।
संक्रान्तमन्तस्त्रिदशापगायां ततोऽवगाहे सति कृत्तिकासु।।12।।
गर्भत्वमाप्तं तदमोघमेतत्ताभिः शरस्तम्बमधि न्यधायि।
बभूव तत्रायमभूतपूर्वो महोत्सवोऽशेषचराचरस्य।।13।।
अशेषविश्वप्रियदर्शनेन धुर्या त्वमेतेन सुपुत्रीणीनाम्।
अलं विलम्बयाचलराजपुत्रि स्वपुत्रमुत्सङ्गतले निधेहि।।14।।
अथेति वादिन्यमृतांशुमौलौ शैलेन्द्रपुत्री रभसेन सद्यः।
सान्द्रप्रमोदेन सुपीनगात्री धात्री समस्तस्य चराचरस्य।।15।।

हे ईश! यह तीनों लोकों में तिलक के समान सबका सिरमौर सुन्दर बालक इन तीनों में से सचमुच किसका पुत्र है? या यह इनको छोड़कर किसी और ही देव, गन्धर्व, सिद्ध, नाग या राक्षस का पुत्र है।।8।। अपनी प्राणप्यारी पार्वती की यह चाव भरी बात सुनकर निर्मल कान्ति फैलाने वाली मुस्कुराहट के साथ शंकरजी ने बड़ी प्यारी बात कही।।9।। तीनों लोकों को आनन्द देने वाला यह बालक तुम वीरमाता का ही वीर पुत्र है। हे कल्याणी! तुम्हें छोड़कर देवताओं का कल्याण करने वाला ऐसा पुत्र कौन उत्पन्न कर सकता है।।10।। हे देवी! संसार भर के मंगल के कामों में जिस बालक की कीर्ति गाई जायेगी, वह तुम्हारा यही पुत्र है। तुम्हीं ठीक-ठीक विचारकर देख लो कि रत्न तो रत्नाकर से ही निकल सकता है।।11।। हे पार्वती! सावधान होकर इस बालक के उत्पन्न होने की कथा सुनो। देखो! मैंने अपना जो अचूक वीर्य अग्नि में रख दिया था, उसे अग्नि ने गंगा जी में छोड़ दिया और वह स्नान करती हुई छओं कृत्तिकाओं के पेट में पहुँचकर गर्भ बन गया, तब उस अचूक वीर्य को कृत्तिकाओं ने सरपत के जंगल में डाल दिया। उसी गर्भ से चर और अचर प्राणियों को हर्ष देने वाला यह अनोखा बालक जन्मा है।।12-13।। हे पार्वती! सारे संसार के प्यारे इस बालक की माता होने से तुम अपने को सब पुत्रवती स्त्रियों में श्रेष्ठ समझो। अब देर न करो और अपने पुत्र को उठाकर गोद में ले लो।।14।। शंकर जी की यह बात सुनकर सारे संसार की माता पार्वती जी हर्ष से फूली न समाई और झट विमान से उतरकर उस पुत्र-रत्न को गोद में लेने के लिये अधीर हो उठीं। उस समय आकाश में इन्द्र आदि देवता लोग अपने मुकुटों पर हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करने लगे।।15-16।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किरीटबद्धाञ्जलिभिर्नभःस्थैर्नमस्कृता सत्वरनाकिलोकैः।
विमानतोऽवातरदात्मजं तं ग्रहीतुमुत्कण्ठितमानसाभूत्।। 16।।
स्वर्गापगापावककृत्तिकादीन्कृताञ्जलीनानमतोऽपि भूयः।
हित्वोत्सुका तं सुतमाससाद पुत्रोत्सवे माद्यति का न हर्षात्।। 17।।
प्रमोदबाष्पाकुललोचना सा न तं ददर्श क्षणमग्रतोऽपि।
परिस्पृशन्ती करकुड्मलेन सुखान्तरं प्राप किमप्यपूर्वम्।। 18।।
सुविस्मयानन्दविकस्वरायाः शिशुर्गलद्बाष्पतरंगितायाः।
विवृद्धवात्सल्यरसोत्तराया देव्या दृशोर्गोचरतां जगाम्।। 19।।
तमीक्षमाणा क्षणमीक्षणानां सहस्त्रमाप्तुं विनिमेषमैच्छत।
सा नन्दनालोकनमङ्गलेषु क्षणं क्षणं तृप्यति कस्य चेतः।। 20।।
विनम्रदेवासुरपृष्ठगाभ्यामादाय तं पाणिसरोरुहाभ्याम्।
नवोदयं पार्वणचन्द्रचारुं गौरी स्वमुत्सङ्गतलं निनाय।। 21।।
स्वमङ्कमारोप्य सुधानिधानमिवात्मनो नन्दनमिन्दुवक्त्रा।
तमेकमेषा जगदेकवीरं बभूव पूज्या धुरि पुत्रिणीनाम्।। 22।।
निसर्गवात्सल्यरसौघसिक्ता सान्द्रप्रमोदामृतपूरपूर्णा।
तमेकपुत्रं जगदेकमाताभ्युत्सङ्गिनं प्रस्त्रविणी बभूव।। 23।।

गंगा, अग्नि और कृत्तिकाएँ सभी बार-बार झुक-झुककर उन्हें प्रणाम कर रही थीं, पर पार्वती जी का ध्यान उधर गया ही नहीं और उन्होंने बड़े चाव से उस पुत्र को अपनी गोद में उठा लिया। भला कौन ऐसी माता होगी जो अपने पुत्र के प्रेम में सुध-बुध न खो बैठती हो।।17।। आँखों में आनन्द के आँसू छलक आने से वे थोड़ी देर तक तो अपने पुत्र को देख ही न पाईं और कली के समान अपने कोमल हाथ से ही पुत्र को सहलाने भर से वे अनोखा सुख लेती रहीं।।18।। उन्हें वह मनोहर बालक तब दिखाई दिया। जब उनकी आँखें आश्चर्य और आनन्द से खिली जा रही थीं, आँसू बहे जा रहे थे और वात्सल्य भाव रोम-रोम से छलक रहा था।19।। उस बच्चे की ओर एकटक देखती हुई पार्वती जी सोचने लगीं कि यदि इस समय मुझे सहस्र आँखें मिल जाती तो कितना अच्छा होता! भला पुत्रदर्शन के समय किसका जी भरता है।।20।। प्रणाम करने के समय झुके हुए देवताओं और दैत्यों की पीठ पर अपने जो हाथ रखकर वे आशीष दिया करती थीं, उन्हीं हाथों से पार्वती जी ने पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अपने सुन्दर पुत्र को अपनी गोद में बिठा लिया।।21।। चन्द्रमा के समान मुख वाली पार्वती जी ने संसार में सबसे श्रेष्ठ अपने उस अनोखे वीर पुत्र को गोद में इस प्रकार ले लिया मानो अमृत का कलश गोद में रख लिया हो। उस समय वे पुत्रवतियों में सबसे श्रेष्ठ पूजनीय हो उठीं।।22।। संसार की माता पार्वती जी ने जब उस अनोखे पुत्र को गोद में उठा लिया तो वात्सल्यरस की स्वाभाविक धारा उनके रोम-रोम से उमड़ पड़ी, हर्ष के अमृत की बाढ़ आ गई और उनके स्तनों से दूध की धारा बह चली।।23।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशेषलोकत्रयमातुरस्याः षाणमातुरः स्तन्यसुधामधासीत्।
सुरस्रवन्त्याः किल कृत्तिकाभिर्मुहुर्मुहुः सस्पृहमीक्ष्यमाणः।। 24।।
सुखाश्रुपूर्णेन मृगाङ्कमौलेः कलत्रमेकेन मुखाम्बुजेन।
तस्यैकनालोद्गतपञ्चपद्मलक्ष्मीं क्रमात्षड्वदनीं चुचुम्बे।। 25।।
हैमी फलं हेमगिरेर्लतेव विकस्वरं नाकनदीव पद्मम्।
पूर्वेव दिङ्नूतनमिन्दुमाभात्तं पार्वती नन्दनमादधाना।। 26।।
प्रीतात्मना सा प्रयतेन दत्तहस्तावलम्बा शशिशेखरेण।
कुमारमुत्सङ्गतले दधाना विमानमभ्रंलिहमारुरोह।। 27।।
महेश्वरोऽपि प्रमदप्ररूढरोमोद्गमो भूधरनन्दनायाः।
अंकादुपादत्त तदङ्कतः सा तस्यास्तु सोऽप्यात्मजवत्सलत्वात्।। 28।।
दधानया नेत्रसुधैकसत्रं पुत्रं पवित्रं सुतया तयाद्रेः।
संशिलष्यमाणः शशिखण्डधारी विमानवेगेन गृहाञ्जगाम।। 29।।
अधिष्ठितः स्फाटिकशैलशृङ्गे तुङ्गे निजं धाम निकामरम्यम्।
महोत्सवाय प्रमथप्रमुख्यान्पृन्थून्गणाञ्शंभुरथादिदेश।। 30।।
पृथुप्रमोदः प्रगुणो गणानां गणः समग्रो वृषवाहनस्य।
गिरीन्द्रपुत्र्यास्तनयस्य जन्मन्यथोत्सवं संववृत्ते विधातुम्।। 31।।

जब कार्तिकेय जी सब लोकों की माता पार्वती जी के स्तनों का अमृत पीने लगे, तब गंगा जी और कृत्तिकाएँ बड़ी ईर्ष्या से उनकी ओर बार-बार देखने लगीं।24।। शंकर जी की प्यारी पार्वती जी ने हर्ष के आँसू बहाते हुए अपने कमल के समान एक मुख से उस पुत्र के उन छओं मुखों को चूमा जो ऐसे लगते थे, मानो कमल एक डंठल में पाँच सुन्दर कमल निकल आये हों और उन पाँचों के बीच में उन कमलों की ही शोभा छठा कमल बनकर निकल आई हो।।25।। गोद में सुन्दर पुत्र लिए हुए पार्वती जी ऐसी सुन्दर लग रही थीं, मानो सोने के सुमेरुपर्वत पर उत्पन्न होने वाली सुनहली लता में फल निकल आया हो या आकाश गंगा में कमल खिल उठा हो या पूर्वदिशा में चन्द्रमा निकल आया हो।।26।। पत्र को गोद में लिए हुए सुखी मन से पार्वती जी, शंकरजी के हाथ का सहारा लेकर आकाश चूमने वाले ऊँचे विमान पर चढ़ गईं।।27।। वे दोनों पुत्र-प्रेम में इतने मगन होग गए थे कि कभी तो पार्वती जी की गोद से शंकर जी उस पुत्र को ले लेते थे और कभी उनकी गोद में से उसे पार्वती जी ले लेती थीं। इस प्रकार पुत्र-प्रेम में भरे हुए दोनों उससे प्यार कर रहे थे।।28।। आँखों को अमृत के समान सुख देने वाले इस परम पवित्र पुत्र को गोद में लिए और अपनी छाती से लिपटी हुई पार्वती जी को साथ लेकर भगवान् शंकर वेग से चलने वाले विमान पर चढ़कर कैलास लौट आए।।29।। स्फटिक के बने हुए उस कैलास के ऊँचे शिखर पर अपने सुन्दर भवन में बैठकर शंकर जी ने अपने मुख्य-मुख्य प्रमथ आदि गणों को आज्ञा दी कि पुत्र उत्पन्न होने का उत्सव मनाओ।।30।। बड़े आनन्द और चाव से सभी गुणवान् गण लोग पार्वती जी और शंकर जी के पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में महोत्सव मनाने में जुट गए।।31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुरन्मरीचिच्छुरिताम्बराणि संतानशाखिप्रसवाञ्चितानि।
उच्चिक्षिपुः काञ्चनतोरणानि गणा वराणि स्फटिकालयेषु।। 32।।
दिक्षु प्रसर्पस्तदधीश्वराणामथामराणामिव मध्यलोके।
महोत्सवं शंसितुमाहतोऽन्यैर्दध्वान धीरः पटहः पटीयान्।। 33।।
महोत्सवे तत्र समागतानां गन्धर्वविद्याधरसुन्दरीणाम्।
संभावितानां गिरिराजपुत्र्या गृहेऽभवन्मङ्गलगीतकानि।। 34।।
सुमङ्गलोपायनपात्रहस्तास्तं मातरो मातृवदभ्युपेताः।
विधाय दूर्वाक्षतकानि मूर्ध्नि निन्युः स्वमङ्कं गिरिजातनूजम्।। 35।।
ध्वनत्सु तूर्येषु सुमन्द्रमङ्क्यालिङ्ग्योर्ध्वकेष्वप्सरसो रसेन।
सुसन्धिबन्धं ननृतुः सुवृत्तगीतानुगं भावरसानुविद्धम्।। 36।।
वाता ववुः सौख्यकराः प्रसेदुराशा विधूमो हुतभुग्दिदीपे।
जलान्यभूवन्विमलानि तत्रोत्सवेऽन्तरिक्षं प्रससाद सद्यः।। 37।।
गम्भीरशङ्खध्वनिमिश्रमुच्चैर्गृहोद्भवा दुन्दुभयः प्रणेदुः।
दिवौकसां व्योम्नि विमानसंघा विमुच्य पुष्पप्रचयान्प्रसस्रुः।। 38।।
इत्थं महेशाद्रिसुतासुतस्य जन्मोत्सवे संमदयांचकार।
चराचरं विश्वमशेषमेतत्परं चकम्पे किल तारकश्रीः।। 39।।

कुछ गण तो स्फटिक में चमकती हुई किरणों के पड़ने से रंग-बिरंगे दिखाई देने वाले कपड़ों से और कल्पवृक्ष के फूलों तथा पत्तों से बनाए हुए सुनहरे सुन्दर बन्दनवारों से अपने स्फटिक के भवन सजाने लगे।।32।। कुछ गणों ने जो नगाड़े बजाए उनकी गंभीर ध्वनि जब दशों दिशाओं में फैली तो धरती से उठी हुई उसकी धमक मानो यह बताने लगी कि दिग्पालों और देवताओं के लोक के समान ही यहाँ भी पुत्रोत्सव मनाया जा रहा है।।33।। इस महोत्सव के उपलक्ष्य में गन्धर्वों और विद्याधरों की सुन्दरियों ने घर आकर बधाई गीत गाया और पार्वती जी ने उन सबकी बड़ी आवभगत की।।34।। ब्राह्मी आदि माताएँ भी बधावे की सामग्री लेकर बालक के पास चली आईं और उसके सिर पर दूब, अक्षत छिड़क कर सब उसे अपने-अपनी गोदी में लेने लगी।।35।। वहाँ अंक्य, आलिङ्ग्य और ऊर्ध्वक नाम की अनेक प्रकार की तुरहियाँ मीठी-मीठी बज उठीं और भाव तथा रस भरे अच्छे-अच्छे छन्दों में बँधे हुए गाने गाती हुई अप्सराएँ, बड़े हाव-भाव से नाचने लगीं।।36।। सुख देने वाला पवन बहने लगा, दिशाएँ खिल उठीं, धुआँ मिट जाने से आग चमक उठी और जल निर्मल हो गया, यहाँ तक कि उस उत्सव में आकाश भी तत्काल खुल गया।।37।। शंख की गम्भीर ध्वनि के साथ-साथ घर-घर के छोटे-छोटे नगाड़े भी बजने लगे। देवता लोग भी आकाश में आकर विमानों से फूल बरसाते और चले जाते।।38।। इस प्रकार शंकर जी और पार्वती जी के पुत्र के जन्मोत्सव से संसार के सभी चर और अचर प्राणी तो हर्ष से फूल उठे पर तारक राक्षस की राज-लक्ष्मी काँप उठी।।39।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः कुमारः स मुदां निदानैः स बाललीलाचरितैर्विचित्रैः।
गिरीशगौर्योर्हृदयं जहार मुदे न हृद्या किमु बालकेलिः।। 40।।

महेश्वरः शैलसुता च हर्षात्सतर्षमेकेन मुखेन गाढम्।
अजातदन्तानि मुखानि सूनोर्मनोहराणि क्रमतश्चुचुम्ब।। 41।।

क्वचित्स्खलद्भिः क्वचिदस्खलद्भिः क्वचित्प्रकम्पैः क्वचिदप्रकम्पैः।
बालः स लीलाचलनप्रयोगैस्तयोर्मुदं वर्धयति स्म पित्रोः।। 42।।

अहेतुहासच्छुरिताननेन्दुगृहाङ्गणक्रीडनधूलिधूम्रः।
मुहुर्वदन्किञ्चिदलक्षितार्थं मुदं तयोरङ्कगस्ततान।। 43।।

गृह्णन्विषाणे हरवाहनस्य स्पृशन्नुमाकेसरिणं सलीलम्।
स भृङ्गिणः सूक्ष्मतरं शिखाग्रं कर्षन्बभूव प्रमदाय पित्रोः।। 44।।

एको नव द्वौ दश पञ्च सप्तेत्यजीगणन्नात्ममुखं प्रसार्य।
महेशकण्ठोरगदन्तपङ्क्तिं तदङ्कगः शैशवमौग्ध्यमैशिः।। 45।।

कपर्दिकण्ठान्तकपालदाम्नोऽङ्गुलिं प्रवेश्याननकोटरेषु।
दन्तानुपात्तुं रभसी बभूव मुक्ताफलभ्रान्तिकरः कुमारः।। 46।।

शंभोः शिरोऽन्तः सरितस्तरंगान्विगाह्य गाढं शिशिरान्रसेन।
स जातजाड्यं निजपाणिपद्ममतापयद्भालविलोचनाग्नौ।। 47।।

धीरे-धीरे वह बालक अपनी मनोहर और अनोखी बाल-लीलाओं से शंकर जी और पार्वती जी को आनन्द देने लगा।।40।। वे हर्ष से मत वाले होकर अपने पुत्र के पोपले और मनोहर मुखों को बार-बार बड़े भाव से चूमा करते थे।।41।। कहीं लड़खड़ाता हुआ और कहीं सीधे चलता हुआ कहीं काँपता-सा और कहीं तना हुआ-सा वह बालक अपनी खिलवाड़ भरी चालों से उनका जी लुभाने लगा।।42।। अपने माता-पिता की गोद में बैठा हुआ वह बालक, अनेक प्रकार से उनका जी लुभाया करता था। कभी तो उसका मुखचन्द्र बिना किसी बात के ही हँसी से चमक उठता था कभी घर के आँगन में खेलने से उसका शरीर धूल से भर जाता था; कभी वह बार-बार तोतली बोली बोल-बोलकर अपने माता-पिता को रिझाया करता। कभी तो वह शंकर जी के बैल के सींग पकड़ता, कभी पार्वती जी के सिंह के केसर सहलाता और कभी भृङ्गी की चोटी के महीन बाल खींचने लगता। यह सब देखकर उसके माता-पिता हर्ष से फूले न समाते।।43-44।। कभी-कभी वह शंकर जी के कण्ठों में पड़ी हुई मुँडमाला के मुखों में उँगली डालकर उनके दाँतों को मोती समझकर उन्हें निकालने लग जाता था।।45।। कभी वह शंकर जी के सिर पर रहने वाली गंगा जी की लहरों में अपना हाथ डाल देता पर जब बहुत ठंड लगने से उसके हाथ सुन्न हो जाते तब वह अपना कमल-सा कोमल हाथ शिव जी के माथे पर जलते हुए तीसरे नेत्र के आगे ले जाकर सेंक लेता।।46-47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंचित्कलं भङ्गुरकंधरस्य नमज्जटाजूटधरस्य शंभोः।
प्रलम्वमानं किल कौतुकेन सिरं चुचुम्वे मुकुटेन्दुखण्डम्।। 48।।
इत्थं शिशोः शैशवकेलिवृत्तैर्मनोभिरामैर्गिरिजागिरीशौ।
मनोविनोदैकरसप्रसक्तौ दिवानिशं नाविदतां कदाचित्।। 49।।
इति बहुविधं बालक्रीडाविचित्रविचेष्टितं
ललितललितं सान्द्रानन्दं मनोहरमाचरन्।
अलभत परां बुद्धिं षष्ठे दिने नवयौवनं
स किल सकलं शास्त्रं शस्त्रं विवेद विभुर्यथा।। 50।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
कुमारबाललीलावर्णनं नामैकादशः सर्गः।।

जब वह देखता कि शिव जी का कन्धा तनिक नीचा हो रहा है और उनके जटा-जूट झुक रहें है तब वह जटा के साथ नीचे लटकने वाले उनके सिर पर स्थित चन्द्रमा को ही बड़ी देर तक चूमता रहता।।48।। इस प्रकार पुत्र की मनोहर और खिलवाड़ से भरी बाल-लीलाओं में आनन्द लेते हुए शंकर जी और पार्वती जी इतने लीन हो गए कि उन्हें यही सुध नहीं रह गई कि कब दिन चढ़ा और कब रात आई।।49।। इस प्रकार अनेक प्रकार की मन-लुभावनी और बड़ी सुहावनी बाल-लीलाएँ करते हुए वह बालक छठे दिन बड़ा बुद्धिमान् और जवान हो गया और छह ही दिन में उसे सब शास्त्र-विद्याएँ भली प्रकार आ गईं।।50।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसम्भव महाकाव्य में
'कुमार की बाल लीला वर्णन' नाम का ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वादशः सर्गः ।।

अथ प्रपेदे त्रिदशैरशेषैः क्रूरासुरोपप्लवदुःखितात्मा ।
पुलोमपुत्रीदयितोऽन्धकारिं पत्रीव तृष्णातुरितः पयोदम् ।। 1 ।।
दृप्तारिसंत्रासखिलीकृतात्स कथंचिदम्भोदविहारमार्गात् ।
अवाततराभिगिरिं गिरीशगौरीपदन्यासविशुद्धमिन्द्रः ।। 2 ।।
संक्रन्दनः स्यन्दनतोऽवतीर्य मेघात्मनो मातलिदत्तहस्तः ।
पिनाकिनोऽथालयमुच्चचाल शुचौ पिपासाकुलितो यथाम्भः ।। 3 ।।
इतस्ततोऽथ प्रतिविम्बभाजं विलोकमानः स्फटिकाद्रिभूमौ ।
आत्मानमप्येकमनेकधा स व्रजन्विभोरास्पदमाससाद ।। 4 ।।
विचित्रचञ्चन्मणिभङ्गिसङ्गं सौवर्णदण्डं दधतातिचिण्डम् ।
स नन्दिनाधिष्ठितमध्यतिष्ठत्सौधाङ्गणद्वारमनङ्गशत्रोः ।। 5 ।।
ततः स कक्षाहितहेमदण्डो नन्दी सुरेन्द्रं प्रतिपद्य सद्यः ।
प्रतोषयामास सुगौरवेण गत्वा शशंस स्वयमीश्वरस्य ।। 6 ।।
भ्रूसंज्ञयानेन कृताभ्यनुज्ञः सुरेश्वरं तं जगदीश्वरेण ।
प्रवेशयामास सुरैः पुरोगः समं स नन्दी सदनं सदस्य ।। 7 ।।
स चण्डिभृङ्गिप्रमुखैर्गिरिष्ठैर्गणैरनेकैर्विविधस्वरूपैः ।
अधिष्ठितं संसदि रत्नमय्यां सहस्रनेत्रः शिवमालुलोके ।। 8 ।।

बारहवाँ सर्ग

जिस प्रकार प्यास लगने पर पपीहा बादल की शरण में जाता है, उसी प्रकार अत्याचारी तारकासुर के उपद्रवों से दुखी इन्द्र भी, सब देवताओं को साथ लेकर शंकर जी के पास जा पहुँचे।।1।। उस घमण्डी शत्रु तारक के भय से, देवता लोग किसी भी मार्ग से आ-जा नहीं सकते थे। इसलिये इन्द्र भी बादलों के बीच से छिपते-छिपते किसी प्रकार उस कैलास पर उतरे जो शंकर और पार्वती जी के चरण पड़ने से पवित्र हो गया था।।2।। वहाँ मातलि के हाथ का सहारा लेकर इन्द्र भी बादल के रथ से उतरे और शंकर जी के भवन की ओर उसी प्रकार झपटकर बढ़े जैसे गर्मी से कोई प्यासा मनुष्य पानी की ओर दौड़े।।3।। स्फटिक से बने हुए कैलास में चारों ओर अपनी बहुत सी परछाइयाँ देखते हुए वे शंकर जी के भवन पर जा पहुँचे।।4।। शंकर जी के भवन की देहली पर पहुँचकर इन्द्र रुक गए। वहाँ रंग-बिरंगे मणियों की पच्चीकारी की हुई थी और एक बड़ा-सा सोने का डंडा हाथ में लिए हुए नन्दी वहाँ बैठे थे।।5।। अपने सोने के डंडे को एक कोने में रखकर नन्दी ने चट से आगे बढ़कर आवभगत करके इन्द्र का स्वागत किया और स्वयं भीतर जाकर महादेव जी को उनके आने की सूचना दी।6।। शंकर जी ने भौंहों से ही उन्हें भीतर लाने का संकेत किया और उनकी आज्ञा पाकर नन्दी ने आगे-आगे मार्ग दिखाते हुए इन्द्र और देवताओं को शंकर जी के पास पहुँचाया।।7।। इन्द्र ने देखा कि वहाँ रतन-जड़े सभा-मण्डप में चण्डी, भृंगी आदि अनेक रूप-रंग वाले बहुत से बड़े-बड़े गणों से घिरे हुए शिव जी बैठे हुए हैं।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपर्दमुद्बद्धमहीनमूर्धरत्नांशुभिर्भासुरमुल्लसद्भिः ।
दधानमुच्चैस्तरमिद्धधातोः सुमेरुशृङ्गस्य समत्वमाप्तम् ।। 9 ।।
बिभ्राणमुत्तुङ्गतरङ्गमालां गङ्गां जटाजूटतटं भजन्तीम् ।
गौरीं तदुत्सङ्गजुषं हसन्तीमिव स्वफेनैः शरदभ्रशुभ्रैः ।। 10 ।।
गङ्गातरङ्गप्रतिविम्बितैः स्वैर्बहूभवन्तं शिरसा सुधांशुम् ।
चलन्मरीचिप्रचयैस्तुषारगौरैर्हिमद्योतितमुद्वहन्तम् ।। 11 ।।
भालस्थले लोचनमेधमानधामाधरीभूतरवीन्दुनेत्रम् ।
युगान्तकालोचितहव्यवाहं मीनध्वजप्लोषणमादधानम् ।। 12 ।।
महार्हरत्नाञ्चितयोरुदारं स्फुरत्प्रभामण्डलयोः समन्तात् ।
कर्णस्थिताभ्यां शशिभास्कराभ्यामुपासितं कुण्डलयोश्छलेन ।। 13 ।।
स्वबद्धया कण्ठिकयेव नीलमाणिक्यमय्या कुतुकेन गौर्याः ।
नीलस्य कण्ठस्य परिस्फुरन्तया कान्त्या महत्यासुविराजमानम् ।। 14 ।।
कालार्दितानां त्रिदशासुराणां चितारजोभिः परिपाण्डुराङ्गम् ।
महन्महेभाजिनिनमुद्गताभ्रप्रालेयशैलश्रियमुद्वहन्तम् ।। 15 ।।
पाणिस्थितब्रह्मकपालपात्रं वैकुण्ठभाजापि निषेव्यमाणम् ।
नरास्थिखण्डाभरणं रणान्तमूलं त्रिशूलं कलयन्तमुच्चैः ।। 16 ।।

साँपों से लिपटा हुआ शिवजी के सिर का जटा-जूट वासुकि आदि बड़े साँपों के फनों के मणियों की किरनों में चमकता हुआ सुमेरु पर्वत की चोटी के समान दिखाई पड़ रहा था ।।9 ।। शिव जी के जटा-जूट के अगले भाग में बसी हुई ऊँची-ऊँची तरंगों वाली गंगा जी, शरद के बादलों के समान उजली फेन उछाल-उछालकर मानो शंकर जी की गोद में बैठी हुई पार्वती की हँसी उड़ा रही थीं कि देखो हम तो शिव जी के सिर पर चढ़ी हुई हैं ।।10 ।। शिवजी के सिर के चन्द्रमा की हिम-जैसी उजली किरणों की जो परछाई गंगा जी की तरंगों में बहुत रूपों में नाच रही थी, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उस एक चन्द्रमा के बहुत से चन्द्रमा बन गए हों ।।11 ।। उनके माथे पर कामदेव को जलाने वाला, प्रलय की अग्नि के समान वह तीसरा नेत्र चमक रहा था, जिसके बढ़ते हुए तेज के आगे प्रलय के सूर्य और चन्द्र रूपी नेत्र भी झँप जाते हैं ।।12 ।। उनके कानों में किरणों के घेरे से घिरे हुए अनमोल रत्नों से जड़े दो कुण्डल ऐसे लटक रहे थे, मानो इनके बहाने सूर्य और चन्द्र ही शंकरजी के दोनों कानों पर उनकी सेवा कर रहे हों ।।13 ।। उनका नीलाकंठ ठीक वैसा ही चमकता था जैसा कभी-कभी खिलवाड़ में नीलम का हार पहन लेने पर पार्वती जी का गला चमक उठता है ।।14 ।। मरे हुए देव-दानवों की चिताओं की भस्म से लिप्त अपने उजले अंग पर हाथी की खाल ओढ़े हुए वे ऐसे दिखाई देते थे मानो बादलों से घिरा हुआ विशाल हिमालय हो ।।15 ।। उनके एक हाथ में ब्रह्म-कपाल का पात्र था, गले में मरे हुओं की हड्डियों के टुकड़ों के गहने थे और दूसरे हाथ में युद्ध समाप्त करने वाला ऊपर उठा हुआ त्रिशूल था। इस ऊट-पटाँग वेष में होने पर भी वैकुण्ठवासी विष्णु उनकी सेवा कर रहे थे ।।16 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातनीं ब्रह्मकपालमालां कण्ठे वहन्तं पुनराश्वसन्तीम्।
उद्गीतवेदां मुकुटेन्दुवर्षत्सुधाभरौघाप्लवलब्धसंज्ञाम्।। 17।।
सलीलमंकस्थितया गिरीन्द्रपुत्र्या नवाष्टापदवल्लिभासा।
विराजमानं शरदभ्रखण्डं परिस्फुरन्त्याचिररोचिषेव।। 18।।
दृप्तान्धकप्राणहरं पिनाकं महासुरस्त्रीविधवात्वहेतुम्।
करेण गृह्णन्तमगृह्यमन्यैः पुरा स्मरप्लोषणकेलिकारम्।। 19।।
भद्रासनं काञ्चनपादपीठं महार्हमाणिक्यविभङ्गिचित्रम्।
अधिष्ठितं चन्द्रमरीचिगौरैरुद्वीज्यमानं चमरैर्गणाभ्याम्।। 20।।
शस्त्रास्त्रविद्याभ्यसनैकसक्ते सविस्मयैरेत्य गणैः सदृष्टे।
नीराज्यमाने स्फटिकाचलेन सानन्दनिर्दिष्टदृशं कुमारे।। 21।।
तथाविधं शैलसुताधिनाथं पुलोमपुत्रीदयितो निरीक्ष्य।
आसीत्क्षणं क्षोभपरो नु कस्य मनो न हि क्षुभ्यति धामधाम्नि।। 22।।
विकस्वराम्भोजवनश्रिया तं दृशां सहस्रेण निरीक्षमाणः।
रोमालिभिः स्वर्गपतिर्बभासे पुष्पोत्कराकीर्ण इवाम्रशाखी।। 23।।
दृष्ट्वा सहस्रेण दृशां महेशमभूत्कृतार्थोऽतितरां महेन्द्रः।
सर्वाङ्गजातं तदथो विरूपमिव प्रियाकोपकरं विवेद।। 24।।

उनके गले में ब्रह्म-कपालों की एक पुरानी माला पड़ी थी जो सिर पर बसे हुए चन्द्रमा से बरसी हुई अमृत की बूँदे पी-पीकर जीवित-सी हो-होकर वेद-गान कर रही थीं।।17।। सोने की नई लता के समान सुन्दर पार्वती जी को अपनी गोद में बैठाए हुए वे ऐसे दिखाई पड़ते थे, मानो चमकती हुई बिजली वाला कोई शरद् ऋतु का बादल हो।।18।। उनके हाथ में वह पिनाक धनुष था, जिसने अन्धक नाम के मतवाले दैत्य के प्राण ले लिए थे। बड़े-बड़े दानवों को मारकर उनकी स्त्रियों को विधवा बना दिया था, कामदेव को जलाकर राख कर दिया था और जिसे दूसरा कोई उठा भी नहीं सकता था।।19।। अनमोल मोती और मणियों की सजावट से रंग-बिरंगे दिखाई देने वाले उस सिंहासन पर वे बैठे हुए थे, जिसके नीचे सोने का पाद-पीठ रखा हुआ था और दोनों ओर से दो गण उन पर चन्द्र की किरणों के समान उजले चँवर डुला रहे थे।।20।। वे बैठे हुए बड़े चाव से उन कुमार कार्त्तिकेय की शस्त्र-विद्या और अस्त्र-विद्या का अभ्यास देख रहे थे, जिन्हें शंकरजी के गण भी बड़े आश्चर्य से देख रहे थे और वह स्फटिक का पर्वत भी जिनकी आरती उतार रहा था।।21।। ऐसे शंकर जी को देखकर थोड़ी देर के लिये इन्द्र का मन भी ललच उठा; क्योंकि अचानक इतनी सुख-सम्पत्ति इकट्ठी देखकर भला किस का मन नहीं ललच उठेगा।।22।। खिले हुए कमलों के समान अपने सुन्दर सहस्रों नेत्रों से शंकर जी को देखते हुए इन्द्र, उस आम के पेड़ के समान सुन्दर लगने लगे जो नीचे ऊपर तक मञ्जरियों से लदा हुआ हो।।23।। अपनी सहस्र आँखों से शंकरजी को देखकर इन्द्र ने अपना बड़ा भाग्य सराहा; पर इससे शरीर भर में जो रोमांच हो आया उसे देखकर उन्हें यह डर हुआ कि कहीं इन्द्राणी यह न समझ बैठें कि किसी दूसरी सुन्दरी को देखने से रोमांच हो आया, इस पर वह सौतिया डाह करके रूठ न बैठे।।24।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः कुमारं कनकाद्रिसारं पुरंदरः प्रेक्ष्य धृतास्त्रशस्त्रम्।
महेश्वरोपान्तिकवर्तमानं शत्रोर्जयाशां मनसा बवन्ध।। 25।।
श्रीनीलकण्ठ द्युपतिः पुरोऽस्ति त्वयि प्रणामावसरं प्रतीच्छन्।
सहस्रनेत्रोऽत्र भव त्रिनेत्र दृष्ट्या प्रसादप्रगुणो महेश।। 26।।
इति प्रबद्धाञ्जलिरेत्य नन्दी निधाय कक्षामभि हेमवेत्रम्।
प्रसादपात्रं पुरतो भविष्णुरथ स्मरारातिमुवाच वाचम्।। 27।।
पुरा सुरेन्द्रं सुरसङ्घसेव्यं त्रिलोकसेव्यस्त्रिपुरासुरारिः।
प्रीत्या सुधासारनिभारिणेव ततोऽनुजग्राह विलोकनेन।। 28।।
किरीटकोटिच्युतपारिजातपुष्पोत्करेणानमितेन मूर्ध्ना।
स्वर्गैकवन्द्यो जगदेकवन्द्यं देवदेवं प्रणनाम देवः।। 29।।
अनेकलोकैकनमस्क्रियार्हं महेश्वरं तं त्रिदशेश्वरः सः।
भक्त्या नमस्कृत्य कृतार्थतायाः पात्रं पवित्रं परमं बभूव।। 30।।
सुभक्तिभाजामधिपादपीठं प्रान्तक्षितिं नम्रतरैः शिरोभिः।
ततः प्रणेमुः पुरतो गणानां गणाः सुराणां क्रमतः पुरारिम्।। 31।।
गणोपनीते प्रभुणोपदिष्टः शुभासने हेममये पुरस्तात्।
प्रापोपविश्य प्रमुदं सुरेन्द्रः प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य।। 32।।

इसके पश्चात् जब उन्होंने शंकर जी के पास बैठे हुए, सुमेरु के समान बल वाले और अस्त्र-शस्त्रधारी कुमार को देखा, तो उनके मन में यह आशा होने लगी कि अब हम शत्रु को जीत लेंगे।।25।। इतने में अपने सोने का डंडा एक कोने में रखकर, आगे बढ़कर और हाथ जोड़कर, शंकर जी की कृपा पाने की इच्छा से नन्दी ने शंकर जी से जाकर कहा कि हे नीलकंठ! देवताओं के स्वामी इन्द्रदेव आपको प्रणाम करने की बाट जोहते हुए यहाँ खड़े हुए हैं, इसलिये कृपा करके इनकी ओर भी अपनी कृपा-दृष्टि घुमा लीजिएगा।।26-27।। यह सुनकर त्रिपुर राक्षस का नाश करने वाले, संसार के पूजनीय शंकर भगवान् ने देवताओं के पूजनीय इन्द्र को अपनी अमृत की धारा बरसाती हुई-सी दृष्टि से देखकर अनुगृहीत किया।।28।। स्वर्ग में जिनकी सब पूजा करते हैं, वे देवराज इन्द्र, जब सारे संसार के एक साथ पूजनीय और देवताओं के देवता महादेव जी को प्रणाम करने के लिये झुके तो उनके मस्तक के किरीट की नोक से पारिजात के बहुत से फूल गिरकर बिखर गए।।29।। सब लोकों के एक मात्र पूजनीय भगवान् शंकर को भक्ति के साथ प्रणाम करके स्वर्ग के स्वामी इन्द्र ने अपने को परम पवित्र और धन्य समझा।।30।। दूसरे देवताओं ने भी प्रमथ आदि गणों के देखते-देखते बड़ी भक्ति से शंकर जी के पैर रखने के पीढ़े के पास धरती पर माथा टेककर बारी-बारी से उन्हें प्रणाम किया।।31।। यह सब हो चुकने पर शंकर जी की आज्ञा पाकर एक गण जाकर एक आसन उठा लाया, जिस पर बैठकर इन्द्र को बड़ा आनन्द हुआ। भला शंकर जी का प्रसाद पाकर कौन अपने को धन्य नहीं मानेगा।।32।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमेण चान्येऽपि विलोकनेन संभाविताः सस्मितीश्वरेण।
उपाविशँस्तोषविशेषमाप्ता दृग्गोचरे तस्य सुराः समग्राः।। 33।।
अथाह देवो बलवैरिमुख्यान्गीर्वाणवर्गान्करुणार्द्रचेताः।
कृताञ्जलीकानसुराभिभूतान्ध्वस्तश्रियः श्रान्तमुखानवेक्ष्य।। 34।।
अहो बतानन्तपराक्रमाणां दिवौकसो वीरवरायुधानाम्।
हिमोदबिन्दुग्लपितस्य किं वः पद्मस्य दैन्यं दधते मुखानि।। 35।।
स्वर्गौकसः स्वर्गपरिच्युताः किं स्वपुण्यराशौ सुमहत्तमेऽपि।
चिह्नं चिरोढं न तु यूयमेते निजाधिपत्यस्य परित्यजध्वम्।। 36।।
दिवौकसो देवगृहं विहाय मनुष्यसाधारणतामवाप्ताः।
यूयं कुतः कारणतश्चरध्वं महीतले मानभृतो महान्तः।। 37।।
अनन्यसाधारणसिद्धमुच्चैस्तद्दैवतं धाम निकामरम्यम्।
कस्मादकस्मान्निरगाद्भवद्भ्यश्चिरार्जितं पुण्यमिवापचारात्।। 38।।
दिवौकसो वो हृदयस्य कस्मात्तथाविधं धैर्यमहार्यमार्याः।
अगादगाधस्य जलाशयस्य ग्रीष्मातितापादिवशादिवाम्भः।। 39।।
सुराः सुराधीशपुरःसराणां समीयुषां वः सममातुराणाम्।
तद्ब्रूत लोकत्रयजित्वरात्किं महासुरात्तारकतो विरुद्धम्।। 40।।

सब देवताओं की ओर बारी-बारी से मुस्कारते हुए देखकर शंकर जी ने उन सबका भी सम्मान किया। इससे वे सब भी बड़े प्रसन्न होकर उनकी आँखों के सामने ही बैठ गए।।33।। इन्द्र आदि जो देवता हाथ जोड़े आगे बैठे हुए थे, और दैत्यों से हार जाने के कारण जिनके मुँह उदास और मुरझाए से दिखाई पड़ रहे थे उनकी ओर देखकर करुणा से पिघले हुए हृदय वाले शिव जी बोले-- ।।34।। हे देवताओं! इतने बड़े-बड़े वीर होकर, एक से एक बढ़कर अस्त्र-शस्त्रों से सज-धजकर और स्वर्ग में रहकर भी आप लोगों के मुख पाला मारे हुए कमलों के समान उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं।।35।। हे देवताओं! इतने बड़े पुण्य करने पर भी आप लोग स्वर्ग से निकल कैसे आए। आप लोग इतने दिनों से जो छत्र-चँवर आदि राज-चिह्न साथ रखते आ रहे थे, उन्हें आप लोग कभी मत छोड़िए।।36।। आप लोग इतने मनस्वी, महिमाशाली और स्वर्ग-निवासी होकर भी स्वर्ग छोड़कर साधारण मनुष्यों के समान पृथ्वी-तलपर इधर-उधर क्यों मारे-मारे फिर रहे हैं।।37।। जैसे पाप करने से बहुत दिनों से इकट्ठा किया हुआ पुण्य हाथ से निकल जाता है, वैसे ही बड़ी-बड़ी सिद्धियों से भरा हुआ बड़ा सुन्दर स्वर्ग भी आप लोगों के हाथ से अचानक कैसे निकल गया।।38।। हे देवताओं! जैसे बहुत गर्मी पड़ने से गहरा तालाब भी सूख जाता है, वैसे ही आप लोगों के हृदय में रहने वाला वह बड़ा भारी अटल धैर्य कहाँ चला गया।।39।। आज व्याकुल होकर एक साथ आए हुये इन्द्र आदि देवताओं! आप यह तो बताइए कि आप लोगों ने तीनों लोकों को जीतने वाले दैत्यराज तारक से झगड़ा तो मोल नहीं ले लिया।।40।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराभवं तस्य महासुरस्य निषेद्धुमेकोऽहमलं भविष्णुः।
दावानलप्लोषविपत्तिमन्यो महाम्बुदात्किं हरते वनानाम्।। 41।।
इतीरिते मन्मथमर्दनेन सुराः सुरेन्द्रप्रमुखा मुखेषु।
सान्द्रप्रमोदाश्रुतरङ्गितेषु दधुः श्रियं सत्वरमाश्वसन्तः।। 42।।
ततो गिरीशस्य गिरां विरामे जगाद लब्धावसरः सुरेन्द्रः।
भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता ध्रुव फलाविष्टमहोदयाय।। 43।।
ज्ञानप्रदीपेन तमोपहेनाविनश्वरेणास्खलितप्रभेण।
भूतं भवद्भावि च यच्च किंचित्सर्वज्ञ सर्वं तव गोचरं तत्।। 44।।
दुर्वारदोरुद्यमदुःसहेन यत्तारकेणामरघस्मरेण।
तदीशतामाप्तवता निरस्ता वयं दिवोऽमी वद किं न वेत्सि।। 45।।
विधेरमोघं स वरप्रसादमासाद्य सद्यस्त्रिजज्जिगीपुः।
सुरानशेषानहकप्रमुख्यान्दोर्दण्डचण्डो मनुते तृणाय।। 46।।
स्तुत्या पुरास्माभिरुपासितेन पितामहेनेति निरूपतिं नः।
सेनापतिः संयति दैत्यमेतं पुरः स्मरारातिसुतो निहन्ति।। 47।।
अहो ततोऽनन्तरमघयावत्युदुःसहां तस्य पराभवार्तिम्।
विषेहिरे हन्त हृदन्तशल्यमाज्ञानिवेशं त्रिदिवौकसोऽमी।। 48।।

देखिए, उस महादैत्य ने आप लोगों का जो अपमान किया है, उसका बदला केवल मैं ही ले सकता हूँ; क्योंकि जंगलों में लगी हुई आग बादलों की बड़ी घटा को छोड़कर और कौन बुझा सकता है।।41।। शंकर जी के ऐसा कहने पर इन्द्र आदि सभी देवताओं की आँखों में आनन्द के आँसू छलक आए और जब उन्हें यह ढाढ़स दे दिया गया कि आप लोगों की प्राण-रक्षा हो जायगी तो वे सब खिल उठे।।42।। भगवान् शंकर के कह चुकने पर ठीक अवसर जानकर इन्द्र ने कहना आरम्भ किया, क्योंकि अवसर पर कही हुई बात का अवश्य ही ठीक फल मिलता है–।।43।। हे प्रभु! आप घट-घट की जानने वाले हैं, आप अज्ञान को मिटाने वाले हैं, आपका कभी नाश नहीं होता, और अपने कभी न बुझने वाले ज्ञान के प्रकाश से आप संसार के भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालों की सब बातें जान जाते हैं।।44।। इसलिए हे नाथ! यह तो आप जानते ही होंगे कि अपने कठोर बाहुबल के पराक्रम से मतवाला होकर, देवताओं को पीड़ा देने वाला तारक असुर स्वर्ग का मालिक बन बैठा है और उसने हम सबको स्वर्ग से निकाल भगाया है।।45।। वह तारक असुर ब्रह्मा से अचूक वरदान पाकर अपनी भुजाओं के बल से तुरंत तीनों लोकों को जीत लेना चाहता है और मुझे तथा दूसरे बड़े-बड़े देवताओं को भी तिनके के बराबर तुच्छ समझता है।।46।। हे भगवान्! हम लोगों ने पहले जब ब्रह्मा जी की स्तुति की थी, तब उन्होंने प्रसन्न होकर हमें बताया था कि जब शंकर जी का पुत्र देवताओं का सेनापति बनकर उससे लड़ेगा तभी वह दैत्य मारा जायगा।।47।। तब से आज तक सब देवता लोग तारक असुर के हाथ से हारने की कसक और कसकने वाली उसकी आज्ञा का अपमान सहते चले आ रहे हैं।।48।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदाघधामक्लमविक्लवानां नवीनमम्भोदमिवौषधीनाम्।
सुनन्दनं नन्दनमात्मनो नः सेनान्यमेतं स्वयमादिश त्वम्।।49।।

त्रैलोक्यलक्ष्मीहृदयैकशल्यं समूलमुत्खाय महासुरं तम्।
अस्माकमेषां पुरतो भवन्सन्दुःखापहारं युधि यो विधत्ते।।50।।

महाहवेनाथ तवास्य सूनोः शस्त्रैः शितैः कृत्तशिरोधराणाम्।
महासुराणां रमणीविलापैर्दिशो दशैता मुखरीभवन्तु।।51।।

महारणक्षोणिपशूपहारीकृतेऽसुरे तत्र तवात्मजेन।
बन्दिस्थितानां सुदृशां करोतु वेणीप्रमोक्षं सुरलोक एषः।।52।।

इत्थं सुरेन्द्रे वदति स्मरारिः सुरारिदुश्चेष्टितजातरोषः।
कृतानुकम्पस्त्रिदशेषु तेषु भूयोऽपि भूताधिपतिर्बभाषे।।53।।

अहो अहो देवगणाः सुरेन्द्रमुख्याः शृणुध्वं वचनं ममैत्।
विचेष्टते शंकर एष देवकार्याय सज्जो भवतां सुताद्यैः।।54।।

पुरा मयाकारि गिरीन्द्रपुत्र्याः प्रतिग्रहोऽयं नियतात्मनापि।
तत्रैष हेतुः खलु तद्भवेन वीरेण यद्वध्यत एव शत्रुः।।55।।

अत्रोपपन्नं तदमी नियुज्य कुमारमेनं पृतनापतित्वे।
निघ्नन्तु शत्रुं सुरलोकमेष भुनक्तु भूयोऽपि सुरैः सहेन्द्रः।।56।।

इसलिये हे भगवान्! जैसे गर्मी के सूर्य की तपन से जले हुए लता-वृक्षों को नये बादल हरा कर देते हैं, वैसे ही अपने इस आनन्द-दायक पुत्र को हमारे सेनापति बनने की आज्ञा देकर आप भी हमें जिला लीजिए।।49।। तीनों लोकों के हृदय में काँटे के समान चुभने वाले इस महादैत्य को जब आपके ये पुत्र युद्ध में आगे बढ़कर मार डालेंगे तभी हमारा दुःख मिट पायेगा।।50।। हे नाथ! ऐसा कीजिए कि जब इस महासंग्राम में आपके पुत्र के नुकीले बाणों से महादैत्यों के सिर कट-कटकर गिरें, तब उन दैत्यों की स्त्रियों के विलाप से दसों दिशाएँ गूँज उठें।।51।। और जब आपके पुत्र महासमर-भूमि में उन दैत्यों को सियार आदि जन्तुओं की भेंट चढ़ायें तब स्वर्ग में बन्दी बनी हुई सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों की उलझी हुई एकलड़ी वाली चोटियों को ये देवता लोग जाकर खोलें।।52।। इस प्रकार इन्द्र के मुँह से तारक का अत्याचार सुनकर भूतपति शंकर जी क्रोध से लाल हो उठे और उन देवताओं पर कृपा करते हुए वे फिर बोले।।53।। हे इन्द्र आदि देवताओं! आप लोग मेरी बातें सुनिए। अब मैं शंकर अपने पुत्र को लेकर तुम्हारा काम करने के लिये तैयार हो गया हूँ।।54।। हे देवो! समाधि में लगे होने पर भी मैंने पार्वती के साथ इसीलिये विवाह किया था कि इनका पुत्र तारक को मार डाले।।55।। इसलिये आपका काम करने वाले इस कुमार को सेनापति बनाकर आप शत्रु का नाश कीजिए और इन्द्र के साथ फिर स्वर्ग का आनन्द लीजिए।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराभवं तस्य महासुरस्य निषेद्धुमेकोऽहमलं भविष्णुः।
दावानलप्लोषविपत्तिमन्यो महाम्बुदात्किं हरते वनानाम्।। 41।।
इतीरिते मन्मथमर्दनेन सुराः सुरेन्द्रप्रमुखा मुखेषु।
सान्द्रप्रमोदाश्रुतरङ्गितेषु दधुः श्रियं सत्वरमाश्वसन्तः।। 42।।
ततो गिरीशस्य गिरां विरामे जगाद लब्धावसरः सुरेन्द्रः।
भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता ध्रुव फलाविष्टमहोदयाय।। 43।।
ज्ञानप्रदीपेन तमोपहेनाविनश्वरेणास्खलितप्रभेण।
भूतं भवद्भावि च यच्च किंचित्सर्वज्ञ सर्वं तव गोचरं तत्।। 44।।
दुर्वारदोरुद्यमदुःसहेन यत्तारकेणामरघस्मरेण।
तदीशतामाप्तवता निरस्ता वयं दिवोऽमी वद किं न वेत्सि।। 45।।
विधेरमोघं स वरप्रसादमासाद्य सद्यस्त्रिजज्जिगीपुः।
सुरानशेषानहकप्रमुख्यान्दोर्दण्डचण्डो मनुते तृणाय।। 46।।
स्तुत्या पुरास्माभिरुपासितेन पितामहेनेति निरूपतिं नः।
सेनापतिः संयति दैत्यमेतं पुरः स्मरारातिसुतो निहन्ति।। 47।।
अहो ततोऽनन्तरमद्ययावत्सुदुःसहां तस्य पराभवार्तिम्।
विषेहिरे हन्त हृदन्तशल्यमाज्ञानिवेशं त्रिदिवौकसोऽमी।। 48।।

देखिए, उस महादैत्य ने आप लोगों का जो अपमान किया है, उसका बदला केवल मैं ही ले सकता हूँ; क्योंकि जंगलों में लगी हुई आग बादलों की बड़ी घटा को छोड़कर और कौन बुझा सकता है।।41।। शंकर जी के ऐसा कहने पर इन्द्र आदि सभी देवताओं की आँखों में आनन्द के आँसू छलक आए और जब उन्हें यह ढाढ़स दे दिया गया कि आप लोगों की प्राण-रक्षा हो जायगी तो वे सब खिल उठे।।42।। भगवान् शंकर के कह चुकने पर ठीक अवसर जानकर इन्द्र ने कहना आरम्भ किया, क्योंकि अवसर पर कही हुई बात का अवश्य ही ठीक फल मिलता है–।।43।। हे प्रभु! आप घट-घट की जानने वाले हैं, आप अज्ञान को मिटाने वाले हैं, आपका कभी नाश नहीं होता, और अपने कभी न बुझने वाले ज्ञान के प्रकाश से आप संसार के भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालों की सब बातें जान जाते हैं।।44।। इसलिए हे नाथ! यह तो आप जानते ही होंगे कि अपने कठोर बाहुबल के पराक्रम से मतवाला होकर, देवताओं को पीड़ा देने वाला तारक असुर स्वर्ग का मालिक बन बैठा है और उसने हम सबको स्वर्ग से निकाल भगाया है।।45।। वह तारक असुर ब्रह्मा से अचूक वरदान पाकर अपनी भुजाओं के बल से तुरंत तीनों लोकों को जीत लेना चाहता है और मुझे तथा दूसरे बड़े-बड़े देवताओं को भी तिनके के बराबर तुच्छ समझता है।।46।। हे भगवान्! हम लोगों ने पहले जब ब्रह्मा जी की स्तुति की थी, तब उन्होंने प्रसन्न होकर हमें बताया था कि जब शंकर जी का पुत्र देवताओं का सेनापति बनकर उससे लड़ेगा तभी वह दैत्य मारा जायगा।।47।। तब से आज तक सब देवता लोग तारक असुर के हाथ से हारने की कसक और कसकने वाली उसकी आज्ञा का अपमान सहते चले आ रहे हैं।।48।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदाघधामक्लमविक्लवानां नवीनमम्भोदमिवौषधीनाम्।
सुनन्दनं नन्दनमात्मनो नः सेनान्यमेतं स्वयमादिश त्वम्।।49।।

त्रैलोक्यलक्ष्मीहृदयैकशल्यं समूलमुत्खाय महासुरं तम्।
अस्माकमेषां पुरतो भवन्सन्दुःखापहारं युधि यो विधत्ते।।50।।

महाहवेनाथ तवास्य सूनोः शस्त्रैः शितैः कृत्तशिरोधराणाम्।
महासुराणां रमणीविलापैर्दिशो दशैता मुखरीभवन्तु।।51।।

महारणक्षोणिपशूपहारीकृतेऽसुरे तत्र तवात्मजेन।
वन्दिस्थितानां सुदृशां करोतु वेणीप्रमोक्षं सुरलोक एषः।।52।।

इत्थं सुरेन्द्रे वदति स्मरारिः सुरारिदुश्चेष्टितजातरोषः।
कृतानुकम्पस्त्रिदशेषु तेषु भूयोऽपि भूताधिपतिर्बभाषे।।53।।

अहो अहो देवगणाः सुरेन्द्रमुख्याः शृणुध्वं वचनं ममैतत्।
विचेष्टते शंकर एष देवकार्याय सज्जो भवतां सुताद्यैः।।54।।

पुरा मयाकारि गिरीन्द्रपुत्र्याः प्रतिग्रहोऽयं नियतात्मनापि।
तत्रैष हेतुः खलु तद्भवेन वीरेण यद्वध्यत एव शत्रुः।।55।।

अत्रोपपन्नं तदमी नियुज्य कुमारमेनं पृतनापतित्वे।
निघ्नन्तु शत्रुं सुरलोकमेष भुनक्तु भूयोऽपि सुरैः सहेन्द्रः।।56।।

इसलिये हे भगवान्! जैसे गर्मी के सूर्य की तपन से जले हुए लता-वृक्षों को नये बादल हरा कर देते हैं, वैसे ही अपने इस आनन्द-दायक पुत्र को हमारे सेनापति बनने की आज्ञा देकर आप भी हमें जिला लीजिए।।49।। तीनों लोकों के हृदय में काँटे के समान चुभने वाले इस महादैत्य को जब आपके ये पुत्र युद्ध में आगे बढ़कर मार डालेंगे तभी हमारा दुःख मिट पायेगा।।50।। हे नाथ! ऐसा कीजिए कि जब इस महासंग्राम में आपके पुत्र के नुकीले बाणों से महादैत्यों के सिर कट-कटकर गिरें, तब उन दैत्यों की स्त्रियों के विलाप से दसों दिशाएँ गूँज उठें।।51।। और जब आपके पुत्र महासमर-भूमि में उन दैत्यों को सियार आदि जन्तुओं की भेंट चढ़ायें तब स्वर्ग में बन्दी बनी हुई सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों की उलझी हुई एकलड़ी वाली चोटियों को ये देवता लोग जाकर खोलें।।52।। इस प्रकार इन्द्र के मुँह से तारक का अत्याचार सुनकर भूतपति शंकर जी क्रोध से लाल हो उठे और उन देवताओं पर कृपा करते हुए वे फिर बोले।।53।। हे इन्द्र आदि देवताओं! आप लोग मेरी बातें सुनिए। अब मैं शंकर अपने पुत्र को लेकर तुम्हारा काम करने के लिये तैयार हो गया हूँ।।54।। हे देवो! समाधि में लगे होने पर भी मैंने पार्वती के साथ इसीलिये विवाह किया था कि इनका पुत्र तारक को मार डाले।।55।। इसलिये आपका काम करने वाले इस कुमार को सेनापति बनाकर आप शत्रु का नाश कीजिए और इन्द्र के साथ फिर स्वर्ग का आनन्द लीजिए।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्युदीर्य भगवाँस्तमात्मजं घोरसंगरमहोत्सवोत्सुकम्।
नन्दनं हि जहि देवविद्विषं संयतीति निजगाद शंकरः।। 57।।
शासनं पशुपतेः स कुमारः स्वीचकार शिरसावनतेन।
सर्वथैव पितृभक्तिरतानामेष एव परमः खलु धर्मः।। 58।।
असुरयुद्धविधौ विबुधेश्वरे पशुपतौ वदतीति तमात्मजम्।
गिरिजया मुमुदे सुतविक्रमे सति न न नन्दति का खलु वीरसूः।। 59।।
सुरपरिवृढः प्रौढं वीरं कुमारमुमापते,-
र्बलवदमरारातिस्त्रीणां दृगञ्जनभञ्जनम्।
जगदभयदं सद्यः प्राप्य प्रमोदपरोऽभवद्
ध्रुवमभिमतेपूर्णे को वा मुदा न हि माद्यति।। 60।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
कुमारसैनापत्यवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः।।

इतना कहकर शंकर जी ने उस घोर संग्राम को एक महोत्सव मानकर उसके लिये अपने पुत्र से कहा—हे पुत्र! तुम जाकर देवताओं के शत्रु तारक असुर को युद्ध भूमि में मार आओ।।57।। कुमार कार्त्तिकेय ने सिर झुकाकर शंकर जी की आज्ञा स्वीकार कर ली; क्योंकि पिता के भक्त पुत्रों का यही सच्चा धर्म है कि पिता की आज्ञा मान लें।।58।। सब देवताओं के स्वामी शिव जी जब अपने पुत्र को दैत्यों से युद्ध करने की बात समझाने लगे तो पार्वती जी की छाती दूनी हो गई; क्योंकि ऐसी भला कौन वीर माता होगी जो अपने पुत्र की वीरता की बात से प्रसन्न न हो।।59।। बलवान् दैत्यों की स्त्रियों को रुलाकर उनके आँसू से उनकी आँखों का आँजन मिटाने वाले तथा संसार को अभयदान देने वाले परम पराक्रमी कुमार कार्त्तिकेय को पाकर इन्द्र भगवान् आनन्द से खिल उठे, क्योंकि संसार में ऐसा कौन है जो अपने इच्छा पूरी हो जाने पर आनन्द से पागल न हो उठता हो।।60।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में 'कुमार के सेनापति होने का वर्णन' नाम का बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। त्रयोदशः सर्गः ।।

प्रस्थानकालोचितचारुवेषः स स्वर्गिवर्गैरनुगम्यमानः।
ततः कुमारः शिरसा नतेन त्रैलोक्यभर्तुः प्रणनाम पादौ।।1।।
जहीन्द्रशत्रुं समरेऽमरेशपदं स्थिरत्वं नय वीर वत्स।
इत्याशिषा तं प्रणमन्तमीशो मूर्द्धन्युपाघ्राय मुदाभ्यनन्दत्।।2।।
प्रह्वीभवन्नम्रतरेण मूर्ध्ना नमश्चकाराङ्घ्रियुगं स्वमातुः।
तस्याः प्रमोदाश्रुपयःप्रवृष्टिस्तस्याभवद्वीरवराभिषेकः।।3।।
तमङ्कमारोप्य सुता हिमाद्रेराश्लिष्य गाढं सुतवत्सला सा।
शिरस्युपाघ्राय जगाद शत्रुं जित्वा कृतार्थीकुरु वीरसूं माम्।।4।।
उद्दामदैत्येशविपत्तिहेतुः श्रद्धालुचेताः समरोत्सवस्य।
आपृच्छ्य भक्त्या गिरिजागिरिशौ ततः प्रतस्थेऽभिदिवं कुमारः।।5।।
देवं महेशं गिरिजां च देवीं ततः प्रणम्य त्रिदिवौकसोऽपि।
प्रदक्षिणीकृत्य च नाकनाथपूर्वाः समस्तास्तमथानुजग्मुः।।6।।
अथ व्रजद्भिस्त्रिदशैरशेषैः स्फुरत्प्रभाभासुरमण्डलैस्तैः।
नभो बभासे परितो विकीर्णं दिवापि नक्षत्रगणैरिवोग्रैः।।7।।

तेरहवाँ सर्ग

लड़ाई का बाना पहनकर और सब देवताओं के आगे होकर कुमार ने चलते समय तीनों लोकों के स्वामी शिवजी के चरणों में प्रणाम किया।।1।। प्रणाम करते हुए पुत्र को उठाकर और उसका सिर चूमकर शिवजी ने यह आशीर्वाद देते हुए कुमार को उत्साहित किया कि हे वीर पुत्र! जाओ युद्ध में इन्द्र के शत्रु को मारो और इन्द्र को उनके पद पर फिर से भली-भाँति बैठा दो।।2।। जिस समय कुमार अपने पिता जी के दोनों चरणों में झुककर माथा टेके हुए प्रणाम कर रहे थे, उस समय शिव जी की आँखों से बरसे हुए प्रेम के आँसुओं के जल से ही मानो सेनापति पद के लिए कुमार का अभिषेक हो गया।।3।। अपने पुत्र का लाड़-प्यार करने वाली पार्वती जी ने कुमार को गोद में लेकर कसकर अपने हृदय से लगा लिया और उसका माथा चूमकर आशीर्वाद दिया—'हे पुत्र! लड़ाई में शत्रु को जीत कर यह बात सच्ची कर दो कि मैं वीर पुत्र की माता हूँ।।4।। तब उस बलवान् दैत्यराज को मारने और संग्रामरूपी उत्सव मनाने के लिये उतावले बने हुए कुमार बड़ी भक्ति से अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर स्वर्ग की ओर चल पड़े।।5।। इन्द्र आदि सब देवता भी भगवान् शंकर और भगवती पार्वती जी को प्रणाम करके और उनकी प्रदक्षिणा करके कुमार के पीछे-पीछे चल पड़े।।6।। तब चारों ओर फैली हुई कान्ति वाले उन सब देवताओं के एक साथ चलने से आकाश ऐसा जान पड़ने लगा, मानो दिन में चमकने वाले बड़े-बड़े तारे चारों ओर निकल आए हों।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रराज तेषां व्रजतां सुराणां मध्ये कुमारोऽधिककान्तिकान्तः।
नक्षत्रताराग्रहमण्डलानामिव त्रियामारमणो नभोन्ते।।8।।
गिरीशगौरीतनयेन सार्धं पुलोमपुत्रीदयितादयस्ते।
उत्तीर्य नक्षत्रपथं मुहूर्तात्प्रपेदिरे लोकमथात्मनीनम्।।9।।
ते स्वर्गलोकं चिरकालदृष्टं महासुरत्रासवशंवदत्वात्।
सद्यः प्रवेष्टुं न विषेहिरे तत्क्षणं व्यलम्बन्त सुराः समग्राः।।10।।
पुरो भव त्वं न पुरो भवामि नाहं पुरोगोऽस्मि पुरः सरस्त्वम्।
इत्थं सुरास्तत्क्षणमेव भीताः स्वर्गं प्रवेष्टुं कलहं वितेनुः।।11।।
सुरालयालोकनकौतुकेन मुदा शुचिस्मेरविलोचनास्ते।
दधुः कुमारस्य मुखारविन्दे दृष्टिं द्विषत्साध्वसकातरान्ताम्।।12।।
सहेलहासच्छुरिताननेन्दुस्ततः कुमारः पुरतो भविष्णुः।
स तारकापातमपेक्षमाणो रणप्रवीरो हि सुरानवोचत्।।13।।
भीत्यालमद्य त्रिदिवौकसोऽमी स्वर्गं भवन्तः प्रविशन्तु सद्यः।
अत्रैव मे दृक्पथमेतु शत्रुर्महासुरो वः खलु दृष्टपूर्वः।।14।।
स्वर्लोकलक्ष्मीकचकर्षणाय दोर्मण्डलं वल्गति यस्य चण्डम्।
इहैव तच्छोणितपानकेलिमह्नाय कुर्वन्तु शरा ममैते।।15।।

आकाश में चलते हुए देवताओं के बीच में अपनी अत्यन्त चमक से सुन्दर दिखाई पड़ने वाले कुमार कार्त्तिकेय ऐसे सुन्दर लगते थे, मानो नक्षत्र और तारों के बीच में चन्द्रमा चले जा रहे हों।।8।। कुमार के पीछे-पीछे इन्द्र आदि देवता थोड़ी ही देर में स्वर्गलोक जा पहुँचे।।9।। दैत्यराज तारक के डर से देवता स्वर्ग में जा नहीं पा रहे थे, इसलिये वे झिझक के कारण एकदम भीतर न जा सके, थोड़ी देर ठिठके रहे।।10।। उस समय वे सब डरे हुए देवता आपस में एक दूसरे को ढकेलते हुए यह झगड़ा करने लगे—तुम चलो आगे। मैं आगे नहीं चलूँगा। मैं क्यों आगे चलूँ? तुम्हीं को आगे-आगे चलना चाहिए।।11।। उस समय स्वर्ग को सामने देखकर मगन हो उठने वाले उन देवताओं की आँखें आनन्द से खिल गईं पर शत्रु के डर से उनकी आँखें कातर होकर कुमार के मुख-कमल पर जा पड़ीं।।12।। उस समय कुमार का मुख-चन्द्र खिलवाड़ भरी हँसी से खिल उठा और तारक के धावे की प्रतीक्षा करते हुए रणवीर कुमार कार्तिकेय ने आगे होकर देवताओं से कहा—।।13।। हे देवो! अब डरने की कोई बात नहीं है। आप लोग निडर होकर स्वर्ग में चलिए। मैं चाहता हूँ कि अपने जिस घोर शत्रु तारक को आप लोग देख चुके हैं वह यहीं मेरे आगे आ जाय।।14।। मैं तो चाहता हूँ कि जिस तारक असुर की भुजाएँ, बलपूर्वक लक्ष्मी के बाल पकड़कर उन्हें दुर्दशा करते हुए खींचने के लिये मचली रहती हैं, उसका लहू पीने का आनन्द मेरे बाणों को झट से यहीं पर मिल जाय।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिर्ममासावहतप्रचारा प्रभावसारा सुमूहःप्रसारा।
स्वर्लोकलक्ष्म्या विपदावहारेः शिरो हरन्ती दिशतान्मुदं वः।। 16।।
इत्यन्धकारातिसुतस्य दैत्यवधाय युद्धोत्सुकमानसस्य।
सर्वं शुचिस्मेरमुखारविन्दं गीर्वाणवृन्दं वचसा ननन्द।। 17।।
सान्द्रप्रमोदात्पुलकोपगूढः सर्वाङ्गसंफुल्लसहस्रनेत्रः।
तस्योत्तरीयेण निजाम्बरेण निरुञ्छनं चारु चकार शक्रः।। 18।।
घनप्रमोदाश्रुतरंगिताक्षैर्मुखैश्चतुर्भिः प्रचुरप्रसादैः।
अथो अचुम्बद्विधिरादिवृद्धः षडाननं षट्सु शिरःसु चित्रम्।। 19।।
तं साधु साध्वित्यभितः प्रशस्य मुदा कुमारं त्रिपुरासुरारेः।
आनन्दयन्वीर ज्येति वाचा गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः।। 20।।
दिव्यर्षयः शत्रुविजेष्यमाणं तमभ्यनन्दन्किल नारदाद्याः।
निरुच्छनं चक्रुरथोत्तरीयैश्चामीकरीयैर्निजवल्कलैश्च।। 21।।
ततः सुराः शक्तिधरस्य तस्यावष्टम्भतः साध्वसमुत्सृजन्तः।
उत्सेहिरे स्वर्गमनन्तशक्तेर्गन्तुं वनं यूथपतेरिवेभाः।। 22।।
अथाभिपृष्ठं गिरिजासुतस्य पुरंदरारातिवधं चिकीर्षोः।
सुरा निरीयुस्त्रिपुरं दिधक्षोरिव स्मरारेः प्रमथाः समन्तात्।। 23।।

और वह चमकने वाली, अत्यन्त तेजस्विनी, प्रतापशालिनी और स्वर्गलोक की राजलक्ष्मी का कष्ट दूर करने वाली मेरी शक्ति यहीं पर शत्रु का सिर काटकर आप लोगों को आनन्द दे।।16।। दैत्यों का नाश करने की इच्छा से लड़ाई करने पर उतारू होने वाले उन कुमार की ये बातें सुनकर देवताओं के सुन्दर मुख-कमल खिल उठे, और वे सभी प्रसन्न हो उठे।।17।। अत्यन्त आनन्द के कारण वे इतने पुलकित हो उठे कि उनके शरीर की सब आँखें खिल उठीं। तब इन्द्र और कुमार ने आपस में एक दूसरे से उत्तरीय वस्त्र बदलकर अपनी मित्रता पक्की कर ली।।18।। देवताओं में सबसे बूढ़े ब्रह्मा की आँखें भी अत्यधिक आनन्द से बहते हुए आँसुओं की लहरों से छलछला आईं। उनके चारों मुख प्रसन्नता से खिल उठे, उन्होंने अपने चारों मुखों से कुमार के छहों मूखों का बड़े विचित्र ढंग से चुम्बन किया।।19।। उस समय गन्धर्व, विद्याधर और सिद्धों ने कुमार को 'साधु साधु' कहकर बड़े आनन्द के साथ उनकी बड़ाई करते हुए यह कहकर उन्हें आनन्दित किया कि हे वीर! तुम्हारी जय हो।।20।। देवर्षि नारद आदि ने भी शत्रु को जीतने वाले कुमार की प्रशंसा की और उनके सुनहले उत्तरीय आदि वस्त्रों से अपने वल्कल बदलकर उनसे भाईपन का नाता जोड़ लिया।।21।। हाथ में शक्ति लिए हुए कुमार का इस प्रकार सहारा पाकर, देवता लोग निडर हो गए और वे उसी उत्साह से स्वर्ग में प्रविष्ट हो गए जैसे किसी शक्तिशाली बड़े हाथी का सहारा पाकर छोटे हाथी भी जंगल में घुस पड़ते हैं।।22।। जैसे त्रिपुरासुर को जलाने के लिये जाते समय शंकर जी के पीछे-पीछे उनके प्रमथ आदि गण चले थे, वैसे ही तारक को मारने की इच्छा करने वाले कुमार के पीछे-पीछे देवता लोग भी स्वर्ग में चल पड़े।।23।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुराङ्गनानां जलकेलिभाजां प्रक्षालितैः संततमङ्गरागैः।
प्रपेदिरे पिञ्जरवारिपूरां स्वर्गौकसः स्वर्गधुनीं पुरस्तात्।।24।।
दिग्दन्तिनां वारिविहारभाजां कराहतैर्भीमतरैस्तरंगैः।
आप्लावयन्तीं मुहुरालवालश्रेणिं तरूणां निजतीरजानाम्।।25।।
लीलारसाभिः सुरकन्यकाभिर्हिरण्मयीभिः सिकताभिरुच्चैः।
माणिक्यगर्भाभिरुपाहिताभिः प्रकीर्णतीरां वरवेदिकाभिः।।26।।
सौरभ्यलुब्धभ्रमरोपगीतैर्हिरण्यहंसावलिकेलिलोलैः।
चामीकरीयैः कमलैर्विनिद्रैश्च्युतैः परागैः परिपिङ्गतोयाम्।।27।।
कुतूहलाद्द्रष्टुमुपागताभिस्तीरस्थिताभिः सुरसुन्दरीभिः।
अभ्यूर्मिराजिप्रतिबिम्बिताभिर्मुदं दिशन्तीं व्रजतां जनानाम्।।28।।
ननन्द सद्यश्चिरकालदृष्टां विलोक्य शक्रः सुरदीर्घिकां ताम्।
अदर्शयत्सादरमद्रिपुत्रीमहेशपुत्राय ततः पुरोगः।।29।।
स कार्तिकेयः पुरतः परीतः सुरैः समस्तैः सुरनिम्नगां ताम्।
अपूर्वदृष्टामवलोकमानः सविस्मयः स्मेरविलोचनोऽभूत्।।30।।
उपेत्य तां तत्र किरीटकोटिन्यस्ताञ्जलिर्भक्तिपरः कुमारः।
गीर्वाणवृन्दैः प्रणुतां प्रणुत्य नम्रेण मूर्ध्ना मुदितो ववन्दे।।31।।

पहले पहल उन्हें वह आकाशगंगा दिखाई दी जिसका जल, जल-विहार करने वाली अप्सराओं के धुले हुए अंगों से छूटे हुए अंगराग से रंग जाया करता है, जिसके जल में बिहार करते समय दिग्पालों के हाथी, लहरों पर अपनी सूँड़ पटका करते हैं और जिसकी लहरों के जल से तीर पर खड़े हुए पेड़ों के थाँवले सदा सिंचे रहते हैं, जहाँ खेलने के लिये आई हुई देवकन्याओं के हाथों की बनी हुई सुनहले बालू की वे ऊँची-ऊँची वेदिकाएँ दूर-दूर तक बनी हुई थीं जो उन्होंने बीच-बीच में मणि डाल-डालकर अपने खेल के लिये बना रखी थीं, जहाँ सुगन्ध के लोभी भौंरे सदा गुनगुनाते रहते हैं और सुनहले हंस कल्लोल करते रहते हैं, जहाँ ऐसे सोने के कमल खिले रहते हैं जिनके गिरे हुए पराग से वहाँ का जल भी पीला हो उठता है, जहाँ देवताओं की सुन्दरियाँ मन बहलाव के लिये आ-आकर तटपर बैठी रहती हैं और तरंगों में पड़ती हुई जिनकी परछाईं उधर से आने-जाने वाले पथिकों का जी भी लुभाती रहती है।।24-28।। इतने दिनों पर उस देव-नदी को देखकर इन्द्र तुरन्त प्रसन्न हो उठे और आगे बढ़कर आदर के साथ उन्होंने कुमार को भी वह नदी दिखलाई।।29।। सब देवताओं से घिरे हुए कार्तिकेय जी को इस नई नदी को सामने देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता से उनकी आँखें खिल गईं।।30।। जिस नदी की सब देवता स्तुति करते हैं, उस मंदाकिनी के तटपर जाकर कुमार कार्तिकेय ने सिर झुकाकर अपने किरीट के सिरे पर हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी वन्दना की।।31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणर्तितस्मेरसरोजराजिः पुरः परीरम्भमिलन्महोर्मिः।
कपोलपालिश्रमवारिहारि भेजे गुहं तं सरितः समीरः।। 32।।
ततो व्रजन्नन्दननामधेयं लीलावनं जम्भजितः पुरस्तात्।
विभिन्नभग्नोद्धूतशालसंघं प्रेक्षांचकार स्मरशत्रुसूनुः।। 33।।
सुरद्विषोपप्लुतमेवमेतद्वनं बलस्य द्विषतो गतश्रि।
इत्थं विचिन्त्यारुणलोचनोऽभूद्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखः स कोपात्।। 34।।
निर्लूनलीलोपवनामपश्यद्दुःसंचरीभूतविमानमार्गाम्।
विध्वस्तसौधप्रचयां कुमारो विश्वैकसाराममरावतीं सः।। 35।।
गतश्रियं वैरिवराभिभूतां दशां सुदीनामभितो दधानाम्।
नारीमवीरामिव तामवेक्ष्य स बाढमन्तः करुणापरोऽभूत्।। 36।।
दुश्चेष्टिते देवरिपौ सरोषस्तस्याविषण्णः समराय चोत्कः।
तथाविधां तां स विवेश पश्यन्सुरैः सुराधीश्वरराजधानीम्।। 37।।
दैतेयदन्त्यावलिदन्तघातैः क्षुण्णान्तराः स्फाटिकहर्म्यपङ्क्तीः।
महाहिनिर्मोकपिनद्धजालाः स वीक्ष्य तस्यां विषसाद सद्यः।। 38।।
उत्कीर्णचामीकरपङ्कजानां दिग्दन्तिदानद्रवदूषितानाम्।
हिरण्यहंसव्रजवर्जितानां विदीर्णवैदर्यमहाशिलानाम्।। 39।।

उस समय, खिले हुए कमलों को नचाने वाले तरंगों से गले मिलकर चलने वाले और गालों के पसीने को सुखाने वाले मंदाकिनी के मन्दपवन ने वहाँ आए हुए कुमार की सेवा की।।32।। वहाँ से चलकर कार्त्तिकेय ने इन्द्र के नन्दन उपवन को देखा। वहाँ के सब साल के पेड़ या तो तोड़ डाले गए थे या जड़ से ही उखाड़ डाले गए थे।।33।। कार्त्तिकेय ने समझ लिया कि तारकासुर के अत्याचार से ही इन्द्र के इस सुन्दर वन की यह शोभा बिगड़ी है। यह सोचते ही मारे क्रोध के उनका मुँह तम-तमा उठा, भौंहे तन गईं और आँखें लाल हो उठीं।।34।। वहाँ से और आगे बढ़कर कुमार ने विश्व की सर्वश्रेष्ठ नगरी अमरावती को देखा जिसके लीला-उपवन तहस-नहस कर डाले गए थे, ऊँचे-ऊँचे भवन गिरा दिए गए थे और सब ऐसा उजाड़ हो गया था कि उधर विमान पर चढ़कर जाने को भी किसी का जी नहीं करता था।।35।। तारक के हाथों उजाड़ी हुई उस नष्ट-भ्रष्ट और सुनसान नगरी को देखकर कार्तिकये को उसी प्रकार बड़ी दया आई जैसे किसी नपुंसक की स्त्री को देखकर दया आती है।।36।। अमरावती की वह दुर्दशा देखते ही कुमार उस दुराचारी दैत्य पर बड़े क्रुद्ध हो उठे और युद्ध के लिये बड़े उतावले से होकर वे देवताओं की राजधानी में घुसे।।37।। वहाँ के स्फटिक के बने हुए बड़े-बड़े भवन दैत्यों के हाथियों के दाँतों की टक्करों से तड़क गए थे, जहाँ तहाँ बड़े-बड़े साँपों की केचुलियाँ छुटी पड़ी थीं। यह सब देखकर कुमार को बड़ा दुःख हुआ।।38।। उन्होंने देखा कि देवताओं के विलास-घरों में बनी हुई बावलियों में से स्वर्ण-कमल उखाड़ डाले गए थे, दिग्गजों के मद से उनका जल गंदला हो गया था, सुनहरे हंस वहाँ से उड़ गए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविर्भवद्बालतृणाञ्चितानां तदीयलीलागृहदीर्घिकाणाम्।
स दुर्दशां वीक्ष्य विरोधिजातां विषादवैलक्ष्यभरं बभार।।40।।
तद्दन्तिदन्तक्षतहेमभित्ति सुतन्तुजालाकुलरत्नजालाम्।
निन्ये सुरेन्द्रेण पुरोगतेन स वैजयन्ताभिधमात्मसौधम्।।41।।
निर्दिष्टवर्त्मा विबुधेश्वरेण सुरैः समग्रैरनुगम्यमानः।
स प्राविशत्तं विविधाश्मरश्मिच्छिन्नेन सोपानपथेन सौधम्।।42।।
निसर्गकल्पद्रुमतोरणं तं स पारिजातप्रसवस्रगाढ्ययम्।
दिव्यैः कृतस्वस्त्ययनं मुनीन्द्रैरन्तःप्रविष्टप्रमदं प्रपेदे।।43।।
पादौ महर्षेः किल कश्यपस्य कुलादिवृद्धस्य सुरासुराणाम्।
प्रदक्षिणीकृत्य कृताञ्जलिःसन्षड्भिः शिरोभिः स नतैर्ववन्दे।।44।।
स देवमातुर्जगदेकवन्द्यौ पादौ तथैव प्रणनाम कामम्।
मुनेः कलत्रस्य च तस्य भक्त्या प्रह्वीभवञ्शैलसुतातनूजः।।45।।
स कश्यपः सा जननी सुराणां तमेधयामासतुराशिषा द्वौ।
तया यया नैकजगज्जिगीषुं जेता मृधे तारकमुग्रवीर्यम्।।46।।
स्वदर्शनार्थं समुपेयुषीणां सुदेवतानामदितिश्रितानाम्।
पादौ ववन्दे पतिदेवतास्तमाशीर्वचोभिः पुनरभ्यनन्दन्।।47।।

थे, पन्नों की बनी-बड़ी पट्टिकाएँ भी टूट-फूट गई थीं और चारों ओर छोटी-छोटी घास उग आई थी, शत्रुओं के हाथों वहाँ की यह दुर्दशा देखकर उनका मन दुःख से भारी हो उठा।।39-40।। तब इन्द्र भगवान् कुमार को अपने उस वैजयन्त नाम के भवन में ले गए जहाँ की सुनहली दीवालें दैत्यों के हाथियों के दाँतों की टक्करों से फट गई थीं और जहाँ मकड़ियों ने जाले तान दिए थे।।41।। आगे-आगे इन्द्र चल रहे थे और पीछे-पीछे सब देवता चले जा रहे थे। इस प्रकार रत्नों की चमक से सुहावनी लगने वाली सीढ़ियों पर चढ़कर कुमार उस भवन में गए।।42।। और सब लोग भी उस सुन्दर भवन में पहुँचे जहाँ कल्पवृक्ष ही स्वयं बन्दनवार बना हुआ था, जहाँ ढेर के ढेर पारिजात के फूल बिखरे पड़े थे, जहाँ देवर्षियों ने स्वस्ति-पाठ किया था और जहाँ एक से बढ़कर एक अप्सराएँ रहती थीं।।43।। वहाँ पर देव-दानव वंश के सबसे बड़े-बूढ़े महर्षि कश्यप के चरणों की प्रदक्षिणा करके कुमार ने अपने छहों सिरों से उन्हें प्रणाम किया।।44।। कुमार ने बड़ी भक्ति से कश्यप की पत्नी और देवों की आदि माता अदिति के उन चरणों को भी भली-भाँति प्रणाम किया, जिन्हें सारा संसार पूजता है।।45।। तब कश्यप और देव-माता अदिति ने कुमार को यह आशीर्वाद देकर उनका साहस बढ़ाया कि तीनों लोकों के जीतने वाले इस शक्तिशाली तारक असुर को तुम युद्ध में अवश्य हराओगे।।46।। अदिति के यहाँ और जो देवाङ्गनाएँ रहती थीं वे भी कुमार को देखने के लिए आ पहुँची। कुमार ने उन सबको प्रणाम किया और उन सब पतिव्रता स्त्रियों ने कुमार को आशीर्वाद देकर उनका बड़ा मान बढ़ाया।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलोमपुत्रीं विबुधाधिभर्तुस्ततः शचीं नाम कलत्रमेषः।
नमश्चकार स्मरशत्रुसूनुस्तमाशिषा सा समुपाचरच्च।। 48।।
अथादितीन्द्रप्रमदाः समेतास्ता मातरः सप्त घनप्रमोदाः।
उपेत्य भक्त्या नमते महेशपुत्राय तस्मै ददुराशिषः प्राक्।। 49।।
समेत्य सर्वेऽपि मुदं दधाना महेन्द्रमुख्यास्त्रिदिवौकसोऽथ।
आनन्दकल्लोलितमानसं तं समभ्यषिञ्चन्पृतनाधिपत्ये।। 50।।

सकलविबुधलोकः स्रस्तनिःशेषशोकः,
कृतरिपुविजयाशः प्राप्तयुद्धावकाशः।
अजनि हरसुतेनानन्तवीर्येण तेना-
खिलविबुधचमूनां प्राप्य लक्ष्मीमनूनाम्।। 51।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
कुमारसैनापत्याभिषेको नाम त्रयोदशः सर्गः।।

तब कुमार ने इन्द्र की पत्नी शची को प्रणाम किया और उन्होंने भी आशीष देकर इनका मान बढ़ाया।।48।। तब कुमार ने कश्यप जी की उन सातों पत्नियों के पास जाकर बड़ी भक्ति से प्रणाम किया जो बड़े आनन्द से भरी वहीं इकट्ठी बैठी हुई थीं। उन्होंने प्रणाम करने से पहले ही कुमार को विजय पाने का आशीर्वाद दे दिया था।।49।। उस समय इन्द्र आदि सभी देवताओं ने आनन्द के साथ इकट्ठे होकर हँसमुख कुमार कार्तिकेय को अपना सेनापति बना दिया।।50।। इस प्रकार जब अनन्त शक्तिशाली कुमार कार्तिकेय, देवताओं की समूची सेना के सेनापति हो गए तो देवताओं को विश्वास हो गया कि अब हम लोग युद्ध में शत्रुओं को अवश्य जीत लेंगे और यह समझकर उनका सब शोक भी जाता रहा।।51।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमार सम्भव महाकाव्य में 'सेनापति का अभिषेक' नाम का तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्दशः सर्गः ।।

रणोत्सुकेनान्धकशत्रुसूनुना समं प्रयुक्तैस्त्रिदशैर्जिगीषुणा।
महासुरं तारकसंज्ञकं द्विषं प्रसह्य हन्तुं समनह्यत द्रुतम्।।1।।
स दुर्निवारं मनसोऽतिवेगिनं जयश्रियः सन्नयनं सुदुःसहम्।
विजित्वरं नाम तदा महारथं धनुर्धरः शक्तिधरोऽध्यरोहयत्।।2।।
सुरालयश्रीविपदां निवारणं सुरारिसंपत्परितापकारणम्
केनापि दध्रेऽस्य विरोधिदारणं सुचारुचामीकरधर्मवारणम्।।3।।
शरच्चरच्चन्द्रमरीचिपाण्डुरैः स वीज्यमानो वरचारुचामरैः।
पुरःसरैः किन्नरसिद्धचारणै रणेच्छुरस्तूयत वाग्भिरुल्वणैः।।4।।
प्रयाणकालोचितचारुवेषभृद्वज्रं वहन्पर्वतपक्षदारणम्।
ऐरावतं स्फाटिकशैलसोदरं ततोऽधिरुह्य द्युपतिस्तमन्वगात्।।5।।
तमन्वगच्छद्गिरिशृङ्गसोदरं मदोद्धतं मेषमधिष्ठितः शिखी।
विरोधिविद्वेषरुषाधिकं ज्वलन्महोमहीयस्तरमायुधं दधत्।।6।।
अथेन्द्रनीलाचण्डविग्रहं विषाणविध्वस्तमहापयोधरम्।
अधिष्ठितः कासरमुद्धरं मुदा वैवस्वतो दण्डधरस्तमन्वगात्।।7।।

चौदहवाँ सर्ग

विजय की इच्छा से लड़ने के लिये उतारू कुमार कार्त्तिकेय के कहने से सब देवता मिलकर ब्रलपूर्वक तारक को मार डालने के लिये अस्त्र-शस्त्र बाँधने लगे।।1।। तब धनुषधारी शक्तिशाली कुमार अपने 'विजित्वर' नाम के उस बड़े भारी रथ पर चढ़ गए जो मनसे भी अधिक वेग से चलता था, जो किसी के रोके रुकता नहीं था और जिसपर चढ़कर लड़ने से सदा विजय मिलती है।।2।। उसी समय किसी ने उनपर सोने का वह शत्रु-नाशक छत्र लाकर लगा दिया जो स्वर्ग की लक्ष्मी को सुख देने वाला और दैत्यों की संपत्ति उजाड़ देने वाला था।।3।। कुमार के दोनों ओर शरद् के चन्द्रमा की किरणों के समान उजले सुन्दर चँवर ढुल रहे थे और उनके आगे बड़े-बड़े अखाड़िए किन्नर, सिद्ध और चारण उन युद्ध-प्रेमी कुमार की बड़ाई के गीत गाते चल रहे थे।।4।। युद्ध का ठाट सजाकर और पर्वतों के पंख काटने वाला वज्र लेकर इन्द्र भी स्फटिक के पर्वत के समान उज्ज्वल और ऊँचे ऐरावत हाथी पर चढ़कर उनके पीछे-पीछे हो लिए।।5।। शत्रु पर क्रोध के मारे और भी अधिक जलते हुए अग्निदेव भी, पर्वत की चोटी के समान ऊँचे और बिगड़ैल मेंढ़े पर चढ़कर और बड़ा भयंकर दहलाता हुआ अस्त्र हाथ में लेकर कुमार के पीछे-पीछे चल दिए।।6।। हाथ में दंड लेकर यमराज भी अपने नीलम के पहाड़ जैसे ऊँचे और काले-कलूटे उस भैंसे पर चढ़कर कुमार के पीछे चल दिए जो अपने सींगों से बादलों की छाती चीरता हुआ चलता था।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदोद्धतं प्रेतमथाधिरूढवाँस्तमन्धकद्वेषितनूजमन्वगात्।
महासुरद्वेषविशेषभीषणः सुरोषणश्चण्डरणाय नैर्ऋतः।।8।।
नवोद्यदम्भोधरघोरदर्शने युद्धाय रूढो मकरे महत्तरे।
दुर्वारपाशोवरुणो रणोल्वणस्तमन्वियाय त्रिपुरान्तकात्मजम्।।9।।
दिगम्बराधिक्रमणोल्वणं क्षणान्मृगं महीयांसमरुद्धविक्रमम्।
अधिष्ठितः संगरकेलिलालसो मरुन्महेशात्मजमन्वगाद्द्रुतम्।।10।।
विरोधिनां शोणितपारणैषिणीं गदामनूनां नरवाहनो वहन्।
महाहवाम्भोधिविगाहनोद्धतं यियासुमन्वागमदीशनन्दनम्।।11।।
महाहिनिर्बद्धजटाकलापिनो ज्वलत्त्रिशूलप्रवलायुधा युधे।
रुद्रास्तुषाराद्रिसखं महावृषं ततोऽधिरूढास्तमयुः पिनाकिनः।।12।।
अन्येऽपि संनह्य महारणोत्सवश्रद्धालवः स्वर्गिगणास्तमन्वयुः।
स्ववाहनानि प्रवलान्यधिष्ठिताःप्रमोदविस्मेरमुखाम्बुजश्रियः।।13।।
उद्दण्डहेमध्वजदण्डसंकुलाश्चञ्चद्विचित्रातपवारणोज्जवलाः।
चलद्घनस्यन्दनघोषभीषणाः करीन्द्रघण्टारवचण्डचीत्कृताः।।14।।
स्फुरद्विचित्रायुधकान्तिमण्डलैरुद्योतिताशावलयाम्बरान्तराः।
दिवौकसां सोऽनुवहन्महाचमूः पिनाकपाणेस्तनयस्ततो ययौ।।15।।

नैर्ऋत्य दिशा का स्वामी नैर्ऋत राक्षस भी तारक से चिढ़कर बड़ा भयानक हो गया और शत्रु से लड़ने के लिये मतवाले प्रेत पर चढ़कर कुमार के पीछे चल दिया।।8।। अपनी अचूक फाँस लिए हुए बड़े बलवान् वरुणदेव अपने उस बड़े भारी घड़ियाल पर बैठकर युद्ध के लिये कुमार के पीछे चले, जो उठी हुई घटा के समान एकदम काला था।।9।। पवनदेव लड़ाई की इच्छा से क्षणभर में आगे उस पराक्रमी हिरण पर बैठकर कुमार के पीछे चल दिए जो पृथ्वी और आकाश में कहीं भी बिना रुके चौकड़ी भरता उड़ता चलता था।।10।। जो गदा शत्रुओं का लहू पीकर ही युद्ध का व्रत तोड़ती थी, वह भारी गदा लेकर कुबेर उस पालकी पर चढ़कर कुमार के पीछे चले जिसे मनुष्य ढो रहे थे।।11।। अपने-अपने हाथों में पिनाक धनुष और जलते हुए त्रिशूल लेकर और अपने जटा-जूटों को बड़े-बड़े साँपों से कसकर हिमालय के समान उज्ज्वल बैलों पर चढ़कर ग्यारहों रुद्र कुमार के पीछे-पीछे हो लिए।।12।। महायुद्ध के इस उत्सव में रुचि रखने वाले दूसरे सब देवता भी अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर आनन्द से हँस-हँसकर कार्तिकेय के साथ चल पड़े।।13।। इस प्रकार सब तरह से सजी हुई, अनगिनत सोने के डंडे ऊपर उठाकर चलती हुई, चमचमाते हुए रंग-बिरंगे छत्र चमकाती हुई, झुण्ड के झुण्ड चलने वाले रथों की घनघनाहट से भयंकर लगती हुई मतवाले हाथियों के घंटों की टन-टन और उनकी चिंघाड़ों से कान फाड़ती हुई, अनेक प्रकार के झिलमिलाते हुए अस्त्र-शस्त्रों की चमक से चारों दिशाओं और आकाश को चमकाती हुई उस देवताओं की महासेना को लिए हुए वीर कुमार चले।।14-15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोलाहलेनोच्चलतां दिवौकसां महाचमूनां गुरुभिर्ध्वजव्रजैः।
घनैर्निरुच्छ्वासमभूदनन्तरं दिङ्मण्डलं व्योमतलं महीतलम्।। 16।।
सुरारिलक्ष्मीपरिकम्पहेतवो दिक्चक्रवालप्रतिनादमेदुराः।
नभोन्तकुक्षिंभरयो घनाः स्वना निहन्यमानैः पटहैर्वितेनिरे।। 17।।
प्रमथ्यमानाम्बुधिगर्जितर्जनैः सुरारिनारीगणगर्भपातनैः।
नभश्चमूधूलिकुलैरिवाकुलं ररास गाढं पटहप्रतिस्वनैः।। 18।।
क्षुण्णं रथैर्वाजिभिराहतं खुरैः करीन्द्रकर्णैः परितः प्रसारितम्।
धूतं ध्वजैः काञ्चनशैलजं रजो वातैर्हतं व्योम समारुहत्क्रमात्।। 19।।
खातं खुरै रथ्यतुरङ्गपुङ्गवैरुपेत्यकाहाटकमेदिनीरजः।
गतं दिगन्तान्मुखरैः समीरणैः सुविभ्रमं भूरि बभार भूयसा।। 20।।
अधस्तथोर्ध्वं पुरतोऽथ पृष्ठतोऽभितोऽपि चामीकररेणुरुच्चकैः।
चमूषु सर्पन्मरुदाहतोऽहरन्नवीनसूर्यस्य च कान्तिवैभवम्।। 21।।
बलोद्धूतं काञ्चनभूमिजं रजो बभौ दिगन्तेषु नभःस्थले स्थितम्।
अकालसन्ध्याघनरागपिङ्गलं घनं घनानामिव वृन्दमुद्यतम्।। 22।।
हेमावनीषु प्रतिबिम्बमात्मनो मुहुर्विलोक्याभिमुखं महागजाः।
रसातलोत्तीर्णगजभ्रमात्क्रुधा दन्तप्रकाण्डप्रहतानि तेनिरे।। 23।।

उछलते-कूदते चलने वाले देवताओं के कोलाहल से और उस बड़ी भारी सेना की ऊँची-ऊँची और बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से, दसों दिशाएँ आकाश और पृथ्वी सब एक से दिखाई पड़ने लगे।।16।। उनके नगाड़ों की घोरध्वनि की गूँज चारों ओर सुनकर दैत्यों की राज-लक्ष्मी भी काँप उठीं।।17।। सेना के चलने से उड़ी हुई धूल से भरा हुआ आकाश ऐसा लगता था, मानो मथने के समय समुद्र के गर्जन से भी अधिक डरावनी ध्वनि वाले और दैत्यों की स्त्रियों के गर्भ गिराने वाले नगाड़ों की धमक सुनकर आकाश रो उठा है।।18।। वहाँ सुमेरु पर्वत की धूल इस ढंग से आकाश में पहुँची कि पहले तो रथों ने वहाँ की मिट्टी उखाड़ी फिर घोड़ों ने अपने सुमों से उसे महीन कर दिया, तब हाथियों ने अपने कान हिल-हिलाकर उसे चारों ओर फैला दिया, तब लहराती हुई झंडियों ने उस धूल को और भी इधर-उधर बिखेर दिया, फिर वायु उसे आकाश में उड़ा ले गया।।19।। इतना ही नहीं, सुमेरु की तलहटी से उठी हुई वह सुनहली धूल रथ खींचने वाले बढ़िया घोड़ों के खुरों से पिसकर, हरहराते हुए पवन के सहारे सभी दिशाओं में फैलकर चमक उठी।।20।। पवन के सहारे से सेना के ऊपर-नीचे, आगे-पीछे और चारों ओर फैली हुई वह सुनहली धूप ऐसी सुन्दर लगती थी कि निकलते हुए सूर्य की सुनहली धूप भी उसके आगे फीकी पड़ जाती थी।।21।। सेना के चलने से उड़ी हुई सुनहली धूप सभी दिशाओं और आकाश में भरकर ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ने लगी, मानो संध्या हुए बिना ही सुनहरे बादलों के झुंड के झुंड उमड़कर आकाश में छा गए हों।।22।। सेना के साथ चलते हुए हाथियों ने वहाँ की सुनहली धरती में अपनी परछाई देखी तो वे समझे कि ये पाताल से निकले हुए बड़े-बड़े हाथी हैं, इसीलिये बहुत बिगड़कर वे उस परछाइयों पर ही अपने बड़े-बड़े दाँतों से टक्कर मारने लगे।।23।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुजातसिन्दूरपरागपिञ्जरैः कलं चलद्भिः सुरसैन्यसिन्धुरैः।
शुद्धासु चामीकरशैलभूमिषु नादृश्यत स्वं प्रतिबिम्बमग्रतः।। 24।।

इति क्रमेणामरराजवाहिनी महाहवाम्भोधिविलासलालसा।
अवातरत्काञ्चनशैलतो द्रुतं कोलाहलाक्रान्तविधूतकन्दरा।। 25।।

महाचमूस्यन्दनचण्डचीत्कृतैर्विलोलघण्टेभपतेश्च बृंहितैः।
सुरेन्द्रशैलेन्द्रमहागुहाशयाः सिंहा महत्स्वप्नसुखं न तत्यजुः।। 26।।

गम्भीरभेरिध्वनितैर्भयंकरैर्महागुहान्तप्रतिनादमेदुरैः।
महारथानां गुरुनेमिनिःस्वनैरनाकुलैस्तैर्मृगराजताऽजनि।। 27।।

समुत्थितेन त्रिदिवौकसां महाचमूरवेणाद्रितटान्तदारिणा।
प्रपेदिरे केसरिणोऽधिकं मदं स्ववीर्यलक्ष्मीमृगराजतावशात्।। 28।।

भिया सुरानीकविमर्दजन्मना विदुद्रुवुर्दूरतरं द्रुतं मृगाः।
गुहागृहान्ताद्बहिरेत्य हेलया तस्थुर्विशङ्कं नितरां मृगाधिपाः।। 29।।

विलोकिताः कौतुकिनामरावतीजनेन जुष्टप्रमदेन दूरतः।
सुराचलप्रान्तभुवः प्रपेदिरे सुविस्तृतायाः प्रसरं सुसैनिकाः।। 30।।

बढ़िया सिन्दूर की बुकनी से रँगे हुए और धीरे-धीरे चलने वाले उन देवताओं की सेना के हाथियों को सुमेरु गिरि की चमकदार सोने की धरती पर भी अपनी परछांही ठीक-ठीक नहीं दिखाई पड़ती थी, क्योंकि दोनों का रंग एक-सा था।।24।। इस प्रकार युद्ध के समुद्र में तैरने को उतारू देवराज की सेना अपने कोलाहल से गुफाओं को गूँजती हुई सुमेरुपर्वत से बड़े वेग से नीचे उतरी।।25।। देवताओं की इंस बड़ी भारी सेना के रथों की घोर घर-घराहट और बजते हुए घंटों तथा बड़े-बड़े हाथियों की चिग्घाड़ों की इतनी ध्वनि होते हुए भी सुमेरुपर्वत की लंबी-लंबी गुफाओं में सोने वाले सिंहों ने अपनी नींद के सपनों का सुख नहीं छोड़ा,वे सोए ही पड़े रहे।।26।। गुफाओं में गूँजते हुए नगाड़ों की गंभीर और भयंकर ध्वनि और बड़े-बड़े रथों के पहियों की घड़घड़ाहट गुफाओं से टकराकर दूनी होकर गूँज रही थी, फिर भी वहाँ से सिंह ज्यों के त्यों बैठे रहे और इस प्रकार उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि हम सचमुच मृगों के राजा हैं।।27।। सुमेरु की चोटियों को फोड़ने वाली उस देवों की महासेना के चलने से जो हल्ला हो रहा था, उसे सुन-सुनकर वे सब सिंह और भी मतवाले हो उठे, जो अपनी शक्ति के बल पर सब पशुओं के राजा बने हुए थे।।28।। वहाँ जितने हिरण थे वे सब तो इस डर से चौकड़ी भरकर दूर भाग गए कि कहीं देवताओं की सेना हमें मार न डाले, पर जितने सिंह थे, वे अपनी गुफाओं के बाहर निडर होकर मस्ती के साथ निकल-निकलकर खड़े हो गए।।29।। जब वे सैनिक उस ऊँचे सुमेरुपर्वत की तलहटी में उतरे, उस समय अमरावती में रहने वाले स्त्री-पुरुष सब उन्हें बड़े चाव से देख रहे थे।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीतासितारक्तसितैः सुराचलप्रान्तस्थितैर्धातुरजोभिरम्बरम्।
अयत्नगन्धर्वपुरोदयभ्रमं बभार भूम्नोत्पतितैरितस्ततः।। 31।।
महास्वनः सैन्यविमर्दसंभवः कर्णान्तकूलंकषतामुपेयिवान्।
पयोनिधेः क्षुब्धतरस्य वर्धनो बभूव भूम्ना भुवनोदरम्भरिः।। 32।।
महागजानांगुरु बृंहितैस्ततैः सुहेषितैर्घोरतरैश्च वाजिनाम्।
घनै रथानां गुरुचण्डचीत्कृतैस्तिरोहितोऽभूत्पटहस्य निःस्वनः।। 33।।
महासुराणमवरोधयोषितां कचाक्षिपक्ष्मस्तनमण्डलेषु च।
ध्वजेषु नागेषु रथेषु वाजिषु क्षणेन तस्थौ सुरसैन्यजं रजः।। 34।।
घनैर्विलोक्य स्थगितार्कमण्डलैश्चमूरजोभिर्निचितं नभःस्थलम्।
अयायि हंसैरभिमानसं घनभ्रमेण सानन्दमनर्ति केकिभिः।। 35।।
सान्द्रैः सुरानीकरजोभिरम्बरे नवाम्बुदानीकनिभैरभिश्रिते।
चकाशिरे स्वर्णमया महाध्वजाः परिस्फुरन्तस्तडितां गणा इव।। 36।।
विलोक्य धूलीपटलैर्भृशं भृतं द्यावापृथिव्योरलमन्तरं महत्।
किमूर्ध्वतोऽधः किमधस्त ऊर्ध्वतो रजोऽभ्युपैतीति जनैरतर्क्यत।। 37।।
नोर्ध्वं न चाधो न पुरो न पृष्ठतो न पार्श्वतोऽभूत्खलु चक्षुषोर्गतिः।
सूच्यग्रभेद्यैः पृतनारजश्चयैराच्छादिता प्राणिगणस्य सर्वतः।। 38।।

सुमेरुपर्वत की पीली, नीली, लाल और उजली चट्टानों से उड़ी हुई धूल से भरा हुआ आकाश ऐसा लगने लगा, मानो बिना परिश्रम के ही वह अनेक रत्नों से भरा गन्धर्वपुर बन गया हो।।31।। कानों के परदों को फाड़ने वाला देवसेना का वह उमड़ा हुआ घोरशब्द हड़भड़ाते हुए समुद्र की कोलाहल से भी अधिक बढ़कर सारे ब्रह्माण्ड में गूँजने लगा।।32।। यहाँ तक कि मतवाले हाथियों की भारी चिग्घाड़ चारों ओर घोड़ों की हिन-हिनाहट और चलते हुए रथों की घोर घर-घराहट में गम्भीर और कान फाड़ने वाली नगाड़ों की ध्वनि एकदम दब गई।।33।। क्षण-भर में ही देवसेना के चलने से उड़ी हुई वह धूल धीरे-धीरे दैत्यों की स्त्रियों के बालों, उनकी आँखों, अलकों और स्तनों पर बैठती हुई फिर उनकी पताकाओं, हाथियों, रथों और घोड़ों पर जाकर जमने लगी।।34।। जब सेना की घनी धूल सूर्य को ढककर आकाश में छा गई तो हंस समझे कि ये बादल हैं और बरसात जानकर वे मानसरोवर की ओर उड़ चले और मोर मस्ती से नाचने लगे।।35।। सेना के चलने से उड़ी हुई घनी धूल तो आकाश में नये बादलों की पाँतों-जैसी दिखाई देने लगी और सुनहली पताकाएँ, चमकती हुई बिजली की लहरों-सी चमकने लगीं।।36।। आकाश और पृथ्वी के ठीक बीचों-बीच छाई हुई उस धूल को देखकर लोग यही सोचते रह गए कि यह धूल, ऊपर से नीचे उतर रही है या नीचे से ऊपर को चढ़ रही है।।37।। सेना के चलने से उठी हुई धूल ऐसी छा गई थी कि सूई की नोक के बराबर स्थान भी खुला न रह गया था, इसलिये सबकी आँखों के आगे ऐसा अँधेरा छा गया कि किसी को भी नीचे ऊपर, आगे-पीछे कहीं कुछ भी नहीं दिखाई देता था।।38।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिगन्तदन्त्यावलिदानहारिभिर्विमानरन्ध्रप्रतिदानमेदुरैः ।
अनेकवाद्यध्वनितैरनारतैर्जगर्ज गाढं गुरुभिर्नभस्तलम् ।। 39 ।।
भुवं विगाह्य प्रययौ महाचमूः क्वचिन्न मान्ती महतीं दिवं खलु ।
सुसंकलायामपि तत्र निर्भरात्किं कान्दिशीकत्वमवाप नाकुला ।। 40 ।।
उद्दामदानद्विपवृन्दबृंहितैर्नितान्तमुत्तुङ्गतुरङ्गहेषितैः ।
चलद्घनस्पन्दननेमिनिःस्वनैरभून्निरुच्छ्वासमिवाकुलं जगत् ।। 41 ।।
महागजानां गुरुभिस्तु गर्जितैर्विलोलघण्टारणितै रणोल्वणैः ।
वीरप्रणादैः प्रमदप्रमेदुरैर्वाचालतामादधिरेतरां दिशः ।। 42 ।।
दन्तीन्द्रदानद्रववारिवीचिभिः सद्योऽपि नद्यो बहुधा पुपूरिरे ।
धाराजोभिस्तुरगैः क्षतैर्भृतायाः पङ्कतामेत्य रथैः स्थलीकृतः ।। 43 ।।
निम्नाः प्रदेशाः स्थलतामुपागमन्निम्नत्वमुच्चैरपि सर्वतश्च ते ।
तुरंगमाणां व्रजतां खुरैः क्षता रथैर्गजेन्द्रैः परितः समीकृताः ।। 44 ।।
नभोदिगन्तप्रतिघोषभीषणैर्महामहीभृत्तटदारणोल्वणैः ।
पयोधिनिर्धूननकेलिभिर्जगद्बभूव भेरीध्वनितैः समाकुलम् ।। 45 ।।
इतस्ततो वातविधूतचञ्चलैर्नीरन्ध्रिताशागमनैर्ध्वजांशुकैः ।
लक्षैः क्वणत्काञ्चनकिङ्किणीकुलैरमज्जि धूली-जलधौ नभोगते ।। 46 ।।

सेना में ऐसे बहुत से बाजे निरंतर बज रहे थे जिनकी घोर ध्वनि सुनकर मतवाले हाथियों का मद भी सूख जाता था और जिनकी ध्वनि विमानों की छतरियों में टकराकर और भी दूनी गूँज उठती थी। उन्हें सुन-सुनकर ऐसा लगता था मानों आकाश ही घनघोर गर्जन कर रहा हो।।39।। देवताओं की यह महासेना पहले तो धरती में भर गई, पर वहाँ न समा सकने के कारण आकाश में जा पहुँचे और जब वहाँ भी न समा सकी तो मानो वह यह समझकर घबरा उठी कि अब यहाँ से कहाँ चला जाय।।40।। ऊँचे-ऊँचे हाथियों की चिग्घाड़ों से, अत्यन्त ऊँचे घोड़ों की हिनहिनाहटों से और चलने वाले रथों की घड़-घड़ाहट से सब ऐसे घबरा उठे मानो सबकी साँस घुटी जा रही हो।।41।। बड़े-बड़े हाथियों की घोर चिग्घाड़, उनके हिलते हुए युद्ध के घंटों की टन-टन और मतवाले वीरों की ललकार चारों और फैली हुई ऐसी लगती थी मानो दशों दिशाएँ कोलाहल मचा रही हों।।42।। बड़े-बड़े हाथियों का इतना मद बहा कि सूखी हुई नदियों में तुरन्त बाढ़ आ गई। फिर घोड़ों के सुमों से उठी हुई धूल भर जाने से उन नदियों में कीचड़ ही कीचड़ हो गई और रथों के पहियों से दबकर वहीं फिर ज्यों की त्यों धरती निकल आई।।43।। चलते हुए घोड़ों के खुरों से रौंदी जाने पर और रथों तथा हाथियों के चलने से दब जाने पर नीचे स्थान ऊँचे हो गए और ऊँचे स्थान नीचे हो गए।।44।। बड़े-बड़े पहाड़ों को फोड़ देने वाली और समुद्र में हलचल मचा देने वाली वह नगाड़े की ध्वनि निकलकर आकाश और दिशाओं में गूँजी तो उनकी और भी भयानक ध्वनि सुनकर सारा संसार घबरा उठा।।45।। उस सेना की टन-टनाते हुए घुँघरुओं वाली लाखों झंडियाँ जो सारे आकाश में भरकर सब मार्ग रोके हुए वायु के झोंकों में फरफरा रहीं थी। वे भी उस सेना के चलने से उड़ी हुई धूल के समुद्र में डूब गई।।46।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घण्टारवै रौद्रतरैर्निरन्तरं विसृत्वरैर्गर्जरवैः सुभैरवैः।
मत्तद्विपानां प्रथयांबभूविरे न वाहिनीनां पटहस्य निःस्वनाः।।47।।
करालवाचालमुखाश्चमूस्वनैर्ध्वस्ताम्बरा वीक्ष्य दिशो रजस्वलाः।
तिरोबभूवे गहनैर्दिनेश्वरो रजोन्धकारैः परितः कुतोप्यसौ।।48।।
आक्रान्तपूर्वा रभसेन सैनिकैर्दिगङ्गना व्योमरजोभिदूषिता।
भेरीरवाणां प्रतिशब्दितैर्घनैर्जगर्ज गाढं घनमत्सरादिव।।49।।
गुरुसमीरसमीरित भूधरा इव गजा गगनं विजगाहिरे।
गुरुतरा इव वारिधरां रथा भुवमितीह विवर्त्त इवाभवत्।।50।।

बलमदसुरलोकानल्पकल्पान्तकाले
निरवधय इवाम्भोराशयो घोरघाषाः।
गुरुतरपरिमज्जद्भूभृतो देवसेना
ववृधुरपि सुपूर्णा व्योमभूम्यन्तराले।।51।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
देवसेनाप्रयाणां नाम चतुर्दशः सर्गः।।

मतवाले हाथियों की गूँजती हुई चिग्घाड़ और पल-पल में भयंकर होकर बढ़ती हुई घण्टे की ध्वनि के आगे सेना कें नगाड़ों का शब्द सुनाई ही नहीं पड़ रहा था।।47।। जैसे किसी हल्ला मचाने वाली नंगी रजस्वला को देखकर सज्जन लोग आड़ कर लेते हैं, वैसे ही सेना के शब्दों से घोर कोलाहल करती हुई और आकाश-रूपी वस्त्र फाड़कर रज से भरी हुई दिशा-रूपी नायिका को देखकर फैले हुए धूल के घने अँधेरे की ओट करके सूर्य ने अपने को छिपा लिया।।48।। वहाँ जो नगाड़े बज रहे थे उनकी ध्वनि ऐसी लग रही थी मानो आकाश-रूपी नायक धूल से भरी हुई अपनी दिशारूपी रजस्वला नायिका पर सैनिकों का इनता बड़ा धावा देखकर घोर ईर्ष्या से गरज उठा हो।।49।। बड़े-बड़े हाथी आकाश में इस प्रकार इधर-उधर घूम रहे थे, जैसे किसी बड़ी भारी आँधी से पहाड़ की चट्टानें ऊपर उड़ रही हों। भूमि पर रथ इस प्रकार चल रहे थे मानो बड़े-बड़े बादल चल रहे हों। इस युद्ध में ऐसा जान पड़ता था मानो पृथ्वी के पहाड़ तो आकाश में उड़ने लगे हों और आकाश में चलने वाले बादल पृथ्वी पर चलने लगे हों।।50।। घोर कोलाहल मचाती हुई बड़े-बड़े राजाओं से भरी वह देवसेना भली प्रकार चारों ओर भरी होने पर भी और अधिक बढ़ने लगी। इसे देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो बलवान् असुरों के इस महाप्रलय के समय घोर रूप से गरजता हुआ महासागर उमड़ा चला जा रहा हो।।51।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में
'देवसेना का प्रस्थान' नाम का चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चदशः सर्गः ।।

सेनापतिं नन्दनमन्धकद्विषो युधे पुरस्कृत्य वलस्य शात्रवः।
सैन्यैरुपैतीति सुरद्विषां पुरोऽभूत्किंवदन्ती हृदयप्रकम्पिनी।।1।।
चमूप्रभुं मन्मथमर्दनात्मजं विजित्वरीभिर्विजयश्रियाश्रितम्।
श्रुत्वा सुराणां पृतनाभिरागतं चित्ते चिरं चुक्षुभिरे महासुराः।।2।।
समेत्य दैत्याधिपतेः पुरे स्थिताः किरीटबद्धाञ्जलयः प्रणम्य ते।
न्यवेदयन्मन्मथशत्रुसूनुना युयुत्सुना जम्भजितं सहागतम्।।3।।
दासीकृताशेषजगत्त्रयंन मां जिगाय युद्धे कतिशः शचीपतिः।
गिरीशपुत्रस्य बलेन साम्प्रतं ध्रुवं विजेतेति स काकुतोऽहसत्।।4।।
ततः क्रुधा विस्फुरिताधराधरः स तारको दर्पितदोर्बलोद्धतान्।
युधे त्रिलोककीजयकेलिलालसः सेनापतीन्तसन्नहनार्थमादिशत्।।5।।
महाचमूनामधिपाः समन्ततः सन्नह्य सद्यः सुतरामुदायुधाः।
तस्थुर्विनम्रक्षितिपालसंकुले तदङ्गनद्वारवरप्रकोष्ठके।।6।।
स द्वारपालेन पुरः प्रदर्शितान्कृतानतीन्बाहुवरानधिष्ठितान्।
महाहवाम्भोधिविधूननोद्धतान्ददर्श राजा पृतनाधियान्बहून्।।7।।

पन्द्रहवाँ सर्ग

उधर जब दैत्यों के नगर में यह कोलाहल मचा कि शंकर जी के पुत्र कार्त्तिकेय को सेनापति बनाकर और देवताओं की सेना साथ लेकर दैत्यों के शत्रु इन्द्र यहाँ युद्ध करने के लिये चले आ रहे हैं तो दैत्यों में बड़ी खलबली मच गई।।1।। जब उन्होंने यह जान लिया कि जयलक्ष्मी के साथ देवताओं की सेना लेकर कार्त्तिकेय सचमुच सेनापति बनकर आए हैं तो दैत्यों के नगर के रहने वाले बहुत देर तक ऐसे घबराए बैठे रहे मानो वे जड़ हो गये हों।।2।। दैत्यों के राजा तारक की नगरी में रहने वाले सब दैत्य मिलकर तारक के पास पहुँचे और उसके आगे सिर झुकाकर प्रणाम करके कहने लगे कि युद्ध करने को उतारू कुमार को साथ लेकर इन्द्र आ पहुँचे हैं।।3।। यह सुनकर तारक ने बड़े ताने के साथ हँसते हुए कहा पिछले कई युद्धों में तो मुझ त्रैलोक्य-विजयी को इन्द्र जीत नहीं सका, अब कुमार के भरोसे लड़ने चला है तो भला क्या जीतेगा।।4।। यह कहते ही तीनों लोकों को खेल ही खेल में जीतने की शक्ति रखने वाले तारक के ओठ काँपने लगे और उसने अपने उन अखाड़िये सेनापतियों को युद्ध के लिये सजने की आज्ञा दी, जिन्हें अपने बाहुबल पर बड़ा घमण्ड था।।5।। तब अस्त्र-शस्त्र बाँधकर बड़े-बड़े दैत्य सेनापति तुरंत तारक के उस भारी फाटक वाले आँगन में आकर खड़े हुए जहाँ बहुत से आज्ञाकारी राजा पहले से ही खड़े थे।।6।। द्वार पर पहुँचकर जो जो वीर आकर प्रणाम करते जाते थे उन बड़ी-बड़ी भुजाओं वाले वीरों को लेजा-लेजाकर द्वारपाल भी तारकसुर के सामने खड़ा करता जाता था। दैत्यराज ने देखा कि वे अनगिनत सेनापति, महायुद्ध का हलचल मचाने में एक से बढ़कर एक हैं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बली बलारातिबलातिशातनं दिग्दन्तिनानदद्रवनाशनस्वनम्।
महीधराम्भोधिमवारितक्रमं ययौ रथं घोरमथाधिरुह्य सः।।8।।
युगक्षयक्षुब्धपयोधिनिःस्वनाश्चलत्पताकाकुलवारितातपाः।
धराजोग्रस्तदिगन्तभास्कराः पतिं प्रयान्तं पृतनास्तमन्वयुः।।9।।
चमूरजः प्राप दिगन्तदन्तिनां महासुरस्याभिसुरं प्रसर्पिणः।
दन्तप्रकाण्डेषु सितेषु शुभ्रतां कुम्भेषु दानाम्बुघनेषु पङ्कताम्।।10।।
महीभृतां कन्दरदारणोल्वणैस्तद्वाहिनीनां पटहस्वनैर्घनैः।
उद्वेलिताश्चुक्षुभिरे महार्णवा नभःस्रवन्ती सहसाभ्यवर्धत।।11।।
सुरारिनाथस्य महाचमूस्वनैर्विगाह्यमाना तुमुलैः सुरापगा।
अभ्युच्छितैरूर्मिशतैज्ज वारिजैरक्षालयन्नाकनिकेतनावलीम्।।12।।
अथ प्रयाणाभिमुखस्य नाकिनां द्विषः पुरस्तादशुभोपदेशिनी।
अगाधदुःखाम्बुधिमध्यमज्जनं वभूव चोत्पातपरम्परा तव।।13।।
आगामिदैत्याशनकेलिकाङ्क्षिणी कुपक्षिणां घोरतरा परम्परा।
दधौ पदं व्योम्नि सुरारिवाहिनीरुपर्युपर्येत्यनिवारितातपा।।14।।

तब वह बलवान् दैत्य भी स्वयं उस भयंकर रथ पर चढ़कर चल पड़ा जो अकेला ही इन्द्र की सेना को तहस-नहस कर सकता था, जिसकी घरघराहट सुनकर दिग्गजों का चिग्घाड़ना और मद वहाना बन्द हो जाता था और जो पर्वत तथा समुद्रों में कहीं भी बेरोक-टोक चला जा सकता था।।8।। पृथ्वी से उड़ी हुई धुल से सब दिशाओं और आकाश को ढकती हुई दैत्यों की वह सेना भी अपने सेनापति तारकसुर के पीछे-पीछे चल पड़ी, जो प्रलयकाल के हडहडाते हुए समुद्र के समान घोर कोलाहल मचा रही थी और जिसमें इतनी पताकाएँ हिल रही थीं कि उनसे धूप तक रुक गई थी।।9।। जब देवताओं से लड़ने के लिये महादैत्य तारक की सेना चली तो उसके चलने से उड़ी हुई धूल दिग्गजों के उजले दाँतों पर पड़कर उजली हो उठती थी और जब उनके मद बहते हुए गालों पर पड़ती थी तब कीचड़ बन जाती थी।।10।। उनकी सेना के नगाड़ों की जो गम्भीर ध्वनि पहाड़ों की कन्दराओं को भी फोड़ सकती थी उसे सुनकर समुद्र भी हिलोरें लेकर अपने तट से ऊपर उठ आया और आकाशगंगा में भी अचानक बाढ़ आ गई।।11।। दैत्यराज की बड़ी भारी सेना भयंकर कोलाहल जो आकाशगंगा में गूँजा तो उसमें उछली हुई सुन्दर कमलों से भरी सैकड़ों लहरों ने वहाँ के भवन धो डाले।।12।। जब वह दैत्यराज लड़ने के लिये चला तो उसके आगे ऐसे बुरे-बुरे अपशकुन होने लगे जिनसे यह जान पड़ता था कि वह दैत्य किसी भारी विपत्ति के समुद्र में डूबने वाला है।।13।। उसी समय दैत्यों का माँस पाने की टाह में बहुत से गिद्ध, कौवे आदि भयंकर जीव-जन्तु पाँते बाँध-बाँधकर दैत्यों की सेना के ऊपर ठीक इस प्रकार मँडराने लगे कि उनकी छाया भी नीचे नहीं पड़ती थी।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहुर्विभग्नातपवारणध्वजश्चलद्धराधूलिकलाकुलेक्षणः ।
धृताश्वमातङ्गमहारथाकरानवेक्षणोऽभूत्प्रसभं प्रभञ्जनः ।। 15 ।।
सद्यो विभिन्नाञ्जनपुञ्जतेजसो मुखैर्विषाग्निं विकिरन्त उच्चकैः ।
पुरः पथोऽतीत्य महाभुजङ्गमा भयङ्कराकारभृतो भृशं ययुः ।। 16 ।।
मिलन्महाभीमभुजङ्गभीषणं प्रभुर्दिनानां परिवेषमादधौ ।
महासुरस्य द्विषतोऽतिमत्सरादिवान्तमासूचयितुं भयङ्करः ।। 17 ।।
त्विषामधीशस्य पुरोऽधिमण्डलं शिवाः समेताः परुषं ववाशिरे ।
सुराररिराजस्य रणान्तशोणितं प्रसह्य पातुं द्रुतमुत्सुका इव ।। 18 ।।
दिवापि तारस्तरलास्तरस्विनीः परापतन्तीः परितोऽथ वाहिनीः ।
विलोक्य लोको मनसा व्यचिन्तयत्प्राणव्ययान्तं व्यसनं सुरद्विषः ।। 19 ।।
ज्वलद्भिरुच्चैरभितः प्रभाभरैरुद्भासिताशेषदिगन्तराम्बरम् ।
रवेण रौद्रेण हृदन्तदारणं पपात वज्रं नभसो निरम्बुदात् ।। 20 ।।
ज्वलद्भिरङ्गाचयैर्नभस्तलं ववर्ष गाढं सह शोणितास्थिभिः ।
धूमं ज्वलन्तो व्यसृजन्मुखै रजो दधुर्दिशो रासभकण्ठधूसरम् ।। 21 ।।
निर्घातघोषो गिरिशृङ्गशातनो घनोऽम्बराशाकुहरोदरम्भरिः ।
बभूव भूम्ना श्रुतिभित्तिभेदनः प्रकोपिकालार्जितगर्जितर्जनः ।। 22 ।।

आकाश में बार-बार ऐसी आँधियाँ उठने लगीं कि छत्र-चँमर, पताकाएँ, सब टूट व फूट गईं, धूल उड़-उड़कर सबकी आँखों में भर गई और घोड़े, हाथी, रथ सबको उन आँधियों ने झकझोर डाला।।15।। तुरन्त पारे हुए काजल से टूटकर गिरे हुए टुकड़े के समान काले और विष-भरी आग की ऊँची-ऊँची लपटें उगलने-वाले बड़े भयंकर डील-डौल वाले साँप, सेना का मार्ग काट-काटकर सामने से निकलने लगे।।16।। और वैर के कारण ही मानो सूर्य ने भयंकर साँपों की कुण्डली के समान बड़ा-सा मंडल चारों और डाल लिया था, जो यह बता रहा था कि देवताओं के शत्रु तारक असुर के दिन पूरे हो चले हैं।।17।। युद्ध में तारक असुर का लहू पीने की उतावली में शृंगालियाँ सूर्य मण्डल के चारों ओर आ-आकर बड़े डरावने स्वर में रोने लगीं।।18।। दिन में निकले हुए तारे उस सेना के चारों ओर बड़े वेग से टूट-टूटकर गिरने लगे और लोगों को विश्वास हो गया कि ये सब उपद्रव तारक के नाश के लिये ही हो रहे हैं।।19।। अपनी घोर और भयंकर तड़प से हृदय फाड़ देने वाली और अपनी जलती हुई चमक से सारी दिशाओं और आकाश को चमका देने वाली बिजली भी बिना बादल के ही आकाश से टूट-टूटकर गिर रही थी।।20।। आकाश में धधकते हुए अंगारों की लहूसी और हड्डियों की घनघोर वर्षा हो रही थी और दसों दिशाएँ गधे के गले के रंग-जैसा भूरा-भूरा धुआँ उगल रही थी।।21।। चारों ओर आकाश में और दसों दिशाओं में ऐसा भयंकर कोलाहल हो रहा था जो क्रोध में भरे हुए काल की गरज के समान कानों के पर्दे विदीर्ण कर रहा था और जिसकी गूँज से पहाड़ की चोटियाँ फटी जा रही थी।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्खलन्महेभं प्रपतत्तुरङ्गमं परस्पराश्लिष्टजनं समन्ततः।
प्रक्षुभ्यदम्भोधिविभिन्नभूधराद्दलं द्विषोऽभूदवनिप्रकम्पात्।।23।।
ऊर्ध्वीकृतास्या रविदत्तदृष्टयः समेत्य सर्वे सुरविद्विषः पुरः।
श्वानः स्वरेण श्रवणान्तशातिना मिथो रुदन्तः करुणेन निर्ययुः।।24।।
अपीति पश्यन्परिणामदारुणां महत्तमां गाढमरिष्टसन्ततिम्।
दुर्दैवदष्टो न खलु न्यवर्तत क्रुधा प्रयाणव्यवसायतोऽसुरः।।25।।
अरिष्टमाशङ्क्य विपाकदारुणं निवार्यमाणोऽपि बुधैर्महासुरः।
पुरः प्रतस्थे महतां वृथा भवेदसद्ग्रहान्धस्य हितोपदेशनम्।।26।।
क्षितौ निरस्तं प्रतिकूलवायुना तदीयचामीकरघर्मवारणम्।
रराज मृत्योरिव पारणाविधौ प्रकल्पितं हाटकभाजनं महत्।।27।।
विजानता भाविशिरोनिकृन्तनं प्रज्ञेन शोकादिव तस्य मौलिना।
मुहुर्गलद्भिस्तरलैरलन्तरामरोदि मुक्ताफलबाष्पबिन्दुभिः।।28।।
निवार्यमाणैरभितोऽनुयायिभिर्ग्रहीतुकामैरिव तं मुहुर्मुहुः।
अपाति गृध्रैरभिमौलिमाकुलैर्भविष्यदेतन्मरणोपदेशिभिः।।29।।
सद्यो निकृत्ताञ्जनसोदरद्युतिं फणामणिप्रज्वलदंशुमंडलम्।
निर्यद्विषोल्कानलगर्भफूत्कृतं ध्वजे जनस्तस्य महाहिमैक्षत।।30।।

इतने में ही ऐसा भूकम्प आया कि समुद्र हिलोरें लेने लगा, पहाड़ों में दरारें पड़ गईं, तारक के सैनिक एक दूसरे को पकड़कर लिपट गए, बड़े-बड़े हाथी लड़खड़ाने लगे और घोड़े जहाँ तहाँ पटपट गिरने लगे।।23।। सूर्य की ओर देखते हुए मुँह उठाकर एक साथ बहुत से कुत्ते रोते हुए और बुरे ढंग से भौंकते हुए तारक के सामने निकल आए।।24।। इस प्रकार के बुरे-बुरे डरावने अपसगुन देखकर भी दुर्भाग्य के मारे उस दैत्य ने क्रोध से लड़ाई में जाने से मुँह नहीं मोड़ा।।25।। ऐसे बड़े, डरावने और बुरे अपसगुन देखकर विद्वानों ने उस महादैत्य को बहुत रोकना चाहा पर वह आगे बढ़ता ही गया। जो लोग हठ से अन्धे हो जाते हैं, उन्हें बड़े-बूढ़ों का उपदेश भी अच्छा नहीं लगता।।26।। इतने में ही उल्टे बहते हुए वायु का ऐसा झोंका आया कि सुनहरा राजछत्र भी भूमि से औंधा जा गिरा और ऐसा लगा मानो उसकी मृत्यु ने अपना व्रत तोड़ने के समय भोजन करने के लिये सोने का थाल सामने लाकर रखा हो।।27।। तारक के किरीट के टूट-टूटकर गिरते हुए मोती ऐसे लग रहे थे मानो तारक का सिर कटने की बात पहले से जानने वाला वह समझदार मुकुट अपने मोती के आँसू बार-बार बरसाकर रो रहा हो।।28।। उसके सिर पर मँडराते हुए गिद्धों को उसके सेवक बार-बार भगा रहे थे फिर भी वे गिद्ध व्याकुलता के साथ सिर पर ही गिर-गिरकर मानो यह बता रहे थे कि अब तुम्हारे दिन पूरे हो चले हैं।।29।। इतने में लोगों ने देखा कि उसके झंडे पर तुरन्त पारे हुए काजलों के समान काला, अपने फण की मणि की किरणों के प्रकाश से चमकते हुए फनों वाला और भयानक विष-भरी आग की फुँकार छोड़ने वाला एक बड़ा भारी साँप जा लिपटा है।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथाश्वकेशावलिकर्णचामरं ददाह बाणासनबाणबाणधीन्।
अकाण्डतश्चण्डतरो हुताशनस्तस्यातनुस्यन्दनधुर्यगोचरः।। 31।।

इत्याद्यरिष्टैरशुभोपदेशिभिर्विहन्यमानोऽप्युसुरः पुनः पुनः।
यदा मदान्धो न गतान्न्यवर्तताम्बरात्तदाभून्मरुतां सरस्वती।। 32।।

मदान्ध मा गा भुजदण्डचण्डिमावलेपतो मन्मथहन्तृसूनुना।
सुरैः सनाथेन पुरन्दरादिभिः समं समन्तात्समरं विजित्वरैः।। 33।।

गुहोऽसुरैः षड्दिन जातमात्रको निदाघधामेव निशातमोभरैः।
विषह्यते नाभिमुखो हि संगरे कुतस्त्वया तस्य समं विरोधिता।। 34।।

अभ्रंलिहैः शृङ्गशतैः समन्तो दिक्चक्रवालैः स्थगितस्यभूभृतः।
क्रौञ्चस्य रन्ध्रं विशिखेन निर्ममे येनाहवस्तस्य सह त्वया कुतः।। 35।।

लब्ध्वा धनुर्वेदमनङ्गविद्विषस्त्रिसप्तकृत्वः समरे महीभुजाम्।
कृत्वाभिषेकं रुधिराम्बुभिर्घनैः स्वक्रोधवह्निं शमयांबभूव यः।। 36।।

न जामदग्न्यः क्षयकालरात्रिकृत्स क्षत्रियाणां समराय वल्गति।
येन त्रिलोकीसुभटेन तेन कुतोऽवकाशः सह विग्रहग्रहे।। 37।।

त्यजाशु गर्वं मदमूढ मा स्म गाः स्मरारिसूनोर्वरशक्तिगोचरम्।
तमेव नूनं शरणं व्रजाधुना जगत्सुवीरं स चिराय जीव तत्।। 38।।

इतने में अचनाक उसके रथ के धुरे से आग की ऐसी भारी लपट उठी कि रथ के घोड़ों के बाल, कान और चौरियाँ झुलस गईं और तारक के धुनष, बाण और तूणीर भी जल उठे।। 31।। बार-बार ऐसे बुरे-बुरे अपसगुन होने पर भी जब वह घमंड में चूर दैत्य न लौटा, तब आकाश से यह देववाणी सुनाई दी।।32।।–'हे घमंड में चूर दैत्य तू अपने भुजदंडों पर घमंड करके उन कार्त्तिकेय जी से युद्ध करने न जा, जिनके साथ इन्द्र और विजयी देवता चले आ रहे हैं।। 33।। हे मतवाले दैत्य छह दिन के बालक कुमार के आगे युद्ध में दैत्यों की वही दुर्दशा होगी, जो सूर्य के आगे रात के अँधेरे की होती है। भला तू उनसे क्या लड़ पायेगा।। 34।। हे तारक! जिस क्रौंच पर्वत की सैकड़ों चोटियाँ आकाश चूमती हैं और जो दसों दिशाओं में फैला हुआ है उसे भी जिसने बाणों से बेध डाला है, उनके साथ तू क्या लड़ पायेगा।। 35।। जिन परशुराम जी ने शंकर जी से धनुर्विद्या सीखकर इक्कीस बार युद्ध में राजाओं के गाढ़े रक्त में स्नान करके अपना क्रोध ठण्डा किया है, ऐसे क्षत्रियों के नाश की कालरात्रि बुलाने वाले परशुराम भी जिनसे लड़ने में घबराते हैं, उन त्रिभुवन प्रसिद्ध महायोद्धा से लड़ने का तुझ में दम कहाँ है।।36-37।। अरे घमंड से अन्धे दैत्य तू अपना घमंड छोड़कर कुछ ऐसा उपाय कर कि जिससे तू कुमार की शक्ति के आगे न आ सके। इस समय उन्हीं की शरण में जाने से ही तेरे प्राण बचे रहेंगे।। 38।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुत्वेति वाचं वियतो गरीयसीं क्रोधादहंकारपरो महासुरः।
प्रकम्पिताशेषजगत्त्रयोऽपि सन्नकम्पतोच्चैर्दिवमभ्यधाच्च सः।। 39।।
किं ब्रूथ रे व्योमचरा महासुराः स्मरारिसूनुप्रतिपक्षवर्त्तिनः।
मदीयबाणव्रणवेदना हि साऽधुना कथं विस्मृतिगोचरीकृता।। 40।।
कटुस्वरैः प्रालपथाम्बरस्थिताः शिशोर्वलात्षड्दिनजातकस्य किम्।
श्वानः प्रमत्ता इव कार्त्तिके निशि स्वैरं वनान्ते मृगधूर्त्तका इव।। 41।।
सङ्गेन वो गर्भतपस्विनः शिशुर्वराक एषोऽन्तमवाप्स्यति ध्रुवम्।
अतस्करस्तस्करसङ्गतो यथा तद्वो निहन्मि प्रथमं ततोऽप्यमुम्।। 42।।
इतीरयत्युग्रतरं महासुरे महाकृपाणं कलयत्यलं क्रुधा।
परस्परोत्पीडितजानवो भयान्नभश्चरा दूरतरं विदुद्रुवुः।। 43।।
ततोऽवलेपाद्विकटं विहस्य स व्यधत्त कोशादसिमुत्तमं बहिः।
रथं द्रुतं प्रापय वासवान्तिकं नन्वित्योचन्निजसारथिं रथी।। 44।।
मनोतिवेगेन रथेन सारथिप्रणोदितेन प्रचलन्महासुरः।
ततः प्रपेदे सुरसैन्यसागरं भयङ्कराकारमपारमग्रतः।। 45।।
पुरः सुराणां पृतनां प्रथीयसीं विलोक्य वीरः पुलकं प्रमोदजम्।
बभार भूम्नाथ स बाहुदण्डयोः प्रचण्डयोः सङ्गरकेलिकौतुकी।। 46।।

अपने क्रोध से तीनों लोकों को कँपाने वाला वह घमंडी दैत्य भी ऐसी आकाशवाणी सुनकर एक बार स्वयं काँप उठा, फिर संभल कर आकाश की ओर मुँह करके गरजकर बोला–।। 39।। अरे कार्त्तिकेय की बड़ाई करने वाले आकाश में घूमने वाले देवताओं! क्या आज तुम्हें मेरे बाणों के घावों की पीड़ा भूल गई जो इस प्रकार बक-बक किए जा रहे हो।। 40।। अरे देवताओं! कार्त्तिक के महीने में जैसे पागल कुत्ते भौंका करते हैं और रात को वन में सियार, लोमड़ी आदि धूर्त पशु बोला करते हैं वैसे ही तुम लोग भी आकाश में चढ़कर उस छह दिन के बच्चे कुमार के बल की क्या झूठी शान बघार रहे हो।। 41।। अरे देवताओ! तुम लोगों के साथ पड़ने से यह बेचारा तपस्वी बालक कार्त्तिकेय भी तुम लोगों के साथ वैसे ही मारा जायेगा जैसे चोर का साथ देने वाला भी दंड भोगता है।। 42।। यह कहकर उस महासुर ने जो अपना भारी और बड़ा भयावना कृपाण उठाया तो आकाश में खड़े हुए सब देवताओं में भगदड़ मच गई।। 43।। तब बड़े घमंड से विकट हँसी हँसकर उसने म्यान से अपनी तलवार बाहर निकाली और अपने सारथी से कहा कि रथ बढ़ाकर झटपट इन्द्र के सामने पहुँचाओ।। 44।। मन से भी अधिक वेग से चलने वाले जिस रथ को सारथी बढ़ाए लिए जा रहा था उस पर बैठा हुआ वह महादैत्य देवताओं की उस सेना के आगे जा पहुँचा जो अथाह समुद्र के समान भयंकर दिखाई दे रही थी।। 45।। देवताओं की बड़ी भारी सेना सामने देखकर उस युद्ध के लिये उतावले वीर के भारी भुजदंडों के रोएँ खड़े हो गए और उसके हृदय में युद्ध का उत्साह उमड़ उठा।।46।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो महेन्द्रस्य चराश्चमूचरा रणान्तलीलारभसेन भूयसा।
पुरः प्रचेलुर्मनसोऽतिवेगिनो युयुत्सुभिः किं समरे विलम्ब्यते।। 47।।

पुरःस्थितं देवरिपोश्चमूचरा बलद्विषः सैन्यसमुद्रमभ्ययुः।
भुजं समुत्क्षिप्य परेभ्य आत्मनोऽभिधानमुच्चैरभितो न्यवेदयन्।। 48।।

पुरोगतं दैत्यचमूमहार्णवं दृष्ट्वा परं चुक्षुभिरे महासुराः।
पुरारिसूनोर्नयनैककोणके ममुर्भटास्तस्य रणोऽवहेलया।। 49।।

द्विषद्बलत्रासविभीषिताश्चमूर्दिवौकसामन्धकशत्रुनन्दनः।
अपश्यदुद्दिश्य महारणोत्सवं प्रसादपीयूषधरेण चक्षुषा।। 50।।

उत्साहिताः शक्तिधरस्य दर्शनान्मृधे महेन्द्रप्रमुखा मखाशनाः।
अहं मृधे जेतुमरीनरीरमन्न कस्य वीर्याय वरस्य संगतिः।। 51।।

परस्परं वज्रधरस्य सैनिका द्विषोऽपि योद्धुं स्वकरोद्धृतायुधाः।
वैतालिकश्रावितताविक्रमाभिधानमीयुर्विजयैषिणो रणे।। 52।।

तब इन्द्र के बड़े-बड़े रणबाँकुरे और युद्ध के लिये ललचाए हुए सैनिक, मन से भी अधिक वेग से दैत्यों की सेना पर टूट पड़े। सच है, जो लड़ाई के प्यासे होते हैं वे अवसर आने पर आगा-पीछा नहीं देखते हैं?।।47।। और फिर दैत्य-सेना के सैनिक भी आगे खड़ी हुई इन्द्र की सेना के समुद्र पर टूट पड़े और वे चारों ओर भुजाएँ उठा-उठाकर ललकार-ललकार कर अपना-अपना नाम शत्रुओं को सुनाने लगे।।48।। अपने आगे समुद्र के समान हिलोरें लेती हुई उस दैत्य सेना को देखकर बड़े-बड़े देवताओं के भी धैर्य छूट गए, पर उस सारी दैत्य-सेना क़ो एक कनखी से देखकर ही निडर कार्तिकेय ने समझ लिया कि इस सेना में कुछ नहीं है।।49।। दैत्यों की सेना के डर से घबराई हुई देवसेना की ओर अपने आनन्द के अमृत से धुले हुए नेत्रों से देखकर कुमार ने संकेत किया कि डरो मत, युद्ध किए जाओ। जब देवताओं ने रण में शक्तिशाली कार्तिकेय का दर्शन किया तो उनका उत्साह बढ़ गया और इन्द्र आदि सभी यह कहकर प्रसन्नता से उछलने कूदने लगे कि मैं शत्रुओं को युद्ध में जीत लूँगा। ठीक है, भले लोगों का संग करने से किसका बल नहीं बढ़ता।।50-51।। अपने-अपने शस्त्र उठा-उठाकर देवताओं और दैत्यों के सैनिक अपने-अपने चारणों के गाए हुए अपने नाम वाले पराक्रम के गीत सुनते हुए विजय की इच्छा से समर में आ जुटे।।52।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संङ्ग्रामं प्रलयाय संनिपततो वेलामतिक्रामतो
वृन्दारासुरसैन्यसागरयुगस्याशेषदिग्व्यापिनः।
कालातिथ्यभुजो बभूव वहलः कोलाहलः क्रोषणः
शैलोत्तालतटीविघट्टनपटुर्ब्रह्माण्डकुक्षिं भरिः।। 53।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
सुरासुरसैन्यसंघट्टो नाम पञ्चदशः सर्गः।।

जैसे प्रलय करने के लिये अपनी मर्यादा तोड़कर चारों ओर फैले हुए और सारे संसार को डुबोते-बहाते कालका भोजन बनाते हुए दो समुद्र एक दूसरे से टकराते हुए बढ़ चले हों वैसे ही ताड़ के वृक्षों वाले पहाड़ की तलहटी को फाड़ देने वाला यह देवताओं और दैत्यों की सेनाओं के समुद्रों का भारी कोलाहल, यम को न्यौता देता हुआ सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त गया।।53।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में 'देवता
और दैत्यों की लड़ाई' नाम का पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षोडशः सर्गः ।।

अथान्योन्यं विमुक्तास्त्रशस्त्रजालैर्भयंकरैः ।
युद्धमासीत्सुनासीरसुरारिवलयोर्महत् ।।1।।
पत्तिः पत्तिमभीयाय रणाय रथिनं रथी ।
तुरंगस्थं तुरंगस्थो दन्तिस्थं दन्तिनि स्थितः ।।2।।
युद्धाय धावतां धीरं वीराणामितरेतरम् ।
वैतालिकाः कुलाधीशा नामान्यलमुदाहरन् ।।3।।
पठतां बन्दिवृन्दानां प्रवीरा विक्रमावलीम् ।
क्षणं विलम्ब्य चित्तानि ददुर्युद्धोत्सुकाःपुरः ।।4।।
संग्रामानन्दवर्धिष्णौ विग्रहे पुलकाञ्चिते ।
आसीत्कवचविच्छेदो वीराणां मिलतां मिथः ।।5।।
निर्दयं खड्गभिन्नेभ्यः कवचेभ्यः समुत्थितैः ।
आसन्व्योमदिशस्तूलैः पलितैरिव पाण्डुराः ।।6।।
खड्गा रुधिरसंलिप्ताश्चण्डांशुकरभासुराः ।
इतस्ततोऽपि वीराणां विद्युतां वैभवं दधुः ।।7।।

सोलहवाँ सर्ग

इन्द्र और तारक की सेनाएँ एक दूसरे पर भयंकर अस्त्र-शस्त्र बरसाकर घोर युद्ध करने लगीं।।1।। पैदल से पैदल जा भिड़े, रथ वालों से रथ वाले जा उलझे, घुड़सवारों से घुड़सवार जा जूझे और हाथीसवार हाथीसवारों से भिड़ गए।।2।। जो सैनिक निडर होकर बैरियों पर चोट कर रहे थे, उन्हें लड़ने को उभाड़ने के लिये दोनों ओर के चारण लोग उन वीरों को, कुल के उजागर बता-बताकर उनकी बड़ाई करते जा रहे थे।।3।। पर वे वीर युद्ध में ऐसे जी-जान से लड़ते थे कि उन्हें इतना अवकाश ही कहाँ था कि चारणों के मुँह अपने पराक्रम के गीत सुन सकें। इसलिये जब वे बीच बीच में कभी क्षणभर रुक जाते थे तो चारणों के गीत भी सुन लेते थे।।4।। उन्हें लड़ाई में ऐसा आनन्द आ रहा था कि उनके रोएँ उत्साह से फरफरा उठे थे और जब उनकी आपस में भिड़न्त हो जाती थी तो उनके कवचों के टाँके तक खुल जाते थे।।5।। वहाँ सैनिक लोग इतने कस-कसकर तलवार चला रहे थे कि कवचों के टूटने से उनके नीचे बँधी हुई रुई आकाश और दिशाओं में उड़-उड़कर ऐसी फैल गई कि सब दिशाएँ बूढ़े के बालों जैसी धौली हो गई।।6।। जहाँ-तहाँ सूर्य की किरणें पड़ने से लहु से रँगी तलवारें बिजली के समान चमक उठती थीं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विसृजन्तो मुखैर्ज्वाला भीमा इव भुजंगमाः।
विसृष्टाः सुभटै रुष्टैर्व्योम व्यानशिरे शराः।।8।।

बाढं वपूंषि निर्भिद्य धन्विनां निघ्नतां मिथः।
अशोणितमुखा भूमिं प्राविशन्दूरमाशुगाः।।9।।

निर्भिद्य दन्तिनः पूर्वं पातयामासुराशुगाः।
पेतुः प्रवरयोधानां प्रीतानामाहवोत्सवे।।10।।

ज्वलदग्निमुखैर्बाणैर्नीरन्ध्रैरितेरतम्।
उच्चैर्वैमानिका व्योम्नि कीर्णे दूरमपासरन्।।11।।

विभिन्नं धन्विनां बाणैर्व्यथार्तमिव विह्वलम्।
ररास विरसं व्योम श्येनप्रतिरवच्छलात्।।12।।

चापैराकर्णमाकृष्टैर्विमुक्ता दूरमाशुगाः।
अधावन्रुधिरास्वादलुब्धा इव रणैषिणाम्।।13।।

गृहीताः पाणिभिर्वीरैर्विकोशाः खड्गराजयः।
कान्तिजालच्छलादाजौ व्यहसन्संमदादिव।।14।।

खड्गाः शोणितसंदिग्धा नृत्यन्तो वीरपाणिषु।
रजोघने रणेऽनन्ते विद्युतां वैभवं दधुः।।15।।

क्रोध में वीरों ने जो आग उगलते हुए भयंकर साँपों के समान विषैले बाण छोड़े उनसे सारा आकाश छा गया।।8।। वे एक दूसरे पर दूर से जो बाण चला रहे थे, वे दूसरी ओर के धनुषधारियों के शरीर को ऐसी फुर्ती से बेधते हुए पार निकलकर पृथ्वी में जा धँसते थे कि उनमें लहू तक नहीं लग पाता था।।9।। उस युद्ध के उत्सवों में जो बड़े-बड़े योद्धा जी खोलकर लड़ रहे थे वे हथियारों पर ऐसे करारे बाण चला रहे थे कि हाथियों का सिर तो पहले कटकर गिर जाता था, बाण पीछे गिरता था,।।10।। जब आकाश में जलती हुई लपटों वाले बाणों की घनी पातें भर गईं तो विमानों पर चढ़े हुए देवता वहाँ से दूर हट गए कि कहीं हम इनकी लपेट में न आ जायँ।।11।। धनुषधारी सैनिकों ने इतने बाण छोड़े कि आकाश की छाती छलनी हो गई और वह भी पीड़ा से व्याकुल होकर बाज पक्षी के डरावने शब्दों में रोने लगा।।12।। लड़ाकू योद्धाओं ने अपने कानों तक खींच-खींचकर जो बाण छोड़े वे मानो रुधिर पीने के लोभ से ही उतनी दूर तक दौड़े चले जा रहे हों।।13।। संग्राम में वीरों के हाथों की नंगी तलवारें मतवाली होकर मानो अपनी धार की चमक में ही हँस रही हों।।14।। वीरों के हाथों में नाचने वाली लहू से लथपथ तलवारें, धूल से पटे हुए उस दूर तक फैले हुए युद्धक्षेत्र में बिजली के समान चमक उठती थीं।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुन्ताश्चकाशिरे चण्डमुल्लसन्तो रणार्थिनाम्।
जिह्वाभोगा यमस्येव लेलिहाना रणाङ्गणे।।16।।

प्रज्वलत्कान्तिचक्राणि चक्राणि वरचक्रिणाम्।
चण्डांशुमण्डलश्रीणि रणव्योमनि बभ्रमुः।।17।।

केचिद्वीरैः प्रणादैश्च वीराणामभ्युपेयुषाम्।
निपेतुः क्षोभतो वाहादपरे मुमुहुर्मदात्।।18।।

कश्चिदभ्यागते वीरे जिघांसौ मुदमादधौ।
परावृत्य गते क्षुब्धे विषसादाहवप्रियः।।19।।

बहुभिः सह युद्ध्वा वा परिभ्रम्य रणोल्वणः।
उद्दिश्य तानुपेयुः केऽपि ये पूर्ववृता रणे।।20।।

अभितोऽभ्यागतान्योद्धुं वीरान्रणमदोद्धतान्।
प्रत्यनन्दन्भुजादण्डरोमोद्गमभृतो भटाः।।21।।

शस्त्रभिन्नेभकुम्भेभ्यो मौक्तिकानि च्युतान्यधः।
अध्याहवक्षेत्रमुप्तकीर्तिबीजाङ्कुरश्रियम्।।22।।

वीराणां विषमैर्घोषैर्विद्रुता वारणा रणे।
शास्यमाना अपि त्रासाद्भेजुधूतांकुशादिशः।।23।।

युद्ध में लड़ने वालों के चमकते हुए भयंकर भाले यमराज की लपलपाती जीभ जैसे दिखाई दे रहे थे।।16।। चकाचौंध करने वाली चमक से घिरे हुए और प्रचंड सूर्य-मण्डल के समान चमक वाले चक्रधारी वीरों के चक्र, उस युद्ध-रूपी आकाश में चारों ओर चक्कर लगा रहे थे।।17।। जब कोई वीर सामने आकर गरजकर ललकार उठता था तो बहुत से योद्धा उस ललकार को सुनकर ही घोड़ों से नीचे गिर पड़ते थे और बहुत से दहशत के मारे ही मूर्छित होकर गिर पड़ते थे।।18।। कोई-कोई वीर ऐसे थे कि जब कोई उन्हें मारने के लिये सामने आता तो वे प्रसन्न हो उठते थे कि चलो इसी से दो-दो हाथ जो जायें, पर जब वह घबराकर लौट जाता था, तब उन्हें इस बात का बड़ा दुःख होता कि हाय, लड़ न पाए।।19।। कुछ ऐसे भी रण-बाँकुरे थे जो बहुतों के साथ लड़-भिड़कर और इधर-उधर घूम-घामकर उन वीरों के पास पहुँच जाते थे, जिनसे लड़ने के लिये उन्होंने पहले ही सोच रखा था।।20।। जब सच्चे योद्धाओं ने देखा कि युद्ध के लिये मतवाले और लड़ने के लिये फरफराती बाहों वाले वीर चारों ओर आ गए हैं तो वे बड़े प्रसन्न हुए कि अब जी-भरकर लड़ा जायेगा।।21।। शस्त्रों से कटे हुए हाथियों के मस्तकों से झड़े हुए मोती वहाँ बिखरे हुए ऐसे शोभा दे रहे थे, जैसे रण के खेत में बोए हुए यश के अंकुर फूट निकले हों।।22।। रण में वीरों की भयानक ललकारों से भागे हुए हाथी, हाथीवानों के अंकुश खाकर इधर-उधर भाग निकलते थे।।23।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रणे बाणगणैर्भिन्ना भ्रमन्तो भिन्नयोधिनः।
निममज्जुर्मिलद्रक्तनिम्नगासु महागजाः।। 24।।
अपरेऽसृक्सरित्पूरे रथेषूच्चैस्तरेष्वपि।
रथिनोऽभिरिपुं क्रुद्धा हुंकृतैर्व्यसृजञ्शरान्।। 25।।
खड्गनिर्लूनमूर्द्धानो व्यापतन्तोऽपि वाजिनः।
प्रथमं पातयामासुरसिना दारितानरीन्।। 26।।
वीराणां शस्त्रभिन्नानि शिरांसि निपतन्त्यपि।
अधावन्दन्तदष्टोष्ठभीमान्यभिरिपुं क्रुधा।। 27।।
शिरांसि वरयोधानामर्द्धचन्द्रहृतान्यलम्।
आददाना भृशं पादैः श्येना व्यानशिरे नभः।। 28।।
क्रोधादभ्यापतद्दन्तिदन्तारूढाः पदातयः।
अश्वारोहा गजारोहप्राणान्प्रासैरपाहरन्।। 29।।
शस्त्रछिन्नगजारोहा विभ्रमन्त इतस्ततः।
युगान्तवातचलिताः शैला इव गजा बभुः।। 30।।
मिलितेषु मिथो योद्धुं दन्तिषु प्रसभं भटाः।
अगृह्णन्युध्यमानाश्च शस्त्रैः प्राणान्परस्परम्।। 31।।
रुषा मिथो मिलद्दन्तिदन्तसंघर्षजोऽनलः।
योधाञ्शस्त्रहृतप्राणनदहत्सहसारिभिः।। 32।।

जिन हाथियों के हाथीवान् युद्ध में शत्रुओं के बाणों से मार डाले गए थे, वे हाथी मनमाने घूमते हुए लहू की नदी में लाल हो उठे।।24।। बड़े ऊँचे रथों पर चढ़े हुए सैनिक, लहू की नदी की अपार धारा में डूबते रहने पर भी क्रुद्ध होकर ललकारते हुए शत्रु के ऊपर बाण छोड़ रहे थे।।25।। बहुत से ऐसे भी वीर थे कि शत्रु की तलवार से सिर कट जाने पर जब वे अपने घोड़ों से नीचे गिरते थे तो गिरते-गिरते भी अपनी तलवार से शत्रु का सिर काट लिया करते थे।।26।। शस्त्रों से कटकर गिरे हुए वीरों के सिर क्रोध से दाँत पीसते हुए शत्रु की ओर दौड़ रहे थे।।27।। अधचन्दे बाणों ने जो सिर काट दिए थे और जिन्हें बाज अपने पंजों में उड़ा ले गए उन बड़े-बड़े वीरों के सिरों से सारा आकाश भर उठा।।28।। पैदल और घुड़सवार सैनिकों ने क्रोध से पागल होकर सामने पड़ने वाले हाथियों के दाँतों पर चढ़-चढ़कर हाथी सवार सैनिकों को भाले से छेद डाला।।29।। हाथी सवारों के मार डाले जाने पर उनके मनमाने घूमने वाले हाथी ऐसे लग रहे थे जैसे प्रलय की आँधी से पहाड़ इधर-उधर उड़ रह हों।।30।। जब दो हाथी लड़ने के लिये भिड़ते थे, तो उन पर बैठे हुए योद्धा आपस में लड़कर बलपूर्वक एक दूसरे को मार डालते थे।।31।। क्रोध से परस्पर टक्करे लेने वाले हाथियों के दाँतों की चोट से ऐसी आग उठती थी कि शत्रु के शस्त्रों से मारे हुए सैनिक अचानक जल उठते थे।।32।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्षिप्ता अपि दन्तीन्द्रैः कोपनैः पत्तयः परम्।
तदसूनहरन्खड्गघातैः स्वस्य पुरः प्रभो।।33।।
उत्क्षिप्य करिभिर्दूरान्मुक्तानां योधिनां दिवि।
प्रापि जीवात्मभिर्दिव्या गतिर्वा विग्रहैर्मही।।34।।
खड्गैर्धवलधारालैर्निहत्य करिणां करान्।
तैर्भुवापि समं विद्धान्संतोषं न भटा ययुः।।35।।
आक्षिप्याभिदिवं नीताः पत्तयः करिभिः करैः।
दिव्याङ्गनाभिरादातुं रक्ताभिर्द्रुतमीषिरे।।36।।
धन्विनस्तुरगारूढा गजारोहाञ्शरैः क्षतान्।
प्रत्यैच्छन्मूर्च्छितान्भूयो योद्धुमाक्ष्वसतश्चिरम्।।37।।
क्रुद्धस्य दन्तिनः पत्तिर्जिघृक्षोरसिना करम्।
निर्भिद्य दन्तमुसलावारुरोह जिघृक्षया।।38।।
खड्गेन मूलतो हत्वा दन्तिनो रदनद्वयम्।
प्रातिपक्ष्ये प्रविष्टोऽपि पदातिर्निरगाद्द्रुतम्।।39।।
करेण करिणा वीरः सुगृहीतोऽपि कोपिना।
असिनासूञ्जहाराशु तस्यैव स्वयमक्षतः।।40।।

पैदल सैनिक ऐसे लड़ रहे थे कि यदि उन्हें अत्यन्त क्रुद्ध हाथी अपनी सूँड़ में उठाकर उछाल भी देते थे तो वे अपने स्वामी के देखते-देखते उसकी सूँड़ अपने तलवार से काट डालते थे।।33।। जिन वीरों को हाथियों ने उठाकर ऊपर उछाल दिया था, उनके प्राण तो स्वर्ग में चले गए और उन्हें दिव्य गति मिल गई, केवल उनके शरीर पृथ्वी पर आ गिरे।।34।। यद्यपि योद्धा लोग उजली धार वाली अपनी तलवारों से हाथियों की सूँड़ ऐसे झटके से काट रहे थे कि उनके तलवार पृथ्वी में आ धँसते थे, फिर भी उनका जी नहीं भर रहा था।।35।। जिन वीरों ने हाथियों की सूँड़ों से उछाले जाने पर वीर गति पाई थी, उन स्वर्ग में पहुँचे हुए सैनिकों को झटपट प्रेम से अपना प्रेमी बनाने के लिये देवाङ्गनाएँ उतावली हो उठतीं थीं।।36।। जब कोई घुड़सवार धनुषधारी सैनिक अपने बाणों से किसी हाथी-सवार को बाण मारकर मूर्छित कर देता था, तब वह बहुत देर तक इस बाट में रह जाता था कि वह फिर उठे तो उससे युद्ध करें, क्योंकि जो मूर्छित हो जाता था उसे वे नहीं मारते थे।।37।। एक बिगड़ैल हाथी एक पैदल सैनिक को अपनी सूँड़ में लपेटना चाहता था, इतने में उसने क्या किया कि पहले तलवार का एक हाथ जमाकर उसकी सूँड़ काट डाली और फिर उसके दाँत उखाड़ने के लिये उसके लम्बे-लम्बे दाँतों पर चढ़कर बैठ गया।।38।। एक दूसरा पैदल सैनिक, शत्रु की सेना में घुसा और अपने तलवार से एक हाथी के दोनों दाँत जड़ तक काटकर झट अपनी सेना में लौट आया।।39।। क्रोध में भरे हुए हाथी की सूँड़ में कसकर लिपट जाने पर भी एक वीर अपनी तलवार से हाथी को मारकर जीता जागता निकल आया।।40।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरंगी तुरगारूढं प्रासेनाहत्य वक्षसि।
पततस्तस्य नाज्ञासीत्प्रासघातं स्वके हृदि।।41।।

द्विषा प्रासहतप्राणो वाजिपृष्ठदृढासनः।
हस्तोद्धृतमहाप्रासो भुवि जीवन्निवाभ्रमत्।।42।।

तुरंगसादिनं शस्त्रहतप्राणं मतं भुवि।
अबद्धोऽपि महावाजी न साश्रुनयनोऽत्यजत्।।43।।

भल्लेन शितधारेण भिन्नोऽपि रिपुणाश्वगः।
नामूर्च्छत्कोपतो हन्तुमियेष प्रपतन्नपि।।44।।

मिथः प्रासाहतौ वाजिच्युतौ भूमिगतौ रुषा।
शस्त्र्या युयुधतुः कौचित्केशाकेशि भुजाभुजि।।45।।

रथिनो रथिभिर्बाणैर्हतप्राणा दृढासनाः।
क्षतकार्मुकसंधानाः सप्राणा इव मेनिरे।।46।।

न रथी रथिनं भूयः प्राहरच्छस्त्रमूर्च्छितम्।
प्रत्याश्वसन्तमन्विच्छन्नातिष्ठद्युधि लोभतः।।47।।

अन्योन्यं रथिनौ कौचिद्धतप्राणौ दिवं गतौ।
एकामप्सरसं प्राप्य युयुधाते वरायुधौ।।48।।

एक घुड़सवार दूसरे की छाती में भाला मारकर ऐसा प्रसन्न हुआ कि जब उस घोड़े से गिरते हुए सैनिक ने उलटकर उस पर भाला चलाया तो उसे यह भी जान न पड़ा कि मुझे चोट लगी है।।41।। मारने के लिये हाथ में भारी भाला उठाकर घोड़े की पीठ पर जमकर बैठा हुआ एक सैनिक भाले से मारे जाने पर भी ऐसा लग रहा था मानो वह अभी जीता जागता ही हो।।42।। शस्त्र की चोट से जो घुड़सवार पृथ्वी पर मरा पड़ा था, उसका बड़ा सा घोड़ा डबडबाई हुई आँखों से अपने स्वामी को देखता हुआ वहीं खड़ा रहा, हटा नहीं।।43।। शत्रु के तीखे भाले का घाव खाकर एक घुड़सवार लड़खड़ाता हुआ भी क्रोध मारे मूर्छित नहीं होता था और चाहता था कि शत्रु मिले तो उसे अभी मार डालूँ।।44।। दो घुड़सवार आपस में एक दूसरे के भाले की चोट खाकर भूमि में गिरे हुए भी क्रोध के मारे एक दूसरे के बाल पकड़कर गुत्थमगुत्था होकर छुरी से लड़ रहे थे।।45।। एक रथवाले योद्धा को दूसरे रथवाले ने मार डाला था, फिर भी वह अपना टूटा हुआ धनुष भी खींचे हुए मरा हुआ रथ पर ऐसा जमकर बैठा हुआ था मानो अभी जीता-जागता हो।।46।। एक रथसवार सैनिक दूसरे रथी को शस्त्र से मूर्छित करके उस पर वार न करके यह बाट जोहने लगा कि यह सचेत हो तो इससे लड़ा जाये।।47।। दो रथ सवार और श्रेष्ठ शस्त्रधारी योद्धा एक दूसरे को मारकर जब स्वर्ग में पहुँचे तब वे दोनों वहाँ एक अप्सरा के लिये आपस में लड़ाई करने लगे।।48।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथोऽर्द्धचन्द्रनिर्लूनमूर्धानौ रथिनौ रुचा।
खेचरौ भुवि नृत्यन्तौ स्वकबन्धावपश्यताम्।।49।।
रणाङ्गणे शोणितपङ्कपिच्छिले कथं कथञ्चिन्ननृतुर्धृतायुधाः।
नदत्सु तूर्येषु परेतयोषितां गणेषु गायत्सु कबन्धराजयः।।50।।
इति सुररिपुर्वृत्ते युद्धे सुरासुरसैन्ययो
रुधिरसरितां मज्जद्दन्तिव्रजेषुतटेष्वलम्।
अरुणनयनः क्रोधाद्भीमभ्रमद्भ्रुकुटीमुखः
सपदि ककुभामीशानभ्यामगत्स युयुत्सया।।51।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
सुरासुरसैन्यसंग्रामवर्णनं नाम षोडशः सर्गः।।

अर्धचन्द्र बाणों से एक दूसरे के सिर काटकर दो रथी स्वर्ग में जा पहुँचे और वहाँ से वे अपने उन धड़ों का खेल देखते रहे जो बहुत देर तक हाथ में तलवार लिए युद्ध-भूमियों में नाच रहे थे।।49।। उस युद्ध-क्षेत्र में जहाँ-तहाँ नगाड़े बज रहे थे और भूत-प्रेतों की स्त्रियाँ गीत गा रही थीं। वहाँ युद्धभूमि में लहू के कीचड़ से इतनी फिसलन हो गई थी कि बाण लिए हुए वीरों के धड़ बड़ी कठिनाई से नाच पा रहे थे।।50।। इस प्रकार जब देव-दानवों का युद्ध आरम्भ हो गया और लहू की नदी के तीर पर ही वे डूबने लगे तब वह देवताओं का शत्रु तारक क्रोध के मारे भौंहे नचाकर और लाल-लाल आँखें करके युद्ध करने के लिए तुरंत इन्द्र आदि दिग्पालों के आगे आ डटा।।51।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित कुमारसम्भव महाकाव्य में 'देवताओं और दैत्यों की सेनाओं के युद्ध का वर्णन' नाम का सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। सप्तदशः सर्गः ।।

दृष्ट्वाभ्ययुपेतमथ दैत्यपतिं पुरस्तात्संग्रामकेलिकुतुकेन घनप्रमोमदम्।
योद्धुं मदेन मिमिलुः ककुभामधीशा बाणान्धकारितदिगम्बरगर्भमेत्य।।1।।
देवद्विषां परिवृढो विकटं विहस्य बाणावलीभिरमरान्विकटान्ववर्ष।
शैलानिव प्रवरवारिधरो गरिष्ठाद्भिः पराभिरथ गाढमनारताभिः।।2।।
जम्भद्विषत्प्रभृतिदिक्पतिचापमुक्ता बाणाः शिता दनुजनायकबाणसङ्घान्।
अह्राय तार्क्ष्यनिवाहा इव नागपूगान्सद्यो विचिच्छिदुरलं कणशो रणान्ते।।3।।
तान्प्रज्वलत्फलमुखैर्विषमैः सुरारिर्नामाङ्कितैः पिहितदिग्गगनान्तरालैः।
आच्छादितस्तृणचयानिव हव्यवाहश्चिच्छेद सोऽपि सुरसैन्यशराञ्शरौघैः।।4।।
दैत्येश्वरो ज्वलितरोषविशेषभीमः सद्यो ममोच युधि यान्विशिखान्सहेलः।
ते प्रापुरुद्भटभुजंगमभीमभावं गाढं बबन्धुरपि ताँस्त्रिदशेन्द्रमुख्यान्।।5।।
ते नागपाशविशिखैरसुरेण बद्धाः श्वासानिलाकुलमुखा विमुखा रणस्य।
दिङ्नायका बलरिपुप्रमुखाः स्मरारिसूनोः समीपमगमन्विपदन्तहेतोः।।6।।
दृष्टिप्रपातवशतोऽपि पुरारिसूनोस्ते नागपाशघनबन्धविपत्तिदुःखात्।
इन्द्रादयो मुमुचिरे स्वयमस्य देवाः सेवां व्यधुर्निकटमेत्य महाजिगीषोः।।7।।

सत्रहवाँ सर्ग

जिस दैत्यराज के रोम-रोम लड़ाई के चाव से फरफरा रहे थे, जिसने धुआँधार बाण बरसाकर धरती-आकाश सबमें अँधेरा कर दिया था, उसे आते हुए देखकर सब दिग्पाल, रण में मतवाले होकर एक साथ उससे लोहा लेने के लिये आ जुटे।।1।। जैसे सावन-भादों की घनी घटाएँ लगातार जल बरसाकर बड़े-बड़े पहाड़ों को नीचे से ऊपर तक भिगो देती हैं वैसे ही वह देवताओं का शत्रु तारक भी बड़ी डरावनी हँसी हँसता हुआ देवताओं पर भयंकर रूप से धुआँधार बाण बरसाने लगा।।2।। उस रण-क्षेत्र में इन्द्र आदि दिग्पाल जो तीखे-तीखे बाण छोड़ते थे, उन्हें चुन-चुनकर दैत्यराज के बाण वैसी ही फुर्ती से काटते जा रहे थे जैसे बहुत से गरुड़ मिलकर साँपों के झुण्ड काटते चले जा रहे हों।।3।। देवताओं ने उस पर जो बाणों की झड़ी लगाई, उसे उसने अपने नाम खुदे हुए, आग के समान जलते हुए तीखे फल वाले और सब दिशाओं और आकाश को पाट देने वाले बाणों से उसी प्रकार तहस-नहस कर डाला जैसे अपने ऊपर छाए हुए घास-फूस को धधकती हुई आग जला डालती है।।4।। क्रोध से लाल उस भयंकर दैत्यराज ने उस युद्ध को कुछ न समझते हुए जो बाण छोड़े वे तुरंत साँपों की भाँति भयंकर बनकर इन्द्र आदि देवताओं के गलों में कसकर लिपट गए।।5।। उस दैत्य के बाणों की फाँसी गले में पड़ जाने पर सब देवताओं की साँसें घुटने लगीं और वे लड़ना-भिड़ना छोड़-छोड़कर इस विपत्ति से छुटकारा पाने के लिये कार्तिकेय के पास दौड़ पड़े।।6।। कार्तिकेय ने उनकी ओर आँख भर देख ही दिया कि इन्द्र आदि देवताओं के गले में कसे हुए वे नाग-फाँस के फन्दे अपने आप खुल गए और तब वे सब देवता उन कार्तिकेय के पास जा-जाकर उनकी बड़ाई करने लगे जो दैत्यों को जीतने के लिये कमर कसे हुए थे।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदीप्तकोपदहनोऽथ सुरेन्द्रशत्रुरह्नाय सारथिमवोचत चण्डबाहुः।
बद्धा मया सुरपतिप्रमुखाः प्रसह्य बालस्य धूर्जटिसुतस्य निरीक्षणेन।। 8।।

मुक्ता बभूवुरधुना तदिमान्विहाय कर्तास्म्यमुं समरभूमिपशूपहारम्।
तत्स्यन्दनं सपदि वाहय शंभुसूनुं द्रष्टास्मि दर्पितभुजाबलमाहवाय।। 9।।

तत्स्यन्दनः सपदि सारथिसम्प्रणुन्नः प्रक्षुब्धवारिधरधीरगभीरघोषः।
चण्डश्चचाल दलिताखिलशत्रुसैन्यमांसास्थिशोणितविपङ्कविलुप्तचक्रः।। 10।।

दृष्ट्वा रथं प्रलयवातचलद्गिरीन्द्रकल्पं दलद्बलविरावविशेषरौद्रम्।
अभ्यागतं सुररिपोः सुरराजसैन्यं क्षोभं जगाम परमं भयवेपमानम्।। 11।।

प्रक्षुभ्यमाणमवलोक्य दिगीशसैन्यं शंभोः सुतं कलहकेलिकुतूहलोत्कम्।
उद्दामदोः कलितकार्मुकदण्डचण्डः प्रोवाच वाचमुपगम्य स कार्त्तिकेयम्।। 12।।

रे शंभुतापसशिशो बत मुञ्च मुञ्च दोर्दर्पमत्र विरम त्रिदिवेन्द्रकार्यात्।
शस्त्रैः किमत्र भवतोऽनुचितैरतीव बालत्वकोमलभुजातुलभारभूतैः।। 13।।

जब उस बड़ी-बड़ी भुजाओं वाले तारक ने यह सब देखा तब वह क्रोध से जल मरा और उसने तुरन्त अपने सारथी को आज्ञा दी कि मैंने जिन इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवताओं को फँदे में बाँध लिया था, वे सब कार्त्तिकेय के देखने भर से छुटकारा पा गए है, इसलिये इन सब देवताओं को छोड़कर मैं पहले इसी को गिद्ध-सियार आदि को भेंट करता हूँ। तुम झटपट रथ बढ़ाकर उस शंकर जी के पुत्र के पास मुझे पहुँचाओ, जिसे मैं भी तो देखूँ कि मुझसे लड़ने के लिये वह अपनी किन भुजाओं के बल पर इतना ऐंठ रहा है। ।8-9।। तत्काल सारथी ने इस वेग से रथ चलाया कि वह रथ प्रलय के उमड़े हुए बादलों के समान धड़धड़ाता हुआ भयंकर वेग से चल पड़ा। वहाँ इतने शत्रु सैनिक कटकर गिरे हुए थे कि उनके माँस, हड्डी और लहू के कीचड़ में उस रथ के पहिए तक छिप गए।।10।। वह रथ चलता हुआ ऐसा लगता था मानो प्रलय की आँधी में हिमालय चला जा रहा हो। उसके नीचे देवताओं की सेना के जो सैनिक पिसे जा रहे थे उनके हाहाकार से वह और भी भयंकर हो गया था और जब वह रथ देवताओं के एकदम पास आ गया तब तो उसे देखकर देवताओं की सेना के प्राण ही सूख गए।।11।। उस देवताओं की घबराई हुई सेना को देखते हुए और अपनी बड़ी भारी भुजाओं में धनुष को पकड़े हुए तारक, उन कार्त्तिकेय के पास पहुँचा जो ऐसे लगते थे मानो लड़ने के लिये अधीर हो रहे हों। वहाँ पहुँचकर तारक ने कार्त्तिकेय जी ने कहा– ।।12।। 'हे तपस्वी शंकर के पुत्र! तुम अपनी भुजाओं के बल पर मत ऐंठो और छोड़ो इन देवताओं का साथ। बताओ कहाँ तो तुम्हारी ये छोटी-छोटी बचकानी कोमल भुजाएँ और कहाँ ये भारी-भारी शस्त्र। ये तुम्हारे हाथ में सुशोभित नहीं होते हैं।।13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं त्वमेव तनयोऽसि गिरीशगौर्योः किं यासि कालविषयं विषमैः शरैर्मे।
संग्रामतोऽपसर जीव पितुर्जनन्यास्तूर्णं प्रविश्य वरमङ्कतलं विधेहि।।14।।
सम्यक्स्वयं किल विमृश्य गिरीशपुत्रजम्भद्विषोऽस्य जहिहि प्रतिपक्षमाशु।
एष स्वयं पयसि मज्जति दुर्विगाह्ये पाषाणनौरिव निमज्जयते पुरा त्वाम्।।15।।
इत्थं निशम्य वचनं युधि तारकस्य कम्पाधरो विकचकोकनदारुणाक्षः।
क्षोभात्त्रिलोचनसुतो धनुरीक्षमाणः प्रोवाचवाचमुचितां परिमृश्य शक्तिम्।।16।।
दैत्याधिराज भवता यदवादि गर्वात्तत्सर्वमप्युचितमेव तवैव किंतु।
द्रष्टास्मि ते प्रवरबाहुबलं वरिष्ठं शस्त्रं गृहाण कुरु कार्मुकमाततज्यम्।।17।।
इत्युक्तवन्तमवदत्त्रिपुरारिपुत्रं दैत्यः क्रुधौष्टमधरं किल निर्विभिद्य।
युद्धार्थमुद्भटभुजाबलदर्पितोऽसि बाणान्सहस्व मम सादितशत्रुपृष्ठान्।।18।।
दुःप्रेक्षणीयमरिभिर्धनुराततज्यं सद्यो विधाय विषमान्विशिखान्नयधत्त।
स क्रोधभीमभुजगेन्द्रनिभं स्वचापं चण्ड प्रपञ्जयति जैत्रशरैः कुमारे।।19।।
कर्णान्तमेत्य दितिजेन विकृष्यमाणं कोदण्डमेतदभितः सुषुवे शरौघान्।
व्योमाङ्गणे लिपिकरान्किरणप्ररोहैः सान्द्रैरशेषककुभां पलितं करिष्णून्।।20।।

तुम पार्वती और शंकर के इकलौते पुत्र होकर मेरे तीखे बाणों से बिंधकर क्यों काल के गाल में जाना चाहते हो। जाओ, यहाँ से भागकर अपने प्राण बचाओ और झट से जाकर अपने माता-पिता की गोद में छिप जाओ।।14।। हे कार्त्तिकेय! तुम स्वयं अपना भला-बुरा सोचकर इन्द्र का साथ छोड़कर अलग हो जाओ; क्योंकि जब मैं इस पर बाहण बरसाऊँगा, तब पत्थर की नाव के समान यह तो अपने आप गहरे जल में डूबेगा ही, साथ ही तुम्हें भी ले डूबेगा।।15।। तारक की ऐसी बातें सुनकर कार्तिकेय के ओठ क्रोध से काँपने लगे और खिले हुए लाल कमल के समान उनकी भयानक लाल-लाल आँखें क्रोध से नाच उठीं। बड़े क्रोध से अपने धनुष की ओर देखते हुए अपने बल को समझकर उन्होंने तारक को यह मुँह तोड़ उत्तर दिया–।।16।। 'हे दैत्यराज! घमंड में चूर होकर तुमने जो कहा है वह तुम्हें कहना ही चाहिए था, पर आज मुझे भी तुम्हारी इन बड़ी-बड़ी भुजाओं के बल की थाह लेने का मन कर रहा है। इसलिये उठाओ अपने शस्त्र और चढ़ाओ अपने धनुष पर डोरी।।17।। यह सुनकर तारक ने क्रुद्ध होकर कार्त्तिकेय पर दाँत पीसकर और दाँतों से ओंठ चबाते हुए कहा—यदि तुम्हें युद्ध के लिये अपनी इन प्रचण्ड भुजाओं का घमण्ड है, तो आओ और शत्रुओं की पीठ को छलनी बना देने वाले मेरे बाणों की चोट चखो।।18।। जैसे साँप क्रोध से पागल हो जाता है, वैसे ही क्रुद्ध होकर कुमार अपने धनुष पर अपना जीतने वाला भयंकर बाण चढ़ा ही रहे थे इतने में तारक ने वह बाण चढ़ाया, जिसकी ओर देखने में भी शत्रु घबराते थे।।19।। अपनी चमक से आकाश को जगमगा देने वाले और सब दिशाओं को चमका देने वाले बाण अपने धनुष पर चढ़ा-चढ़ाकर और धनुष को कान तक तान-तानकर तारक बाण छोड़ने लगा।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाणैः सुरारिधनुषः प्रसृतैरनन्तैर्निर्घोषभीषितभटो लसदंशुजालैः।
अन्धीकृताखिलसुरेश्वरसैन्य ईशसूनुः कृतोऽपि विषयं न जगाम दृष्टेः।। 21।।

देवेन मन्मथरिपोस्तनयेन गाढमाकर्णकृष्टमभितो धनुराततज्यम्।
बाणानसूत निशितान्युधि यान्सुजैत्रास्तैः सायका विभिदेरे सहसा सुरारेः।। 22।।

रेजे सुरारिशरदुर्दिनके निरस्ते सद्यस्तरां निखिलखेचरखेदहेतौ।
देवः प्रभाप्रभुरिव स्मरशत्रुसूनुः प्रद्योतनः सुघनदुर्धरधामधामा।। 23।।

तत्राथ दुःसहतरं समरे तरस्वी धामाधिकं दधति धीरतरं कुमारे।
मायामयं समरमाशु महासुरेन्द्रो मायाप्रचारचतुरो रचयाञ्चकार।। 24।।

अह्नाय कोपकलुषो विकटं विहस्य व्यर्थां समर्थ्य वरशस्त्रयुधं कुमारे।
जिष्णुर्जगद्विजयदुर्ललितः सहेलं वायव्यमस्त्रमसुरो धनुषि न्यधत्त।। 25।।

संधानमात्रमपि यस्य युगान्तकालभूतभ्रमं परुषभीषणघोरघोषः।
उद्धूतधूलिपटलैः पिहिताम्बराशः प्रच्छन्नचण्डकिरणो व्यसरत्समीरः।। 26।।

कुन्दोज्ज्वलानि सकलातपवारणानि धृतानि तेन मरुता सुरसैनिकानाम्।
उड्डीयमानकलहंसकुलोपमानि मेघाभधूलिमलिने नभसि प्रसस्रुः।। 27।।

उसके धनुष से छूटे हुए चमचमाने वाले अनगिनत बाणों की भयंकर सनसनाहट देखकर सब सैनिक काँप उठे, सब देवताओं की आँखों के आगे अँधेरा छा गया स्वयं कार्त्तिकेय को भी थोड़ी देर तक कुछ न दिखाई दिया।।21।। तब कार्त्तिकेय जी ने भी पूरे बल के साथ धनुष की डोरी कान तक खींच-खींचकर अपने तीखे और जीतने वाले बाण बरसा-बरसाकर तारक के बाणों के धुर्रे उड़ा दिए।।22।। सब देवताओं को दुःख देने वाली तारक के बाणों की घटा फट जाने पर शंकर जी के पुत्र कार्त्तिकेय जी अपने घने और अपार तेज के कारण सूर्य के समान चमकते हुए शोभा देने लगे।।23।। युद्ध में कार्त्तिकेय का ऐसा प्रबल प्रताप बढ़ता हुआ देखकर छलविद्या से युद्ध करने में चतुर और बलवान् तारक ने तुरन्त माया का युद्ध करना आरम्भ कर दिया।।24।। जिस विजयी तारक ने सारे संसार को मुट्ठी में कर लिया था, उसने जब यह समझ लिया कि और अस्त्र लेकर कुमार के साथ लड़ने में जीत न पाऊँगा तब उसने बड़े क्रोध के साथ किसी को कुछ न समझते हुए अन्धड़ चलाने वाला वायव्य नाम का बाण अपने धनुष पर चढ़ाया।।25।। उस बाण के धनुष पर चढ़ाते ही ऐसी वेग से भयंकर घड़घड़ाती हुई आँधी चलने लगी कि लोग समझने लगे बस प्रलय आ गया। उसकी धूल से सब आकाश और दिशाएँ भर गईं और प्रचण्ड किरणों वाले सूर्य भी छिप गए।।26।। देवताओं के सैनिकों के जो कुन्दन के फूल के समान उज्ज्वल छत्र थे; उन्हें उस भयंकर अन्धड़ ने ऐसा झकझोर कर उड़ा दिया कि वे धूल से भरे हुए आकाश में उड़ते हुए ऐसे दिखाई देने लगे मानो बादल छाए हुए आकाश में राजहंस उड़ते चले जा रहे हों।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विध्वस्य तेन सुरसैन्यमहापताका नीता नभस्थलमलं नवमल्लिकाभाः।
स्वर्गापगाजलमहौघसहस्रलीलां व्यातेनिरे दिविसिताम्बरकैतवेन।। 28।।
धूतानि तेन सुरसैन्यमहागजानां सद्यः शतानि विधुराणि दलत्कुथानि
पेतुः क्षितौ कुपितवासववज्रलून-पक्षस्य भूधरकुलस्य तुलां वहन्ति।। 29।।
तास्ताः खरेण मरुता रथराजयोऽपि दोधूयमाननिपतिष्णुतुरंगमाश्च।
विस्रस्तसारथिकुलप्रवराः समन्ताद्व्यावृत्य पेतुरवनौ सुरवाहिनीनाम्।। 30।।
हित्वायुधानि सुरसैन्यतुरङ्गवाहा वातेन तेन विधुराः सुरसैन्यमध्ये।
शस्त्राभिघातमनवाप्य निपेतुरुर्व्यां स्वीयेषु वाहनवरेषु पतत्सु सत्सु।। 31।।
तेनाहतास्त्रिदशसैन्यपदातयोऽपि स्त्रस्तायुधाः सुविधुराः परुषं रसन्तः।
वात्याविवर्तदलवद्भ्रममेत्य दूरं निष्पेतुरम्बरतलाद्वसुधातलेऽस्मिन्।। 32।।
इत्थं विलोक्य सुरसैन्यमथो अशेषं दैत्येश्वरेण विधुरीकृतमस्त्रयोगात्।
स्वर्लोकनाथकमलाकुशलैकहेतुर्दिव्यं प्रभावमतनोदतनुः स देवः।। 33।।
तेनोज्झितं सकलमेव सुरेन्द्रसैन्यं स्वास्थ्यं प्रपद्य पुनरेव युधि प्रवृत्तम्।
दृष्ट्वासुजद्दहनदैवतमस्त्रमिद्धमुद्दीप्तकोपदहनः सहसा सुरारि।। 34।।

उस अन्धड़ ने देवताओं की सेना की सब ध्वजाओं और पताकाओं को नये खिले हुए चमेली के फूल के समान तोड़-फोड़कर आकाश में उड़ा दिया और वे आकाश में उड़ती हुई वस्त्र की पताकाएँ ऐसी दिखाई दीं मानो उस अन्धड़ ने आकाश-गंगा की उछलती हुई सहस्रों लहरियाँ आकाश में फैला दी हों।।28।। इस भयंकर अँधड़ के झोकों में पड़ी हुई देवसेना के जो बहुत से बड़े-बड़े हाथी अपनी झूलें मसलते हुए देखते-देखते लड़खड़ाकर गिरते हुए ऐसे दिखाई पड़ते थे मानो इन्द्र के वज्र से पंख कट जाने पर बहुत से पहाड़ पृथ्वी पर लुढ़कते चले जा रहे हों।।29।। उस प्रचण्ड अन्धड़ की लपेट में आकर देवसेना के रथों के अनगिनत घोड़े लड़खड़ाकर गिरने लगे, सारथी भी इधर-उधर फेंके गए और उसके रथ भी उस युद्ध-भूमि में इधर-उधर उलट-उलटकर गिर गए।।30।। उस भयंकर अन्धड़ की झकोरें खाकर देवसेना के घुड़सवार इतने घबरा उठे कि वे अपने अस्त्र-शस्त्र वहीं देवसेना पर फेंकने लगे और बिना किसी शस्त्र से चोट खाए ही अपने उन घोड़ों की पीठ से गिरने लगे जो अन्धड़ की झोंक में लुढ़कते चले जा रहे थे।।31।। उस वायव्य अस्त्र से देवसेना के पैदल सैनिक भी इतने घबरा उठे कि सब अपने-अपने शस्त्र डालकर व्याकुल होकर रोने चिल्लाने लगे और बवण्डर की भाँति घुमनी खाते हुए दूर तक आकाश में उड़-उड़कर धरती पर गिरने लगे।।32।। दैत्यराज तारक ने जो वायव्य अस्त्र चलाया था, उससे देवसेना को इस प्रकार तहस-नहस होते देखकर स्वर्ग की राजलक्ष्मी की नाव चतुराई से खेने वाले कार्त्तिकेय ने अपना अनोखा और बड़ा भारी करतब दिखाना आरम्भ कर दिया।।33।। उन्होंने कुछ ऐसा जादू फेरा कि देवसेना पर छाया हुआ अन्धड़ दूर हो गया तो सारी सेना हरी-भरी और नई-सी होकर फिर लड़ने लगी। यह देखकर तो तारक के शरीर में आग-सी लग गई और इस बार उसने अपना सधा हुआ आग बरसानेवाला अग्निबाण चलाया।।34।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षातिकालजलदद्युतयो नभोन्ते गाढान्धकारितदिशो घनधूमसंघाः।
सद्यः प्रसस्रुरसितोत्पलदामभासो दृग्गोचरत्वमखिलं न हि सन्नयन्तः।। 35।।
दिक्चक्रवालगिलनैर्मलिनैस्तमोभिर्लिप्तं नभः स्थलमलं घनवृन्दसान्द्रैः।
धूमैर्विलोक्य मुदिताः खलु राजहंसा गन्तुं सरः सपदि मानसमीषुरुच्चै।। 36।।
जज्वाल वह्निरतुलः सुरसैनिकेषु कल्पान्तकालदहनप्रतिमः समन्तात्।
आशामुखानि विमलान्यखिलानि कीलाजालैरलं कपिलयन्सकलं नभोऽपि।।37।।
उज्जागरस्य दहनस्य निरर्गलस्य ज्वालावलीभिरतुलाभिरनारताभिः।
कीर्णं पयोदनिवहैरिव धूमसंघैर्व्योमाभ्यलक्ष्यत कुलैस्तडितामिवोच्चैः।। 38।।
गाढाद्भयाद्वियति विद्रुतखेचरेण दीप्तेन तेन दहनेन सुदुःसहेन।
दन्दह्यमानमखिलं सुरराजसैन्यमत्याकुलं शिवसुतस्य समीपमाप।। 39।।
इत्यग्निना घनतरेण ततोऽभिभूतं तद्देवसैन्यमखिलं विकलं विलोक्य।
सस्मेरवक्त्रकमलोऽन्धकशत्रुसूनुर्बाणासनेन समधत्त स वारुणास्त्रम्।। 40।।
घोरान्धकारनिकरप्रतिमो युगान्तकालानलप्रवलधूमनिभो नभोन्ते।
गर्जारवैर्विघटयन्नवनीधराणां शृङ्गाणि मेघनिवहो घनमुज्जगाम।। 41।।
विद्युल्लता वियति वारिदवृन्दमध्ये गम्भीरभीषणरवैः कपिशीकृताशा।
घोरा युगान्तचलितस्य भयंकराथ कालस्य लोलरसनेव चमच्चकार।। 42।।

उसके चलाते ही बरसात के काले-काले बादलों के समान और नीले कमलों के झुण्ड के समान काला-काला घना धुआँ चारों ओर ऐसा छा गया कि कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ता था।।35।। जब उस घने बादलों के समान काले-काले धुएँ से सारा आकाश भर गया तो राजहंसों को यह भ्रम हुआ कि बरसात आ गई और वे प्रसन्न होकर मानसरोवर की ओर चलने की तैयारी करने लगे।।36।। इतने में ही देवसेना के भीतर प्रलयकाल की आग के समान ऐसी भयानक आग उठी कि उसकी लपटों में स्वच्छ आकाश और दिशाएँ भी पीली पड़ गईं।।37।। बिना रुके हुए धधक-धधककर जलती हुई आग की बड़ी-बड़ी लगातार उठती हुई लपटों से ऊपर फैले हुए काले-काले धुएँ से भरा हुआ आकाश ऐसा दिखाई पड़ता था मानो वह ऊँचे-ऊँचे बादलों और बिजलियों से भरा हुआ हो।।38।। सब ओर आकाश में फैली हुई सारी देवसेना बहुत घबराकर फिर कार्त्तिकेय के पास जा पहुँची।।39।। उस भयंकर आग से झुलसी हुई सारी देवसेना को देखकर कार्त्तिकेय ने हँसते हुए अपने धनुष पर वह वारुणास्त्र चढ़ाया जिससे पानी बरसता था।।40।। उसके चलाते ही भयंकर अँधेरा करती हुई प्रलय की आग से उठे हुए धुएँ के समान काली घटाएँ आकाश में उगड़ आई जिनकी गरज से पहाड़ों की चोटियों तक में दरारें पड़ गईं।।41।। इन बादलों में से बड़ी भयानक बिजली तड़पी और उसकी चमक से सब दिशाएँ पीली पड़ गईं। उस समय वह ऐसी लगती थी, मानो प्रलयकाल में काल की लपलपाती हुई भयंकर जीभ हो।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कादम्बिनी विरुरुचे विषकण्टिकाभिरुत्तालकालरजनीजलदावलीभिः।
व्योम्न्युच्चकैरचिररुक्परिदीपिताशा दृष्टिच्छदा विषमघोषविभीषणा च।। 43।।

व्योम्नस्तलं पिदधतां ककुभां मुखानि गर्जारवैरविरतैस्तुदतां मनांसि।
अम्भोभृतामतितरामनणीयसीभिर्धारावलीभिरभितो ववृषे समूहैः।। 44।।

घोरान्धकारपटलैः पिहिताम्बराणां गम्भीरगर्जनरवैर्व्यथितासुराणाम्।
वृष्ट्या तया जलमुचां वरुणास्त्रजानां विश्वोदरम्भरिरपि प्रशशाम वह्निः।। 45।।

दैत्योऽपि रोषकलुषो निशितैः क्षुरप्रैराकर्णकृष्टधनुरुत्पतितैः स भीमैः।
तद्भीतिविद्रुतसमस्तसुरेन्द्रसैन्यो गाढं जघान मकरध्वजशत्रुसूनुम्।। 46।।

देवोऽपि दैत्यविशिखप्रकरं सचापं बाणैश्चकर्त कणशो रणकेलिकारी।
योगीव योगविधिशुष्कमना यमाद्यैः सांसारिकं विषयसंघममोघवीर्यम्।। 47।।

भ्रूभङ्गभीषणमुखोऽसुरचक्रवर्ती संदीप्तकोपदनोऽथ रथं विहाय।
क्रीडत्करालकरवालकरोऽसुरेन्द्रस्तं प्रत्यधावदभितस्त्रिपुरारिसूनुम्।। 48।।

अभ्यापतन्तमसुराधिपमीशपुत्रो दुर्वारबाहुविभवं सुरसैनिकैस्तम्।
दृष्ट्वा युगान्तदहनप्रतिमां मुमोच शक्तिं प्रमोदविकसद्वदनारविन्दः।। 49।।

अपनी बिजली की चमक से सब दिशाओं में चकाचौंध कर देनेवाली और भयंकर गर्जन से भरी अत्यन्त भयंकर प्रलय के बादलों के समान अत्यन्त काली और जल से भरी हुई घटाएँ ऊपर आकाश में इस प्रकार अँधेरा करके छा गई कि आँखों से कुछ भी दिखाई नहीं देता था।।43।। आकाश में छाई हुई लगातार गरज-गरजकर लोगों का जी कँपाती हुई वे घटाएँ चारों ओर मूसलाधार पानी बरसाने लगीं।।44।। कार्त्तिकेय के चलाए हुए वारुणास्त्र से अँधेरा करके आकाश को छिपा देनेवाले और अपनी कड़क से दैत्यों को कँपा देनेवाले जो बादल छा गए थे उनकी वर्षा से संसार में फैली हुई सब आग तत्काल बुझ गई।।45।। तब तारक ने भी क्रोध से लाल होकर कान तक खींच-खींचकर पैने और चमचमाते हुए छुरोंवाले भयंकर बाण बरसाकर देवसेना को डराकर तितर-बितर कर दिया और कार्त्तिकेय पर भी बड़ा गहरा प्रहार किया।।46।। कार्त्तिकेयजी ने भी तारक के धनुष और बाण एक-एक करके खेल-खेल में ही इस प्रकार काट कर गिरा दिए, जैसे योगी लोग यम, नियम आदि साधकर अपने मन की सब सांसारिक इच्छाएँ मिटा डालते हैं।।47।। यह देखकर दैत्यराज तारक का क्रोध और भड़क उठा। अपनी तनी हुई भौंहों के कारण और भी भयंकर दिखाई देनेवाला वह दैत्य रथ छोड़कर हाथ में लपलपाती हुई भयंकर तलवार लेकर कार्त्तिकेय पर टूट पड़ा।।48।। जब कार्त्तिकेय ने देखा कि ऐसे भयंकर रूपवाला तारक मुझपर झपट रहा है और देवताओं के सैनिकों से हराए नहीं हार रहा है, तब उन्होंने हँसकर अपना प्रलय की अग्नि के समान भयंकर भाला उसपर फेंक कर मारा।।49।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्द्योतिताम्बरदिगन्तरमंशुजालैः शक्तिः पपात हृदि तस्य महासुरस्य।
हर्षाश्रुभिः सह समस्तदिगीश्वराणां शोकोष्णबाष्पसलिलैः सह दानवानाम्।। 50।।

शक्त्या हृतासुमसुरेश्वरमापतन्तं कल्पान्तवातहतभिन्नमिवाद्रिशृङ्गम्।
दृष्ट्वा प्ररूढपुलकाञ्चितचारुदेहा देवाः प्रमोदमगमँस्त्रिदशेन्द्रमुख्याः।। 51।।

यत्रापतत्स दनुजाधिपतिः परासुः संवर्तकालनिपतच्छिखरीन्द्रतुल्यः।
तत्रादधात्फणिपतिर्धरणीं फणाभिस्तद्भूरिभारविधुराभिरधो व्रजन्तीम्।। 52।।

स्वर्गापगासलिलसीकरिणी समन्तात्सौरभ्यलुब्धमधुपावलिसेव्यमाना।
कल्पद्रुमप्रसववृष्टिभून्नभस्तः शंभोः सुतस्य शिरसि त्रिदशारिशत्रोः।। 53।।

पुलकभरविभिन्नधारबाणा भुजविभवं बहु तारकस्य शत्रोः।
सकलसुरगणा महेन्द्रमुख्याः प्रमदमुखच्छविसंपदोऽभ्यनन्दन्।। 54।।

अपनी चमक से सब दिशाओं को चमकाती हुई वह शक्ति ठीक तारक के हृदय में जाकर लगी और उसके लगते ही देवताओं की आँखों से हर्ष के आँसू और दैत्यों की आँखों से शोक के आँसू साथ-साथ वह चले।।50।। उस भाले की चोट से मरकर गिरा हुआ तारक ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलय की आँधी से टूटकर गिरी हुई पहाड़ की चोटी हो। ज्यों ही इन्द्र आदि देवताओं ने उस तारक दैत्य को गिरा हुआ देखा कि वे सब हर्ष से उछल पड़े और उनके रोम-रोम फरफरा उठे।।51।। जब वह दैत्यराज तारक प्रलयकाल की आँधी से टूटकर गिरे हुए पहाड़ के समान मरकर गिरा तो उसके भारी बोझ से पृथ्वी नीचे को धँसी तो नागराज वासुकी ने उसे अपने फणों पर किसी प्रकार सँभाला।।52।। उस समय कार्तिकेय के सिर पर आकाशगंगा के जल की फुहारों से भरे हुए और गन्ध के लोभी भौंरों से घिरे हुए कल्पतरु के फूल आकाश से बरसने लगे।।53।। आनन्द के मारे देवताओं के मुँह खिल उठे और वे सुख से इतने फूल उठे कि उनकी छातियों पर कसे हुए कवच भी तड़ातड़ टूटने लगे। इस प्रकार आनन्द में झूमते हुए इन्द्र आदि सब देवता पास आकर तारक को मारनेवाले कुमार की भुजाओं के बल की बड़ाई करने लगे।।54।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति विषमशरारेः सूनुना जिष्णुनाजौ त्रिभुवनवरशल्ये प्रोद्धृते दानवेन्द्रे।
बलरिपुरथ नाकस्याधिपत्यं प्रपद्य व्यजयत सुरचूडारत्नघृष्टाग्रपादः।।55।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये तारकासुरवधो नाम सप्तदशः सर्गः।।

।।इति कुमारसंभवम्।।

इस प्रकार विजयी कार्त्तिकेय ने जब तीनों लोकों के हृदय में काँटे के समान खटकनेवाले उस तारक राक्षस को मार डाला, तब इन्द्र फिर स्वर्ग के स्वामी बन गए और उन्हें अपने में सबसे श्रेष्ठ समझकर सब देवता लोग अपने-अपने मुकुट के मणियों सहित अपने सिर उनके चरणों में रखकर प्रणाम करने लगे।।55।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित कुमारसंभव महाकाव्य में 'तारक राक्षस का वध' नाम का सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ।।

कुमारसंभव समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. रघुवंशम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

रघुवंशम्

।। प्रथमः सर्गः ।।

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।। 1।।
क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।। 2।।
मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।। 3।।
अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।। 4।।

पहला सर्ग

[वाणी् और अर्थ जिस प्रकार अलग होते हुए भी एक ही हैं, वैसे ही पार्वतीजी और शिवजी भी कहने को दो रूप हैं, पर हैं वे वास्तव में एक ही। अतः] वाणी और अर्थ को अपने वश में करने के लिये, [उनको ठीक समझने और उनका ठीक व्यवहार करने के लिये] मैं संसार की माता पार्वतीजी और पिता शिवजी को प्रणाम करता हूँ, जो शब्द और अर्थ के समान परस्पर मिले हुए एकरूप हैं।।1।। [मैं रघुवंश का वर्णन तो करने जा रहा हूँ पर मैं देख रहा हूँ कि] कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न हुआ यह [तेजस्वी] वंश, [जिसमें रघु और राम—जैसे पराक्रमी उत्पन्न हुए हों और] कहाँ मोटी बुद्धिवाला मैं। [मैं यह भली-भाँति जानता हूँ कि मैं रघुवंश का वर्णन नहीं कर सकता, फिर भी मेरी मूर्खता तो देखिए कि] तिनकों से बनी छोटी-सी नाव लेकर अपार समुद्र को पार करने की बात सोच रहा हूँ।।2।। देखिए, मैं हूँ तो मूर्ख, पर मेरी इच्छा यह है कि बड़े-बड़े कवियों में मेरी गिनती हो। यह सुनकर लोग मुझ पर अवश्य हँसेंगे, क्योंकि मेरी यह करनी वैसी ही है, जैसे कोई बौना अपने नन्हें-नन्हें हाथ ऊपर उठाकर उन फलों को तोड़ना चाहता हो जो केवल लम्बे हाथवाले ही पा सकते हों।।3।। पर [मुझे एक बड़ा भारी भरोसा यही है कि वाल्मीकि आदि मुझसे] पूर्व के कवियों ने इस सूर्यवंश पर [सुन्दर काव्य] लिखकर वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है। इसीलिये उसमें पैठ जाना [और इस वंश का फिर से वर्णन करना] मेरे लिये वैसे ही [सरल] हो गया है, जैसे हीरे की कनीसे बिंधे हुए मणि में डोरा पिरोना।।4।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।।5।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ।।6।।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै[1] गृहमेधिनाम् ।।7।।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।8।।
रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ।।9।।
तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा ।।10।।
वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ।।11।।

मैं जानता हूँ कि मुझे कुछ आता-जाता नहीं है, फिर भी मैं उन [प्रतापी] रघुवंशियों का वर्णन करने बैठा हूँ, जिनके चरित्र जन्म से लेकर अन्त तक शुद्ध और पवित्र रहे, जो किसी काम को उठाकर उसे पूरा करके ही छोड़ते थे, जो समुद्र के ओर-छोर तक फैली हुई धरती के स्वामी थे, जिनके रथ पृथ्वी से स्वर्ग तक सीधे जाया-आया करते थे, जो [शास्त्रों के] नियम के अनुसार ही यज्ञ करते थे, जो माँगने वालों को मन-चाहा दान देते थे, जो [अपराधियों को] अपराध के अनुसार ही दण्ड देते थे, जो अवसर देखकर ही काम करते थे, जो दान करने के लिये ही धन इकट्ठा करते थे, जो सत्य की रक्षा के लिये बहुत कम बोलते थे [कि जितना कहें उतना कर भी दिखाये], जो [दूसरों का राज्य हड़पने या लूटमार के लिये नहीं वरन्] अपना यश बढ़ाने के लिये ही दूसरे देश पर विजय करते थे, जो [भोग-विलास के लिये नहीं वरन्] सन्तान उत्पन्न करने के लिये ही विवाह करते थे, जो बालकपन में पढ़ते थे, तरुणाई में संसार के भोगों का आनन्द लेते थे, बुढ़ापे में मुनियों के समान [जंगलों में रहकर] तपस्या करते थे और अन्त में योग के द्वारा [ब्रह्म या परमात्मा का ध्यान करते हुए] अपना शरीर छोड़ते थे। [सच पूछिए तो] रघुवंशियों के इन गुणों ने ही मुझे यह काव्य लिखने की ढिठाई करने को उकसाया है।।5-9।। इस काव्य को सुनने के अधिकारी भी वे ही सज्जन हैं जिन्हें भले-बुरे की अच्छी परख है क्योंकि सोने का खरापन या खोटापन आग में डालने पर ही जाना जाता है।।10।। जैसे वेद के छन्दों में सबसे पहले ॐकार है, वैसे ही राजाओं में सबसे पहले सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु हुए जिनका आदर बड़े-बड़े विद्वान् लोग भी किया करते थे।।11।।

---

1. पुत्रार्थं क्रियते भार्या पुत्रः पिण्डप्रयोजनः ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।। 12।।
व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः[1]।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः। 13।।
सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना।। 14।।
आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः।। 15।।
भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः।। 16।।
रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।। 17।।

उन्हीं वैवस्वत मनु के उज्ज्वल वंश में राजाओं में चन्द्रमा के समान सबको सुख देनेवाले तथा अत्यन्त शुद्ध चरित्रवाले राजा दिलीप ने वैसे ही जन्म लिया जैसे क्षीरसागर में चन्द्रमा ने जन्म लिया था।।12। [राजा दिलीप का रूप देखने ही योग्य था।] उनकी चौड़ी छाती, साँड़ के समान ऊँचे और भारी कंधे, शाल के वृक्ष-जैसी लंबी भुजाएँ और उनका समुन्नत तेज देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो क्षत्रियों का धर्म [वीरत्व] उनके शरीर में यह समझकर आ डटा हो कि [सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों के नाश करने का जो] मेरा काम [है वह] इस शरीर से अवश्य पूरा हो सकेगा।।13।। जैसे सुमेरु पर्वत ने अपनी दृढ़ता से संसार के सभी दृढ़ पदार्थों को दवा दिया है, अपनी चमक से सभी चमकीली वस्तुओं की चमक घटा दी है, अपनी ऊँचाई से सभी ऊँची वस्तुओं को नीचा दिखा दिया है और अपने फैलाव से सम्पूर्ण पृथ्वी को ढक लिया है, वैसे ही राजा दिलीप ने भी अपने बल, तेज और डील-डौलवाले शरीर से सबको नीचा दिखाकर समस्त पृथ्वी को अपनी मुट्ठी में कर लिया।।14।। जैसा सुन्दर उनका रूप था, वैही ही तीखी उनकी बुद्धि थी, जैसी तीखी बुद्धि थी, वैसी ही शीघ्रता से उन्होंने सभी शास्त्र पढ़ डाले थे। इसीलिये वे शास्त्र के अनुसार ही किसी काम में हाथ डालते थे और [फल यह होता था कि उन्हें] वैसी ही [बड़ी] सफलता भी [अवश्य] हाथ लगती थी।।15।। [जैसे घड़ियालों और मगरमच्छों के डर से लोग समुद्र में जाने से डरते हैं, वैसे ही] राजा दिलीप से भी उनके सेवक डरते थे; क्योंकि वे न्याय में बड़े कठोर भी थे [और किसी का पक्षपात नहीं करते थे।] किन्तु समुद्र के सुन्दर और मनोहर रत्नों को पाने के लिये जैसे लोग समुद्र में प्रविष्ट हो जाते हैं, वैसे ही राजा दिलीप इतने दयालु, उदार और गुणशाली भी थे कि उनके सेवक उनकी कृपा पाने के लिये सदा उनका मुँह देखते रहते थे।।16।। जैसे चतुर सारथी जब रथ चलाता है, तब रथ के पहिये बाल भर भी लीक से बाहर नहीं हो पाते, वैसे ही राजा दिलीप ने ऐसे अच्छे ढंग से प्रजा की देखभाल की कि प्रजा का कोई भी व्यक्ति मनु के बताए हुए

---

1. यः पद्मलोचनश्छत्रध्वजवज्रांकितांघ्रिकः।
चतुर्हस्तः स्वहस्तेन शालप्रांशुः स उच्यते।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।18।।
सेना परिच्छदस्तस्यद्वयमेवार्थसाधनम्।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता।।19।।
तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।।20।।
जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्।।21।।
ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव।।22।

नियम से बाहर चल नहीं सकता था। [सब लोग वर्ण और आश्रमों के नियमों के अनुसार ही अपने धर्म का पालन करते थे]।।17।। जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का जो जल सोखता है, उसका सहस्र गुना बरसा देता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजा की भलाई में लगाने के लिये ही प्रजा से कर लेते थे।।18।। [जैसे और राजाओं के पास बड़ी भारी सेना होती थी वैसे ही] राजा दिलीप के पास भी बड़ी भारी सेना थी, पर वह सेना केवल शोभा के लिये ही थी [उससे कोई काम राजा दिलीप नहीं लेते थे।] क्योंकि शास्त्रों का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था और धनुष चलाने में भी वे अत्यन्त निपुण ही थे। इसलिये वे अपना सब काम अपनी तीखी बुद्धि और धनुष पर चढ़ी हुई डोरी—इन दो से ही निकाल लेते थे। [उन्हें किसी काम में किसी और की सहायता नहीं लेनी पड़ती थी]।।19।। राजा दिलीप न तो अपने मन का भेद किसी को बताते थे और न अपनी भावभंगिमा से ही अपने मन की बात किसी को जानने देते थे। जैसे इस जन्म में किसी के [सुखी या दुखी] जीवन को देखकर लोग समझते हैं कि उसने पिछले जन्म में क्या [अच्छे या बुरे] काम किए थे, वैसे ही राजा दिलीप के मन की बात भी लोग तभी जान पाते थे, जब वह काम हो चुकता था, [उससे पहले नहीं]।।20।। वे निडर होकर अपनी रक्षा करते थे, बड़े धीरज के साथ अपने धर्म का पालन करते थे, लोभ छोड़कर धन इकट्ठा करते थे और मोह छोड़कर संसार के सुख भोगते थे।।21।। [जो लोग बहुत लिख-पढ़ जाते हैं, वे अपनी विद्या का ढिंढोरा पीटते हैं, जो बलवान होते हैं, वे दूसरों को सताने में अपनी बड़ाई समझते हैं, जो लोग दान देते हैं या किसी के लिये कुछ त्याग करते हैं, वे चाहते हैं कि चारों ओर हमारा नाम हो। पर राजा दिलीप में यह बात नहीं थी] वे सब कुछ जानकर भी चुप रहते थे, शत्रुओं से बदला लेने की शक्ति रहते हुए भी उन्हें क्षमा कर देते थे और दान देकर या त्याग करके भी अपनी प्रशंसा कराने की इच्छा नहीं करते थे। [उनके इस जग से न्यारे व्यवहार को देखकर यही जान पड़ता था कि] चुप रहने, क्षमा करने और प्रशंसा से दूर भागने के गुण भी उनमें ज्ञान, शक्ति और त्याग के साथ ही साथ उत्पन्न हुए थे।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मरतेरासीद्वृद्धत्वं जरसा विना।।23।।
प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।24।।
स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्परिणेतुः प्रसूतये।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः।।25।।
दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्।।26।।
न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता।।27।।

संसार के भोगों को वे अपने पास नहीं फटकने देते थे, सारी विद्याओं को उन्होंने मुट्ठी में कर लिया था और अपना जीवन वे दिन-रात धर्म के कामों में ही लगाते थे। छोटी ही अवस्था में वे इतने चतुर हो गए थे कि बिना बुढ़ापा आए ही उनकी गिनती बड़े-बूढ़ों में होने लगी।।23।। जैसे पिता अपने पुत्रों को बुरे काम करने से रोकता है, अच्छे काम करने की सीख देता है, सब प्रकार से उसकी रक्षा करता है और उनको पाल-पोसकर बड़ा करता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजा को बुरे मार्ग पर जाने से रोकते थे, अच्छा काम करने को उत्साहित करते थे, विपत्तियों से उनकी रक्षा करते थे और [उनके लिये अन्न, वस्त्र, धन तथा शिक्षा का प्रबन्ध करके] उनका पालन-पोषण करते थे। इस प्रकार वे ही अपनी प्रजा के सच्चे पिता थे, पिता कहलानेवाले अन्य लोग तो केवल जन्म देने भर के पिता थे।।24।। [अपराधी को दण्ड देना राजा का धर्म है। क्योंकि] अपराधी को दण्ड दिए बिना राज्य ठहर नहीं सकता, इसलिये वे अपराधियों को उचित दण्ड देते थे। [वंश चलाना भी मनुष्य का धर्म है। इसलिये] सन्तान उत्पन्न करके वंश चलाने की इच्छा से ही उन्होंने विवाह किया था, कोई भोग-विलास के लिये नहीं। [इस प्रकार यद्यपि] दंड और विवाह वास्तव में अर्थशास्त्र और कामशास्त्र के विषय हैं फिर भी उनके हाथों में पहुँचकर वे धर्म ही बन गए थे।।25।। राजा दिलीप प्रजा से जो कर लेते थे वह इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ में लगा लेते थे [क्योंकि यज्ञ करने से देवता प्रसन्न और पुष्ट होते हैं]। उधर इन्द्र भी इनसे प्रसन्न होकर आकाश को दुहकर जल बरसाता था जिससे खेत अन्न से लद जाते थे। इस प्रकार राजा दिलीप और इन्द्र एक दूसरे की सहायता करके दोनों लोकों का पालन करते थे।।26।। दिलीप को छोड़कर और कोई भी राजा अपनी प्रजा की रक्षा करने में नाम न कमा सका; क्योंकि [सभी के यहाँ कभी-कभी चोरी-डकैती हो ही जाती थी। पर राजा दिलीप का अपने राज्य में ऐसा दबादबा था कि] चोरी का शब्द केवल कहने-सुनने को ही रह गया था, [उस राज्य में कोई भी किसी का धन नहीं चुरा पाता था]।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टःप्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता।। 28।।
तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना।
तथाहि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफला गुणाः।। 29।।
स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम्।
अनन्यशासनामुर्वी शशासैकपुरीमिव।। 30।।
तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा।। 31।।
कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः।। 32।।
तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः।। 33।।
संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे।। 34।।

जैसे रोगी यह समझकर औषध को पी लेता है कि इससे मैं अच्छा हो जाऊँगा वैसे ही राजा दिलीप भी उन शत्रुओं को अपना लेते थे, जो भले होते थे और जैसे साँप के काटने पर लोग अपनी उँगली भी काटकर फेंक देते हैं, वैसे ही राजा दिलीप अपने उन सगे एवं प्यारे लोगों को भी निकाल बाहर कर देते थे जो दुष्ट होते थे।।28।। ब्रह्मा ने निश्चय ही महाराज दिलीप को [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन] पाँच तत्वों से ही बनाया था; क्योंकि [जैसे ये तत्त्व निरन्तर गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन गुणों से सारी सृष्टि की सेवा करते हैं। वैसे ही] राजा दिलीप के सब गुणों से भी केवल दूसरों का उपकार ही होता था।।29।। [जैसे कोई राजा किसी ऐसी नगरी पर शासन करे; जिसके चारों ओर परकोटा और खाई को वैसे ही] दिलीप इस पूरी पृथ्वी पर अकेले राज्य करते थे, जिसका परकोटा समुद्र का तट था और जिसकी खाई का काम स्वयं समुद्र करता था।।30।। जैसे यज्ञ की पत्नी दक्षिणा प्रसिद्ध है वैसे ही मगधवंश में उत्पन्न सुदक्षिणा नाम की उनकी पत्नी भी संसार में अपनी चतुरता के लिये प्रसिद्ध थी।।31।। वैसे तो राजा दिलीप की बहुत-सी रानियाँ थीं, पर वे यदि अपने को स्त्रीवाला समझते थे, तो लक्ष्मी के समान मनस्विनी केवल अपनी पत्नी सुदक्षिणा के कारण ही।।32।। उनकी बड़ी इच्छा थी कि मेरी प्यारी पत्नी से मेरे-जैसा पुत्र हो, पर दिन बीतते चले जा रहे थे और मन की अभिलाषा पूरी नहीं हो पा रही थी।।33।। तब उन्होंने निश्चय किया कि सन्तान उत्पन्न करने का कुछ न कुछ उपाय करना ही चाहिए। उन्होंने पहला काम तो यह किया कि पृथ्वी पालन का सम्पूर्ण भार अपने कंधों से उतारकर मंत्रियों को सौंप दिया।।34।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।
तौ दम्पती वशिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम्।।35।।
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव[1]।।36।।
मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव।।37।।
सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः ।।38।।
मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखंडिभिः।।39।।
परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु ।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिपु।।40।।
श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ।।41।

राज्य की चिन्ता से छुट्टी पाकर पवित्र मन से राजा दिलीप और देवी सुदक्षिणा ने पुत्र की इच्छा से पहले ब्रह्माजी की पूजा की और फिर वे दोनों पति-पत्नी वहाँ से अपने कुलगुरु वशिष्ठजी के आश्रम की ओर चले।।35।। जिस रथ पर वे दोनों बैठे हुए थे, वह मीठी-मीठी घरघराहट करता हुआ चला जा रहा था। उस पर बैठे हुए वे दोनों ऐसे जान पड़ते थे, मानो वर्षा के बादल पर ऐरावत और बिजली दोनों चढ़े चले जा रहे हों।।36।। उन्होंने अपने साथ सेवक नहीं लिए; क्योंकि उन्हें ध्यान था कि बहुत भीड़-भाड़ ले जाने से आश्रम के काम में बाधा होगी, पर उनका प्रताप और तेज ही इतना अधिक था कि उससे जान पड़ता था, मानो साथ में बड़ी भारी सेना चली आ रही हो।।37।। खुले मार्ग में शाल के गोंद की गन्ध में बसा हुआ, फूलों के पराग उड़ाता हुआ और वन के वृक्षों के पत्तों को धीरे-धीरे कँपाता हुआ पवन, उनके शरीर को सुख देता हुआ, उनकी सेवा करता चल रहा था।।38।। राजा दिलीप और देवी सुदक्षिणा ने इधर-उधर दृष्टि घुमाई और देखा कि कहीं तो रथ की घरघराहट सुनकर बहुत-से मोर इस भ्रम से अपना मुँह उठा-उठाकर मनोहर षड्ज शब्द से कूक रहे थे कि कहीं ऊपर बादल तो नहीं गरज रहे हैं।।39।। कहीं वे देखते हैं कि हरिणों के जोड़े मार्ग से कुछ हटकर रथ की ओर एकटक देख रहे हैं। उनकी सरल चितवन को राजा दिलीप ने सुदक्षिणा के नेत्रों के समान समझा और सुदक्षिणा ने राजा दिलीप के नेत्रों के समान।।40।। जब कभी वे आँख उठाकर ऊपर देखते, तो आकाश में उड़ते हुए और मीठे बोलनेवाले बगुल भी उन्हें दिखाई पड़ जाते तो पाँत में उड़ते हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानो खम्भे के बिना ही बन्दनवार टँगी हुई हो।।41।।

---

1. मेघस्योपरि मेघो यः स ऐरावत उच्यते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः ।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ ।। 42 ।।
सरसीष्वरविन्दानां[1] वीचिविक्षोभशीतलम् ।।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम् ।। 43 ।।
ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम् ।
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्घ्यानुपदमाशिषः ।। 44 ।।
हैयंगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान् ।
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम् ।। 45 ।।
काप्याभिख्या तयोरासीद्व्रजतोः शुद्धवेषयोः ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ।। 46 ।।
तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः ।
अपि लंघितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः ।। 47 ।।
स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः ।।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः ।। 48 ।।
वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः ।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः ।। 49 ।।

पवन भी उनके अनुकूल चल रहा था और यह संकेत दे रहा था कि मन की इच्छाएँ अवश्य पूरी होंगी। वह ऐसी दिशा से चल रहा था कि घोड़ों के खुरों से उठी हुई धूल न तो देवी सुदक्षिणा के बालों को छू पाती थी और न राजा दिलीप की पगड़ी को ।।42।। मार्ग में जो ताल पड़ते थे, उनकी लहरों की झकोरों से उड़ती हुई कमलों की ठंडी सुगन्ध जिस पवन से लेते हुए वे चले जा रहे थे, वह सुगन्ध भरा पवन उनकी श्वाँस के समान ही सुगन्धित था।।43।। जो गाँव उन्होंने ब्राह्मणों को दान कर दिए थे और जिनमें स्थान-स्थान पर यज्ञ के खम्भे खड़े हुए थे, वहाँ के ब्राह्मणों ने पहले तो अर्घ्य भेंट करके उनकी पूजा की और फिर उनको ऐसे आशीर्वाद दिए, जो कभी निष्फल हो ही नहीं सकते थे।।44।। गाँवों के जो बड़े-बूढ़े घोसी, गाय का तुरत निकाला हुआ मक्खन लेकर उनको भेंट करने को आते थे, उनसे राजा दिलीप और रानी मार्ग के वनों और वृक्षों का नाम पूछते चलते थे।।45।। जैसे चैत्र की पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र के साथ धवल चन्द्रमा आँखों को भला लगता है वैसे ही सुन्दरी सुदक्षिणा के साथ मार्ग में स्वच्छ वस्त्र पहने जाते हुए राजा दिलीप भी बड़े मनोहर लग रहे थे।।46।। पंडितों के समान बुद्धिमान तथा लुभावने दिखाई देनेवाले राजा दिलीप अपनी पत्नी को वे सब [सुहावने दृश्य] दिखाने में इतने रम गए थे कि उन्हें यह भी न भान हो सका कि मार्ग कब निकल गया।।47।। सायंकाल होते-होते यशस्वी राजा दिलीप अपनी पत्नी के साथ संयमी महर्षि वशिष्ठजी के आश्रम तक पहुँच ही गए। इतने थोड़े समय में इतनी दूर की यात्रा करने के कारण उनके घोड़े भी थक चुके थे।।48।।

---

1. अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका।
नीलोत्पन्नं च पंचैते पंचबाणस्य शायकाः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः ।
अपत्यैरिव[1] नीवारभागधेयोचित्तैर्मृगैः ।। 50 ।।
सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् ।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम् ।। 51 ।।
आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः ।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गनभूमिषु ।। 52 ।।
अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान् ।
पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः ।। 53 ।।
अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः ।
तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च ।। 54 ।।
तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्तमेन्द्रियाः ।
अर्हणामर्हते चक्रुर्मुनयो नयचक्षुषे ।। 55 ।।
विधेः सायंतनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ।। 56 ।।
तयोर्जगृहतुः पादान्राजा राज्ञी च मागधी ।
तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः ।। 57 ।।

वहाँ पहुँचकर वे देखते क्या हैं कि संध्या के अग्निहोत्र के लिये बहुत-से तपस्वी समिधा, कुशा और फल लिए हुए जंगलों से लौट रहे हैं। ।49 ।। बहुत-से मृग वहाँ आश्रम में इधर-उधर पर्णकुटियों के द्वार रोके खड़े हुए थे; क्योंकि उन्हें भी ऋषि-पत्नियों के बच्चों के समान तिन्नी के दाने खाने का अभ्यास पड़ गया था। ।50 ।। ऋषि-कन्याएँ वृक्षों की जड़ों में पानी दे-देकर वहाँ से हट गई थीं, जिससे आश्रम के पक्षी उन वक्षों के थाँलों का जल निडर होकर पी सकें। ।51 ।। धूप में सुखाने के लिये जो तिन्नी का अन्न फैलाया हुआ था, वह दिन छिपते ही समेटकर कुटिया के आँगन में ढेर बनाकर रख दिया गया था और वहीं आँगन में बहुत-से हरिण सुख से बैठे जुगाली कर रहे थे। ।52 ।। हवन-सामग्री की गंध से भरा हुआ अग्निहोत्र का जो धुआँ पवन के कारण चारों ओर फैल रहा था उस धुएँ ने आश्रम की ओर आते हुए इन अतिथियों को भी पवित्र कर दिया। ।53 ।। तब राजा दिलीप ने अपने सारथी को आज्ञा दी कि घोड़ों को विश्राम कराओ। तब सहारा देकर पहले तो उन्होंने अपनी पत्नी को रथ से उतारा फिर स्वयं भी रथ से उतर पड़े। ।54 ।। जब यह समाचार आश्रमवालों को मिला, तब वहाँ के सभ्य संयमी मुनियों ने अपने रक्षक, आदरणीय तथा नीति के अनुसार चलनेवाले सपत्नीक राजा दिलीप का स्वागत किया। ।55 ।। जब संध्या की सब क्रियाएँ हो चुकीं, तब उन्होंने उन तपस्वी महामुनि वशिष्ठ को देखा, जिनके पीछे देवी अरुन्धती जी भी उसी प्रकार बैठी थीं, जैसे अग्नि के पीछे स्वाहा। ।56 ।। राजा दिलीप और मगध की राजकुमारी सुदक्षिणा ने चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया और गुरु वशिष्ठ तथा उनकी पत्नी ने बड़े दुलार से उनका स्वागत किया। ।57 ।।

---

1. न पतन्ति पितरोऽनेन इति अपत्यम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः।। 58।।
अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः।।
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वरः।। 59।।
उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्।। 60।।
तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः।। 61।।
हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम्।। 62।।
पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम्।। 63।।
त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना।
सानुबन्धाः कथं न स्युः संपदो मे निरापदः।। 64।।

पहले तो वशिष्ठजी ने उनका इतना आतिथ्य-सत्कार किया कि रथ के हिलने से जो उन्हें थकावट हुई थी, वह सब दूर हो गई और तब मुनि वशिष्ठ ने राजर्षि दिलीप से पूछा—कहिए! आपके राज्य में सब कुशल तो है।।58।। राजा दिलीप ने जहाँ अपनी वीरता से शत्रुओं के नगर जीते थे और धनपति बने थे, वहीं वे बातचीत करने की कला में भी बड़े चतुर थे, इसलिये उन्होंने अथर्ववेद के रक्षक वशिष्ठजी के उत्तर में बड़ी अर्थ-भरी वाणी में कहा।।59।। 'आपकी कृपा से इस राज्य में [राजा, मंत्री, मित्र, राजकोष, राज्य, दुर्ग और सेना ये] सातों अंग भरपूर हैं। [अग्नि, जल, महामारी और अकालमृत्यु इन] दैवी विपत्तियों और [चोर, डाकू, शत्रु आदि] मानुषी आपत्तियों को दूर करनेवाले तो आप बैठे ही हैं।।60।। आप मंत्रों के रचयिता हैं। आपके मंत्र ही इतने शक्तिशाली हैं कि मुझे अपने बाण चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि अपने बाणों से तो मैं केवल उन्हें ही बेध सकता हूँ जो मेरे आगे आते हैं, पर आपके मंत्र तो यहीं बैठे-बैठे दूर से ही शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं।।61।। हे यज्ञ करनेवाले! आप जब शास्त्रीय विधि से अग्नि में हवि छोड़ते हैं, तो आपकी आहुतियाँ अनावृष्टि से सूखे हुए धान के खेतों पर जलवृष्टि होकर बरसने लगती है।।62।। यह आपके ब्रह्मतेज का ही तो फल है कि मेरी प्रजा में कोई भी न तो सौ बरस से कम आयु पाता है और न किसी को ईति [बाढ़, सूखा, चूहा, तोता, राज-कलह, बैरी की चढ़ाई आदि] तथा विपत्ति का डर रहता है।।63।। जब आप स्वयं ब्रह्मा के पुत्र ही हमारे कुलगुरु होकर सदा हमारा कल्याण करने के लिए बैठे हैं, तब हमारी सम्पत्ति भला निर्विघ्न क्यों न रहे।।64।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम्।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी।।65।।
नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः।।66।।
मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया।
पयः पूर्वैः स्वनिःश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते।।67।।
सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः।।68।।
लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्।
संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे।।69।।
तया हीनं विधातर्मां कथं पश्यन्न दूयसे।
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्वन्ध्यमाश्रमवृक्षकम्।।70।।
असह्यपीडं भगवन्नृणमन्त्यमवेहि मे।
अरुंतुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः।।71।।

देव! आपकी इतनी कृपा होते हुए भी जब आपकी इस वधू [मेरी पत्नी] के गर्भ से मेरे समान तेजस्वी पुत्र नहीं हुआ, तब रत्नों को पैदा करने वाली, कई द्वीपों में फैली हुई, अपने राज्य की यह पृथ्वी भी मुझे कैसे अच्छी लग सकती है?।।65।। अब तो मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है कि मेरे पीछे कोई मुझे पिण्ड देनेवाला भी नहीं रह जायेगा। इसी दुःख से मेरे पितर मेरे दिए हुए, श्राद्ध के अन्न को भरपेट न खाकर उसका भाग आगे के लिये इकट्ठा करने लग गए हैं।।66।। जब मैं तर्पण के समय जलदान देने लगता हूँ, तब मेरे पितर यह सोचकर दुःख की साँसें लेने लगते हैं कि इसके पीछे हमें जल कौन देगा और यह सोचकर वे अपनी साँसों से गरम हुए जल को ही पी डालते हैं।।67।। जिस प्रकार लोकालोक नाम का पर्वत एक भाग से सूर्य का प्रकाश पड़ने से चमकता है और दूसरा भाग प्रकाश न पड़ने से अंधकारमय रहता है, उसी प्रकार सदा यज्ञ करने से मेरा चित्त प्रसन्न रहता है; किन्तु पुत्र न होने से सदा शोक से भरा रहता है।।68।। देव! तपस्या करने से और ब्राह्मणों तथा दीनों को दान देने से जो पुण्य मिलता है, वह केवल परलोक में सुख देता है; पर अच्छी सन्तान [सेवा-सुश्रुष करके] इस लोक में तो सुख देती ही है; साथ ही [तर्पण और पिण्डदान आदि करके] परलोक में भी सुख देती है।।69।। हे गुरुदेव! जैसे अपने हाथों से प्रेम से सींचे हुए आश्रम के वृक्ष में फल लगता न देखकर बड़ा दुःख होता है, वैसे ही जब आप मुझ कृपा-पात्र को सन्तानहीन देखते हैं, तो क्या आपको दुःख नही होता?।।70।। हे भगवन्! जिस प्रकार हाथी को उसका खूँटा अत्यन्त कष्ट देता है, वैसे ही पुत्र न होने के कारण जो पितरों का भार मेरे सिर पर चढ़ा है वह भी मुझे बहुत पीड़ा दे रहा है।।71।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मान्मुच्ये यथा तात संविधातुं तथार्हसि।
इक्ष्वाकूणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः।। 72।।

इति विज्ञापितो राजा ध्यानस्तिमितलोचनः।
क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः।। 73।।

सोऽपश्यत्प्रणिधानेन संततेः स्तम्भकारणयम्।
भावितात्मा भुवो भर्तुरथैनं प्रत्यबोधयत्।। 74।।

पुराशक्रमुपस्थाय तवोर्वीं प्रति यास्यतः।
आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि।। 75।।

धर्मलोपभयाद्राज्ञीमृतुस्नातामिमां स्मरन्।
प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः।। 76।।

अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति।।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा।। 77।।

स शापो न त्वयाराजन्नच सारथिना श्रुतः।
नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे।। 78।।

इसीलिये हे प्रभो! अब कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे मेरे पुत्र-रत्न हो और मैं अपने पितृ-ऋण से मुक्त हो जाऊँ; क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की सभी कठिनाइयाँ आपकी कृपा से दूर होती रही हैं।।72।। राजा की बात सुनकर वशिष्ठजी ने अपनी आँखें बन्द करके क्षण भर के लिये ध्यान लगाया। उस समय वे उस ताल के समान स्थिर और निश्चल हो गए, जिसकी सब मछलियाँ सो गई हों।।73।। वशिष्ठजी ने अपने योग के वल से जान लिया कि पवित्र आत्मावाले राजा को पुत्र क्यों नहीं हुआ और ध्यान पर चुकने पर वे राजा को समझाने लगे।।।74।। हे राजन्! बहुत दिन हुए एक बार जब तुम स्वर्ग से इन्द्र की सेवा करके पृथ्वी को लौट रहे थे, तब मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी।।75।। उस समय तुम्हारी पत्नी ने रजस्वला होने पर स्नान किया था और तुम सोचते जा रहे थे कि [यदि इस समय उसके साथ संभोग नहीं करूँगा तो] गृहस्थ का धर्म बिगड़ जायेगा। इसी विचार में पड़े रहने के कारण तुमने कामधेनु की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यह काम तुमने ठीक नहीं किया, क्योंकि तुम्हें चाहिए था कि उसकी पूजा और प्रदक्षिणा करते हुए लौटते।।76।। इसी से रुष्ट होकर कामधेनु ने तुम्हें शाप दिया कि तुमने जो मेरा तिरस्कार किया है, इसका दंड यही है कि जब तक तुम मेरी सन्तान की सेवा नहीं करोगे, तब तक तुम्हें पुत्र नहीं होगा।।77।। उस समय बड़े-बड़े मतवाले दिग्गज आकाशगंगा में खेलते हुए बहुत चिग्घाड़ रहे थे, इसलिये उस शाप को न तो तुम ही सुन पाए, न तुम्हारी सारथी ही।।78।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईप्सितं[1] तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।। 79।।

हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः।
भुजंगपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति।। 80।।

सुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः।
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा।। 81।।

इति वादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम्।।
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात्[2]।। 82।।

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं संध्येव शशिनं नवम्।। 83।।

भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी मेध्येनावभृथादपि।
प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना।। 84।।

इसलिये तुम्हारे पुत्र न होने का कारण यही है कि तुमने कामधेनु का तिरस्कार किया है देखो, जो पुरुष अपने पूज्यों की पूजा नहीं करता है, उसके शुभ कार्यों में विघ्न पड़ता ही है।।79।। अब इस समय कामधेनु तो मिल नहीं सकती; क्योंकि वरुणदेव पाताल में बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। उस यज्ञ में आहुति की सामग्री देने के लिये कामधेनु भी पाताल लोक चली गई हैं और उस लोक के द्वारों पर बड़े-बड़े विषधर सर्प रखवाले भी बैठे हैं।।80।। [चाहिए तो यही था कि पहले तुम कामधेनु को ही प्रसन्न करते पर इस समय तो उनका दर्शन दुर्लभ है।] इसलिये तुम उसकी पुत्री नन्दिनी को ही उसका प्रतिनिधि समझ लो और अपनी रानी के साथ शुद्धमन से उसकी सेवा करो, क्योंकि यदि वह प्रसन्न हो जायेगी, तो वह तुरन्त इच्छित फल अवश्य दे देगी।।81।। इधर वशिष्ठजी यह कह ही रहे थे कि उनकी आहुति के लिये घृत आदि जुटाने वाली सुलक्षणा नन्दिनी गौ वन से लौटकर आ पहुँची।।82।। नन्दिनी की देह नये पत्ते के समान कोमल और लाल थी। उसके माथे पर बनी हुई भूरे बालों की टेढ़ी रेखा ऐसी जान पड़ती थी, जैसे लाल संध्या के माथे पर द्वितीया का चन्द्रमा आसीन हो।।83।। अपना बछड़ा देखते ही उसके कुंड के समान बड़े-बड़े थनों से वह गरम-गरम दूध निकलकर पृथ्वी पर टपकने लगा, जो यज्ञ के पश्चात् किए हुए अवभृथ स्नान के जल से भी अधिक पवित्र था।।84।।

---

1. अवेहि
2. अस्मात्परमयमधिकः श्लोक उपलभ्यते क्वचित्—
ताम्रां ललाटजां रेखां बिभ्रती सा सितेतराम्।
सन्ध्या प्रतिपदेनेव प्रतिद्युतिभिन्ना हिमांशुना।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजःकणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात्।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः।।85।।

तां पुण्यदर्शनां दृष्ट्वा निमित्तज्ञस्तपोनिधिः।
याज्यमाशंसितावन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत्।।86।।

अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगण्यात्मनः।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत्।।87।।

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।।88।।

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाःस्थितायां स्थितिमाचरेः।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिवेरपः।।89।।

वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामातपोवनात्।
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि।।90।।

इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव।
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम्।।91।।

नन्दिनी के आते समय उसके खुरों से उड़ी हुई धूल के लगने से राजा दिलीप वैसे ही पवित्र हो गए, जैसे किसी तीर्थ में स्नान करके लौटे हों। शकुन जाननेवाले तपस्वी वशिष्ठजी ने जब उस गौ को देखा।।85।। जिसके दर्शन से ही पुण्य मिलता है, तब वे अपने यजमान उन राजा दिलीप से बोले, जो अपनी प्रार्थना सफल कराने के लिए वहाँ आए हुए थे।।86।। 'हे राजन्! तुम्हारा मनोरथ बहुत शीघ्र ही पूरा होगा; क्योंकि यह कल्याण करनेवाली नन्दिनी नाम लेते ही आ पहुँची है।।87।। जैसे विद्यार्थी [सब सुखों को छोड़कर] लगन से पढ़कर विद्या प्राप्त कर लेता है, वैसे ही यदि तुम भी [सब भोगों को छोड़कर] कन्द-मूल-फल खाते हुए सदा इस गौ की सेवा करोगे, तो वह भी तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करेगी।।88।। जब यह चले, तब तुम भी इसके पीछे-पीछे चलने लगना, जब खड़ी हो जाय, तब तुम भी खड़े हो जाना, जब बैठे तभी तुम भी बैठना और जब यह पानी पीने लगे, तभी तुम भी पानी पीना।।89।। तुम्हारी रानी सुदक्षिणा को चाहिए कि वे नित्य प्रातःकाल बड़ी भक्ति से इसकी पूजा किया करें और जब यह वन को जाने लगे, तब वे तपोवन के बाड़े तक उसके पीछे-पीछे जायँ और सायंकाल लौटते समय वहीं से अगवानी करके उसे आश्रम में ले आये।।90।। जब तक यह गौ प्रसन्न न हो जाय, तब तक तुम इसी प्रकार इसकी सेवा करते रहो। ईश्वर करे तुम्हें कोई बाधा न हो और जिस प्रकार तुम अपने पिता के योग्य पुत्र हो, वैसा ही सुयोग्य पुत्र तुम्हें भी प्राप्त हो।।91।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः।।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः।। 92।।
अथ प्रदोपे दोषज्ञः संवेशाय विशांपतिम्।
सूनुः सूनृतवाक्स्रष्टुर्विससर्जोर्जितश्रियम्।। 93।।
सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः।
कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम्।। 94।।
निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां संविष्टः कुशशयने निशां निनाय।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
वशिष्ठाश्रमाभिगमनो नाम प्रथमः सर्गः।।

राजा दिलीप यह सोचकर मन में बहुत प्रसन्न हुए कि संध्या के समय हवन की अग्नि के सामने बैठकर वशिष्ठजी ने जो कुछ कहा है वह अवश्य सत्य होगा। तब बड़ी नम्रता से उन्होंने वशिष्ठजी से कहा कि 'हम ऐसा ही करेंगे' और यह कहकर उन्होंने और उनकी पत्नी ने गुरुजी से इस व्रत के लिये आज्ञा ली।।92।। रात हो चली थी। विद्वान्, सत्यवक्ता, ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठजी ने राजा दिलीप को जाकर सोने की आज्ञा दे दी।।93।। यद्यपि वशिष्ठजी चाहते तो अपनी तपस्या के प्रभाव से ही राजा दिलीप के योग्य भोजन और सोने का उचित प्रबन्ध कर सकते थे; पर वे व्रत के नियमों को जानते थे, इसलिये उन्होंने राजा के व्रत के योग्य [कन्दमूल के भोजन और कुश की चटाई का] ही प्रबन्ध किया था।।94।। कुलपति वशिष्ठजी ने जो पर्णकुटी बताई, उसी में राजा दिलीप ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रानी सुदक्षिणा के साथ कुशा की चटाई पर ही सो गए और प्रातःकाल ही जब वशिष्ठजी ने अपने शिष्यों को वेद पढ़ाना प्रारंभ किया, तब उसकी ध्वनि कान में पड़ते ही राजा दिलीप उठ बैठे।।95।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंशम् महाकाव्य का 'वशिष्ठ के आश्रम में आगमन' नाम का पहला सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वितीयः सर्गः ।।

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ।। 1 ।।
तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया ।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।। 2 ।।
निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ।। 3 ।।
व्रताय तेनानुचरेण धेनोर्न्यषेधि शेषोप्यऽनुयायिवर्गः ।।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ।। 4 ।।
आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत ।। 5 ।।
स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ।। 6 ।।

दूसरा सर्ग

दूसरे दिन प्रातःकाल रानी सुदक्षिणा ने पहले फूल-माला-चन्दन लेकर नन्दिनी की पूजा की, फिर जब नन्दिनी के बछड़े ने दूध पी लिया, तब यशस्वी राजा दिलीप ने उसे बाँध दिया और ऋषि की गौ को जंगल में चरने के लिये खोल दिया।।1।। नन्दिनी चली जा रही थी और उसके खुरों से उड़ी हुई धूल मार्ग को पवित्र करती जा रही थी, उसी मार्ग में नन्दिनी के पीछे-पीछे चलती हुई उस समय की पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ रानी सुदक्षिणा को ठीक वैसे ही चली जा रही थी जैसे श्रुति के पीछे-पीछे स्मृति चली जा रही हो।।2।। कोमल हृदयवाले यशस्वी राजा दिलीप ने आश्रम के द्वार पर से ही रानी सुदक्षिणा को लौटा दिया और अपने आप उस नन्दिनी की रक्षा के लिये चल पड़े जो ऐसी प्रतीत होती थी, मानो साक्षात् पृथ्वी ने ही गौ का रूप धारण कर लिया हो, जिसके चारों थन ही पृथ्वी के चार समुद्र हों।।3।। राजा दिलीप ने केवल रानी को ही नहीं वरन् सब नौकर-चाकरों को भी लौटा दिया; क्योंकि उन्होंने तो गौ की सेवा का व्रत ले ही लिया था। रही अपने शरीर की रक्षा की बात, तो उसके लिये उन्होंने किसी सेवक की आवश्यकता नहीं समझी; क्योंकि जिस राजा ने मनु के वंश में जन्म लिया हो, वह अपनी रक्षा तो स्वयं कर ही सकता है।।4।। राजा दिलीप बड़ी लगन से नन्दिनी की सेवा करने लगे। कभी तो वे उसे रसीली घास की मुट्ठियाँ खिलाते, कभी उसकी देह खुजलाते, कभी डाँस उड़ाते और जिधर भी वह जाना चाहती थी उधर उसे जाने देते।।5।। जब वह खड़ी होती तो राजा भी खड़े हो जाते, ज्यों ही वह चलने को पग बढ़ाती त्यों ही वे भी चल पड़ते, वह बैठती तो ये भी बैठ जाते और जब वह जल पीने की इच्छा करती, तभी राजा भी जल की अभिलाषा रखता था। [बस यह समझिए कि] वे छाया के समान ही उसके पीछे-पीछे चले जा रहे थे।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः।
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः।।7।।
लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम्।।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान्विनेष्यन्निव दृष्टसत्त्वान्।।8।।
विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः।।9।।
मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्त्तमानम्।
अवाकिरन्बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः।।10।।
धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः।।11।।
स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः।।12।।

किसी मतवाले हाथी के माथे से मद की धारा न भी निकलती हो तो भी उसको देखते ही उसके तेज का अनुमान हो जाता है। [राजा दिलीप के साथ भी ठीक यही बात थी।] उन्होंने गौ की सेवा के व्रत के कारण यद्यपि [छत्र, चँवर, आदि सब] राज-चिह्नों और राजसी ठाट छोड़ दिये थे, फिर भी उनके सुगठित शरीर और मुख के तेज को देखकर कोई भी कह सकता था कि ये सम्राट ही हैं।।7।। उनके सिर की लटें जंगल की लताओं के समान उलझ गई थीं। जब वे हाथ में धनुष लेकर जंगल में घूमते थे, तब उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो नन्दिनी की रक्षा के बहाने वे जंगल के दुष्ट जीवों को शान्त रहने की शिक्षा दे रहे हों।।8।। मार्ग के वृक्षों पर अनेक मतवाले पक्षी चहचहा रहे थे। उनका कलरव सुनकर ऐसा जान पड़ता था, मानो मार्ग के वृक्ष, यह समझकर वरुण के समान तेजस्वी राजा दिलीप की जय-जयकार कर रहे हों कि उनकी जय करनेवाला कोई भी सेवक उनके साथ नहीं है।।9।। [जब वृक्षों ने राजा का सत्कार किया तब वन की लताएँ ही क्यों पीछे रहें।] इसलिये जिधर-जिधर राजा दिलीप जाते थे, उधर-उधर की लताएँ अग्नि के समान तेजस्वी और पूजनीय राजा दिलीप के ऊपर उसी प्रकार फूलों की वर्षा करने लगीं, जिस प्रकार राजा के स्वागत में नगर की कन्याएँ राजा के ऊपर धान की खीलें बरसाती हैं।।10।। राजा दिलीप के हाथों में धनुष देखकर भी हरिणियाँ डरीं नहीं; क्योंकि वे उन्हें देखते ही समझ गईं कि ये बड़े कोमल हृदयवाले हैं, [बाण नहीं चलायेंगे।] राजा दिलीप के सुन्दर शरीर को वे इस प्रकार एकटक देखती ही रह गईं, मानो नेत्रों के बड़े होने का उन्हें सच्चा फल प्राप्त हो गया हो।।11।। राजा दिलीप सुन रहे थे कि वन-देवता वन की कुंजों में ऊँचे स्वर से उनका यश गा रहे हैं। उन वन-देवताओं के गीत के साथ वे बाँस भी मधुर बाँसुरी बजा रहे थे, जिनके छेदों में से वायु भर जाने के कारण मधुर स्वर निकल रहे थे।।12।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे।। 13।।
शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन्वनं गोप्तरि गाहमाने।। 14।।
संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः।। 15।।
तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः।
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना।। 16।।
स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानिपश्यन्।। 17।।
आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः।
उभावलंचक्रतुरञ्चिताभ्यां तपोवनावृत्तपथं गताभ्याम्।। 18।।
वशिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्त्तमानं वनिता वनान्तात्।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्।। 19।।

पहाड़ी झरनों की ठंडी फुहारों से लदा हुआ और मन्द-मन्द कँपाए हुए वृक्षों के फूलों की गन्ध में बसा हुआ वायु उन सदाचारी राजा दिलीप को ठंडक देता चल रहा था, जिन्हें छत्र न होने के कारण धूप से कष्ट हो रहा था।।13।। राजा दिलीप प्रजापालक थे, इसीलिये उनके जंगल में पहुँचते ही वर्षा के बिना वन की आग ठंडी हो गई, वहाँ के पेड़ भी फल और फूलों से लद गए और वहाँ के बड़े जीवों ने छोटे जीवों को सताना भी छोड़ दिया।।14।। दिन ढलने पर नये पत्तों की लालिमा के सामने सूर्य की लालिमा चारों ओर फैलकर सब दिशाओं को पवित्र करके अब विश्राम करने लौट चली। उधर लाल रंग की नन्दिनी भी अपने खुरों के स्पर्श से मार्ग को पवित्र करती हुई तपोवन की ओर लौट पड़ी।।15।। पृथ्वी का पालन करनेवाले राजा दिलीप भी वशिष्ठ ऋषि के यज्ञ, श्राद्ध, अतिथि-पूजा आदि धर्म के कामों के लिये दूध देनेवाली उस नन्दिनी के पीछे-पीछे लौटते हुए ऐसे लग रहे थे, जैसे ब्रह्मा की पुत्री श्रद्धा के साथ सदाचार शोभा पाता है।।16।। राजा दिलीप देखते हुए चले जा रहे थे कि कहीं तो छोटे-छोटे तालों में से सूअरों के झुंड निकल-निकल कर चले जा रहे हैं, कहीं मोर अपने बसेरों की ओर उड़े जा रहे हैं, कहीं हरिण हरी-हरी घासों पर थककर बैठ गए हैं और धीरे-धीरे साँझ होने से वन की सारी धरती धुँधली पड़ती जा रही है।।16।। नन्दिनी और दिलीप दोनों धीरे-धीरे चले जा रहे थे। नन्दिनी अपने थन के भारी होने से धीरे-धीरे चल रही थी और राजा दिलीप भारी शरीर होने के कारण धीरे-धीरे चल रहे थे। उन दोनों को धीरे-धीरे चलते देख़कर तपोवन का मार्ग देखते ही बनता था।।18।। सायंकाल में राजा दिलीप नन्दिनी के पीछे-पीछे जब लौटे तब सुदक्षिणा अपलक नेत्रों से उन्हें देखती रह गई मानो उसकी आँखें राजा दिलीप का रूप पीने को प्यासी हों।।19।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव संध्या।।20।।

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः।।21।।

वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्यां प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ।
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि।।22।।

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सांध्यं च विधिं दिलीपः।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम्।।23।।

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः।
क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्।।24।।

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं समं महिष्या महनीयकीर्त्तेः।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य।।25।।

आश्रम के मार्ग में गौ के पीछे राजा दिलीप थे और आगे अगवानी के लिये रानी सुदक्षिणा खड़ी थीं। इन दोनों के बीच में वह लाल रंगवाली नन्दिनी ऐसी शोभा पा रही थी, जैसे दिन और रात के बीच में संध्या सुशोभित होती है।।20।। पहले तो सुदक्षिणा ने हाथ में अक्षत आदि सामग्री लेकर नन्दिनी की पूजा करके प्रदक्षिणा की, फिर प्रणाम करके उसकी सींगों के बीच में माथे पर चन्दन-अक्षत लगाया; क्योंकि उन्होंने समझ लिया था कि वह सींगों का मध्य नहीं वरन् मेरी पुत्र-कामना की पूर्ति का द्वार है।।21।। यद्यपि नन्दिनी उस समय अपना बछड़ा देखने के लिये बहुत उतावली थी, फिर भी वह रानी से पूजा कराने के लिये खड़ी हो गई। नन्दिनी का यह प्रेम देखकर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि नन्दिनी के समान मनोरथ पूर्ण करनेवाले यदि भक्त पर प्रसन्न हो जायें, तो समझ लो कि काम पूरा हो गया।।22।। गौ की पूजा हो चुकने पर शत्रुओं के संहारक राजा दिलीप ने पहले वशिष्ठजी और अरुन्धतीजी के चरणों की वन्दना की और फिर अपने सन्ध्या के नित्यकर्म पूरे किए। जब नन्दिनी का दूध दुह लिया गया और वह बैठ गई तब राजा दिलीप फिर उसकी सेवा में लग गए।।23।। प्रजापालक राजा दिलीप अपनी पत्नी के साथ बहुत देर तक नन्दिनी की सेवा और पूजा करते रहे। जब वह सो गई तब ये दोनों भी सोने चले गए और ज्यों ही वह सोकर उठी, त्यों ही इन दोनों की नींद भी टूट गई।।24।। इस प्रकार सन्तान-प्राप्ति के लिये अपनी पत्नी के साथ यह कठोर व्रत करते हुए दीनों के रक्षक परम कीर्तिशाली राजा दिलीप के इक्कीस दिन बीत गए।।25।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश।। 26।।
सा दुष्प्रधर्षा मनसापि हिंस्रैरित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष।। 27।।
तदीयमाक्रन्दितमार्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम्।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्तयामास नृपस्य दृष्टिम्।। 28।।
स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्।। 29।।
ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः।। 30।।
वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे।। 31।।
बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः।
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः।। 32।।

तब नन्दिनी ने सोचा कि मैं अपने सेवक राजा दिलीप की परीक्षा क्यों न ले-लूँ कि वह सच्चे भाव से सेवा कर रहा है या केवल स्वार्थभाव से। इसीलिये राजा दिलीप जब बाईसवें दिन उसे वन में ले गए, तो वह एकाएक हिमालय की उस गुफा में प्रविष्ट हो गई, जिस पर से गंगाजी की धारा गिर रही थी और जिसके तट पर घनी हरी-हरी घास खड़ी हुई थी।।26।। राजा दिलीप ने भी उधर जाने से उसे नहीं रोका; क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि कोई भी हिंसक जन्तु नन्दिनी पर आक्रमण करने की बात नहीं सोच सकता। इतने में ही गौ को अचानक एक सिंह ने दबोच लिया। उस समय राजा दिलीप पर्वत की शोभा देख रहे थे; इसलिये उन्हें दिखाई ही नहीं पड़ा कि उस पर सिंह कब झपटा।।27।। सिंह की झपट से नन्दिनी रँभाने लगी और उसकी ध्वनि गुफा में गूँज उठी। राजा दिलीप उस समय पर्वत की शोभा निहारने में लगे हुए थे; पर इस पुकार ने उनकी दृष्टि को उसी प्रकार खींच लिया जैसे किसी ने रस्सी में बाँधकर उनकी दृष्टि को खींच लिया हो।।28।। धनुषधारी राजा दिलीप ने देखा कि उस लाल गौ पर बैठा हुआ सिंह ऐसा लग रहा है, जैसे गेरू के पहाड़ की ढाल पर बहुत-से फूलोंवाला लोध का पेड़ फूल रहा हो।।29।। उस समय सिंह के समान चलनेवाले शरणागत-रक्षक और बलपूर्वक शत्रुओं का संहार करनेवाले राजा दिलीप क्रोध से लाल हो गए और उन्होंने समझा कि यह सिंह मेरी शरण में आई हुई गौ को मारकर मेरा अपमान करना चाहता है। बस, झट उन्होंने उस सिंह को मारने के लिये तूणीर से बाण निकालने को हाथ उठाया।।30।। [कहाँ तो राजा दिलीप उस सिंह को मारने जा रहे थे और कहाँ यह हुआ कि] उनके दाहिने हाथ की उँगलियाँ उनके नखों से चमकनेवाले बाणों के पंखों से चिपक गईं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ने लगा, जैसे बाण निकालने का प्रयत्न करने का किसी ने चित्र खींच लिया हो।।31।। इसी प्रकार हाथ बँध जाने से राजा दिलीप पास ही खड़े अपराधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्।
विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः।। 33।।
अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य।। 34।।
कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।
अवेहि मां किंकरमष्टमूर्त्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्।।35।।
अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः।। 36।।
कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः।। 37।।
तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ।
व्यापारितः शूलभृता विधाय सिंहत्वमङ्कागतसत्त्ववृत्ति।। 38।।
तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।
उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव।। 39।।

पर प्रहार न कर सकने के कारण क्रोध से तमतमा उठे और अपने तेज से भीतर ही भीतर उसी प्रकार जलने लगे जैसे मन्त्र और जड़ी से बँधा हुआ साँप।। 32।। सज्जनों के मित्र, मनुवंश के शिरोमणि और सिंह के समान पराक्रमी राजा दिलीप बड़े अचम्भे में पड़े हुए थे और जब वह सिंह मनुष्य की बोली में बोलने लगा तब तो उनके आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा।।33। सिंह बोला—हे राजन्! तुम मुझे मारने का प्रयत्न मत करो; क्योंकि मुझ पर जो भी अस्त्र चलाओगे, वह व्यर्थ जायेगा। देखो! वायु का जो वेग वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंक सकता है, वह पर्वत का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।।34।। [मुझे तुम साधारण सिंह मत समझना] मैं सर्वशक्तिशाली शंकरजी का कृपापात्र सेवक तथा कुम्भोदर नाम का गण हूँ और शिवजी के शक्तिशाली गण निकुम्भ का मित्र हूँ। जब शंकरजी कैलाशपर्वत के समान उजले नन्दी पर चढ़ते हैं, तब पहले अपने चरणों से मेरी पीठ पवित्र करते हैं।।35।। यह जो तुम्हारे सामने बड़ा-सा देवदारु का पेड़ दिखाई दे रहा है, इसे शंकरजी अपने पुत्र के समान मानते हैं; क्योंकि स्वयं पार्वती अपने सोने के घटरूपी स्तनों के रस से सींच-सींचकर इसे इतना बड़ा किया है।।36।। [तुम जानते नहीं हो कि पार्वतीजी इससे कितना प्यार करती हैं।] एक बार एक जंगली हाथी ने आकर इससे रगड़-रगड़कर अपनी कनपटी खुजलाने लगा। उससे इसकी थोड़ी छाल छिल गई। बस, इतने पर ही पार्वतीजी को ऐसा शोक हुआ, जैसा दैत्यों के बाणों से घायल स्वामिकार्तिकेय को देखकर हुआ था।।37।। तब से शंकरजी ने जंगली हाथियों को डराने के लिये मुझे यहाँ पहाड़ के ढाल पर रखवाला बनाकर रख छोड़ा है और मेरा पेट भरने के लिये मुझे आज्ञा दे दी है कि यहाँ जो जीव आये उसे मारकर खा जाया करो।।38।। जैसे चन्द्रमा का अमृत राहु को मिलता है, वैसे ही शिवजी की कृपा से ठीक भोजन के समय पर यह गौ आ गई है और मेरे आज के भोजन के लिये पर्याप्त है।।39।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति।। 40।।

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य।
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार।। 41।।

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः।
जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः।। 42।।

संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र कामं हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः।
अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान्भावमतोऽभिधास्ये।। 43।।

मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः।
गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम्।। 44।।

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः।। 45।

अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन्।
भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती किंचिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे।। 46।।

इसलिये अब तुम लाज छोड़कर घर लौट जाओ। तुमने यह तो दिखा ही दिया है कि तुम अपने गुरु के बड़े भक्त हो। परन्तु जब किसी वस्तु की रक्षा शस्त्र से हो ही न सके, तब शस्त्र धारण करने वाले का क्या दोष? इससे उसका तो अपयश होता नहीं है।।40।। सिंह की ऐसी ढीठ बातें सुनकर जब राजा को विश्वास हो गया कि शंकरजी के प्रभाव से ही हम अस्त्र नहीं चला सके, तब कहीं उनके मन की आत्मग्लानि कुछ कम हो पाई।।41।। एक बार जब इन्द्र ने शिवजी पर वज्र चला दिया था, तब शिवजी ने केवल उनकी ओर देख भर दिया कि इन्द्र जड़ीभूत हो गए। ठीक वही दशा दिलीप की भी हो गई। बाण चलाने में पहले-पहल विफल होनेवाले, हाथ बँधे राजा दिलीप ने सिंह से कहा।।42।। 'हे सिंह! हाथ के बँध जाने से मैं कुछ कर नहीं सकता इसलिये जो कुछ मैं कहूँगा, उसकी सब खिल्ली ही उड़ायेंगे, फिर भी तुम सबके मन की बात जानते हो, इसलिये मैं तुमसे ही कह रहा हूँ।।43।। देखो! जड़-चेतन सभी प्राणियों को जन्म देनेवाले, पालन-पोषण करने वाले और संहार करनेवाले शिवजी का मैं बड़ा आदर करता हूँ। पर साथ ही मैं अग्निहोत्री गुरु के इस गौ रूपी धन को भी अपनी आँखों के आगे नष्ट होते नहीं देख सकता।।44।। इसलिये तुम मुझे खाकर अपनी भूख मिटा लो और महर्षि वशिष्ठजी की इस गौ को छोड़ दो; क्योंकि इसका नन्हा बछड़ा साँझ हो जाने से इसकी बाट देख रहा होगा।।45।। यह सुनकर वह शिवजी का सेवक सिंह गुफा के अँधेरे में दाँत की चमक से उजाला करता हुआ कुछ हँसकर राजा से बोला।।46।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्।। 47।।
भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेका भवेत्स्वस्तिमति त्वदन्ते।
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि।। 48।।
अथैकधेनोरपराधचण्डाद्गुरोः कृशानुप्रतिमाद्बिभेषि।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयताघटोध्नीः।। 49।।
तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम्।।
महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः।। 50।।
एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन।
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव।। 51।।
निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच।
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः।। 52।।
क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा।। 53।।

'हे राजन्! जान पड़ता है कि तुममें यह सोचने की शक्ति नहीं रह गई कि तुम्हें क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए? क्योंकि तुम एक साधारण-सी गौ के पीछे इतना बड़ा राज्य, यौवन और ऐस सुन्दर शरीर छोड़ने पर उतारू हो गए हो।।47।। यदि तुम केवल प्राणियों पर दया करने के विचार से ही ऐसा कर रहे हो, तो भी यह त्याग ठीक नहीं है, क्योंकि इस समय यदि तुम मेरे भोजन बनते हो, तो केवल एक गौ की रक्षा होगी, परन्तु यदि जीते रहोगे, तो पिता के समान तुम अपनी पूरी प्रजा की रक्षा कर सकोगे।।48।। यदि तुम गौ के स्वामी और अग्नि के समान अपने तेजस्वी गुरुजी से डरते हो, तो उन्हें बड़े-बड़े थनोंवाली करोड़ों गौएँ देकर तुम मना सकते हो।।49।। देखो! अभी तुम्हारे खेलने-खाने के दिन हैं। इसलिए तुम अपने बलवान् शरीर की रक्षा करो, क्योंकि विद्वानों ने कहा है कि सुख और समृद्धि से भरा हुआ राज्य पृथ्वी पर ही स्वर्ग के समान होता है। उस स्वर्ग और इस स्वर्ग में इतना ही अन्तर होता है कि यह भूमिका स्वर्ग होता है और वह देवलोक का।।50।। जब इतना कहकर सिंह चुप हो गया, तब पर्वत की कन्दरा से भी सुनाई पड़नेवाली उसकी गूँज ऐसी जान पड़ी मानो पर्वत ने भी प्रसन्न होकर सिंह की ही बातों का समर्थन किया हो।।51।। राजा ने एक ओर सिंह की बातें सुनीं और दूसरी ओर देखा कि सिंह के नीचे दबी हुई गौ कातर नेत्रों से रक्षा की भीख माँग रही है। दयालु राजा दिलीप का जी भर आया और वे बोले–।।52।। 'हे सिंह! क्षत्रिय शब्द का अर्थ ही है कि दूसरों को नष्ट होने से बचाये। यदि मैंने यह काम नहीं किया तो मेरा राज्य करना ही किस काम का और अपशय लेकर जीते रहना ही किस काम का।।53।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथं न शक्योऽनुनयो महर्षेर्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम् ।
इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयास्याम् ।। 54 ।।

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः ।
न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ।। 55 ।।

भवानपीदं परवानवैति महान्हि यत्नस्तव देवदारौ ।
स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ।। 56 ।।

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः ।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधाना पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ।। 57 ।।

संबन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते ।
तद्भूतनाथानुग नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ।। 58 ।।

तथेति गामुक्तवते दिलीपः सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः ।
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य ।। 59 ।।

तस्मिन्क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम् ।
अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता ।। 60 ।।

तुम समझते हो कि इसके बदले में दूसरी गौएँ देकर मैं महर्षि वशिष्ठ को मना लूँगा। यह नहीं हो सकता। तुम इस गौ को नहीं पहचान रहे हो। यह किसी भी प्रकार कामधेनु से कम नहीं है। आज शंकरजी की कृपा से ही तुमने इस पर आक्रमण किया है, नहीं तो तुममें इतनी शक्ति कहाँ [कि इसका बाल भी बाँका कर सको]।।54।। इसलिये मैं अपना शरीर देकर भी इसे छुड़ाऊँगा; क्योंकि ऐसा करने से तुम्हारी भूख भी मिट जायेगी और गौ के न रहने से वशिष्ठ जी की जो यज्ञ-क्रियायें रुक जातीं, वे भी न रुकेंगी।।55।। देखो भाई! तुम भी दूसरे के सेवक हो और बड़ी लगन से देवदारु के वृक्ष की रक्षा कर रहे हो। तुम यह जानते हो कि जिसकी रक्षा का भार सेवक को मिलता है, यदि वह नष्ट हो जाये और सेवक जीता रह जाये, तो बताओ वह अपने स्वामी के आगे कौन-सा मुँह लेकर जायेगा।।56।। यदि तुम किसी कारण से मेरे ऊपर दया करना चाहते हो, तो मेरे यश की रक्षा करो, क्योंकि मुझ जैसे लोगों को पञ्च-तत्व से बने इस नश्वर शरीर का तनिक भी मोह नहीं होता।।57।। देखो भाई! बातचीत चलाने के नाते हम दोनों मित्र हो गए हैं, इसलिये हे शिव के सेवक! अपने मित्र की प्रार्थना मत ठुकराओ।।58।। यह सुनकर सिंह बोला—अच्छी बात है, यही सही। तत्काल दिलीप का हाथ खुल गया और राजा दिलीप अपने अस्त्र फेंककर मास के पिंड के समान सिंह के आगे जा पड़े।।59।। नीचा मुँह करके राजा दिलीप यह सोच ही रहे थे कि अब सिंह उन पर आक्रमण करने वाला है कि इतने में ही प्रजा-पालक राजा दिलीप के ऊपर आकाश से विद्याधरों ने फूलों की झड़ी लगा दी।।60।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन्।
ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम्।। 61।।

तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि।
ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुःप्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः।। 62।।

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पयाच प्रीतास्मि ते पुत्र वरं वृणीष्व।
न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्।। 63।।

ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।
वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणायां तनयं ययाचे।। 64।।

संतानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश।। 65।।

वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः।
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः।। 66।।

इत्थं क्षितीशेन वशिष्ठधेनुर्विज्ञापिता प्रीततरा बभूव।
तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः प्रत्याययावाश्रममश्रमेण।। 67।।

इस बीच अमृत के समान मीठे वचन सुनाई पड़े—'उठो बेटा'! राजा दिलीप ने सिर उठाया और देखा कि आगे स्तनों से दूध टपकाती हुई माता के समान केवल नन्दिनी ही खड़ी है, सिंह का कहीं नाम भी नहीं है।।61।। राजा दिलीप आश्चर्य भरी आँखों से यह सब देख रहे थे। इतने में नन्दिनी मनुष्य की बोली में बोलने लगी—'हे साधु! मैंने माया रचकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। वशिष्ठ ऋषि के प्रभाव से यमराज भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, फिर अन्य हिंसक जीवों की तो शक्ति ही क्या है।।62।। हे पुत्र! तुमने जो अपने गुरु में भक्ति और मुझ पर दया दिखलाई है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो वर माँग लो। तुम मुझे दूध देनेवाली साधारण गौ मात्र न समझना। मैं प्रसन्न हो जाऊँ तो मैं मुँह-माँगा फल दे सकती हूँ।।63।। तब मनचाहा दान देनेवाले और अपने पराक्रम से वीर कहलाने वाले राजा दिलीप ने हाथ जोड़कर यह वर माँगा कि मेरी प्यारी रानी सुदक्षिणा के गर्भ से ऐसा यशस्वी पुत्र हो जिससे सूर्यवंश बराबर बढ़ता चले।।64।। नन्दिनी ने सन्तान माँगने वाले राजा दिलीप से प्रतिज्ञा की कि मैं तेरी इच्छा पूर्ण करूँगी और यह आज्ञा दी कि तू एक दोने में मेरा दूध दुहकर पी जा।।65।। राजा ने कहा—''हे माँ! मैं चाहता हूँ कि बछड़े के पी चुकने और हवन-क्रिया से बचने पर ही ऋषि की आज्ञा लेकर मैं उसी प्रकार आपका दूध ग्रहण करूँ, जैसे मैं राज्य की रक्षा करके उसका छठा भाग ग्रहण करता हूँ।।66।। यह बात सुनकर तो नन्दिनी बहुत ही प्रसन्न हुई और राजा के साथ ही हिमालय की उस कन्दरा से बिना थके ही आश्रम की ओर लौट पड़ी।।67।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव।। 68।।
स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम्।
पपौ वशिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्त्तमिवातितृष्णः।। 69।।
प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य।
तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वशिष्ठः।। 70।।
प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च।
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः।। 71।।
श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः।
ययावनुद्घातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन।। 72।।
तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम्।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम्।। 73।।

निर्मल चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले राजाधिराज दिलीप जब वशिष्ठजी के पास पहुँचे तब उनका प्रसन्न मुख देखते ही वशिष्ठजी सब बातें पहले से समझ गए। इसलिए राजा ने जो समाचार सुनाया वह उन्हें ऐसा लगा मानो दुहराया जा रहा हो। गुरुजी से कह चुकने पर राजा दिलीप ने यह समाचार सुदक्षिणा से भी कह सुनाया।।68।। जब बछड़ा दूध पी चुका और हवन भी हो चुका, तब सज्जनों के प्यारे प्रशंसनीय राजा दिलीप ने वशिष्ठजी की आज्ञा से नन्दिनी का दूध ऐसे पी लिया, मानो उन्हें बड़ी प्यास लगी हुई हो। उस दूध की धवलता तो कहना ही क्या! उनको जान पड़ा मानो स्वयं उज्ज्वल यश ही दूध बन आया हो।।69।। दूसरे दिन प्रातःकाल जितेन्द्रिय वशिष्ठजी ने समझ लिया कि गौ की सेवा का व्रत तो पूरा ही हो गया; इसलिये उन्होंने राजा और रानी दोनों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा मार्ग आनन्द से कटे और उन्हें अयोध्या के लिये विदा कर दिया।।70। विदा लेते समय राजा ने पहले हवन-कुण्ड की, फिर गुरु वशिष्ठ की, तब माता अरुन्धती की और सबसे पीछे बछड़े के साथ बैठी हुई नन्दिनी की परिक्रमा की। महर्षि के आशीर्वाद पाने से उनका तेज और भी अधिक बढ़ गया।।71।। सहनशील राजा दिलीप अपनी धर्मपत्नी के साथ जिस रथ पर चढ़कर अयोध्या को चले, उसकी ध्वनि कानों को बड़ी मीठी लग रही थी और वह ऐसा अच्छा था कि उसमें नाम मात्र की भी हचक नहीं लगती थी। इसलिये उस पर सुख से चढ़कर जाते हुए वे ऐसे लगते थे, मानो वे अपने सफल मनोरथ पर बैठे हुए जा रहे हों, रथ पर नहीं।।72।। राजा को अयोध्या से गए बहुत दिन हो गए थे; इसलिये प्रजा उनके दर्शन के लिये तरस रही थी। पुत्र की उत्पत्ति के लिये जो उन्होंने व्रत लिया था, उससे वे कुछ दुबले हो गए थे। अब इतने दिनों बाद लौटने से उनकी प्रजा उन्हें ऐसी एकटक होकर देखने लगी, जैसे लोग द्वितीया के चन्द्रमा के उदय होने पर उसे ध्यान से देखते हैं।।73।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरंदरश्रीः पुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः।
भुजे भुजंगेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज।।74।।
अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः।
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः। 75।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
नन्दिनीवरप्रदानो नाम द्वितीयः सर्गः।।

इन्द्र के समान सम्पत्तिशाली राजा दिलीप ने प्रजा का आदर पाकर अपनी उस अयोध्या नगरी में प्रवेश किया, जिसमें उनके स्वागत के लिये झंडे ऊँचे कर दिए गए थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने शेषनाग के समान अपनी बलवती भुजाओं से फिर राज-काज सँभाल लिया।।74।। जैसे अत्रि ऋषि के नेत्र से निकली हुई चन्द्रमारूपी ज्योति को आकाश ने धारण किया और जैसे स्कन्द को उत्पन्न करनेवाले शंकरजी के उस तेज को गंगाजी ने धारण कर लिया, जिसे अग्नि भी नहीं सँभाल सकी थी, वैसे ही रानी सुदक्षिणा ने राजा दिलीप का वंश चलाने के लिये [आठों दिशाओं के] लोकपालों के समान तेजस्वी पुरुषों के तेज से भरा हुआ गर्भ धारण किया।।75।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य का 'नन्दिनी-वर-प्रदान'
नामक दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। तृतीयः सर्ग ।।

अथेप्सितं[1] भर्तुरुपस्थितोदयं सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम् ।
निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य संततेः सुदक्षिणा दोर्हृदलक्षणं दधौ ।। 1 ।।
शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ।। 2 ।।
तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम् ।। 3 ।।
दिवं मरुत्वानिव भोक्ष्यते भुवं दिगन्तविश्रान्तरथो हि तत्सुतः ।
अतोऽभिलाषे प्रथमं तथाविधे मनो बबन्धान्यरसान्विलङ्घ्य सा ।। 4 ।।
न मेह्रिया शंसति किंचिदीप्सितं स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी ।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः प्रियासखीरुत्तरकोसलेश्वरः ।। 5 ।।
उपेत्य सा दोहददुःखशीलतां यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम् ।
न हीष्टमस्य त्रिदिवेऽपि भूपतेरभूदनासाद्यमधिज्यधन्वनः ।। 6 ।।

तीसरा सर्ग

धीरे-धीरे रानी सुदक्षिणा के शरीर में उस गर्भ के लक्षण दिखाई देने लगे, जो राजा दिलीप की इच्छा पूरी होने का सन्देश दे रहे थे, जिन्हें देख-देखकर रानी की सखियों के नेत्रों को ऐसा सुख मिल रहा था, मानो चाँदनी देखकर मगन हो रही हों और जो इस बात के प्रमाण थे कि अब इक्ष्वाकु-वंश नष्ट नहीं होगा, बराबर चलता रहेगा।।1।। गर्भिणी होने से रानी दुबली पड़ गई थीं; इसलिये उन्होंने अपने बहुत-से गहने उतार डाले। उनका मुँह लोध के फूल के समान पीला पड़ गया और इस वेश में रानी सुदक्षिणा उस रात जैसी लगने लगीं, जब थोड़े से तारे बचे रह जाते हैं और चन्द्रमा भी पीला पड़ जाता है।।2।। जैसे गर्मी के अन्त में पहली बार वर्षा होने से जंगल के छोटे-छोटे तालों की मिट्टी सोंधी हो जाती है और हाथी उसे बार-बार सूँघते हैं वैसे ही मिट्टी खाने से रानी सुदक्षिणा का जो मुँह सोंधा हो गया था उसे एकान्त में बार-बार सूँघकर भी राजा दिलीप तृप्त नहीं होते थे।।3।। रानी होकर भी सुदक्षिणा ने सब पदार्थ छोड़कर मानो इसलिये मिट्टी खाना आरंभ किया कि भविष्य में उसका पुत्र भी सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसी प्रकार राज करे जैसे इन्द्र स्वर्ग पर राज करते हैं।।4।। राजा दिलीप समझते थे कि सुदक्षिणा बड़ी लजीली है और अपने मन की बात हमें बताती नहीं है; इसलिये वे बार-बार उसके पास रहनेवाली सखियों से पूछते रहते थे कि रानी को किन-किन वस्तुओं की इच्छा होती है।।5।। गर्भिणी रानी सुदक्षिणा जब जिस वस्तु की इच्छा करती थीं, वह उसी समय उन्हें मिल भी जाती थीं; क्योंकि धनुषधारी राजा दिलीप को स्वर्ग की भी वस्तुएँ मिल सकती थीं फिर इस लोक की वस्तुओं तो बात ही क्या!।।6।।

---

1. ततो विशांपत्युरनन्यसंततेर्मनोरथं किंचिदिवोदयोन्मुखम् ।
अनन्यसौहार्दरसस्य दोहदं प्रिया प्रपेदे प्रकृतिप्रियंवदा ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमेण निस्तीर्य च दोहदव्यथां प्रचीयमानावयवा[1] रराज सा।
पुराणपत्रापगमादनन्तरं लतेव संनद्धमनोज्ञपल्लवा।।7।।
दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम्।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः पङ्कजकोशयोः श्रियम्।।8।।
निधानगर्भामिव सागराम्बरां शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्।
नदीमिवान्तःसलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्वां महिषीममन्यत।।9।।
प्रियानुरागस्य मनः समुन्नतेर्भुजार्जितानां च दिगन्तसंपदाम्।
यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रिया धृतेश्च धीरः सदृशीव्यर्धत्त सः।।10।।
सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात्प्रयत्नमुक्तासनया गृहागतः।
तयोपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया ननन्द पारिप्लवनेत्रया नृपः।।11।।
कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथ गर्भकर्मणि[2]।
पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखीं प्रियां ददर्श काले दिवमभ्रितामिव।।12।।
ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैरसूर्यगैः सूचितभाग्यसंपदम्।
असूत पुत्रं समये शचीसमा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम्।।13।।

धीरे-धीरे जब गर्भ के प्रारम्भिक कष्ट बीत गए। तब रानी वैसे ही हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर लगने लगी, जैसे बसंत ऋतु में लताएँ पुराने पत्ते गिराकर नये कोमल पत्तों से लदकर सुन्दर लगने लगती हैं।।7।। थोड़े ही दिनों में उसके बड़े-बड़े स्तनों की घुंडियाँ (Nipples of Breasts) काली पड़ गईं। इससे रानी के स्तन ऐसे सुन्दर लगने लगे कि उनकी शोभा के आगे कमल के जोड़े पर बैठे हुए भौरों की शोभा भी हार मान बैठी।।8।। राजा दिलीप गर्भिणी सुदक्षिणा को वैसे ही महत्त्ववाली समझते थे, जैसे अमूल्य रत्नों से भरी हुई पृथ्वी, अपने भीतर अग्नि छिपाए रखनेवाली शमी का वृक्ष या भीतर ही भीतर जल बहानेवाली सरस्वती नदी।।9।। राजा दिलीप जितना रानी को प्यार करते थे, जितनी उन्हें प्रसन्नता थी और जितना बड़ा उनका राज्य था, उतने ही ठाट-बाट से उन्होंने पुंसवन आदि संस्कार भी किए।।10।। जब धीरे-धीरे रानी सुदक्षिणा का वह गर्भ बढ़ने लगा, जिसमें लोकपालों के अंश भरे थे, तब उन्हें उठने-बैठने में भी कठिनाई होने लगी, इसलिये जब राजा निवास में आते, तब वे बड़ी कठिनाई से उनके स्वागत के लिये उठ पातीं, उनको प्रणाम करने के लिए जब वे हाथ जोड़तीं तो हाथ ढीले पड़ जाते और थकावट से बार-बार आँखों में आँसू आ जाते। इन बातों को देख-देखकर राजा दिलीप बड़े प्रसन्न होते [क्योंकि वे समझते थे कि अब पुत्र होने में विलम्ब नहीं है]।।11।। बच्चों की चिकित्सा करनेवाले बहुत-से चतुर वैद्य वे सब उपाय कर रहे थे, जिनसे गर्भिणी सुख से बच्चा जनती है और गर्भ पुष्ट होता है। दशवें महीने में राजा ने देखा कि शीघ्र ही पुत्र को जन्म देनेवाली रानी ऐसी लग रही थी जैसे तत्काल में बरसनेवाले बादलों से घिरा हुआ आकाश हो।।12।। जिस प्रकार राजा अपनी तीन साधनाओं वाली शक्ति [तेज, उत्साह और ठीक मन्त्रणा] से अचल सम्पत्ति पा लेता है, वैसे ही इन्द्राणी के समान तेजवाली सुदक्षिणा ने भी वह पुत्र उत्पन्न किया,

---

1. उपोढगात्रोपचया 2. गर्भभर्मणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्।। 14।।
अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो वभूवुरालेख्यसमर्पिता इव।। 15।।
जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम्।
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे।। 16।।
निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा नृपस्य कान्तं पिवतः सुताननम्।।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद् गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि।। 17।।
स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ।। 18।।
सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्।।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि।। 19।।

जिसके सौभाग्यशाली होने की सूचना वे पाँच शुभ ग्रह दे रहे थे, जो उस समय उच्चस्थान पर थे और साथ में सूर्य के होने से फल देने में समर्थ थे।।13।। बालक के उत्पन्न होने के समय आकाश खुल गया, शीतल मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगा और हवन की अग्नि की लपटें दक्षिण की ओर घूमकर हवन की सामग्रियाँ लेने लगीं। सभी शकुन अच्छे हो रहे थे [और यह उचित भी था] क्योंकि ऐसे बालक संसार के कल्याण के लिये ही उत्पन्न होते हैं।।14।। उस भाग्यवान् बालक का तेज प्रसूति-गृह में चारों ओर इतना छाया हुआ था कि आधी रात के समय घर में रखे हुए दीपों का प्रकाश भी एकदम फीका पड़ गया और वे ऐसे जान पड़ने लगे, मानो चित्र में बने हुए हों।।15।। झट अन्तःपुर के सेवक ने राजा दिलीप के पास आकर पुत्र होने का समाचार सुनाया। यह सुनकर वे इतने प्रसन्न हुए कि छत्र और दोनों चँवर तो न दे सके [क्योंकि वे राजचिह्न थे] शेष सब आभूषण उन्होंने उन्होंने उतारकर उसे दे डाले।।16।। वे तत्काल भीतर गये और जैसे वायु के रुक जाने पर कमल निश्चल हो जाता है, वैसे ही वे एकटक होकर अपने पुत्र का मुँह देखने लगे। जैसे चन्द्रमा को देखकर महासमुद्र में ज्वार आ जाता है, वैसे ही पुत्र को देखकर राजा को इतना अधिक आनन्द हुआ कि वह उनके हृदय में समा न सका।।17।। पुरोहित वशिष्ठजी ने भी जब यह शुभ समाचार पाया, तब वे भी तपोवन से वहाँ आ गए और स्वभाव से ही सुन्दर उस बालक के जातकर्म आदि संस्कार किये। संस्कार हो जाने पर वह बालक वैसे ही सुन्दर लगने लगा, जैसे खान से निकालकर तराशा हुआ हीरा।।18।। यह बालक तो संसार का कल्याण करनेवाला था; इसलिये उसके जन्म लेने पर केवल सुदक्षिणा के पति दिलीप के ही राजमन्दिर में मनोहर बाजे और वेश्याओं के नाच आदि उत्सव नहीं हो रहे थे; वरन् आकाश में देवताओं के यहाँ भी नाच-गान हो रहा था। 19।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुर्विसर्जयेद्यं सुतजन्महर्षितः।
ऋणाभिधानात्स्वमेव केवलं तदापितॄणां मुमुचे स बन्धनात्।। 20।।
श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम्।। 21।।
पितुः प्रयत्नात्स समग्रसंपदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः[1]।। 22।।
उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरंदरौ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ।। 231।
रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम्।
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत।। 24।।
उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम्।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः।। 25।।
तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि।
उपान्तसंमीलितलोचनो नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ।। 26।।

[जब राजकुमार का जन्म होता है तब बन्दी-गृहों से बन्दी छोड़ दिए जाते हैं, पर राजा दिलीप के राज्य का ऐसा अच्छा प्रबन्ध था कि कोई अपराध ही नहीं करता था। इसलिये] राज्य में कोई बन्दी ही नहीं था, जिसे वे पुत्र-जन्म की प्रसन्नता में छोड़ते। इसलिये उन्होंने समझा कि पुत्र न होने से जो मैं पितरों के ऋण के बन्धन में था उस बन्धन से आज मैं ही छूट गया हूँ। ।20।। [शब्दों के ठीक] अर्थ पहचानने वाले राजा ने (रघि) धातु का 'जाना' अर्थ समझकर अपने पुत्र का नाम इसलिये 'रघु' रक्खा कि वह सम्पूर्ण शास्त्रों के पार पहुँच जायेगा और युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के व्यूहों को तोड़कर उनके भी पार चला जायेगा। ।21।। जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा सूर्य की किरणें पाकर दिन-दिन बढ़ने लगता है, वैसे ही बालक रघु के अंग भी सम्पत्तिशाली पिता की देखरेख में दिन-दिन बढ़ने लगे। ।22।। जैसे कार्तिकेय के समान पुत्र को पाकर शंकर और पार्वती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी और जयन्त-जैसे प्रतापी पुत्र को पाकर इन्द्र और शची प्रसन्न हुए थे, वैसे ही राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा भी उन दोनों के ही समान तेजस्वी पुत्र पाकर बड़े प्रसन्न हुए। ।23।। राजा और रानी में चकवा और चकवी के समान प्रगाढ़ प्रेम था। वह प्रेम यद्यपि एकमात्र पुत्र रघु पर बँट गया था, फिर भी उनके परस्पर प्रेम में कमी नहीं हुई, उलटे वह बढ़ता ही गया। ।24।। जब बालक 'रघु' कुछ बड़े हुए तब धाय ने उन्हें जो कुछ सिखाया, उसे वे अपनी तोतली बोली में बोलने लगे, उसकी उँगली पकड़कर चलने लगे और सिर झुकाकर बड़ों को प्रणाम करना भी सीख गए। राजा दिलीप अपने पुत्र की ये बाललीलाएँ देखकर फूले नहीं समाते थे। ।25।। जब राजा उसे गोद में उठाते, तब उसका शरीर छूने से ही उन्हें ऐसा जान पड़ता था, मानो उनके शरीर पर अमृत की फुहारें बरस रही हों। उस समय आँखें बन्द करके वे बहुत देर तक यह आनन्द लेते ही रह जाते थे। ।26।।

---

1. सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा का प्रकाशित होना या चन्द्रकला का बढ़ना वैज्ञानिक तथ्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमँस्त चानेन परार्ध्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम्।
स्वमूर्तिभेदेन गुणाग्र्यवर्तिना पतिः प्रजानामिव सर्गमात्मनः।। 27।।
स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्।। 28।।
अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।
अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते क्रिया हिं वस्तूपहिता प्रसीदति।। 29।।
धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमाः।
ततार विद्याः पवनातिपातिभिर्दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः।। 30।।
त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवीमशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत्।
न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः।। 31।।
महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव।
रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः पुपोष गाम्भीर्यमनोहरं वपुः।। 32।।
अथास्य गोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयद्गुरुः।
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य सत्पतिं तमोनुदं दक्षसुता इवाबभुः।। 33।।

जैसे प्रजापति ब्रह्मा ने अपने सतोगुण वाले अंश से विष्णु के प्रकट होने पर यह समझ लिया कि अब हमारी सृष्टि-अमर हो गई है, वैसे ही मर्यादापालक दिलीप ने भी यह समझ लिया कि 'रघु' से भी सूर्यवंश सदा चलता रहेगा।।27।। मुण्डन-संस्कार हो जाने पर घने चंचल लटोंवाले तथा समान आयुवाले मंत्रियों के पुत्रों के साथ पहले वर्णमाला लिखना-पढ़ना सीखा और फिर शास्त्र तथा काव्य का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया, मानो नदी के मुहाने से होकर समुद्र में वैठ गए हों।।28।। यज्ञोपवीत हो चुकने पर रघु को चतुर पण्डित लोग सब विद्याएँ भी पढ़ाने लगे। इसमें गुरुओं का सारा परिश्रम सफल हो गया; क्योंकि चतुर शिष्य को जो शिक्षा दी जाती है वह अवश्य सफल होती है।।29।। जैसे सूर्य अपने सरपट दौड़नेवाले घोड़ों की सहायता से थोड़े ही समय में चारों दिशाओं को पार कर लेता है; वैसे ही बुद्धिमान् रघु ने अपनी तीव्रबुद्धि की सहायता से शीघ्र ही चार समुद्रों के समान विस्तृत [आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दंडनीति ये] चारों विद्याएँ सीख लीं।।30।। पवित्र रुरु मृग का चर्म पहनकर रघु ने मंत्रयुक्त अस्त्रों की शिक्षा अपने पिता से ही प्राप्त की; क्योंकि उनके पिता केवल चक्रवर्ती राजा ही नहीं थे; वरन् अद्वितीय धनुष चलानेवाले भी थे।।31। जैसे गाय का बछड़ा बड़ा होकर साँड़ हो जाता है और हाथी का बच्चा बढ़कर गजराज हो जाता है, वैसे ही जब रघु ने भी बचपन बिताकर युवावस्था में पैर रखा, तव उनका शरीर और भी खिल उठा।।32।। राजा ने गोदान संस्कार करके उनका विवाह कर दिया। जैसे दक्ष की [अश्विनी आदि] कन्याएँ चन्द्रमा-जैसे पति को पाकर प्रसन्न हुई थीं, वैसे ही राजकुमारियाँ भी रघु जैसा प्रतापी पति पाकर प्रसन्न हुई।।33।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकंधरः।
वपुः प्रकर्षादजयद्गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत।। 34।।
ततः प्रजानां चिरमात्मना धृतां नितान्तगुर्वीं लघयिष्यता धुरम्।
निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक्।। 35।।
नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं तदास्पदं श्रीर्युवराजसंज्ञितम्।
अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी नवावतारं कमलादिवोत्पलम्।। 36।।
विभावसुः सारथिनेव वायुना घनव्यपायेन गभस्तिमानिव।
बभूव तेनातिरां सुदुःसहः कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः।। 37।।
नियुज्य तं होमतुरंगरक्षणे धनुर्धरं राजसुतैरनुद्रुतम्।
अपूर्णमेकेन शतक्रतूपमः शतं क्रतूनामपविघ्नमाप सः।। 38।।
ततः[1] परं तेन मखाय यज्वना तुरंगमुत्सृष्टमनर्गलं पुनः।
धनुर्भृतामग्रत एव रक्षिणां जहार शक्रः किल गूढविग्रहः।। 39।।
विषादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं कुमारसैन्यं सपदि स्थितं च तत्।
वशिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नन्दिनी।। 40।।

युवावस्था के कारण रघु की भुजाएँ हल के जुए के समान दृढ़ और लम्बी हो गईं, छाती चौड़ी हो गई और कन्धे भारी हो गए। इस प्रकार डील-डौल बढ़ जाने के कारण रघु अपने बूढ़े पिता से भी ऊँचे और तगड़े लगते थे, फिर भी वे इतने नम्र थे कि उन्होंने कभी अपना बड़ापन प्रकट नहीं होने दिया।।34।। जब राजा दिलीप ने देखा कि शिक्षा आदि संस्कारों से रघु नम्र हो गए हैं और भली भाँति राज्य सँभाल सकते हैं, तब उन्होंने सोचा कि बहुत दिनों से जो राज्य मैं चला रहा हूँ, उसे रघु को क्यों न सौंप दूँ? यह विचारकर उन्होंने रघु को युवराज बना दिया।।35।। जैसे सुन्दरता की देवी मुरझाए हुए कमल को छोड़कर नए कमल पर चढ़ जाती है, वैसे ही राज्य-लक्ष्मी भी बूढ़े दिलीप को छोड़कर धीरे-धीरे रघु पर पहुँच गई।।36।। जैसे वायु की सहायता से अग्नि, शरद् ऋतु के खुले हुए आकाश को पाकर सूर्य और मद बहने के कारण हाथी प्रचंड हो जाता है, वैसे ही प्रतापी रघु की सहायता से दिलीप भी इतने शक्तिशाली हो गए कि उनके शत्रु उनसे काँपने लगे।।37।। इन्द्र के समान प्रभावशाली दिलीप ने यज्ञ के घोड़े की रक्षा का भार रघु और अन्य धनुर्धर राजकुमारों को सौंपकर निन्यानवे अश्वमेघ यज्ञ बिना बाधा के पूरे कर लिए।।38।। तब दिलीप ने सौवाँ यज्ञ करने के लिये घोड़ा छोड़ा। इन्द्र को यह बात खटकी और उन्होंने अपने को छिपाकर धनुषधारी रक्षकों के देखते-देखते उस घोड़े को चुरा लिया।।39।। जब घोड़े की रक्षा करनेवाली रघु की सेना ने देखा कि घोड़ा देखते-देखते अदृश्य हो गया तब वे बड़े घबराए और उन्हें आश्चर्य भी हुआ। ठीक उसी समय वहाँ वशिष्ठ ऋषि की प्रभावशालिनी गौ नन्दिनी घूमती-घामती चली आई।।40।।

---

1. अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदङ्गनिस्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम्।
अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः।। 41।।
स पूर्वतः पर्वतपक्षशातनं ददर्श देवं नरदेवसंभवः।
पुनः पुनः सूतनिषिद्धचापलं हरन्तमश्वं रथरश्मिसंयतम्।। 42।।
शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभिर्हरिं विदित्वां हरिभिश्च वाजिभिः।
अवोचदेनं गगनस्पृशा रघुः स्वरेण धीरेण निवर्तयन्निव।। 43।।
मखांशभाजां प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र सदा निगद्यसे।
अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवर्तसे।। 44।।
त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा।
स चेत्स्वयं कर्मसु धर्मचारिणां त्वमन्तरायो भवसि च्युतो विधिः।। 45।।
तदङ्गमग्र्यं मघवन्महाक्रतोरमुं तुरंगं प्रतिमोक्तुमर्हसि।
पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम्।। 46।।
इति प्रगल्भं रघुणां समीरितं वचो निशम्याधिपतिर्दिवौकसाम्।।
निवर्तयामास रथं सविस्मयः प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमुत्तरम्।। 47।।

सज्जन द्वारा सम्मानित रघु ने तत्काल नन्दिनी का मूत्र अपनी आँखों में लगाया, जिससे उन्हें उन सब वस्तुओं को देख सकने की शक्ति आ गई, जो किसी भी इन्द्रिय से किसी को नहीं ज्ञात होतीं।।41।। इस प्रकार दिव्य दृष्टि प्राप्त करके रघु देखते क्या हैं कि पर्वतों के पंख काटनेवाले इन्द्र स्वयं उस घोड़े को लिए चले जा रहे हैं और वह घोड़ा भी उनके रथ के पीछे बँधा हुआ, छुड़ाकर भागने का यत्न कर रहा है, जिसे इन्द्र का सारथी बार-बार सँभालने का यत्न कर रहा है।।42।। रघु ने आँखें गड़ाकर देखा कि घोड़ा चुराकर ले जाने वाले के शरीर पर आँखें ही आँखें हैं, उन आँखों की पलकें भी नहीं गिरती हैं और उनके रथ के घोड़े भी हरे-हरे हैं। बस रघु ने समझ लिया कि हो न हो ये इन्द्र ही हैं और वे ऊँचे गंभीर स्वर से इस प्रकार इन्द्र से बोले, मानो उन्हें लौटने को ललकार रहे हों।।43।। हे देवेन्द्र! विद्वानों का कहना है कि यज्ञ का भाग सबसे पहले आपको ही मिलता है। मेरे पिताजी भी आप लोगों के लिये ही यज्ञ कर रहे हैं, फिर न जाने क्यों आप उसमें विघ्न डाल रहे हैं।।44।। उलटे आपको तो यह चाहिए कि संसार में जो कोई भी यज्ञ में विघ्न डाले उसे आप स्वयं दंड दें, क्योंकि आप तो तीनों लोकों के स्वामी हैं और जब स्वयं आप ही यज्ञ में विघ्न डालने लगेंगे, तब तो संसार से धर्म ही लुप्त हो जायेगा।।45।। इसलिये हे इन्द्रदेव! आप मेरे पिता के अश्वमेघ यज्ञ के लिये इस घोड़े को छोड़ दीजिए। वेद का मार्ग दिखानेवाले महात्माओं को ऐसा ओछा काम करना शोभा नहीं देता।।46।। रघु के अभिमान भरे इन वचनों को सुनकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और अपना रथ लौटाकर वे बोले–।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदात्थ राजन्यकुमार तत्तथा यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः।
जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः।।48।।
हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः।।49।।
अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा पितुस्त्वदीयस्य मयापहारितः।
अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः पदं पदव्यां सगरस्य संततः।।50।।
ततः प्रहस्यापभयः पुरंदरं पुनर्बभाषे तुरगस्य रक्षिता।
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान्।।51।।
स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम्।
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः।।52।।
रघोरवष्टम्भमयेन पत्त्रिणा हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः।
नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने धनुष्यमोघं समधत्त सायकम्।।53।।
दिलीपसूनोः स बृहद्भुजान्तरं प्रविश्य भीमासुरशोणितोचितः।।
पपावनास्वादितपूर्वमाशुगः कुतूहलेनेव मनुष्यशोणितम्।।54।।

'हे राजकुमार! तुम जो कहते हो वह सब ठीक है। पर हम यशस्वियों का यह भी कर्त्तव्य है कि जो अपने से होड़ करें उनसे अपने यश की रक्षा भी करें। मैंने सौ यज्ञ करने का जो यश पाया है, उसे तुम्हारे पिता मुझसे छीनना चाहते हैं।।48।। देखो! जिस प्रकार 'पुरुषोत्तम' केवल विष्णु ही हैं, 'त्र्यम्बक' केवल शंकर ही हैं वैसे ही मुनि लोग 'शतक्रुत' (सौ यज्ञ करनेवाला) केवल मुझे ही कहते हैं। जिन नामों से हम लोग प्रसिद्ध हैं, वे नाम दूसरे नहीं रख सकते।।49।। इसलिए जैसे कपिल मुनि नें तुम्हारे पूर्वज सगर के घोड़े को हर लिया था, वैसे ही मैंने तुम्हारे पिता के इस घोड़े को हर लिया है। तुम इसे छुड़ाने का प्रयत्न मत करो, नहीं तो जैसे कपिल मुनि के क्रोध से सगर के साठ सहस्र पुत्र भस्म हो गए थे, वैसे ही हमारे क्रोध से तुम भी भस्म हो जाओगे।।50।। यह सुनकर अश्व के रक्षक 'रघु' ने निडर होकर हँसते हुए इन्द्र से कहा—'यदि आपने यही निश्चय किया हो, तो शस्त्र उठाइए और युद्ध कीजिए। रघु को जीते बिना आप घोड़ा लेकर नहीं जा सकते।।51।। यह कहकर रघु ने धनुष पर बाण चढ़ाया और पैंतरा साधकर इन्द्र की ओर ऊपर मुँह करके खड़े हो गए। उस समय वे ऐसे लग रहे थे, मानो इन्द्र से युद्ध करने के लिए स्वयं शंकर भगवान् आ डटे हों।।52।। रघु ने खंभे के समान दृढ़ एक बाण इन्द्र की छाती में मारा। इससे इन्द्र बड़े क्रोधित हुए और अपने धनुष पर ऐसा बाण चढ़ाया, जिसका वार कभी चूकता नहीं। इन्द्र का वह धनुष इतना सुन्दर था कि थोड़ी देर के लिये उसने नए बादलों में इन्द्र-धनुष जैसे रंग भर दिए।।53।। बड़े-बड़े राक्षसों का रक्त पीनेवाले उस बाण ने रघु की छाती में घुसकर वहाँ का रक्त बड़े चाव से पिया; क्योंकि उसे अभी तक मनुष्य के रक्त का स्वाद तो कभी मिला ही नहीं था।।54।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशांङ्गुलौ।
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनामचिह्नं निचखान सायकम्।।55।।
जहार चान्येन मयूरपत्त्रिणा शरेणं शक्रस्य महाशनिध्वजम्।
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव।।56।।
तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिकं गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः।
बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणोरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्त्रिभिः।।57।।
अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिस्तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः।
शशाक निर्वापयितुं न वासवः स्वतश्च्युतं वह्निमिवाद्भिरम्बुदः।।58।।
ततः प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम्।
रघुः शशांकार्धमुखेन पत्त्रिणा शरासनज्यामलुनाद्बिडौजसः।।59।।
स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः।
महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे।।60।।
रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडितः पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः।।
निमेषमात्रादवधूय तद्व्यथां सहोत्थितः सैनिकहर्षनिःस्वनैः।।61।।

कार्तिकेय के समान पराक्रमी रघु ने भी अपना नाम खुदा हुआ एक बाण इन्द्र की उस बाईं भुजा में मारा, जिसकी उँगलियाँ ऐरावत को बार-बार थपथपाने से कड़ी हो गई थीं और जिस पर शची ने कुंकुम आदि से कुछ चित्रकारी कर रखी थी।।55। फिर रघु ने मोर के पंखवाले दूसरे बाण से इन्द्र की वज्र-जैसी ध्वजा को काट डाला। उससे इन्द्र को ऐसा क्रोध हुआ, मानो किसी ने बलपूर्वक देवताओं की राज्य-लक्ष्मी के सिर के बाल काट लिए हों।।56।। रघु और इन्द्र दोनों ही अपनी-अपनी जीत चाहते थे और दोनों सूर्य के समान तीखे बाणों से भयंकर युद्ध कर रहे थे। रघु को लक्ष्य बनाकर इन्द्र नीचे की ओर अपने बाण चलाते थे और इन्द्र को लक्ष्य बनाकर रघु ऊपर बाण चला रहे थे। ऊपर देवता और नीचे रघु के सैनिक इस अचरज-भरे युद्ध को देख रहे थे।।57।। जैसे बादल घोर वर्षा करके भी अपने हृदय में उत्पन्न बिजली को नहीं बुझा सकता, वैसे ही इन्द्र भी अपने अंश से पैदा हुए रघु को बाणों की वर्षा से नहीं हरा पा रहे थे।।58।। तब रघु ने अर्द्धचन्द्र के आकार के बाण से इन्द्र की ठीक कलाई के पास धनुष की वह डोरी काट डाली, जिसमें बाण चलाते समय ऐसा प्रचण्ड शब्द होता था, जैसे मथे जाने के समय क्षीरसमुद्र में होता था।।59।। धनुष की डोरी कट जाने से इन्द्र को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने धनुष को तो दूर फेंका और अपने प्रबल शत्रु रघु को मारने के लिये पर्वतों के पंख काटनेवाला अग्नि के समान चमचमाता वज्र उठा लिया।।60।। उस वज्र की मार से रघु पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके गिरते ही उनके सैनिकों ने रोना-पीटना आरम्भ कर दिया; किन्तु क्षण भर में ही वे संभलकर उठ खड़े हुए और उनके साथ ही उनके सैनिकों की जयजयकार भी आकाश में गूँज उठी।।61।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः।
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते।। 62।।
असङ्गमद्रिष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्।
अवेहि मां प्रीतमृते तुरंगमात्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः।। 63।।
ततो निषङ्गादसमग्रमुद्धृतं सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम्।
नरेन्द्रसूनुः प्रतिसंहरन्निषुं प्रियंवदः प्रत्यवदत्सुरेश्वरम्।। 64।।
अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधिनैव कर्मणि।
अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम्।। 65।।
यथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः।
तवैव संदेशहराद्विशांपतिः शृणोति लोकेश तथा विधीयताम्।। 66।।
तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान्रघोर्यथागतं मातलिसारथिर्ययौ।
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्तत।। 67।।
तमभ्यनन्दतप्रथमं प्रवोधितः प्रजेश्वरः शासनहारिणा हरेः।
परामृशनहर्षजड़ेन पाणिना तदीयमङ्गं कुलिशव्रणाङ्कितम्।। 68।।

वज्र की चोट से क्षण भर में संभलकर रघु फिर लड़ने के लिये आ डटे। उनकी इस अद्वितीय वीरता को देखकर इन्द्र बड़े संतुष्ट हुए। ठीक भी था, क्योंकि गुणों का आदर सर्वत्र होता ही है।।62।। इन्द्र ने कहा—'हे राजकुमार! पर्वतों के पंख काटनेवाले मेरे कठोर वज्र की चोट को तुम्हें छोड़कर आज-तक किसी ने नहीं सहा। मैं तुम्हारी वीरता पर प्रसन्न हूँ। तुमं इस घोड़े को छोड़कर और जो कुछ मुझसे माँगना चाहो, माँग लो।।63।। इन्द्र के ये वचन सुनकर रघु ने तूणीर से आधे निकाले हुए उस बाण को फिर से उसमें डाल दिया, जिसके सुनहरे पंख की चमक से रघु की उँगलियों के नख भी चमक उठे थे और फिर वे इन्द्र से बोले।।64।।—'हे इन्द्र! यदि आप घोड़े को नहीं देना चाहते हैं, तो यही वरदान दीजिए कि मेरे पिता विधिपूर्वक यज्ञ को समाप्त करके इस घोड़े के विना ही सौ अश्वमेध यज्ञ करने का फल पा जाएँ।।65।। हे लोकेश! मेरे पिता यज्ञमंडप में अष्टमूर्ति शिवजी के एक अंश के रूप में बैठे हुए हैं। अतः वहाँ इस समय हम लोगों में से कोई पहुँच नहीं सकता। इसलिये ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपका ही कोई दूत जाकर उनको यह समाचार सुना आये।।66।। इन्द्र ने कहा—'ऐसा ही होगा।' यह कहकर जिस मार्ग से वे आए थे, उसी मार्ग से चले गए। सुदक्षिणा के पुत्र रघु भी अपने पिता राजा दिलीप की सभा में लौट आए। वे बड़े खिन्न थे; क्योंकि इन्द्र से युद्ध में जीतने पर भी अश्वमेध का घोड़ा लौटा न पाने का उन्हें बड़ा दुःख था।।67।। रघु के पहुँचने के पहले ही इन्द्र के दूत ने राजा दिलीप को सब वृत्तान्त सुना दिया था। इसलिये जब रघु वहाँ आए, तब राजा दिलीप ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और जहाँ उन्हें वज्र लगा था, वहाँ धीरे-धीरे सहलाने लगे।।68।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति क्षितीशो नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां महनीयशासनः ।।
समारुरुक्षुर्दिवमायुषः क्षये ततान सोपानपरम्परामिव ।। 69 ।।
अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ।। 70 ।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रघुराज्याभिषेको नाम तृतीयः सर्गः ।।

इस प्रकार जिस दिलीप की आज्ञा कोई टाल नहीं सकता था। उन्होंने मानों स्वर्ग जाने के लिये निन्यानवे यज्ञों की सीढ़ी सी बना ली थी। ।69। तब संसार के सब विषय छोड़कर राजा दिलीप ने अपने नवयुवक पुत्र रघु को शास्त्रों के अनुसार छत्र, चँवर आदि राजचिह्न भी सौंप दिए और देवी सुदक्षिणा के साथ तप करने के लिये जंगल की राह ली; क्योंकि इक्ष्वाकु-वंश के राजाओं में यही परम्परा चली आई है कि वे बूढ़े होने पर जंगल में जाकर तपस्या किया करते थे। ।70 ।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'रघु का
राज्याभिषेक' नामक तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्थः सर्गः ।।

स राज्यं गुरुणां दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः।।1।।
दिलीपानन्तरं राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम्।।
पूर्वं प्रधूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः।।2।।
पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्ननयनपङ्क्तयः।
नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः।।3।।
सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना।
तेन सिहासनं पित्र्यमखिलं[1] चारिमण्डलम्।।4।।
छायामण्डललक्ष्येण तमदृश्या किल स्वयम्।
पद्मा पद्मातपत्रेण भेजे साम्राज्यदीक्षितम्।।5।।
परिकल्पितसांनिध्या काले काले च बन्दिषु।
स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती।।6।।
मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्भुक्ता यद्यपि राजभिः।
तथाप्यनन्यपूर्वेव तस्मिन्नासीद्वसुंधरा।।7।।

चौथा वर्ग

जिस प्रकार सायंकालीन सूर्य से तेज लेकर आग चमक उठती है, वैसे ही अपने पिता से राज्य पाकर रघु और भी अधिक तेजस्वी हो गए।।1।। जब दूसरे राजाओं ने सुना कि दिलीप के बाद रघु राजा हो गए, तब उनके हृदय में बैर की जो आग धीरे-धीरे सुलग रही थी वह मानो भड़क उठी।।2।। राजा रघु जब अपने ऊँचे सिंहासन पर बैठे थे, तब उनकी प्रजा के सब बूढ़े-बच्चे उनकी ओर आँख उठाकर देखते हुए वैसे ही प्रसन्न होते थे, जैसे आकाश में उठे हुए नये इन्द्रधनुष को देखकर लोग प्रसन्न होते हैं।।3।। हाथी के समान मस्त चाल से चलनेवाले राजा 'रघु' ने पिता के सिंहासन पर और अपने शत्रुओं पर एक साथ अधिकार कर लिया।।4।। जब वे सिंहासन पर बैठते थे, उस समय उनके चारों ओर प्रकाश का एक घेरा-सा बन जाता था, उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो लक्ष्मी स्वयं छिपकर उज्ज्वल कमल का छत्र लेकर उनके पीछे खड़ी हो।।5।। समय-समय पर सरस्वती भी उनके चारणों के कंठों में बैठकर अर्थभरा बिरद सुनाकर उस प्रशंसनीय राजा 'रघु' का गुण गाती थी।।6।। रघु से पहले मनु आदि बहुत-से प्रतापी राजा पृथ्वी का भोग कर चुके थे; पर रघु के हाथ में पहुँचकर वही पृथ्वी ऐसी नई जान पड़ने लगी, मानो पहले-पहले रघु के ही हाथों में आई हो।।77।।

---

1. पैत्र्यमखिलम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स हि सर्वस्य लोकस्ययुक्तदण्डतया मनः।
आददे नातिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः।।8।।
मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ।
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः।।9।।
नयविद्भिर्नवे राज्ञि सदसच्चोपदर्शितम्।
पूर्व एवाभवत्पक्षस्तस्मिन्नाभवदुत्तरः।।10।।
पञ्चानामपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः।
नवे तस्मिन्महीपाले सर्वं नवमिवाभवत्।।11।।
यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्।।12।।
कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने।
चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना।।13।।
लब्धप्रशमनस्वस्थमथैनं समुपस्थिता।
पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा।।14।।

जैसे बसंत का वायु बहुत शीत या बहुत गरम न होने के कारण सबको अच्छा लगता है [वैसे ही रघु भी न तो अधिक कठोर दंड देते थे, न अधिक कोमल] जो जैसा अपराध करता था, उसको वैसा ही दंड देते थे। इस प्रकार के न्याय से उनकी प्रजा भी उनसे बड़ी प्रसन्न थी।।8।। जैसे आम के सुन्दर फल देखकर लोग उसके बौर को भूल जाते हैं, वैसे ही रघु में राजा दिलीप से अधिक गुण देखकर लोग दिलीप को भूल गए।।9।। नीति जाननेवाले मंत्रियों ने यद्यपि रघु को सरल और कुटिल दोनों प्रकार की नीतियों से राज्य चलाने की विधियाँ सिखाई थीं, किन्तु उस धर्मात्मा राजा ने सीधी नीति को ही अपनाया, टेढ़ी को छोड़ दिया।।10।। रघु के सिंहासन पर बैठते ही जल की मिठास अधिक हो गई, फूलों की सुगन्ध बढ़ गई और [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन] पाँचों तत्त्वों के गुण भी बढ़ने लगे। ऐसा जान पड़ने लगा, मानो नये राजा को पाकर सभी वस्तुएँ नयी हो गई हों।।11।। जैसे सबको आनन्द देकर चन्द्रमा ने अपना चन्द्र नाम सार्थक कर दिया और सबको तपाकर सूर्य ने अपना 'तपन' नाम सार्थक किया, वैसे ही रघु ने भी प्रजा का रंजन करके, उन्हें सुख देकर अपना 'राजा' नाम सार्थक कर दिया।।12।। यद्यपि रघु के नेत्र कानों तक फैले हुए और बहुत बड़े-बड़े थे; पर इन्हें अधिक भरोसा अपने उस शास्त्र-चक्षु पर था, जिससे वे सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को भी समझ जाते थे।।13।। जब रघु ने अपने राज्य में शान्ति स्थापित कर ली और उनका चित्त ठिकाने हुआ तभी दूसरी राज्य-लक्ष्मी के समान वह शरद् ऋतु आ गई, जिसमें चारों ओर सुन्दर कमल खिल गए थे।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वृष्टलघुभिर्मेघैर्मुक्तवर्त्मा सुदुःसहः।
प्रतापस्तस्य भानोश्चयुगपद्व्यानशे दिशः।। 15।।
वार्षिकं संजहारेन्द्रो धनुर्जैत्रं रघुर्दधौ।
प्रजार्थसाधने तौ हि पर्यायोद्यतकार्मुकौ।। 16।।
पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काशचामरः।
ऋतुर्विडम्बयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम्।। 17।।
प्रसादसुमुखे तस्मिंश्चन्द्रे च विशदप्रभे।
तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयोः।। 18।
हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव।। 19।।
इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः।। 20।।
प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः।
रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मनः।। 21।।
मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः।।
लीलाखेलमनुप्रापुर्महोक्षास्तस्य विक्रमम्।। 22।।

वर्षा बीत चुकी थी, बादल हट गए थे और जैसे खुले आकाश में चमकते हुए प्रचण्ड सूर्य का प्रकाश चारों ओर फैल गया था, वैसे ही शत्रुओं के नष्ट हो जाने पर रघु का प्रचंड प्रताप भी चारों ओर फैल गया।।15।। इन्द्र ने जब अपना वर्षा-ऋतु वाला इन्द्रधनुष हटाया तब रघु ने अपना विजयी धनुष हाथ में उठा लिया; क्योंकि ये दोनों ही बारी-बारी से प्रजा की भलाई किया करते थे।।16।। शरद्-ऋतु भी रघु के छत्र और चँवर को देखकर कमल के छत्र और फूले हुए काँस के चँवर लेकर रघु से होड़ करने चली, पर सब कुछ करके भी उनकी शोभा नहीं पा सकी।।17।। शरद्-ऋतु में रघु के ख़िले हुए मुख और उज्ज्वल चन्द्रमा दोनों को देखकर दर्शकों को एक-सा आनन्द मिलता था।।18।। उज्ज्वल हंसों की उड़ती हुई पाँतों, रात में खिले हुए टिमटिमाते तारों और तालों में खिली हुई कुमुदिनी को देखकर यह जान पड़ता था कि रघु की कीर्ति ही इतने रूप बनाकर फैली हुई है।।19।। [प्रजा को वे इतने प्यारे थे कि] धान के खेतों क़ी रखवाली करनेवाली किसानों की स्त्रियाँ, ईख की छाया में बैठकर प्रजापालक राजा रघु की बचपन से अब तक की गुणकथाओं के गीत बना-बनाकर गाती थीं।।20।। इधर तो चमकीले अगस्त्य तारे के निकलने से जल निर्मल हो गया, उधर शत्रुओं के मन में यह जानकर खलबली मच गई कि अब न जाने कब रघु चढ़ाई कर बैठे।।21।। उस ऋतु में ऊँचे-ऊँचे कंधोंवाले मतवाले साँड़ नदियों के कगार ढाते हुए ऐसे लगते थे, मानों वे रघु के लड़कपन के खेलों का अनुकरण कर रहे हों।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः।।
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्रुवुः।। 23।।
सरितः कुर्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान्।
यात्रायै चोदयामास[1] तं शक्तेः प्रथमं शरत्।। 24।।
तस्मै सम्यग्घुतो वह्निर्वाजिनीराजनाविधौ।
प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ।।25।
स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया।। 26।।
अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः।
पृषतैर्मन्दरोद्धूतैः क्षीरोर्मय इवाच्युतम्।। 27।।
स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा।
अहितानिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः।। 28।।
रजोभिः स्यन्दनोद्धूतैर्गजैश्च घनसंनिभैः।
भुवस्तलमिव व्योम कुर्वन्व्योमेव भूतलम्।। 29।।

(शरद ऋतु में चारों ओर) छतिवन के जो फूल फूले हुए थे, उनकी मद-जैसी गन्ध पाकर [रघु के हाथियों ने सोचा कि ये भी हाथी हैं और हमसे होड़ करके मद बहा रहे हैं। इसलिए वे भी] ईर्ष्यावश अपनी सूँड़ के नथनों से, दोनों कपोलों से, कमर से और दोनों आँखों से मद बहाने लगे।।23।। शरद् के आते ही नदियों का पानी उतर गया और मार्ग का कीचड़ भी सूख गया, मानो शरद् ऋतु ने रघु के सोचने से पहले ही उन्हें दिग्विजय करने को उकसा दिया हो।।24।। यात्रा के लिये चलने से पहले घोड़ों की पूजा के लिए हवन होने लगा और हवन की अग्नि भी दाहिनी ओर घूमती हुई उठ रही थी, मानो अपने हाथ उठा-उठाकर रघु को पहले से ही विजय दे रही हो।।25।। सौभाग्यशाली रघु ने अपनी राजधानी और सीमा के गढ़ों की रक्षा का प्रवन्ध किया, फिर शुभ मुहूर्त में [घुड़सवार, हाथी, रथ, पैदल, गुप्तचर और शत्रु के राज्य के मार्ग को जाननेवाले इन] छह प्रकार की सेनाओं को लेकर वे विजय के लिये चल पड़े।।26।। जैसे मन्दराचल से मथते समय क्षीरसागर की लहरों की उछलती हुई उजली फुहारें विष्णु भगवान् के ऊपर बरस रही थीं वैसे ही नगर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों ने विजय-यात्रा के लिये जाते हुए रघु के ऊपर धान की खीलें बरसाईं।।27।। इन्द्र के समान प्रतापी राजा रघु पहले दिग्विजय के लिये पूर्व की ओर चले। वायु लगने से सेना की जो झंडियाँ फरफरा रही थीं, वे मानो शत्रुओं को उँगली उठा-उठाकर डाट रही थीं।।28।। रघु के रथों के चलने से जो धूल ऊपर उड़ी, उसने आकाश को पृथ्वी बना दिया। इधर पृथ्वी पर चलती हुई सेना के काले-काले हाथी बादल-जैसे लग रहे थे, जिससे पृथ्वी भी आकाश जैसी लगने लगी थी।।29।।

---

1. प्रेरयामास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतापोऽग्रे ततः शब्दः परागस्तदनन्तरम्।
ययौ पश्चाद्रथादीति चतुःस्कन्धेव सा चमूः।। 30।।
मरुपृष्ठान्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः।
विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः।। 31।।
स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः।। 32।।
त्याजितैः फलमुत्खातैर्भग्नैश्च बहुधा नृपैः।
तस्यासीदुल्बणो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः।। 33।।
पौरस्त्यानेवमाक्रामँस्ताँस्ताञ्जनपदाञ्जयी।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः।। 34।।
अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्।। 35।।
वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
निचखान जयस्तम्भान्गङ्गास्रोतोन्तरेषु सः।। 36।।

[रघु का प्रताप इतना अधिक था कि सेना के पहुँचने से पहले ही शत्रु काँप जाते थे।] इस प्रकार आगे-आगे उनका प्रताप चलता था, पीछे उनकी सेना का कोलाहल सुनाई पड़ता था, तब धूल उड़ती दिखाई देती थी और सबसे पीछे रथ आदि की सेना चली आ रही थी, मानो रघु की सेना इस प्रकार से चार भागों में बँटी हुई चल रही थी।।30।। रघु के पास ऐसे साधन थे कि मरुभूमि में भी जल की धाराएँ बहने लगीं, गहरी नदियों पर पुल बँध गए और घने जंगलों में खुले मार्ग बन गए।।31।। अपनी विशाल सेना के साथ जब वे पूर्वी समुद्र की ओर जा रहे थे, उस समय वे ऐसे लग रहे थे मानो शंकरजी की जटा से निकली हुई गंगाजी को साथ लिए हुए भगीरथजी [पूर्वी समुद्र की ओर] चले जा रहे हों।।32।। जैसे कोई बलवान् जंगली हाथी किसी वृक्ष को केवल धक्का मारकर छोड़ देता है, किसी को उखाड़ फेंकता है और किसी को तोड़ देता है, वैसे ही रघु ने भी किसी राजा से कर लेकर उसे छोड़ दिया, किसी का राज्य उखाड फेंका और किसी को लड़ाई में ध्वस्त कर डाला। इस प्रकार शत्रुओं का नाश करके उन्होंने अपने मार्ग के सब रोड़े दूर कर डाले।।33।। विजयी राजा रघु पूर्वी राज्यों को जीतते हुए, उस समुद्र के किनारे पहुँचे जो तट पर खड़े हुए ताड़ के वृक्षों की छाया पड़ने से काला दिखाई पड़ रहा था।।34।। जैसे बेंत की शाखाएँ नदी की धारा में झुककर खड़ी रह जाती हैं, वैसे ही सुह्म देश के राजाओं ने अभिमानियों को उखाड़ फेंकनेवाले रघु की अधीनता चुपचाप कान दबाकर मान ली और अपने प्राण बचा लिए।।35।। फिर सेनानायक रघु ने उन बंगाली राजाओं को जाकर हराया, जो जलसेना लेकर लड़ने आए थे, उन्हें जीतकर रघु ने गंगासागर के द्वीपों में अपने विजय का झंडा गाड़ दिया।।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।
फलैः संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः।।37।।

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः।
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ।।38।।

स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्।
अंकुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः।।39।।

प्रतिजग्राह कालिङ्गस्तमस्त्रैर्गजसाधनः।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः।।40।।

द्विषां विषह्य काकुत्स्थस्तत्र नाराचदुर्दिनम्।।
सन्मङ्गलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम्।।41।।

ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताऽऽपानभूमयः।।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः।।42।।

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम्।।43।।

[जैसे एक खेत से उखाड़-उखाड़कर दूसरे खेत ले जाकर रोपते हुए] धान के पौधे किसान का घर अन्न से भर देते हैं, वैसे ही रघु ने उन राजाओं को फिर राज पर बैठा दिया, जो उनके पैरों पर आकर गिर पड़े थे और जिन्होंने बहुत-सा धनधान्य भेंट में देकर रघु का राज्यकोष बढ़ाया था।।37।। वहाँ से चलकर रघु ने हाथियों का पुल बनाकर अपनी पूरी सेना को कपिशा नदी के पार कर दिया। वहाँ उड़ीसा के राजाओं ने अधीनता तो स्वीकार की ही साथ ही आगे का मार्ग भी बताया और कलिङ्ग देश जीतने के लिये रघु आगे बढ़ गए।।38।। जैसे मतवाले हाथी के माथे में हाथीवान् अंकुश गड़ाता है, वैसे ही रघु ने भी महेन्द्रपर्वत पर पहुँचकर उसकी चोटी पर अपना पड़ाव जमा दिया।।39।। जैसे पत्थर बरसानेवाले पहाड़ ने पत्थर बरसाकर पर्वतों के पंख काटनेवाले इन्द्र का सामना किया था, वैसे ही कलिङ्ग-नरेश ने हाथियों की सेना लेकर और अस्त्र बरसाकर रघु का सामना किया।।40।। जैसे तीर्थों के जल से स्नान कराकर राजाओं का राज्याभिषेक होता है और उन्हें राज्य-लक्ष्मी मिलती है वैसे ही रघु ने भी शत्रुओं के बाणों की वर्षा से स्नान करके विजय पाई।।41।। लड़ाई हो चुकने पर रघु के वीर सैनिकों ने महेन्द्रपर्वत पर पान के पत्ते बिछाकर मदिरालय बनाया और वहाँ नारियल की मदिरा के साथ-साथ मानो शत्रुओं का यश भी पी गए।।42।। राजा रघु तो धर्म-युद्ध करते थे; इसलिये उन्होंने महेन्द्रपर्वत के राजा को बन्दी तो बना लिया; पर जब उसने इनकी अधीनता स्वीकार कर ली, तब उसे छोड़ भी दिया। इस प्रकार उन्होंने महेन्द्र के राजा की राज्यश्री तो ले-ली पर राज्य उन्हीं को लौटा दिया।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना।
अगस्त्याचारितामाशामनाशास्यजयो ययौ।। 44।।
स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना।
कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत्।। 45।।
बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः।।
मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः।। 46।।
ससञ्जुरश्वक्षुण्णानामेलानामुत्पतिष्णवः।।
तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु फलरेणवः।। 47।।
भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम्।
नास्रसत्करिणां ग्रैवं त्रिपदीछेदिनामपि।। 48।।
दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे।। 49।।
ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम्।। 50।।
स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ।। 51।।

पूर्व दिशा को जीतकर विजयी रघु समुद्र के उस तट पर होते हुए दक्षिण दिशा की ओर गए जिस पर पकी हुई सुपारियों के पेड़ लगे हुए थे।।44।। जब वे कावेरी के तट पर पहुँचे, तब राजा रघु के सैनिकों ने जी भर नहा-नहाकर जल को मथ डाला। फिर हाथियों के नहाने से मद की कसैली गन्ध भी जल में आने लगी। कावेरी नदी की उन्होंने ऐसी दुर्गति कर दी कि जब वह अपने पति समुद्र के पास जाय, तो उसे उसके चरित्र में सन्देह होने लगे।। 45।। वहाँ से चलते-चलते वे बहुत दूर निकल गए और विजय चाहने वाले रघु के सैनिक मलयाचल की उस तराई में जा उतरे, जहाँ काली मिर्च की झाड़ियों में हरे-हरे सुग्गे इधर-उधर उड़ रहे थे।।46।। वहाँ पृथ्वी पर गिरे हुए लौंग के बीज घोड़ों की टापों से पिसकर वायु के सहारे हाथियों के उन गालों पर चिपक गए जहाँ उन्हीं के गन्ध-जैसी मद की गन्ध निकल रही थी।।47।। साँपों के सदा लिपटे रहने से वहाँ के चन्दन के पेड़ों के चारों ओर गहरी रेखाएँ बन गई थीं, जिनमें बँधे हुए रस्सों को वे हाथी भी न तोड़ सके, जो पैर के रस्सों को झटके से तोड़ डालते थे।।48।। दक्षिण दिशा में जाने पर महाप्रतापी सूर्य का तेज भी मन्द पड़ जाता है, पर रघु का तेज इतना प्रबल था कि वहाँ के पांड्य राजा भी इनके आगे न ठहर सके।।49।। दक्षिण के पांड्य राजाओं ने ताम्रपर्णी और समुद्र के संगम से जितने मोती बटोरे थे, वे सब उन्होंने रघु को ऐसे सौंप दिए, मानो अपना बटोरा हुआ यश ही उन्हें दे डाला हो।।50।। उन्हें जीतकर महाप्रतापी रघु ने उन मलय और दर्दुर नाम की पहाड़ियों पर बहुत दिनों तक पड़ाव डाला, जिन पर चन्दन के पेड़ लगे थे और जो ऐसे दिखाई पड़ते थे मानो चन्दन लगे हुए दक्षिण दिशा के दो स्तन हों।।51।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत्।।52।।
तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णवः।।53।।
भयोत्सृष्टविभूषणां तेन केरलयोषिताम्।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः।।54।।
मुरलामारुतोद्धूतमगमत्कैतकं रजः।
तद्योधवारबाणानामयत्नपटवासताम्।।55।।
अभ्यभूयत वाहानां चरतां गात्रशिञ्जितैः।
वर्मभिः पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः।।56।।
खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु।
कटेषु करिणां पेतुः पुंनागेभ्यः शिलीमुखाः।।57।।
अवकाशं किलोदन्वान्रामायाभ्यर्थितो ददौ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम्।।58।।
मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम्।
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार सः।।59।।

फिर वे सह्य की उस पहाड़ी को पार करके आगे बढ़े जो समुद्र के दूर हट जाने से ऐसी दिखाई पड़ती थी, मानो वह पृथ्वी का नितंब हो जिस पर से कपड़ा हट गया हो।।52।। यद्यपि परशुराम ने अपने फरसे से ही समुद्र को सह्यपर्वत से हटा दिया, फिर भी उसके पास से जाती हुई रघु की सेना ऐसी लगती थी, मानो समुद्र फिर सह्याद्रि के पास ही लहरें ले रहा हो।।53।। रघु के भय से जो केरल देश की स्त्रियाँ साज-शृंगार छोड़कर घर से भाग खड़ी हुई थीं उनके बालों पर रघु की सेना के चलने से उठी हुई जो धूल बैठ गई थी, वह ऐसी लगती थी मानो कस्तूरी का चूरा लगा हुआ हो।।54।। मुरला नदी की ओर से आनेवाले वायु के कारण जो केवड़े के फूलों की धूल उड़ रही थी, वह सैनिकों के कवचों पर बैठकर बिना यत्न के ही सुगन्धित चूर्ण का काम करने लगी।।55।। चलते समय घोड़ों के शरीर के कवच ऐसे ऊँचे स्वर से खनखना रहे थे कि वायु के चलने से जो बड़े-बड़े ताड़ के पेड़ों से ध्वनि निकल रही थी, वह भी उसके आगे फीकी पड़ गई।।56।। नागकेसर के फूलों पर बैंठे हुए भौरों को जैसे ही खजूर की डालों से बँधे हुए हाथियों के कपोलों से टपकते हुए मद की गन्ध मिली कि वे उन्हें छोड़कर इन पर ही आ टूटे।।57।। पश्चिम के राजाओं ने जो रघु के अधीन होकर उन्हें कर (Tax) दिया था, वह मानो उन्होंने नहीं वरन् उस प्रतापी समुद्र ने ही दिया, जिसने बहुत प्रार्थना करने पर परशुरामजी को थोड़ी-सी भूमि दी थी।।58।। वहाँ रघु के मतवाले हाथियों ने अपने दाँतों की चोटों से त्रिकूट पर्वत पर जो रेखाएँ बना दी थीं उनसे यह पर्वत ऐसा लगने लगा मानो वह रघु की विजय का स्मरण दिलानेवाला जय-स्तम्भ खड़ा हो जिस पर रघु की विजय-कथा लिखी हुई हो।।59।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारसीकाँस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्वज्ञानेन संयमी।।60।।

यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः।।61।।

संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत्।।62।।

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव।।63।।

अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः।
प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम्।।64।।

विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम्।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु।।65।।

ततः प्रतस्थे कौवेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम्।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन्रसानिव।।66।।

जैसे कोई योगी इन्द्रिय-रूपी शत्रुओं को जीतने के लिये तत्त्वज्ञान का सहारा लेता है, वैसे ही रघु ने भी पारसी राजाओं को जीतने के लिये स्थल-मार्ग पकड़ा।।60।। जैसे असमय में उठे हुए बादलों से प्रभात की धूप में खिले हुए कमलों की चमक चली जाती है, वैसे ही रघु के अचानक आक्रमण से मदिरा से लाल गालों वाली यवनियों के मुख-कमल मुरझा गए।।61।। वहाँ पश्चिम देश के घुड़सवार राजाओं से रघु की घनघोर लड़ाई हुई। सेना के चलने से इतनी धूल उड़ी कि आस-पास कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था, केवल धनुष की टङ्कार से ही सैनिक लोग शत्रु को पहचान पाते थे।।62।। मधुमक्खियों से भरे हुए छत्ते के समान दाढ़ियों वाले यवनों के सिरों को भल्ल नाम के बाणों से काट-काट कर रघु ने पृथ्वी पाट दी।।63।। उनमें से जो जीते बच गए, उन्होंने अपने लोहे के टोप उतार-उतारकर रघु के चरणों में रख दिए; क्योंकि महापुरुषों की कृपा प्राप्त करने का यही उपाय है कि उनकी शरण में पहुँच जाया जाय।।64।। रघु के सैनिक दाख की लताओं से घिरी हुई पृथ्वी पर सुहावनी मृगछालाएँ बिछाकर चैन से बैठ गए और मदिरा पी-पीकर लड़ाई की थकावट मिटाने लगे।।65।। जैसे सूर्य अपनी तीखी किरणों से पृथ्वी का जल खींचने के लिये उत्तर की ओर घूम जाता है, वैसे ही रघु भी उत्तर के राजाओं को जीतने के लिए उधर घूम पड़े।।66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाँल्लग्नकुंकुमकेसरान्।। 67।।
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्।। 68।।
काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः।। 69।।
तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः।
उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोशलेश्वरम्।। 70।।
ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः।। 71।।
शशंस तुल्यसत्त्वानां सैन्यघोषेऽप्यसंभ्रमम्।
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्त्यावलोकितम्।। 72।।
भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे।। 73।।
विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः।
दृषदो वासितोन्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः।। 74।।

सिन्धु नदी के तट पर पहुँचकर रघु के घोड़े, वहाँ की रेत में लोट-लोटकर अपनी थकान मिटाने लगे। लोटने से उनके शरीर में जो केसर लग गई थी, उसे उठ-उठकर उन्होंने हिला कर झाड़ दिया।।67।। वहाँ रघु ने प्रचण्ड पराक्रम से जिन हूण राजाओं को मार डाला था, उनकी स्त्रियाँ इतना सिर पीट-पीटकर रोईं कि उनके गाल लाल हो गए।।68।। कंबोज या काबुल के राजा भी लड़ाई में रघु के आगे नहीं ठहर सके। हाथियों के बाँधने से जैसे वहाँ की अखरोट की डालियाँ झुक गई थीं, वैसे ही वे राजा भी रघु के आगे झुक गए।।69।। कंबोज के हारे हुए राजा ने रघु को बहुत-से घोड़े और बहुत-सा धन दिया; पर उतना धन पाकर भी रघु को अभिमान नहीं हुआ।।70।। वहाँ से वे अपने घोड़ों की सेना लेकर हिमालय पहाड़ पर चढ़ गए, मानो अपने घोड़ों की टापों से उठी हुई गेरू आदि धातुओं की लाल-लाल धूल से हिमालय की चोटियों को और भी ऊँची करना चाहते हों।।71।। सैनिकों के समान ही बलवान् सिंह गुफाओं में लेटे-लेटे आँखें घुमा-घुमाकर रघु की सेना को देख रहे थे। उनकी सेना के कोलाहल से वे तनिक भी मन में घबराते नहीं थे।।72।। वहाँ भोजपत्रों में मर्मर करता हुआ कीचक नाम के बाँसों के छेदों में घुसकर बाँसुरी-सी बजाता हुआ और गंगाजी की फुहारों से ठण्डा हुआ वायु 'रघु' की सेवा करता जा रहा था।।73।। और रघु के सैनिक भी वहाँ नमेरु के वृक्ष के तले उन पथरीली पाटियों पर बैठकर विश्राम करने लगे, जिनमें से कस्तूरी मृगों के बैठने से तीव्र सुगन्ध आ रही थी।।74।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरलासक्त मातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः ।
आसन्नोषधयो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिकाः ।। 75 ।।
तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः ।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ।। 76 ।।
तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ।। 77 ।।
शरैरुत्सवसंकेतान्स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ।। 78 ।।
परस्परेण विज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु ।
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा ।। 79 ।।
तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः ।
पौलस्त्यतुलितस्याद्रेरादधान इव ह्रियम् ।। 80 ।।
चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ।। 81 ।।
न प्रसेहे स रुद्धार्कमधारावर्षदुर्दिनम् ।
रथवर्त्मरजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम् ।। 82 ।।

देवदारु के पेड़ों में बँधे हुए हाथियों के गले में जो साँकलें पड़ी थीं वे रात को चमकने वाली बूटियों के प्रकाश से चमचमा उठती थीं और इस प्रकार उन बूटियों ने रघु के लिये बिना तेल के ही दीपक जला दिए ।।75 ।। जब रघु ने वहाँ से अपनी सेना का पड़ाव हटा लिया, तब वहाँ देवदार की ऊँची-उँची शाखाओं पर हाथियों के गले की साँकलों से बनी रेखाओं को देखकर ही जंगली किरातों ने रघु के हाथियों की ऊँचाई का अनुमान कर लिया ।।76 ।। पहाड़ी सेनाओं से रघु की सेना की घनघोर लड़ाई हुई । रघु की सेना बाण चलाती थी और पहाड़ी लोग पत्थर चलाते थे। इस प्रकार जब लोहे और पत्थर की भिड़न्त हो जाती थी, तो कभी-कभी आग उत्पन्न हो जाया करती थी ।।77 ।। रघु ने धुआँधार बाण बरसाकर उत्सव-संकेत नामक पहाड़ियों के छक्के छुड़ा दिए। इस पर किन्नरों ने मिलकर रघु की वीरता के बहुत-से गीत गाए ।।78 ।। पहाड़ी राजाओं ने रत्नों के ढेर 'रघु' को भेंट में दिए, जिसे देखकर रघु ने हिमालय के अतुल धन का अनुमान किया और हिमालय ने भी युद्ध में रघु के पराक्रम का अनुमान कर लिया ।।79 ।। हिमालय पर अपना झंडा गाड़कर आगे कैलाश की ओर न बढ़कर रघु लौट पड़े । इससे कैलाश पर्वत को इस बात की लज्जा हुई कि एक बार रावण ने मुझे क्या उठा लिया कि सभी मुझे हारा हुआ समझने लगे ।।80 ।। लौहित्य नदी को पार करके रघु प्राग्ज्योतिष या असम में जा पहुँचे । वहाँ हाथियों के बँधने से जैसे कालागुरु के पेड़ काँपते थे, वैसे ही प्राग्ज्योतिष के राजा भी रघु के भय से काँपने लगे ।।81 ।। वहाँ के राजा ने देखा कि बादलों के बिना ही केवल रघु की सेना की धूल से सूर्य छिप गया । जब इस धूल से ही वह बहुत घबरा गया, तो फिर सेना से लड़ता ही क्या ।। 82 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम्।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः।।83।।
कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम्।
रत्नपुष्पोपहारेण च्छायामानर्च पादयोः।।84।।
इति जित्वा दिशो जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम्।
रजो विश्रामयन्राज्ञां छत्रशून्येषुमौलिषु।।85।।
स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम्।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।।86।।
सत्रान्ते सचिवसखःपुरस्क्रियाभिर्गुर्वीभिःशमितपराजयव्यलीकान्।।
काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान्राजान्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने।।87।।
ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम्।
प्रस्थानप्रणतिभिरङ्गुलीषु चक्रुर्मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम्।।88।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रघुदिग्विजयो नाम चतुर्थः सर्गः।।

तब असम के राजा ने जिन हाथियों को लेकर बड़े-बड़े शत्रुओं को हरा दिया था, वे ही हाथी उसने इन्द्र से भी अधिक पराक्रमी रघु को भेंट में दे डाले।।83।। और जैसे कोई भक्त फूल-माला आदि से भक्तिपूर्वक देवता की पूजा करता है, वैसे ही कामरूप के नरेश ने पाँव-पीढ़े पर पड़ी हुई रघु के चरणों की छाया को रत्नों से पूजा।।84।। इस प्रकार विजयी रघु जब सारी पृथ्वी को जीतकर अपनी राजधानी अयोध्या को लौटने लगे, तो उनके रथ के पहियों से उठी हुई धूल पीछे-पीछे चलनेवाले हारे हुए राजाओं के छत्र-रहित मुकुटों पर बैठती चलती थी।।85।। दिग्विजय से लौटकर रघु ने विश्वजित् नाम का यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दक्षिणा में दे दी। जैसे बादल पृथ्वी से जल लेकर फिर पृथ्वी पर बरसा देते हैं, वैसे ही महात्मा लोग भी धन को दान करने के लिये ही इकट्ठा करते हैं।।86।। यज्ञ समाप्त हो चुकने पर रघु ने और उनके मंत्रियों ने हारे हुए राजाओं का बड़ा सत्कार किया और उनके मन में हारने की जो लाज थी उसे दूर कर दिया। फिर अपनी रानियों से बहुत दिन से बिछुड़े हुए उन राजाओं को उन्होंने अपने-अपने देशों में जाने की आज्ञा दे दी।।87।। जाते समय उन राजाओं ने रघु के उन चरणों में झुककर प्रणाम किया, जिस पर ध्वजा, वज्र और छत्र आदि की रेखाएँ बनी हुई थीं। उस समय उन राजाओं के सिर की मालाओं से जो पराग गिर रहा था, उससे रघु के चरणों की उँगलियां गौरवर्ण हो गईं।।88।।

महाकवि कालीदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'रघु-दिग्विजय' नामक
चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। पञ्चमः सर्गः ।।

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोषजातम्।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः।। 1।।
स मृण्मये वीतहिरण्यमयत्वात्पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः।। 2।।
तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानधनाग्रयायी।
विशांपतिर्विष्टरभाजमारात्कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच।। 3।।
अप्यग्रणीर्मन्त्र कृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः।।4।।
कायेन वाचा मनसापि शश्वद्यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि।
आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत्।। 5।।
आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम्।
कच्चिन्नवाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम्।। 6।।
क्रियानिमित्तेष्ववपि वत्सलत्वादभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु।
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः।। 7।।

पाँचवाँ सर्ग

जिस समय 'रघु' विश्वजित् यज्ञ में अपना सब कुछ दान किए बैठे थे, उसी समय महर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स ऋषि गुरुदक्षिणा के लिये धन माँगने को उनके पास आ पहुँचे।।1।। अतिथि का सत्कार करनेवाले, अत्यन्त शीलवान् और यशस्वी रघु मिट्टी का पात्र लेकर विद्वान् अतिथि [कौत्स ऋषि] की पूजा करने चले; क्योंकि सोने-चाँदी के पात्र तो उन्होंने सब दान ही कर डाले थे।।2।। तपस्वी कौत्स कुशा के आसन पर बैठे हुए थे। शास्त्रों को जानने वाले सम्माननीय रघु ने बड़ी विधिपूर्वक उनकी पूजा की और हाथ जोड़कर उनसे कहा–।।3।। 'हे बुद्धिमान्! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सोए हुए संसार को जगा देता है, वैसे ही जिस गुरु ने आपको ज्ञान की ज्योति देकर जगाया है और जो मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, वे आपके गुरु कुशलता से तो हैं।।4।। उन्होंने शरीर, मन और वचन तीनों प्रकार का जो कठिन तप करना प्रारम्भ किया था और जिसे देखकर इन्द्र भी घबरा उठे थे, वह तप तो ठीक चल रहा है।।5।। आप लोगों ने आश्रम के जिन वृक्षों के थाँवले बाँधकर उन्हें पुत्र के समान जतन से पाला है और जिनसे पथिकों को छाया मिलती है, उन वृक्षों को आँधी-पानी से कोई हानि तो नहीं पहुँची है।।6।। हरिणियों के वे छोटे-छोटे छौने कुशल से तो हैं, जिन्हें ऋषि लोग बड़े प्यार से गोदी में बैठाकर खिलाते हैं, जिनकी नाभि का नाल ऋषियों की गोद में ही सूखकर गिरता है और जिन्हें ऋषि लोग यज्ञ के लिये बटोरी हुई कुशा चबाने से भी नहीं टोकते।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितॄणाम्।
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्।।8।।
नीवारपाकादि कडंगरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित्।
कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः।।9।।
अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय।
कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते।।10।।
तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे।
अप्याज्ञयाशासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि संभावयितुं वनान्माम्।।11।।
इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोरुदारामपि गां निशम्य।
स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः।।12।।
सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा।।13।।
भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता ते पूर्वान्महाभाग तयातिशेषे।
व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः।।14।।

उन नदियों का जल तो ठीक है न, जिसमें आप लोग प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या, तर्पण आदि करते हैं और जिनकी रेत पर आप लोग अपने चुने हुए अन्न का छठा भाग राजा का अंश समझकर रख छोड़ते हैं।।8।। तिन्नी के जिस अन्न और जिन फलों से आप लोग अतिथियों का सत्कार करते हैं और जिन्हें खाकर ही आप लोग रह जाते हैं, उन्हें आस-पास के गाँवों के पशु तो नहीं आकर चर जाते।।9।। क्या ऋषि ने आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर आपको गृहस्थ बन जाने की आज्ञा दे दी है? क्योंकि आपकी इतनी अवस्था भी हो गई है कि आप विवाह करें और सबका भला करनेवाले गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।।10।। आप जैसे पूजनीय महात्मा के आने भर से मेरा जी नहीं भरा, मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा भी दीजिए और यह बताइए कि आपने केवल अपने गुरुजी की आज्ञा से ही यहाँ आकर मुझे कृतार्थ किया है या अपनी इच्छा से ही आपने कृपा की है।।11।। कौत्स ने ध्यान से रघु की उदार बातें सुनीं, पर देखा कि उनके हाथ में केवल मिट्टी का पात्र बचा है। उन्होंने समझ लिया कि रघु के पास एक कौड़ी भी नहीं है। उनका मुँह उतर गया और उन्होंने समझ लिया कि यहाँ हमारा काम नहीं बनेगा। यह सोचकर वरतन्तु के शिष्य कौत्स बोले—।।12।। 'हे राजन्!' आपके राज्य में हमें सब प्रकार का सुख है। जैसे सूर्य के रहते हुए अँधेरा नहीं ठहर पाता, वैसे ही आपके राजा रहने पर प्रजा में दुःख का नाम भी नहीं है।।13।। हे भाग्यशाली! बड़ों की पूजा करना आपके वंश का ही धर्म है और आप तो इस बात में अपने पूर्वजों से भी आगे बढ़े हुए हैं। मैं आपके पास कुछ माँगने आया था, पर मैं समझता हूँ कि मुझे आने में कुछ विलम्ब हो गया है, इसी का मुझे खेद है।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः।। 15।।
स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिंचनत्वं मखजं व्यनक्ति।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः।। 16।।
तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि।। 17।।
एतावदुक्त्वा प्रतियातु कामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य।
किं वस्तु विद्वन्गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त।। 18।।
ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे।। 19।।
समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद्गुरुदक्षिणायै।
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात्।। 20।।
निर्बन्धसंजातरुषार्थकार्श्यमचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्तः।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति।। 21।।
सोहं सपर्याविधिभाजनेन मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम्।
अभ्युत्सहे संप्रति नोपरोद्धुमल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्क्रयस्य।। 22।।

हे राजन्! आपने अपना सब धन अच्छे लोगों को दे डाला है और केवल यह शरीर मात्र आपके पास बचा है। इससे आप उस तिन्नी के पौधे की ठूँठ-जैसे रह गए हैं, जिसके दाने तपस्वियों ने झाड़ लिए हों।।15।। चक्रवर्ती होते हुए भी यज्ञ में सब कुछ देकर और दरिद्र होकर भी आप उस चन्द्रमा के समान बड़े सुन्दर लग रहे हैं, जिसकी सारी कलाएँ धीरे-धीरे देवताओं ने पी डाली हों।।16।। आपके पास तो कुछ है नहीं, इसलिये मैं अब किसी दूसरे धनी का द्वार खटखटाता हूँ; क्योंकि पपीहा भी बिना जलवाले बादलों से पानी नहीं माँगता। आपका कल्याण हो।।17।। ऐसा कहकर कौत्स उठकर चलने लगे। रघु ने उन्हें रोका और पूछा—'आप गुरुजी को क्या और कितना देना चाहते हैं? कुछ कहिए भी तो'।।18।। ब्रह्मचारी कौत्स ने देखा कि विश्वजित् यज्ञ करने पर भी रघु को अभिमान-शून्य हैं। इसलिये वर्ण और आश्रम की रक्षा करनेवाले रघु से उन्होंने अपने मन की बात कहनी प्रारम्भ की—।।19।। ''राजन्! विद्या पढ़ चुकने पर मैंने गुरुजी से कहा कि आप मुझसे गुरु-दक्षिणा माँगिए। गुरुजी ने कहा—मैं तुम्हारी गुरुभक्ति से ही बहुत प्रसन्न हूँ, फिर गुरु-दक्षिणा लेकर क्या होगा? मैंने बड़ी भक्ति से जो उनकी सेवा की थी, उसे ही उन्होंने गुरु-दक्षिणा समझ लिया था।।20।। पर जब मैंने बार-बार दक्षिणा माँगने के लिये उनसे हठ किया तो वे बिगड़ खड़े हुए और मेरी दरिद्रता का विचार किए बिना ही बोल उठे—मैंने तुम्हें चौदह विद्याएँ पढ़ाई हैं; इसलिये मुझे चौदह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ लाकर दो।।21।। आपके हाथ में मिट्टी का पात्र देखकर ही मैं समझ गया कि आपके पास 'राजा' शब्द छोड़कर और कुछ भी नहीं बचा है। इधर मेरी गुरु-दक्षिणा भी इतनी गहरी है कि अब मेरा मन ही नहीं करता कि आपसे कुछ माँगूँ।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगाद भूयो जगदेकनाथः।।23।।
गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम्।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे मा भूत्परीवादनवावतारः।।24।।
स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे।।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम्।।25।।
तथेपि तस्यावितथं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्संगरमग्रजन्मा।।
गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात्।।26।।
वशिष्ठमन्त्रोक्षणजात्प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु।।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने न हि तद्रथस्य।।27।।
अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम्।
सामन्तसंभावनयैव धीरः कैलासनाथं तरसा जिगीषुः।।28।।
प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोषगृहे नियुक्ताः।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः।।29।।
तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात्।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम्।।30।।

जब वैदिक ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ कौत्स ने यह कहा, तब चन्द्रमा के समान सुन्दर परम धार्मिक रघु बोले–।।23।। आप जैसे वेदपाठी ब्राह्मण गुरु-दक्षिणा के लिये हमारे पास आयें और यहाँ से निराश लौटकर किसी दूसरे का द्वार झाँके, यह नहीं हो सकता।।24।। इसलिये आप हमारी यज्ञशाला में चलिए। वहाँ [गार्हपत्य, दाक्षिणात्य और आहवनीय–] ये तीन पूजनीय अग्नि स्थापित हैं। आप भी चौथी अग्नि के समान पूजनीय होकर दो-चार दिन ठहरिए, तब तक मैं आपकी गुरु-दक्षिणा के लिये कुछ न कुछ यत्न करता हूँ।।25।। यह सुनकर कौत्स बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सत्यवादी रघु की बात मान ली। रघु ने भी देखा कि पृथ्वी पर तो धन है नहीं, इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि कुबेर से ही धन लिया जाय।।26।। जैसे वायु के झोंकों से मेघ कहीं भी जा सकता है, वैसे ही वशिष्ठजी के मन्त्रों से पवित्र किया हुआ रघु का रथ भी समुद्र, आकाश और पर्वत कहीं भी आ-जा सकता था।।27।। रघु ने सोचा कि उसी रथ पर चढ़कर मैं अकेला ही महाप्रतापी कैलाश के स्वामी कुबेर को छोटे से राजा के समान सहज में जीत लूँगा। यह निश्चय करके वे साँझ होते ही अस्त्र-शस्त्र ठीक करके रथ में ही जाकर सो गये।।28।। दूसरे दिन प्रातः जैसे ही रघु चलने को तैयार हुए, वैसे ही राजकोश के रक्षकों ने आकर यह आश्चर्य-भरा समाचार दिया कि कोश में बहुत देर तक सोने की वर्षा होती रही है।।29।। [बात यह हुई थी कि] रघु की चढ़ाई की बात कान में पड़ते ही कुबेर ने रात को ही सोने की वर्षा कर दी थी। वह सोने का ढेर ऐसा चमक रहा था, जैसे किसी ने वज्र से सुमेरु पर्वत का एक टुकड़ा काटकर गिरा दिया हो। रघु ने वह सारा सोना कौत्स को भेंट कर दिया।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपाऽर्थिकामादधिकप्रदश्च।। 31।।

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः।
स्पृशन्करेणानतपूर्वकायं संप्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः।। 32।।

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा।। 33।।

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते।
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव।। 34।।

इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम्।
राजापि लेभे सुतमाशु तस्मादालोकमर्कादिव जीवलोकः।। 35।।

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार।। 36।।

[उसे देखकर कौत्स ने कहा—मैं इतना सोना लेकर क्या करूँगा। मुझे तो गुरु-दक्षिणा चुकाने भर को धन चाहिए। इस पर रघु बोले—यह नहीं हो सकता। यह सारा धन आप ही ले जाइये।।] अयोध्या-निवासियों ने इन दोनों की बड़ी प्रशंसा की; क्योंकि उन दोनों में एक तो इतना सन्तोषी था कि आवश्यकता से अधिक एक कौड़ी लेने को उद्यत नहीं था और दूसरा इतना बड़ा दाता था कि माँग से अधिक धन देने पर तुला हुआ था।।31।। रघु ने उस सारे धन को सैकड़ों ऊँटों और खच्चरों पर लदवा दिया और जब कौत्स चलने लगे तब राजा ने बड़ी नम्रता से उन्हें प्रणाम किया। कौत्स बड़े प्रसन्न थे और उन्होंने राजा के सिर पर हाथ रखते हुए कहा।।32।। धर्मात्मा राजाओं के लिए यदि पृथ्वी उनकी इच्छा के अनुसार धन दे, तो कोई आश्चर्य नहीं है, पर तुम्हारे प्रभाव को देखकर तो सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है; क्योंकि तुमने तो स्वर्ग से भी जितना चाहा उतना धन ले लिया।।33।। संसार की सभी वस्तुएँ तुम्हें प्राप्त हो सकती हैं; इसलिये तुम्हें उनके लिये आशीर्वाद देना तो व्यर्थ है, तो भी मैं तुम्हें यह आशीर्वाद देता हूँ कि जैसे तुम्हारे पिता दिलीप को तुम्हारे जैसा श्रेष्ठ पुत्र मिला, वैसे ही तुम्हें भी तुम्हारे ही समान प्रतापी पुत्र प्राप्त हो।।34।। राजा को यह आशीर्वाद देकर ब्राह्मण कौत्स तो अपने गुरुजी के पास चले गए और जैसे सूर्य से संसार को प्रकाश मिलता है, वैसे ही ब्राह्मण के आशीर्वाद से थोड़े ही दिन में रघु को भी पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ।।35।। रघु की रानी की कुक्षि से ब्राह्म मुहूर्त में कार्तिकेय के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ तो ब्राह्म मुहूर्त में जन्म होने से पिता ने ब्रह्मा के नाम पर पुत्र का नाम अज रख दिया।।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात्स्वाद्बिभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्।। 37।।
उपात्तविद्यं विधिवद्गुरुभ्यस्तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम्।
श्रीः साभिलाषापि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष।। 38।।
अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः।।
आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः।। 39।।
तं श्लाघ्यसंबन्धमसौविचिन्त्य दारक्रियायोग्यदशं च पुत्रम्।
प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम्।। 40।।
तस्योपकार्यारचितोपचारा वन्येतरा जानपदोपदाभिः।
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोर्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः।। 41।।
स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।।
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम्।। 42।।
अथोपरिष्टाद्भ्रमरैर्भ्रमद्भिः प्राक्सूचितान्तः सलिलप्रवेशः।।
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिर्वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज।। 43।।

जैसे एक दीपक से जलाए जाने पर दूसरे दीपकों में भी ठीक वैसी ही लौ और ज्योति होती हैं वैसे ही अज भी रूप, गुण, बल सभी बातों में रघु के जैसा ही था, किसी भी बात में कम नहीं था।।37।। जैसे शीलवती कन्या अपनी इच्छा के अनुसार रूप-गुणवाले वर को चुनकर भी विवाह के लिये पिता की आज्ञा ले-लेना चाहती है, वैसे ही राज्य-लक्ष्मी भी यद्यपि सुन्दर युवा 'अज' को स्वामी बनाना चाहती थी, फिर भी वह रघु की आज्ञा की बाट जोह रही थी कि वे कब अज को राज्य सौंपे।।38।। इसी बीच में विदर्भदेश के राजा भोज ने अपनी बहन 'इन्दुमती' के स्वयंवर में अज को बुलाने के लिये एक अपना विश्वासपात्र दूत रघु के पास भेजा।।39।। रघु ने भी सोचा कि भोज के वंश के साथ अपने कुल का सम्वन्ध करना ठीक ही होगा और कुमार अज भी विवाह के योग्य हो गए हैं। इसलिये उन्होंने सेना के साथ अज को विदर्भदेश की राजधानी में जाने के लिये बिदा किया।।40।। मार्ग में अज के ठहरने के लिये अनेक प्रकार के ऐसे वितानों का प्रबन्ध किया गया था, जिनमें सब प्रकार के सुख की सामग्री एकत्र कर दी गई थी और वहाँ के पास के गाँववालों ने भी अज के लिये अच्छी-अच्छी वस्तुएँ भेंट में ला-लाकर दे दीं। [इन सबके कारण] वे ग्रामीण स्थान भी ऐसे लगने लगे, मानो अज राजसी विलास उद्यानों में आकर ठहरे हों।।41।। वहाँ से चलकर अज ने नर्मदा नदी के किनारे अपनी उस थकी हुई सेना का पड़ाव डाला, जिसकी पताका मार्ग की धूल लगने से मटमैली हो गई थीं। वहाँ बड़ा शीतलवायु वह रहा था और उसके झोंकों से करञ्जक के पेड़ झूम रहे थे।।42।। इसी बीच एक जंगली हाथी नर्मदा के जल में से झूमता हुआ निकला। जिसके जल में घुसने की सूचना जल के ऊपर ही भनभनाने वाले भौंरे दे रहे थे और जल में स्नान करने के कारण जिसके माथे के दोनों ओर का मद धुल गया था।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु।
नीलोर्ध्वरेखाशवलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन।। 44।।

संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम्।
वभौ स भिन्दन्बृहस्तरंगान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः।। 45।।

शैलोपमः शैवलमञ्जरीणां जालानि कर्षन्नुरसा स पश्चात्।
पूर्वं तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प।। 46।।

तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहक्षणमात्रशान्ता।
वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मदर्दुर्दिनश्रीः।। 47।।

सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाघ्राय मदं तदीयम्।
विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा वभूवुः।। 48।।

स च्छिन्नवन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन।
रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार।। 49।।

तमापतन्तं नृपतेरवध्यो वन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः।
निवर्तयिष्यन्विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः।। 50।।

यद्यपि नहाने से उसके दाँतों में लगी गेरु की लाली तो छूट गई थी, फिर भी टीलों पर टक्कर मारने से उसकी दाँतों पर जो नीली-नीली रेखाएँ बन गई थीं, उनसे जान पड़ता था कि उसने ऋक्षवान पर्वत की शिलाओं में टक्करें मारी हैं।।44।। वह हाथी ज्यों-ज्यों तट की ओर बढ़ने लगा, त्यों-त्यों अपनी सूँड़ फैला और सिकोड़कर चिंग्घाड़ता हुआ जल की लहरों को चीरने लगा। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था, मानो वह अलान की साँकलें तोड़ रहा हो।।45।। वह पहाड़ के समान लम्बा-चौड़ा हाथी अपनी छाती से सवार को अपने साथ खींचता हुआ तट पर आ पहुँचा। इससे जल में जो लहरें उठी थीं वे उससे भी पहले तट पर पहुँच चुकी।।46।। यद्यपि नदी में नहाने से उस हाथी के माथे का सब मद धुल चुका था। फिर भी अज की सेना के हाथियों को देखकर वह बलवान् हाथी क्रोध से तमतमा उठा और उसके माथे से फिर धुआँधार मद बरसने लगा।।47।। जब अज के हाथियों ने उसके छितवन के दूध के समान कसैले मद की गन्ध पाई, तब वे हाथीवानों के बार-बार रोकने पर भी इधर-उधर भाग चले।।48।। उस विशाल जंगली हाथी को देखते ही सब घोड़े भी रस्सा तुड़ा-तुड़ाकर भाग चले। इस भगदड़ में जिन रथों के धुरे टूट गए वे जहाँ-तहाँ गिर पड़े थे। उस अकेले हाथी ने सेना में इतनी भगदड़ मचा दी कि लोग अपनी-अपनी स्त्रियों को छिपाने के लिये सुरक्षित स्थान ढूँढ़ने लगे।।49।। वह हाथी अज की ओर चला आ रहा था; किन्तु अज ने सोचा कि यह जंगली हाथी है। इसको मारना ठीक नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने धनुष को थोड़ा-सा खींचकर एक वाण उसके मस्तक में इसलिए मारा कि वह लौट जाय।।50।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स विद्धमात्रः किल नागरूपमुत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्ट।
स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्त्ति कान्तं वपुर्व्योमचरं प्रपेदे।। 51।।
अथ प्रभावोपनतैः कुमारं कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य पुष्पैः।
उवाच वाग्मी दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्थलतारहारः।। 52।।
मतङ्गशापादवलेपमूलादवाप्तवानस्मि मतङ्गजत्वम्।
अवेहि गन्धर्वपतेस्तनूजं प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य।। 53।।
स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत्।
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य।। 54।।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो यदा ते भेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन।
संयोक्ष्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना तदेत्यवोचत्स तपोनिधिर्माम्।। 55।।
संमोचितः सत्त्ववता त्वयाहं शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन।
प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः।। 56।।
संमोहन नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम्।
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते।। 57।।

बाण लगते ही वह हाथी का शरीर छोड़कर देवताओं के समान सुन्दर और तेजपूर्ण शरीर वाला बनकर खड़ा हो गया। यह देखकर अज के सैनिक तो आँख फाड़कर आश्चर्य से देखते हुए जहाँ के तहाँ खड़े रह गए।।51। उस देवता का वेष धारण करनेवाले पुरुष ने अपने प्रभाव से कल्पवृक्ष के फूल मँगाकर अज के ऊपर बरसाए और जब उसने बोलने के लिए मुँह खोला तब उसके दाँतों की चमक से उसके गले में पड़ा हुआ हार दमक उठा।।52।। [वह बोला] मैं गन्धर्वों के राजा प्रियदर्शन का पुत्र प्रियम्वद हूँ। एक बार मैंने अभिमान में आकर मतंग ऋषि का अपमान कर दिया था, उन्हीं के शाप से मैं हाथी हो गया।।53।। जब मैंने ऋषि के बहुत हाथ-पाँव जोड़े, तब उन्हें दया आ गई; क्योंकि जल तो आग की गर्मी पाकर ही गर्म होता है, उसका अपना स्वभाव तो ठंडा ही होता है।।54।। तब प्रसन्न होकर उस तपस्वी ने कहा—इक्ष्वाकु वंश में अज नाम के कुमार उत्पन्न होंगे, जब वे तुम्हारे माथे पर लोहे के फलवाला बाण मारेंगे, तब तुम्हें फिर से अपना वास्तविक शरीर प्राप्त हो जायेगा।।55।। उसी दिन से मैं हाथी हो गया और तब से सदा आपके आने की बाट देखा करता था। आज बड़े भाग्य से आपने आकर मुझे शाप से छुड़ा दिया। इस उपकार के बदले में यदि मैंने आपकी कोई भलाई न की, तो मेरा यह शरीर पाना व्यर्थ ही है।।56।। देखिये! मेरे पास यह सम्मोहन नाम का गन्धर्वास्त्र है, जिसके चलाने और रोकने के अलग-अलग मन्त्र हैं। इस दुर्लभ अस्त्र को आप ले लीजिए। इसमें यह विशेषता है कि जब आप इसे चलायेंगे तब आप शत्रु के प्राण लिए बिना ही उसे जीत लेंगे।।57।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलं ह्रिया मां प्रति यन्मूहूर्तं दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम्।
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम्।। 58।।
तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः।
उदङ्मुखः सोऽस्त्रविदस्त्रमन्त्रं जग्राह तस्मान्निगृहीतशापात्।। 59।।
एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुषोः सख्यमचिन्त्यहेतु।
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्।। 60।।
तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली।। 61।।
प्रवेश्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः।
मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम्।। 62।।
तस्याधिकारपुरुषैः प्रणतैः प्रदिष्टां प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्।
रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्यां बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास।। 63।।
तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्सोः।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव।। 64।।

जान पड़ता है कि आपने जो मेरे ऊपर बाण चलाया है, उससे आपके मन में कुछ संकोच हो रहा है। पर इसमें लजाने की क्या बात है, क्योंकि बाण चलाते समय भी आपके मन में मुझे मारने की इच्छा तो थी नहीं। आपने तो दया करके ही बाण चलाया था। अब मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आप यह अस्त्र ले लीजिए, आना-कानी न कीजिए।।58।। चन्द्रमा के समान सुन्दर अज ने गन्धर्व का कहना मान लिया। उन्होंने पहले चन्द्रमा से निकली हुई नर्मदा के जल का आचमन किया और फिर उत्तर की ओर मुँह करके शाप से छूटे हुए उस गन्धर्व से वह अस्त्र ले लिया और उसके चलाने और रोकने का मन्त्र भी सीख लिया।।59।। इस प्रकार दैवयोग से अज और प्रियम्वद की मार्ग में ही मित्रता हो गई। वहाँ से प्रियम्वद तो कुबेर के चित्ररथ नामक उपवन की ओर चला गया और अज उस विदर्भदेश की ओर चला पड़े, जो अच्छे शासन के कारण बड़ा सुन्दर हो गया था।।60।। जब विदर्भ के राजा को समाचार मिला कि अज आ गए हैं, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और जैसे समुद्र अपनी लहरें ऊँचे उठाकर चन्द्रमा का स्वागत करता है, वैसे ही उन्होंने भी नगर के बाहर अज के पड़ाव में जाकर उनका स्वागत किया।।61।। राजा भोज अपने साथ अज को नगर में ले गए और वहाँ उन्हें अपना सब कुछ भेंट करके ऐसी नम्रता के साथ उनका सत्कार किया कि लोग यही समझने लगे कि अज ही इस घर के स्वामी हैं और भोज अतिथि हैं।।62।। वहाँ से भोज-राज के सेवक, अज को बड़ी नम्रता से उस मनोहर राज-मंदिर में ले गए, जिसके द्वार की चौकियों पर जल से भरे मंगल-कलश रखे हुए थे। उस भवन में रघु के प्रतिनिधि अज रहने लगे, मानो कामदेव ने अपना बचपन बिताकर जवानी में पैर रखा हो।।63।। अब अज को यह चाह हुई कि किसी प्रकार उस कन्या को प्राप्त करें, जिसे पाने के लिये सैकड़ों राजा स्वयंवर में आए हैं। इसी उलझन में पड़े रहने केकारण रघु की आँखां में रात को उसी प्रकार बहुत विलंब से नींद आई जैसे अपने पति के मन का भाव न जाननेवाली नई बहू अपने पति के पास विलंब से जाती है।।64।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागम्।
सूतात्मजाः सवयसः प्रथितप्रबोधं प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाचः।। 65।।

रात्रिर्गता मतिमतांवर मुञ्च शय्यां धात्रां द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता।
तामेकतस्तव विभर्ति गुरुर्विनिद्रस्तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी।। 66।।

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्ष्यमाणा पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः।। 67।।

तद्वल्गुना युगपदुन्मिषितेन तावत्सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे।
प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारमन्तश्चक्षुस्तव प्रचलितभ्रमरं च पद्मम्।। 68।।

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य।। 69।।

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम्।। 70।।

एक करवट सोने के कारण अज के कन्धों पर कुण्डल के दबने से उसका चिह्न पड़ गया और बिछौने की रगड़ से उनके शरीर पर लगा हुआ अंगराग भी छूट गया। दिन निकलते ही उनकी समान अवस्था वाले और मधुर बोलने वाले सूतों के पुत्र यह स्तुति गा-गाकर बुद्धिमान अज को जगाने लगे।।66।। हे परम बुद्धिमान! रात ढल गई है, अब शय्या छोड़िए। ब्रह्मा ने पृथ्वी का भार केवल दो भागों में बाँटा है, जिसे एक ओर तो तुम्हारे पिता सदा सजग होकर सँभालते हैं और दूसरी ओर तुम्हें जागकर सँभालना है।।66।। देखो, तुम्हारी सौन्दर्य-लक्ष्मी ने जब यह देखा कि तुम निद्रारूपी दूसरी स्त्री के वश में हो, तब वह तुम्हें चाहते रहने पर भी रुष्ट होकर तुम्हारे ही मुख के समान सुन्दर चन्द्रमा के पास चली गई है, [क्योंकि तुम्हारे मुख की बराबरी करनेवाला और कोई सुन्दर पदार्थ तो है नहीं, जिसके पास वह जा सके।] इसलिये जागकर तुम उसे फिर अपना लो।।67।। इस समय तुम्हारी बन्द आँखों में पुतलियाँ घूम रही हैं और तालाबों में कमलों के भीतर भौंरे गूँज रहे हैं। इस समय उठो सूर्य के निकलने पर तुम्हारे और कमल एक साथ खिलकर एक जैसे सुन्दर लगने लगें।।68।। प्रातःकाल का पवन वृक्षों की शाखाओं पर झूलने वाले ढीले कोरवाले फूलों को गिराता हुआ सूर्य की किरणों से खिले हुए कमलों को छूता हुआ चल रहा है, मानो तुम्हें जागृत हुआ न देखकर वह तुम्हारे मुख की स्वाभाविक सुगन्धि दूसरों से लेने का प्रयास कर रहा हो।।69।। हार के उजले मोतियों के समान निर्मल ओस के कण वृक्षों के लाल-लाल पत्तों पर गिरकर वैसे ही सुन्दर लग रहे हैं, जैसे तुम्हारे हँसने के समय तुम्हारे साथ ओठों पर पड़ी हुई तुम्हारे दाँतों की चमक सुन्दर लगती है।।70।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानुरह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर याते किं वा रिपूँस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति।। 71।।
शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते।
येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगाद्भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः।। 72।।
दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु निद्रां विहाय वनजाक्ष वनायुदेश्याः।
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः।। 73।।
भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्तामनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक्पञ्जरस्थः।। 74।।
इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झांचकार।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः।। 75।।
अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपक्ष्मा।
कुशलविरचितानुकूलवेषः क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम्।। 76।।

इसी महाकविश्रीकालिदासकृतो रघुवंशे महाकाव्ये
अजस्वयंवराभिगमनो नाम पञ्चमः सगः।।

सूर्य के उदय होने के पहले ही उनका चतुर सारथी अरुण संसार से अँधेरे को भगा देता है। यह ठीक भी है, क्योंकि जब सेवक चतुर रहता है तब स्वामी को स्वयं कार्य करने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। देखो, जब तुम्हारे जैसे योग्य पुत्र युद्ध में जाकर लड़ते हैं, तब तुम्हारे पिताजी को क्या कभी शत्रुओं को स्वयं मारने का कष्ट उठाना पड़ता है? कभी नहीं।।71।। तुम्हारी सेना के हाथी, दोनों ओर करवट बदलकर खनखनाती हुई साँकल खींचते हुए उठ खड़े हुए हैं। लाल सूर्य की किरणें पड़ने से उनके दाँत ऐसे लगते हैं, मानो वे अभी गेरू का पहाड़ खोदे चले आ रहे हों।।72।। हे कमल के समान नेत्रवाले! बड़े-बड़े पट-मंडपों में बँधे हुए तुम्हारे वनायु (काबुल) देश के घोड़े नींद छोड़कर सेंधे नमक के उन टुकड़ों को अपने मुँह की भाप से मैला कर रहे हैं जो चाटने के लिये उनके आगे रक्खे हुए हैं।।73।। रात की सजावट के फूल मुरझाकर झड़ गए हैं। उजाला हो जाने के कारण दीपक का प्रकाश भी अब अपनी लौ से बाहर नहीं जाता और पिंजरे में बैठा हुआ मीठी बोली बोलनेवाला तुम्हारा यह सुग्गा भी हमारी ही बातें दुहरा रहा है।।74।। जैसे आकाशगंगा की रेत में लेटा हुआ सुप्रतीक नाम का देवताओं का हाथी, राजहंसों का शब्द सुनकर जाग उठता है, वैसे ही चारणों की सुरचित वाणी सुनकर राजकुमार अज की नींद खुल गई और वे उठ बैठे।।75।। सुन्दर पलकों वाले राजकुमार अज ने उठकर शास्त्र से बताई हुई प्रातःकाल की सब उचित क्रियायें कीं और फिर उनके चतुर सेवकों ने उन्हें बहुत सुन्दर वस्त्र पहनाए। इस प्रकार सज-धजकर वे स्वयम्बर के राज-समाज की ओर चल दिए।।76।।

महाकवि कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'अज का स्वयम्बर-गमन' नाम का पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षष्ठः सर्गः ।।

स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेषान्सिंहासनस्थानुपचारवत्सु।
वैमानिकानां मरुतापमश्यदाकृष्टलीलान्नरलोकपालान्।। 1।।
रतेर्गृहीतानुनयेन कामं प्रत्यर्पितस्वाङ्गमिवेश्वरेण।।
काकुत्स्थमालोकयतां नृपाणां मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम्।। 2।।
वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम्।
शिलाविभंगैर्मृगराजशावस्तुङ्गं नगोत्संगमिवारुरोह।। 3।।
परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवान्रत्नवदासनं सनः।
भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन।। 4।।
तासु श्रिया राजपरम्परासु प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः।
सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्तः पयोमुचां पंक्तिषु विद्युतेव।। 5।।
तेषां महार्हासनसंस्थितानामुदारनेपथ्यभृतां स मध्ये।
रराज धाम्ना रघुसूनुरेव कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः।। 6।।
नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्विहाय सर्वान्नृपतीन्निपेतुः।
मदोत्कटे रेचितपुष्पवृक्षा गन्धद्विपे वन्य इव द्विरेफाः।। 7।।

छठा सर्ग

[स्वयम्वर-सभा में जाकर अज ने देखा कि] सजे हुए मंचों पर बैठे हुए राजा लोग ऐसे सुन्दर लग रहे हैं, जैसे विमानों पर देवता बैठे हुए हों।।1।। जब दूसरे राजाओं ने अज को देखा, तब उन्होंने इन्दुमती को पाने की सब आशाएँ छोड़ दीं; क्योंकि अज ऐसे लग रहे थे, मानो साक्षात् कामदेव हों, जिसे शिवजी ने रति की प्रार्थना पर फिर से जीवित कर दिया हो।।2।। जैसे सिंह का बच्चा एक-एक शिला पर पैर रखता हुआ पहाड़ पर चढ़ जाता है, वैसे ही राजकुमार अज भी सुन्दर सीढ़ी पर चढ़कर भोज के बताए हुए मंच पर जाकर बैठ गए।।3।। जिस सिंहासन पर वे आकर बैठे, वह सोने का बना हुआ था, उसमें रत्न जड़े थे और उस पर रंग-विरंगे वस्त्र बिछे हुए थे। उस पर बैठे हुए वे ऐसे सुन्दर लग रहे थे, मानो स्वयं कार्तिकेय ही अपने मोर पर चढ़कर बैठे हों।।4।। वहाँ बैठे हुए राजाओं के ठाट-बाट और उनकी तड़क-भड़क देखकर आँखें चौंधिया जाती थीं और ऐसा जान पड़ता था मानो लक्ष्मी ने अपनी शोभा उन लोगों में उसी प्रकार बाँट दी हो जैसे बिजली अपनी चमक बादलों में बाँट देती है।।5।। जैसे नन्दन वन के वृक्षों में पारिजात ही सबसे अधिक सुन्दर हैं, वैसे ही बहुमूल्य सिंहासनों पर बैठे हुए और बड़े ठाट-बाट से सजे हुए राजाओं के बीच में अकेले अज ही खिल रहे थे।।6।। जैसे फूलवाले वृक्षों को छोड़कर मद बहानेवाले जंगली हाथियों पर भौंरे झुक पड़ते हैं, वैसे ही नगरवासियों की आँखें सब राजाओं से हटकर अज पर ही जा टिकी थीं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ स्तुते बन्दिभिरन्वयज्ञैः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके।
संचारिते चागुरुसारयोनौ धूपे समुत्सर्पति वैजयन्तीः।। 8।।
पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धतनृत्यहेतौ।
प्रध्मातशङ्खे परितो दिगन्ताँस्तूर्यस्वने मूर्च्छति मङ्गलार्थे।। 9।।
मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि।।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा।। 10।।
तस्मिन्विधानातिशये विधातुः कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये।
निपेतुरन्तःकरणैर्नरेन्द्रा देहैः स्थिताः केवलमासनेषु।। 11।
तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः।
प्रवालशोभा[1] इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः।। 12।।
कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम्।
रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयांचकार।। 13।।
विस्रस्तमंसादपरो विलासी रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम्।
प्रालम्बमुत्कृश्य यथावकाशं निनाय साचीकृतचारुवक्त्रः।। 14।।

इतने में सब राजाओं का वंश जाननेवाले वन्दीजनों ने सूर्य और चन्द्र के वंश में उत्पन्न होनेवाले उन सब राजाओं की प्रशंसा प्रारंभ कर दी। उधर अगर के सार से बनाई हुई धूप-बत्तियों का धुआँ चारों ओर उड़ता हुआ फहराती हुई झंडियों तक जा पहुँचा।।8।। जिन शंखों और मंगल बाजों के बजने पर नगर के आस-पास की अमराइयों में रहनेवाले 'मोर' उसे बादल का गरजना समझकर नाच उठते हैं, उन बाजों की ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं।।9।। इसी बीच वर चुनने के लिये विवाह के समय का वेश धारण किए हुए इन्दुमती, पालकी पर चढ़कर मंचों के बीचवाले राजमार्ग से आई। वह पालकी मनुष्य ढो रहे थे और उसके चारों ओर दासियाँ पैदल चलती आ रही थीं।।10।। वह कन्या ब्रह्मा की रचना का बड़ा ही सुन्दर कौशल थी; जिसे सैकड़ों आँखें एकटक होकर देख रही थीं। उसकी सुन्दरता देखते ही सब राजाओं के मन तो उसके पास चले गए, केवल उनके शरीर पर मंचों पर रह गए।।11।। राजाओं ने अपना प्रेम जताने के लिए जो वृक्षों के पत्तों के समान अनेक प्रकार से भौंह आदि चलाकर शृंङ्गार-चेष्टाएँ, कीं वे मानो उनके प्रेम को इन्दुमती तक पहुँचानेवाली दूतियाँ थीं।।12।। कोई राजा हाथ में सुन्दर कमल लेकर उसकी डंठल पकड़कर घुमाने लगा। उसके घूमने से भौंरे तो इधर-उधर भाग गए, पर उसमें जो पराग भरा हुआ था, उसके फैलने से कमल के भीतर चारों ओर एक कुण्डली सी बन गई। [उसे घुमाकर यह यह प्रकट करता था कि विवाह कर लेने पर हम भी तुम्हारे हाथ में इसी प्रकार नाच सकते हैं]।।13।। दूसरा एक विलासी राजा, थोड़ा मुँह घुमाकर कन्धे से सरकी हुई और भुजबन्ध में उलझी हुई रत्नों की माला उठाकर फिर उसे गले में ठीक से पहनने लगा। [इससे उसने संकेत किया कि मैं सदा तुम्हें गले का हार बनाए रखूंगा।।14।।

1. प्रवालचेष्टा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततोऽन्यः किंचित्समावर्जितनेत्रशोभः।
तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं विलिलेख पीठम्।। 15।।
निवेश्य वामं भुजमासनार्धे तत्संनिवेशादधिकोन्नातांसः।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत्।। 16।।
विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः।
प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रैः।।17।।
कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन।
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षान्।। 18।।
कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसंनिवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव।
वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे।। 19।।
ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुवत्प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी।
प्राक्संनिकर्ष मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा।। 20।।
असौ शरण्यः शरणोन्मुखानामगाधसत्त्वो मगधप्रतिष्ठः।।
राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परंतपो नाम यथार्थनामा।। 21।।

तीसरा राजा भौंहे मटकाकर, पैर की उँगलियाँ मोड़कर, पैर के नखों की चमक तिरछी डालते हुए पैर की उँगलियों से सोने के पाँव पीढ़े पर कुछ लिख रहा था। [इस संकेत से वह इन्दुमती को अपने पास बुला रहा था]।।15।। कोई राजा सिंहासन के एक ओर बाईं भुजा टेककर बैठा था और अपने पास बैठे हुए मित्र से इस प्रकार बात करने लगा कि उसका बायाँ कन्धा उठ गया और गले की माला भी पीठ पर लटक गई। [इससे उसने यह संकेत किया कि मैं सदा तुम्हें अपनी बाईं ओर बिठाऊँगा]।।16।। एक दूसरा युवा राजा था, जिसका नख मानो प्रिया के नितम्बों पर चिह्न बनाने के लिये ही बने थे। वह उन नखों से केतकी के उन धौले पत्तों को नोच रहा था, जो किसी विलासी स्त्री के शृङ्गार के लिये कान के आभूषण के रूप में कटे हुए थे। [इस संकेत से उसने प्रकट किया कि हम इसी प्रकार तुम्हारे नितम्बों पर नख-चिह्न लगायेंगे]।।17।। एक दूसरे राजा ने, जिनकी हथेली कमल के समान लाल थी और जिस पर ध्वाजा की रेखाएँ बनी हुई थीं। वे अपने हाथ में पासे उछाल रहे थे और उनकी अँगूठी की झलक पासों पर पड़ रही थी। [वे संकेत कर रहे थे कि तुम्हारे साथ विवाह होने पर हम दिन-रात तुम्हारे साथ पासा खेला करेंगे]।।18।। एक दूसरा राजा बार-बार अपने हाथ से उस मुकुट को सीधा कर रहा था जो पहले से ही सीधा था। ऐसा करने में उसके हाथों की उँगलियों के बीच का भाग रत्नों की किरणों से चमक उठता था। [इससें वह संकेत करता था कि मैं तुम्हें सदा सिर-आँखों पर बिठाए रखूँगा।।19।। इसी बीच पुरुषों के समान ढीठ और राजाओं के वंशों की कथा जाननेवाली रनिवास की प्रतिहारी सुनन्दा, सबसे पहले इन्दुमती को मगध-नरेश के आगे ले गई और बोली।।20।। ये राजा बड़े पराक्रमी हैं और अपनी शरण में आनेवालों की रक्षा करते हैं। अपनी प्रजा को सुख देकर इन्होंने बड़ा नाम कमाया है। इनका नाम 'परंतप' है और ये सचमुच परन्तप [शत्रुओं को ताप देनेवाले] हैं।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।।22।।
क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकाँश्चकार।।23।।
अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे।
प्रासादवातायनसंश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम्।।24।।
एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला।
ऋजुप्रणामक्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा।।25।।
तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय।
समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीम्।।26।।
जगाद चैनामयमङ्गनाथो सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः।।
विनीतनागः किल सूत्रकारैरैन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुङ्क्ते।।27।।
अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून्मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः।।28।।

जैसे तारों, ग्रहों और नक्षत्रों से भरी रहने पर भी रात तभी चाँदनी रात कहलाती है, जब चन्द्रमा खिला हुआ हो, वैसे ही यद्यपि संसार में सहस्त्रों राजा हैं; किन्तु पृथ्वी इन्हीं के रहने से राजावाली कहलाती है।।22।। इन्होंने एक पर एक यज्ञ करके बार-बार इन्द्र को अपने यहाँ बुलाया, जिसका फल यह हुआ कि इन्द्राणी के सिर की चोटी कल्पवृक्ष के फूलों का शृङ्गार न होने से पीले गालों पर झूलने लगी, [क्योंकि पति के पास न रहने से उन्होंने शृंगार करना ही छोड़ दिया था]।।23।। यदि इनके साथ तुम विवाह करना चाहती हो तो अवश्य करो। क्योंकि जब तुम विवाह करके इनके साथ इनकी राजधानी [पाटलिपुत्र में] पहुँचोगी, तब वहाँ की स्त्रियाँ झरोखों में बैठकर तुम्हें देखेंगी और तुम्हारी सुन्दरता देखकर उनकी आँखों को सुख मिलेगा।।24।। सुनन्दा की बात सुनकर इन्दुमती ने तनिक-सी आँख उठाकर राजाओं को देखा। उसके हाथ की दूब में गुथी हुई महुए की माला कुछ सरक गई और बिना कुछ कहे-सुने सीधा-सा प्रणाम करके उसे अस्वीकार करती हुई, वह आगे बढ़ गई।।25।। जैसे वायु से उठी हुई लहर के सहारे मानसरोवर की राजहंसिनी एक कमल से दूसरे कमल तक पहुँच जाती है, उसी प्रकार सुनन्दा भी राजकुमारी इन्दुमती को दूसरे राजा के आगे पहुँचाकर खड़ी हो गई।।26।। और बोली—ये अंग देश के राजा हैं। इनके यौवन को देवताओं की स्त्रियाँ भी चाहा करती हैं। हाथियों की विद्या के बड़े-बड़े गुणी लोग इनके हाथियों को सिखाते हैं। ये पृथ्वी पर रहते हुए भी इन्द्र ही समझे जाते हैं।।27।। [इन्होंने जिन राजाओं को युद्ध में मार डाला था] उनकी स्त्रियों ने अपने पतियों के शोक में मोतियों के हार तो उतार फेंके थे; पर उनके रोने से उनके स्तनों पर गिरती हुई आँसुओं की बूँदें बड़े-बड़े मोतियों के समान लगती थीं, उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो इन्होंने शत्रुओं की स्त्रियों के गले से मोतियों के हार उतार कर उन्हें बिना डोरेवाले [आँसुओं के] हार पहना दिये हों।।28।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च।
कान्त्या गिरा सूनृतया चयोग्या त्वमेवकल्याणि तयोस्तृतीया।। 29।।
अथाङ्गराजादवतार्य चक्षुर्याहीति जन्यामवदत्कुमारी।
नासौ न काम्यो नच वेद सम्यग्द्रष्टुं न साभिन्नरुचिर्हि लोकः।। 30।।
ततः परं दुष्प्रसहं द्विषद्भिर्नृपं नियुक्ता प्रतिहारभूमौ।
निदर्शयामास विशेषदृश्यमिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै।। 31।।
अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः।
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति।। 32।।
अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेरग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि।
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि।। 33।।
असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः।
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्।। 34।।
अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते।
सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु।। 35।।

यों तो तुम जानती ही हो कि लक्ष्मी और सरस्वती दोनों में कभी नहीं बनती, पर इनके पास दोनों ही मिलकर रहती हैं। इसलिये हे कल्याणी! तुम सुन्दर भी हो और तुम्हारी मधुर वाणी भी है, तुम उन दोनों के साथ तीसरी बनकर पहुँच सकती हो।।29।। इन्दुमती, उस अंग देश के राजा से आँखें हटाईं और सुनन्दा से बोली आगे चलो—यह बात नहीं थी कि वह राजा सुन्दर न हो और न यही बात थी कि इन्दुमती ने उसे ठीक से देखा न हो; पर सबकी अपनी-अपनी रुचि ही तो है [किसी को कोई अच्छा लगता है, किसी को कोई]।।30।। वहाँ से आगे बढ़कर प्रतिहारी सुनन्दा ने एक दूसरे राजा को दिखाया जिससे सब शत्रु काँपते थे और जिसका रूप और यौवन पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर था। उसे दिखाकर सुनन्दा बोली।।31।। 'देखो, ये जो लम्बी भुजा, चौड़ी छाती और पतली गोल कमरवाले राजा सूर्य के समान चमक रहे हैं, ये अवन्ती देश के राजा हैं और ऐसा जान पड़ता है कि विश्वकर्मा ने अपने शान चढ़ाने के चक्र पर इन्हें बड़े यत्न से खराद कर बनाया है।।32।। जब ये शक्तिशाली राजा शत्रुओं पर चढ़ाई करते हैं, तब सेना के आगे चलनेवाले घोड़ों की टापों से उठी हुई धूल से शत्रुओं के मुकुटों की चमक धुँधली पड़ जाती है।।33।। इनका 'राज-भवन' महाकाल मन्दिर में बैठे हुए सिर पर चन्द्रमा को धारण करनेवाले शिवजी के पास ही है। इसलिये अँधेरे पाख में भी शिवजी के सिर पर बने हुए चन्द्रमा की चाँदनी से ये अपनी स्त्रियों के साथ सदा शुक्लपक्ष का ही आनन्द लेते हैं।।34।। केले के खम्भे के समान [चिकनी और ढलवाँ] जाँघवाली इन्दुमती! क्या तुम अवन्ती के उन उद्यानों में विहार करना चाहती हो, जिनमें दिन-रात सिप्रा नदी का ठंडा वायु हरहराता रहता है।।35।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के।
बबन्ध सा नोत्तमसौकुमार्या कुमुद्वती भानुमतीव भावम्।।36।।
तामग्रतस्तामरसान्तराभामनूपराजस्य गुणैरनूनाम्।
विधाय सृष्टिं ललितां विधातर्जुगाद भूयः सुदतीं सुनन्दा।।37।।
सङ्ग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्त्तवीर्यः।।38।।
अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवँश्चापधरः पुरस्तात्।
अन्तःशरीरेष्वपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता।।39।।
ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण।
कारागृहे निर्जितवासवेन लङ्केश्वरेणोषितमाप्रसादात्।।40।।
तस्यान्वये भूपतिरेष जातः प्रतीप[1] इत्यागमवृद्धसेवी।
येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम्।।41।।
आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम्।
धारां शितां रामपरश्वधस्य संभावयत्युत्पलपत्रसाराम्।।42।।

सुनन्दा की बात सुनकर भी सुकुमारी इन्दुमती को वह मित्रों को प्रसन्न करनेवाला और शत्रुओं को मारनेवाला प्रतापी राजा उसी प्रकार अच्छा नहीं लगा, जैसे कुमुदिनी को वह सूर्य नहीं भाता जो कमल को खिलाता है और कीचड़ को सुखा देता है।।36।। कमल के समान सुन्दरी, बड़ी गुणवती, विधाता की सुन्दर रचना और सुन्दर दाँतोंवाली इन्दुमती को वहाँ से 'अनूप' राजा के आगे ले जाकर सुनन्दा बोली–।।37।। 'बहुत दिनों की बात है, एक कार्त्तवीर्य नामक बड़े योगी हो चुके हैं। उनमें बड़ी भारी बात यह थी कि जब वे लड़ने जाते थे, तब उनके सहस्रों हाथ निकल आते थे। उन्होंने अठारह द्वीपों में जाकर यज्ञ के खम्भे गाड़ दिए थे। वे ऐसे प्रतापी थे कि उनके सामने कोई अपने को राजा ही नहीं कह सकता था।।38।। उनके समय में यदि कोई पाप करने का विचार भी करना था, तो वे धनुष-बाण लेकर उसके सिर पर जा चढ़ते थे। इस ढंग से उस दंडधारी ने सब लोगों के मन से पाप निकाल डाला था।।39।। जिस रावण ने इन्द्र को जीत लिया था, उसको भी उन्होंने अपने कारागार में बन्दी रख छोड़ा था। उन्होंने रावण की भुजाएँ इस प्रकार धनुष की डोरी से कसकर बाँध दी थीं कि वह बेचारा दिन-रात उसाँसें भरता रहता था और जब तक कार्त्तवीर्य उस पर प्रसन्न नहीं हुए तब तक उन्होंने उसे छोड़ा नहीं।।40।। उन्हीं प्रसिद्ध राजा के वंश में ये उत्पन्न हुए हैं, ये वेदों और बड़े-बूढ़ों [अथवा वेद के पण्डितों] की बड़ी सेवा करते हैं। लक्ष्मी को जो चंचलता का दोष लगाया जाता था, उनका वह दोष भी तब से धुल गया जब से वह इनके साथ रहने लगीं [क्योंकि लक्ष्मी तो उसी पुरुष को छोड़कर चंचला होकर जाती हैं जो व्यसनी होते हैं। इनमें कोई व्यसन नहीं, इसलिये इन्हें क्यों छोड़कर जायें]।।41।। ये राजा इतने बलवान् हैं कि अग्नि की सहायता पा लेने से, ये परशुराम के उस फरसे की तेज धारा को भी कमल की पंखुड़ी के समान कोमल समझते हैं, जिसने युद्ध में क्षत्रियों का महासंहार कर डाला था।।42।।

---

1. प्रदीप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम्।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः।।43।।
तस्याः प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि न स क्षितीशो रुचये बभूव।
शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः शशीव पर्याप्तकलो नलिन्याः।।44।।
सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम्।
आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी।।45।।
नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण।
सिद्धाश्रमं शान्तमिवैत्य सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः।।46।।
यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा कान्तिर्हिमांशोरिव संनिविष्टा।
हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु तेजोऽविषह्यं रिपुमन्दिरेषु।।47।।
यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले।।
कलिन्दकन्या मथुरां[1] गतापि गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति।।48।।
त्रस्तेन तार्क्ष्यात्किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः।
वक्षःस्थलव्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम्।।49।।

तुम यदि राजभवन के झरोखों से उस सुन्दर लहरोंवाली नर्मदा का मनोहर दृश्य देखना चाहो, जो माहिष्मती नगरी के चारों ओर घूम गई है, तो इस महाबाहु राजा से विवाह कर लो।।43।। जैसे खुले आकाशवाली शरद ऋतु का मनोहर चन्द्रमा भी कमलिनी को नहीं भाता, वैसे ही वह सुन्दर राजा भी इन्दुमती के मन में नहीं जँचा।।44।। तब रनिवास की सेविका सुनन्दा, राजकुमारी को मथुरा के उस राजा सुषेण के आगे ले गई जिसकी कीर्ति स्वर्ग के देवता भी गाते थे और जिसने अपने शुद्धचरित्र से माता और पिता के दोनों कुलों को उजागर कर दिया था। उन्हें दिखाकर सुनन्दा बोली–।।45।। ये राजा बड़ी विधि से यज्ञ करते हैं और प्रशंसनीय वंश में उत्पन्न हुए हैं। जैसे ऋषियों के शान्त आश्रमों में सब जीव बैर छोड़कर एक साथ रहते हैं, वैसे ही विद्वत्ता और मौन रहना ये परस्पर विरोधी गुण भी इनमें एक साथ रहते हैं।।46।। चन्द्रमा की चाँदनी के समान आँखों को सुख देनेवाला इनका प्रकाश तो घर में रहता है और सूर्य के समान प्रचण्ड तेज शत्रुओं के उन राजभवनों पर दिखाई देता है, जिनके उजड़ जाने पर उनमें घास जम आई है।।47।। जब ये जलविहार करते हैं और इनकी रानियों के स्तनों पर लगा हुआ चन्दन जल में मिलकर यमुना में बहने लगता है उस समय मथुरा में भी यमुनाजी का रंग ऐसा प्रतीत होता है मानो वहीं पर उनका गंगाजी की लहरों से संगम हो गया हो।।48।। जब ये अपने ग़ले में वह मणि पहन लेते हैं, जो उन्हें उस कालिय नाग ने दी थी, जो गरुड़ के डर से यमुना के जल में रहने लगा था, तब इनकी शोभा के आगे कौस्तुभमणि पहने हुए श्रीकृष्णजी की शोभा भी फीकी पड़ जाती है।।49।।

---

1. मधुरां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभाव्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः।।50।।
अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि।।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु।।51।।
नृपं तमावर्त्तमनोज्ञनाभिः सा व्यत्यगादन्यवधूर्भवित्री।
महीधरं मार्गवशादुपेतं स्रोतोवहा सागरगामिनीव।।52।।
अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम्।
आसेदुषीं सादितशत्रुपक्षं बालामबवालेन्दुमुखीं बभाषे।।53।।
असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च।
यस्य क्षरत्सैन्यगजच्छलेन यान्त्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः।।54।।
ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां बिभर्ति यश्चापभृतां पुरोगः।
रिपुश्रियां साञ्जनवाष्पसेके वन्दीकृतानामिव पद्धती द्वे।।55।।
यमात्मनः सद्मनि संनिकृष्टो मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः।
प्रासादवातायनदृश्यवीचिः प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम्।।56।।

हे सुन्दरी! इनके साथ विवाह करके आप कुबेर के चैत्ररथ नाम के उद्यान से भी बढ़कर सुन्दर वृन्दावन में कोमल पत्तों और फूलों की शय्याओं पर विहार करना।।50।। वर्षा के दिनों में गोवर्धनपर्वत की सुहानी गुफाओं में पानी की फुहारों से भींगी हुई शिलाजीत की गन्ध वाली पत्थर की पाटियों पर बैठकर मोरों का नाच देखना।।51।। पानी की भँवर के समान गहरी नाभिवाली और किसी अन्य से विवाह करने की इच्छावाली इन्दुमती, राजा सुषेण को छोड़कर उसी प्रकार आगे बढ़ गई, जैसे समुद्र की ओर बढ़ती हुई नदी बीच में स्थित पहाड़ को छोड़ जाती है।।52।। वहाँ से सुनन्दा दासी पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली इन्दुमती को उस कलिंग देश के राजा हेमाङ्गद के आगे ले गई, जो अपनी बाँह में भुजबन्ध पहने हुए थे और जिन्होंने अपने शत्रुओं को नष्ट कर डाला था। उन्हें दिखाती हुई सुनन्दा बोली।।53।। 'इनको देखती हो! ये महेन्द्रपर्वत के समान शक्तिवाले हैं महेन्द्रपर्वत और समुद्र दोनों पर इनका अधिकार है। जब ये युद्ध के लिये चलते हैं, उस समय इनके आगे-आगे चलने वाले मतवाले हाथी ऐसे लगते हैं, मानो हाथियों का वेष बनाकर स्वयं महेन्द्रपर्वत चला जा रहा हो।।54।। इनको देखती हो, कैसी सुन्दर इनकी भुजाएँ हैं और धनुषधारियों में तो इनसे बढ़कर कोई है ही नहीं। इनकी भुजाओं पर जो दो काली-काली रेखाएँ धनुष की डोरी खींचने से बन गई हैं, वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो ये शत्रुओं की उस राज्य-लक्ष्मी के आने की दो पगडंडियां हैं, जो उन्होंने शत्रुओं से छीन ली हों और जिसके कजरारे नेत्रों से बहे आँसुओं के कारण ये काले पड़ गए हों।।55।। ठीक इनके राजभवन के नीचे ही समुद्र हिलोरें लेता है। उनकी लहरें राजभवन के झरोखों से स्पष्ट दिखाई देती हैं। जब ये अपने राजभवन में सोते हैं तब वह समुद्र की नगाड़े की ध्वनि से भी गंभीर अपने गर्जन से इन्हें प्रातः जगा देता है।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेन सार्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः।। 57।।
प्रलोभिताप्याकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तयैवम्।
तस्मादपावर्तत दूरकृष्टा नीत्येव लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात्।। 58।।
अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूपमेत्य।
इतश्चकोराक्षि विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम्।। 59।।
पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः।। 60।।
विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेर्निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः।
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः।। 61।।
अस्त्रं हरादाप्तवता दुरापं येनेन्द्रलोकावजयाय दृप्तः।
पुरा जनस्थानविमर्दशङ्की संधाय लङ्काधिपतिः प्रतस्थे।। 62।।
अनेन पाणौ विधिवद्गृहीते महाकुलीनेन महीव गुर्वी।
रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः।। 63।।

तुम चाहो तो इनके साथ विवाह करके समुद्र के उन तटों पर विहार करो, जहाँ दिन-रात ताड़ के जंगलों की तड़-तड़ाहट सुनाई देती है और वहाँ जब तुम्हें पसीना हुआ करेगा, तब लौंग के फूलों की सुगन्ध में बसा हुआ दूसरे द्वीपों से आता हुआ शीतल पवन तुम्हारा पसीना पोंछ दिया करेगा।।57।। विदर्भराज की छोटी बहन सुन्दरी इन्दुमती अपनी दासी की लुभावनी बातें सुनकर भी उस राजा को छोड़कर उसी प्रकार आगे बढ़ गई, जैसे पुरुषार्थ से लाई हुई लक्ष्मी भाग्य के फेर से छोड़कर चली जाती है।।58।। तब सुनन्दा उसे देवता के समान मनोहर नागपुरी के राजा के पास ले जाकर बोली—'अरी चकोर-जैसे नेत्रवाली! इधर तो देख।।59।। ये पांड्यदेश के राजा हैं जिनके कंधे पर बड़ा-सा हार लटका हुआ है और जिनके शरीर पर हरिचन्दन का लेप किया हुआ है। इस वेश में ये उस हिमालय के शिखर के समान सुन्दर लग रहे हैं, जो प्रातःकाल की धूप से लाल हो गया हो और जिस पर से अनेक पानी के झरने गिर रहे हों।।60।। जब ये अश्वमेध यज्ञ करके स्नान करते हैं, तब इनसे वे महाप्रतापी अगस्त्य ऋषि आकर कुशल पूछते हैं, जिन्होंने विन्ध्याचल को आगे बढ़ने से रोक दिया था और पूरे समुद्र को पीकर फिर मुँह से निकाल दिया था।।61।। जब महाप्रतापी रावण इन्द्र को जीतने चला, तब उसने इस डर से इनसे सन्धि कर ली थी कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी पीठ पीछे ये मेरे देश को तहस-नहस कर दें; क्योंकि इन्होंने भी शिवजी से बड़ा प्रतापी अस्त्र प्राप्त कर रखा है।।62।। ये बड़े अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हैं और तुम भी पृथ्वी के समान महान् हो। इनके साथ विधिपूर्वक पाणिग्रहण करके तुम रत्नों से भरी उस दक्षिण देश की पृथ्वी की सौत बन जाओ जिसके चारों ओर स्वयं रत्नों से भरा समुद्र है।।63।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु ।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ।। 64 ।।

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः ।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु ।। 65 ।।

स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः ।
दिवाकरादर्शनवद्धकोशे नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे ।। 66 ।।

संचारिणीदीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।67 ।।

तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत ।
वामेतरः संशयमस्य बाहुः केयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद ।। 68 ।।

तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यवर्त्ततान्योपगमात्कुमारी ।।
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली ।। 69 ।।

तस्मिन्समावेशितचित्तवृत्तिमिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य ।
प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा सविस्तरं वाक्यमिदं सुनन्दा ।। 70 ।।

यदि तुम सदा मलयपर्वत की उन घाटियों में विहार करना चाहो, जिनमें पान की बेलों से ढके हुए सुपारी के पेड़ खड़े हैं, इलायची की बेलों से लिपटे हुए चन्दन के पेड़ लगे हैं और स्थान-स्थान पर ताड़ के पत्ते फैले हुए हैं, तो तुम इनसे विवाह कर लो। ।64।। फिर ये नीलकमल के समान साँवले हैं और तुम गोरोचन जैसी गौरी हो, इसलिये तुम दोनों का विवाह हो जायेगा, तो तुम ऐसी सुन्दर लगोगी जैसे बादल के साथ बिजली। ।65।। सुनन्दा की बातें इन्दुमती के मन में वैसे ही नहीं घर कर सकीं जैसे सूर्य के न दिखाई देने पर बन्द कमल के भीतर चन्द्रमा की किरणें नहीं पहुँच पातीं। ।66।। रात को जब हम दीपक लेकर चलते हैं तब जो-जो भवन राजमार्ग के पीछे छूटते चलते हैं, वे अँधेरे में पड़कर धुँधले पड़ते जाते हैं, वैसे ही जिन-जिन राजाओं को छोड़कर इन्दुमती आगे बढ़ गई, उनका मुँह उदास पड़ गया। ।67।। जब वह रघु के पुत्र अज के आगे आकर खड़ी हुई, तब अज के मन में भी वह शंका होने लगी कि यह मेरा वरण करेगी या नहीं। पर उसी समय भुजबन्ध के पास उनकी दाईं भुजा फड़क उठी जिससे उनकी शंका दूर हो गई। ।68।। इन्दुमती ने जब उन सर्वाङ्ग-सुन्दर राजा अज को देखा, तब वह वहीं रुक गई और फिर किसी राजा के आगे नहीं जा सकी; क्योंकि जब भौरों का झुण्ड आम के वृक्ष पर पहुँच जाता है, तब उन्हें दूसरे वृक्षों के पास जाने की चाह नहीं रहती। ।69।। सुनन्दा तो बात चलाने का बड़ा ढंग जानती थी इसलिये जब उसने देखा कि चन्द्रमा के समान मुखवाली इन्दुमती अज के रूप पर लट्टू हो गई है, तब वह बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बात बनाती हुई बोली— ।।70।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्।
काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोशलेन्द्राः।। 71।।
महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपं यः संयति प्राप्तपिनाकिलीलः।
चकार बाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः।। 72।।
ऐरावतास्फालनविश्लथं यः संघट्टयन्नङ्गदमङ्गदेन।
उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमाग्र्यामर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ।। 73।।
जातः कुले तस्य किलोरुकीर्तिः कुलप्रदीपो नृपतिर्दिलीपः।
अतिष्ठदेकोनशतक्रतुत्वे शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये यः।। 74।।
यस्मिन्महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथेगतानाम्।
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्।। 75।।
पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता।
चतुर्दिगावर्जितसंभृतां यो मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम्।। 76।।
आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णं भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम्।
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम्।। 77।।

'देखो! इक्ष्वाकु के वंश में, राजाओं में श्रेष्ठ और सुन्दर लक्षणों वाले एक ककुत्स्थ नाम के राजा हो गए हैं, जिनके कारण उनके पीछे उत्तरकोशल के सभी राजा अपने को 'काकुत्स्थ' कहते आये हैं।।71।। उन ककुत्स्थ राजा ने जब युद्ध में असुरों को मारा था, तब बैल पर चढ़े हुए वे शिवजी के समान लगते थे। [और जानती हो उनका बैल कौन था।] स्वयं इन्द्र भगवान् उनके लिए बैल बने हुए थे और उस युद्ध में उन्होंने जिन असुरों को मार डाला था, उनकी स्त्रियों ने पतियों से वियोग होने के कारण अपने कपोलों को पोंछना ही छोड़ दिया था।।72।। युद्ध समाप्त हो जाने पर जब इन्द्र अपना रूप धारण करके ऐरावत पर चढ़कर स्वर्ग जाने लगे, तब उनके साथ ककुत्स्थ भी बैठे हुए थे। उस समय वे इन्द्र के साथ ऐसे सटे हुए बैठे थे कि ऐरावत को बार-बार अंकुश लगाने से इन्द्र के जो भुजबन्ध ढीले पड़ गए थे, वे ककुत्स्थ के भुजबन्ध से रगड़ खाते चलते थे।।73।। उन्हीं प्रतापी ककुत्स्थ के वंश में यशस्वी राजा दिलीप ने जन्म लिया, जो केवल निन्यान्वे यज्ञ करके ही इसलिये चुप हो गए कि कहीं सौ यज्ञ पूरे करने से इन्द्र को कष्ट न हो।।74।। वे प्रतापी राजा ऐसे अच्छे ढंग से अपना राज चलाते थे और उनका ऐसा दबदबा था कि उपवनों में स्त्रियों के वस्त्रों को वायु भी नहीं हिला सकता था, फिर उन्हें हटाने का साहस तो भला कौन करता।।75।। उन्हीं के पुत्र रघु उनके पीछे राजा हुए, जिन्होंने सब देशों को जीतकर अपार धन इकट्ठा किया और विश्वजित् यज्ञ में अपना सब कुछ बाँट दिया, केवल मिट्टी का पात्र भर उनके पास अवशिष्ट रहा।।76।। उनका यश कहाँ तक फैला हुआ है, उसका कोई ठिकाना नहीं है। पर्वतों पर, समुद्र के पार, पाताल में, नागों के देश में, सब दिशाओं में और भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों कालों में सब जगह उनका यश फैला हुआ है।।77।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः।
गुर्वीं धुरं योभुवनस्य पित्रा धुर्येण दम्यः सदृशं बिभर्ति।।78।।
कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन।।79।।
ततः सुनन्दावचनावसाने लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव।।80।।
सा यूनि तस्मिन्नभिलापबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम्।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टिं भित्वा निराक्रामदरादलकेश्याः।।82।।
तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदाबभाषे।
आर्ये व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां वधूरसूयाकुटिलं ददर्श।।81।।
सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य धात्रीकराभ्यां करभोपमोरूः।
आसज्जयामास यथाप्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्त्तमिवानुरागम्।।83।।
तथा स्रजा मङ्गलपुष्पमय्या विशालवक्षः स्थललम्बया सः।
अमँस्त कण्ठार्पितवाहुपाशां विदर्भराजावरजां वरेण्यः।।84।।
शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा।
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्रपौराः श्रवणकटुनृपाणामेकवाक्यं विवब्रुः।।85।।

जैसे इन्द्र के पुत्र जयन्त बड़े प्रतापी हुए थे, वैसे ही कुमार अज भी उन्हीं प्रतापी रघु के पुत्र हैं और ये भी अपने प्रतापी पिता के समान ही राज्य का सब काम सँभालते हैं।।78।। इनका कुल, रूप, यौवन, और नम्रता आदि गुण सब तुम्हारे ही जैसे हैं। तुम इनसे अवश्य विवाह करो, जिससे रत्न और सोने का ठीक-ठीक मेल हो जाय।।79।। जब सुनन्दा कह चुकी, तब इन्दुमती ने संकोच छोड़कर अपनी हँसती हुई आँखें अज पर डालीं और आँखों-आँखों में इस प्रकार उन्हें वर लिया, मानो वह दृष्टिही स्वयंवर की माला हो।।80।। लाज के मारे इन्दुमती अपने प्रेम की बात अज से कह तो न सकी, पर उस प्रेम के कारण उसे रोमांच हो आया और घुँघराले बालों वाली इन्दुमती के हृदय का वह प्रेम छिपाने पर भी न छिप सका, मानो खड़े हुए रोगंटों के रूप में वह प्रेम शरीर फोड़कर निकल आया हो।।81।। सुनन्दा ने इन्दुमती की यह दशा देखकर ठिठोली करते हुए कहा—आर्ये! चलिए आगे बढ़िए। इसपर इन्दुमती ने आँखें तरेरकर सुनन्दा की ओर देखा।।82।। हाथी की सूँड़ के समान जंघाओं वाली इन्दुमती सुनन्दा के हाथों से रघु के पुत्र अज के गले में वह स्वयंवर की माला पहनवा दी, जिसके डोरे में लगी हुई रोली साक्षात् अनुराग के समान ही शोभा दे रही थी।।83।। जब अज के गले में वह फूलों की मंगल माला पड़ी और उनकी चौड़ी छाती पर झूल गई, तब उसे देखकर अज ने यही समझा मानो इन्दुमती ने मेरे गल में अपनी भुजाएँ ही डाल दी हों।।84।। जब वहाँ के नगरवासियों ने देखा कि समान गुणवाले अज और इन्दुमती का सम्बन्ध हो गया तब वे एक साथ बोल उठे—'यह तो चाँदनी और चन्द्रमा का मेल हुआ है और गंगाजी समुद्र में मिल गई हैं।' दूसरे राजा लोग ज्यों-ज्यों ये सब बातें सुनते जा रहे थे, त्यों-त्यों मन में कुढ़ते जा रहे थे।।85।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम्।
उषसि सर इव प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत्।।86।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
स्वयंवरवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः।।

स्वयंवर के मंडप में एक ओर अज के साथी हँसते हुए खड़े थे और दूसरी ओर उदास मुँहवाले राजा लोग। उस समय वह मण्डप प्रातःकाल के उस सरोवर जैसा लगने लगा, जिसमें एक ओर खिले हुए कमल दिखाई दे रहे हों और दूसरी ओर बन्द कुमुदों का झुण्ड खड़ा हो गया हो।।86।।

महाकवि कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'इन्दुमती-स्वयंवर' नाम का छठा सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। सप्तमः सर्गः ।।

अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम् ।
स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ।। 1 ।।
सेनानिवेशान्पृथिवीक्षितोऽपि जग्मुर्विभातग्रहमन्दभासः ।
भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वाद्रूपेषु वेषेषु च साभ्यसूयाः ।। 2 ।।
सांनिध्ययोगात्किल तत्र शच्याः स्वयंवरक्षोभकृतामभावः ।
काकुस्थमुद्दिश्य समत्सरोपि शशाम तेन क्षितिपाललोकः ।। 3 ।।
तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारमिन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम् ।
वरः स वध्वा सह राजमार्गं प्राप ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् ।। 4 ।।
ततस्तदालोकनतत्पराणां सौधेषु चामीकरजालवत्सु ।
बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ।। 5 ।।
आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः ।
बद्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ।। 6 ।।

सातवाँ सर्ग

स्वयंवर हो चुकने पर योग्य पति से ब्याही हुई, अपनी बहन इन्दुमती को साथ लेकर विभर्दनरेश नगर की ओर चले। अपनी पत्नी इन्दुमती के साथ जाते हुए 'अज' ऐसे लग रहे थे, मानो साक्षात् देवसेना के साथ स्कन्द जा रहे हों।।1।। दूसरे राजा लोग भी प्रातःकाल के तारों के समान अपना उदास मुँह लेकर अपने-अपने डेरों में यह कहते हुए लौट गए कि जब इन्दुमती ही नहीं मिली तब हम लोगों का यह रूप और यह वेश किस काम का।।2।। उस स्यवंवर में स्वयं इन्द्राणी उपस्थित थीं; इसलिये वहाँ किसी का साहस नहीं हुआ कि कुछ गड़बड़ी कर सके। जितने हारे हुए राजा थे वे सभी अज से मन ही मन ईर्ष्या कर रहे थे; किन्तु इन्द्राणी के रहने से उनका भी क्रोध ठण्डा पड़ गया।।3।। उस समय अज अपनी पत्नी के साथ नगर के बीच से राजपथ पर चले जा रहे थे। स्थान-स्थान पर सुन्दर नये फूल उन पर बरसाए जा रहे थे और इन्द्रधनुष के समान रंग-बिरंगे तोरण उनके स्वागत में सजाए गए थे। नगर में इतनी झण्डियाँ लगाई गई थीं कि धूप भी रुक गई थी।।4।। उनको देखने के लिये नगर की सुन्दरियाँ अपना-अपना काम छोड़कर अपने-अपने भवनों के झरोखों की ओर दौड़ पड़ीं।।5।। एक सुन्दरी उन्हें देखने के लिए जब झरोखे की ओर लपकी, तब सहसा उसका जूड़ा खुल गया। उस हड़बड़ी में अपना जूड़ा बाँधने की भी उसे सुध न रही और वह अपने केश हाथ में थामे ही खिड़की पर पहुँच गई। बालों के ढीले पड़ जाने से उनमें गुथे हुए फूल बराबर नीचे गिरते जाते थे।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान।।7।।
विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसंनिकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती।।8।।
जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः।।9।।
अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा।।10।।
तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन्।।11।।
ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा।।12।।
स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुममँस्त भोज्या।
पद्मेव नारायणमन्यथासौ लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम्।।13।।

एक दूसरी स्त्री अपनी शृङ्गार करनेवाली दासी से पैरों में महावर लगवा रही थी। वह भी अपने पैर खींचकर गीले पैरों से ही झरोखे की ओर दौड़ पड़ी, जिससे झरोखे तक लाल पैरों के छाप की पाँत-सी बनती चली गई।।7।। एक तीसरी स्त्री अपनी आँखों में आँजन लगा रही थी। दाईं आँख में तो लगा चुकी थी; पर बाईं आँख में आँजन लगाए बिना ही वह सलाई हाथ में लिए झरोखे की ओर दौड़ पड़ी।।8।। एक और स्त्री झरोखे में आँख लगाए खड़ी थी। उसका नीवीबन्ध खुल गया था; पर उसे बाँधने की सुध ही नहीं थी। वह अपने कपड़े हाथ से थामे इस प्रकार खड़ी थी कि उसके हाथ के आभूषणों की चमक उसकी नाभि तक पहुँच रही थी।।9।। एक स्त्री बैठी हुई मणियों की माला गूंथ रही थी जिसका एक छोर उसने एक पैर के अँगूठे में बाँध रक्खा था। वह अभी आधी ही पिरो पाई थी कि सहसा उठकर अज को देखने के लिये झरोखे की ओर लपकी चली गई। फल यह हुआ कि वहाँ पहुँचते-पहुँचते मणि तो सब निकल-निकलकर इधर-उधर बिखर गए, केवल डोरा-भर पाँव में बँधा रह गया।।10।। मदिरा की गन्ध से सुवासित मुखोंवाली, झरोखों में उत्सुकता के साथ झाँकती हुई वे स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो झरोखों में बहुत-से कमल सजे हुए हों और उन पर बहुत-से भौंरे आ बैठे हों; क्योंकि उनके सुन्दर मुखों पर आँखें ऐसी जान पड़ती थी जैसे कमल पर भौंरे बैठे हों।।11।। वे स्त्रियाँ ऐसी एकटक होकर अपने नेत्रों से अज का रूप पी रही थीं कि उनका ध्यान किसी और काम की ओर गया ही नहीं, मानो उनकी सभी इन्द्रियों की शक्ति आँखों में ही आ बसी हो।।12।। [स्त्रियाँ आपस में कह रही थीं] यों तो बहुत-से राजाओं ने अपने आप आकर इन्दुमती से विवाह की प्रार्थना की थी, पर राजकुमारी ने स्वयंवर करके ही अपना विवाह करना उचित समझा और यह ठीक भी किया। जैसे स्वयंवर में लक्ष्मी ने नारायण को वर लिया, वैसे ही इन्दुमती ने भी अज को वर लिया है। बताओ तो बिना स्वयंवर के उसे ऐसा योग्य वर कैसे मिल पाता?।।13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत्।। 14।।

रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथाहि बाला।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम्।। 15।।

इत्युद्गताः पौरवधूमुखेभ्यः शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखाः कुमारः।
उद्भासितं मङ्गलसंविधाभिः संबन्धिनः सद्म समाससाद।। 16।।

ततोऽवतीर्याशु करेणुकायाः स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः।
वैदर्भनिर्दिष्टमथो विवेश नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः।। 17।।

महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ सरत्नमर्घ्यं मधुपर्कमिश्रम्।
भोजोपनीतं च दुकूलयुग्मं जग्राह सार्धं वनिताकटाक्षैः।। 18।।

दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधदक्षैः।
वेलासकाशं स्फुटफेनाराजिनवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः।। 19।।

तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः।
तमेव चाधाय विवाहसाक्ष्ये बधूवरौ संगमयांचकार।। 20।।

यदि ब्रह्मा यह सुन्दर जोड़ी न मिलाते तो इन दोनों को सुन्दर बनाने का उनका सब परिश्रम ही व्यर्थ हो जाता।।14।। ये दोनों पिछले जन्म में रति और कामदेव ही रहे होंगे। इसीलिये तो सहस्रों राजाओं के बीच में इन्दुमती ने उन्हें प्राप्त कर लिया; क्योंकि पिछले जन्म के सम्बन्ध को मन तो भली-भाँति पहचान ही लेता है।।15।। नगर की महिलाओं के मुँह से इस प्रकार की बातें सुनते हुए कुमार अज अपने सम्बन्धी भोज के उस राज-भवन में जा पहुँचे; जो मंगल सामग्रियों की सजावट से जगमगा रहा था।।16।। वहाँ पहुँचकर वे तत्कालहथिनी से नीचे उतरे और कामरूप के राजा के हाथ में हाथ देकर विदर्भराज के बताये हुए भीतरी चौक में ऐसे पैठ गये, मानो वे वहाँ की स्त्रियों के मन में भी पैठ गए हों।।17।। वहाँ वे सुन्दर बहुमूल्य सिंहासन पर जाकर बैठ गए। भोज ने उन्हें रेशमी वस्त्रों के एक जोड़े के साथ जो [दही, मधु और घी मिला हुआ] मधुपर्क भेंट किया, उसे उन्होंने वहाँ की नवेलियों की बाँकीं चितवन के साथ-साथ स्वीकार कर लिया।।18।। जैसे चन्द्रमा की नई किरणें समुद्र की उजली झागवाली लहरों को खींचकर दूर किनारे तक ले आती हैं, वैसे ही रनिवास के नम्र सेवक अज को इन्दुमती के पास ले गये।।19।। वहाँ विदर्भराज के अग्नि के समान तेजस्वी पुरोहित ने घी आदि सामग्रियों से हवन करके और उसी अग्नि को साक्षी बनाकर वर-वधू का गठबन्धन कर दिया।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तेन हस्तं परिगृह्य बध्वाः स राजसूनुः सुतरां चकासे।
अनन्तराशोकलताप्रवालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन।। 21।।
आसीद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः स्विन्नांगुलिः संववृते कुमारी।
तस्मिन्द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिः समं विभक्तेव मनोभवेन।। 22।।
तयोरपाङ्गप्रतिसारितानि क्रियासमापत्तिनिवर्त्तितानि।
हीयन्त्रणामानशिरे मनोज्ञामन्योन्यलोलानि विलोचनानि।। 23।।
प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्।। 24।।
नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन।
चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ।। 25।।
हविः शमीपल्लवलाजगन्धी पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे।। 26।।
तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम्।
वधूमुखं पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्बभूव।।27।।
तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा पुरंध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम्।
कन्याकुमारी कनकासनस्थावार्द्राक्षितारोपणमन्वभूताम्।। 28।।

जैसे आम का पेड़ अपनी पत्तियों के साथ-साथ अशोक लता की लाल पत्तियों के मिल जाने से मनोहर लगता है वैसे ही जब अज ने अपनी बहू का हाथ पकड़ा, तब वे भी बहुत सुन्दर लगने लगे।।21।। बहू के हाथ थामने से अज को रोमांच हो आया और इन्दुमती की उँगलियों में पसीना आने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो कामदेव ने अपने प्रेम का भाव उन दोनों में बराबर बाँट दिया हो।।22।। वे कनखियों से एक दूसरे की ओर देखते थे और आँखें चार होते ही एक दूसरे को देखकर लज्जा से आँखें नीची कर लेते थे। उनका यह लाजभरा संकोच देखनेवालों का मन मोह ले रहा था।।23।। अज और इन्दुमती दोनों जब हवन की अग्नि के फेरे देने लगे, उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो दिन और रात का जोड़ा मिलकर सुमेरुपर्वत की फेरी दे रहा हो।।24।। तब बड़े-बड़े नितम्बोंवाली मत्त चकोर के समान आँखोंवाली, लजीली इन्दुमती ने ब्रह्मा के समान पूज्य पुरोहित के कहने से अग्नि में धान की खीलें छोड़ीं।।25।। घी शमी के पत्तों और धान की खीलों की गन्ध से भरा हुआ पवित्र धुआँ अग्नि से निकलकर जब इन्दुमती के कपोल तक पहुँचा, तब ऐसा जान पड़ा मानो इन्दुमती ने नीले कमल का कर्णफूल पहन लिया हो।।26।। उस विवाह की अग्नि का धुआँ लगने से इन्दुमती को आँखों से आँजन मिला हुआ आँसू बहने लगा, कानों के कर्णफूल कुम्हला गए और गाल गाल हो गए।।27।। फेरे हो चुकने पर सोने के सिंहासन पर बैठे हुए वर-वधू के ऊपर स्नातकों ने, कुटुम्बियों ने, भोजराज ने और पुरोहित जी ने बारी-बारी से अक्षत एवं खीले छोड़कर आशीर्वाद दिए।।28।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति स्वसुर्भोजकुलप्रदीपः संपाद्य पाणिग्रहणं स राजा।
महीपतीनां पृथगर्हणार्थं समादिदेशाधिकृतानधिश्रीः।। 29।।
लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः।
वैदर्भमामन्त्र्य ययुस्तदीयां प्रत्यर्प्य पूजामुपदाच्छलेन।। 30।।
स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम्।।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ।। 31।।
भर्त्तापि तावत्क्रथकैशिकानामनुष्ठितानन्तरजाविवाहः।
सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः प्रास्थापयद्राघवमन्वगाच्च।। 32।।
तिस्रस्त्रिलोकप्रथितेन सार्धमजेन मार्गे वसतीरुषित्वा।
तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः पर्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः।। 33।।
प्रमन्यवः प्रागपि कोशलेन्द्रे प्रत्येकमात्तस्वतया बभूवुः।
अतो नृपाश्चक्षमिरे समेताः स्त्रीरत्नलाभं न तदात्मजस्य।। 34।।
तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः।
बलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रमं पादमिवेन्द्रशत्रुः।। 35।।

उस भोज-कुल के दीपक, लक्ष्मीवान् राजा ने अपनी बहन का विवाह-संस्कार पूरा करके सेवकों को आज्ञा दी कि वे अलग-अलग सब राजाओं का आदर-सत्कार करें।।29।। जैसे तालाब के निर्मल जल के भीतर ही घड़ियाल भी रहते हैं, वैसे ही दूसरे राजा भी ऊपर से तो बड़े प्रसन्न दिखाई देते थे, पर मन में बड़े खिन्न थे। वे सब विदर्भराज से आज्ञा लेकर उनकी दी हुई सामग्री को भेंट करने के बहाने से लौटा-लौटाकर अपने-अपने देशों को लौट चले।।30।। इन राजाओं ने मिलकर पहले ही निश्चय कर लिया था कि जब 'अज' इन्दुमती को लेकर चलें तो उन्हें घेर लिया जाय और उनसे सुन्दरी इन्दुमती को छीन लिया जाय; इसलिये वे सब मिलकर आगे अज का मार्ग रोककर बीच में ठहर गए।।31।। इधर छोटी बहिन का विवाह करके विदर्भ-राज ने भी अपने सामर्थ्य के अनुसार धन देकर रघु के पुत्र अज को बिदा कर दिया और उनके साथ-साथ जाकर कुछ दूर तक उन्हें पहुँचा आए।।32।। कुण्डिनपुर के राजा भोज ने तीनों लोकों में विख्यात अज के साथ मार्ग में तीन रातें बिताईं और फिर वैसे ही लौट आए जैसे अमावस्या होने पर सूर्य के पास से चन्द्रमा लौट आता है।।33।। जो राजा मार्ग रोके खड़े हुए थे, उनका कोशलपति रघु ने दिग्विजय के समय धन छीन लिया था, इसलिये वे तो पहले से ही उनसे जले बैठे थे। वे यह भी नहीं सह सके कि रघु का पुत्र हम लोगों के रहते हुए इन्दुमती को लेकर चला जाय।।34।। जब अज इन्दुमती को साथ लिए चले जा रहे थे, उस समय उन अभिमानी राजाओं ने अज को उसी प्रकार रोक लिया, जैसे इन्द्र के शत्रु वृत्रासुर ने वामन के चरण को उस समय रोक लिया था, जब वे बलि की राज्य-लक्ष्मी लेकर चले थे।।35।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः।
प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः।।36।।

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरसादी तुरगाधिरूढम्।
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्।।37।।

नदत्सु तूर्येष्वविभाव्यवाचो नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान्।
बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्जितं चापभृतः शशंसुः।।38।।

उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः।
विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैर्नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम्।।39।।

मत्स्यध्वजा वायुवशाद्विदीर्णैर्मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि।
बभुः पिबन्तः परमार्थमत्स्याः पर्याविलानीव नोदकानि।।40।।

रथो रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे विलोलघण्टाक्वणितेन नागः।
स्वभर्तृनामग्रहणाद्बभूव सान्द्रे रजस्यात्मपरावबोधः।।41।।

आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य।
शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः।।42।।

अज ने अपने पिता के मंत्री को आज्ञा दी कि थोड़े से योद्धा साथ लेकर इन्दुमती की रक्षा करो और वे स्वयं उस सेना को रोककर उसी प्रकार खड़े हो गए, जैसे बाढ़ के दिनों में ऊँची तरंगोंवाला शोणनद गङ्गाजी की धारा को रोक लेता है।।36।। लड़ाई छिड़ गई। पैदल, पैदलों से भिड़ गये, रथवाले रथवालों से जूझ गए, घुड़सवार घुड़सवारों से उलझ पड़े, हाथी-सवार हाथी सवारों पर टूट पड़े। इस प्रकार बराबर जोड़ की लड़ाई होने लगी।।37।। वहाँ इतनी तुरहियाँ बज रही थीं कि किसी को कुछ सुनाई नहीं देता था। इसलिये धनुषधारी अपना कुल और नाम भी नहीं पुकार रहे थे। पर वे जो बाण चला रहे थे उनपर खुदे हुए अक्षरों से ही उनके नामों का ज्ञान हो जाता था।।38।। युद्ध-क्षेत्र में घोड़ों की टापों से जो धूल उठी, उसमें रथ के पहियों से उठी हुई धूल मिलकर और भी घनी हो गई। हाथियों के कानों के डुलाने से ऐसी धूल चारों ओर फैल गई मानो सूर्य को कपड़े से ढक दिया गया हो।।39।। वायु के कारण सेना की मछली के आकारवाली झंडियों के मुँह खुल गये थे। उनमें जब धूल घुस रही थी, तब वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो वर्षा का गन्दा पानी पीती हुई वास्तविक मछलियाँ हों।।40।। धूल इतनी गहरी छा गई थी कि उस युद्ध क्षेत्र में पहियों का शब्द सुनकर ही वे समझ पाते थे कि रथ आ रहा है और अपना-पराया तब समझते थे, जब दोनों ओर के सैनिक अपने-अपने राजाओं का नाम ले-लेकर युद्ध करते थे।।41।। आँखों के आगे अँधेरा छा देनेवाली और युद्धभूमि में फैली हुई धूल के अँधियारे में, शस्त्रों से घायल घोड़ों, हाथियों और योद्धाओं के शरीर से निकला हुआ लहू, प्रातःकाल के सूर्य की लाली जैसा लगने लगा।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स च्छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुस्तस्योपरिष्टात्पवनावधूतः।
अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूम इवावभासे।।43।।
प्रहारमूर्च्छापगमे रथस्था यन्तॄनुपालभ्य निवर्तिताश्वान्।
यैः सादिता लक्षितपूर्वकेतूँस्तानेव सामर्षतया निजघ्नुः।।44।।
अप्यर्धमार्गे परवाणलूना धनुर्भृतां हस्तवतां पृषत्काः।
संप्रापुरेवात्मजवानुवृत्त्या पूर्वार्धभागैः फलिभिः शरव्यम्।।45।।
आधोरणानां गजसंनिपाते शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः।
हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः।।46।।
पूर्वं प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी।
तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकाङ्क्ष।।47।।
तनुत्यजां वर्मभृतां विकोशैर्बृहत्सु दन्तेष्वसिभिः पतद्भिः।
उद्यन्तमग्निं शमयांबभूवुर्गजा विविग्नाः करशीकरेण।।48।।
शिलीमुखोत्कृत्तशिरः फलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव।
रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या रराज मृत्योरिव पानभूमिः।।49।।

पृथ्वी पर इतना रक्त बहा कि नीचे की धूल दब गई और जो धूल उठ चुकी थी वह वायु के सहारे इधर-उधर फैलकर उस धुएँ जैसे लगने लगी, जो अग्नि से उठकर ऊपर फैल चुका हो और नीचे केवल अंगारे बचे रह गये हों।।43।। जो योद्धा चोट लगने से मूर्च्छित हो गये थे, उनको उनके सारथी रथ पर डालकर लौटा लाए। जब उनकी मूर्छा दूर हुई तो वे अपने सारथियों को बहुत बुरा-भला कहने लगे और जिनकी मार से वे घायल हुए थे, उन्हें रथ के झण्डों से पहचान-पहचानकर मारने लगे।।44।। जिन धनुषधारियों के हाथ बाण चलाने में सधे हुए थे, उनके बाण यद्यपि शत्रुओं के बाणों से बीच में ही दो टूक हो जाते थे, फिर भी उनमें इतना वेग होता था कि उनका फल लगा हुआ अगला भाग लक्ष्य पर पहुँच ही जाता था।।45।। जहाँ हाथियों का युद्ध हो रहा था, वहाँ पैने छुरेवाले चक्रों से जिन हाथीवानों के सिर कट गए थे, वे सिर बहुत देर से पृथ्वी पर गिरते थे, क्योंकि उनके लम्बे-लम्बे बाल बाज-पक्षियों के नखों में उलझने से बहुत देर तक ऊपर ही टँगे रह जाते थे।।46।। एक घुड़सवार ने अपने शत्रु घुड़सवार पर पहले चोट की। चोट खाते ही वह घोड़े के कन्धे पर झुक गया और उसमें इतनी भी शक्ति न रही कि सिर तक उठा सके। जिस घुड़सवार ने प्रहार किया था उसने यह देखकर फिर उस पर हाथ नहीं उठाया, उलटे यह मनाने लगा कि वह फिर से जी उठे [और फिर उससे लड़ा जाय; क्योंकि मरे को मारना कायरता है]।।47।। जो कवचधारी योद्धा अपने प्राण हथेली पर लिए लड़ रहे थे, उन्होंने नंगी तलवार से जब हाथियों के दाँतों पर चोटें कीं तब चिनगारी निकलने लगी। उस चिनगारी से हाथी इतने डर गए कि वे अपनी सूँड़ के जल से उस आग को बुझाने लगे।।48।। वह युद्धक्षेत्र मृत्युदेव के उस मंदिरालय-सा जान पड़ने लगा, जिसमें बाण से कटे हुए सिर ही मानो फल हों, उलटकर गिरे हुए कूँड़े ही मानो प्याले हों और बहता हुआ रक्त ही मानो मदिरा हो।।49।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपान्तयोर्निष्कुषितं विहंगैराक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार।। 50।।

कश्चिद्द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य।
वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः स्वं नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श।। 51।।

अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित्।
व्यश्वौ गदाव्यायतसंप्रहारौ भग्नायुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ।। 52।।

परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोरुत्क्रान्तवाय्वोः समकालमेव।
अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीदेकोप्सरःप्रार्थितयोर्विवादः।। 53।।

व्यूहावुभौ तावितरेतरस्माद्भङ्गं जयं चापतुरव्यवस्थम्।
पश्चात्पुरोमारुतयोः प्रवृद्धौ पर्यायवृत्त्येव महार्णवोर्मी।। 54।।

परेण भग्नेऽपि बले महौजा ययावजः प्रत्यरिसैन्यमेव।
धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः।। 55।।

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः।
निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः।। 56।।

एक स्थान पर किसी के बाँह का टुकड़ा कटा पड़ा था, जिसे गिद्ध आदि पक्षियों ने नोच रखा था। उसे माँस के लोभ से सियारिन खींच ले गई, पर ज्योंही उसने उस पर मुँह मारा त्यों ही बाँह में बँधे हुए भुजबन्ध की नोक से उसका तालू छिद गया और उसने उसे वहीं पर छोड़ दिया।।50।। एक योद्धा का सिर शत्रु की तलवार से कट गया। युद्ध में मृत्यु होने से वह देवता हो गया और अपने बाएँ एक अप्सरा लिए हुए विमान पर चढ़कर आकाश से यह देखने लगा कि मेरा धड़ रणभूमि में किस प्रकार नाच रहा है।।51।। दो योद्धाओं के सारथी मारे जा चुके थे, इसलिये वे अपने आप रथ भी चला रहे थे और लड़ भी रहे थे। पर जब उनके घोड़े भी मारे जा चुके, तब वे रथ से उतरकर पैदल ही गदा लेकर लड़ने लगे और जब गदाएँ भी टूट गईं तब वे मल्ल-युद्ध करने लगे।।52।। दो वीर एक दूसरे के प्रहार से एक साथ मारे गए। दोनों देवता होकर जब स्वर्ग में पहुँचे, तब वहाँ एक ही अप्सरा पर दोनों रीझ गए और वहाँ भी वे आपस में झगड़ने लगे।।53।। जैसे समुद्र की दो लहरें आगे-पीछे झोंका लेनेवाले वायु से हटती-बढ़ती रहती हैं, वैसे ही वे दोनों सेनाएँ भी कभी जीतती थीं और कभी हारती थीं।।54।। यद्यपि शत्रुओं ने अज की सेना को मारकर भगा दिया था पर महापराक्रमी अज, शत्रु की सेना में बढ़ते ही चले गए; क्योंकि वायु धुएँ को भले ही उड़ा दे पर आग तो उसके सहारे घासफूस को पकड़ती ही चली जाती है।।55।। जैसे प्रलय के समय वराह भगवान् समुद्र के बढ़े हुए जल को चीरते हुए चलते थे, वैसे ही घोड़े पर चढ़े तूणीर बाँधे स्वाभिमानी वीर अज अकेले ही शत्रुओं की सेना को चीरते चले जा रहे थे।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स दक्षिणं तूणमुखेन वामं व्यापारयन्हस्तमलक्ष्यताजौ।
आकर्णकृष्टा सकृदस्य योद्धुर्मौर्वीव बाणान्सुषुवे रिपुघ्नान्।।57।।
स रोषदष्टाधिकलोहितौष्ठैर्व्यक्तोर्ध्वरेखा भ्रुकुटीर्वहद्भिः।।
तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठैर्हुंकारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः।।58।।
सर्वैर्बलाङ्गैर्द्विरदप्रधानैः सर्वायुधैः कङ्कटभेदिभिश्च।
सर्वप्रयत्नेन च भूमिपालास्तस्मिन्प्रजह्रुर्युधि सर्व एव।।59।।
सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथः परेषां ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः।
नोहारमग्नो दिनपूर्वभागः किंचित्प्रकाशेन विवस्वतेव।।60।।
प्रियंवदात्प्राप्तमसौ कुमारः प्रायुङ्क्त राजस्वधिराजसूनुः।।
गान्धर्वमस्त्रं कुसुमास्त्रकान्तः प्रस्वापनं स्वप्ननिवृत्तलौल्यः।।61।।
ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तमेकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम्।।
तस्थौ ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं निद्राविधेयं नरदेवसैन्यम्।।62।।
ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः।
तेन स्वहस्तार्जितमेकवीरः पिबन्यशो मूर्तमिवाबभासे।।63।।
शङ्खस्वनाभिज्ञतया निवृत्तस्तां सन्नशत्रुं ददृशुः स्वयोधाः।।
निमीलितानामिव पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशाङ्कम्।।64।।

वे इतनी फुर्ती से बाण चला रहे थे कि यह पता ही नहीं चलता था कि उन्होंने कब अपना हाथ तूणीर में डाला और कब बाण निकाला। अपितु ऐसा जान पड़ता था कि वे जब कान तक धनुष की डोरी खींचते थे, तब उसी में से शत्रुओं का नाश करनेवाले बाण निकलते चले जा रहे थे।।57।। जिन राजाओं ने क्रोध से चबा-चबाकर ओठों को लाल कर लिया था और जो भौंहें तान-तानकर हुँकार करते हुए आगे बढ़ रहे थे, उनके सिर काट-काट कर अज ने पृथ्वी पाट दी।।58।। जब उन राजाओं ने यह देखा तब वे रथ, घोड़े और पैदल लेकर कवच तक काट देनेवाले पैने अस्त्रों से पूरा बल लगाकर एक साथ अज पर प्रहार करने लगे।।59।। इन राजाओं ने अज पर इतने अस्त्र बरसाए कि उनका रथ ढक गया। जैसे कोहरे के दिन में प्रभात होने का ज्ञान धुँधले सूर्य को देखकर होता है, वैसे ही अज का पता उनके रथ की पताका के सिरे को देखकर ही मिलता था।।60।। तब महाराज रघु के पुत्र, कामदेव के समान सुन्दर, सावधान अज ने 'प्रियंवद' का दिया हुआ वह गन्धर्व-अस्त्र राजाओं पर छोड़ा जिससे निद्रा आ जाती है।।61।। अस्त्र छोड़ते ही उन राजाओं की सेना के हाथ ऐसे रुक गए कि वे अपने धनुष तक न खींच पाए। उनकी पगड़ियाँ गिरकर कन्धों पर झूल गई और सारी सेना झंडियों के डंडों के सहारे सो गई।।62।। उस समय इन्दुमती के चुम्बन का रस लेनेवाले अपने ओठों से शंख फूंकते हुए 'अज' ऐसे जान पड़ते थे, मानो अपने बाहुबल से उत्पन्न किए हुए मूर्तिमान यश को ही पी रहे हों।।63।। शंख की ध्वनि को पहचानकर अज के योद्धा लौट आए। सोते हुए शत्रुओं के बीच अज उन्हें ऐसे लगे मानो मुँदे हुए कमलों के बीच में चन्द्रमा चमक रहा हो।।64।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रैर्निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम्।
यशो हृतं संप्रति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः।।65।

स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः।
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुर्भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे।।66।।

इतः परानर्भकहार्यशस्त्रान्वैदर्भि पश्यानुमता मयासि।
एवंविधेनाहवचेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः।।67।।

तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे।
निःश्वासवाष्पापगमात्प्रपन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः।।68।।

हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षाद्वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत्।
स्थली नवाम्भःपृषताभिवृष्टा मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम्।।69।।

इति शिरसि स वामं पादमाधायराज्ञा–
मुदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः।
रथतुरगरजोभिस्तस्य रूक्षालकाग्रा
समरविजयलक्ष्मीः सैव मूर्त्ता बभूव।।70।।

तब उन मूर्छित पड़े हुए राजाओं की ध्वजाओं पर रुधिर से सने बाणों की नोकों से यह लिख दिया गया—'हे राजाओ! इस समय राजकुमार अज ने तुम लोगों का यश तो ले लिया, पर दया करके प्राण नहीं लिए।।65।। अज ने अपने सिर का शिरस्त्राण उतारा तो उनके बाल बिखर गए, उनके माथे पर पसीना छा गया, और धनुष के एक छोर पर बाँह टेककर वे इन्दुमती के पास आकर बोले।।66।। 'इन्दुमती! चलो देखो, युद्धभूमि में राजा लोग इस प्रकार सोए पड़े हैं कि बालक भी उनके शस्त्र छीन लायें। देखो, इसी बल पर ये तुम्हें मेरे हाथों से छीनने चले थे।।67।। जब इन्दुमती को विश्वास हो गया कि शत्रु मारे गए तब उनका मुँह उस दर्पण के समान सुन्दर लगने लगा, जिस पर पड़ी हुई साँस की भाप पोंछ दी गई हो।।68।। अपने पति का पराक्रम देखकर इन्दुमती प्रसन्न तो हुई, पर वह इतनी लजा गई कि उसके मुँह से उनके अभिनन्दन के लिए शब्द तक ना निकले। पर जैसे नये बादलों की बूँदों से भीगी हुई पृथ्वी मोर के शब्दों से मेघों का स्वागत करती है, वैसे ही उसकी सखियों ने जो अज की प्रशंसा की वह मानो इन्दुमती ने ही उनका अभिनन्दन किया हो।।69।। इस प्रकार पवित्र अज उन राजाओं के सिरों पर बायाँ पैर रखकर सुन्दरी इन्दुमती को लेकर चले। उनके रथ के घोड़ों की टापों से उठी हुई धूल से इन्दुमती के केश भर गए थे। और वह साक्षात् विजयलक्ष्मी जैसी जान पड़ रही थी।।70।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिवृत्तं
विजयिनमभिनन्द्य श्लाध्यजायासमेतम्।
तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोभूत्
न हि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय।।71।।

इति महाकवि श्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकव्ये अजेनेन्दुमतीपाणिग्रहणो नाम सप्तमः सर्गः।।

रघु को यह समाचार पहले ही मिल चुका था इसलिये उन्होंने सुन्दरी पत्नी के साथ आए हुए विजयी अज़ का स्वागत किया और फिर उन्हें कुटुम्ब का भार सौंपकर मोक्ष की साधना में लग गए, क्योंकि सूर्यवंशी राजाओं का यह नियम है कि जब पुत्र कुल का भार सँभालने के योग्य हो जाता है, तब वे घर में नहीं रहते।।71।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'अज का विवाह' नामक सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अष्टमः सर्गः ।।

अथ तस्य विवाहकौतुकं ललितं बिभ्रत एव पार्थिवः।
वसुधामपि हस्तगामिनीमकरोदिन्दुमतीमिवापराम्।। 1।।
दुरितैरपि कर्तुमात्मसात्प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत्।
तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया।। 2।।
अनुभूय वशिष्ठसंभृतैः सलिलैस्तेन सहाभिषेचनम्।
विशदोच्छ्वसितेन मेदिनी कथयामास कृतार्थतामिव।। 3।।
स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाथर्वविदा कृतक्रियः।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा।। 4।।
रघुमेव निवृत्तयौवनं तममन्यन्त नवेश्वरं प्रजाः।
स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि।। 5।।
अधिकं शुशुभे शुभंयुना द्वितयेन द्वयमेव सङ्गतम्।
पदमृद्धमजेन पैतृकं विनयेनास्य नवं च यौवनम्।। 6।।
सदयं बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति।
अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूमिव।। 7।।

आठवाँ सर्ग

अभी अज ने विवाह का सुन्दर मङ्गल-सूत्र उतारा नहीं था कि रघु ने अज के हाथों में सारी पृथ्वी इस प्रकार सौंप दी, मानो वह भी दूसरी इन्दुमती हो।।1।। जिस राज्य को पाने के लिये दूसरे राजकुमार खोटे उपायों का प्रयोग करने में भी नहीं संकोच करते, उसी राज्य को अज ने केवल पिता की आज्ञा मानकर ही स्वीकार कर लिया, भोग की इच्छा से नहीं।।2।। जिस समय अज का राज्याभिषेक हुआ, उस समय वशिष्ठजी ने उनके ऊपर जो पवित्र जल छिड़का, वह पृथ्वी पर भी पड़ा। उसके कारण पृथ्वी से जो भाप निकली वह मानो यह सूचित करती थी कि उसे भी अज के राजा होने से सन्तोष है।।3।। अथर्ववेद के जाननेवाले वशिष्ठजी ने जब उनका राज्याभिषेक कर दिया, तब वे इतने तेजस्वी हो उठे कि उनके सब शत्रु काँप गए; क्योंकि जब क्षात्रतेज के साथ ब्रह्मतेज मिल जाता है, तब वह वैसा ही बलशाली हो जाता है जैसे वायु का सहारा पाकर अग्नि।।4।। वहाँ की प्रजा ने भी अज के राजा होने पर यही समझा मानो रघु ही फिर से युवा हो गये हों; क्योंकि अज ने केवल रघु की राज्य-लक्ष्मी को ही नहीं पाया था; अपितु रघु के सब गुण भी उनमें आ गए थे।।5।। उस समय संसार में केवल दो ही वस्तुएँ एक दूसरे से मिलकर सुन्दर जँची, एक तो पिता का भरा-पूरा राज्य पाकर अज और दूसरे अज की नम्रता पाकर उनका नव-यौवन।।6।। महाबाहु अज ने नई पृथ्वी का पालन यह समझकर दयालुता के साथ करना प्रारम्भ किया कि कहीं अधिक कठोरता का व्यवहार करने से वह भी उसी प्रकार न घबरा जाय जैसे नई ब्याही हुई बहू कठोर व्यवहार से घबरा जाती है।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत्।
उदधेरिव निम्नगाशतेष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित्।। 8।।
न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहानिव।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन्।। 9।।
अथ वीक्ष्य रघुः प्रतिष्ठितं प्रकृतिष्वात्मजमात्मवत्तया।
विषयेषु विनाशधर्मसु त्रिदिवस्थेष्वपि निःस्पृहोऽभवत्।। 10।।
गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः।
पदवीं तरुवल्कवाससां प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे।। 11।।
तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः।। 12।।
रघुरश्रुमुखस्य तस्य तत्कृतवानीप्सितमात्मजप्रियः।
न तु सर्प इव त्वचं पुनः प्रतिपेदे व्यपवर्जितां श्रियम्।।13।।
स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः।
समुपास्यत पुत्रभोग्यया स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया।। 14।।

वे अपनी प्रजा को बहुत प्यार करते थे। इससे सब लोग अपने-अपने मन में यही सोचते थे कि वे हमें ही सबसे अधिक मानते हैं। बात यह थी कि जैसे समुद्र सैकड़ों नदियों से एक-सा ही व्यवहार करता है, वैसे ही वे भी न किसी का बुरा चाहते थे न किसी से बैर करते थे।।8।। वे न तो बहुत कठोर थे और न बड़े कोमल। उन्होंने बीच का मार्ग पकड़ा था और अपने शत्रु राजाओं को राजगद्दी से उतारे बिना ही उनको उसी प्रकार नम्र कर दिया, जैसे मध्यम गति से बहनेवाला वायु वृक्षों को उखाड़ता तो नहीं पर झुका अवश्य देता है।।9।। जब रघु ने देखा कि हमारे पुत्र अज का प्रजा में बड़ा आदर है और वह भली-भाँति राज कर रहा है, तब उन्हें इतना आत्मज्ञान हो गया कि स्वर्ग के उन सुखों की चाह भी उन्होंने छोड़ दी, जो कभी न कभी नष्ट हो ही जाते हैं।।10।। दिलीप के वंश में जितने राजा हुए वे वृद्धावस्था में सब राज-काज अपने गुणवान् पुत्र को सौंपकर नियम से पेड़ की छाल का वस्त्र पहननेवाले संन्यासियों के समान जंगल में चले जाते थे।।11।। इसलिए जब राजा रघु जंगल में जाने को उद्यत हुए तब अज ने मनोहर पगड़ीवाला अपना सिर उनके चरणों में नवाकर प्रार्थना की कि आप मुझे छोड़कर न जाइये।।12।। अपने पुत्र अज को रघु बहुत प्यार करते थे, इसलिये अज की आँखों में आँसू देखकर वे रुक तो गए; पर जैसे साँप अपनी केंचुली छोड़कर फिर उसे नहीं ग्रहण करता, वैसे ही उन्होंने जिस राज्य-लक्ष्मी को एक बार छोड़ दिया फिर स्वीकार नहीं किया।।13।। वे संन्यास लेकर नगर के बाहर एक कुटिया में रहने लगे। जिस भूमि पर उनके पुत्र राज्य कर रहे थे वह जितेन्द्रिय रघु को फल-फूल देकर उसी प्रकार सेवा कर रही थी मानो उनकी पुत्रवधू ही हो।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवं कुलमभ्युद्यतनूतनेश्वरम्।
नभसा निभृतेन्दुना तुलामुदितार्केण समारुरोह तत्।।15।।
यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ ददृशाते रघुराघवौ जनैः।।
अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमंशाविव धर्मयोर्गतौ।।16।।
अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युयुजे नीतिविशारदैरजः।
अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभिः।।17।।
नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा।
परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम्।।18।।
अनयत्प्रभुशक्तिसंपदा वशमेको नृपतीननन्तरान्।
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पञ्च शरीरगोचरान्।।19।।
अकरोदचिरेश्वेरः क्षितौ द्विषदारम्भफलानि भस्मसात्।
इतरो दहने स्वकर्मणां ववृते ज्ञानमयेन वह्निना।।20।।
पणबन्धमुखान्गुणानजः षडुपायुङ्क्त समीक्ष्य तत्फलम्।
रघुरप्यजयद्गुणत्रयं प्रकृतिस्थं समलोष्टकाञ्चनः।।21।।

उस समय सूर्य-वंश उस आकाश के समान लग लग रहा था, जिसमें एक ओर चन्द्रमा छिप रहे हों और दूसरी ओर सूर्य निकल रहे हों, [क्योंकि एक ओर राजा रघु संन्यास लेकर शान्ति का जीवन बिता रहे थे और दूसरी ओर ऐश्वर्यशाली 'अज' राजा बनकर गद्दी पर बैठे थे]।।15।। संन्यासी बने हुए रघु और राज़ा बने हुए अज को देखकर लोगों ने यह समझ लिया कि मोक्ष और ऐश्वर्य देनेवाले धर्मों के दो अंश पृथ्वी पर साथ-साथ चले आए हैं।।16।। एक ओर अज नीति जाननेवाले मंत्रियों के साथ दिग्विजय का विचार करने लगे, दूसरी ओर रघु भी मोक्ष पद पाने के लिये तत्वदर्शी योगियों के साथ शास्त्र-चर्चा करने लगे।।17।। इधर युवा अज जनता के कामों की देखभाल करने के लिये न्याय के आसन पर बैठते थे, उधर बूढ़े रघु अपने मन को साधने का अभ्यास करने के लिये अकेले में कुशा के पवित्र आसन पर बैठते थे।।18।। अज ने अपने प्रभुत्व और अपनी शक्ति से आस-पास के शत्रु राजाओं को वश में कर लिया और रघु ने अपने योगबल से शरीर के भीतर रहनेवाले [प्राण, अपमान, समान, उदान और व्यान इन] पाँचों पवनों को अपने वश में कर लिया था।।19।। अज ने पृथ्वी पर शत्रुओं की सब चालें नष्ट कर डालीं और रघु ने ज्ञान की अग्नि से अपने सारे कर्मों को नष्ट कर डाला।।20।। एक ओर अज [संधि, विग्रह, यान, आसन, आश्रय और द्वैधीभाव इन] छह नीतियों का परिणाम समझकर प्रयोग करते थे, दूसरी ओर मिट्टी और सोना दोनों को बराबर समझनेवाले रघु ने भी प्रकृति के सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों को जीत लिया।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरा परमात्मदर्शनात्।।22।।
इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिषिद्धप्रसरेषु जाग्रतौ।
प्रसितावुदयापवर्गयोरुभयीं सिद्धिमुभाववापतुः।।23।।
अथ काश्चिदजव्यपेक्षया गमयित्वा समदर्शनः समाः।
तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः।।24।।
श्रुतदेहविसर्जनः पितुश्चिरमश्रूणि विमुच्य राघवः।
विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं यतिभिः सार्धमनग्निमग्निचित्।।25।।
अकरोत्स तदौर्ध्वदैहिकं पितृभक्त्या पितृकार्यकल्पवित्।
न हि तेन पथा तनुत्यजस्तनयावर्जितपिण्डकाङ्क्षिणः।।26।।
स परार्ध्यगतेरशोच्यतां पितुरुद्दिश्य सदर्थवेदिभिः।
शमिताधिरधिज्यकार्मुकः कृतवानप्रतिशासनं जगत्।।27।।
क्षितिरिन्दुमती च भामिनी पतिमासाद्य तमग्र्यपौरुषम्।
प्रथमा बहुरत्नसूरभूदपरा वीरमजीजनत्सुतम्।।28।।

दृढ़ प्रतिज्ञावाले अज जब किसी काम को प्रारम्भ करते थे तो उसे तब तक नहीं छोड़ते थे, जब तक वह पूरा नहीं हो जाता था, वैसे ही स्थिर चित्तवाले रघु ने भी तब तक योगक्रिया नहीं छोड़ीं, जब तक उन्हें परमात्मा का दर्शन नहीं हो गया।।22।। इस प्रकार एक ओर अज सारे संसार के ऐश्वर्य को प्राप्त करने में लगे हुए थे और दूसरी ओर रघु मोक्ष प्राप्त करने में मन लगाए हुए थे। अज ने अपने शत्रुओं का बढ़ना रोककर और रघु ने इन्द्रियों को वश में करके अपनी-अपनी सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं।।23।। सबको समान समझनेवाले रघु ने अज के कहने से कुछ वर्ष संसार में और बिताए। फिर योगबल से सदा प्रकाशमान, अविनाशी परमात्मा में लीन हो गए।।24।। अपने पिता के देहत्याग का समाचार पाकर अग्निहोत्र करनेवाले अज बहुत रोए। उन्होंने अपने पिता के शरीर का दाह-संस्कार नहीं किया, वरन् योगियों के साथ उनके शरीर को ले जाकर पृथ्वी में समाधि दे दी [क्योंकि संन्यासियों का दाह संस्कार नहीं किया जाता]।।25।। यद्यपि रघु जैसे—जो महात्मा योगबल से शरीरत्याग करके मुक्त हो जाते हैं, उन्हें अपने पुत्रों से पिण्डदान की आवश्यकता नहीं रहती, फिर भी अज तो यह जानते ही थे कि पिता का संस्कार किस प्रकार करना चाहिये। इसलिये उन्होंने बड़ी भक्ति से अपने पिता के श्राद्ध आदि संस्कार किए।।26।। तत्वज्ञानी पण्डितों ने जब अज को समझाया कि तुम्हारे पिता ने मोक्ष पा लिया है, तब उन्हें धीरज हुआ और उनका शोक कम हुआ। तब वे धनुष-बाण लेकर सारे संसार पर एकछत्र राज्य करने लगे।।27।। पृथ्वी और इन्दुमती दोनों 'अज' जैसे महापराक्रमी को पति के रूप में पाकर बड़ी प्रसन्न हुईं और बदले में पृथ्वी ने बहुत से रत्न उत्पन्न किए और इन्दुमती ने वीर पुत्र को जन्म दिया।।28।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशरश्मिशतोपमद्युतिं यशसा दिक्षु दशस्वपि श्रुतम्।
दशपूर्वरथं यमाख्यया दशकण्ठारिगुरुं विदुर्बुधाः।। 29।।
ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिवः।।
अनृणत्वमुपेयिवान्बभौ परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितिः।। 30।।
बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम्।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना।। 31।।
स कदाचितवेक्षितप्रजः सह देव्या विजहार सुप्रजः।
नगरोपवने शचीसखो मरुतां पालयितेव नन्दने।। 32।।
अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम्।
उपवीणयितुं ययौ रवेरुदयावृत्तिपथेन नारदः।। 33।।
कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम्।
अहरत्किल तस्य वेगवानधिवासस्पृहयेव मारुतः।। 34।।
भ्रमरैः कुसुमानुसारिभिः परिकीर्णा परिवादिनी मुनेः।
ददृशे पवनावलेपजं सृजती बाष्पमिवाञ्जनाविलम्।। 35।।

ये अज के पुत्र वही थे, जो दस सौ किरणों वाले सूर्य के समान तेजस्वी थे, जिनका यश दसों दिशाओं में फैला था, जो उस राम के पिता थे जिन्होंने दस सिरवाले रावण को मारा था और जिन्हें पंडित लोग दशरथ कहते हैं।।29।। इस प्रकार वेदों का अध्ययन करके ऋषियों के ऋण से, यज्ञ करके देवताओं के ऋण से और पुत्र उत्पन्न करके अपने पितरों के ऋण से मुक्त होकर 'अज़' वैसे ही शोभित हुए जैसे मण्डल से छूटकर सूर्य शोभा देता है।।30।। अज ने केवल अपने धन से ही दूसरों को लाभ नहीं पहुँचाया; वरन् अपने गुणों से भी लोगों का उपकार किया; क्योंकि अपने पराक्रम से तो उन्होंने दीन-दुर्बलों का डर दूर किया और अपने शास्त्र के ज्ञान से विद्वानों का सत्कार किया।।31।। एक दिन अच्छी संतानवाले, प्रजापालक राजा अज अपनी रानी इन्दुमती के साथ नगर के उपवन में उसी प्रकार विहार कर रहे थे, जैसे देवताओं का पालन करनेवाले इन्द्र नन्दनवन में इन्द्राणी के साथ विहार करते हैं।।32।। उसी समय दक्षिणी समुद्र के किनारे पर गोकर्ण में बसे हुए शंकरजी को वीणा के साथ गाना सुनाने के लिये नारदजी आकाश से चले जा रहे थे।।33।। उनकी वीणा के सिरे पर स्वर्गीय फूलों से गुँथी हुई माला लटकी हुई थी। कहा जाता है कि उस समय वेग से चलनेवाले वायु के कारण वह माला खिसककर नीचे गिर गई, मानो वायु ने ही गन्ध के लोभ से उसे वहाँ से उतार लिया हो।।34।। वह माला तो गिर गई; पर फूलों के साथ लगे हुए भौंरे अभी तक नारदजी की वीणा पर मँडर रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वायु से अपमानित होकर वीणा भी काजल मिले हुए आँसू बहा रही हो।।35।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिभूय विभूतिमार्तवीं मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम्।
नृपतेरमरस्रगाप सा दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम्।। 36।।
क्षणमात्रसखीं सुजातयोः स्तनयोस्तामवलोक्य विह्वला।
निमिमील नरोत्तमप्रिया हृतचंद्रा तमसेव कौमुदी।। 37।।
वपुषाकरणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत्।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम्।। 38।।
उभयोरपि पार्श्ववर्तिनां तुमुलेनार्तरवेण वेजिताः।
विहगाः कमलाकरालयाः समुदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः।। 39।।
नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमो नुनुदे सा तु तथैव संस्थिता।
प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते।। 40।।
प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थामथ सत्त्वविप्लवात्।
स निनाय नितान्तवत्सलः परिगृह्योचितमङ्कमङ्गनाम्।। 41।।
पतिरङ्कनिषण्णया तया करणापायविभिन्नवर्णया।
समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां मृगलेखामुषसीव चन्द्रमाः।। 42।।
विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।। 43।।

उस स्वर्गीय माला में इतना अधिक मधु और इतनी अधिक गन्ध थी कि उसके आगे बसन्त के वृक्षों और लताओं का मधु और सुवास लजा जाता था। वही माला अचानक रानी इन्दुमती के बड़े-बड़े स्तनों के ठीक बीच में आकर गिरी।।36।। क्षणभर के लिये अज की प्रियतमा ने अपने स्तनों की सखी उस माला को देखा और देखते ही उसने व्याकुल होकर आँखें मूँद लीं, मानो चन्द्रमा को राहु ने ग्रस लिया हो।।37।। प्राणहीन होने से वह गिर पड़ी और उसके साथ-साथ अज भी गिर पड़े; क्योंकि गिरते हुए तेल की बूँदों के साथ क्या दीपक की लौ पृथ्वी पर नहीं गिर पड़ती।।38।। उनके सेवकों ने घबराकर रोना-चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया और उनसे डरकर तालाबों में रहनेवाले पक्षी भी इस प्रकार चिल्ला उठे, मानो वे भी उनके दुःख में दुखी हों।।39।। पंखा डुलाने और दूसरे उपायों से किसी प्रकार अज की मूर्छा तो दूर हो गई; पर रानी इन्दुमती ज्यों की त्यों पड़ी रही; क्योंकि औषधि तो तभी काम करती है जब आयु शेष हो।।40।। तब उस अत्यन्त प्यारे राजा ने अपनी मृत पत्नी को अपनी गोद में उठाकर उसी प्रकार रख लिया जैसे स्वर मिलाने के समय वीणा रख ली जाती है।।41।। प्राण निकल जाने से इन्दुमती के शरीर का रंग पीला पड़ गया था। उसे गोदी में लिटाये हुए राजा उस प्रातःकाल के चन्द्रमा के समान दिखाई दे रहे थे, जिसकी गोद में धुँधली मृग की छाया हो।।42।। उनका स्वाभाविक धैर्य जाता रहा, गला भर आया और वे विलाप करके रोने लगे, क्योंकि तपने पर लोहा भी नरम हो जाता है फिर देहधारियों की तो बात ही क्या है।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यता विधेः।। 44।।
अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता।। 45।।
स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।। 46।।
अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा।
यददेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता।। 47।।
कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि।
कथमेकपदे निरासगं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे।। 48।।
ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव।
परलोकमसंनिवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः।। 49।।
दयितां यदि तावदन्वगाद्विनिवृत्तं किमिदं तया विना।
सहतां हतजीवितं मम प्रबलामात्कृतेन वेदनाम्।। 50।।
सुरतश्रमसंभृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते।
अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहभृतामसारताम्।। 51।।

[ये रोते हुए कहते जा रहे थे]—हाय! जब फूल भी शरीर को छूकर प्राण ले सकते हैं [तब तो दैव चाहे जिस वस्तु से किसी को भी मार सकता है।।44।। या संभवतः कोमल वस्तु को मारने के लिये दैव कोमल वस्तु का ही प्रयोग करता हो, क्योंकि मैंने पहले ही देख लिया है कि नलिनी को नष्ट करने के लिये पाला ही बहुत होता है।।45।। और यदि इस माला में ही प्राण हरने की शक्ति है, तो मैं भी इसे छाती पर रखे लेता हूँ, पर यह मुझे क्यों नहीं मार डालती है? यह ईश्वर की इच्छा ही तो है, कहीं विष भी अमृत हो जाता है और कहीं अमृत भी विष हो जाता है।।46।। या यह मेरा दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि विधाता ने इस माला को ऐसी बिजली बनाकर गिराया है, जिसने पेड़ को तो छोड़ दिया, पर उसके साथ लिपटी हुई लता को जला दिया।।47।। हे इन्दुमती! मैंने बहुत अपराध किए, पर तुमने कभी मेरा तिरस्कार नहीं किया फिर आज एकाएक बिना अपराध के ही तुम मुझे बात करने के योग्य भी क्यों नहीं समझ रही हो।।48।। हे मधुर हँसी हँसनेवाली! तुमने सचमुच यह समझा है कि मैं तुमसे झूठा प्रेम करता हूँ; इसीलिये तो मुझसे बिना पूछे तुम सदा के लिये परलोक को चल दी।।49।। मेरे ये नीच प्राण जब प्रिया के साथ-साथ एक बार चले गए थे, तब ये लौट क्यों आए? जब इनकी करनी ही ऐसी है तब ये दुःख भोगें। मैं क्या कर सकता हूँ।।50।। अभीं तुम्हारे मुँह पर से सम्भोग की थकावट के पसीने की बूँदें भी नहीं सूखीं और तुम चल बसीं। धिक्कार है मनुष्य की इस नश्वरता को।।51।। मैंने कभी मन से भी तुम्हारी बुराई नहीं की, फिर तुम मुझे क्यों छोड़े जा रही हो। [सत्य पूछो तो] मैं पृथ्वी का पति तो नाम भर को हूँ; मेरा सच्चा प्रेम तो केवल तुमसे ही है।।52।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम्।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः।।52।।
कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान्।
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्त्तनशङ्कि मे मनः।।53।।
तदपोहितुमर्हसि प्रिये प्रतिबोधेन विषादमाशु मे।
ज्वलितेन गुहागतं तमस्तुहिनाद्रेरिव नक्तमोषधिः।।54।।
इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्तकथं दुनोति माम्।
निशि सुप्तमिवैकपङ्कजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम्।।55।।
शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्त्रिणम्।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः।।56।।
नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम्।
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु चिताधिरोहणम्।।57।।
इयमप्रतिबोधशायिनीं रशना त्वां प्रथमा रहःसखी।
गतिविभ्रमसादनीरवा न शुचा नानुमृतेव लक्ष्यते।।58।।
कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः।।59।।

हे सुन्दर जाँघोंवाली! फूलों से गुँथी और भौंरों के समान काली तुम्हारी लटें जब वायु से हिलती हैं, तब मेरे मन में यही आशा होने लगती है कि तुम अवश्य जी उठोगी।।53।। इसलिये हे प्रिये! जैसे रात में चमकनेवाली बूटियाँ अपने प्रकाश से हिमालय की अँधेरी गुफा में भी चाँदनी कर देती हैं, वैसे ही तुम भी फिर से जागकर मेरा दुःख मिटाओ।।54।। मौन भौरों से भरे हुए और रात में मुँदे अकेले कमल जैसा लगनेवाला तुम्हारा बिखरी अलकों से ढका मौन मुख देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है।।55।। देखो चन्द्रमा की रात्रि फिर मिल जाती है, चकवे की चकवी भी प्रातः मिल ही जाती है, इसलिये उन्हें बिछोह का दुःख थोड़ी ही देर तक रहता है, पर तुम तो सदा के लिये चली जा रही हो, फिर बताओ मैं विरह की आग में जलकर क्यों न भस्म हो जाऊँ।।56।। कोमल पल्लवों का बिछौना भी जिसके शरीर में चुभता था, हे सुन्दर जंघावाली! बताओ वही शरीर चिता पर कैसे चढ़ सकेगा।।57।। क्या तुम नहीं देख रही हो कि तुम्हारी हाव-भरी चाल के बन्द हो जाने से तुम्हारी एकान्त सखी यह मेखला भी तुम्हें सदा के लिये सोती देखकर तुम्हारे शोक में मरी सी दिखाई दे रही है।।58।। तुम्हारी मीठी बोली कोयलों ने ले-ली, तुम्हारा धीरे-धीरे चलना कलहंसिनियों ने लिया, तुम्हारी चंचल चितवन हरिणियों को मिल गई और तुम्हारा चुलबुलापन वायु से हिलती हुई लताओं में पहुँच गया है।।59।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया।
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमाः।। 60।।
मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ।
अविधाय विवाहसत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसांप्रतम्।। 61।
कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति।
अलकाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम्।। 62।।
स्मरतेव सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम्।
अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमशोकेन सुगात्रि शोच्यसे।। 63।।
तव निःश्वासितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समं मया।
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरकण्ठि सुप्यते।। 64।।
सदुःखसुखः सखीजनः प्रतिपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः।
अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः।। 65।।
धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे।। 66।।

अपने स्वर्ग जाने की उतावली में यद्यपि तुमने मुझे बहलाने के लिये अपने गुण यहीं छोड़ दिए हैं, पर तुम्हारे बिछोह से तो मैं इतना अधीर हो गया हूँ कि इन सबसे मेरे हृदय को किसी प्रकार भी सन्तोष नहीं मिल रहा है।।60।। प्रिये! तुमने उस आम और प्रियंगुलता का विवाह करना पक्का किया था। इन दोनों का विवाह किए बिना तुम्हारा जाना ठीक नहीं।।61।। देखो! जिस अशोक को तुमने अपने चरणों की ठोकर लगाई थी, वह जब आगे चलकर फूलेगा, तब तुम्हारे केशों को सजानेवाले उनके फूलों को मैं जलदान की अञ्जलि में कैसे ले सकूँगा।।62।। हे सुन्दरी! तुम्हारे झुनझुनाते बिछुओंवाले चरणों की ठोकर किसी को नहीं मिलती, पर तुमने बड़ी कृपा करके उस अशोक को ठोकर लगाई थी। अब उन तुम्हारे चरणों की कृपा को स्मरण करके ही यह अशोक वृक्ष फूलों के आँसू बरसाकर तुम्हारे लिए रो रहा है।।63।। हे मधुरभाषिणी! अपने श्वास के समान सुगन्ध वाले मौलसिरी के फूलों की जो सुन्दर माला तुम मेरे साथ गूँथ रही थीं, उसे अधगुँथी ही छोड़कर क्यों सो रही हो।।64।। तुम्हारे सुख-दुःख की साथिन ये सखियाँ खड़ी हैं, शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान प्रसन्न मुखवाला तुम्हारा पुत्र भी यही है और तुम्हारा यह अनन्य प्रेमी मैं भी तुम्हारे पास हूँ, फिर हम लोगों को छोड़कर चले जाने की जो तुमने ठान ली है, तुम्हारी बड़ी कठोरता है।।65।। आज मेरा धीरज छूट गया, आनन्द जाता रहा, गाना-बजाना दूर चला गया, ऋतुएँ फीकी पड़ गईं, पहनना-ओढ़ना बेकाम हो गया और शय्या भी सूनी हो गई।।66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।।67।।
मदिराक्षि मदाननार्पितं मधु पीत्वा रसवत्कथं नु मे।
अनुपास्यसि वाष्पदूषितं परलोकोपनतं जलाञ्जलिम्।।68।।
विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम्।।
अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः।।69।।
विलपन्निति कोशलाधिपः करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति।
अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान्।।70।।
अथ तस्य कथंचिदङ्कतः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम्।
विससर्ज तदन्त्यमण्डनामनलायागुरुचन्दनैधसे।।71।।
प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात्।
न चकार शरीरमग्निसात्सह देव्या न तु जीविताशया।।72।।
अथ तेन दशाहतः परे गुणशेषामुपदिश्य भामिनीम्।
विदुषा विधयो महर्द्धयः पुर एवोपवने समापिताः।।73।।
स विवेश पुरीं तया विना क्षणदापायशशाङ्कदर्शनः।
परिवाहमिवावलोकयन्स्वशुचः पौरवधूमुखाश्रुषु।।74।।

तुम्हीं मेरी स्त्री थी, सम्मति देनेवाली मित्र थी, एकान्त की सखी थी और गान-विद्या आदि कलाओं के ललित में शिष्या थी। तुम्हीं बताओ तुम्हें मुझसे छीनकर निर्दयी विधाता ने मेरा क्या नहीं छीन लिया।।67।। हे मदभरे नयनोंवाली! तुमने मेरे मुँह से छूटे हुए स्वादिष्ट आसव को पीया है, अब तुम आँसुओं के जल से मिली हुई गँदली जलाञ्जलि को परलोक में कैसे पी सकोगी।।68।। इतना ऐश्वर्य होने पर भी तुम्हारे बिना अज का सारा सुख मिट्टी हो गया है; क्योंकि मुझे और किसी वस्तु से तो प्रेम है नहीं, मेरे तो सब सुखों का केन्द्र तुम्हीं थीं।।69।। जब कौशलनरेश अज अपनी प्रिया के लिये इस प्रकार शोक करके रो रहे थे उस समय उन्हें देखकर वृक्ष भी मानो अपनी शाखाओं से रस बहाकर रोने लगे।।70।। कुटुम्बियों ने अज की गोदी से ज्यों-त्यों करके इन्दुमती का शरीर हटाया और उसी पुष्पमाला से उसका शृङ्गार करके अगर और चन्दन की लकड़ियों से उसका दाह-संस्कार किया।।71।। अपनी पत्नी के वियोग में राजा अज इतने व्याकुल हो गए कि उन्हें जीने की इच्छा जाती रही; किन्तु वे इन्दुमती के साथ इसलिये चिता पर नहीं चढ़े कि कहीं लोग यह न कहने लगें कि राजा अज ने विद्वान् होकर भी अपनी स्त्री के पीछे प्राण दे दिए।।72।। जिस इन्दुमती के केवल गुण भर बचे रह गए थे, उस प्रिया के सब क्रिया-कर्म शास्त्र जाननेवाले अज ने दस दिन बीत जाने पर उसी उपवन में बड़े धूम-धाम से पूरे किए।।73।। इन्दुमती के वियोग में अज ऐसे उदास लगने लगे जैसे रात बीत जाने पर चन्द्रमा मन्द पड़ जाता है। जब वे नगर में घुसे तब उन्हें देखकर नगर भर की स्त्रियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं, मानो अज का शोक इनकी आँखों से बह निकला हो।।74।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तं सवनाय दीक्षितः प्रणिधानाद् गुरुराश्रमस्थितः।
अभिषङ्गजडं विजज्ञिवानिति शिष्येण किलान्वबोधयत्।। 75।।
असमाप्तविधिर्यतो मुनिस्तव विद्वानपि तापकारणम्।
न भवन्तमुपस्थितः स्वयं प्रकृतौ स्थापयितुं पथश्च्युतम्।। 76।।
मयि तस्य सुवृत्त वर्तते लघुसंदेशपदा सरस्वती।
शृणु विश्रुतसत्त्वसार तां हृदि चैनामुपधातुमर्हसि।। 77।।
पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च।
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति।। 78।।
चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणबिन्दोः परिशङ्कितः पुरा।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुराङ्गनाम्।। 79।।
स तपःप्रतिबन्धमन्युना प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम्।
अशपद्भव मानुषीति तां शमवेलाप्रलयोर्मिणा भुवि।। 80।।
भगवन्परवानयं जनः प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व मे।
इति चोपनतां क्षितिस्पृशं कृतवानासुरपुष्पदर्शनात्।। 81।।
क्रथकैशिकवंशसंभवा तव भूत्वा महिषी चिराय सा।
उपलब्धवती दिवश्च्युतं विवशा शापनिवृत्तिकारणम्।। 82।।

उन दिनों वशिष्ठजी यज्ञ कर रहे थे। उन्होंने आश्रम में ही योगबल से राजा के शोक का कारण जान लिया और एक शिष्य से अज के पास सन्देश भेजा। शिष्य ने अज से आकर कहा– ।।75।। 'वशिष्ठ मुनि का यज्ञ समाप्त नहीं हुआ है; इसलिये आपके दुःख को जानते हुए भी न तो वे आ ही सके और न आपको इस शोक में धीरज ही बँधा सके।।76।। हे सच्चरित्र राजा! मैं उनका एक छोटा-सा सन्देश लाया हूँ, उसे आप धीरज रखकर सुनिए और समझिए।।77।। वे अपने ज्ञान के नेत्रों से तीनों लोकों की बीती हुई, होती हुई और होनेवाली सभी बातें जानते हैं।।78।। एक बार तृणबिन्दु नामक ऋषि तप कर रहे थे। उनकी तपस्या से डरकर इन्द्र ने उनका तप भंग करने के लिये हरिणी नाम की अप्सरा भेजी।।79।। जैसे प्रलयकाल की लहर समुद्र तट को ढहा देती है, वैसे ही ऋषि का तप डिगाने के लिये वह अप्सरा भी वहाँ पहुँची। अप्सरा को देखते ही मुनि ने क्रोधित होकर शाप दिया कि जा तू संसार में मनुष्य की स्त्री हो।।80।। शाप सुनते ही अप्सरा घबरा उठी। वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाकर बोली–हे भगवन्! मैंने दूसरों के कहने से यह काम किया है, मेरा इसमें कुछ भी दोष नहीं है, मुझे क्षमा कीजिये। इस पर ऋषि ने कहा–जब तक तुम्हें स्वर्गीय पुष्प नहीं दिखाई पड़ेंगे, तब तक तुम्हें पृथ्वी पर रहना ही पड़ेगा।।81।। वही अप्सरा क्रथकैशिक (विदर्भ) वंश में जन्म लेकर तुम्हारी रानी हुई और इतने दिनों बाद जैसे ही उसे स्वर्गीय पुष्प दिखाई पड़े, वैसे ही वह शाप-मुक्त होकर, शरीर छोड़कर चली गई।।82।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदलं तदपायचिन्तया विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता।
वसुधेयमवेक्ष्यतां त्वया वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः।। 83।।

उदये मदवाच्यमुज्झता श्रुतमाविष्कृतमात्मवत्त्वया।
मनसस्तदुपस्थिते ज्वरे पुनरक्लीबतया प्रकाश्यताम्।। 84।।

रुदता कुत एव सा पुनर्भवता नानुमृतापि लभ्यते।
परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्।। 85।।

अपशोकमनाः कुटुम्बिनीमनुगृह्णीष्व निवापदत्तिभिः।
स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते।। 86।।

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ।। 87।।

अवगच्छति मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम्।
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुद्धृतम्।। 88।।

स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम्।। 89।।

इसीलिए अब आप उसकी मृत्यु का शोक न कीजिए, क्योंकि जो जन्म लेता है वह मरता ही है। इसलिये सब शोक छोड़कर सावधान होकर आप पृथ्वी का पालन कीजिए, क्योंकि राजाओं की सच्ची सहधर्मचारिणी तो पृथ्वी है।।83।। ऐश्वर्य पाकर राजा लोग मतवाले हो जाते हैं, किन्तु आप सुख के दिनों में भी इस अपयश से बचे रहे और अभिमान छोड़कर आपने अपने आत्मज्ञान का परिचय दिया। वैसे ही इस दुःख के समय में भी धीरज धरकर आप फिर उसी अध्यात्मज्ञान का प्रकाश कीजिए।।84।। रोने की तो बात ही क्या, यदि आप मर भी जायँ तब भी इन्दुमती आपको नहीं मिल सकती, क्योंकि मरने पर सब प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार अलग-अलग मार्ग से जाते हैं।।85।। अब आप सब शोक छोड़कर पिण्डदान आदि करके अपनी पत्नी का परलोक सुधारिए, क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि जब कुटुम्बी बहुत रोते हैं तब उससे प्रेतात्मा को बड़ा कष्ट होता है।।86।। देखिए, जिसने देह धारण की है उसका मरना तो स्वाभाविक है। विद्वानों का तो यह कहना है कि वास्तव में जीना ही बड़ा भारी विकार है। इसलिये प्राणी जितने क्षण जी जाये, उतने से ही उसे सन्तोष करना चाहिए।।87।। प्रियजन की मृत्यु को मूर्ख लोग वैसा ही कष्टकारक मानते हैं जैसे छाती में कील गड़ गई हो, पर विद्वान् लोग यह समझते हैं कि जो मर गया वह सब झंझटों से छूट गया। उनकी समझ में मृत्यु से वैसा ही सुख मिलता है, जैसे हृदय में गड़ी हुई कील निकालने से।।88।। आप ही बताइए कि जब शरीर और आत्मा भी आपस में बिछुड़ने वाले माने गए हैं, तब पुत्र, स्त्री आदि बाहरी सम्बन्धियों के बिछोह से विद्वानों को क्यों दुःख हो।।89।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि।
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः।।90।।
स तथेति विनेतुरुदारमतेः प्रतिगृह्य वचो विससर्ज मुनिम्।
तदलब्धपदं हृदि शोकघने प्रतियातमिवान्तिकमस्य गुरोः।91।।
तेनाष्टौ परिगमिता समाः कथंचिद्बालत्वादवितथसूनृतेन सूनोः।
सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च।।92।।
तस्य प्रसह्य हृदयं किल शोकशंकुः प्लक्षप्ररोह इव सौधतलं बिभेद।
प्राणान्तहेतुमपि तं भिषजामसाध्यं लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने।।93।।
सम्यग्विनीतमथ वर्महरं कुमारमादिश्य रक्षणविधौ विधिवत्प्रजानाम्।
रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव।।94।।
तीर्थेतोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोर्देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः।
पूर्वाकाराधिकतररुचा संगतः कान्तयासौ लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु।।95।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
अजविलापो नाम अष्टमः सर्गः।।

फिर आप तो जितेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। आप साधारण लोगों के समान शोक मत कीजिए। यदि पर्वत भी वृक्ष की भाँति आँधी से हिल उठेगा तो उन दोनों में अन्तर ही क्या रहा।।90।। विद्वान् शिक्षक गुरु वशिष्ठजी का उपदेश राजा ने स्वीकार किया और उनके शिष्य को इस प्रकार बिदा किया, मानो अपने शोक भरे हृदय में स्थान न दे सकने से उनका उपदेश ही लौटा दिया हो।।91।। प्रिय, सत्यभाषी अज ने अपने पुत्र के बचपन का ध्यान करके और प्रिया के चित्र को देख-देखकर तथा स्वप्न में प्रिया से क्षण भर के समागम का आनन्द लेकर किसी प्रकार आठ वर्ष काट दिए।।92।। कहा जाता है कि जैसे वट की जटाएँ भवन की तली को छेदकर नीचे घुस जाती है, वैसे ही शोक की बर्छी ने राजा के हृदय को बलपूर्वक आर-पार बेध दिया था; पर अपनी प्रिया के पीछे प्राण देने को वे इतने उतावले थे कि उन्होंने प्राण हर लेनेवाली और वैद्यों से अच्छी न होने वाली उस शोक की बर्छी को भी सहायक ही समझा।।93।। तब सुशिक्षित कवचधारी कुमार दशरथ को शास्त्र के अनुसार प्रजा का पालन करने का उपदेश देकर वे रोगी शरीर से छुटकारा पाने के लिये अनशन करने लगे।।94।। थोड़े दिनों में ही गंगा और सरयू के संगम पर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और तत्काल देवता बनकर पहले शरीर से भी अधिक सुन्दर शरीरवाली भार्या के साथ नन्दनवन के विलास-भवनों में विहार करने लगे।।95।।

महाकवि कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'अज-विलाप' नाम का आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। नवमः सर्गः ।।

पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः।
दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवतां च धुरि स्थितः।।1।।
अधिगतं विधिवद्यदपालयत्प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम्।
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः।।2।।
उभयमेव वदन्ति मनीषिणः समयवर्षितया कृतकर्मणाम्।
बलनिषूदनमर्थपतिं च तं श्रमनुदं मनुदण्डधरान्वयम्।।3।।
जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुत एव सपत्नजः।
क्षितिरभूत्फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे।।4।।
दशदिगन्तजिता रघुणा यथा श्रियमपुष्यदजेन ततः परम्।
तमधिगम्य तथैव पुनर्बभौ न न महीनमहीनपराक्रमम्।।5।।
समतया वसुवृष्टिविसर्जनैर्नियमनादसतां च नराधिपः।
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा।।6।।

नवाँ सर्ग

संयम से अपनी इन्द्रियों को जीत लेनेवाले योगियों में और प्रजा का पालन करनेवाले राजाओं में सर्वश्रेष्ठ दशरथजी ने अपने पिता के बाद उत्तर कोशल का राज्य बड़ी योग्यता से सँभाला।।1।। क्रौञ्च-पर्वत में छिद्र बना देनेवाले कार्त्तिकेय के समान वे बलवान् थे। उन्होंने अपने पुरुखों से पाई हुई राजधानी और मण्डलों का ऐसे अच्छे ढंग से पालन किया कि सारी प्रजा उन्हें पहले के सभी राजाओं से बढ़कर मानने लगी।।2।। विद्वानों का कहना है कि संसार में दो ही ऐसे राजा हुए हैं, जिन्होंने कर्त्तव्य-पालन करनेवाले लोगों को उनके परिश्रम का ठीक-ठीक पुरस्कार दिया है। उनमें से एक तो इन्द्र हैं जिन्होंने समय पर वर्षा करके किसानों का परिश्रम सफल किया और दूसरे हैं मनुवंशी दशरथ, जिन्होंने सुकर्मियों को धन देकर उनका पालन-पोषण किया।।3।। दशरथजी देवताओं के समान तेजस्वी थे और उनका मन भी सब प्रकार से शान्त था। राज्य को हाथ में लेते ही उनका देश धन-धान्य से भर गया, रोग भी उनके राज्य की सीमा में पैर न रखे सके, फिर शत्रुओं के आक्रमण की तो संभावना ही कहाँ थी।।4।। जैसे दसों दिशाओं के जीतनेवाले रघु ने और उनके बाद उनके पुत्र अज ने पृथ्वी की शोभा बढ़ाई थी, उसी प्रकार शक्तिशाली महापराक्रमी दशरथ को पाकर पृथ्वी की शोभा न बढ़ी हो यह बात नहीं है।।5।। जैसे यम सबको एक समान समझते हैं, वैसे ही वे भी सबसे एक-सा व्यवहार करते थे, जैसे कुबेर धन बरसाते हैं, वैसे ही वे भी धन बाँटते थे, जैसे वरुण दुष्टों को दंड देते हैं वैसे ही वे भी दुष्टों को दंड देते थे, और जैसे सूर्य का बड़ा तेजस्वी है वैसे वे भी बहुत तेजस्वी थे।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत्।।7।।
न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे न वितथा परिहासकथास्वपि।
न च सपत्नजनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता।।8।।
उदयमस्तमयं च रघूद्वहादुभयमानशिरे वसुधाधिपाः।
स हि निदेशमलङ्घयतामभूत्सुहृदयोहृदयः प्रतिगर्जताम्।।9।।
अजयदेकरथेन स मेदिनीमुदधिनेमिमधिज्यशरासनः।
जयमघोषयदस्य तु केवलं गजवती जवतीव्रहया चमूः।।10।।
अवनिमेकरथेन वरूथिना जितवतः किल तस्य धनुर्भृतः।
विजयदुन्दुभितां ययुरर्णवा घनरवा नरवाहनसंपदः।।11।।
शमितपक्षबलः शतकोटिना शिखरिणां कुलिशेन पुरंदरः।
सशरवृष्टिमुचा धनुषा द्विषां स्वनवता नवतामरसाननः।।12।।
चरणयोर्नखरागसमृद्धिभिर्मुकुटरत्नमरीचिभिरस्पृशन्।
नृपतयः शतशो मरुतो यथा शतमखं तमखण्डितपौरुषम्।।13।।
निववृत्ते स महार्णवरोधसः सचिवकारितबालसुताञ्जलीन्।
समनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहाननलकानलकानवमां पुरीम्।।14।।

सांसारिक ऐश्वर्य को बटोरने में ऐसे लगे हुए थे कि आखेट का व्यसन, जूए का खेल, चन्द्रमा की परछाईं पड़ी हुई मदिरा और नवयौवना पत्नी, कोई भी उन्हें न लुभा सका।।7।। वे इतने मनस्वी थे कि इन्द्र तक के आगे वे कभी नहीं गिड़गिड़ाए, हँसी में भी उन्होंने झूठ नहीं बोला और क्रोधित होने की तो बात ही दूर है, उन्होंने अपने शत्रु को भी कोई कठोर शब्द नहीं कहा।।8।। उन रघुकुल में श्रेष्ठ दशरथ के हाथों बहुत से राजा बने और बहुत से बिगड़े; क्योंकि जो उनका कहा मान लेते थे, उन्हें तो वे दया करके छोड़ देते थे, पर जो ऐंठकर उनसे टक्कर लेने आगे आते थे उन्हें वे मिटाकर ही छोड़ते थे।।9।। एक धनुष लेकर और अकेले एक रथ पर चढ़कर ही उन्होंने समुद्र तक फैली हुई सारी पृथ्वी जीत थी। वेग से चलनेवाले हाथी-घोड़ों की उनकी सेना तो केवल जय-जयकार भर करती थी।।10।। जिस समय अकेले सुरक्षित रथ पर चढ़े कुबेर के समान सम्पत्तिशाली धनुषधारी दशरथ जी पृथ्वी जीतते हुए चलते थे, उस समय बादल के समान गरजता हुआ समुद्र उनकी विजय-दुंदुभी बजाता था।।11।। जैसे इन्द्र ने अपने सौ नोकोंवाले वज्र से पर्वत के पंख काट दिये थे, वैसे ही ही नये कमल के समान सुन्दर मुखवाले दशरथ जी ने अपने बाण बरसानेवाले धनुष से शत्रुओं को मारकर बिछा दिया।।12।। जैसे देवता लोग इन्द्र के चरण छूते हैं, वैसे ही सैकड़ों राजाओं ने पराक्रमी दशरथ के चरणों पर अपने वे मुकुट वाले सिर रख दिए जिनके मणि दशरथजी के पैर के नखों की ललाई से दमक उठते थे।।13।। उन्होंने जिन-जिन देशों के राजाओं को मार डाला था, उनकी रानियाँ अपने पुत्रों को लेकर राजा दशरथ रथ के आगे आईं और उन देशों के मंत्रियों ने उन राजपुत्रों को दशरथ के आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपगतोऽपि च मण्डलनाभितामनुदितान्यसितातपवारणः ।
श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलामभूदनलसोऽनलसोमसमद्युतिः ।। 15 ।।

तमपहाय ककुत्स्थकुलोद्भवं पुरुषमात्मभवं च पतिव्रता ।
नृपतिमन्यमसेवत देवता सकमला कमलाधवमर्थिषु ।। 16 ।।

तमलभन्त पतिं पतिदेवताः शिखरिणामिव सागरमापगाः ।।
मगधकोशलकेकयशासिनां दुहितरोऽहितरोपितमार्गणम् ।। 17 ।।

प्रियतमाभिरसौ तिसृभिर्बभौ तिसृभिरेव भुवं सह शक्तिभिः ।
उपगतो विनिनीषुरिव प्रजा हरिहयोऽरिहयोगविचक्षणः ।। 18 ।।

स किल संयुगमूर्ध्नि सहायतां मघवतः प्रतिपद्य महारथः ।
स्वभुजवीर्यमगापयदुच्छ्रितं सुरवधूरवधूतभयाः शरैः ।। 19 ।

क्रतुषु तेन विसर्जितमौलिना भुजसमाहृतदिग्वसुना कृताः ।
कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनो वितमसा तमसासरयूतटाः ।। 20 ।।

हाथ जोड़कर खड़ा कर दिया। उन खुले केशवाली शत्रुओं की रानियों के साथ दशरथजी ने बड़ी दया का व्यवहार किया और उस महासमुद्र के तट से वे अपनी उस अयोध्या राजधानी को लौट आए जो कुबेर की राजधानी अलका से किसी प्रकार कम नहीं थी।।14।। चारों ओर के राजाओं का मण्डल उनके हाथ में आ गया, जिससे वे अग्नि और चन्द्रमा के समान तेजस्वी लगने लगे। उनका प्रताप इतना बढ़ गया कि उनके आगे कोई भी दूसरा राजा श्वेतछत्र नहीं लगा सकता था। चक्रवर्ती हो जाने पर भी आलस्य को वे अपने पास नहीं फटकने देते थे; क्योंकि वे जानते थे कि जहाँ एक भी दोष आया कि लक्ष्मी हमें छोड़कर भाग जाएँगी।।15।। और फिर भगवान् विष्णु और दशरथ को छोड़कर और दूसरा राजा ही कौन-सा था, जिसके यहाँ हाथ में कमल धारण करनेवाली पतिव्रता लक्ष्मी स्वयं जाकर रहतीं।।16।। जैसे पर्वतों से निकलनेवाली नदियाँ समुद्र को पा लेती हैं वैसे ही कोशल, मगध और केकय देश के राजाओं की कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी नाम की कन्याओं ने शत्रुओं पर बाण बरसानेवाले दशरथजी को पति के रूप में पा लिया।17।। शत्रुओं का नाश करनेवाले दशरथजी अपनी तीनों रानियों के साथ ऐसे जान पड़ते थे, मानो पृथ्वी पर राज्य करने के लिये स्वयं इन्द्र ही [प्रभाव, उत्साह और मंत्र नाम की] अपनी तीनों शक्तियों के साथ अवतार लेकर चले आये हों।।18।। कहा जाता है कि महारथी दशरथ ने युद्ध में इन्द्र की सहायता करके और अपने बाणों से उनके शत्रुओं का नाश करके देवताओं की स्त्रियों का सब डर दूर कर दिया और वे सब दशरथजी के बाहुबल के गीत गाने लगीं।।19।। उन्होंने अपने बाहुबल से चारों ओर का धन लाकर इकट्ठा किया था और उनमें नाम को भी तामसी भाव नहीं था। उन्हीं राजा दशरथ ने अपना मुकुट उतारकर अश्वमेधयज्ञ करते समय तमसा और सरयू के किनारे सोने के यज्ञ-स्तम्भ खड़े कर दिए।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजिनदण्डभृतं कुशमेखलां यतगिरं मृगशृङ्गपरिग्रहाम्।
अधिवसँस्तनुमध्वरदीक्षितामसमभासमभासयदीश्वरः।। 21।।

अवभृथप्रयतो नियतेन्द्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितः।
नमयति स्म स केवलमुन्नतं वनमुचे नमुचेररये शिरः।। 22।।

असकृदेकरथेन तरस्विना हरिहयाग्रसरेण धनुर्भृता।
दिनकराभिमुखा रणरेणवो रुरुधिरे रुधिरेण सुरद्विषाम्।। 23।।

अथ समाववृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम्।
यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम्।। 24।।

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैर्विमलयन्मलयं नगमत्यजत्।। 25।।

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।। 26।।

नयगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः।
अभिययुः सरसो मधुसंभृतां कमलिनीमलिनीरपतत्त्रिणः।। 27।।

जब वे मृगछाला पहनकर, हाथ में दण्ड लेकर, कुशा की मेखला बाँधकर चुपचाप हिरण की सींग लिए यज्ञ की दीक्षा लेकर बैठे, उस समय भगवान् अष्टमूर्ति महादेव उनके शरीर में प्रविष्ट गए जिससे उनकी शोभा और भी अधिक बढ़ गई।।21।। यज्ञ समाप्त हो चुकने पर जब वे स्नान करके पवित्र हुए, तब देवताओं के साथ बैठने योग्य संयमी राजा दशरथ ने केवल नमुचि राक्षस के शत्रु तथा जल बरसानेवाले एक इन्द्र के आगे ही अपना ऊँचा मस्तक झुकाया।।22।। अकेले रथ पर चढ़कर युद्ध करनेवाले पराक्रमी, धनुर्द्धर और युद्ध में इन्द्र से भी आगे चलनेवाले दशरथ ने कई बार सूर्य पर छाई हुई युद्ध की धूल राक्षसों के रक्त से सींच-सींचकर दबाई।।23।। यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र के समान पराक्रमी उन एकच्छत्र राजा का अभिनंदन करने के लिए वसंत-ऋतु भी नये-नये फूलों की भेंट लेकर वहाँ आ पहुँची।।24।। सूर्य भी उत्तर की ओर घूम जाना चाहते थे; इसलिए उनके सारथी अरुण ने घोड़ों की रास उधर ही मोड़ दी। सर्दी दूर करके, प्रातःकाल पाला हटाकर उसे और भी अधिक चमकाते हुए सूर्य ने मलय पर्वत से बिदा ली।।25।। पहले फूल खिले, फिर नई कोंपले फूटीं, फिर भौंरे गूँजने लगे और कोयल की कूक भी सुनाई पड़ने लगी। इस क्रम से धीरे-धीरे वनस्थली में वसन्त ने पैर बढ़ाये।।26।। राजा दशरथ की चतुर नीति से उनके पास बहुत धन इकट्ठा हो गया था और उस धन से वे अपनी प्रजा का बहुत उपकार भी करते थे। इसलिये जैसे उनकी लक्ष्मी के आगे बहुत-से याचक हाथ फैलाया करते थे, वैसे ही वसंत की शोभा से लदी हुई सरोवर की कमलिनी के आसपास भौंरे और हंस भी मँडराने लगे।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम्।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः।। 28।।

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरबका रवकारणतां ययुः।। 29।।

सुवदनावदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः।
मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैर्बकुलमाकुलमायतपंक्तिभिः।। 30।।

उपहितं शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किंशुके।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं प्रमदया मदयापितलज्जया।। 31।।

व्रणगुरुप्रमदाधरदुसहं जघननिर्विषयीकृतमेखलम्।
न खलु तावदशेषमपोहितुं रविरलं विरलं कृतवान्हिमम्।। 32।।

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा।
अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि।। 33।।

प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः।
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु।। 34।।

उन दिनों वसंत में फूले हुए अशोक के फूलों को देखकर ही कामोद्दीपन नहीं होता था, वरन् कामियों को मतवाले बनानेवाले जो कोमल कोंपलों के गुच्छे स्त्रियों ने अपने कानों पर रख लिए थे, उन्हें देखकर भी मन हाथ से निकल जाता था।।28।। वन में खड़े हुए कुरबक के पेड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो वसंत में वनश्री के शरीर पर बेलबूटे बनाकर उसका शृङ्गार किया गया हो। उन पेड़ों से इतना मधु बह रहा था कि भौंरे मस्त होकर उन्हीं पर गुनागुना रहे थे।।29।। बबूल के जो वृक्ष सुन्दरी स्त्रियों के मुख की मदिरा के छींटे से फूल उठे थे और जिनमें उन्हीं स्त्रियों के समान गुण भी भरे थे, उनको झुण्ड में उड़ते हुए मधु के लोभी भौंरों ने बड़ा झकझोरा।।30।। वसंत के आने से पलास में फूल निकली हुई कलियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो काम के आवेश में लाज छोड़कर किसी कामिनी ने अपने प्रियतम के शरीर पर अनेक नख-क्षत कर डाले हों।।31।। अभी वह ठंड भली प्रकार दूर भी नहीं हुई थी जिसमें पतियों के दाँतों से घायल हुए स्त्रियों के होठ पीड़ा करते हैं और स्त्रियाँ अपनी कमर की करधनी भी ठण्डी होने के कारण उतार डालती हैं। पर हाँ, सूर्य ने कुछ जाड़ा कम अवश्य कर दिया था।।32।। नये बौरे हुए आम के वृक्षों की डालियाँ मलय के वायु से झूम उठीं मानो उन्होंने अभिनय सीखना प्रारंभ कर दिया हो। उन्हें देखकर रागद्वेष को जीतने वाले योगियों का मन भी मचल उठा।।33।। जिस समय मनहर सुगन्धवाली बन की लताओं पर बैठकर कोयल ने कूक सुनाई, तो ऐसा जान पड़ा मानो कहीं कोई मुग्धा नायिका ही बोल उठी हो।।34।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः।। 35।।
ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम्।
पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम्।। 36।।
शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः।
विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहंगमाः।। 37।।
उपययौ तनुतां मखुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः।
सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं वनितयानितया रजनीवधूः।। 38।।
अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः।
कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोर्जितकेतनम्।। 39।।
हुतहुताशनदीप्तिवनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत्।
युवतयः कुसुमं दधुराहितं तदलके दलकेसरपेशलम्।। 40।।
अलिभिरञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपङ्क्तिनिपातिभिरङ्कितः।
नखलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव। 41।।

वन के किनारे बढ़ी हुई लताएँ ऐसी सजीव-सी जान पड़ती थीं मानो कानों को सुख देनेवाली भौंरों की गुञ्जार ही उनके गीत हों, खिले हुए कोमल फूल ही उनकी हँसी के दाँत हों और वायु से हिली हुई शाखाओं वाले हाथों से वे अनेक प्रकार के हाव-भाव दिखा रही हों।।35।। चितवन आदि मधुर हाव-भाव कराने को उकसानेवाले और बकुल को भी अपनी गन्ध से हरानेवाले कामदेव के साथी मद्य को स्त्रियों ने अपने पति के प्रेम में बिना बाधा दिए ही पी लिया।।36।। लोगों के घरों के भीतर बनी हुई बावलियों में जो कमल खिले हुए थे और वहाँ मधुर शब्द करते हुए जो जल-पक्षी तैर रहे थे, उनसे वे बावलियाँ ऐसी सुन्दर जान पड़ती थीं, मानो उनमें मुसकराती हुई सुन्दर मुखवाली और ढीली होने के कारण बजती हुई करधनी वाली स्त्रियाँ विहार कर रही हों।।37।। जैसे अपने प्रियतम से समागम न होने के कारण खंडिता नायिका सूखती जाती है, वैसे ही रात्रि-रूपी नायिका भी वसन्त के आने से छोटी होती चली गई और उसका चन्द्रमा वाला मुख भी पीला पड़ता गया।।38।। पाला दूर हो जाने से चन्द्रमा निर्मल हो गया। संभोग की थकावट को दूर करनेवाली उसकी ठंडी किरणों से कामदेव के फूलों के धनुष को मानो और भी अधिक बल मिल गया हो।।39।। हवन की अग्नि के समान चमकते हुए कनैर के फूल वनलक्ष्मी के कानों के कर्णफूल जैसे जान पड़ते थे। अपने प्रियतमों के हाथों से जूड़ों में लगाये गये वे सुन्दर पंखुड़ी और परागवाले फूल स्त्रियों के केशों में बड़े सुन्दर लग रहे थे।।40।। तिलक के वृक्ष ने भी वनस्थली की कम शोभा नहीं बढ़ाई। जैसे किसी युवती के शृंगार के लिये उसका मुँह सजाता जाता है वैसे ही उस तिलकवृक्ष के फूलों पर मँडराते हुए काजल की बुंदियों के समान सुन्दर भौंरे ऐसे जान पड़ते थे मानो वनस्थलियों का मुख भी सजा दिया गया हो।।41।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसंगतया मनः।
कुसुमसंभृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी।।42।।
अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः श्रवणलब्धपदैश्च यवांकुरैः।
परभृताविरुतैश्च बिलासिनः स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः।।43।।
उपचितावयवा शुचिभिः कणैरलिकदम्बकयोगमुपेयुषी।
सदृशकान्तिरलक्ष्यत मञ्जरी तिलकजालकजालकमौक्तिकैः।।44।।
ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः।
कुसुमकेसररेणुमलिव्रजाः सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः।।45।।
अनुभवन्नवदोलमृतूत्सवं पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया।।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जलतामबलाजनः।।46।।
त्यजत मानमलं बत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः।
परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः।।47।।
अथ यथासुखमार्तवमुत्सवं समनुभूय विलासवतीसखः।
नरपतिश्चकमे मृगयारतिं स मधुमन्मधुमन्मथसंनिभः।।48।।

वहाँ वृक्षों की सुन्दरी नायिका नवमल्लिका लता भी थी। वह अपने मकरन्द-रूपी मद्य की गन्ध से भरी लाल-लाल पत्तों के होठों पर फूलों की मुसकान लेकर देखने वालों को भी पागल बना रही थी।।42।। प्रातःकाल की लालिमा से भी अधिक लाल वस्त्रों ने, कान पर रखे हुए जौ के अंकुरों ने और कोयल की कूकों की सेना लेकर चलनेवाले कामदेव ने ऐसा जाल बिछाया कि सभी विलासी पुरुष, युवती स्त्रियों के प्रेम में सुध-बुध खो बैठे।।43।। उजले पराग से भरे तिलक के फूलों के गुच्छे बढ़ चुके थे। उन पर मँडराते हुए भौंरों के झुण्ड के कारण वे ऐसे सुन्दर लगने लगे जैसे किसी स्त्री ने अपने सिर पर मोतियों की जाली पहन ली हो।।44।। उपवन के फूलों का पराग जब वायु ने उड़ाया, तो भौंरों के झुण्ड भी उनके पीछे-पीछे उड़ चले। वह उड़ता हुआ पराग ऐसा जान पड़ता था मानो धनुषधारी कामदेव का झण्डा हो या बसंतश्री के मुख पर लगाने का शृङ्गार-चूर्ण हो।।45।। जो स्त्रियाँ वसन्तोत्सव में नये झूलों पर सावधान होकर झूल रही थीं, वे भी अपने हाथ से पकड़ी हुई रस्सी को इसलिये ढीला छोड़ देती थीं कि हाथ छूटने पर हमारे प्रियतम हमें थाम ही लेंगे और इस प्रकार हम उनके गले से भी लग जायँगी।।46।। उन दिनों कोयल की कूक मानो कामदेव का यह आदेश सुना रही थी कि हे स्त्रियो! रूठना छोड़ दो, लड़ाई-झगड़ा छोड़ो, बीता हुआ यौवन फिर हाथ नहीं आता। यह सुन-सुनकर सभी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ फिर रमण करने लगीं।।47।। विष्णु के समान पराक्रमी, वसंत ऋतु के समान प्रसन्न और कामदेव के समान सुन्दर दशरथजी ने भी सुन्दरी स्त्रियों के साथ बसंत ऋतु का आनन्द लिया और फिर उनके मन में आखेट करने की इच्छा होने लगी।।48।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम्।
श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ।।49।।
मृगवनोपगमक्षमवेषभृद्विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः।
गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृसविता स वितानमिवाकरोत्।।50।।
ग्रथितमौलिरसौ वनमालया तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः।
तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलो विरुरुचे रुरुचेष्टितभूमिषु।।51।
तनुलताविनिवेशितविग्रहा भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः।
ददृशुरध्वनि तं वनदेवताः सुनयनं नयनन्दितकोशलम्।।52।।
श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं व्यपगतानलदस्यु विवेश सः।
स्थिरतुरंगमभूमि निपानवन्मृगवयोगवयोपचितं वनम्।।53।।
अथ नभस्य इव त्रिदशायुधं कनकपिङ्गततडिद्गुणसंयुतम्।
धनुरधिज्यमनाधिरुपाददे नरवरो रवरोषितकेसरी।।54।।
तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणशावैर्व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात्।
आविर्बभूव कुशगर्भमुखं मृगाणां यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम्।।55।।

आखेट से बड़े लाभ भी होते हैं। पहली बात तो यह है कि उसे चलते हुए लक्ष्य को बेधने का अभ्यास हो जाता है। फिर उससे जीवों के भय और क्रोध आदि भावों की पहचान हो जाती है और परिश्रम करने से शरीर भी भली प्रकार सुगठित हो जाता है। इसलिये मंत्रियों से सम्मति लेकर वे आखेट के लिये निकल पड़े।।49।। जब शिकारी का वेष बनाकर, अपने ऊँचे कन्धे पर धनुष टाँगे, तेजस्वी राजा दशरथ घोड़े पर चढ़कर चले तब उनके घोड़ों की टापों से इतनी धूल उठी कि आकाश में चँदोवा सा तन गया।।50।। उनके केशों में वनमाला गुँथी हुई थी। वे वृक्ष के पत्तों के समान गहरे रंग का कवच पहने हुए थे और घोड़े के वेग से चलने के कारण उनके कानों के कुण्डल भी हिल रहे थे। इस वेष में चलते-चलते वे उस जंगल में जा पहुँचे, जहाँ रुरु जाति के हिरण बहुत घूमा करते हैं।।51।। कोमल लताओं का रूप धारण करके भौंरों की आँखों से वनदेवता भी उन सुन्दर नेत्रवाले और कोशल की प्रजा को सदा सुख पहुँचानेवाले राजा दशरथ को देखने के लिये वहाँ पहुँच गए।।52।। तब वे उस जंगल में पहुँचे जहाँ पहले से ही जाल और शिकारी कुत्ते लेकर उनके सेवक पहुँच चुके थे। वहाँ न तो अग्नि का भय था न चोरों का। वहाँ की पृथ्वी घोड़ों के लिये पक्की थी। वहाँ बहुत से सरोवर थे, जिनके चारों ओर बहुत से हिरण, पक्षी और नीलगायें गाएँ घूमा करती थीं।।53।। तब उस सुन्दर स्वस्थ राजा ने अपना वह चढ़ा हुआ धनुष उठाया जिसकी टंकार सुनकर सिंह भी गरज उठे। उस समय वे उस भादों के महीने के समान लग रहे थे जिसमें इन्द्रधनुष निकला हुआ हो और जिसमें सोने के रंग की पीली बिजली की डोरी बँधी हो।।54।। उन्होंने देखा कि आगे हरिणों का झुण्ड चला जा रहा है, जिसमें बहुत-सी हरिणियाँ भी हैं जो अपने उन छौनों के कारण रुकती चलती हैं, जो कुश चबाते-चबाते अपनी माँ के स्तनों से दूध पीने के लिये बीच-बीच में खड़े हो जाते हैं। इस झुण्ड के आगे-आगे एक गर्वीला काला हिरण भी चला जा रहा था।।55।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा तूणीमुखोद्धृतशरेण विशीर्णपङ्क्ति।
श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातैर्वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः।। 56।।

लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्।
आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार।। 57।।

तस्यापरेष्वपि मृगेषु शरान्मुमुक्षोः कर्णान्तमेत्य बिभिदे निबिडोऽपि मुष्टिः।
त्रासातिमात्रचटुलैः स्मरयत्सु नेत्रैः प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि।। 58।।

उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपङ्कमध्यान्मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम्।।
जग्राह स द्रुतवराहकुलस्यमार्ग सुव्यक्तमार्द्रपदपङ्क्तिभिरायताभिः।। 59।।

तं वाहनादवनतोत्तरकायमीषद्विध्यन्तमुद्धतसटाः प्रतिहन्तुमीषुः।
नात्मानमस्य विविदुः सहसा वराहा वृक्षेषु बिद्धमिषुभिर्जघनाश्रयेषु।। 60।।

तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री वनस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः।
निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुङ्खस्तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्।। 61।।

राजा ने ज्यों ही अपने तीव्रगामी घोड़े पर चढ़कर और अपने तूणीर में से बाण निकालकर उनका पीछा किया कि वह झुण्ड तितर-बितर हो गया और उनकी घबराई हुई आँखों से भरा हुआ वह सारा जंगल ऐसा लगने लगा, मानो वायु ने नीले कमलों की पंखुड़ियाँ लाकर वहाँ बिखेर दी हों।।56।। इन्द्र के समान शक्तिशाली चतुर धनुषधारी राजा दशरथ ने देखा कि वे जिस हिरण को मारना चाहते थे, उसकी हिरणी बीच में आकर खड़ी हो गई। वे स्वयं भी प्रेमी थे। अपने हिरण के लिए हरिणी का यह प्रेम देखकर उनका हृदय भी दया से भर आया और उन्होंने कान तक खींचा हुआ भी अपना बाण उतार लिया।।57।। वे दूसरे हरिणों पर बाण चलाना चाहते थे और उन्होंने बाण की चुटकी कान तक खींच भी ली थी; पर जब उन्होंने उन हरिणों की डरी हुई आँखों को देखा, तो उन्हें अपनी युवती प्रियतमा के चंचल नेत्रों का स्मरण हो आया और उनके हाथ ढीले पड़ गए।।58।। उन्हें छोड़कर दशरथजी उधर घूम पड़े, जिधर आधे बचे हुए मोथ की घास के मुट्ठे स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े थे और पैर की गीली छापों की पाँत को देखकर जान पड़ता था कि तालाबों के कीचड़ से निकल-निकलकर जंगली सुअरों का झुण्ड उधर को भागा है।।59।। ज्यों ही उन्होंने घोड़े पर चढ़े हुए अपने शरीर को आगे झुकाकर उन सूअरों पर बाण चलाए, त्यों ही वे भी अपने कड़े बाल खड़े के राजा दशरथ पर झपट पड़े, किन्तु उन्होंने तत्काल ऐसे कसकर बाण मारे कि सूअरों को जान ही नहीं पड़ा कि वे उन पेड़ों में बाण के साथ कब चिपक गए जिनके सहारे वे खड़े थे।।60।। इतने में ही उन्होंने देखा कि एक जंगली भैंसा उनकी ओर झपटा चला आ रहा है। उन्होंने उसकी आँख में ऐसा बाण मारा कि वह भैंसे के शरीर में से इतनी फुर्ती से पार हो गया कि बाण के पंख में तनिक-सा भी रक्त नहीं लगा और विशेषता यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमाङ्गान्खड्गाँश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः।
शृङ्गं सदृप्तविनयाधिकृतः परेषामत्युच्छ्रितं न ममृषे न तु दीर्घमायुः।।62।।
व्याघ्रानभीरभिमुखोत्पतितान्गुहाभ्यः फुल्लासनाग्रविटपानिव वायुरुग्णान्।
शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषात्तूणीचकार शरपूरितवक्त्ररन्धान्।।63।।
निर्घातोग्रैः कुञ्जलीनाज्जिघांसुर्ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामाससिंहान्।
नूनं तेषामभ्यसूयापरोऽभूद्वीर्योदग्रे राजशब्दे मृगेषु।।64।।
तान्हत्वा गजकुलबद्धतीव्रवैरान्काकुत्स्थः कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान्।
आत्मानं रणकृतकर्मणां गजानामानृण्यं गतमिव मार्गणैरमँस्त।।65।।
चमरान्परितः प्रवर्तिताश्वः क्वचिदाकर्णविकृष्टभल्लवर्षी।
नृपतीनिव तान्वियोज्य सद्यः सितबालव्यजनैर्जगाम शान्तिम्।।66।।
अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः।।67।।

थी कि बाण तो देर से गिरा; किन्तु भैंसा पहले ही पृथ्वी पर गिर पड़ा।।61।। इतने में उन्हें बारहसिंहों का झुण्ड दिखाई दिया। राजा दशरथ ने अर्द्धचन्द्र बाणों से उनके सींग काटकर उनके सिर का बोझ हलका कर दिया। वे सिर उठाकर चलने वालों का दमन अवश्य करते थे; इसलिये उन्होंने ऐंठकर चलने के साधन सींगों को काट डाला। यद्यपि राजा को उनके प्राणों से कोई बैर नहीं था।।62।। जब सिंह अपनी गुफाओं में से निकलकर उनकी ओर झपटे, तब निर्भय राजा दशरथ ने इतनी शीघ्रता से उन पर बाण चलाए कि उन सिंहों के खुले हुए मुँह उनके बाणों के तूणीर बन गए और वे ऐसे जान पड़ने लगे, जैसे आँधी से उखड़े हुए फूल आसन के पेड़ की कलियाँ हों।।63।। झाड़ियों में लेटे हुए सिंहों को मारने के लिये पहले उन्होंने आँधी के समान भयंकर शब्द करनेवाली अपनी धनुष की डोरी से टंकार की, जिसे सुनते ही सिंह भड़क उठे। बात यह थी कि राजा दशरथ को उन अत्यन्त शक्तिशाली सिंहों की इस बात से चिढ़ हो रही थी कि वे जीवों के राजा क्यों कहलाते हैं।।64।। बस, उन्होंने हाथियों से बैर रखनेवाले उन सिंहों को मार डाला, जिनके नोकीले अगले पंजों में अब तक गज-मुक्ताएँ उलझी हुई थीं। इस प्रकार ककुत्स्थ-वंशी राजा दशरथ ने मानो अपने बाणों से उन हाथियों का ऋण चुका दिया जो युद्ध में उनकी सेना में काम आ रहे थे।।65।। चामर मृगों के चारों ओर अपना घोड़ा दौड़ाते हुए भाले की नोंकवाले बाण बरसाकर उन्होंने उन मृगों की चँवरवाली पूँछें काट डालीं। इससे उन्हें ऐसा सन्तोष हुआ मानो चँवरधारी राजाओं के चँवर ही उन्होंने छीन लिए हों।।66।। कभी-कभी उनके पास से सुन्दर चमकीली पूँछोंवाले मोर भी उड़ जाते थे। पर वे उन पर बाण नहीं चलाते थे; क्योंकि उन्हें देखकर दशरथजी को रंग-विरंगी मालाओं से गूँथे हुए और संभोग के कारण खुले हुए अपनी प्रिया के केशों का स्मरण हो जाता था।।67।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य कर्कशविहारसंभवं स्वेदमाननविलग्नजालकम्।
आचचाम सतुषारशीकरो भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः।। 68।।
इति विस्मृतान्यकरणीयमात्मनः सचिवावलम्बितधुरं धराधिपम्।
परिवृद्धरागमनुबन्धसेवया मृगया जहार चतुरेव कामिनी।। 69।।
स ललितकुसुमप्रवालशय्यां ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथाम्।
नरपतिरतिवाहयांबभूव क्वचिदसमेतपरिच्छदस्त्रियामाम्।। 70।।
उषसि स गजयूथकर्णतालैः पटुपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्रः।
अरमत मधुराणि तत्र शृण्वन्विहगविकूजितबन्दिमङ्गलानि।। 71।।
अथ जातु रुरोर्गृहीतवर्त्मा विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः।
श्रमफेनमुचा तपस्विगाढां तमसां प्राप नदीं तुरंगमेण।। 72।।
कुम्भपूरणभवः पटुरुच्चैरुच्चचारं निनदोऽम्भसि तस्याः।
तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की शब्दपातिनमिषुं विससर्ज।। 73।।
नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पङ्क्तिरथो विलङ्घ्य यत्।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः।। 74।।
हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्णस्तस्यान्विष्यन्वेतसगूढं प्रभवं सः।
शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं तापादन्तःशल्य इवासीत्क्षितिपोऽपि।। 75।।

कठिन परिश्रम से उनके मुँह पर जो पसीना छा गया था, उसे वन के उस वायु ने सुखा दिया, जो जल के कणों से शीतल होकर पत्तों और कलियों को गिराता चल रहा था।।68।। इस प्रकार अपना सब काम भूले हुए और राज्य का भार मंत्रियों पर छोड़कर वन में आए हुए, राजा दशरथ का मन आखेट के व्यसन ने उसी प्रकार लुभा लिया, जैसे कोई स्त्री अपने पति की सेवा करके उसे अपने वश में कर लेती है।।69।। यह आखेट का व्यसन उन्हें ऐसा लगा कि कभी-कभी उन्हें सारी रात फूल-पत्तों की शैय्या पर, रात को चमकनेवाली बूटियों के प्रकाश के सहारे, बिना किसी सेवक के अकेले ही काटनी पड़ती थी।।70।। और प्रातःकाल जब नगाड़ों के समान शब्द करनेवाले हाथियों के कानों की फटफट होती थी तब उनकी आँखें खुलतीं थी, और उस समय वन के पक्षी चारणों के समान जो मङ्गलगीत गाते थे, उन्हें सुनकर ही वे मगन हो जाते थे।।71।। एक दिन जंगल में रुरु मृग का पीछा करते हुए वे अपने साथियों से बहुत दूर भटक गए। थकावट के कारण उनका घोड़ा मुँह से झाग फेंकने लगा, पर उसी पर चढ़े हुए वे तमसा नदी के उस तट पर निकल गए, जहाँ बहुत से तपस्वियों के आश्रम बने हुए थे।।72।। वहाँ जल में कोई घड़ा भर रहा था, इन्होंने समझा कि यह कोई हाथी है। बाण निकाला और शब्द पर लक्ष्य करके उन्होंने झट शब्दवेधी बाण चला दिया।।73।। हाथी को मारना शास्त्र के विरुद्ध है। इसलिये दशरथ ने जो किया वह राजा के लिये ठीक नहीं था पर कभी-कभी विद्वान् लोग भी जब आवेश से अंधे हो जाते हैं तब वे भी उलटा काम कर ही बैठते हैं।74।। सहसा कोई चिल्लाया—हाय पिता!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेनावतीर्य तुरगात्प्रथितान्वयेन पृष्टान्वयः स जलकुम्भनिषण्णदेहः।
तस्मै द्विजेतरतपस्विसुतं स्खलद्भिरात्मानमक्षरपदैः कथयांबभूव।। 76।।
तच्चोदितश्च तमनुद्धृतशल्यमेव पित्रोः सकाशमवसन्नदृशोर्निनाय।
ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्रमज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस।। 77।।
तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः।
सोऽभूत्परासुरथ भूमिपतिं शशाप हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव वृद्धः।। 78।।
दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकादन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम्।
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविषं भुजंग प्रोवाच कोशलपतिः प्रथमापराद्धः।। 79।।
शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोभे सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम्।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो वीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति।। 80।।
इत्थंगते गतघृणः किमयं विधत्तां वध्यस्तवेत्यभिहितो वसुधाधिपेन।।
एधान्हुताशनवतः स मुनिर्ययाचे पुत्रं परासुमनुगन्तुमनाः सदारः।। 81।।

यह सुनकर इनका माथा ठनका और ये झट उसे ढूँढ़ने बढ़े चले। आगे बढ़ते ही देखते क्या हैं कि नरकट की झाड़ियों में बाण से बिंधा हुआ, घड़े पर झुका हुआ किसी मुनि का पुत्र पड़ा है। उसे देखकर उनको ऐसा कष्ट हुआ मानो इन्हें भी बाण लग गया हो।।75।। जब श्रेष्ठ वंश वाले राजा दशरथ ने घड़े पर झुके हुए मुनि-पुत्र से उसका वंश-परिचय पूछा, तब उसने लड़खड़ाती बाणी से बताया कि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, मेरे पिता वैश्य हैं और मेरी माता शूद्रा हैं।।76।। उसने राजा दशरथ से कहा कि मुझे मेरे अँधे माता-पिता के पास ले चलो। राजा दशरथ ने उस बाण से बिंधे मुनि-पुत्र को उठाया और उनके माता-पिता के पास ले गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे सब कथा बता दी कि भूल से मैंने आपके एकलौते पुत्र पर किस प्रकार बाण चला दिया है।।77।। यह सुनते ही वे दोनों तो चिल्लाकर रोने लगे और उन्होंने अपने पुत्र के हत्यारे को आज्ञा दी कि मेरे पुत्र की छाती में से बाण निकाल लो। बाण निकालते ही मुनि-कुमार के प्राण भी निकल गए। इस पर बूढ़े तपस्वी ने अपने आँसुओं से अपनी अंजली भरकर राजा को शाप दिया–।।78।। 'हे राजा! जाओ तुम भी हमारे ही समान बुढ़ापे में पुत्र-शोक से प्राण छोड़ोगे।' पैर से दबने पर सर्प जैसे विष उगलकर शान्त हो जाता है, वैसे ही शाप देकर जब वे बूढ़े मुनि शान्त हो गए, तब पहले-पहल अपराध करनेवाले राजा दशरथ उनसे बोले–।।79।। 'हे मुनि? मुझे आज तक पुत्र के मुख-कमल का दर्शन-तक नहीं हुआ है, इसलिये मैं आपके श्राप को वरदान ही समझता हूँ; क्योंकि इसी बहाने मुझे पुत्र तो प्राप्त होगा। जंगल की लकड़ी की आग चाहे एक बार पृथ्वी को भले ही जला दे; किन्तु वह पृथ्वी को इतनी उपजाऊ बना देती है कि आगे उसमें बड़ी अच्छी उपज होती है।।80।। यह कहकर राजा ने फिर उनसे कहा–'मैं तो इसी योग्य हूँ कि आप मेरा वध करें। अब मुझ नीच के लिये आपकी क्या आज्ञा होती है।' यह सुनकर उस मुनि ने कहा कि 'हम और हमारी स्त्री अब अपने पुत्र के समान ही शरीर छोड़ देंगे। इसलिये अब हमारे लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्तानुगः सपदि शासनमस्यराजा संपाद्य पातकविलुप्तधृतिर्निवृत्तः।
अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशिः।। 82।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
मृगयावर्णनो नाम नवमः सर्गः।।

ईंधन और अग्नि जुटाओ।।81।। राजा दशरथ के अनुचर भी तब तक पहुँच गए थे। तत्काल ईंधन और अग्नि जुटा दी गई। जैसे समुद्र के हृदय में बड़वानल जला करता है वैसें ही, अपने पाप से अधीर हृदय में मुनि के शाप की ज्वाला की आग लिए हुए वे [किसी प्रकार] घर लौटे।।82।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'आखेट-वर्णन' नामक नवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। दशमः सर्गः ।।

पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः ।
किंचिदूनमनूनर्द्धेः शरदामयुतं ययौ ।। 1 ।।
न चोपलेभे पूर्वेषामृणनिर्मोक्षसाधनम् ।
सुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोकतमोपहम् ।। 2 ।।
अतिष्ठत्प्रत्ययापेक्षसंततिः स चिरंनृपः ।
प्राङ्मन्थादनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिवार्णवः । 3 ।।
ऋष्यशृङ्गादयस्तस्य सन्तः संतानकाङ्क्षिणः ।
आरेभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः ।। 4 ।।
तस्मिन्नवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुता हरिम् ।
अभिजग्मुर्निदाघार्ताश्छायावृक्षमिवाध्वगाः ।। 5 ।।
ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः ।
अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ।। 6 ।।
भोगिभोगासनासीनं ददृशुस्तं दिवौकसः ।
तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् ।। 7 ।।
श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरितमेखले ।
अङ्के निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपल्लवे ।। 8 ।।

दसवाँ सर्ग

अपार धनवाले और इन्द्र के समान तेजस्वी राजा दशरथ को पृथ्वी पर राज करते-करते लगभग दस सहस्र शरद् बीत गए।।1।। पर तब भी पितरों के ऋण से छुटकारा दिलानेवाली और शोक के अँधेरे को दूर करनेवाली वह ज्योति उन्हें नहीं मिल सकी जिसे पुत्र कहते हैं।।2।। जैसे समुद्र को रत्न उत्पन्न करने के लिये मथे जाने तक ठहरना पड़ा था, वैसे ही संतान के लिये उपाय होने तक राजा दशरथ को भी ठहरना पड़ा।।3।। तब ऋष्यशृङ्ग आदि जितेन्द्रिय और सन्त यज्ञ करनेवाले ऋषियों ने संतान चाहनेवाले राजा दशरथ के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करना प्रारंभ किया।।4।। ठीक उसी समय रावण के अत्याचारों से घबराकर देवता लोग उसी प्रकार विष्णु की शरण में गए, जैसे धूप से व्याकुल पथिक छायावाले वृक्ष के नीचे पहुँच जाते हैं।।5।। ज्यों ही देवता लोग क्षीरसागर में पहुँचे, त्यों ही विष्णु भगवान् भी योग-निद्रा से जाग उठे। काम में देर न होना ही उसके पूरे होने का सबसे बड़ा लक्षण है।।6।। देवताओं ने देखा कि विष्णु भगवान् शेष-शय्या पर लेटे हुए हैं और शेष के फणों की मणियों से उनका शरीर और भी अधिक चमक उठा है।।7।। उन्हीं के पास कमल पर लक्ष्मी बैठी हुई थीं, जिनकी कमर में रेशमी वस्त्र पड़ा हुआ था और जो विष्णु भगवान् के चरण अपनी गोद में लेकर पलोट रही थीं।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं बालातपनिभांशुकम्।
दिवसं शारदमिव प्रारम्भसुखदर्शनम्।।9।।
प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम्।
कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा।।10।।
बाहुभिर्विटपाकारैर्दिव्याभरणभूषितैः।
आविर्भूतमपां मध्ये पारिजातमिवापरम्।।11।।
दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः।
हेतिभिश्चेतनावद्भिरुदीरितजयस्वनम्।।12।।
मुक्तशेषविरोधेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा।
उपस्थितं प्राञ्जलिना विनीतेन गरुत्मता।।13।।
योगनिद्रान्तविशदैः पावनैरवलोकनैः।
भृग्वादीननुगृह्णन्तं सौखशायनिकानृषीन्।।14।।
प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम्।
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम्।।15।।

जैसे खिले हुए कमलों से और कन्या राशि के सूर्य से शरद् ऋतु के प्रारंभिक दिन बड़े सुहावने लगते हैं, वैसे ही खिले हुए कमल जैसी आँखो वाले, प्रातःकाल की धूप के समान सुनहले वस्त्र पहने और ध्यानमग्न योगियों को सरलता से दर्शन देनेवाले, विष्णु भी बड़े सुन्द लग रहे थे।।9।। उनके चौड़े वक्षस्थल पर वह कौस्तुभमणि चमक रहा था, जिसमें लक्ष्मी जी शृङ्गार के समय अथवा हाव-भाव करते हुए अपना मुँह देखा करती हैं और जिसकी चमक से भृगु के चरण के प्रहार से बना हुआ श्रीवत्स चिह्न भी चमक उठता था।।10।। आभूषणों से सजी हुई उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ वृक्ष की शाखाओं के समान थीं और उनसे वे ऐसे लगते थे, मानो समुद्र में दूसरा कल्पवृक्ष निकल आया हो।।11।। असुरों को माकर उनकी स्त्रियों के गालों से मद की लाली मिटानेवाले उनके चक्र, गदा आदि अस्त्र सजीव होकर उनकी जयजयकार कर रहे थे।।12।। शेषनाग से स्वाभाविक विरोध छोड़कर इन्द्र के वज्र की चोट का चिह्न धारण किए हुए गरुड़जी बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर उनकी सेवा में खड़े थे।।13।। वे लोग निद्रा से उठकर अपनी स्वच्छ और पवित्र चितवन से उन भृगु आदि ऋषियों को अनुगृहीत कर रहे थे, जो उनसे पूछ रहे थे—'भगवन् आप सुख से तो सोए हैं।।14।। तब देवता लोग दैत्यों के नाश करनेवाले विष्णु भगवान् को प्रणाम करके उन प्रशंसनीय विष्णु की स्तुति करने लगे जिन तक न तो वाणी ही पहुँचती है और न तो मन ही पहुँच सकता है। वे बोले—।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने।। 16।।
रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽश्नुते।
देशे देशे गुणेष्वेवमवस्थास्त्वमविक्रियः। 17।।
अमेयो मितलोकस्त्वमनर्थी प्रार्थनावहः।
अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तकारणम्।। 18।।
हृदयस्थमनासन्नमकामं त्वां तपस्विनम्।
दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदुः।। 19।।
सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक्।। 20।।
सप्तसामोपगीतं त्वां सप्तार्णवजलेशयम्।
सप्तार्चिर्मुखमाचख्युः सप्तलोकैकसंश्रयम्।। 21।।
चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालावस्थाश्चतुर्युगाः।
चतुर्वर्णमयोलोकस्त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात्।। 22।।

विश्व को बनाने, पालन करने और अंत में उसका संहार करनेवाले तीनों रूप आप अपने में धारण करते हैं। आपको प्रणाम है।।16।। जैसे एक स्वादवाला वर्षा का जल अलग-अलग देशों में बरसकर अलग-अलग स्वादवाला हो जाता है, वैसे ही आप सब प्रकार के विकारों से दूर होते हुए भी सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों के प्रभाव से बहुत से रूप धारण कर लेते हैं।।17।। हे भगवन्! आप कितने बड़े हैं, यह तो कोई नहीं माप सकता, पर आपने सब लोक माप डाले हैं।। आपकी स्वयं कोई इच्छा नहीं है पर आप सबकी इच्छाएँ पूरी करते हैं। आपको कोई नहीं जीत सकता परन्तु आपने सबको जीत लिया है। आप किसी को नहीं दिखाई देते; पर आपने ही इस दिखाई देनेवाले संसार को उत्पन्न किया है।।18।। हे भगवन्! विद्वानों का कहना है कि आप सबके हृदय में रहते हुए भी दूर हैं। आप कोई इच्छा नहीं करते, फिर भी [नर-नारायण के रूप में बदरिकाश्रम में] तपस्या करते हैं। आप दयालु हैं; पर आपको पुण्य नहीं छूता। आपको लोग पुराण [अर्थात् पुरातन पुरुष] कहते हैं पर आप कभी बूढ़े नहीं होते।।19।। आप सबको जानते हैं; पर आपको कोई नहीं जानता।। आपने सारी सृष्टि उत्पन्न की है, आपको किसी ने उत्पन्न नहीं किया है। आप सबके स्वामी हैं, आपका कोई स्वामी नहीं है और एक रूप होते हुए भी आप संसार के सब रूप धारण किए हुए हैं।।20।। विद्वानों का कहना है कि सामवेद के सातों प्रकार के गीतों में आपके ही गुणों के गीत हैं।। आप ही सातों समुद्रों के जल में निवास करते हैं। सातों प्रकार की अग्नि आपके ही मुख हैं और सातों लोकों के आप ही एक सहारे हैं।।21।। आपके ही चारों मुखों से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल देनेवाला ज्ञान उत्पन्न हुआ है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगों में बँटा हुआ समय भी आपने ही उत्पन्न किया है और चार वर्णोंवाला यह संसार भी आपका ही बनाया हुआ है।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयम्।
ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये।। 23।।
अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव।। 24।।
शब्दादीन्विषयान्भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः।
पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम्।। 25।।
बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानःसिद्धहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे।। 26।।
त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम्।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयः संनिवृत्तये।। 27।।
प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो मह्यादिर्महिमा तव।
आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा।। 28।।
केवलं स्मरणेनैव पुनासि पुरुषं यतः।
अनेन वृत्तयः शेषा निवेदितफलास्त्वयि।। 29।।

योगी लोग सदा प्राणायाम आदि से मन को वश में करके मुक्ति पाने के लिये अपने हृदयों में बैठे हुए आपके ही ज्योतिस्वरूप की खोज किया करते हैं।।23।। हे भगवन्! आप अजन्मा कहलाकर भी जन्म लेते हैं और कर्म-रहित होकर भी शत्रुओं का संहार करते हैं। योग-निद्रा में सोते हुए भी आप जागते ही रहते हैं, फिर बताइए, आपका सच्चा भेद कौन जान सकता है।।24।। आप [कृष्ण आदि रूप में] शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध आदि का भोग करते हैं। [नर-नारायण रूप से] कठोर तपस्या करते हैं। [राम आदि रूप धारण करके] प्रजा का पालन करते हैं और [बुद्ध आदि] शान्तरूप धारण करके उदासीन भी बन जाते हैं।।25।। जैसे गंगाजी की सभी धाराएँ समुद्र में ही गिरती हैं, उसी प्रकार परमानन्द पाने के जितने मार्ग बताए गए हैं, वे अलग-अलग शास्त्रों में अलग-अलग रूप से बताए जाने पर भी सब आप ही तक पहुँचते हैं।।26।। जो योगी लोग सदा आपका ही ध्यान करते हैं, जिन्होंने अपने सब कर्म आपको ही समर्पित कर दिए हैं और जो लोग द्वेष से दूर हैं उन योगियों को तो आप ही जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा देते हैं।।27।। यद्यपि पृथ्वी आदि को देखने से आपकी महिमा प्रकट हो जाती है; पर उतने से ही ठीक-ठीक आपका परिचय नहीं हो पाता। फिर भला वेदों के वर्णन से और अनुमान से आपका कैसे ज्ञान हो सकता है।।28।। आपके स्मरणमात्र से ही लोग पवित्र हो जाते हैं। फिर यदि उन्हें आपका दर्शन हो जाय, वे आपका चरण छू सकें और आपकी वाणी सुन सकें तो उससे जितना पुण्य होगा, उसका वर्णन कौन कर सकता है।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदधेरिव रत्नानि तेजांसीव विवस्वतः।
स्तुतिभ्योव्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते।।30।।
अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किंचन विद्यते।
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः।।31।।
महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संहियते वचः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया।।32।।
इति प्रसादयामासुस्ते सुरास्तमधोक्षजम्।
भूतार्थव्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः।।33।।
तस्मै कुशलसंप्रश्नव्यञ्जितप्रीयते सुराः।
भयमप्रलयोद्वेलादाचख्युर्नैऋतोदधेः।।34।।
अथ वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना।।
स्वरेणोवाच भगवान्परिभूतार्णवध्वनिः।।35।।
पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरिता।
वभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती।।36।।
बभौ सदशनज्योत्स्ना सा विभोर्वदनोद्गता।
निर्यातशेषा चरणाद्गङ्गेवोर्ध्वप्रवर्तिनी।।37।।

जैसे समुद्र के रत्न और सूर्य की किरणें गिनी नहीं जा सकतीं वैसे ही स्तुति करके आपके पूरे चरित्र का वर्णन नहीं हो सकता।।30।। संसार में प्राप्त करने योग्य कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो आपके हाथ में न हो। फिर भी आप जो जन्म लेते हैं और कर्म करते हैं उसका एकमात्र उद्देश्य यही है कि आप संसार पर अनुग्रह करना चाहते हैं।।31।। आपकी महत्ता की प्रशंसा करके जो हम चुप हो रहे हैं, इसका यह कारण नहीं है कि हमने आपके सब गुणों का वर्णन कर डाले, वरन् इसका कारण यही है कि हम थक गए हैं और आगे बोलने की शक्ति हममें नहीं रह गई है।।32।। जो भगवान् किसी भी इन्द्रिय से प्राप्त नहीं होते हैं, उनकी स्तुति करके देवताओं ने उन्हें प्रसन्न कर लिया। वह स्तुति भी उनकी झूठी प्रशंसा नहीं थी अपितु सब बातें सच्ची ही थीं।।33।। विष्णु भगवान् ने प्रसन्न होकर उनसे कुशल-मंगल पूछा, जिसके उत्तर में देवताओं ने कहा कि आजकल ऐसे राक्षस उत्पन्न हो गए हैं, जिन्होंने बिना प्रलय काल आए ही सारे संसार की मर्यादा भंग करके चारों ओर हाहाकार मचा दिया है।।34।। यह सुनकर समुद्र से भी बढ़कर गंभीर ध्वनि में जब भगवान् उत्तर देने लगे तब क्षीरसागर के तट पर खड़े हुए पहाड़ों की गुफाओं में उनके शब्द गूँज उठे।।35।। विष्णु भगवान् तो सबसे पुराने कवि हैं; इसलिए जब उनके मुख के भीतर कण्ठ, तालु, दाँत, ओठ आदि उच्चारण के स्थानों से भली-भाँति वाणी निकली तब मानो सरस्वती ने अपने जन्म लेने का फल पा लिया।।36।। उनके दाँतों की चमक से जगमगाती हुई उनकी वाणी मुख से निकलती हुई ऐसी शोभा देने लगी मानो उनके चरणों से निकलकर गंगाजी ऊपर को जा रही हों।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने वो रक्षसाक्रान्तावनुभावपराक्रमौ।
अङ्गिनां तमसेवोभौ गुणौ प्रथममध्यमौ।। 38।।
विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम्।
अकामोपनतेनेव साधोर्हृदयमेनसा।। 39।।
कार्येषु चैककार्यत्वादभ्यर्थ्योऽस्मि न वज्रिणा।
स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते।। 40।।
स्वासिधारापरिहृतः कामं चक्रस्य तेन मे।
स्थापितो दशमो मूर्धा लभ्यांश इव रक्षसा।। 41।।
स्रष्टुर्वरातिसर्गात्तु मया तस्य दुरात्मनः।
अत्यारूढं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः।। 42।।
धातारं तपसा प्रीतं ययाचे स हि राक्षसः।
दैवात्सर्गादवध्यत्वं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः।। 43।।
सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्बलिक्षमम्।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरः कमलोच्चयम्।। 44।
अचिराद्यज्वभिर्भागं कल्पितं विधिवत्पुनः।
मायाविभिरनालीढमादास्यध्वे निशाचरैः।। 45।।

विष्णु भगवान् बोले—हे देवताओ! जैसे संसार के जीवों के सत्त्वगुण और रजोगुण को उनका तमोगुण दबा लेता है, वैसे ही आपके तेज और बल को रावण दबा बैठा है।।38।। मैं यह भी जानता हूँ कि जैसे अनजान में किए हुए पाप से सज्जन का मन घबरा जाता है, वैसे ही सारा संसार रावण के अत्याचार से घबरा उठा है।।39।। इसलिए रावण को मिटा डालने का काम जैसा इन्द्र का है, वैसा ही मेरा भी है। इसके लिये इन्द्र ने जो मेरी प्रार्थना की है, उसकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता हूँ; क्योंकि आग की सहायता के लिये वायु से कहना नहीं पड़ता, वह तो स्वयं आग को सहायता देता है।।40।। शिवजी को प्रसन्न करने के लिये रावण ने अपने नौ सिर काटकर चढ़ा दिए थे। अब जान पड़ता है कि उस राक्षस ने अपना दसवाँ सिर मेरे चक्र से काटे जाने के लिये रख छोड़ा है।।41।। ब्रह्माजी ने जो उसे वरदान दे दिया है, उसीसे मैंने उस दुष्ट का दिन-दिन ऊपर चढ़ना, उसी प्रकार सहा है, जैसे अपने ऊपर चढ़ते हुए साँप को चन्दन का पेड़ सह लेता है।।42।। जब ब्रह्माजी उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए, तब उसने यही वरदान माँगा कि मैं देवताओं के हाथ से मारा न जा सकूँ; क्योंकि मनुष्यों को तो वह कुछ समझता ही नहीं है।।43।। इसलिये मैं राजा दशरथ के यहाँ जन्म लेकर अपने तीखे बाणों से उसके सिरों को कमल के समान उतारकर रणभूमि को भेंट चढ़ाऊँगा।।44।। हे देवताओ! यजमान लोग जो विधि से दिया हुआ यज्ञ का भाग तुम्हें दे देंगे उसे अब राक्षस लोग छीनकर नहीं खा सकेंगे। वह अब आप लोगों को ही मिलेगा।। 45।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैमानिकाः पुण्यकृतस्त्यजन्तु मरुतां पथि।
पुष्पकालोकसंक्षोभं मेघावरणतत्पराः।। 46।।
मोक्षध्वे स्वर्गवन्दीनां वेणीबन्धानदूषितान्।
शापयन्त्रित-पौलस्त्यबलात्कार-कचग्रहैः।। 47।।
रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन सः।
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे।। 48।।
पुरुहूतप्रभृतयः सुरकार्योद्यतं सुराः।
अंशैरनुययुर्विष्णुं पुष्पैर्वायुमिव द्रुमाः।। 49।।
अथ तस्य विशांपत्युरन्ते काम्यस्य कर्मणः।
पुरुषः प्रबभूवाग्नेर्विस्मयेन सहर्त्विजाम्।। 50।।
हेमपात्रगतं दोर्भ्यामादधानः पयश्चरुम्।
अनुप्रवेशादाद्यस्य पुंसस्तेनापि दुर्वहम्।। 51।।
प्राजापत्योपनीतं तदन्नं प्रत्यग्रहीन्नृपः।
वृषेव पयसां सारमाविष्कृतमुदन्वता।। 52।।
अनेन कथिता राज्ञो गुणास्तस्यान्यदुर्लभाः।
प्रसूतिं चक्रमे तस्मिंस्त्रैलोक्यप्रभवोऽपि यत्।। 53।।

अब आप लोग निडर होकर अपने-अपने विमानों पर चढ़कर आकाश में घूमिए और रावण के पुष्पक विमान को देखकर और उससे डरकर बादलों में छिपना छोड़ दीजिए।।46।। रावण ने स्वर्ग की जिन स्त्रियों को अपने यहाँ बन्दी किया है, उनके जूड़ों को नलकूबर के शाप के डर से उसने हाथ नहीं लगाया है। अब आप लोग ही उन बन्दी स्त्रियों के जूड़े अपने हाथों से खोलेंगे।।47।। जैसे सूखे के दिनों में धान के खेत पर कोई बादल जल बरसाकर निकल जाय, वैसे ही रावण के डर से सूखे हुए देवताओं पर अपने मधुर वचन बरसाकर विष्णु भगवान् भी अन्तर्धान हो गए।।48।। जैसे वायु के चलने पर वन के वृक्ष स्वयं उसके पीछे न जाकर अपने फूल उसके साथ भेज देते हैं, वैसे ही जब भगवान् विष्णु देवताओं का कार्य करने के लिये चले तब इन्द्र आदि देवताओं ने भी अपने-अपने अंश उनके साथ भेज दिए।।49।। इधर ज्यों ही राजा दशरथ का पुत्रेष्टि-यज्ञ समाप्त हुआ त्यों ही यज्ञ की अग्नि में से एक पुरुष प्रकट हुआ, जिसे देखकर यज्ञ करनेवाले सभी ऋषि बड़े आश्चर्य में पड़ गए।।50।। उस पुरुष के हाथ में खीर से भरा हुआ सोने का कटोरा था। उस खीर में सारे ब्रह्माण्ड को सँभालनेवाले विष्णु भगवान् प्रविष्ट हुए थे; इसलिये वह दिव्य पुरुष भी उस कटोरे को बड़ी कठिनाई से सँभाल पा रहा था।।51।। जैसे इन्द्र ने समुद्रों में से निकले हुए अमृत के कलश को थाम लिया था, वैसे ही राजा दशरथ ने भी उस दिव्य पुरुष के हाथ से वह खीर ले ली।।52।। उस दिव्य पुरुष ने राजा दशरथ के असाधारण गुणों की इतनी प्रशंसा की कि विष्णु भगवान् को भी उनके यहाँ जन्म लेने की इच्छा होने लगी।।53।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम्।
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम्।। 54।।
अर्चिता तस्य कौशल्या प्रिया केकयवंशजा।
अतः संभावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः।। 55।।
ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे।। 56।।
सा हि प्रणयवत्यासीत्सपत्न्योरुभयोरपि।
भ्रमरी वारणस्येव मदनिस्यन्दरेखयोः।। 57।।
ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै दध्रेदेवांशसंभवः।
सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मयः।। 58।।
सममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विषः।
अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानामिव संपदः।। 59।।
गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः।
जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः।। 60।।
हेमपक्षप्रभाजालं गगने च वितन्वता।
उह्यन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकृष्टपयोमुचा।। 61।।

जैसे सूर्य अपनी नई धूप पृथ्वी और आकाश दोनों में बाँट देता है, वैसे ही खीर के रूप में पाये हुए विष्णु के तेज को राजा ने कौशल्या और कैकेयी में बराबर बाँट दिया।।54।। कौशल्या उनकी बड़ी रानी थी और कैकेयी उनकी प्यारी रानी थी; इसलिये वे चाहते थे कि वे दोनों रानियाँ ही अपने-अपने भाग में से स्वयं कुछ भाग देकर सुमित्रा का सम्मान करें।।55।। सब कुछ जाननेवाले राजा दशरथ की उन दोनों रानियों ने अपनी-अपनी खीर का आधा-आधा भाग सुमित्रा को दे दिया।।56।। जैसे हाथी के दोनों कपोलों से निकलनेवाली मद की दोनों धाराओं से भौंरी बराबर प्रेम करती है वैसे ही सुमित्रा भी अपनी सौतों से बराबर प्रेम करती थीं।।57।। जैसे अमृत नाम की जल बरसानेवाली सूर्य की किरणें संसार के कल्याण के लिये जल लिए रहती हैं, वैसे ही उन तीनों रानियों ने लोक के कल्याण के लिये विष्णु के अंश से भरा गर्भ धारण किया।।58।। एक साथ गर्भ धारण करनेवाली रानियाँ गर्भ से पीली पड़ने के कारण अनाज की उन बालों के समान पीली लगती थीं, जिनमें दाने पड़ गए हों।।59।। उन्हें यह स्वप्न दिखाई देता था कि कमल, तलवार, गदा, शार्ङ्ग धनुष और चक्र लिए हुए कोई बौना-सा पुरुष बराबर हमारी रक्षा कर रहा है।।60।। और अपने सोने के पंखों से प्रकाश फैलता हुआ अपने वेग के कारण अपने साथ बादलों को भी खींचकर ले जाता हुआ गरुड़ हमें आकाश में उड़ाकर ले जा रहा है।।61।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभ्रत्या कौस्तुभन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम्।
पर्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पद्मव्यजनहस्तया।। 62।।
कृताभिषेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः।
ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपतस्थिरे।। 63।।
ताभ्यस्तथाविधान्स्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रीतो हि पार्थिवः।
मेने परार्ध्यमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः।। 64।।
विभक्तात्मा विभुस्तासामेकः कुक्षिष्वनेकधा।
उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव।। 65।।
अथाग्र्यमहिषी राज्ञः प्रसूतिसमये सती।
पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवौषधिः।। 66।।
राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः।
नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममङ्गलम्।। 67।।
रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन्।। 68।।
शय्यागतेन रामेण माता शातोदरी बभौ।
सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शरत्कृशा।। 69।।

वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि पहने हुए लक्ष्मी भी हाथ में कमल का पंखा लेकर हमारी सेवा कर रही है।।62।। इतना ही नहीं, आकाशगङ्गा में स्नान करके सप्तर्षि भी वेद-पाठ करते हुए हमारी उपासना कर रहे हैं।।63।। जब रानियों ने राजा को अपने ये स्वप्न सुनाए, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने समझ लिया कि अब संसार में मुझसे बढ़कर कोई नहीं है; क्योंकि मैं संसार के गुरु विष्णुजी का भी पिता बन रहा हूँ।।64।। यद्यपि विष्णु का एक ही रूप है; पर जैसे निर्मल जल में चन्द्रमा के बहुत से प्रतिबिम्ब पड़ जाते हैं; वैसे ही वे भी तीनों रानियों के गर्भों में अलग-अलग निवास कर रहे थे।।65।। जैसे पर्वत की बहुत-सी बूटियों में रात को अँधेरा दूर करनेवाला प्रकाश आ जाता है, वैसे ही राजा की पटरानी कौशल्या ने तमोगुण में रात को अँधेरा दूर करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया।।66।। उस बालक का मनोहर शरीर देखकर वशिष्ठजी ने उनका संसार में सबसे अधिक मङ्गलकारी नाम 'राम' रख दिया।।67।। रघुवंश को उजागर करनेवाले उस बालक का इतना तेज था कि सारे घर के सब दीपकों की ज्योति उसके आगे मन्द पड़ गई।।68।। प्रसव से दुबली माता कौशल्या, नन्हें से राम को लिए हुए पलंग पर लेटी हुई ऐसी सुन्दर जान पड़ती थीं, जैसे शरद् ऋतु में पतली धारवाली गङ्गाजी के तट पर किसी का चढ़ाया हुआ नीला कमल रखा हुआ हो।।69।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान्।
जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम्।। 70।।

सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ।
सम्यगाराधिता विद्या प्रवोधविनयाविव।। 71।।

निर्दोषमभवत्सर्वमाविष्कृतगुणं जगत्।
अन्वगादिव हि स्वर्गो गां गतं पुरुषोत्तमम्।। 72।।

तस्योदये चतुर्मूर्तेः पौलस्त्यचकितेश्वराः।।
विरजस्कैर्नभस्वद्भिर्दिश उच्छ्वसिता इव।। 73।।

कृशानुरपधूमत्वात्प्रसन्नत्वात्प्रभाकरः।
रक्षोविप्रकृतावास्तामपविद्धशुचाविव।। 74।।

दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणंराक्षसश्रियः।
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः।। 75।।

पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणां तस्य पुत्रिणः।
आरम्भं प्रथमं चक्रुर्देवदुन्दुभयो दिवि।। 76।।

संतानकमयी वृष्टिर्भवने चास्य पेतुषी।
सन्मङ्गलोपचाराणां सैवादिरचनाभवत्।। 77।।

कैकेयी ने भरत को जन्म दिया। उन्हें पाकर वे ऐसी शोभा दे रही थीं जैसे संपत्ति के साथ आदर शोभा देता है।।70।। जैसे अभ्यास से पाई हुई विद्या से ज्ञान और विनय दोनों मिल जाते हैं वैसे ही सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक दो जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए।।71।। उस समय संसार से सारे दोष भाग गए और चारों ओर गुण ही गुण फैल गए, मानो विष्णु भगवान् के साथ-साथ स्वर्ग भी पृथ्वी पर उतर आया हो।।72।। दशों दिशाओं में बिना धूल की जो स्वच्छ वायु चलने लगी, वह ऐसी लगती थी मानो रावण से डरे हुए कुबेर आदि दिग्पालों ने पृथ्वी पर चार रूपों में आये हुए भगवान् को पाकर सन्तोष की साँस ली हो।।73।। रावण से पीड़ा पाये हुए अग्निदेव का धुआँ निकल गया और सूर्य भी निर्मल हो गए, मानो दोनों का शोक दूर हो गया हो।।74।। उसी समय रावण के मुकुट के कुछ मणि पृथ्वी पर गिर पड़े, मानो राक्षसों की लक्ष्मी के आँसू ही ढुलक पड़े हों।।75।। पुत्रवान् राजा दशरथ के यहाँ पुत्र-जन्म के समय, नगाड़े आदि बाजे पीछे बजे, पहले देवताओं ने ही स्वर्ग में बधाई की दुन्दुभी बजाई।।76।। और उनके राजभवन पर आकाश से कल्पवृक्ष के फूलों की जो वर्षा हुई उसी से उनके माङ्गलिक संस्कारों का आरंभ हुआ।।77।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमाराः कृतसंस्कारास्ते धात्रीस्तन्यपायिनः।
आनन्देनाग्रजेनेव समं ववृधिरे पितुः।।78।।

स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्मणा।
मुमूर्च्छ सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम्।।79।।

परस्पराविरुद्धास्ते तद्रघोरनघं कुलम्।
अलमुद्द्योतयामासुर्देवारण्यमिवर्तवः।।80।।

समानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः।।81।।

तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं बिभिदे न कदाचन।
यथा वायुविभावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः।।82।।

ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च।
मनो जहुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव।।83।।

स चतुर्धा बभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवीपतेः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गभाक्।।84।।

गुणैराराधयामासुस्ते गुरुं गुरुवत्सलाः।
तमेव चतुरन्तेशं रत्नैरिव महार्णवाः।।85।।

जातकर्म और संस्कार हो चुकने पर धाय का दूध पी-पीकर जैसे-जैसे राजकुमार बढ़ने लगे वैसे-वैसे राजा दशरथ का आनन्द भी बढ़ने लगा, मानो यह आनन्द उन चारों राजकुमारों का जेठा भाई हो।।78।। जैसे घी आदि पड़ने से हवन की अग्नि का स्वाभाविक तेज बढ़ जाता है, वैसे ही शिक्षा पाने से उन चारों राजुकमारों की स्वाभाविक नम्रता और भी अधिक बढ़ गई।।79।। जैसे ऋतुएँ नन्दनवन को चमका देती हैं, वैसे ही परस्पर प्रेम से उन चारों कुमारों ने पवित्र रघुकुल को उजागर कर दिया।।80।। यद्यपि चारों में परस्पर बहुत प्रेम था, फिर भी विशेष प्रेम के कारण जैसे राम और लक्ष्मण की एक जोड़ी हो गई, वैसे ही भरत और शत्रुघ्न की भी जोड़ी हो गई।।81।। जैसे वायु और अग्नि का तथा चन्द्रमा और समुद्र का जोड़ा कभी अलग नहीं होता, वैसे ही राम और लक्ष्मण का तथा भरत और शत्रुघ्न का साथ कभी नहीं छूटा।।82।। सब प्रजा के स्वामी राजकुमारों ने अपने तेज और नम्र व्यवहार से अपनी प्रजा का मन उसी प्रकार हर लिया, जैसे गर्मी के अंत में काले बादल लोगों के मन को आकृष्ट कर लेते हैं।।83।। राजा की चारों संतानें ऐसी शोभा दे रही थीं, मानो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ने अवतार ले लिया हो।।84।। चारों पितृभक्त राजकुमारों ने राजा दशरथ को अपने गुणों से उसी प्रकार प्रसन्न कर लिया, जैसे चारों समुद्रों ने रत्न देकर चारों दिशाओं के स्वामी राजा दशरथ को प्रसन्न कर लिया था।।85।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारैर्नय इव पणबन्धव्यक्तयोगैरुपायैः।
हरिरिव युगदीर्घैर्दोर्भिरंशैस्तदीयैः पतिरवनिपतीनां तैश्चकाशे चतुर्भिः।। 86।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रामावतारो नाम दशमः सर्गः।।

जैसे असुरों की तलवारों की धार कुंठित करनेवाले अपने चार दाँतों से ऐरावत शोभा देता है, जैसे साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायों से राजनीति शोभा देती है और जैसे रथ के जुए के समान अपनी लम्बी-लम्बी चार भुजाओं से विष्णु भगवान् शोभा देते हैं, वैसे ही राजा दशरथ भी अपने चार सुयोग्य पुत्रों से सुशोभित हुए।।86।।

महाकवि कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'रामावतार' नाम का दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। एकादशः सर्गः ।।

कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।।1।।
कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक्तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम्।
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता।।2।।
यावदादिशति पार्थिवस्तयोर्निर्गमाय पुरमार्गसंस्क्रियाम्।
तावदाशु विदधे मरुत्सखैः सा सपुष्पजलवर्षिभिर्घनैः।।3।।
तौ निदेशकरणोद्यतौ पितुर्धन्विनौ चरणयोर्निपेततुः।
भूपतेरपिं तयोः प्रवत्स्यतोर्नम्रयोरुपरि वाष्पबिन्दवः।।4।।
तौ पितुर्नयनजेन वारिणा किंचिदुक्षितशिखण्डकावुभौ।
धन्विनौ तमृषिमन्वगच्छतां पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ।।5।।
लक्ष्मणानुचरमेव राघवं नेतुमैच्छदृषिरित्यसौ नृपः।।
आशिषं प्रयुयुजे न वाहिनीं सा हि रक्षणविधौ तयोः क्षमा।।6।।
मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः।
रेजतुर्गतिवशात्प्रवर्तिनौ भास्करस्य मधुमाधवाविव।।7।।

ग्यारहवाँ सर्ग

एक दिन विश्वामित्रजी राजा दशरथ के पास आए और उन्होंने कहा कि मेरे यज्ञ की रक्षा के लिये काकपक्ष-धारी राम को हमारे साथ भेज दीजिए। ठीक ही है, जो तेजस्वी होते हैं, उनके लिये यह नहीं विचार किया जाता है कि वे छोटे हैं या बड़े।।1।। यद्यपि दशरथजी ने राम और लक्ष्मण को बड़ी तपस्या से पाया था; पर वे विद्वानों के इतने भक्त थे कि उन्होंने तत्काल राम-लक्ष्मणों को मुनि के साथ भेज दिया; क्योंकि रघुकुल की सदा से यह रीति रही है कि यदि कोई प्राण भी माँगे तो उसे विमुख नहीं लौटाते।।2।। अभी राजा दशरथ उनकी विदाई के लिये सड़क सजाने की आज्ञा अपने सेवकों को दे ही रहे थे कि इतने में वायु ने फूल और बादलों ने जल लाकर सड़कों पर बरसा ही दिया।।3।। पिता की आज्ञा पालन करने को प्रस्तुत होकर दोनों राजकुमार अपने पिता के चरणों में प्रणाम करने को झुके ही थे कि दशरथजी की आँखों से उन दोनों पर आँसू टपक पड़े।।4।। और उन आँसुओं से दोनों राजकुमारों की चोटियाँ भीग गईं। जिस समय धनुष लेकर दोनों राजकुमार विश्वामित्रजी के पीछे-पीछे चले जा रहे थे, उस समय उन्हें देखते हुए पुरवासियों की आँखें ऐसी जान पड़ती थीं, मानो नेत्रों की बंदनवारें बाँध दी गई हों।।5।। विश्वामित्रजी केवल राम और लक्ष्मण को ही ले जाना चाहते थे। अतः राजा ने उनकी सहायता के लिये अपना आशीर्वाद ही दिया, सेना नहीं; क्योंकि उनका आशीर्वाद ही उनकी रक्षा के लिए पर्याप्त था।।6।। माताओं के चरण छूकर दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं शैशवाच्चपलमत्यशोभत।
तोयदागम इवोद्ध्यभिद्ययोर्नामधेयसदृशं विचेष्टितम्।।8।।
तौ बलातिबलयोः प्रभावतो विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयोः।
मम्लतुर्न मणिकुट्टिमोचितौ मातृपार्श्वपरिवर्तिनाविव।।9।।
पूर्ववृत्तकथितैः पुराविदः सानुजः पितृसखस्य राघवः।
उह्यमान इव वाहनोचितः पादचारमपि न व्यभावयत्।।10।।
तौ सरांसि रसवद्भिरम्बुभिः कूजितैः श्रुतिसुखैः पतत्त्रिणः।
वायवः सुरभिपुष्परेणुभिश्छायया च जलदाः सिषेविरे।।11।।
नाम्भसां कमलशोभिनां तथा शाखिनां च न परिश्रमच्छिदाम्।
दर्शनेन लघुना यथा तयोः प्रीतिमापुरुभयोस्तपस्विनः।।12।।
स्थाणुदग्धवपुषस्तपोवनं प्राप्य दाशरथिरात्तकार्मुकः।
विग्रहेण मदनस्य चारुणा सोऽभवत्प्रतिनिधिर्न कर्मणा।।13।।
तौ सुकेतुसुतया खिलीकृते कौशिकाद्विदितशापया पथि।
निन्यतुः स्थलनिवेशिताटनी लीलयैव धनुषी अधिज्यताम्।।14।।

राजकुमार उन तेजस्वी मुनि के पीछे चलते हुए ऐसे शोभित हो रहे थे मानो सूर्य के पीछे-पीछे चैत्र और वैशाख मास चले जा रहे हों।।7।। बचपन के कारण लहरों के समान चंचल बाँहोंवाले राजकुमारों का चुलबुलापन ऐसा सुन्दर लग रहा था, मानो वर्षा-ऋतु में दोनों उद्ध्य और भिद्य नदियाँ लहराती एवं तटों को ढाती हुई चली जा रही हों।।8।। [आज तक उन बालकों ने घर से बाहर तो पैर रखा ही न था, इसलिये] मार्ग में ही विश्वामित्र ने उन्हें बला और अतिबला नामक की दोनों विद्याएँ सिखा दीं, जिससे ऊबड़-खाबड़ वन के मार्ग में चलते हुए उन्हें थकान नहीं हो रही थी और वैसा ही सुख हो रहा था, जैसे वे मणियों से जड़े हुए अपने भवनों में अपनी माता के आसपास घूम रहे हों।।9।। जो राम और लक्ष्मण सदा दिव्य रथों पर चढ़कर चलते थे, उन्हें तनिक भी थकावट नहीं हुई; क्योंकि उनके पिता के मित्र विश्वामित्रजी उन्हें मार्ग में पुरानी कथाएँ सुनाते चले जा रहे थे।।10।। सरोवरों ने अपना मीठा जल पिलाकर, पक्षियों ने मधुर गीत सुनाकर, वायु ने सुगन्धित पराग फैलाकर और बादलों ने शीतल छाया देकर मार्ग में उन दोनों की बड़ी सेवा की।।11।। कमलों से भरे हुए सरोवरों तथा थकावट हरनेवाले वृक्षों की छाया को देखकर भी आश्रम के तपस्वी उतने प्रसन्न कभी नहीं हुए थे, जितने इन दोनों राजकुमारों को देखकर प्रसन्न हुए।।12।। जिस तपोवन में शिवजी ने कामदेव को भस्म किया था, वहाँ जब सुन्दर शरीरवाले राम धनुष उठाए हुए पहुँचे, तब जान पड़ा मानो वे वहाँ कामदेव की सुन्दरता के प्रतिनिधि बनकर आए हों, उसके कार्यों के नहीं।।13।। वहीं मार्ग में उन्हें वह सुकेतु की कन्या ताड़का राक्षसी मिली जिसने सारे मार्ग को उजाड़ दिया था और जिसके शाप की कथा महर्षि विश्वामित्र ने पहले ही राम को सुना दी थी। उसे देखते ही उन दोनों भाइयों ने अपने धनुषों को पृथ्वी पर टेककर डोरियाँ चढ़ा लीं।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यानिनादमथ गृह्णती तयोः प्रादुरास बहुलक्षपाछविः।
ताडका चलकपालकुण्डला कालिकेव निविडा बलाकिनी।।15।।
तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया।
अभ्यभावि भरताग्रजस्तया वात्ययेव पितृकाननोत्थया।।16।।
उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम्।
तां विलोक्य वनितावधे घृणां पत्त्रिणा सह मुमोच राघवः।।17।।
यच्चकार विवरं शिलाघने ताडकोरसि स रामसायकः।
अप्रविष्टविषयस्य रक्षसां द्वारतामगमदन्तकस्य तत्।।18।।
बाणभिन्नहृदया निपेतुषी सा स्वकाननभुवं न केवलाम्।
विष्टपत्रयपराजयस्थिरां रावणश्रियमपि व्यकम्पयत्।।18।।
राममन्थशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा।।20।।
नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुनेः प्रापदस्त्रमवदानतोषितात्।
ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात्सूर्यकान्त इव ताडकान्तकः।।21।।
वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरूपेयिवान्।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः।।22।।

उनके धनुष के डोरी की टंकार सुनते ही, कानों में लटकी हुई मनुष्य की खोपड़ियों का कुण्डल हिलाती हुई, अमावस्या की रात्रि के समान काली-कलूटी ताड़का उनके आगे आकर इस प्रकार खड़ी हो गई, मानो बगुलों की पाँतों से भरी काली बदली हो।।15।। बड़े वेग से मार्ग के वृक्षों को ढाती हुई, प्रेतों के वस्त्र पहने हुई और भयंकर गरजनेवाली तथा श्मशान से उठे हुए बवंडर के समान आकृति वाली ताड़का, राम के ऊपर टूट पड़ी।।16।। वृक्ष की शाखा के समान अपनी बाँह उठाती हुई और कमर में आँतों की करधन पहने हुई उस ताड़का को देखकर राम ने स्त्री को मारने की घृणा और बाण दोनों एक साथ छोड़े।।17।। राम के उस बाण ने पत्थर की चट्टान के समान कठोर ताड़का की छाती में जो छेद किया, वह मानो राक्षसों के उस देश में यमराज के प्रवेश करने के लिये द्वार खोल दिया हो, जहाँ अभी तक वह जा नहीं पाया था।।18।। राम के बाण से ताड़का की छाती फट गई और वह नीचे गिरी, तब उसके गिरने से वह जङ्गल ही नहीं वरन् तीनों लोकों को जीतने से पाई हुई रावण की राजलक्ष्मी भी काँप उठी।।19।। राम के बाण से विंधकर दुर्गन्ध भरे रुधिर से लिपटी हुई ताड़का इस प्रकार सीधे यमलोक चली गई मानो काम के बाण से घायल हुई कोई अभिसारिका चन्द्रमा का लेप करके अपने प्रिय के घर जा रही हो।।20।। जैसे सूर्य, लकड़ी जलाने का तेज सूर्यकान्त मणि को दे देता है, वैसे ही ताड़का के मरने से महर्षि विश्वामित्र इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने राम को राक्षसों का संहार करनेवाला दिव्य अस्त्र मंत्र-सहित दे दिया।।21।। वहाँ से रामचन्द्रजी वामन के उस पवित्र आश्रम में गए जिसके विषय में विश्वामित्रजी ने उन्हें सब बता दिया था। वहाँ अपने पूर्व जन्म के वामनावतार की लीलाओं का ठीक-ठीक स्मरण न होने पर भी वे कुछ उत्कंठित से हो गए।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम्।
बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम्।। 23।।

तत्र दीक्षितमृषिं ररक्षतुर्विघ्नतो दशरथात्मजौ शरैः।
लोकमन्धतमसात्क्रमोदितौ रश्मिभिः शशिदिवाकराविव।। 24।।

वीक्ष्य वेदिमथ रक्तबिन्दुभिर्बन्धुजीवपृथुभिः प्रदूषिताम्।
संभ्रमोऽभवदपोढकर्मणामृत्विजां च्युतविकङ्कतस्रुचाम्।। 25।।

उन्मुखः सपदि लक्ष्मणाग्रजो बाणमाश्रयमुखात्समुद्धरन्।
रक्षसां बलमपश्यदम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम्।। 26।।

तत्र यावधिपती मखद्विषां तौ शरव्यमकरोत्स नेतरान्।
किं महोरगविसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते।। 27।।

सोऽस्त्रमुग्रजवमस्त्रकोविदः संदधे धनुषि वायुदैवतम्।
तेन शैलगुरुमप्यपातयत्पांडुपत्रमित्र ताडकासुतम्।। 28।।

सः सुबाहुरिति राक्षसोऽपरस्तत्र तत्र विससर्प मायया।
तं क्षुरप्रशकलीकृतं कृती पत्त्रिणां व्यभजदाश्रमाद्बहिः।। 29।।

वहाँ से मुनि अपने उस आश्रम पर पहुँचे, जहाँ शिष्यों ने पूजा की सब सामग्री इकट्ठी कर रखी थी, जहाँ वृक्ष भी अपने पत्तों की अञ्जलि बाँधे खड़े थे और जहाँ मृग भी बड़ी उत्सुकता से इन लोगों को देख रहे थे।।23।। जैसे सूर्य और चन्द्रमा बारी-बारी से अपनी किरणों से पृथ्वी का अँधेरा दूर करते हैं, वैसे ही आश्रम में बारी-बारी से राम और लक्ष्मण यज्ञ करनेवाले ऋषियों के विघ्न दूर कर रहे थे।।24।। इतने में ही यज्ञ की वेदी पर बन्धुजीव (दुपहरिया) के फूल के समान बड़ी-बड़ी रक्त की बूँदें देखकर ऋषियों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने यज्ञ करना बन्द करके अपने-अपने खैर के स्रुवे रख दिए।।25।। उसी समय राम ने अपने तूणीर से बाण निकाले और ऊपर मुँह करके आकाश की ओर देखा कि गिद्ध के पंखों के समान हिलती हुई ध्वजाओं वाली राक्षसों की सेना खड़ी है।।26।। राम ने और सबको छोड़कर उन्हीं दो राक्षसों को बाण मारे, जो उस सेना के सेनानायक थे और जो यज्ञ से घृणा करते थे; क्योंकि भला बड़े-बड़े सर्पों पर आक्रमण करनेवाला गरुड़ क्या कभी जल के छोटे-छोटे साँपों पर आक्रमण किया करता है।।27।। दिव्य अस्त्र चलाने में राम का हाथ ऐसा सधा हुआ था कि उन्होंने झट अपने धनुष पर वायव्य-अस्त्र चढ़ाया और पर्वत से भी बड़े ताड़का के पुत्र मारीच को उस बाण से उड़ाकर वैसे ही दूर फेंक दिया, जैसे कोई सूखा पत्ता उड़ा दिया हो।।28।। सुबाहु नाम का जो दूसरा राक्षस अपनी माया से इधर-उधर घूम रहा था, उसे भी राम ने अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े करके आश्रम के बाहर मार गिराया, जिसे पक्षियों ने क्षण भर में बाँट खाया।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयोः सांयुगीनमभिनन्द्य विक्रमम्।
ऋत्विजः कुलपतेर्यथाक्रमं वाग्यतस्य निरवर्तयन्क्रियाः।। 30।।

तौ प्रणामचलकाकपक्षकौ भ्रातराववभृथाप्लुतो मुनिः।
आशिषामनुपदं समस्पृशद्दर्भपाटिततलेन पाणिना।। 31।।

त न्यमन्त्रयत संभृतक्रतुर्मैथिलः स मिथिलां व्रजन्वशी।
राघवावपि निनाय बिभ्रतौ तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलम्।। 32।।

तैः शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः सायमाश्रमतरुष्वगृह्यत।
येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वासवक्षणकलत्रतां ययौ।। 33।।

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः।। 34।।

राघवान्वितमुपस्थितं मुनिं तं निशम्य जनको जनेश्वरः।
अर्थकामसहितं सपर्यया देहबद्धमिव धर्ममभ्यगात्।। 35।।

तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू।
मन्यते स्म पिबतां विलोचनैः पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनः।। 36।।

जब यज्ञ करनेवाले ऋषियों ने देखा कि थोड़े ही समय में राम ने सब विघ्न दूर कर दिए तो उन्होंने राम और लक्ष्मण के पराक्रम की बड़ी प्रशंसा की और मौन धारण किए विश्वामित्रजी ने विधि के साथ अपना यज्ञ पूरा कर लिया।।30।। यज्ञ पूर्ण होने पर, स्नान करके महर्षि विश्वामित्र ने उन राम और लक्ष्मण को बड़ा आर्शीवाद दिया, जिनकी लटें प्रणाम करते समय झूल रही थीं। ऋषि ने कुशा से छिली हुई अपनी हथेली उनके सिर पर रखकर उन पर अपना बड़ा स्नेह दिखाया।।31।। उन्हीं दिनों राजा जनक ने धनुष-यज्ञ ठान रखा था, जिसमें उन्होंने मुनियों को भी निमंत्रण दिया था। धनुषयज्ञ की बात सुनकर दोनों राजकुमारों को बड़ा कुतूहल हुआ, इसलिये विश्वामित्र जी उन दोनों को साथ लेकर मिथिलापुरी की ओर चल दिये।।32। वे कुछ दूर चले होंगे कि शाम हो गई और वे उस आश्रम के सुन्दर वृक्षों के तले टिक गए, जहाँ महातपस्वी गौतम की स्त्री अहिल्या थोड़ी देर के लिये इन्द्र की पत्नी बन गई थीं।।33।। राम के चरणों की धूल सब पापों को हरनेवाली थी इसलिये उसके छूते ही पति के शाप से पत्थर बनी हुई अहल्या को फिर इतने दिनों के बाद वही पहलेवाला सुन्दर शरीर मिल गया।।34।। जब राजा जनकजी को यह समाचार मिला कि विश्वामित्रजी के साथ राम और लक्ष्मण भी आये हुए है, तब वे पूजा की सामग्री लेकर उनकी अगवानी के लिये मिलने चले। जनकजी को वे ऐसे लगे मानो धर्म के साथ अर्थ और काम ही चले आए हों।।35। वे दोनों राजकुमार ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो दो पुनर्वसु नक्षत्र ही पृथ्वी पर उतर आये हों। जनकपुर के निवासी ऐसे मगन आँखों से उनका रूप पी रहे थे कि पलकों का गिरना भी उन्हें बड़ा दुःख दे रहा था।। 36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूपवत्यवसिते क्रियाविधौ कालवित्कुशिकवंशवर्द्धनः।
राममिष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयांबभूव सः।। 37।।
तस्य वीक्ष्य ललितं वपुः शिशोः पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः
स्वं विचिन्त्य च धनुर्दुरानमं पीडितो दुहितृशुल्कसंस्थया।।। 38।।
अंब्रवीच्च भगवन्मतङ्गजैर्यद्बृहद्भिरपि कर्म दुष्करम्।
तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे मोघवृत्ति कलभस्य चेष्टितम्।। 39।।
हेपिता हि बहवो नरेश्वरास्तेन तात धनुषा धनुर्भृतः।
ज्यानिघातकठिनत्वचो भुजान्स्वान्विधूय धिगिति प्रतस्थिरे।। 40।।
प्रत्युवाच तमृषिर्निशम्यतां सारतोऽयमथवा गिरा कृतम्।
चाप एव भवतो भविष्यति व्यक्तशक्तिरशनिर्गिराविव।। 41।।
एवमाप्तवचनात्स पौरुषं काकपक्षकधरेऽपि राघवे।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि।। 42।।
व्यादिदेश गणशोऽथ पार्श्वगान्कार्मुकाभिहरणाय मैथिलः।
तैजस्य धनुषः प्रवृत्तये तोयदानिव सहस्रलोचनः।। 43।।
तत्प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणं वीक्ष्य दाशरथिराददे धनुः।
विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं येन बाणमसृजद्वृषध्वजः।। 44।।

जब धनुष की सब क्रियाएँ समाप्त हो गईं, तब ठीक अवसर समझकर विश्वामित्रजी ने जनकजी से कहा कि राम भी वह धनुष देखना चाहते हैं। ।37।। जब जनकजी ने एक ओर प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए बालक राम के कोमल शरीर को देखा और दूसरी ओर अपने उस कठोर धनुष पर दृष्टि डाली, जिसे बड़े-बड़े वीर भी नहीं झुका सके, तब उन्हें इस बात का बड़ा पछतावा हुआ कि मैंने अपनी कन्या के विवाह के लिये यह धनुष तोड़ने की शर्त क्यों लगा दी। ।38।। वे विश्वामित्रजी जी से बोले—'हे भगवन्! जो काम बड़े-बड़े मतवाले हाथी नहीं कर सकते, उसे हाथी के बच्चे से कराना व्यर्थ का खेलवाड़ है। इसलिए मेरा मन तो नहीं चाहता कि इनसे धनुष उठवाया जाये। ।39।। इस धनुषके उठाने में बड़े-बड़े धनुषधारी राजा अपना-सा मुँह लेकर रह गए और अपनी उन भुजाओं को धिक्कारते हुए चले गये, जिन पर धनुष की डोरी की फटकार से बड़े-बड़े घट्टे पड़े हुए थे। ।40।। यह सुनकर मुनि बोले—'राजन्! इनकी शक्ति मैं आपको बतलाता हूँ। पर कहने से होता क्या है? जैसे वज्र की शक्ति की परीक्षा पहाड़ पर होती है, वैसे ही इनकी शक्ति की परीक्षा धनुष पर ही हो जायेगी, ।41।। मुनि के कहने से जनकजी को कुछ-कुछ विश्वास होने लगा कि जैसे बीरबहूटी के बराबर नन्हीं-सी चिनगारी में भी जलाने की शक्ति छिपी रहती है, वैसे ही काकपक्षधारी राम में भी धनुष उठाने की शक्ति अवश्य होगी। ।422।। इसलिए जनकजी ने अपने सेवकों को उसी प्रकार धनुष लाने की आज्ञा दी जैसे इन्द्र भगवान् बादलों को अपना धनुष प्रकट करने की आज्ञा दे देते हैं। ।43।। धनुष जब लाया गया; तब वह ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई बड़ा भारी अजगर सोया हो। राम ने देखते-देखते शङ्करजी के उस धनुष को उठा लिया, जिसे हाथ में लेकर शङ्करजी ने मृग के रूप में दौड़नेवाले यज्ञदेवता के ऊपर बाण छोड़े थे। ।44।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आततज्यमकरोत्स संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रमीक्षितः।
शैलसारमपि नातियत्नतः पुष्पचापमिव पेशलं स्मरः।।45।।

भज्यमानमतिमात्रकर्षणात्तेन वज्रपरुषस्वनं धनुः।
भार्गवाय दृढमन्यवे पुनः क्षत्त्रमुद्यतमिव न्यवेदयत्।।46।।

दृष्टसारमथ रुद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः।
राघवाय तनयामयोनिजां रूपिर्णी श्रियमिव न्यवेदयत्।।47।।

मैथिलः सपदि सत्यसङ्गरो राघवाय तनयामयोनिजाम्।
संनिधौ द्युतिमतस्तपोनिधेरग्निसाक्षिक इवातिसृष्टवान्।।48।।

प्राहिणोच्च महितं महाद्युतिः कोशलाधिपतये पुरोधसम्।
भृत्यभावि दुहितुः परिग्रहाद्दिश्यतां कुलमिदं निमेरिति।।49।।

अन्वियेष सदृर्शी स च स्नुषां प्राप चैनमनुकूलवाग्द्विजः।
सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम्।।50।।

तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः शुश्रुवान्वचनमग्रजन्मनः।
उच्चचाल बलभित्सखो वशी सैन्यरेणुमुषातार्कदीधितिः।।51।।

यह देखकर सब सभासदों को बड़ा आश्चर्य हुआ, जब राम ने उस पर्वत के समान भारी धनुष पर वैसी ही सरलता से डोरी चढ़ा दी, जैसे कामदेव अपने फूलों के धनुष पर डोरी चढ़ाता है।।45।। राम ने धनुष को इतना तान लिया कि वह बज्र के समान भयङ्कर शब्द करके इस प्रकार कड़कड़ाता हुआ टूट गया, मानो उसने महाक्रोधी परशुराम को सूचना दे दी हो कि क्षत्रियों ने अब फिर सिर उठाना प्रारम्भ कर दिया है।46।। राजा जनक ने जब देखा कि धनुष तोड़कर राम ने अपना पराक्रम दिखा दिया है, तब उन्होंने राम का बड़ा आदर किया और पृथ्वी से उत्पन्न हुई अपनी कन्या जानकी उसी प्रकार राम के हाथ सौंप दी मानो साक्षात् अपनी लक्ष्मी ही उन्हें दे डाली हो।।47।। सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले जनक ने विश्वामित्रजी को ही विवाह का साक्षी अग्नि समझ लिया और तत्काल उन्हीं के आगे राम को सीता समर्पित कर दी।।48।। तब महातेजस्वी राजा जनक ने अपने पूज्य पुरोहित से दशरथजी के पास कहला भेजा कि मेरी पुत्री सीता को स्वीकार करके इस निमि-कुल पर वैसी ही कृपा कीजिए, जैसी आप अपने सेवकों पर करते हैं।।49।। उधर दशरथ यह विचार कर ही रहे थे कि योग्य पतोहू घर में आये कि इतने में जनकजी के पुरोहित भी राजा दशरथजी की इच्छा पूरी होने का समाचार लेकर आ ही पहुँचे।। ठीक भी है, पुण्यवानों की अभिलाषा कल्पवृक्ष के समान तत्काल फल देनेवाली होती भी हैं।।50।। इन्द्र के मित्र, जितेन्द्रिय दशरथ ने पुरोहितजी का बड़ा सत्कार किया। उनकी बातें सुनकर वे इतनी सेना लेकर चले कि उससे उठी हुई धूल से सूर्य भी ढक गया।।51।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आससाद मिथिलां स वेष्टयन्पीडितोपवनपादपां बलैः।
प्रीतिरोधमसहिष्ट सा पुरी स्त्रीव कान्तपरिभोगमायतम्।। 52।।
तौ समेत्य समये स्थितावुभौ भूपती वरुणवासवोपमौ।
कन्यकातनयकौतुकक्रियां स्वप्रभावसदृशीं वितेनतुः।। 53।।
पार्थिवीमुदवहद्रघूद्वहो लक्ष्मणस्तदनुजामयोर्मिलाम्।
यौ तयोरवरजौ वरोजसौ तौ कुशध्वजसुते सुमध्यमे।। 54।।
ते चतुर्थसहितास्त्रयो बभुः सूनवो नववधूपरिग्रहाः।
सामदानविधिभेदनिग्रहाः सिद्धिमन्त इव तस्य भूपतेः।। 55।।
ता नराधिपसुता नृपात्मजैस्ते च ताभिरगमन्कृतार्थताम्।
सोऽभवद्वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसन्निभः।। 56।।
एवमात्तरतिरात्मसंभवाँस्तान्निवेश्य चतुरोऽपि तत्र सः।
अध्वसु त्रिषु विसृष्टमैथिलः स्वां पुरीं दशरथो न्यवर्तत।। 57।।
तस्य जातु मरुतः प्रतीपगा वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः।
चिक्लिशुर्भृशतया वरूथिनीमुत्तटा इव नदीरयाः स्थलीम्।। 58।।
लक्ष्यते स्म तदनन्तरं रविर्बद्धभीमपरिवेषमण्डलः।
वैनतेयशमितस्य भोगिनो भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः।। 59।।

वे इस ठाठ-बाट से मिथिला पहुँचे मानो उसे घेरते हुए आये हों। बाहर मिथिला के उपवन को तो उनकी सेना ने रौंद ही डाला। पर इस प्रेम के घेरे को उस नगरी ने उसी प्रकार सहन किया जैसे कोई स्त्री अपने प्रियतम के कठोर संभोग को सहन करती है।52।। वरुण और इन्द्र के समान उन दोनों प्रतापी राजाओं ने मिलकर शास्त्र की विधि से अपने ऐश्वर्य के अनुकूल अपने पुत्रों और कन्याओं का विवाह कर दिया।।53।। राम का सीता से और लक्ष्मण का सीताजी की छोटी बहन उर्मिला से विवाह हुआ। भरत और शत्रुघ्न का विवाह जनकजी के छोटे भाई कुशध्वज की माण्डवी और श्रुतिकीर्ति नाम की कन्याओं से हुआ।।54।। वे चारों भाई नई बहुओं के साथ ऐसे सुशोभित हुए, मानो राजा दशरथ के साम, दाम, दण्ड और भेद, इन चारों उपायों को सिद्धियाँ मिल गई हों।।55।। उन चारों राजकुमारों को पाकर राजकन्याएँ और राजकन्याओं को पाकर राजकुमार कृतकृत्य हो गए। वह वर और बधुओं का मिलन ऐसा हुआ जैसे शब्द के मूल रूपों में प्रत्यय जुड़ गए हों।।56।। इस प्रकार दशरथ ने चारों पुत्रों का विवाह करके तीन पड़ाव पहुँचकर वहाँ से जनकजी को लौटा दिया और स्वयं बड़े प्रसन्न मन से अयोध्या की ओर बढ़े।।57।। जैसे बढ़ी हुई नदी की धारा आस-पास की भूमि को उजाड़ देती है, वैसे ही एक दिन मार्ग में सेना के ध्वजारूपी वृक्षों को झकझोरने वाले वायु ने सारी सेना को व्याकुल कर दिया।।58।। उससे सूर्य के चारों ओर एक बड़ा भारी मण्डल बन गया और वह ऐसा लगने लगा जैसे गरुड से मारा हुआ कोई साँप अपने सिर से गिरी हुई मणि के चारों ओर कुण्डली मारे पड़ा हुआ हो।।59।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्येनपक्षपरिधूसरालकाः सांध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः।
अङ्गना इव रजस्वला दिशो नो बभूवुरवलोकनक्षमाः।। 60।।
भास्करश्च दिशमध्युवास यां तां श्रिताः प्रतिभयं ववासिरे।
क्षत्त्रशोणितपितृक्रियोचितं चोदयन्त्य इव भार्गवं शिवाः।। 61।।
तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य शान्तिमधिकृत्य कृत्यवित्।
अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वन्तमित्यलघयत्स तद्व्यथाम्।। 62।।
तेजसः सपदि राशिरुत्थितः प्रादुरास किल वाहिनीमुखे।
यः प्रमृज्य नयनानि सैनिकैर्लक्षणीयपुरुषाकृतिश्चिरात्।। 63।।
पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत्।
सः ससोम इव घर्मदीधितिः स द्विजिह्व इव चन्दनद्रुमः।। 64।।
येन रोषपरुषात्मनः पितुः शासने स्थितिभिदोऽपि तस्थुषा।
वेपमानजननीशिरश्छिदा प्रागजीयत घृणा ततो मही।। 65।।
अक्षबीजवलयेन निर्बभौ दक्षिणश्रवणसंस्थितेन यः।
क्षत्त्रियान्तकरणैकविंशतेर्व्याजपूर्वगणनामिवोद्वहन्।। 66।।

जैसे रूखे, मैले बालोंवाली तथा रक्त से लाल कपड़ोंवाली रजस्वला स्त्री देखने में अच्छी नहीं लगती उसी प्रकार उस समय चारों ओर की वे दिशाएँ भी आँखों को अच्छी नहीं लग रही थीं, जिनमें मटमैले बाजों के पंख इधर-उधर उड़ रहे थे और सन्ध्या के लाल बादल छाए हुए थे।।60।। जिधर सूर्य था उधर की सियारिनियाँ भयानक रूप से रोने लगीं, मानो क्षत्रियों के रक्त से अपने पिता का तर्पण करनेवाले परशुराम को वे पुकार-पुकारकर बुला रही हों।।61।। विरोधी पवन के चलने आदि अशकुन होते देखकर उसकी शांति के लिये दशरथ ने अपने गुरु से पूछा कि अब क्या करना चाहिए? इस पर गुरुजी ने कहा—चिन्ता की कोई बात नहीं है। इसका फल अच्छा ही होगा। यह सुनकर दशरथजी के मन में कुछ ढाढस बँधा।।62।। इसी बीच अचानक एक ऐसा प्रकाश-पुंज सेना के आगे उठता दिखाई दिया, जिसे देखकर सब सैनिकों की आँखें चौंधिया गईं। आँखें मलकर देखने पर वह प्रकाश का पुञ्ज साक्षात् पुरुष के रूप में दिखाई देने लगा।।63।। उस तेजस्वी पुरुष के शरीर पर ब्राह्मण पिता के अंश का सूचक यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था और कन्धे पर क्षत्रिय माता का अंश सूचित करनेवाला धनुष लटक रहा था। इस वेश में वे ऐसे जान पड़ते थे जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा हो या चन्दन के पेड़ से साँप लिपटे हों।।64। उन्होंने जिस समय क्रोध से कठोर हृदयवाले और उचित-अनुचित का विचार छोड़ देनेवाले अपने पिता की आज्ञा मानकर अपनी काँपती हुई माता का सिर काट लिया था उस समय उन्होंने पहले तो घृणा को जीत लिया और फिर पृथ्वी को जीत लिया था।।65।। उनके दाएँ कान पर इक्कीस दाने की रुद्राक्ष की माला लटक रही थी मानो वह इक्कीस बार क्षत्रियों के नाश करने की गिनती करने के लिये ही उन्होंने पहन रखी हो।।66।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं पितुर्वधभवेन मन्युना राजवंशनिधनाय दीक्षितम्।
बालसूनुरवलोक्य भार्गवं स्वां दशां च विषसाद पार्थिवः।। 67।।
नाम राम इति तुल्यमात्मजे वर्तमानमहिते च दारुणे।
हृद्यमस्य भयदायि चाभवद्रत्नजातमिव हारसर्पयोः।। 68।।
अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपं सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यतः।
क्षत्त्रकोपदहनार्चिषं ततः संदधे दृशमुदग्रतारकाम्।। 69।।
तेन कार्मुकनिषक्तमुष्टिना राघवो विगतभीः पुरोगतः।
अङ्गुलीविवरचारिणं शरं कुर्वता निजगदे युयुत्सुना।। 70।।
क्षत्त्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुशः शमं गतः।
सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात्।। 71।।
मैथिलस्य धनुरन्यपार्थिवैस्त्वं किलानमितपूर्वमक्षणोः।
तन्निशम्य भवता समर्थये वीर्यशृङ्गमिव भग्नमात्मनः।।72।।
अन्यदा जगति राम इत्ययं शब्द उच्चरित एव मामगात्।
व्रीडमावहति मे स संप्रति व्यस्तवृत्तिरुदयोन्मुखे त्वयि।। 73।।
बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ।
धेनुवत्सहरणाच्च हैहयस्त्वं च कीर्त्तिमपहर्त्तुमुद्यतः।। 74।।

जब दशरथजी ने उन परशुराम को देखा, जिन्होंने अपने पिता के मारे जाने पर क्रोध से क्षत्रियों का नाश करने की प्रतिज्ञा कर ली थी, तब दशरथजी को अपनी दशा देखकर बड़ी चिन्ता हुई; क्योंकि उनके पुत्र अभी बच्चे ही थे।।67।। उनके पुत्र और परशुराम दोनों में राम नाम था। इसलिये जैसे गले के हार और सर्प दोनों में रहनेवाली मणि आनन्द भी देती है और भय भी, वैसे ही अपने पुत्र और परशुराम दोनों में आए हुए रामनाम से उन्हें भय भी हुआ और आनन्द भी।।68।। दशरथजी अभी कहते ही रह गए कि आपके सत्कार के लिये यह अर्घ्य है; वह अर्घ्य है किन्तु परशुरामजी ने उधर ध्यान भी न देकर क्षत्रियों को जलानेवाली अपनी टेढ़ी चितवन से राम को देखा।।69।। युद्ध के लिए उद्यत और मुट्ठी में धनुष पकड़कर उँगलियों से बाण चढ़ाते हुए परशुरामजी ने अपने आगे निडर खड़े हुए राम से कहा।।70।। मेरे पिता का वध करके क्षत्रियों ने मुझसे शत्रुता मोल ले-ली है। उन्हें बहुत बार मारकर मुझे कुछ शान्ति मिली थी। पर जैसे डंडे से छेड़ देने पर साँप फुफकार उठता है, वैसे ही तुम्हारा पराक्रम सुनकर मेरे शरीर में भी आग लग गई है।।71।। जनकजी के जिस धनुष को कोई राजा झुका भी न सका उसी को तुमने तोड़ दिया है। यह सुनकर मैंने यही समझा है कि आज तक जो मैं सबसे बढ़कर बलवान् समझा जाता था वह यश मानो आज नष्ट हो गया हो।।72।। पहले संसार में राम कहने से लोग मुझे ही समझते थे पर ज्यों-ज्यों तुम ऊँचे चढ़ते चले जा रहे हो त्यों-त्यों वह अर्थ तुम्हारे नाम के साथ लगता जा रहा है। यह सब देखकर मुझे लज्जा होने लगी है।।73।। जिस परशुराम के अस्त्र पहाड़ों से टकराकर भी कुण्ठित नहीं होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि।
पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः।। 75।।
विद्धि चात्तबलमोजसा हरेरैश्वरं धनुरभाजि यत्त्वया।
खातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम्।। 76।।
तन्मदीयमिदमायुधं ज्यया सङ्गमय्य सशरं विकृष्यताम्।
तिष्ठतु प्रधनमेवमप्यहं तुल्यबाहुतरसा जितस्त्वया।। 77।।
कातरोऽसि यदि वोद्गतार्चिषा तर्जितः परशुधारया मम।
ज्यानिघातकठिनांगुलिर्वृथा बध्यतामभययाचनाञ्जलिः।। 78।।
एवमुक्तवति भीमदर्शने भार्गवे स्मितविकम्पिताधरः।
तद्धनुर्ग्रहणमेव राघवः प्रत्यपद्यत समर्थमुत्तरम्।। 79।।
पूर्वजन्मधनुषा समागतः सोऽतिमात्रलघुदर्शनोऽभवत्।
केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः।। 80।।
तेन भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुकं च बलिनाधिरोपितम्।
निष्प्रभश्च रिपुरास भूभृतां धूमशेष इव धूमकेतनः।। 81।।

उसके दो ही शत्रु आज तक समान अपराध करनेवाले हुए हैं, उनमें पहला तो था सहस्रबाहु जो मेरे पिता से कामधेनु का बछड़ा छीनकर ले गया था और दूसरे हो तुम, जो मेरी कीर्ति छीनने पर तुले बैठे हो।।74।। इसलिये क्षत्रियों का नाश करनेवाला मेरा पराक्रम तब तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा, जब तक मैं तुम्हें जीत न लूँ; क्योंकि अग्नि का प्रताप तभी सराहनीय होता है, जब वह समुद्र में भी वैसे ही भड़कर जले जैसे सूखी घास के ढेर में।।75।। तुम्हें यह समझ रखनी चाहिए कि शिवजी के जिस धनुष को तोड़कर तुम ऐंठ रहे हो, उसकी कठोरता तो विष्णुजी ने पहले ही हर ली थी। इसलिए उसे तोड़कर तुमने कोई वीरता का काम नहीं किया है, क्योंकि जिस वृक्ष की जड़ें नदी की प्रचण्ड धारा ने पहले ही खोखली कर दी हों, उसे वायु के तनिक से झोंके में ही ढह जाने में क्या देर लगती है।।76।। देखो राम! युद्ध तो पीछे होगा, पहले तुम मेरे इस धनुष पर डोरी चढ़ाकर इसे बाण के साथ खींचो। यदि तुम इतना भी कर लोगे, तो मैं समझूँगा कि तुम मेरे ही समान बलवान् हो और मैं इतने से ही हार मानकर लौट जाऊँगा।।77।। और यदि तुम मेरे फरसे की चमकती हुई धार को देखकर डर गए हो, तो अपने उन हाथों को जोड़कर अभय की भिक्षा माँगो जिनकी उँगलियों में धनुष की डोरी की फटकार से व्यर्थ ही घट्टे पड़ गए हैं।।78।। भयङ्कर वेशधारी परशुरामजी ने जब यह कहा तो राम ने हँसते-हँसते इस प्रकार वह धनुष हाथ में ले लिया मानो परशुरामजी के वचनों का वही ठीक उत्तर हो।।79।। जैसे ही उन्होंने अपने पिछले जन्मवाला वह धनुष हाथ में लिया वैसे ही उनकी शोभा और भी बढ़ गई, क्योंकि एक तो नया बादल यों ही सुन्दर लगता है, फिर यदि उसमें इन्द्र धनुष भी बन जाये तो उसकी शोभा का कहना ही क्या।।80।। पराक्रमी राम ने उस धनुष की एक छोर पृथ्वी पर टेककर जैसे ही उस पर डोरी चढ़ाई, वैसे ही क्षत्रियों के शत्रु परशुरामजी उसी अग्नि के समान निस्तेज हो गए जिसमें केवल धुआँ भर रह गया हो।।81।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तावुभावपि परस्परस्थितौ वर्धमानपरिहीनतेजसौ।
पश्यति स्म जनता दिनात्यये पार्वणौ शशिदिवाकराविव।। 82।।

तं कुमामृदुरवेक्ष्य भार्गवं राघवः स्खलितवीर्यमात्मंनि।
स्वं च संहितममोघमाशुगं व्याजहार हरसूनसंनिभः।। 83।।

न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्यभिभवत्यपि त्वयि।
शंस किं गतिमनेन पत्रिणा हन्मि लोकमुत ते मखार्जितम्।। 84।।

प्रत्युवाच तमृषिर्न तत्त्वतस्त्वां न वेद्मि पुरुषं पुरातनम्।
गां गतस्य तव धाम वैष्णवं कोपितो ह्यासि मया दिदृक्षुणा।। 85।।

भस्मसात्कृतवतः पितृद्विषः पात्रसाच्च वसुधां ससागराम्।
आहितो जयविपर्ययोऽपि मे श्लाघ्य एव परमेष्ठिना त्वया।। 86।।

तद्गतिं मतिमतां वरेप्सितां पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे।
पीडयिष्यति न मां खिलीकृता स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपम्।। 87।।

प्रत्यपद्यत तथेति राघवः प्राङ्मुखश्च विससर्ज सायकम्।
भार्गवस्य सुकृतोऽपि सोऽभवत्स्वर्गमार्गपरिघो दुरत्ययः।। 88।।

आमने-साामने खड़े हुए राम और परशुराम में से एक का तेज बढ़ गया और दूसरे का घट गया और इस प्रकार वे दोनों ऐसे जान पड़ने लगे जैसे वे सन्ध्या समय के चन्द्रमा और सूर्य हों।।82।। कार्तिकेय के समान तेजस्वी दयालु रामचन्द्रजी ने एक बार निस्तेज परशुरामजी को और फि धनुष पर चढ़े हुए अपने अचूक बाण को देखा और बोले।।83।। —यद्यपि आपने हमारा अपमान किया है, पर आप ब्राह्मण हैं, इसलिये मैं निर्दय होकर आपको मारूँगा नहीं। पर यह बताइए कि अब इस बाण से मैं आपकी गति रोकूँ या आपका उन दिव्य लोकों की प्राप्ति को नष्ट कर दूँ, जो आपने यज्ञ करके प्राप्त किए हैं।।84।। यह सुनकर परशुरामजी बोले—'यह बात नहीं है कि आपको देखते ही मैं पहचान नहीं पाया हूँ कि आप ही साक्षात् पुरातन पुरुष हैं, किन्तु मैंने यह जानने के लिए आपको कष्ट दिया था कि देखूँ आप विष्णु का कितना तेज लेकर पृथ्वी पर उतरे हैं।।85।। पिता के शत्रुओं का नाश करनेवाले और सागर तक फैली हुई पृथ्वी ब्राह्मणों को दान देनेवाले मुझ परशुराम के लिए आप परम पुरुष के हाथों हारना भी गौरव की ही बात है।।86।। इसलिये आप मेरी गति न रोकिए जिससे मैं पवित्र तीर्थों में आ-जा सकूँ। मुझे भोग की तो इच्छा है नहीं; इसलिये यदि मुझे स्वर्ग न भी मिले तो कुछ दुःख नहीं होगा।।87।। राम ने परशुरामजी का कहना मान लिया और पूरब की ओर मुँह करके बाण छोड़ दिया। यद्यपि परशुरामजी ने बहुत पुण्य किए थे; किन्तु वह बाण सदा के लिये परशुरामजी के स्वर्ग का मार्ग रोककर खड़ा हो गया।।88।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राघवोऽपि चरणौ तपोनिधेः क्षम्यतामिति वदन्समस्पृशत्।
निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये।।89।।
राजसत्त्वमवधूय मातृकं पित्र्यमस्मि गमितः शमं यदा।
नन्वनिन्दितफलो मम त्वया निग्रहोऽप्ययमनुग्रहीकृतः।।90।।
साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते देवकार्यमुपपादयिष्यतः।
ऊचिवानिति वचः सलक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजमृषिस्तिरोदधे।।91।
तस्मिन्गते विजयिनं परिरभ्य रामं स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम्।
तस्याभवत्क्षणशुचः परितोषलाभः कक्षाग्निलङ्घिततरोरिव वृष्टिपातः।।92।।
अथ पथि गमयित्वा क्लृप्तरम्योपकार्ये कतिचिदवनिपालः शर्वरीः शर्वकल्पः।
पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शिनीनां कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम्।। 93।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये।
सीता-विवाहवर्णनो नामैकादशः सर्गः।।

तब राम ने परशुरामजी से क्षमा माँगते हुए उनके चरणों में प्रणाम किया; क्योंकि जब कोई पराक्रमी अपने बल से अपने शत्रु को जीत लेता है, तब यदि वह नम्रता भी दिखाये तो उसकी कीर्ति ही बढ़ती है।।89।। परशुरामजी बोले—'आपने मुझे यह दण्ड देकर मेरा बड़ा भारी उपकार किया है। इससे मेरा बड़ा भारी लाभ तो यह हुआ कि आपने क्षत्रिय माता से पाए हुए मेरे रजोगुण को दूर करके मुझे पिता का सत्वगुण प्रदान कर दिया।।90।। मैं अब जाता हूँ। आप देवताओं का जो कार्य करने के लिए आए हैं, वह बिना विघ्न के पूरा हो। राम और लक्ष्मण से यह कहकर परशुरामजी अन्तर्धान हो गए।।91।। उनके चले जाने पर विजयी राम को दशरथजी ने गले से लगा लिया और वे स्नेह में भरकर यह समझने लगे कि राम का दूसरा जन्म हुआ है। इस थोड़ी देर के दुःख के पश्चात् उन्हें ऐसा संतोष मिला, जैसे जंगल की आग से झुलसे पेड़ को वर्षा का जल मिल जाय।।92।। तब शिव के समान राजा दशरथ ने कुछ रातें तो उस मार्ग में बिताई, जहाँ उनके लिए सुन्दर डेरे तने हुए थे। फिर वे उस अयोध्या नगरी में पहुँचे जहाँ सीताजी को देखने के लिए उत्सुक, नगर की सुन्दर स्त्रियों की आँखें झरोखों में कमल के समान उलझी दिखाई पड़ रही थीं।।93।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'सीताजी के विवाह का वर्णन' नाम का ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। द्वादशः सर्गः ।।

निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान्।
आसीदासन्ननिर्वाणः प्रदीपार्चिरिवोषसि ।। 1 ।।
तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।
कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा ।। 2 ।।
सा पौरान्पौरकान्तस्य रामस्याभ्युदयश्रुतिः।
प्रत्येकं ह्लादयांचक्रे कुल्येवोद्यानपादपान् ।। 3 ।।
तस्याभिषेकसंभारं कल्पितं क्रूरनिश्चया।
दूषयामास कैकेयी शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः ।। 4 ।।
सा किलाश्वासिता चण्डी भर्त्रा तत्संश्रुतौ वरौ।
उद्ववामेन्द्रसिक्ता भूर्बिलमग्नाविवोरगौ ।। 5 ।।
तयोश्चतुर्दशैकेन रामं प्राव्राजयत्समाः।
द्वितीयेन सुतस्यैच्छद्वैधव्यैकफलां श्रियम् ।। 6 ।।
पित्रा दत्तं रुदन्रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ।। 7 ।।

बारहवाँ सर्ग

राजा दशरथ ने संसार के सब सुख भोग लिए और बूढ़े हो चले। अब उनकी दशा प्रातःकाल के उस दीपक जैसी हो गई थी, जिसका तेल सूख गया हो और वह बुझने ही वाला हो।।1।। उनकी कनपटी के पास बाल पक गए थे, मानो बुढ़ापा भी कैकेयी से शंकित होकर राजा के कान में आकर यह कह रहा हो कि अब राम को राज्य सौंप ही देना चाहिए।।2।। जैसे पानी से सिंचकर पूरे उद्यान के वृक्ष हरे-भरे हो जाते हैं, वैसे ही राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर अयोध्या के लोग फूले नहीं समाए।।3।। पर निष्ठुर कैकेयी ने ऐसा चक्र चलाया कि राज्याभिषेक का सारा उत्सव शोक से तपे हुए राजा दशरथ के आँसुओं से लिप गया।।4।। जब राजा दशरथ ने उस कठोर स्वभावशाली कैकेयी को बहुत मनाया, तब उसने वे दो वर माँगे जिनके लिये राजा दशरथ पहले से ही वचन दे चुके थे। ये दो वर ऐसे ही थे जैसे वर्षा से भीगी हुई पृथ्वी के छेदों में से दो साँप निकल पड़े हों।।5।। कैकेयी ने एक वर तो यह माँगा कि चौदह वर्ष के लिये राम वन में चले जाएँ और दूसरा यह कि मेरे बेटे भरत को राज्य मिले। पर इस वर माँगने का एकमात्र फल यही निकला कि कैकेयी विधवा हो गई।।6।। जब दशरथजी राम को राजगद्दी दे रहे थे, उस समय राम ने आँखों में आँसू भरकर उसे स्वीकार किया था और जब उनसे कहा गया कि वन चले जाओ, तब राम ने इस आज्ञा को हँसते-हँसते सिर माथे चढ़ा लिया।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः।।8।।
स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद्गुरुमलोपयन्।
विवेश दण्डकारण्यं प्रत्येकं च सतां मनः।।9।।
राजाऽपि तद्वियोगार्तः स्मृत्वा शापं स्वकर्मजम्।
शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभममन्यत।।10।।
विप्रोषितकुमारं तद्राज्यमस्तमितेश्वरम्।
रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषामामिषतां ययौ।।11।।
अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम्।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः।।12।।
श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं कैकेयीतनयः पितुः।
मातुर्न केवलं स्वस्या श्रियोऽप्यासीत्पराङ्मुखः।।13।।
ससैन्यश्चान्वगाद्रामं दर्शितानाश्रमालयैः।
तस्य पश्यन्ससौमित्रेरुदश्रुर्वसतिद्रुमान्।।14।।
चित्रकूटवनस्थं च कथितस्वर्गतिर्गुरोः।
लक्ष्म्या निमत्रयांचक्रे तमनुच्छिष्टसंपदा।।15।।

यह देखकर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि राम के मुँह का भाव जैसा राज्याभिषेक के रेशमी वस्त्र पहनते समय था ठीक वैसा ही वन जाने के लिये पेड़ की छाल के वस्त्र पहनते समय भी था।।8।। अपने पिता के वचन सत्य करने के लिए वे सीता और लक्ष्मण के साथ केवल दण्डक-वन में ही नहीं पैठे, वरन् अपने इस सत्यव्यवहार से उन्होंने सज्जनों के मन में भी घर कर लिया।।9।। उनके वियोग में राजा दशरथ को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें मुनि का शाप स्मरण हो आया और उन्होंने समझ लिया कि अब प्राण देकर ही मेरी शुद्धि होगी।।10।। दशरथजी के शत्रु तो ऐसे अवसर की ताक में ही थे। जब उन्होंने देखा कि अयोध्या के राजा स्वर्ग चले गए और राजकुमार भी राज्य छोड़कर चले दिए, तो उन्होंने झट अयोध्या पर धावा बोल दिया।।11।। यह देखकर अयोध्या की अनाथ प्रजा ने उन कुल-मन्त्रियों को भेजकर भरत को उनकी ननिहाल से बुलाया, जिन्होंने अपने आँसू निकलने नहीं दिए थे।।12।। जब भरतजी को अपने पिता की मृत्यु का सब समाचार मिला, तब वे केवल अपनी माँ से ही नहीं वरन् अयोध्या की राज-लक्ष्मी से भी चिढ़ गए।।13।। उन्होंने अपने साथ सेना ली और राम को ढूँढ़ने निकल पड़े। जब मार्ग के आश्रमवासियों ने उन्हें वे वृक्ष दिखाए जिनके तले राम और लक्ष्मण जाते हुए टिके थे, तो उनकी आँखों में आँसू छलक आए।।14।। उन दिनों राम चित्रकूट वन में रहते थे। वहाँ जाकर भरतजी ने उन्हें दशरथजी की मृत्यु का समाचार सुनाया और कहा कि अयोध्या की राजलक्ष्मीजी को मैंने छुआ भी नहीं है, आप ही उसे चलकर सँभालिए।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स हि प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे।
परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद्भुवः।।16।।

तमशक्यमपाक्रष्टुं निदेशात्स्वर्गिणः पितुः।
ययाचे पादुके पश्चात् कर्तुं राज्याधिदेवते।।17।।

स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा भ्रात्रा नैवाविशत्पुरीम्।
नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक्।।18।।

दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः।
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत्।।19।।

रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्तयन्।
चचार सानुजः शान्तो वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा।।20।।

प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स वनस्पतिम्।
कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किंचिदिव श्रमात्।।21।।

ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः।
प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन्।।22।।

क्योंकि जिस राज्य को बड़े भाई ने स्वीकार नहीं किया, उसे लेना मैं उतना ही बड़ा पाप समझता हूँ जितना बड़े भाई के अविवाहित रहने पर छोटे भाई का विवाह कर लेना।।16।। किन्तु राम अपने स्वर्गीय पिता की आज्ञा से तनिक भी टस से मस नहीं हुए। तब भरतजी ने उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे अपनी खड़ाऊँ दे दीजिए जिन्हें मैं आपके स्थान पर रखकर राज्य का काम चलाऊँ।।17।। राम ने अपनी खड़ाऊँ दे दीं। उसे लेकर भरतजी लौटे, तो सही पर अयोध्या में नहीं आए। उन्होंने नन्दिग्राम में डेरा डाला और वहीं से अयोध्या के राज्य की उसी प्रकार रक्षा की मानो अपने भाई की धरोहर सँभाल रहें हों।।18।। इस प्रकार अपने बड़े भाई में भक्ति निभाकर और राजपद को ठुकराकर मानो भरतजी ने अपनी माता के पाप का प्रायश्चित कर डाला।।19।। उधर राम भी सीता और लक्ष्मण के साथ कन्दमूल फल खाते हुए युवावस्था में ही वह व्रत करने लगे जो इक्ष्वाकु वंशवाले बुढ़ापे में किया करते हैं।।20।। एक बार वे थके हुए सीताजी की गोदी में सिर रखे एक ऐसे वृक्ष के नीचे लेटे हुए थे, जिसकी छाया उन्होंने अपने अलौकिक प्रभाव से बाँध दी थी।।21।। इसी बीच इन्द्र का पुत्र जयन्त कौवा बनकर आया और उसने अपने नखों से सीताजी के स्तनों पर प्रहार किया मानो वह सीताजी के स्तनों पर राम के हाथ से बने हुए नखक्षतों को प्रकट कर अपनी यह बात बता रहा हो कि मेरा काम ही दूसरों का दोष ढूँढ़ना है।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामावबोधितः।
आत्मानं मुमुचे तस्मादेकनेत्रव्ययेन सः।। 23।।
रामस्त्वासन्नदेशत्वाद्भरतागमनं पुनः।
आशङ्क्योत्सुकसारङ्गां चित्रकूटस्थलीं जहौ।। 24।।
प्रययावातिथेयेषु वसन् ऋषिकुलेषु सः।
दक्षिणां दिशमृक्षेषु वार्षिकेष्विव भास्करः।। 25।।
बभौ तमनुगच्छन्ती विदेहाधिपतेः सुता।
प्रतिषिद्धापि कैकेय्या लक्ष्मीरिव गुणोन्मुखी।। 26।।
अनसूयातिसृष्टेन पुण्यगन्धेन काननम्।
सा चकाराङ्गरागेण पुष्पोच्चलितषट्पदम्।। 27।।
संध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः।
अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दोरिव ग्रहः।। 28।।
स जहार तयोर्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः।
नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे।। 29।।
तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थौ पुरा दूषयति स्थलीम्।
गन्धेनाशुचिना चेति वसुधायां निचख्नतुः।। 30।।

झट सीताजी ने राम को जगाया। तत्काल राम ने उस पर सींक का बाण छोड़ा। उससे बचने के लिये वह कौवा बहुत इधर-उधर चक्कर काटता रहा, पर जब तक उसने अपनी एक आँख नहीं दे दी तब तक उसे छुटकारा नहीं मिला।।23।। थोड़े दिनों के बाद राम ने चित्रकूट का वह आश्रम छोड़ दिया जहाँ के हरिण उनसे इतने हिलमिल किए थे कि दिन-रात उन्हें ही देखते रहते थे। राम ने इस डर से चित्रकूट छोड़ा कि अयोध्या पास में ही है, ऐसा न हो कि भरत फिर यहाँ पहुँच जाएँ।।24।। जैसे वर्षा के दस नक्षत्रों में ठहरता हुआ सूर्य दक्षिण को घूम जाता है, वैसे ही अतिथि-सत्कार करनेवाले ऋषियों के आश्रमों में टिकते हुए राम भी दक्षिण की ओर बढ़ चले।।25।। यद्यपि कैकेयी ने राम को राजलक्ष्मी से हटा दिया था फिर भी उनके पीछे-पीछे चलनेवाली सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो गुणों के पीछे चलनेवाली साक्षात् लक्ष्मी ही हों।।26।। अत्रि ऋषि के आश्रम में जब वे पहुँचे तब उनकी पत्नी अनसूयाजी ने सीताजी के शरीर में ऐसा सुगन्धित अङ्गराग लगाया कि उसकी पवित्र गन्ध पाकर भौंरे भी जंगली फूलों से उड़-उड़कर उधर ही टूट पड़े।।27।। जैसे चन्द्रमा का मार्ग राहु रोक लेता है, वैसे ही सन्ध्या के बादल के समान लाल रंगवाला विराध राक्षस भी राम का मार्ग रोककर खड़ा हो गया।।28।। जैसे कोई खोटा ग्रह सावन और भादों के महीनों के बीच से वर्षा को ले बीतता है, वैसे ही उस राक्षस ने राम और लक्ष्मण के बीच से सीताजी को हर लिया।।29।। पर राम-लक्ष्मण ने उसे तत्काल मार डाला और यह सोचकर उसे पृथ्वी में गाड़ दिया कि कहीं इसके शरीर की दुर्गन्धि इस देश में न फैल जाय।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चवट्यां ततो रामः शासनात्कुम्भजन्मनः
अनपोढस्थितिस्तस्थौ विन्ध्याद्रिः प्रकृताविव।। 31।।

रावणावरजा तत्र राघवं मदनातुरा।
अभिपेदे निदाघार्ता व्यालीव मलयद्रुमम्।। 32।।

सा सीतासंनिधावेव तं वव्रे कथितान्वया।
अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः।। 33।।

कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे।
इति रामो वृषस्यन्तीं वृषस्कन्धः शशास ताम्।। 34।।

ज्येष्ठाभिगमनात्पूर्वं तेनाप्यनभिनन्दिता।
साभूद्रामाश्रयाभूयो नदीवोभयकूलभाक्।। 35।।

संरम्भं मैथिलीहासः क्षणसौम्यां निनाय ताम्।
निवातस्तिमितां वेलां चन्द्रोदय इवोदधेः।। 36।।

फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम्।
मृग्या परिभवो व्याघ्र्यामित्यवेहित्वया कृतम्।। 37।।

जैसे अगस्त्यजी की आज्ञा से विन्ध्याचल अपनी मर्यादा में ही रह गया था, वैसे ही राम भी मर्यादापूर्वक पञ्चवटी में रहने लगे।।31।। जैसे धूप से घबराकर कोई नागिन चन्दन के पेड़ के पास पहुँच गई हो, वैसे ही काम से पीड़ित रावण की छोटी बहन शूर्पणखा राम के पास जा पहुँची।।32।। पहले तो उसने अपने कुल का परिचय दिया और फिर सीताजी के सामने ही राम से कहने लगी कि मैं तुम्हें अपना पति मानती हूँ; क्योंकि स्त्रियाँ जब बहुत अधिक कामासक्त हो जाती हैं, तब उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं रहता कि हमें किस समय क्या करना चाहिए? क्या न करना चाहिए।।33।। कामासक्त शूर्पणखा की यह बात सुनकर साँड़ के समान ऊँचे कन्धोंवाले राम बोले—बाले! मेरा तो विवाह हो चुका है। तुम मेरे छोटे भाई के पास जाओ।।34।। वह झट लक्ष्मण के पास पहुँची। लक्ष्मण ने उससे कहा—तू पहले मेरे बड़े भाई के पास विवाह की इच्छा से जा चुकी है; इसलिये तू मेरी माता के समान है। मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता। यह सुनकर वह फिर राम के पास पहुँची। राम और लक्ष्मण के पास आते-जाते उसकी दशा उस नदी के समान हो गई जो बारी-बारी से अपने दोनों तटों को छूती हुई बह रही हो।।35।। जैसे वायु के रुके रहने से शान्त समुद्र का तट चन्द्रमा के निकलने पर हिलोरें लेने लगता है, वैसे ही सीताजी को हँसते देखकर क्षण-भर के लिये सुन्दर रूप धारण करनेवाली वह कुरूपा शूर्पणखा भी एकदम बिगड़ खड़ी हुई।।36।। और बोली—'अच्छा! तुम्हें इस हँसी का फल अभी चखाती हूँ। तुमने वैसे ही मेरा अपमान किया है, जैसे कोई हरिणी किसी बाघिन का अपमान करे। समझी!।।37।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्युक्त्वा मैथिलीं भर्तुरङ्केनिविशतीं भयात्।
रूपं शूर्पणखा नाम्नः सदृशं प्रत्यपद्यत।।38।।
लक्ष्मणः प्रथमं श्रुत्वा कोकिलामञ्जुवादिनीम्।
शिवाघोरस्वनां पश्चाद्बुबुधे विकृतेति ताम्।।39।।
पर्णशालामथ क्षिप्रं विकृष्टासिः प्रविश्य सः।
वैरूप्यपौनरुक्त्येन भीषणां तामयोजयत्।।40।।
सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया।
अङ्कुशाकारयाङ्गुल्या तावतर्जयदम्बरे।।41।।
प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम्।
रामोपक्रममाचख्यौ रक्षःपरिभवं नवम्।।42।।
मुखावयवलूनां तां नैर्ऋता यत्पुरो दधुः।
रामाभियायिनां तेषां तदेवाभूदमङ्गलम्।।43।।
उदायुधानापततस्तान्दृप्तान्प्रेक्ष्य राघवः।
निदधे विजयाशंसां चापे सीतां न लक्ष्मणे।।44।।
एको दाशरथिः कामं यातुधाना सहस्रशः।
ते तु यावन्त एवाजौ तावाँच ददृशे स तैः।।45।।

सीताजी तो यह सुनते ही डर के मारे राम की ओट में जा छिपीं और शूर्पणखा ने अपने नाम के अनुसार [सूप के समान बड़े-बड़े नखवाला] अपना भयङ्कर रूप प्रकट कर दिखाया।।38।। जब लक्ष्मण ने देखा कि अभी तो यह कोयल के समान मधुर वाणी बोल रही थी और अब सियारिन के समान हुआ-हुआँ कर रही है, तब उन्होंने समझ लिया कि यह स्त्री बड़ी खोटी है।।39।। और यह समझते ही वे झट अपनी कुटिया में गए और वहाँ से तलवार लाकर उन्होंने शूर्पणखा के नाक-कान काट लिए। नाक-कान कट जाने पर वह और भी अधिक कुरूप दिखाई देने लगी।।40।। नकटी-बूची होकर वह आकाश में उड़ी और अंकुश जैसी टेढ़े-मेढ़े नखोंवाली और बाँस जैसे भद्दे पोरोंवाली अपनी उँगलियाँ चमका-चमकाकर राम-लक्ष्मण को धमकाने लगी।।41।। वहाँ से चलकर वह तत्काल जनस्थान में पहुँची और खर आदि राक्षसों को उभाड़ा कि आज पहली बार राम ने इस प्रकार राक्षसों का अपमान किया है।।42।। आगे-आगे नकटी-बूची शूर्पणखा और उसके पीछे-पीछे वे सब राक्षस लड़ने निकल पड़े; पर इस नकटी को आगे करके उन लोगों ने पहले ही अपना शकुन बिगाड़ लिया।।43।। राम ने दूर से देखा कि हाथ में शस्त्र उठाये घमण्डी राक्षस आगे बढ़े चले आ रहे हैं, तो उन्हें विश्वास हो गया कि इन्हें तो हम अकेले अपने धनुष से ही जीत लेंगे।। इसलिये उन्होंने सीता की रक्षा का भार लक्ष्मण को सौंप दिया।।44।। राम अकेले थे और राक्षस सहस्त्रों थे, पर राम इस प्रकार लड़ रहे थे कि वहाँ जितने राक्षस थे, उन्हें उतने ही राम दिखाई पड़ रहे थे।।45।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असज्जनेन काकुत्स्थः प्रयुक्तमथ दूषणम्।
न चक्षमे शुभाचारः स दूषणमिवात्मनः।। 46।।
तं शरैः प्रतिजग्राह खरत्रिशिरसौ च सः।
क्रमशस्ते पुनस्तस्य चापात्सममिवोद्ययुः।। 47।।
तैस्त्रयाणां शितैर्वाणैर्यथापूर्वविशुद्धिभिः।
आयुर्देहातिगैः पीतं रुधिरं तु पतत्त्रिभिः।। 48।।
तस्मिन्रामशरोत्कृत्ते बले महति रक्षसाम्।
उत्थितं ददृशेऽन्यच्च कवन्धेभ्यो न किंचन।। 49।।
सा बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा सुरद्विषाम्।।
अप्रबोधाय सुष्वाप गृध्रच्छाये वरूथिनी।। 50।।
राघवास्त्रविदीर्णानां रावणं प्रति रक्षसाम्।
तेषां शूर्पणखैवैका दुष्प्रवृत्तिहराऽभवत्।। 51।।
निग्रहात्स्वसुराप्तानां वधाच्च धनदानुजः।
रामेण निहितं मेने पदं दशसु मूर्धसु।। 52।।
रक्षसा मृगरूपेण वञ्चयित्वा स राघवौ।
जहार सीतां पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः।। 53।।

जिस प्रकार सदाचारी पुरुष अपने ऊपर नीच पुरुषों द्वारा लगाया हुआ दूषण या कलङ्क नहीं सह सकते, वैसे ही राम भी युद्ध में दूषण राक्षस का आना नहीं सह सके।।46।। उन्होंने दूषण, खर और त्रिशिरा पर यद्यपि एक-एक करके बाण चलाए तथापि अत्यन्त शीघ्रता से चलाए जाने के कारण वे बाण ऐसे जान पड़ते थे मानो वे एक साथ धनुष से छूटे हों।।47।। वे बाण उनके शरीर को छेद कर इतने वेग से बाहर निकल गए कि उनमें रक्त भी नहीं लग सका, क्योंकि बाण तो उनकी आयु पीने के लिये गये थे, उनका रक्त तो पिया पक्षियों ने।।48।। राम ने अपने बाणों से राक्षसों की पूरी सेना को इस प्रकार काट डाला कि युद्ध-भूमि में राक्षसों के धड़ों को छोड़कर और कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था।।49।। बाण बरसानेवाले राम से लड़कर वह राक्षसों की सेना तो गिद्धों के पंखों की छाया में सदा के लिए सो गई।।50। राम के अस्त्र से मारे हुए उन राक्षसों की मृत्यु का समाचार रावण के पास पहुँचाने के लिये अकेली शूर्पणखा ही बची रही।।51।। बहन का अपमान और खर-दूषण आदि अपने सम्बन्धियों का वध, रावण को इतना अपमानजनक जान पड़ा, मानो राम ने उसके दसों सिरों पर पैर रख दिया हो।।52।। तब उसने मारीच को माया-मृग बनाया और राम-लक्ष्मण को धोखा देकर सीताजी को चुराकर लङ्का में ले गया। मार्ग में गृद्धराज जटायु उससे लड़ा भी पर वह कुछ कर न सका।।53।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपश्यताम्।
प्राणैर्दशरथप्रीतेरनृणं कण्ठवर्तिभिः।। 54।।
स रावणहृतां ताभ्यां वचसाचष्ट मैथिलीम्।
आत्मनः सुमहत्कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितः।। 55।।
तयोस्तस्मिन्नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः।
पितरीवाग्निसंस्कारात्परा ववृतिरे क्रियाः।। 56।।
वधनिर्धूतशापस्य कबन्धस्योपदेशतः।
मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ।। 57।।
स हत्वा बालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत्।। 58।।
इतस्ततश्च वैदेहीमन्वेष्टुं भर्तृचोदिताः।
कपयश्चेरुरार्तस्य रामस्येव मनोरथाः।। 59।।
प्रवृत्तावुपलब्धायां तस्याः संपातिदर्शनात।
मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः।। 60।।

राम और लक्ष्मण अब सीता को ढूँढ़ने निकले।। उन्होंने मार्ग में जटायु को पड़े देखा जिसके पंख कट गए थे और जिसके प्राण कण्ठ तक आ गए थे, पर उसने सीता के चुरा ले जाने वाले रावण से लड़कर अपने मित्र दशरथ का ऋण चुका दिया था।।54।। वह राम-लक्ष्मण से बोला कि सीमाजी को रावण ले गया है। जटायु के घावों को ही देखकर यह स्पष्ट था कि वह कितने जी-जान से रावण से लड़ा था।।55।। केवल इतना ही कहकर जटायु बेचारा चल बसा। उसके मरने से राम-लक्ष्मण को उतना ही शोक हुआ जितना उन्हें अपने पिता के मरने पर हुआ था। उसका विधिवत् दाह-संस्कार करके उन्होंने उसका श्राद्ध आदि किया।।56।। वहाँ से वे आगे बढ़े तो उन्हें कबन्ध मिला, जो किसी ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। राम ने उसकी बाँहें काट डालीं जिससे उसका शाप छूट गया और वह फिर देवता हो गया। उसने प्रसन्न होकर सुग्रीव का ठिकाना बताया। इस सुग्रीव के राज्य और उसकी स्त्री को उसका बड़ा भाई छीन ले गया था, इसलिये उसने स्त्री से बिछुड़े हुए राम से शीघ्र ही मित्रता कर ली।।57।। पराक्रमी राम ने बालि को मारकर उसके सिंहासन पर सुग्रीव को वैसे ही बैठा दिया, जैसे कोई वैयाकरण, लिट्र-लुट् आदि लकारों में अस् धातु के बदले भू धातु को बैठा देता है।।58।। सुग्रीव ने जानकारों को आज्ञा दी कि जाओ और जाकर सीताजी की खोज लगाओ। जैसे विरही राम का मन सीताजी की खोज में इधर-उधर भटकता था, वैसे ही वानर भी इधर-उधर घूमकर सीताजी की खोज करने लगे।।59।। मार्ग में जटायु के भाई सम्पाती से उनकी भेंट हुई। उसने बताया कि समुद्र पार लङ्काद्वीप का राजा रावण सीताजी को हर ले गया है। यह सुनकर हनुमानजी उसी प्रकार समुद्र को लाँघ गए, जैसे निर्मोही पुरुष संसार-सागर को पार कर जाता है।।60।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टा विचिन्वता तेन लङ्कायां राक्षसीवृता।
जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः।। 61।।
तस्यै भर्तुरभिज्ञानमङ्गुलीयं ददौ कपिः।।
प्रत्युद्गतमिवानुष्णैस्तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः। 62।।
निर्वाप्य प्रियसंदेशैः सीतामक्षवधोद्धतः।
स ददाह पूरीं लङ्कां क्षणसोढारिनिग्रहः।। 63।।
प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत्कृती।
हृदयं स्वयमायातं वैदेह्या इव मूर्तिमत्।। 64।।
स प्राप हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः।
अपयोधरसंसर्गां प्रियालिङ्गननिर्वृतिम्।। 65।।
श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मेने तत्सङ्गमोत्सुकः।
महार्णवपरिक्षेपं लङ्कायाः परिखालघुम्।। 66।।
स प्रतस्थेऽरिनाशाय हरिसैन्यैरनुद्रुतः।
न केवलं भुवः पृष्ठे व्योम्नि संबाधवर्त्मभिः।। 67।।
निविष्टमुदधेः कूले तं प्रपेदे विभीषणः।
स्नेहाद्राक्षसलक्ष्म्येव बुद्धिमादिश्य चोदितः।। 68।।

लङ्का में पहुँचकर ढूँढते-ढाढते उन्होंने एक स्थान पर सीता जी को देखा। चारों ओर राक्षसियोंसे घिरी हुई वे ऐसी लग रही थीं, जैसे विषकी लताओं के बीच में संजीवनी बूटी हो।।61।। उनके पास जाकर हनुमान जी ने राम की अँगूठी उन्हें दे-दी, जिसका स्वागत सीता जी ने आनन्द के ठण्डे आँसुओं से किया।।62।। पहले तो उन्होंने रामचन्द्र जी का प्यार-भरा सन्देश सुनाकर सीता जी को ढाढस बँधाया फिर रावण के पुत्र अक्षय को मार डाला और थोड़ी देर तक शत्रुओं के हाथ बन्दी रहकर उन्होंने लङ्का में आग लगा दी।।63।। फिर सीता जी से मिलने की पहचान के लिए उनसे चूड़ामणि लेकर वे राम के पास लौट आए, वह मणि पाकर राम को वैसा ही आनन्द हुआ, मानो साक्षात् सीता जी का हृदय ही स्वयं चला आया हो।।64।। उस मणि को हृदय से लगाकर वे सुध-बुध भूलकर मग्न हो गए। उन्हें उस समय वैसी ही प्रसन्नता हो रही थी मानो स्तन के स्पर्श को छोड़कर सीता जी ही हृदय आ लगी हों।।65।। प्रिया का सन्देश सुनकर राम उनसे मिलने के लिए उतावले हो गए। इस उत्साह में उन्हें लङ्का के चारों ओर का चौड़ा और गहरा समुद्र खाई से भी कम चौड़ा जान पड़ने लगा।।66।। वे वानरों की अपार सेना लेकर शत्रु का संहार करने चल दिये। वह सेना इतनी अधिक थी की पृथ्वी की कौन कहे, आकाश में भी बड़ी कठिनाई से चल पाती थी।।67।। जब राम समुद्र के तटपर पहुँचे तो रावण का भाई विभीषण उनसे मिलने आया, मानो राक्षसों की राजलक्ष्मी ने उसकी बुद्धि में पैठकर यह समझा दिया हो कि अब राम की शरण में जाने पर ही तुम्हारा कल्याण होगा।।68।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्राव राघवः।
काले ख़लु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः।। 69।।

स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि।
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः।। 70।।

तेनोतीर्य पथा लंकां रोधयामास पिंगलैः।
द्वितीयं हेम प्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः।। 71।।

रणः प्रववृते तत्र भीमः प्लवगरक्षसाम्।
दिग्विजृम्भितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः।। 72।।

पादपाविद्धपरिघः शिलानिष्पिष्टमुद्गरः।
अतिशस्त्रनखन्यासः शैलरुग्णमतंगजः।। 73।।

अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम्।
सीतां मायेति शंसन्ती त्रिजटा समजीवयत्।। 74।।

कामं जीवति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम्।
प्राङ्मत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता।। 75।।

राम ने भी उससे यह प्रतिज्ञा कर ली कि हम तुम्हें राक्षसों का राजा बना देंगे। ठीक भी है; समय पर काम में लाई हुई कूटनीति आगे चलकर अवश्य ही फल देती है।।69।। राम ने वानरों को लगाकर समुद्र पर जो पत्थरों का पुल बँधवाया वह ऐसा जाना पड़ता था, मानो विष्णु को अपने ऊपर सुलाने के लिए शेषनाग ही उतर आए हों।।70।। उस पुल से समुद्र पार करके पीले-पीले वानरों में लंका को चारों ओर से घेर लिया। उनसे घिरी हुई लंका ऐसी जान पड़ती थी मानो लंका के चारों ओर सोने का एक दूसरा परकोटा बन गया हो।।71।। वहाँ वानरों और राक्षसों में ऐसा भयङ्कर युद्ध होने लगा कि राम और रावण की जय-जयकारों से दिशाएँ फटी जा रही थीं।।72।। उस युद्ध में वानर पेड़ों से मार-मारकर राक्षसों की लोहे की गदाएँ तोड़ रहे थे, पत्थर बरसाकर उनके मुद्गर पीसे डाल रहे थे, अपने नखों से ऐसे भयंकर घाव कर रहे थे कि शस्त्रों से भी वैसे घाव नहीं हो सकते थे और लड़ाकू हाथियों के सिरों पर बड़ी चट्टानें पटक-पटकर उनका कचूमर निकाल देते थे।।73।। उसी समय एक राक्षस ने माया से राम का सिर बनाकर सीता जी के आगे ला पटका। उसे देखते ही सीता जी मूर्छित होकर गिर पड़ी। पर जब त्रिजटा ने उन्हें समझाया कि यह सब राक्षसी माया है तब सीता जी की जान में जान आई।।74।। यह जानकर उनका शोक तो छूट गया कि मेरे पतिदेव जीवित हैं पर उन्हें इस बात की बड़ी लज्जा हुई कि पति के मारे जाने का समाचार सुनकर भी मैं जीवित रह गई, मरी नहीं।।75।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः ।
दाशरथ्योः क्षणक्लेशः स्वप्नवृत्त इवाभवत्।। 76।।
ततो विभेद पौलस्त्यःशक्त्या वक्षसि लक्ष्मणम्।
रामस्त्वनाहतोऽप्यासीद्विदीर्णधिहृदयः शुचा।। 77।।
स मारुतिसमानीतमहौषधिहृतव्यथः
लङ्कास्त्रीणां पुनश्चक्रे विलापाचार्यकं शरैः।। 78।।
स नादं मेघनादस्य धनुश्चेन्द्रायुधप्रभम्।
मेघस्येव शरत्कालो न किंचित्पर्यशेषयत्।। 79।।
कुम्भकर्णः कपीन्द्रेण तुल्यावस्थः स्वसुः कृतः।
रुरोध रामं शृङ्गीव टङ्कच्छिन्नमनःशिलः।। 80।।
अकालेबोधितो भ्रात्रा प्रियस्वप्नो वृथा भवान्।
रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्रां वेशितः।। 81।।
इतराण्यपि रक्षांसि पेतुर्वानरकोटिषु।
रजांसि समरोत्थानि तच्छोणितनदीष्विव।। 82।।
निर्ययावथ पौलस्त्यः पुनर्युद्धाय मन्दिरात्।
अरावणमरामं वा जगदद्येति निश्चितः।। 83।।

उसी समय मेघनाद ने राम और लक्ष्मण को नागपाश में बाँध लिया, पर तभी गरुड़ ने आकर वह फंदा काट दिया, पाश में बँधने का वह क्षण भरकर क्लेश भी उन दोनों भाइयों को ऐसा जान पड़ा मानो स्वप्न में हुआ हो।।76।। तब मेघनाद ने खींचकर लक्ष्मण की छाती में शक्ति-बाण मारा। लक्ष्मण गिर गए और उन्हें देखकर राम का हृदय शोक से फटने से लगा।।77।। हनुमान जी तत्काल हिमालय पर जाकर संजीवनी बूटी ले आए, जिसके पिलाते ही लक्ष्मण की सारी पीड़ा जाती रही और फिर उठकर उन्होंने अपने बाणों से अनगिनत राक्षसों को मारकर लंका में कुहराम मचा दिया।।78।। जैसे शरद् ऋतु के आने पर न तो बादल का गर्जन रह पाता है न इन्द्रधनुष ही दिखाई देता है, वैसे ही लक्ष्मण भी मेघनाद के गर्जन को और इन्द्रधनुष के समान उसके धनुष को क्षण भर में ले बीते।।79।। उधर सुग्रीव ने कुम्भकरण की नाक-काटकर उसे शूर्पणखा के समान बना दिया था और वह राम का मार्ग रोककर उसी प्रकार खड़ा हो गया जैसे कोई मैनसिल की चट्टान आ गिरी हो।।80।। राम के बाणों से घायल होकर वह गिरकर मर गया, मानो राम के बाणों ने उसे यह कहकर गहरी नींद में सुला दिया हो कि तुमको नींद बड़ी प्यारी है, तुम्हारे भाई ने व्यर्थ ही तुम्हें असमय में जगा दिया।।81।। और भी बहुत से राक्षस करोड़ों वानरों की सेना के बीच में इस प्रकार गिर रहे थे, मानो राक्षसों के रक्त की नदी में रणक्षेत्र से उठी हुई धूल उड़ रही हो।।82।। जब रावण ने सब काण्ड सुना तो वह अपने राजभवन से निकलकर रण-भूमि में चला आया। उसने मन में ठान लिया था कि आज संसार में या तो रावण नहीं रहेगा या राम ही नहीं रहेंगे।।83।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामं पदातिमालोक्य लङ्केशं च वरूथिनम्।
हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरंदरः।।84।।

तमाधूतध्वजपटं व्योमगंगोर्मि वायुभिः।
देवसूतभुजालम्बी जैत्रमध्यास्त राघवः।।85।।

मातलिस्तस्य माहेन्द्रमामुमोच तनुच्छदम्।
यत्रोत्पलदलक्लैव्यमस्त्राणयापुः सुरद्विषाम्।।86।।

अन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरं चिरात्।
रामरावणयोर्युद्धं चरितार्थमिवाभवत्।।87।।

भुजमूर्धोरुबाहुल्यादेकोऽपि धनदानुजः।
ददृशे ह्ययथापूर्वो मातृवंश इव स्थितः।।88।।

जेतारं लोकपालानां स्वमुखैरर्चितेश्वरम्।
रामस्तुलितकैलासमरातिं वह्वमन्यत।।89।।

तस्य स्फुरति पौलस्त्यः सीतासंगमशंसिनि।
निचखानाधिकक्रोधः शरं सव्येतरे भुजे।।90।।

रावणस्यापि रामास्तो भित्त्वा हृदयमाशुगः।
विवेश भुवमाख्यातुमुरगेभ्य इव प्रियम्।।91।।

रावण को रथपर और राम को पैदल देखकर इन्द्र ने अपना वह रथ भेजा जिसमें पीले रंग के घोड़े जुते हुए थे।।84।। उस रथ की ध्वजा आकाश-गंगा की लहरों के पवन से फड़फड़ाती चल रही थी, इन्द्र के सारथी मातलिका हाथ थामकर रामचन्द्र जी भी उस पर चढ़ गए।।85।। मातलि ने उन्हें इन्द्र का वह कवच भी पहना दिया, जिस पर राक्षसों के अस्त्र ऐसे लगते थे मानो वे अस्त्र न हों वरन् कमल के फूल हों।।86।। आज बहुत दिनों पर राम और रावण ने एक-दूसरे को देखा। आज उन दोनों को अपनी वीरता दिखाने का अवसर मिला और इस प्रकार तीनों लोकों में जो राम-रावण युद्ध प्रसिद्ध था वह आज सफल हो गया।।87।। राक्षसों के मारे जाने के कारण रावण अकेला रह गया था, फिर भी अपनी बहुत-सी बाहों और बहुत-से मुखों के कारण वह ऐसा जान पड़ता था मानो उसके साथ बहुत-से राक्षस हों।।88।। जिस रावण ने इन्द्र आदि लोकपालों को जीत लिया था, जिसने अपने सिर काट-काटकर शिवजी को चढ़ा दिए थे और जिसने कैलास पर्वत को उँगलियों पर टाँग लिया था, उसे देखकर राम ने समझ लिया कि वह कुछ कम पराक्रमी नहीं है।।89।। रावण ने बड़ा क्रोध करके राम की उस दाहिनी भुजा में बाण मारा जो फड़कती हुई शुभ सूचना दे रही थी कि अब सीता के प्राप्त होने में देर नहीं है।।90।। राम ने जो बाण छोड़ा वह रावण की छाती को छेदकर पाताल को चला गया मानो पाताला-वासियों को रावण के मरने की शुभ सूचना देने पहुँच गया हो।।91।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचसैव तयोर्वाक्यमस्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः।
अन्योन्यजयसंरम्भो ववृधे वादिनोरिव।। 92।।

विक्रमव्यतिहारेण सामान्याभूद्द्वयोरपि।
जयश्रीरन्तरा वेदिर्मत्तवारणयोरिव।। 93।।

कृतप्रतिकृतप्रीतैस्तयोर्मुक्तां सुरासुरैः।
परस्परशरव्राताः पुष्पवृष्टिं न सेहिरे।। 94।।

अयःशंकुचितां रक्षः शतघ्नीमथ शत्रवे।
हृतां वैवस्वतस्येव कूटशाल्मलिमक्षिपत्।। 95।।

राघवो रथमप्राप्तां तामाशां च सुरद्विषाम्।
अर्द्धचन्द्रमुखैर्बाणैश्चिच्छेद कदलीसुखम्।। 96।।

अमोघं संदधे चास्मै धनुष्येकधनुर्धरः।
ब्राह्ममस्त्रं प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम्।। 97।।

तद्व्योम्नि शतधा भिन्नं ददृशे दीप्तिमन्मुखम्।
वपुर्महोरगस्येव करालफणमण्डलम्।। 98।।

वे दोनों क्रोध करके एक दूसरे को ललकराते हुए और अस्त्र को शस्त्र से काटते हुए लड़ रहे थे। उनका क्रोध उसी प्रकार बढ़ता जा रहा था, जैसे विजय के लिए शास्त्रार्थ करने वालों का क्रोध बढ़ता चलता है। ।92।। कभी राम अधिक पराक्रम दिखाते थे और कभी रावण। इसलिये वियजश्री कभी राम के पास जाती थी तो कभी रावण के पास। उसकी दशा वैसे ही हो गई, जैसे लड़ते हुए मतवाले हाथियों के बीच की दीवार की हो। ।93।। जब राम बाण चलाते या रावण का वार रोकते तब देवता उनके ऊपर फूल बरसाने लगते और जब राम पर रावण प्रहार करता या उनका वार रोकता तब असुर उस पर फूल बरसाने लगते। पर राम के अस्त्र रावण के ऊपर बरसते हुए फूलों को ऊपर ही तितर-बितर कर देते और रावण के बाण राम पर बरसने वाले फूलों को आकाश में ही छितरा देते थे। ।94।। रावण ने लोहे की कीलों से जुड़ी हुई वह शतघ्नी रामपर चलाई जो यमराज के अस्त्र कूटशाल्मली के समान भयंकर थी। ।95।। उस समय राक्षसों को पूरी आशा हो गई कि इस अस्त्र से तो राम अवश्य ही समाप्त हो जाएँगे। पर राम ने उस शतघ्नी को रथ तक पहुँचने के पहले ही तिरछी नोकवाले बाणों से ऐसी सरलता से टुकड़े-टुकड़े कर डाला मानो केला छील रहे हों। यह देखकर राक्षसों की रही-सही आशा भी भंग हो गई। ।96।। राम कोई साधारण धनुषधारी नहीं थे। उन्होंने रावण को मारने के लिए वह बाह्मास्त्र चलाया जो कभी व्यर्थ ही नहीं जाता। वह ऐसा था मानो सीता के शोक रूपी काँटों को निकालने की अचूक औषधि हो। ।97।। वह ब्रह्मरस्त्र आकाश में जाते ही दस भागों में फट गया और उसमें से जो आग निकली वह ऐसी थी मानो फणों का चमकीला मण्डल लिए हुए शेषनाग ही उतर आए हों। ।98।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेन मन्त्रप्रयुक्तेन निमेषार्धादपातयत्।
स रावणशिरः पङ्क्तिमज्ञातव्रणवेदनाम्।। 99।।
बालार्कप्रतिमेवाप्सु वीचिभिन्ना पतिष्यतः।
रराज रक्षःकायस्य कण्ठच्छेदपरम्परा।। 100।।
मरुतां पश्यतां तस्य शिरांसि पतितान्यपि।
मनो नातिविशश्वास पुनः संधानशङ्किनाम्।। 101।।
अथ मदगुरुपक्षैर्लोकपालद्विपानामनुगतमलिवृन्दैर्गण्डभित्तीर्विहाय।
उपनतमणिबन्धे मूर्ध्नि पौलस्त्यशत्रोः सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षं पपात।। 102।।
यन्ता हरेः सपदि संहृतकार्मुकज्यामापृच्छय राघवमनुष्ठितदेवकार्यम्।
नामाङ्करावणशराङ्कितकेतुयष्टिमूर्ध्वं रथं हरिसहस्त्रयुजं निनाय।। 103।।
रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धां प्रगृह्य प्रियां
प्रियसुहृदि विभीषणे संगमय्य श्रियं वैरिणः।
रविसुतसहितेन तेनानुयातः ससौमित्रिणा
भुजविजितविमानरत्नाधिरुढःप्रतस्थे पुरीम्।। 104।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंश महाकाव्ये
रावणवधो नाम द्वादशः सर्गः।।

मन्त्र से चलाए हुए उस ब्रह्मास्त्र से राम ने रावण के दसों सिरों को आधे पल में काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया, जिससे रावण को तनिक भी कष्ट न हुआ।।99।। रावण के सिर कटकर गिरते हुए ऐसे अच्छे लगते थे जैसे चंचल लहरों में प्रातःकाल के सूर्य का प्रतिबिम्ब शोभा देता है।।100।। रावण के कटे हुए सिरों को देखकर भी देवताओं को विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं ये फिर न जुड़ जाएँ।।101।। जिस राम पर राज्याभिषेक का जल छिड़का जाने वाला था, उन्हीं के सिर पर देवताओं ने वे फूल बरसाए, जिनकी सुगन्ध पाकर मद से भीगी हुई पाँखों वाले भौंरे दिशाओं के हाथियों मद बहाने वाले कपोलों को छोड़कर रस लेने उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़े।।102।। राम ने धनुंष की डोरी उतार दी; क्योंकि उन्होंने देवताओं का काम पूरा कर दिया था। इन्द्र के सारथी मातलि उनसे आज्ञा लेकर अपना सहस्त्रों घोड़ोंवाला रथ लेकर स्वर्ग में चला गया। उस रथ की ध्वजा पर अभी तक रावण के नाम खुदे हुए बाणों के चिह्न पड़े हुए थे।।103।। राम ने रावण की राज्यश्री विभीषण को सौंप दी और फिर सीता जी को अग्नि में शुद्ध करके सुग्रीव, विभीषण और लक्ष्मण के साथ अपने बाहुबल से जीते हुए पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या की और लौट चले।।104।।

महाकवि श्रीकालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'रावण-वध' नाम का
बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। त्रयोदशः सर्गः ।।

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच।। 1।।
वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम्।। 2।।
गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरंगे।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः।। 3।।
गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।
अविन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन।। 4।।
तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा।। 5।।
नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते।। 6।।

तेरहवाँ सर्ग

जिसका गुण शब्द है, उस आकाश में विमान पर चढ़े जाते हुए गुणी तथा राम कहलाने वाले विष्णु भगवान्, समुद्र को देखकर सीता जी से एकान्त में बोले।।1।। हे सीते! इस फेनसे भरे हुए समुद्र को तो देखो, जिसे मेरे बनाए हुए पुलने मलय पर्वत तक दो भागों में वैसे ही बाँट दिया है जैसे सुन्दर तारों से भरे हुए शरद् ऋतु के खुले आकाश को आकाशगंगा दो भागों में बाँट देती है।।2।। [जानती हो समुद्र कैसे बना है!] जब हमारे पूर्वज महाराजा सगर अश्वमेघ यज्ञ कर रहे थे, तब कपिल जी उनका घोड़ा पाताल लोक में चुरा ले गए। उस समय सगरजी के पुत्रों ने घोड़े की खोज करने के लिए जो सारी पृथ्वी खोद डाली थी, उसी से यह इतना लम्बा-चौड़ा समुद्र बन गया है।।3।। [यह समुद्र है बड़े काम का।] देखो इसी में से सूर्य की किरणें जल खींचती हैं और [पृथ्वी पर बरसाती हैं।] इसी में रत्न बढ़ते हैं, अपने शत्रु बड़वानल को भी यह अपनी गोद में पालता है और सुखकारी प्रकाश वाला चन्द्रमा भी इसी में से उत्पन्न हुआ है।।4।। यह अपना रूप भी सदा बदलता रहता है और यह इतना बड़ा है कि दसों दिशाओं में दूर तक फैला हुआ है। इसलिये जैसे विष्णु भगवान् के विषय में नहीं कहा जा सकता कि वे कैसे और कितने बड़े हैं? वैसे ही इसके विषयों में भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह ऐसा है या इतना बड़ा है।।5।। जब आदिपुरुष विष्णु भगवान् तीनों लोकों का संहार कर चुकते हैं, तब यहीं पहुँचकर योगनिद्रा में सोते हैं और इनकी नाभि से निकले हुए कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी सदा इनके गुण गाया करते हैं।।6।। जैसे शत्रुओं के डर से राजा लोग किसी धर्मात्मा और तटस्थ राजा की शरण लेते हैं वैसे ही उन सैकड़ों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः।
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते।।7।।
रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहुर्तवक्त्राभरणं वभूव।।8।।
मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृतिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः।।9।।
ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्धैरूर्ध्वं वितन्चन्ति जलप्रवाहान्।10।।
मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्र फेनान्।
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम्।।11।।
वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः।
सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः।।12।।
तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम्।।13।।
प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्त्तवेगाद्भ्रमता घनेन।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः।।14।।

पहाड़ों ने भी इसकी शरण ली थी जिनके पंख इन्द्र ने काट दिए थे और जिनका अभिमान इन्द्र ने चूर कर दिया था।।7।। सृष्टि के आरम्भ में जब वराह भगवान् पृथ्वी को पाताल ले जा रहे थे उस समय प्रलय से बढ़ा हुआ स्वच्छ जल क्षण भर के लिए उनका घूँघट बन गया था।।8।। देखो! दूसरे लोग केवल स्त्रियों का अधरपान करते हैं, अपना अधर उन्हें नहीं पिलाते। पर समुद्र इस बात में भी औरों से बढ़कर है क्योंकि जब नदियाँ ढीठ होकर चुम्बन के लिए अपना मुख इसके सामने बढ़ाती हैं तब यह बड़ी चतुराई से अपना तरंग-रूपी अधर उन्हें पिलाता और उनका अधर स्वयं पीता है।।9।। यह देखो ये बड़े-बड़े मगरमच्छ अपना मुँह खोलकर मछलियों को लिए-दिए समुद्र का जल पी जाते हैं और फिर मुँह बन्द करके अपने सिर के छेदों से पानी की जलधाराएँ छोड़ने लगते हैं।।10।। इन मगरमच्छों के अचानक उठने से समुद्र की फटी हुई फेन को तो देखो। इनके गलों पर क्षण भर के लिए लगी हुई यह फेन ऐसी दिखाई देती है मानो इनके कानों पर चँवर टँगे हुए हो।।11।। तट पर बड़ी-बड़ी लहरों जैसे दिखाई देने वाले ये साँप तट का वायु पीने के लिए बाहर निकल आए हैं। पर जब सूर्य की किरणों से इनके मणि चमक जाते हैं तब ये पहचान में आ जाते हैं।।12।। देखो, लहरों के झोंकों में तुम्हारे अधरों के समान लाल-लाल मूँगे की चट्टान से टकरा जाने से इन जीवित शंखों के मुँह छिद गए हैं और उस पीड़ा से ये बेचारे बड़ी कठिनाई से इधर-उधर चल पा रहे हैं।।13।। वह देखो! काले-काले बादल समुद्र का पानी लेने आए हैं और समुद्र की भँवर के साथ-साथ बड़ी तीव्र गति से चक्कर काट रहे हैं। इस समय यह समुद्र ऐसा जान पड़ रहा है मानो मन्दराचल फिर इसे मथे डाल रहा हो।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा।। 15।।

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायताक्षि।
मामक्षमं भण्डानकालहानेर्वेत्तीव विम्बाधरबद्धतृष्णाम्।। 16।।

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः।
प्राप्ता मुहूर्त्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम्।। 17।।

कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम्।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः।। 18।।

क्वचित्पथा संचरते सुराणां कचिद्घनानां पततां क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम्।। 19।।

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते।। 20।।

करेण वातायनलम्बितेनस्पृष्टस्त्वया तन्वि कुतूहलिन्या।
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते।। 21।।

देखो! दूर होने से पहिए की हाल के समान बहुत पतला और ताड़ तथा तमाल आदि वृक्षों के कारण नीला दिखाई देने वाला समुद्र-तट ऐसा जान पड़ रहा है जैसे चक्र की धार पर जंग लग गया हो।।15।। हे सुलोचने! समुद्र तट का वायु तुम्हारे मुख पर केतकी का पराग छिड़क रहा है, मानो वह यह जान गया है कि मैं तुम्हारे अधरों को चूमने ही वाला हूँ और अब अधिक शृंगार की बाट नहीं देखूँगा।।16।। यह देखो हम लोग विमान के तीव्र चलने के कारण क्षण भर में ही समुद्र के उस तट पर पहुँच गए जहाँ वालू पर सीपों के फैल जाने से मोती बिखरे पड़े हैं और फलों के भार से सुपारी के पेड़ झुके खड़े हैं।।17।। हे कदली के समान जाँघों, वाली मृगनयनी! पीछे की और तो देखो! दूर निकल आने से यह जंगलों से भरी हुई भूमि ऐसी दिखाई पड़ रही है, मानो समुद्र में से अभी अचानक निकल पड़ी हो।।18।। देखो! मैं जिधर चाहता हूँ उधर ही यह विमान घूम जाता है। यह कभी तो देवताओं के मार्ग में उड़ता चलता है, कभी बादलों के मार्ग में पहुँच जाता है और कभी पक्षियों के मार्ग में उड़ने लगता है।।।19।। ऐरावत के मद की गन्ध में बसा हुआ और आकाशगंगा की लहरों से ठण्ढाया हुआ आकाश का वायु तुम्हारे मुख पर दोपहर की गर्मी से छाए हुई पसीने की बूँदों को पीता चल रहा है।।20।। हे चण्डी! जब तुम खेल-खेल में अपना हाथ विमान से बाहर निकाल कर बादल को छू लेती हो, तब तुम्हारे मणिबन्ध के चारों ओर बिजली कौंध जाती है। उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो बादल तुम्हारे हाथ में दूसरा कंगन पहना रहे हो।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममणलानि।।22।।
सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्।।23।।
त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः।।24।।
मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि।।25।।
एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम्।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम्।।26।।
गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमधर्मोद्गतकेसरं च।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवर्यास्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे।।27।।
पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम्।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्घनगर्जितानि।।28।।
आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः।।29।।

नीचे देखो! रावण आदि राक्षासों के मारे जाने की बात सुनकर इन चीरधारी तपस्वियों ने समझ लिया है कि अब कोई खटका नहीं रहा है इसलिये वे नई कुटिया बना-बनाकर, तोपवन में सुख से बसने लगे हैं।।22।। यह वही स्थान है जहाँ तुम्हें ढूँढते हुए मैंने पृथ्वी पर पड़ा हुआ तुम्हारा बिछुआ देखा था। चुपचाप पड़ा हुआ वह ऐसा लग रहा था मानो तुम्हारे चरणों से अलग हो जाने के दुःख से चुप हो गया हो।।23।। हे भीरु! रावण तुम्हें जिस मार्ग से ले गया था उस मार्ग की लताएँ मुझ पर कृपा करके तुम्हारे जाने के मार्ग बताना चाहती थीं पर बोल न सकने के कारण उन्होंने अपनी पत्तोंवाली डालियाँ ही उधर झुकाकर मुझे तुम्हारा ठिकाना दिया था।।24।। हरिणियों ने भी जब देखा कि मुझे तुम्हारे जाने के मार्ग का ज्ञान नहीं है तब वे अपनी उठी हुई पलकों वाली आँखें दक्षिण दिशा की ओर करके मुझे मार्ग समझाने लगी थीं।।25।। देखो! यह जो आगे माल्यवान् पर्वत की ऊँची चोटी दिखाई देती है, यहाँ जब बादलों ने नया जल बरसाना आरम्भ किया, उस समय तुम्हारे न रहने से मेरी आखें भी जल बरसाने लगी थीं।।26।। उस समय वर्षा के कारण सरोवरों में उठी हुई सोंधी गन्ध, अधखिली मञ्जरियों वाले कदम्बके फूल और भौरों के मनोहर स्वर तुम्हारे बिना मुझे बहुत कष्ट दे रहे थे।।27।। जब बादल गरजते थे और गुफाओं में उसकी प्रतिध्वनि होने लगती थी तब, मुझे वे दिन स्मरण हो आए जब बादलों के गर्जन से डरकर तुम मुझसे लिपट जाती थीं। तुम समझ नहीं सकतीं कि माल्यवान् पर्वत पर वे पावस के दिन मैंने कितने कष्ट से बिताए।।28।। वर्षा के कारण वहाँ की धरती से जो भाप, निकली, उससे कंदलियों की कलियाँ खिल उठीं और वैसी ही लाल-लाल हो गई जैसे विवाह के समय हवन का धुआँ लगने से तुम्हारी आँखें लाल हो गई थीं। अतः उन्हें देखकर तुम्हारा स्मरण हो आने से मैं बेचैन हो जाता था।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः।। 30 ।।
अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि।। 31 ।।
इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्।
त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः।। 32 ।।
अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारपङ्क्तयस्त्वाम्।। 33 ।।
एषा त्वया पेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे।। 34 ।।
अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरंगावतेन विनीतखेदः।
रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः।। 35 ।।
भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम्।। 36 ।।

देखो! बहुत ऊँचाई से देखने के कारण और बेंत के जंगलो से ढके होने के कारण पम्पासरोवर का जल ठीक-ठीक दिखाई नहीं दे रहा है। फिर भी जल पर तैरते हुए सारस कुछ-कुछ दिखाई पड़ जाते हैं।।30।। हे प्रिये! यहाँ चकवा-चकवी के जोड़े एक दूसरे को प्रेमपूर्वक कमल का केसर दिया करते थे, तुमसे इतनी दूर होने के कारण उन्हें देख-देखकर मैं यही सोचा करता था कि मुझे भी ये दिन कब देखने को मिलेंगे।।31।। तुम्हारे वियोग में मैं ऐसा पागल हो गया था कि एक दिन स्तन के समान गुच्छों वाली इस पतली अशोक लता को मैंने यह समझकर गले लगाना चाहा था कि तुम ही हो। जैसे ही मैं उसे गले लगाने चला तो मेरा यह पागलपन देखकर रोते हुए लक्ष्मण ने मुझे वहाँ से हटा लिया।।32।। यह देखो! विमान के नीचे लटकती हुई सोने की किङ्किणियों का शब्द सुनकर गोदावरी नदी के सारसों की पाँतें ऊपर उड़ीं चली आ रही हैं मानो ये तुम्हारी अगवानी करने आ रही हों।।33।। आज बहुत दिनों पर इस पंचवटी को देखकर मेरा जी खिल उठा है। वह देखो! वहाँ के मृग ऊपर सिर उठाकर विमान को देख रहे हैं। यहीं पर तो तुमने अपनी पतली कमर पर घड़े ले-लेकर आम के वृक्षों को खींचकर पाला-पोसा था।।34।। मुझे वे दिन स्मरण हो रहे हैं, जब मैं यहाँ एकान्त में बेंत की झोंपड़ी में तुम्हारी गोद में सिर रखकर सोया करता था और गोदावरी का ठण्डा वायु मेरे आखेट की थकावट मिटाया करता था।।35।। यह देखो! आगे ही उन तपस्वी अगस्त्य ऋषिका आश्रम है, जिन्होंने केवल भौंहे तानकर ही राजा नहुष को इन्द्र पद से नीचे ढकेल दिया था। ये ही जब उदय होते हैं तब वर्षा का सब गँदला जल स्वच्छ कर देते हैं।।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम्।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा।। 37।।
एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि।
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम्।। 38।।
पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोना।
समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम्।। 39।।
तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसंगीतमृदङ्गघोषः।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति।। 40।।
हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः।। 41।।
अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसंदर्शितमेखलानि।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि।। 42।।
एषोऽक्षमालावयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते।। 43।।
वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किंचित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्त्रार्चिषि संनिधत्ते।। 44।।

उसी यशस्वी ऋषिकी, गार्हपत्य और आहवनीय अग्नियों से हवन सामग्री की गन्ध से मिला हुआ वह धुआँ विमान के पास तक उठा चला आ रहा है, जिसे सूँघते ही मेरी आत्मा पवित्र हो गयी है।।37।। हे भामिनी! यह आगे शातकर्णी ऋषि का पञ्चाप्सर नाम का क्रीडा-सरोवर है जो चारों ओर काले-काले जङ्गलोंसे घिरा हुआ दूर से दिखाई पड़ रहा है मानो बादलों के बीच में कुछ-कुछ दिखाई देने वाले चन्द्रमा हों।।38।। पहले ये महर्षि तपस्या करते समय मृगों के साथ घास चरा करते थे। इनकी ऐसी तपस्या देखकर इन्द्र को यह भय हुआ कि कहीं ये हमारा इन्द्रासन न छीन लें, इसलिए इनका तप डिगाने के लिए इन्द्र ने एक साथ पाँच अप्सराओं का जाल इन पर फेंका और ये बेचारे फँस गए।।39।। यह जो नाच-गाना सुनाई दे रहा है, यह जल के भीतर बने हुए उन्हीं के भवन का है। वही के मृदङ्ग की ध्वनि आकाश में पुष्पक-विमान की छतरी से टकराकर गूँज रही है।।40।। यह जो चार अग्नियों के बीच में और ऊपर सूर्य की किरणों से तपते हए तपस्वी बैठे हैं इनका नाम तो सुतीक्ष्ण [अर्थात् बड़ा तीखा] है पर ये हैं बड़े सीधे।।41।। इनके तप से डरकर इन्द्र ने इनके पास भी अप्सराओं को भेजा। वे मुसकरा-मुसकराकर इन पर तिरछी चितवन चलाती थीं और किसी न किसी बहाने अपनी मेखला भी उघाड़कर इन्हें दिखा देती थीं, पर उनकी यह सब चटक-मटक इन्हें न लुभा सकी।।42।। देखो! वे मुझे देखकर रुद्राक्ष की माला बँधी हुई, मृगों को सहलाने वाली और कुश उखाड़ने वाली अपनी दाहिनी भुजा उठाकर मेरा स्वागत कर रहे हैं।।43।। ये मौन रहते हैं इसलिये केवल सिर हिलाकर ही इन्होंने मेरे प्रणाम को स्वीकार किया है। विमान के बीच में आ जाने से जो इनकी दृष्टि सूर्य से अलग हो गई थी वह फिर इन्होंने सूर्य में लगा ली है।।44।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः।
चिराय संतर्प्य समिद्भिरग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्।। 45।।
छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्टसंभाव्यफलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थित सुपुत्रेष्विव पादपेषु।। 46।।
धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः कुकुद्मानिव चित्रकूटः।। 47।।
एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः।। 48।।
अयं सुजातोऽनुगिरिं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।
यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्ते।। 49।।
अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिवृक्षम्।
वनं तपःसाधनमेतदत्रेराष्क्रितोदग्रतरप्रभावम्।। 50।।
अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्।
प्रवर्तयामास किलानसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम्।। 51।।

यह आगे शरणागत की रक्षा करने वाले अग्निहोत्री शरभङ्ग ऋषिका तपोवन है, जिन्होंने बहुत दिनों तक अग्नि को समिधा से तृप्त करके अन्त में अपना पवित्र शरीर भी उसमें हवन कर दिया था।।45।। जैसे सुपुत्र अपने पिता के धर्म का पालन करते हैं, वैसे ही अतिथि-सेवा का काम उनके बदले ये आश्रम के वृक्ष करते हैं जिनकी छाया में बैठकर पथिक अपनी थकावट दूर करते हैं और जिनमें बड़े मीठे-मीठे फल भी लगते हैं।।46।। हे सुन्दरी! मस्त साँड़ के समान यह चित्रकूट पर्वत मुझे बड़ा सुहावना लग रहा है। इसकी गुफा ही इसका मुख है, इससे निकलने वाली जल की धारा का शब्द ही साँड़ की डकार है, इसकी चोटी ही इसकी सींगे हैं और उस पर छाए हुए बादल ही मानो सींगों पर लगी हुई कीचड़ हैं।।47।। यह लो मन्दाकिनी आ गई। इसका जल कैसा स्वच्छ और धीरे-धीरे बह रहा है। दूर होने के कारण ये कितनी पतली दिखाई दे रही है। चित्रकूट पर्वत के नीचे बहती हुई ये ऐसी जान पड़ती है, मानो पृथ्वी-रूपी नायिका के गले में मोतियों की माला पड़ी हुई हो।।48।। पहाड़ के ढाल पर जो तमाल का वृक्ष दिखाई दे रहा है, यह वही है जिसकी कोंपल का कर्णफूल बनाकर मैंने तुम्हारे कान में पहनाया था और जो तुम्हारे जौ के अंकुर के समान पीले गालों पर लटकता हुआ बड़ा सुन्दर लगता था।।49।। यह आगे अत्रि मुनिका तपोवन है, जहाँ के सिंह आदि पशु बिना मारे-पीटे ही ऐसे सीधे हो गए हैं किसी से कुछ बोलते ही नहीं। यह तपोवन इतना प्रभावशाली है कि यहाँ बिना फूल आए ही वृक्षों में फल लग जाते हैं।।50।। अत्रि की पत्नी अनसूया जी ऋषियों के स्नान के लिए उन त्रिपथगा गंगा जी को यहाँ ले आई हैं जिसमें से सप्तर्षिगण स्वर्ण कमल चुना करते हैं और जो शिवजी के सिर पर माला के समान सुन्दर लगती है।।51।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणममी समध्यासितवेदिमध्याः।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि।।52।।

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति।।53।।

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव।।54।।

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव।।55।।

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा।।56।।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः।।57।।

समुद्रपत्न्योर्जलसंनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्तिशरीरबन्धः।।58।।

इस आश्रम के वृक्षों के तले वेदियों पर तपस्वी लोग वीरासन लगा-लगाकर ध्यान करते हैं और यहाँ के वृक्ष भी वायु न चलने के कारण ऐसे स्थिर खड़े हैं मानो वे भी योग साध रहे हों।।52।। यह काला-काला वही वट का पेड़ है, जिसकी तुमने मनौती मानी थी। इसमें जो लाल-लाल फली हैं उनसे यह पेड़ ऐसा लग रहा है जैसे नीलम के ढेर में बहुत से लाल भरे हों।।53।। हे सुन्दरी! देखो यमुना की साँवली लहरों से मिली हुई, उजली लहरों वाली गंगा जी कैसी सुन्दर लग रही हैं? कहीं तो ये चमकने वाली इन्द्रनील मणियों से गुँथी हुई माला-जैसी लगती हैं, कहीं, नीले और श्वेत कमलों की मिली हुई माला-जैसी दिखाई पड़ रही हैं।।54।। कहीं साँवले रंग के हंसों से मिले हुए उजले रंग के राजहंसों की पाँत के समान शोभा दे रही है, कहीं श्वेत चन्दन से लिप्त हुई पृथ्वी पर बीच-बीच में काले अगर जैसी लग रही हैं।।55।। कहीं-कहीं ये वृक्ष के नीचे की उस चाँदनी के समान लगती है, जिसके बीच-बीच में पत्तों की छाया पड़ी हो और कहीं-कहीं पर शरद् ऋतु के उन उजले बादलों के समान जान पड़ती है। जिनके बीच-बीच में नीला आकाश झाँक रहा हो।।56।। और कहीं पर भस्म पुते हुए शिवजी के शरीर के समान दिखाई पड़ रही हैं जिस पर काले-काले सर्प लिपटे हुए हों।।57।। समुद्र की इन दो पत्नियों अर्थात् गंगा-यमुना के संगम में जो स्नान करके पवित्र होते हैं, वे तत्वज्ञानी न होने पर भी संसार के बन्धनों से छूट जाते हैं।।58।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय।
जटासु बद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः कैकेयि कामाः फलितास्तवेति।। 59।।

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु, यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।। 60।।

जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम्।
तुरंगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि।। 61।।

यां सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे संभावयत्युत्तरकोशलानाम्।। 62।।

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरंगहस्तैरुपगूहतीव।। 63।।

विरक्तसंध्याकपिशं पुरस्ताद्यतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते।
शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः।। 64।।

श्रद्धा श्रियं पालितसंगराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः।
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन्संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे।। 65।।

यह आगे वही निषादराज गुह का नगर है, जहाँ मैंने मुकुटमणि उतारकर जटा बाँधी थी और जिसे देखकर सुमन्त्र यह कहकर रोने लगे थे कि हे कैकेयी! तेरी इच्छा सफल हो गई।।59।। जैसे ऋषि लोग कहते हैं कि अव्यक्त से [अर्थात् प्रकृति से] बुद्धि उत्पन्न हुई वैसे ही यह सरयू नदी भी उस मानसरोवर से निकली हैं, जिसके कमलों का पराग यक्षों की स्त्रियाँ अपने स्तनों में लगाती हैं।।60।। यह नदी इच्वाकुवंशी राजाओं की राजधानी अयोध्या से लगी हुई बहती है। इसके तट पर जहाँ तहाँ यज्ञों के खम्भे गड़े हुए हैं जिनमें बाँधकर पशुओं की बलि दी जाती थी। अश्वमेघ करने के अन्त में सूर्यवंशी राजाओं ने इसमें स्नान किया जिससे इसका जल पवित्र हो गया है।।61।। मैं इस नदी का बड़ा आदर करता हूँ, क्योंकि यह उत्तर कोशल के राजाओं की धाय है। इसी के बालू में खेल-खेलकर वे सब पलते हैं और इसी का मीठा जल पीकर पुष्ट होते हैं।।62।। माननीय महाराज दशरथ से बिछुड़ी हुई मेरी माता के ही समान यह सरयू अपने ठंडे वायु वाले तरंग-रूपी हाथ उठा रही है, मानो इतने ऊँचे से ही मुझे गले लगाना चाहती हो।।63।। देखो! लाल सन्ध्या के समान जो धूल पृथ्वी से उठ रही है उससे जान पड़ता है कि हनुमान जी से मेरे आने का समाचार सुनकर भरत जी सेना लेकर मेरा स्वागत करने आ रहे हैं।।64।। खर-दूषण आदि राक्षसों को मारकर मैं जब लौटा था, उस समय जैसे लक्ष्मण ने तुम्हें मेरे हाथ में सुरक्षित रूप से सौंप दिया था, वैसे ही अब मैं अवधि पूरी करके जो लौटा हूँ, तो जान पड़ता है कि सज्जन भरत मुझे सुरक्षित राज्यलक्ष्मी सौंप देंगे।।65।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः।
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति।।66।।
पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम्।।67।।
एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीयामिच्छां विमानमधिदेवतया विदित्वा।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभिरुद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतानुगाभिः।।68।।
तस्मात्पुरःसरविभीषणदर्शितेन सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः।
यानादवातरददूरमहीतलेन मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः।।69।।
इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य स भ्रातरं भरतमर्घ्यपरिग्रहान्ते।
पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके।।70।।
श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियांश्च प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान्।
अन्वग्रहीत्प्रणमतः शुभदृष्टिपातैर्वार्तानियोगमधुराक्षरया च वाचा।।71।।
दुर्जातवन्धुरयमृक्षहरीश्वरो मे पौलस्त्य एष समरेषु पुरः प्रहर्ता।
इत्यादृतेन कथितौ रघुनन्दनेन व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे।।72।।

वल्कलवस्त्र पहने, पैदल चलते हुए हाथों में पूजा की सामग्री लिए मन्त्रियों के साथ भरत मेरे ही पास आ रहे हैं। देखो, इनके आगे-आगे वशिष्ठ जी चल रहे हैं और पीछे-पीछे सेना चली आ रही है।।66।। जैसे किसी युवा पुरुष की गोद में कोई सुन्दर स्त्री आकर बैठ जाय और वह उससे भोग न करके तलवार की धार पर चलने के समान कठोर, इन्द्रियों को वश में रखने का व्रत कर ले, वैसे ही भरत ने भी पिता की दी हुई राज्यलक्ष्मी को भोग करने की शक्ति रहते हुए भी मेरे कारण उसका भोग न करके कठिन असिधार व्रत का पालन किया।।67।। जब राम ऐसा कह रहे थे, उसी समय राम की इच्छा को ही विमान का चालक मानकर वह विमान आकाश से नीचे उतर आया और भरत जी के पीछे चलने वाली सारी जनता आँख फाड़-फाड़कर उन्हें देखने लगी।।68।। सेवा में चतुर सुग्रीव के हाथों के सहारे स्फटिक मणियों से जड़ी हुई सीढ़ी से रामचन्द्र जी विमान से उतरे और विभीषण आगे-आगे मार्ग दिखाते चले।।69।। विनीत राम ने पहले इक्ष्वाकुवंश के गुरु वशिष्ठ जी को प्रणाम किया। फिर अर्घ्य ग्रहण करके ऑखों में आँसू भरकर उन्होंने पहले भरत जी को छाती से लगा लिया फिर उनके उस मस्तक को सूँघा, जिसने राम की भक्ति के कारण राज्याभिषेक को भी अस्वीकार कर दिया था।।70।। फिर उन वृद्ध मन्त्रियों से मिले जो मूँछ और डाढ़ी बढ़ जाने से ऐसे दिखाई दे रहे थे, जैसे घने बरोह वाले वट के वृक्ष हों। राम ने प्रेम-भरी आँखों से मधुर भाषा में उनसे कृपा पूर्वक कुशल-मंगल पूछा।।71।। भरत जी से सुग्रीव का परिचय देते हुए राम ने कहा कि ये वानरों और भालुओं के सेनापति हैं और बड़े गाढ़े दिनों में हमारे काम आए हैं। फिर विभीषण का परिचय देते हुए कहा कि ये पुलस्य-कुल में उत्पन्न हुए विभीषण हैं। ये युद्ध के समय हमारे आगे बढ़-बढ़कर शत्रुओं पर प्रहार करते थे। यह सुनकर भरत जी ने लक्ष्मण को छोड़कर पहले उन्हीं दोनों का स्वागत किया।।72।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैनमुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग।
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुरःस्थलेन।। 73।।

रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान्।
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते।। 74।।

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां भेजे रथान्दशरथप्रभवानुशिष्टः।
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयैर्न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः।। 75।।

भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताकमध्यास्त कामगति सावरजो विमानम्।
दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्यस्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम्।। 76।।

तत्रेश्वरेणा जगतां प्रलयादिवोर्वी वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः।
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रात्प्रत्युद्धतां धृतिमयीं भरतो ववन्दे।। 77।।

लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं तद्वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधोरन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य।। 78।।

तब भरत जी लक्ष्मण से मिले और प्रणाम के लिए झुका हुआ लक्ष्मण का सिर उठाकर मेघनाद के प्रहारों से कठोर हुई उनकी छाती को अपनी भुजाओं से दबाते हुए उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।।73।। राम के कहने से वानरों और भालुओं के सेनापति मनुष्यों का वेश बना-बनाकर हाथियों पर चढ़ गए। उन हाथियों के मस्तक से मद की धारा बह रही थी, इसलिये उन पर चढ़ते समय उनको वही आनन्द मिला मानो झरनों वाले पहाड़ों पर ही चढ़े हुए हों।।74।। राम की आज्ञा से विभीषण और उनके साथी भी रथों पर चढ़ गए। वे रथ यद्यपि मनुष्यों ने बनाए थे फिर भी वे इतने सुन्दर थे कि राक्षासों की माया से बनाए हुए रथ भी उनकी सुन्दरता के आगे फीके पड़ गये थे।।75।। जैसे बुध और बृहस्पति का साथ होने से विशेष दर्शनीय चन्द्रमा सन्ध्या को बिजली वाले बादलों पर बैठता है, वैसे ही राम जी भरत और लक्ष्मण के साथ पताकाओं से सजे हुए और इच्छानुसार चलने वाले पुष्पक विमान पर चढ़ गए।।76।। जैसे आदि वराहने प्रलय से पृथ्वी को उबार लिया था, जैसे वर्षा बीतने पर शरद ऋतु बादलों से चाँदनी छीन लेती है, वैसे ही राम ने रावण-रूपी संकट से जिसे उबार लिया था, उस विमान में बैठी हुई सीता जी को भरत जी ने जाकर प्रणाम किया।।77।। सीता जी के जिन पवित्र चरणों ने रावण की प्रणय-प्रार्थना को दृढ़तापूर्वक ठुकरा दिया था, उन पर जब भरत जी ने बड़े भाई की भक्ति के कारण बढ़ी हुई जटावाला अपना सिर रखा तो इन दोनों ने आपस में मिलकर एक-दूसरे को पवित्र कर दिया।।78।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरःसेरण गत्वा काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण।
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः साकेतोपवनमुदारमध्युवास।। 79।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघवंशे महाकाव्ये
दण्डकात्प्रत्यागनो नाम त्रयोदशः सर्गः।।

आगे-आगे अयोध्या की जनता चल रही थीं और पीछे-पीछे वह पुष्पक विमान धीरे-धीरे चला जा रहा था, जिस पर राम बैठे हुए थे। इस प्रकार आधे कोस तक चलकर उन्होंने अयोध्या के उस सुन्दर उपवन में डेरा जमाया, जिसे पहले से ही शत्रुघ्न ने भली-भाँति सजा दिया था।।79।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'दण्डक वन से लौटना' नाम का तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। चतुर्दशः सर्गः ।।

भर्तुः प्रणाशादथ शोचनीयं दशान्तरं तत्र समं प्रपन्ने।
अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ ।। 1 ।।
उभावुभाभ्यां प्रणतौ हतारी यथाक्रमं विक्रमशोभिनौ तौ।
विस्पष्टमस्रान्धतया न दृष्टौ ज्ञातौ सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् ।। 2 ।।
आनन्दजः शोकजमश्रु-वाष्पस्तयोरशीतं शिशिरो विभेद।
गङ्गसरय्वोर्जलमुष्णतप्तं हिमाद्रिनिस्यन्द इवावतीर्णः ।। 3 ।।
ते पुत्रयोर्नैऋतस्त्रमार्गानार्द्रानिवाङ्गे सदयं स्पृशन्त्यौ।
अपीप्सितं क्षत्रकुलाङ्गनानां न वीरसूशब्दमकामतेयताम् ।। 4 ।।
क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे ।। 5 ।।
उत्तिष्ठ वत्से ननु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्त्ता शुचिना तवैव।
कृच्छं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या ।। 6 ।।
अथाभिषेकं रघुवंशकेतोः प्रारब्धमानन्दजलैर्जनन्योः।
निर्वर्तयामासुरमात्यवृद्धास्तीर्थाहृतैः काञ्चनकुम्भतोयैः ।। 7 ।।

चौदहवाँ सर्ग

उस उपवन में पहुँचकर राम अपनी माताओं से मिले, जो उसी प्रकार उदास लग रही थीं जैसे वृक्ष के कट जाने पर उसके सहारे चढ़ी हुई लताएँ मुरझा जाती है।।1।। पराक्रमी राम और लक्ष्मण ने बारी-बारी से कौशल्या और सुमित्रा को प्रणाम किया। अपने पुत्रों को देखते ही दोनों माताओं की आँखों में आँसू छलक आए इसलिये वे आँख भर उन्हें देख तो नहीं सकीं, पर पुत्रों को प्यार से पुचकारते समय उन्हें उनके स्पर्श पहचान गईं।।2।। जैसे गर्मी के दिनों में हिमालय का शीतलजल गंगा और सरयू के गर्मजल को ठंडा कर देता है, वैसे ही उन दोनों नारियों की आँखों से बहे हुए आनन्द के ठंडे आँसुओं ने शोक के गरम आँसुओं को ठंडा कर दिया।।3।। पुत्रों के शरीर के जिन अंगों पर राक्षसों के शस्त्रों के घाव बने थे, वहाँ दोनों माताएँ इस प्रकार सहलाने लगीं मानो घाव अभी हरे ही हों। उस समय अपने पुत्रों की चोटें देखकर वे इतनी व्याकुल हो गईं कि उन्हें वीर पुत्र की माँ कहलाना भी अच्छा नहीं लगा।।4।। मैं ही पति को कष्ट देने वाली कुलक्षणा सीता हूँ, यह कहते हुए सीता जी ने एक-सी भक्ति से स्वर्गवासी ससुर की दोनों रानियों के चरण छुए।।5।। माताओं ने सीता जी को उठाते हुए बड़ी प्यारी और सच्ची बात कही—उठो बेटी! तेरे ही पतिव्रत के प्रभाव से राम और लक्ष्मण इस बड़े भारी संकट से पार हुए हैं।।6।। जिस राज्यभिषेक का आरम्भ माताओं के हर्ष-भरे आँसुओं से हुआ था, उस अभिषेक को सोने के घड़ों में भरे तीर्थों से लाए हुए जल से राम को नहलाकर बूढ़े मन्त्रियों ने पूरा कर दिया।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरित्समुद्रान्सरसीश्च गत्वा रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि।
तस्यापतन्मूर्ध्नि जलानि जिष्णोर्विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः।।8।।
तपस्विवेषक्रिययापि तावद्यः प्रेक्षणीयः सुतरां बभूव।
राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा तस्योदिताऽऽसीत्पुनरुक्तदोषा।।9।।
समौलरक्षोहरिभिः ससैन्यस्तूर्यस्वनानन्दितपौरवर्गः।
विवेश सौधोद्गतलाजवर्षामुत्तोरणामन्वयराजधानीम्।।10।।
सौमित्रिणा सावरजेन मन्दमाधूतबालव्यजनो रथस्थः।
धृतातपत्रो भरतेन साक्षादुपायसंघात इव प्रवृद्धः।।11।।
प्रासादकालागुरुधूमराजिस्तस्याः पुरो वायुवशेन भिन्ना।
वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन मुक्ता स्वयं वेणिरिवाबभासे।।12।।
श्वश्रूजनानुनिष्ठतचारुवेषां कर्णीरथस्थां रघुवीरपत्नीम्।
प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः।।13।।
स्फुरत्प्रभामण्डलमानसूयं सा बिभ्रती शाश्वतमङ्गरागम्।
रराज शुद्धेति पुनः स्वपुर्यै संदर्शिता वह्निगतेव भर्त्रा।।14।।

राक्षसों और वानरों के नायकों ने नदियों, समुद्रों और तालों से जो जल लाकर दिया, वह अभिषेक के समय राम के सिर पर ही बरस रहा था जैसे विन्ध्याचल की चोटी पर बादलों का लाया हुआ जल बरसा करता है।।8।। जो राम तपस्वी के वेश में भी बहुत सुन्दर लगते थे, वे इस समय राजसी वस्त्र पहनकर और भी सुन्दर लगने लगे।।9।। वृद्ध मन्त्रियों, राक्षसों और वानरों को साथ लेकर राम ने अपनी सेना के साथ उस राजधानी अयोध्या में पैर रखा जो चारों ओर से बन्दनवारों से सजाई गई थी, जहाँ के श्वेत भवनों पर धान की खीलें बरस रही थीं और जहाँ के निवासी तुरही आदि बाजों को सुन-सुनकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे।।10।। लक्ष्मण और शत्रुघ्न राम पर चंवर डुला रहे थे और भरत हाथ में छत्र लिए हुए थे। इस प्रकार जब राम अपने भाइयों के साथ अयोध्या में प्रविष्ट हुए तब चारों भाई ऐसे जान पड़ रहे थे मानो साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों उपाय इकट्ठे हो गए हों।।11।। भवनों के ऊपर वायु से छितराया हुआ काले अगर का धुआँ ऐसा लग रहा था मानो वन से लौटकर राम ने अयोध्या पुरी का जूड़ा ही अपने हाथ से खोलकर छितरा दिया हो।।12।। भवनों के झरोखों में हाथ बाँधे दिखाई पड़ने वाली अयोध्या की महिलाओं ने हाथ जोड़कर उन सीता जी को प्रणाम किया, जो उस समय पालकी पर बैठी चल रही थीं और जिन्हें कौशल्या आदि सासों ने बड़े मनोहर ढंग से वस्त्र और आभूषणों से सजा रखा था।।13।। सीता जी के शरीर पर अब भी अमिट कान्ति वाला अंग राग लगा हुआ था जो अनसूया जी ने उनके शरीर में लगा दिया था। उससे अग्नि के समान प्रकाशमान उनका शरीर ऐसा दिखाई पड़ रहा था, मानो पुरवासियों को सीता जी की शुद्धता दिखाने के लिए राम ने उन्हें फिर अग्नि में बैठा दिया हो।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेश्मानि रामः परिबर्हवन्ति विश्राण्य सौहार्दनिधिः सुहृद्भ्यः।
बाष्पायमाणो बलिमन्निकेतमालेख्यशेषस्य पितुर्विवेश।। 15।।
कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद्गुरुर्नः।
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः।। 16।।
तथैव सुग्रीवविभीषणादीनुपाचरत्कृत्रिमसंविधाभिः।
संकल्पमात्रोदितसिद्धयस्ते क्रान्ता यथा चेतसि विस्मयेन।। 17।।
सभाजनायोपगतान्स दिव्यान्मुनीन्पुरस्कृत हतस्य शत्रोः।
शुश्राव तेभ्यः प्रभवादि वृत्तं स्वविक्रमे गौरवमादधानम्।। 18।।
प्रतिप्रयातेषु तपोधनेषु सुखादविज्ञातगतार्धमासान्।
सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान् रक्षःकपीन्द्रान्विससर्ज रामः।। 19।।
तच्चात्मचिन्तासुलभं विमानं हृतं सुरारेः सह जीवितेन।
कैलासनाथोद्वहनाय भूयः पुष्पं दिवः पुष्पकमन्वमँस्त।। 20।।
पितुर्नियोगाद्वनवासमेवं निस्तीर्य रामः प्रतिपन्नराज्यः।
धर्मार्थकामेषु समां प्रपेदे यथा तथैवावरजेषु वृत्तिम्।। 21।।

मित्र-प्रेमी राम ने पहले तो सुग्रीव आदि मित्रों को सब प्रकार की सामग्री से युक्त भवनों में ठहराया और तब वे अपने पिताजी के पूजा घर में गए। वहाँ दशरथ जी का अकेला चित्र देखकर राम की आँखों में आँसू आ गए।।15।। कैकेयी वहाँ उदास बैठी हुई थीं। राम ने हाथ जोड़कर कैकेयी से कहा—माँ! तुम्हारे ही पुण्य के प्रताप से हमारे पिताजी उस सत्य से नहीं डिगे, जिससे स्वर्ग मिलता है। यदि तुम उनसे वरदान न माँगती, तो उन्होंने जो तुम्हें वरदान देने की प्रतिज्ञा की थी वह झूठी हो जाती। यह सुनकर कैकेयी के मन में जो आत्मग्लानि भरी हुई थी कि राम मेरे लिए न जाने क्या स.चते होंगे और मैं उन्हें कैसे मुँह दिखाऊँगी, वह सब जाती रही ।।16।। वहाँ से आकर उन्होंने सुग्रीव और विभीषण आदि मित्रों का भली-भाँति स्वागत-सत्कार किया। उन लोगों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम जो कुछ चाहते हैं वह झट बिना कहे ही मिल जाता है।।17।। तब राम ने उन अगस्त्य आदि ऋषियों का सत्कार किया, जो उन्हें बधाई देने आये थे। फिर उन ऋषियों से उन्होंने अपने शत्रु रावण के जन्म से मृत्यु तक का यह वृत्तान्त सुना जो उन्हीं का गौरव बढ़ाने वाला था।।18।। ऋषियों के चले जाने पर राम ने उन राक्षसों और वानर-सेनापतियों को विदा किया, जो अयोध्या में इतने आनन्द से रहे कि उन्हें यही न ज्ञात हो पाया कि आधा महीना कब बीत गया? चलते समय सीता जी ने स्वयं अपने हाथों से उनकी पूजा की।।19।। तब राम ने स्वर्ग के फूल के समान पुष्पक विमान को भी कुबेर के पास जाने की आज्ञा दे दी जो सदा इच्छा करते ही उनकी सेवा के लिए आ जाता था और जिसे उन्होंने रावण के प्राण के साथ-साथ उससे छीन लिया।।20।। इस प्रकार पिता की आज्ञा से वनवास की अवधि बिताकर राम ने अपने पिता का राज्य फिर से पाया। जैसा वे धर्म, अर्थ और काम के साथ समान व्यवहार करते थे, उसी प्रकार वे अपने भाइयों के साथ भी समान प्रेम का व्यवहार करते।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वासु मातृष्वपि वत्सलत्वात्स निर्विशेषप्रतिपत्तिरासीत्।
षडाननापीतपयोधरासु नेता चमूनामिव कृत्तिकासु।।22।।
तेनार्थवाँल्लोभपराङ्मुखेन तेन घ्नता विघ्नभयं क्रियावान्।
तेनास लोकः पितृमान्विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री।।23।।
स पौरकार्याणि समीक्ष्य काले रेमे विदेहाधिपतेर्दुहित्रा।
उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं कृत्वोपभोगोत्सुकयेव लक्ष्म्या।।24।।
तयोर्यथाप्रार्थितमिद्रियार्थनासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु।
प्राप्तानि दुःखान्यपिदण्डकेषु संचिन्त्यमानानिसुखान्यभूवन्।।25।।
अथाधिकस्निग्धविलोचनेन मुखेन सीता शरपाण्डुरेण।
आनन्दयित्री परिणेतुरासीदनक्षरव्यञ्जितदोहदेन।।26।।
तामङ्कमारोप्य कृशाङ्गयष्टिं वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम्।
विलज्जमानां रहसि प्रतीतः पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम्।।27।।
सा दष्टनीवराबलीनि हिस्रैः संबद्धवैखानसकन्यकानि।
इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं भागीरथीतीरतपोवनानि।।28।।
तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरस्तदीप्सितं पार्श्वचरानुयातः।
आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादमभ्रंलिहमारुरोह।।29।।

जैसे स्वामिकार्तिकेय अपने छः मुखों से छत्रों कृत्तिकाओं का स्तन पीकर समान रूप से प्रेम दिखलाते थे, वैसे ही रामचन्द्र जी भी सभी माताओं को बराबर प्यार करते थे।।22।। वे निर्लोभ थे, इसलिए उन्होंने प्रजा पर कोई कर नहीं लगाया। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में प्रजा धनी हो गई। वे कहीं भी विघ्न आने ही नहीं देते थे, इसलिये सब लोग प्रसन्नता से यज्ञ आदि क्रियायें करने लगे। वे सबको ठीक मार्ग पर चलाते थे, इसलिये सब उन्हें पिता के समान मानते थे और विपत्ति पड़ने पर वे सबकी सहायता करते थे, इसलिये वे प्रजा के पुत्र भी थे।।23।। वे ठीक समय पर प्रजा का काम देख-भालकर सीता जी के साथ रमण भी करते थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो राज्यलक्ष्मी ही राम के साथ रमण करने की इच्छा से सीता का सुन्दर रूप धर लिया हो।।24।। वे दोनों उस भवन में इच्छानुसार विलास करते थे, जिसमें वनवास के समय के चित्र टँगे हुए थे। उन चित्रों को देखकर वनवास के दुःखों का स्मरण करके भी उन्हें सुख ही मिलता था।।25।। धीरे-धीरे सीता जी के नेत्रों की शोभा बढ़ने लगी और उनका मुख पके सरपत के समान पीला पड़ने लगा। इन गर्भ के लक्षणों को देखकर राम बड़े प्रसन्न हुए।।26।। जब उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि सीता जी गर्भिणी हैं तब वे दुबली तथा काली घुण्डी के स्तनों वाली लजीली सीता जी को एकान्त में गोद में बैठाकर पूछने लगे—बताओ, तुम्हें क्या-क्या चाहिए।।27।। सीता जी बोलीं—मैं गंगा जी के तट के उन तपवनों को देखना चाहती हूँ, जहाँ के हिंसक जन्तु माँस न खाकर नीवार ही खाते हैं, जहाँ मेरी सखियाँ तपस्वियों की कन्याएँ रहती हैं और जहाँ कुश की झोपिड़याँ चारों ओर खड़ी हैं।।28।। रामचन्द्रजी ने कहा 'अच्छी बात है। हम तुम्हें तपोवन में अवश्य भेजेंगे।' वहाँ से उठकर वे अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्विगाह्यमानां सरयूं च नौभिः।
विलासिभिश्चाध्युषितानि पौरैः पुरोपकण्ठोपवनानि रेमे।। 30।।
स किंवदन्तीं वदतां पुरोगः स्ववृत्तमुद्दिश्य विशुद्धवृत्तः।
सर्पाधिराजोरुभुजोऽपसर्पं पप्रच्छ भद्रं विजितारिभद्रः।। 31।।
निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्वं स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम्।
अन्यत्र रक्षोभवनोषितायाः परिग्रहान्मानवदेव देव्याः।। 32।।
कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहतं कीर्तिविपर्ययेण।
अयोघनेनाय इवाभितप्तं वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे।। 33।।
किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत संत्यजामि।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृत्तिः।। 34।।
निश्चित्य चानन्यनिवृत्ति-वाच्यं त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छत्।
अपिस्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः।। 35।।
स संनिपात्यावरजान्हतौजास्तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान्।
कौलीनमात्माश्रयमांचचक्षे तेभ्यः पुनश्चेदमुवाच वाक्यम्।। 36।।

सेवकों के साथ सुन्दर अयोध्या की छटा निहारने के लिए आकाश से बातें करने वाले अपने ऊँचे राजभवन की छत पर जा चढ़े।।29।। वहाँ से उन्होंने देखा कि राजमार्ग की दुकानें धन-धान्य से भरी हुई हैं, सरयू में नावें चल रही हैं और अयोध्या के उद्यानों में विलासी पुरवासी प्रसन्न होकर विलास कर रहे हैं।।30।। नगरी की यह शोभा देखकर सुन्दर बोलने वाले, सदाचारी और शेषनाग के समान बड़ी-बड़ी बाँहों और जाँघों वाले शत्रुविजयी राम ने अपने भद्रनाम के दूत से पूछा—'कहो भद्र! हमारे विषय में प्रजा क्या कहती है'।।31।। पहले तो भद्र चुप रहा, पर जब राम बार-बार उससे पूछने लगे, तब वह बोला—'हे नरश्रेष्ठ! जनता आपकी सब बातों की प्रशंसा करती है, किन्तु आपने राक्षस के घर में रहने वाली देवी सीता को फिर से ग्रहण कर लिया है, उसे लोग अच्छा नहीं समझते।।32।। अपनी पत्नी पर लगाए हुए इस भीषण कलंक को सुनकर सीतापति राम का हृदय वैसे ही फट गया, जैसे घन की चोट से तपाया हुआ लोहा फट जाता है।।33।। वे मन में सोचने लगे कि अब दो ही उपाय हैं या तो मैं इस बात को अनसुनी ही कर दूँ और टाल जाऊँ या फिर निर्दोष पत्नी को सदा के लिये छोड़ दूँ। उस समय उनका चित्त हिंडोला बना हुआ था, वे निश्चय ही नहीं कर पा रहे थे कि इन दोनों में क्या करना चाहिए क्या नहीं।।34।। पर उस कलंक को मिटाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं था। इसलिये उन्होंने निश्चय कर लिया कि सीता को त्याग करके ही यह कलंक मिटाना चाहिए; क्योंकि यशस्वियों को अपना यश अपने शरीर से भी अधिक प्यार होता है फिर स्त्री आदि भोग की वस्तुओं की तो बात ही क्या।।35।। उदास मुँह से राम ने भाइयों को बुलाया तो वे भी उनकी दशा देखकर सन्न रह गए। अपने भाइयों से राम बोले—।।36।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजर्षिवंशस्य रविप्रसूतेरुपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम्।
मत्तः सदाचारशुचेः कलङ्कः पयोदवातादिव दर्पणस्य।।37।।
पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरङ्गेष्विव तैलबिन्दुम्।
सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकंस्थाणुमिव द्विपेन्द्रः।।38।।
तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तावुपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः।
त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव।।39।।
अवैमि चैनामनघेति किंतु लोकापवादो बलवान्मतो मे।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनानारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः।।40।।
रक्षोबधान्तो न च मे प्रयासो व्यर्थः सवैरप्रतिमोचनाय।
अमर्षणः शोणिकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्विः।।41।।
तदेष सर्गः करुणार्द्रचितैर्न मे भवद्भिः प्रतिषेधनीयः।
यद्यर्थिता निर्वृतवाच्यशल्यान्प्राणान्मया धारयितुं चिरं वः।।42।।
इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम्।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा।।43।।

'यद्यपि मैं सदाचारी होने के कारण पवित्र हूँ फिर भी जैसे भाप पड़ने से स्वच्छ दर्पण भी धूँधला हो जाता है, वैसे ही देखो, सूर्यवंशी राजर्षियों के कुल में मेरे कारण कैसा कलंक लग रहा है।।37।। जैसे पानी की लहरों के ऊपर तेल की बूँद फैल जाती है वैसे ही इस समय घर-घर में मेरी निन्दा फैल रही है। इसलिये जैसे हाथी अपने अलान से खीझ कर उसे उखाड़ने की चेष्टा करता है, वैसे ही मैं भी अपने इस कलंक को अब नहीं सह सकता।।38।। इस समय यद्यपि सीता को पुत्र होने वाला है, तो भी अपने कलंक को मिटाने के लिए मैं सब मोह तोड़कर उसे वैसे ही छोड़ दूँगा जैसे पिता की आज्ञा से मैंने राज्य छोड़ दिया था।।39।। मैं जानता हूँ कि वह निर्दोष है, पर बदनामी सत्य से अधिक बलवती होती है। देखो! निर्मल चन्द्र-बिम्ब के ऊपर पड़ी हुई पृथ्वी की छाया को लोग चन्द्रमा का कलंक कहते हैं और झूठा होने पर भी सारा संसार इसे ही ठीक मानता है।।40।। तुम यह कहोगे कि यदि ऐसा ही था तो राक्षसों को क्यों मारा? उसका उत्तर यह है कि सीता को छुड़ाने के लिये मैंने जो राक्षसों को मारा वह मेरा प्रयत्न सीता को निकाल देने से बेकार नहीं कहा जायेगा; क्योंकि वह तो मैंने अपनी स्त्री के हरण का उन राक्षसों से बदला लिया है। क्योंकि जब कोई साँप पैर के नीचे दब जाता है, तब वह रक्त के लोभ से थोड़े ही डँसता है, वह तो बदला लेने के लिये ही डँसता है।।41।। इसलिये यदि तुम लोग इस कलंक के बाण को मेरे हृदय से निकालकर मुझे जीवित रखना चाहते हो, तो केवल सीता की दशा पर दया करके उसका पक्ष लेकर तुम मेरे इस निश्चय का विरोध मत करो।।42।। जब भाइयों ने देखा कि राजा इतनी निठुराई करना चाहते हैं, तब भाइयों में से न तो कोई उनका समर्थन ही कर सका, न विरोध ही।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्वजन्मा विलोक्य लोकत्रयगीतकीर्तिः।
सौम्येति चाभाष्य यथार्थभाषी स्थितं निदेशे पृथगादिदेश।। 44।।
प्रजावती दोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम्।। 45।।
स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण पितुर्नियोगात्प्रहृतं द्विषद्वत्।
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।। 46।।
अथानुकूलश्रवणप्रतीतामत्रस्नुभिर्युक्तधुरं तुरंगैः।
रथं सुमन्त्रप्रतिपन्नरश्मिमारोप्य वैदेहसुतां प्रतस्थे।। 47।।
सा नीयमाना रुचिरान्प्रदेशान्प्रियंकरो मे प्रिय इत्यनन्दत्।
नाबुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम्।। 48।।
जुगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्सव्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा।
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन।। 49।।
सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा।
राज्ञः शिवं सावरजस्य भूयादित्याशशंसे करणैरबाह्यैः।। 50।।

तीनों लोकों में प्रसिद्ध यशस्वी, अपनी बात के पक्के राम ने जब देखा कि लक्ष्मण उनकी आज्ञा मानने को तत्पर हैं, तब वे लक्ष्मण से कहने लगे–'लक्ष्मण! तुम बड़े अच्छे हो।' और यह कहकर उन्हें एकान्त में ले गए और बोले–।।44।। 'तुम्हारी गर्भिणी भाभी तपोवन देखना चाहती हैं इसलिये तुम उन्हें इसी बहाने से रथ पर ले जा कर वाल्मीकि जी के आश्रम में छोड़ आओ'।।45।। लक्ष्मण ने सुन ही रखा था कि पिता की आज्ञा पाकर परशुराम जी ने अपनी माता को वैसे ही निर्दयता के साथ मार डाला, जैसे कोई अपने शत्रु को मारे। इसलिये उन्होंने पिता के समान राम की आज्ञा सिर चढ़ा ली, क्योंकि बड़ों की आज्ञा में मीन-मेख निकालना ठीक नहीं।।46।। सीता जी यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई कि लक्ष्मण हमें तपोवन दिखाने ले जा रहे हैं। लक्ष्मण जी उन्हें ऐसे रथ पर चढ़ाकर ले चले, जिसे स्वयं सुमन्त्र हाँक रहे थे और जिसके घोड़े ऐसे सधे हुए थे कि रथ के चलते समय गर्भिणी सीता को तनिक भी हचक नहीं लगने पाती थी।।47।। मनोहर प्रदेशों में से रथ पर जाती हुई सीता जी यह सोचकर बड़ी प्रसन्न हुईं कि मेरे प्राणप्रिय सदा मेरे मन की ही बात करते हैं। वे क्या जानती थीं कि इस समय वे मेरे लिये मनोरथ पूरा करने वाले कल्पवृक्ष के बदले उस असिपत्र के वृक्ष के समान कष्टदायक हो गए हैं जिसके पत्ते तलवार के समान पैने होते हैं।।48।। लक्ष्मण ने सीता जी से मार्ग में कुछ भी नहीं बताया कि तुम पर क्या विपत्ति आने वाली है पर सीता जी के दाहिने नेत्र ने फड़क कर आगे आने वाली विपत्ति की सूचना दे ही दी।।49।। यह अपशकुन होते ही उनका मुख उदास हो गया और वे मन ही मन मनाने लगीं कि भाइयों के साथ राजा सुख से रहें, उन पर कोई आँच न आये।।50।। मार्ग में गंगा जी पड़ीं। उनमें जो लहरें उठ रही थीं, वे बड़े भाई की आज्ञा से पतिव्रता सीता को वन में छोड़ने के लिए ले जाते हुए लक्ष्मण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरोर्नियोगाद्वनितां वनान्ते साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन्।
अवार्यतेवोत्थितवीचिहस्तैर्जह्रोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात्।। 51।।
रथात्स यन्त्रा निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य।
गङ्गां निषादाहृतनौविशेषस्ततार संधामिव सत्यसंधः।। 52।।
अथ व्यवस्यापितावाक्कथंचित्सौमित्रिरन्तर्गतबाष्पकण्ठः।
औत्पातिको मेघ इवाश्मवर्षं महीपतेः शासनमुज्जगार।। 53।।
ततोऽभिषंगानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम।। 54।।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात्पतिरार्यवृत्तः।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत्।। 55।।
सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः।। 56।।
न चावदद्भर्तुरवर्णमार्या निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि।
आत्मानमेव स्थिरदुः खभाजं पुनः पुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द।। 57।।
आश्वास्य रामावरजः सतीं तामाख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः।
निघ्नस्य मे भर्तृ निदेशरौक्ष्यं देवि क्षमस्वेति बभूव नम्रः।। 58।।

से मानो हाथ हिलाकर कह रही थीं कि ऐसा न करो, ऐसा न करो।।51।। गंगा जी के तट पर पहुँचकर सारथी ने बागडोर खींच ली। सच्ची प्रतिज्ञा करने वाले लक्ष्मण ने सीता जी को रेती पर उतार लिया और केवट ने जो नाव लाकर दी, उस पर चढ़कर सीता जी के साथ गंगा जी से भी पार हो गए और अपनी उस प्रतिज्ञा से भी पार हो गए जो उन्होंने सीता को गंगा पार छोड़ने के लिए राम से की थी।।52।। पार पहुँचकर लक्ष्मण ने आँसू रोक कर, रुँधे हुए गले से सीता जी को राजा की आज्ञा इस प्रकार सुनाई जैसे कोई भयंकर बादल ओले बरसा रहा हो।।53।। जैसे लू लगने से लता के फूल झड़ जाते हैं और वह सूखकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है, वैसे ही इस अपमानजनक बात को सुनकर सीता के आभूषण भी गिर पड़े और वे भी अपनी माँ पृथ्वी की गोद में गिर पड़ीं।।54।। उस समय पृथ्वी ने सीता जी को मानो दुविधा के कारण अपनी गोद में नहीं लिया कि इक्ष्वाकु-वंशी सदाचारी पति इस प्रकार सीता जी को अचानक क्यों छोड़ देंगे।।55।। मूर्छा आ जाने से उन्हें उस समय तो दुःख नहीं हुआ, पर जब वे मूर्छा से जगीं तब उनके हृदय में बड़ी व्यथा हुई। लक्ष्मण ने प्रयत्न करके उनकी मूर्छा दूर की, यह बात उन्हें मूर्छा से भी अधिक कष्ट देने वाली जान पड़ी।।56।। वे इतनी साध्वी थीं कि निरपराध पत्नी को निकालने वाले अपने पति को उन्होंने कुछ भी बुरा-भला नहीं कहा; वरन् बार-बार वे अपने भाग्य को ही कोसने लगीं।।57।। लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया और वाल्मीकि का आश्रम दिखाकर कहा—देवी! मैं पराधीन हूँ। इसलिये स्वामी की आज्ञा से मैंने आपके साथ जो कठोर व्यवहार किया है उसे आप क्षमा कीजिए।।58।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव।
विडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम्।। 59।।
श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः।
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं सूनोरनुध्यायत चेतसेति।। 60।।
वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य।। 61।।
कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मपि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः।। 62।।
उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः।
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोषात्सोढास्मि न त्वद्भवने वसन्ती।। 63।।
निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात्।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने।। 64।।
किंवा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन्।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः।। 65।।
साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।। 66।।

सीता जी उठीं और लक्ष्मण से बोली! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम बहुत दिन तक जियो; क्योंकि जैसे इन्द्र के छोटे भाई विष्णु सदा अपने बड़े भाई की आज्ञा मानते हैं, वैसे ही तुम भी अपने बड़े भाई की आज्ञा मानने वाले हो।।59।। तुम जाकर सभी सासों से मेरा प्रणाम कहकर निवेदन करना कि मेरे गर्भ में आपके पुत्र का तेज है। इसलिये आप लोग हृदय से उसकी कुशल मनाते रहिएगा।।60।। और राजा से जाकर मेरी ओर से कहना कि आपने अपने सामने ही मुझे अग्नि में शुद्ध पाया था, इस समय अपयश के डर से जो आपने मुझे छोड़ दिया है, वह क्या उस प्रसिद्ध कुल को शोभा देता है, जिसमें आपने जन्म लिया है।।61।। पर नहीं आप तो सबकी भलाई करने वाले हैं, आप अपने मन से हमारे साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते। यह सब मेरे पूर्वजन्म के पापों का ही फल है।।62।। जान पड़ता है कि कुछ समय पहले आप जिस राजलक्ष्मी का तिरस्कार करके मेरे साथ वन में चले गए थे, वह राज्यलक्ष्मी मुझ से रुष्ट हो गई और वह आपके घर में मेरा प्रतिष्ठा-पूर्वक रहना देख नहीं सकी।।63।। पिछली बार आपकी कृपा से मैंने वनवास के समय बहुत-सी ऐसी तपस्विनियों को अपने यहाँ आश्रय दिया था, जिनके पतियों को राक्षसों ने सता रखा था। अब आप ही बताइये कि आपके रहते हुए मैं किस मुँह से उन्हीं तपस्विनियों की आश्रिता होकर रहूँगी।।64।। यदि मेरे गर्भ में आया हुआ आपका वह तेज बाधा न देता, जिसकी रक्षा करना आवश्यक है, तो मैं आपसे सदा के लिये बिछुड़े हुए अपने प्राण भी छोड़ देती।।65।। पर पुत्र हो जाने पर मैं सूर्य में दृष्टि बाँध कर ऐसी तपस्या करूँगी कि अगले जन्म में भी आप मेरे ही पति हों, आपसे मुझे अलग न होना पड़े।।66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया।। 67।।
तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः।। 68।।
नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि।। 69।।
तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।। 70।।
तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य सीता विलापाद्विरता ववन्दे।
तस्यै मुनिर्दोहदलिङ्गदर्शी दाश्वान्सुपुत्राशिषमित्युवाच।। 71।।
जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदहि पितुर्निकेतम्।। 72।।
उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे से।। 73।।
तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते।
धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां किं तन्न येनासि समानुकम्प्या।। 74।।

मनु ने कहा है—राजाओं का धर्म वर्णों और आश्रमों की रक्षा करना है, इसलिये घर से निकाल देने पर भी आप यह समझकर मेरी देखभाल करते रहिएगा कि सीता भी आपकी प्रजा और तपस्विनी है।।67।। यह सुनकर लक्ष्मण बोले—'मैं सब कह दूँगा'। यह कहकर ज्यों ही वे वहाँ से चलकर आँखों से ओझल हुए कि विपत्ति के भार से व्याकुल होकर सीता जी, डरी हुई कुररी के समान विलाप करके रोने लगीं।।68।। उनका रोना सुनकर मोरों ने नाचना बन्द कर दिया, वृक्ष फूल के आँसू गिराने लगे और हरिणियों ने मुँह में भरी हुई घास का कौर गिरा दिया। सीता जी के दुःख से दुखी होकर सारा जंगल रोने लगा।।69।। जिन महाकृपालु वाल्मीकि ऋषि का शोक व्याध के हाथ से मारे हुए क्रौञ्च को देखकर श्लोक बनकर निकल पड़ा था, वे उस समय कुश उखाड़ने निकले थे।।70।। रोने का शब्द सुनकर वे सीता जी की ओर आए। उन्हें देखकर सीता जी ने आँसू पोंछकर चुपचाप उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने गर्भ के चिह्न देखकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम पुत्रवती होवो। आशीर्वाद देकर वे बोले—।।71।। 'बेटी! मैंने योग बल से जान लिया है कि तुम्हारे पति ने झूठे अपयश से डरकर तुम्हें घर से निकाल दिया है। बेटी! यहाँ भी तुम अपने पिता का ही घर समझो और शोक छोड़ दो।।72।। यद्यपि राम तीनों लोकों का दुःख दूर करने वाले हैं, अपनी प्रतिज्ञा के पक्के हैं और अपने मुँह से अपनी बड़ाई भी नहीं करते, फिर भी तुम्हारे साथ जो उन्होंने यह भद्दा व्यवहार किया है, इसे देखकर मुझे उन पर बड़ा क्रोध आ रहा है।।73।। तुम्हारे यशस्वी श्वसुर जी मेरे मित्र थे और तुम्हारे पिता जनक जी भी ज्ञानोपदेश देकर बहुत से विद्वानों को संसार के बंधन से छुड़ाते रहते हैं, तुम स्वयं पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ हो फिर तुम में ऐसा दोष ही कौन-सा है जो मैं तुम्हारे ऊपर कृपा न करूँ।।74।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन्।
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते।। 75।।
अशून्यतीरां मुनिसंनिवेशैस्तमोपहन्त्रीं तमसां वगाह्य।
तत्सैकतोत्सङ्गबलिक्रियाभिः संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः।। 76।।
पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो बीजं च बालेयमकृष्टरोहि।
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषङ्गामुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम्।। 77।।
पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः।
असंशयं प्राक्तनयोपपत्तेः स्तनन्धयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्।। 78।।
अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां वाल्मीकिरादाय दयार्द्रचेताः।
सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वं स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय।। 79।।
तामर्पयामास च शोकदीनां तदागमप्रीतिषु तापसीषु।
निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु।। 80।।
ता इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः।
तस्यै सपर्यानुपदं दिनान्ते निवासहेतोरुटजं वितेरुः।। 81।।

देखो, तपस्वियों के साथ रहते-रहते यहाँ के सब जीव बड़े सीधे हो गए हैं। ये किसी से कुछ कहते-सुनते नहीं। इसी आश्रम में तुम निर्भय होकर रहो। तुम्हारी पवित्र सन्तान जातकर्म आदि संस्कार मैं यहीं करूँगा।।75।। पाप मिटानेवाली जिस तमसा के किनारे तपस्वी लोग सदा सन्ध्या-पूजा करते हैं उसमें स्नान करके तुम उसकी रेती पर देवताओं को बलि दिया करो, इससे तुम्हारा मन प्रसन्न रहेगा।।76।। यहाँ की मुनि-कन्याएँ तुम्हें सब ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फूल-फल और पूजा के योग्य अन्न लाकर रख दिया करेंगी और मीठी-मीठी बातें करके तुम्हारा मन भी बहलाया करेंगी।।77।। जो जल के घड़े तुमसे उठ सकें, उन्हें लेकर तुम आश्रम के पौधों को प्रेम से सींचा करो। इससे लाभ यह होगा कि बच्चा होने के पहले ही तुम यह सीख जाओगी कि बच्चों से कैसे प्रेम करना चाहिए।।78।। सीता जी ने उनकी कृपा को बहुत सराहा और दयालु वाल्मीकि के साथ उनके आश्रम में चली गई। शाम हो जाने के कारण बहुत से मृग वहाँ वेदी को घेर कर बैठे हुए थे और सिंह आदि जन्तु भी चुपचाप आँख मूँदे पड़े थे।।79।। जैसे अमावस्या जड़ी-बूटियों और लता-वृक्षों को चन्द्रमा की वह सारहीन अन्तिम कला सौंप देती है जिसका अमृत पितर खींच लेते हैं, वैसे ही ऋषि ने भी शोक से व्याकुल सीता को आश्रम की उन तपस्विनियों के हाथ सौंप दिया, जो सीता जी के वहाँ आ जाने से बड़ी प्रसन्न हो गई थीं।।80।। पूजा हो चुकने पर उन तपस्विनियों ने सीता के रहने के लिये एक पत्तों की कुटिया दे दी, जिसमें हिंगोट के तेल का दीया जल रहा था और जिसमें नीचे मृगचर्म बिछा हुआ था।।81।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्राभिषेकप्रयता वसन्ती प्रयुक्तपूजा विधिनातिथिभ्यः।
वन्येन सा वल्कलिनी शरीरं पत्युः प्रजासंततये बभार।। 82।।
अपि प्रभुः सानुशयोऽधुना स्यात्किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता।
शशंस सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय।। 83।।
बभूव रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः।। 84।।
निगृह्य शोकं स्वयमेव धीमान्वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः।
स भ्रातृसाधारणभोगमृद्धं राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास।। 85।।
तामेकभार्यां परिवदभीरोः साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य।
वक्षस्यसंघट्टसुखं वसन्ती रेजे सपत्नीरहितेव लक्ष्मीः।। 86।।

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे।। 87।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
सीतापरित्योगो नाम चतुर्दशः सर्गः।।

वहाँ सीता जी प्रतिदिन स्नान करके बड़े नियम से रहती थीं, ठीक विधि से अतिथियों की पूजा करती थीं, वृक्षों की छाल के कपड़े पहनती थीं और केवल पति का वंश चलाने की इच्छा से ही कन्दमूल खाकर शरीर धारण करती थीं।।82।। सीता जी ने रो-रोकर जो बातें कही थीं, वे सब अयोध्या पहुँचकर लक्ष्मण जी ने राम से यह सोचकर कह दीं कि देखें राम अब भी पछताते हैं या नहीं।।83।। उन बातों को सुनकर ओस बरसाने वाले पूस के चन्द्रमा के समान राम की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे; क्योंकि उन्होंने सीता जी को अपनी इच्छा से नहीं; वरन् कलंक के डर से ही छोड़ा था।।84।। वर्णाश्रम-धर्म के रक्षक बुद्धिमान् राम संसार के सुखों का मोह छोड़कर और शोक को रोक कर भाइयों के साथ अपने भरे-पूरे राज्य का शासन करने लगे।।85।। राजा ने कलंक के डर से अपनी रानी को छोड़ दिया; इसलिये मानो बिना सौत की होकर राज्यलक्ष्मी ही उनके हृदय में सुख से निवास करने लगी।।86।। राम ने सीता को त्याग कर किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया; वरन् अश्वमेघ यज्ञ करते समय उन्होंने सीता जी की सोने की मूर्ति ही अपने बाएँ बैठाया था। जब सीता जी ने अपनी पति की ये बातें सुनीं तब उनके मन में जो छोड़े जाने की कसक थी वह पूर्णतः मिट गई।।87।।

महाकवि श्री कालिदास के रचे हुए रघुवंश महाकाव्य में सीता-परित्याग
नाम का चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चदशः सर्गः

कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम्।
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम्।।1।।
लवणेन विलुप्तेज्यास्तामिस्रेण तमभ्ययुः
मुनयो यमुनाभाजः शरण्यं शरणार्थिनः।।2।।
अवेक्ष्य रामं ते तस्मिन्न प्रजहुः स्वतेजसा।
त्राणभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम्।।3।।
प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम्।
धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः।।4।।
ते रामाय वधोपायमाचख्युर्विबुधद्विषः।
दुर्जयो लवणः शूली विशूलः प्रार्थ्यतामिति।।5।।
आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात्।।6।।
यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परंतपः।
अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः।।7।।

पन्द्रहवाँ सर्ग

सीता जी को छोड़ देने पर राजा रामचन्द्र जी ने केवल समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी का ही भोग किया किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया।।1।। इसी बीच एक दिन यमुना-तट पर रहने वाले कुछ तपस्वी, शरणागतवत्सल राम के पास शरण माँगने आए, क्योंकि लवणासुर राक्षस के उपद्रवों के कारण उनकी यज्ञ आदि क्रियाएँ बन्द हो गई थीं।।2।। वे तपस्वी यदि चाहते तो अपने तेज से ही लवणासुर को भस्म कर डालते; किन्तु उन्होंने ऐसा करना ठीक नहीं समझा; क्योंकि जिन लोगों में शाप देकर भस्म करने की शक्ति होती है, वे तपस्या से बटोरे हुए तेज को ऐसे काम में तभी लगाते हैं, जब कोई दूसरा उनका रक्षक न हो।।3।। राम ने उनके विघ्न दूर करने की प्रतिज्ञा की; क्योंकि धर्म की रक्षा के लिये ही वे संसार में अवतार लेते हैं।।4।। तब मुनियों ने राम को बताया कि जब तक लवणासुर के हाथ में त्रिशूल रहेगा; तब तक उसका हारना कठिन है इसलिये उस पर ऐसे समय आक्रमण करना चाहिए जब उसके हाथ में त्रिशूल न हो।।5।। राम ने उन मुनियों की रक्षा का भार शत्रुघ्न को सौंपा, मानो शत्रुघ्न के हाथों शत्रु का संहार कराकर उनका शत्रुघ्न नाम सच्चा करा देना चाहते हों।।6।। जैसे व्याकरण में कोई अपवाद वाला सूत्र व्यापक नियम वाले सूत्र को भी उलट देता है, वैसे ही रघु के वंश का बच्चा-बच्चा इतना बलवान् होता है कि वह शत्रु को पछाड़ सकता था।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रजेन प्रयुक्ताशीस्ततो दाशरथी रथी।
ययौ वनस्थलीः पश्यन्पुष्पिताः सुरभीरभीः।।8।।
रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थसिद्धये।
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत्।।9।।
आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः स गच्छँस्तपतां वरः।
विरराज रथप्रष्ठैर्बालखिल्यैरिवांशुमान्।।10।।
तस्य मार्गवशादेका बभूव वसतिर्यतः।
रथस्वनोत्कण्ठमृगे वाल्मीकीये तपोवने।।11।।
तमृषिः पूजयामास कुमारं क्लान्तवाहनम्।
तपःप्रभावसिद्धाभिर्विशेषप्रतिपत्तिभिः।।12।।
तस्यामेवास्य यामिन्यामन्तर्वत्नी प्रजावती।
सुतावसूत संपन्नौ कोशदण्डाविव क्षितिः।।13।।
संतानश्रवणाद्भ्रातुः सौमित्रिः सौमनस्यवान्।
प्राञ्जलिर्मुनिमामन्त्र्य प्रातर्युक्तरथो ययौ।।14।।
स च प्राप मधूपघ्नं कुम्भीनस्याश्च कुक्षिजः।
वनात्करमिवादाय सत्त्वराशिमुपस्थितः।।15।।

जब शत्रुघ्न निडर होकर रथ पर चढ़े तब राम ने उन्हें आशीर्वाद दिया और वे सुगन्धित वनों की छटा निहारते हुए चल पड़े।।8।। राम की आज्ञा से शत्रुघ्न के साथ जो सेना गई, वह वैसे ही व्यर्थ थी जैसे अध्ययन शब्द में 'इङ्' धातु के साथ लगा हुआ 'अधि' उपसर्ग। [क्योंकि 'इङ्' का ही अर्थ अध्ययन होता है, उसमें अधि से कोई विशेषता नहीं बढ़ती।] इसी प्रकार लवणासुर को शत्रुघ्न अकेले जीत सकते थे, चाहे सेना जाती या न जाती।।9।। जैसे रथ पर चढ़े हुए सूर्य को बालखिल्य नाम के ऋषि लोग मार्ग दिखाते चलते है, वैसे ही रथ पर चढ़े हुए शत्रुघ्न को भी मुनि लोग आगे-आगे मार्ग दिखाते चले।।10।। मार्ग में जाते हुए उन्होंने पहली रात तो वाल्मीकि जी के उस आश्रम में बिताई, जहाँ के मृग उनके रथ के शब्द को सुनकर बड़े चाव से उधर देखने लगे थे।।11।। शत्रुघ्न जी के घोड़े भी थक गए थे; इसलिये रुकना आवश्यक हो गया। तब वाल्मीकि जी ने अपनी तपस्या के प्रभाव से आतिथ्य की सब सामग्री जुटाकर शत्रुघ्न का बड़ा सत्कार किया।।12।। उसी रात को इनकी गर्भिणी भाभी सीता ने दो तेजस्वी पुत्रों को उसी प्रकार जन्म दिया, जैसे पृथ्वी अपने राजा के लिये धन और सैन्य उत्पन्न करती है।।13।। भाई के पुत्र होने की बात सुनकर शत्रुघ्न का जी खिल गया और अगले दिन तड़के ही वे हाथ जोड़कर मुनि से आज्ञा लेकर रथ पर चढ़कर आगे बढ़े।।14।। जिस समय वे मधूपघ्न नगर में पहुँचे, उसी समय रावण की बहन कुम्भीनसी का बेटा लवणासुर बहुत से पशुओं को मारकर वन से इस प्रकार लौटा चला आ रहा था, मानो वन ने उसे यह सब भेंट में दिया हो।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमधूम्रो वसागन्धी ज्वालावभ्रु शिरोरुहः।
क्रव्याद्‌गणपरीवारश्चिताग्निरिव जंगमः।। 16।।

अपशूलं तमासाद्य लवणं लक्ष्मणानुजः।
रुरोध संमुखीनो हि जयो रन्धप्रहारिणाम्।। 17।।

नातिपर्याप्तमालक्ष्य मत्कुक्षेरद्य भोजनम्।
दिष्ट्या त्वमसि मे धात्रा भीतेनेवोपपादितः।। 18।।

इति संतर्ज्य शत्रुघ्नं राक्षसस्तज्जिघांसया।
प्रांशुमुत्पाटयामास मुस्तास्तम्बमिव द्रुमम्।। 19।।

सौमित्रेर्निशितैर्बाणैरन्तरा शकलीकृतः।
गात्रं पुष्परजः प्राप न शाखी नैर्ऋतेरितः।। 20।।

विनाशात्तस्य वृक्षस्य रक्षस्तस्मै महोपलम्।
प्रजिघाय कृतान्तस्य मुष्टिं पृथगिव स्थितम्।। 21।।

ऐन्द्रमस्त्रमुपादाय शत्रुघ्नेन स ताडितः।
सिकतात्वादपि परां प्रपेदे परमाणुताम्।। 22।।

उसका रंग धुएँ जैसा काला था, उसकी देह से चर्बी की गन्ध निकल रही थी, आग की लपटों के समान उसके बिखरे हुए बाल थे और माँस खाने वाले राक्षस उसके चारों ओर चल रहे थे। इस प्रकार वह उस चिता की अग्नि के समान लग रहा था, जो धुएँ से धुँधली हो, जिसमें से चर्बी की गन्ध निकलती हो, जिसमें से लपटें निकल रही हों और जिसके आसपास कुत्ते और गिद्ध आदि माँस भक्षी पशु-पक्षी घूम रहें हों।।16।। शत्रुघ्न ने देखा कि यह अवसर ठीक है; क्योंकि इसके हाथ में त्रिशूल नहीं है। बस झट उन्होंने लवणासुर को घेर लिया; क्योंकि जो शत्रु के शक्तिहीन होने पर प्रहार करता है, वह अवश्य विजयी होता है।।17।। शत्रुघ्न को देखकर लवणासुर गरज उठा–आज मेरे भोजन की सामग्री कम थी, यह देखकर ब्रह्मा ने डरकर मेरा भोजन पूरा करने के लिये तुम्हें यहाँ भेज दिया।।18।। यह कहकर उसने शत्रुघ्न को मारने के लिए एक बड़ा भारी पेड़ ऐसे धीरे से उखाड़ लिया, जैसे मोथा उखाड़ लिया जाता है।।19।। लवणासुर ने ज्योंही वह वृक्ष शत्रुघ्न पर फेंका त्योंही उन्होंने उसे बीच में ही टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इस प्रकार वह वृक्ष तो उनके शरीर तक नहीं पहुँच सका केवल उसके फूलों का पराग भर पहुँच पाया।।20।। उस वृक्ष के टूक-टूक हो जाने पर उस राक्षस ने एक ऐसी भयंकर शिला उठाकर शत्रुघ्न पर फेंकी मानो वह यमराज का घूँसा ही हो।।21।। पर शत्रुघ्न ने ऐन्द्र अस्त्र चलाकर उसे चूर-चूर कर दिया।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षिणं दोर्निशाचरः।
एकताल इवोत्पातपवनप्रेरितो गिरिः।।23।।
कार्ष्णोन पत्रिणा शत्रुः स भिन्नहृदयः पतन्।
आनिनाय भुवः कम्पं जहाराश्रमवासिनाम्।।24।।
वयसां पङ्क्तयः पेतुर्हतस्योपरि विद्विषः।
तत्प्रतिद्वन्द्विनो मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमवृष्टयः।।25।।
स हत्वा लवणं वीरस्तदा मेने महौजसः।
भ्रातुः सोदर्यमात्मानमिन्द्रजिद्वधशोभिनः।।26।।
तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः।
शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीडयावनतं शिरः।।27।।
उपकूलं स कालिन्द्याः पुरीं पौरुषभूषणः।
निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मधुरां मधुराकृतिः।।28।।
या सौराज्यप्रकाशाभिर्बभौ पौरविभूतिभिः।
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशिता।।29।।
तत्र सौधगतः पश्यन्यमुनां चक्रवाकिनीम्।
हेमभक्तिमतीं भूमेः प्रवेणीमिव पिप्रिये।।30।।
सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत्।
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि।।31।।

तब वह राक्षस अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाये हुए शत्रुघ्न की ओर झपटा। उस समय वह ऐसा लगा मानो बवंडर से उठाया हुआ कोई ऐसा पहाड़ चला आ रहा हो जिसकी चोटी पर ताड़ का पेड़ खड़ा हो।।23।। वैष्णव बाण लगते ही वह राक्षस पृथ्वी पर जा गिरा। उसके गिरने से ऐसी धमक हुई कि धरती काँप उठी, पर हाँ, आश्रमवासियों का काँपना दूर हो गया।।24।। मरे हुए शत्रु के ऊपर गिद्ध आदि पक्षी टूट पड़े और शत्रुघ्न के ऊपर स्वर्ग से फूलों की वर्षा होने लगी।।25।। शुत्रघ्न जी जब लवणासुर को मार चुके, तब उन्हें यह सन्तोष हुआ कि अब मैं मेघनाद को मारने वाले तेजस्वी लक्ष्मण का सचमुच सगा भाई हूँ।।26।। जब तपस्वियों का काम पूरा हो गया, तब वे शत्रुघ्न की बड़ाई करने लगे। अपनी प्रशंसा सुनकर शत्रुघ्न जी शील के मारे लजा गए।।27।। तब पराक्रमी, संयमी और सुन्दर शत्रुघ्न ने यमुना के किनारे मथुरा नाम की नगरी बसाई।।28।। अच्छा राजा पा जाने से उस नगरी के लोग ऐसे धनी और सुखी हो गए, मानों स्वर्ग में जनसंख्या बढ़ जाने के कारण वहाँ के कुछ लोग यहाँ लाकर बसा दिए गए हों।।29।। शत्रुघ्न ने मथुरा के एक ऊँचे भवन पर चढ़कर उस नीले जल वाली यमुना को देखा जिसमें बहुत से चकवे चहचहा रहे थे। उस समय यमुना उन्हें ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ीं मानो वह सुनहरी फुन्दों वाली पृथ्वी की चोटी हो।।30।। इधर मन्त्रद्रष्टा वाल्मीकि जी ने दशरथ और जनक दोनों के मित्र होने के नाते सीता जी के पुत्रों के जातकर्म आदि सब संस्कार बड़ी विधि से किए।।31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया।
कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः।।32।।
साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्।।33।।
रामस्य मधुरं वृत्तं गायन्तौ मातुरग्रतः।
तद्वियोगव्यथां किंचिच्छिथिलीचक्रतुः सुतौ।।34।।
इतरेऽपि रघोर्वंश्यास्त्रयस्त्रेताग्नितेजसः।
तद्योगात्पतिवत्नीषु पत्नीष्वासन्द्विसूनवः।।35।।
शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः सुवाहौ च बहुश्रुते।
मधुराविदिशे सून्वोर्निदधे पूर्वजोत्सुकः।।36।।
भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात्।
मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगमाश्रमम्।।37।।
वशी विवेश चायोध्यां रथ्यासंस्कारशोभिनीम्।
लवणस्य वधात्पौरैरीक्षितोऽत्यन्तगौरवम्।।38।।
स ददर्श सभामध्ये सभासद्भिरुपस्थितम्।
रामं सीतापरित्यागादसामान्यपतिं भुवः।।39।।

ज्येष्ठ पुत्र लव के उत्पन्न होते समय सीता जी की प्रसव-पीड़ा गाय की पूंछ के बाल से दूर हुई और छोटे के समय कुश से। इसलिये वाल्मीकि जी ने दोनों बच्चों का नाम इन्हीं दोनों वस्तुओं के नाम पर लव और कुश रख दिया।।32।। जब वे बच्चे बड़े हुए तो ऋषि ने उन दोनों को वेद-वेदांग पढ़ाया और फिर उन्हें अपनी रचना आदिकाव्य रामायण का श्लोकगान सिखाया।।33।। उन दोनों बालकों ने अपनी माता के आगे राम का यश गा-गाकर उनका बहुत मन बहलाया।।34।। दाक्षिणात्य, गार्हस्पत्य और आहवनीय इन तीन अग्नियों के समान तेजस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन तीनों भाइयों ने भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ संभोग करके दो-दो पुत्र उत्पन्न किए।।35।। शत्रुघ्न अपने बड़े भाइयों से मिलने को आतुर थे, इसलिये उन्होंने शत्रुघाती और सुबाहु नामक अपने दो विद्वान् पुत्रों को मथुरा और विदिशाका राज्य सौंप दिया।।36।। लौटते समय शत्रुघ्न जी वाल्मीकि के उस तपोवन में नहीं गए जहाँ के मृग शान्त होकर लव और कुश के गीत सुना करते थे, क्योंकि शत्रुघ्न ने यह सोचा कि मेरे जाने पर वाल्मीकि जी अपनी सिद्धियों के बल से मेरे सत्कार की सामग्री जुटाने लगेंगे, जिससे व्यर्थ ही उनकी तपस्या की शक्ति कम होगी।।37।। यहाँ से चल कर जितेन्द्रिय शत्रुघ्न जी उस अयोध्या में पहुँचे, जहाँ की सड़कें उनके स्वागत में बड़ी सुन्दरता से सजाई गई थीं। वे लवणासुर को मारकर लौटे थे; इसलिये पुरवासी उन्हें बड़ आदर से देख रहे थे।।38।। राज-सभा में पहुँचकर उन्होंने देखा कि राम बैठे हुए हैं, बहुत से सभासद उनकी सेवा कर रहे हैं और सीता जी को छोड़ देने पर अब वे एकमात्र पृथ्वी के ही स्वामी रह गए हैं।।39।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमभ्यनन्दत्प्रणतं लवणान्तकमग्रजः।
कालनेमिवधात्प्रीतस्तुराषाडिव शार्ङ्गिणम्।। 40।।

स पृष्टः सर्वतो वार्तमाख्यद्राज्ञे न संततिम्।
प्रत्यर्पयिष्यतः काले कवेराद्यस्य शासनात्।। 41।।

अथ जानपदो विप्रः शिशुमप्राप्तयौवनम्।
अवतार्याङ्कशय्यास्थं द्वारि चक्रन्द भूपतेः।। 42।।

शोचनीयासि वसुधे या त्वं दशरथाच्च्युता।
रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात्कष्टतरं गता।। 43।।

श्रुत्वा तस्य शुचो हेतुं गोप्ता जिह्राय राघवः।
न ह्यकालभवो मृत्युरिक्ष्वाकुपदमस्पृशत्।। 44।।

स मुहूर्तं क्षमस्वेति द्विजमाश्वास्य दुःखितम्।
यानं सस्मार कौवेरं वैवस्वतजिगीषया।। 45।।

आत्तशस्त्रस्तदध्यास्य प्रस्थितः स रघूद्वहः।
उच्चचार पुरस्तस्य गूढरूपा सरस्वती।। 46।।

राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते।
तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती।। 47।।

जैसे इन्द्र ने प्रसन्न होकर कालनेमि को मारने वाले विष्णु का स्वागत किया था, वैसे ही जब लवणासुर को मारने वाले शत्रुघ्न जी उन्हें प्रणाम करने को झुके, तब राम ने भी उनका अभिनन्दन किया।।40।। राम के पूछने पर उन्होंने और सब बातें तो कह सुनाईं, पर पुत्र होने की बात नहीं कही; क्योंकि वाल्मीकि जी ने उन्हें कह दिया था कि समय आने पर हम स्वयं दोनों पुत्र राम को सौंप देंगे तुम मत कहना।।41।। थोड़े दिनों के बाद एक दिन उसी जनपद का रहने वाला एक ब्राह्मण अपने मरे हुए नवयुवक पुत्र को राजा की ड्योढ़ी पर गोद से उतारकर यह कह-कहकर फूट-फूटकर रोने लगा।।42।। हे पृथ्वी! तुम दशरथ के हाथ से छूटकर राम के हाथों में आकर बड़े कष्ट में पड़ गई हो। तुम्हारी दशा बड़ी शोचनीय हो गई है।।43।। प्रजापालक राम ने जब उसके शोक की बात सुनी, तब उन्हें बड़ी लज्जा आई; क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के राज्य में किसी की भी अकाल मृत्यु नहीं होती थी।।44।। राम ने उस दुखी ब्राह्मण को यह कहकर ढाढस बँधाया कि तुम थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी तुम्हारा शोक दूर किए देता हूँ, यह कहकर यमराज को जीतने की इच्छा से उन्होंने पुष्पक विमान को स्मरण किया।।45।। जब वे अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर पुष्पक-विमान पर बैठकर चलने लगे, तब यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी।।46।। हे राजन्! आपकी प्रजा में कुछ [वर्ण-धर्म सम्बन्धी] दोष आ गया है, उसे खोज कर दूर करो, तभी तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण होगा'।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्याप्तवचनाद्रामो विनेष्यन्वर्णविक्रियाम्।
दिशः पपात पत्त्रेण वेगनिष्कम्पकेतुना।।48।।

अथ धूमाभिताम्राक्षं वृक्षशाखावलम्बिनम्।
ददर्श कंचिदैक्ष्वाकस्तपस्यन्तमधोमुखम्।।49।।

पृष्टनामान्वयो राज्ञा स किलाचष्ट धूमपः।
आत्मानं शम्बुकं नाम शूद्रं सुरपदार्थिनम्।।50।।

तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानां तमघावहम्।
शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियन्ता शस्त्रमाददे।।51।।

स तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टकिञ्जल्कमिव पङ्कजम्।
ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु कण्ठनालादपातयत्।।52।।

कृतदण्डः स्वयं राज्ञा लेभे शूद्रः सतां गतिम्।
तपसा दुश्चरेणापि न स्वमार्गविलंघिना।।53।।

रघुनाथोऽप्यगस्त्येन मार्गसंदर्शितात्मना।
महौजसा संयुयुजे शरत्काल इवेन्दुना।।54।।

कुम्भयोनिरलंकारं तस्मै दिव्यपरिग्रहम्।
ददौ दत्तं समुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्क्रयम्।।55।।

इस विश्वास भरे वचन को सुनकर वेग से चलने के कारण काँपती हुई ध्वजा वाले पुष्पकविमान पर चढ़कर राम यह देखने के लिये सब दिशाओं में चक्कर काटने लगे कि वर्ण-धर्म में कहाँ दोष आया है।।48।। घूमते-घूमते एक स्थान पर राम क्या देखते हैं कि एक पेड़ की शाखा पर उलटा लटका हुआ एक मनुष्य नीचे जलती हुई आग का धुआँ पी-पीकर तप कर रहा है और धुआँ लगने से उसकी आँखें लाल हो गईं हैं।।49।। राम ने उससे पूछा—'आपका नाम क्या है और आप किस वंश के हैं'। वह तपस्वी बोला—"मैं देवपद पाने के लिये तप कर रहा हूँ। मेरा नाम शम्बूक है और मैं शूद्र हूँ'।।50।। शूद्रों को तप करने का अधिकार नहीं है। इसी अनाधिकार काम के करने से प्रजा में पाप फैल रहा था। इसलिये राम ने निश्चय कर लिया कि इसका वध करना ही होगा। उन्होंने हाथ में शस्त्र उठा लिया।।51।। और उसका सिर उसी प्रकार गले पर से काट दिया, जैसे कमल की डंडी पर से कमल उतार दिया गया हो। आग की चिनगारियों से झुलसी दाढ़ी वाला उसका सिर ऐसा लग रहा था जैसे पाले से जली हुई केशर वाला कमलगट्टा हो।।52।। राजा से दण्ड पाने के कारण शूद्र को वह सद्गति मिल गई, जो वह अपने उस कठोर तप से कभी न पाता जैसाकि वह अपने वर्ण-धर्म का उल्लघंन करके चाह रहा था।।53।। जैसे चन्द्रमा शरद् ऋतु से मिलता है, वैसे ही राम को मार्ग में अगस्त्य ऋषि भी मिले।।54।। ऋषि ने उन्हें वे सुन्दर आभूषण दिए जो उन्हें समुद्र ने उस समय दण्ड के रूप में दिए थे, जब उन्होंने समुद्र को पी डाला था।।55।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं दधन्मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण बाहुना।
पश्चान्निववृते रामः प्राक्परासुर्द्विजात्मजः।।56।।
तस्य पूर्वोदितां निन्दां द्विजः पुत्रसमागतः।
स्तुत्या निवर्तयामास त्रातुर्वैवस्वतादपि।।57।।
तमध्वराय मुक्ताश्वं रक्षःकपिनरेश्वराः।
मेघाः सस्यमिवाम्भोभिरभ्यवर्षन्नुपायनैः।।58।।
दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनमभिजग्मुर्महर्षयः।
न भौमान्येव धिष्ण्यानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यपि।।59।।
उपशल्यनिविष्टैस्तैश्चतुर्द्वारमुखी बभौ।
अयोध्या सृष्टलोकेव सद्यः पैतामही तनुः।।60।।
श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्वंशवासिनः।
अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जायाहिरण्मयी।।61।।
विधेरधिकसंभारस्ततः प्रववृते मखः।
आसन्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः।।62।।
अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्ततः।
मैथिलेयौ कुशलवौ जगतुर्गुरुचोदितौ।।63।।

राम ने वे आभूषण लेकर अपनी उन भुजाओं में बाँध लिये जो सीता जी के वन चले जाने से सीता जी के कण्ठ में पड़ने से वंचित रह गये थे। जब राम अयोध्या लौटे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके आने के पहले ही ब्राह्मण का पुत्र जी उठा था।।56।। पुत्र के जी उठने पर उस ब्राह्मण ने राम की बड़ी स्तुति की और पहले जो निन्दा की थी, उसे अपनी स्तुति से धो डाला; क्योंकि राम ने उसके पुत्र को यमराज के हाथों से छुड़ाया था।।57।। कुछ दिन के बाद राम ने अश्वमेघयज्ञ के लिये घोड़ा छोड़ा। जैसे बादल धान के खेत पर जल बरसाते हैं वैसे ही सुग्रीव-विभीषण आदि ने आकर राम के आगे भेंट के धन की वर्षा कर दी।।58।। यज्ञ के लिये राम ने तीनों लोकों के ऋषियों को आमन्त्रित किया था। वे ऋषि पृथ्वी से ही नहीं, वरन् सप्तर्षि-मण्डल आदि दिव्य स्थानों से भी राम के पास आए।।59।। वे लोग आकर नगर के आस-पास के देहातों में टिके हुए थे। जब वे अयोध्या के चारों द्वारों से नगर में प्रविष्ट हुए, तब चार द्वारों वाली वह अयोध्या ऐसी जान पड़ने लगी मानो तत्काल सृष्टि करने वाले ब्रह्मा की चतुर्मुखी मूर्ति हो।।60।। सीता के त्याग से राम की एक यह भी प्रशंसा हुई कि राम ने किसी दूसरी स्त्री से अपना विवाह नहीं किया। इसलिये यज्ञ में सोने की सीता बनाकर राम ने अपनी पत्नी के स्थान पर उसे बैठा दिया।।61।। इस प्रकार वह प्रसिद्ध यज्ञ प्रारम्भ हुआ जिसमें आवश्यकता से अधिक सामग्री इकट्ठी हुई थी और विशेषता यह थी कि यज्ञ-क्रिया में विघ्न करने वाले राक्षस ही उसकी रखवाली कर रहे थे।।62।। तब वाल्मीकि जी की आज्ञा से सीता जी के पुत्र लव और कुश उनका बनाया हुआ रामायण गाते हुए इधर-उधर घूमने लगे।।63।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम्।। 64।

रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली।। 65।।

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली।। 66।।

वयोवेषविसंवादी रामस्य च तयोस्तदा।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत्।। 67।।

उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा।। 68।।

गेये को नु विनेता वां कस्य चेयं कृतिः कवेः।
इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम्।। 69।।

अथ सावरजो रामः प्राचेतसमुपेयिवान्।
ऊरीकृत्यात्मनो देहं राज्यमस्मैन्यवेदयत्।। 70।।

स तावाख्याय रामाय मैथिलेयौ तदात्मजौ।
कविः कारुणिको वव्रे सीतायाः संपरिग्रहम्।। 71।।

एक तो राम का चरित, उस पर वाल्मीकि जी उसके रचयिता और फिर किन्नरों के समान मधुर कण्ठ वाले लव और कुश उसके गायक, फिर बताइए उसमें शेष ही क्या था कि लोग उसे सुनकर लट्टू न हो जाते।।64।। यह बात राम के कानों तक भी पहुँची। उन्होंने बालकों कों बुला भेजा और अपने भाइयों के साथ उन दोनों बालकों के रूप और गीत की मधुरता को आश्चर्य के साथ देखा और सुना।।65।। सारी सभा गूँगी होकर उनका गीत सुनती जा रही थी और आँखों से आँसू बहाती जा रही थी। उस समय वह सभा प्रातःकाल की उस शान्त वनस्थली के समान दिखाई देने लगी, जिसमें वृक्षों से टप-टप ओस की बूँदे गिर रही हों।।66।। लोगों ने एकटक होकर राम और उन दोनों बालकों का एकदम मिलता--जुलता वह रूप देखा जिसमें अंतर इतना ही था कि वे दोनों अभी कुमार थे तथा वनवासियों के से वस्त्र पहने हुए थे और राम प्रौढ़ थे तथा राजसी वस्त्र पहने हुए थे।।67।। जनता को इनके गाने का कौशल देखकर उतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना इस बात पर हुआ कि राजा ने उन्हें प्रेम से जो दान दिया, वह भी उन्होंने लौटा दिया।।68।। जब राम ने उनसे पूछा कि तुम्हें किसने संगीत सिखाया है और यह किस कवि की रचना है, तब उन्होंने वाल्मीकि जी का नाम बता दिया।।69।। अपने भाइयों को साथ लेकर रामचन्द्र जी वाल्मीकि जी के पास गए। उन्होंने वाल्मीकि जी के पास जाकर अपने को छोड़कर शेष सारा राज्य उनको भेंट कर दिया।।70।। दयालु ऋषि ने राम से कहा कि ये दोनों गायक कुमार सीता जी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं।।71।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात शुद्धा समक्षं नः स्नुषा ते जातवेदसि।
दौरात्म्याद्रक्षसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः।।72।।
ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया।।73।।
इति प्रतिश्रुते राज्ञा जानकीमाश्रमान्मुनिः।
शिष्यैरानाययामास स्वसिद्धिं नियमैरिव।।74।।
अन्येद्युरथ काकुत्स्थः संनिपात्य पुरौकसः।
कविमाह्वाययामास प्रस्तुतप्रतिपत्तये।।75।।
स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया।
ऋचेवोदर्चिषं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः।।76।।
काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा।
अन्वमीयत शुद्धेति शान्तेन वपुषैव सा।।77।।
जनास्तदालोकपथात्प्रतिसंहतचक्षुषः।
तस्थुस्तेऽवाङ्मुखाः सर्वे फलिता इव शालयः।।78।।
तां दृष्टिविषये भर्तुर्मुनिरास्थितविष्टरः।
कुरु निःसंशयं वत्से स्ववृत्ते लोकमित्यशात्।।79।।
अथ वाल्मीकिशिष्येण पुण्यमावर्जितं पयः।
आचम्योदीरयामास सीता सत्यां सरस्वतीम्।।80।।

और तुम्हारे राम ने कहा कि आपकी पतोहू सीता हमारे सामने ही अग्नि में शुद्ध हो चुकी हैं, पर रावण की धृष्टता का विचार करके यहाँ की प्रजा को विश्वास नहीं होता।।72।। इसलिये यदि सीता अपनी शुद्धता का प्रमाण देकर प्रजा को विश्वास दिलायें, तब मैं आपकी आज्ञा से पुत्रों के साथ उन्हें ग्रहण कर लूँगा।।73।। राम की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर वाल्मीकि जी ने शिष्यों को भेजकर सीता जी को इस प्रकार बुलाया, मानो वे नियमों के द्वारा अपनी सिद्धि बुला रहे हों।।74।। दूसरे दिन राम ने इस काम के लिये प्रजा को इकट्ठा करके वाल्मीकि जी को बुलाया।।75।। वाल्मीकि जी लव, कुश और सीता जी को साथ लेकर राम के आगे उपस्थित हुए। पुत्रों के साथ राम के पास जाती हुई सीता जी ऐसी लगती थीं मानो स्वर और संस्कारों के साथ गायत्री, सूर्य के पास जा रही हों।।76।। गेरुए वस्त्र पहने और अपनी आँखें नीची किए हुए सीता जी अपने शान्त शरीर से ही पवित्र दिखाई देती थीं।।77।। उन्हें देखते ही सब लोगों ने उसी प्रकार अपनी आँखें नीची कर ली, जैसे फ़ले हुए धान के कलम झुक जाते हैं क्योंकि उन्हें लज्जा लगी कि हम लोगों ने व्यर्थ ही इस साध्वी पर कलंक लगाया।।78।। आसन पर बैठे हुए वाल्मीकि जी ने सीता जी से कहा—बेटी! जनता के मन में तुम्हारे चरित्र के विषय में जो सन्देह है वह तुम अपने पति के आगे ही मिटा दो।।79।। वाल्मीकि जी के शिष्य ने पवित्र जल लाकर सीता जी को दिया और उसका आचमन करके सीता जी ने यह सत्य वचन कहा।।80।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वंभरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि।।81।।
एवमुक्ते तया साध्व्या रन्ध्रात्सद्योभवाद्भवः।
शातह्रदमिव ज्योतिः प्रभामण्डलमुद्ययौ।।82।।
तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी।
समुद्ररशना साक्षात्प्रादुरासीद्वसुंधरा।।83।।
सा सीतामङ्कमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम्।
मा मेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात्।।84।।
धरायां तस्य संरम्भं सीताप्रत्यर्पणैषिणः।
गुरुर्विधिबलापेक्षी शमयामास धन्विनः।।85।।
ऋषीन्विसृज्य यज्ञान्ते सुहृदश्च पुरस्कृतान्।
रामः सीतागतं स्नेहं निदधे तदपत्ययोः।।86।।
युधाजितश्च संदेशात्स देशं सिन्धुनामकम्।
ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः।।87।।
भरतस्तत्र गन्धर्वान्युधि निर्जित्य केवलम्।
आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम्।।88।।
स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्यास्तदाख्ययोः।
अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात्पुनः।।89।।

यदि मैंने मन, वचन, कर्म किसी प्रकार से भी अपना पतिव्रत भंग न किया हो तो हे धरती माता! तुम मुझे अपनी गोद में ले लो।।81।। पतिव्रता सीता के ऐसा कहते ही पृथ्वी घड़घड़ाकर फट गई और उसमें से बिजली के समान चमकीला एक तेजोमण्डल निकला।।82।। उसमें नाग के फण पर रखे हुए सिंहासन पर बैठी हुई, समुद्र की मेखला पहने साक्षात् धरती माता प्रकट हुईं।।83।। उन्होंने उन सीता जी को अपनी गोद में ले लिया, जो राम की ओर टकटकी बाँधे थीं। राम कहते ही रह गए—अरे! यह क्या करती हो, यह क्या करती हो; पर वे सबके देखते-देखते पाताल में समा गई।।84।। राम को पृथ्वी पर बड़ा क्रोध आया और पृथ्वी से सीता को लौटा लेने के लिये उन्होंने अपना धनुष उठाया। पर ब्रह्माजी तो सब कुछ जानते ही थे, उन्होंने आ कर राम को समझाया और उनका क्रोध शान्त किया।।85।। किसी प्रकार यज्ञ समाप्त हुआ और यज्ञ हो जाने पर राम ने ऋषियों को छुट्टी दी। अब वे अपने पुत्रों से उतना ही प्रेम करने लगे जितना सीता जी से करते थे।।86।। प्रजापालक राम ने भरत के मामा युधाजित् के कहने पर सिन्धु देश का राज्य प्रभावशाली भरत को दे दिया।।87।। भरत ने गन्धर्वों को जीत कर उनके हाथ में केवल वीणा तो रहने दी, किन्तु धनुष छुड़वा दिया।।88।। उन्होंने तक्ष और पुष्कल नाम के योग्य पुत्रों को, तक्ष और पुष्कल राजधानियों का राजा बना दिया और स्वयं राम के पास लौट आए।।89।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गदं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसंभवौ।
शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ।। 90।।
इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जनेश्वराः।
भर्तृलोकप्रपन्नानां निवापान्विदधुः क्रमात्।। 91।।
उपेत्य मुनिवेषोऽथ कालः प्रोवाच राघवम्।
रहः संवादिनौ पश्येदावां यस्तं त्यजेरिति।। 92।।
तथेति प्रतिपन्नाय विवृतात्मा नृपाय सः।
आचख्यौ दिवमध्यास्व शासनात्परमेष्ठिनः।। 93।।
विद्वानपि तयोर्द्वाःस्थः समयं लक्ष्मणोऽभिनत्।
भीतो दुर्वाससः शापाद्रामसंदर्शनार्थिनः।। 94।।
स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित्।
चकारावितथां भ्रातुः प्रतिज्ञां पूर्वजन्मनः।। 95।।
तस्मिन्नात्मचतुर्भागे प्राङ्नाकमधितस्थुषि।
राघवः शिथिलं तस्थौ भुवि धर्मस्त्रिपादिव।। 96।।
स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागाङ्कुशं कुशम्।
शरावत्यां सतां सूक्तैजनिताश्रुलवं लवम्।। 97।।

राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने अंगद और चन्द्रकेतु नाम के अपने दोनों पुत्रों को कारापथ का राजा बना दिया।।90।। इस प्रकार पुत्रों को राज्य देकर उन चारों ने अपनी स्वर्गीया माताओं के श्राद्ध आदि संस्कार किए।।91।। यह सब हो जाने पर एक दिन राम के पास मुनि का वेश बनाकर काल आया और बोला—'मैं आपसे एकान्त में कुछ बातें करना चाहता हूँ। जो भी कोई हम लोगों की बात के बीच में आये उसे आप प्राण-दण्ड दे दीजिए।।92।। राम ने कहा—'अच्छी बात है।' तब उसने अपना सच्चा रूप दिखाया और कहा कि ब्रह्मा की आज्ञा है कि अब आप चलकर वैकुण्ठ में रहें।।93।। यह बात हो ही रही थी कि इसी बीच दुर्वास जी कहीं से आ धमके। उन्होंने द्वार पर बैठे हुए लक्ष्मण से कहा कि अभी जाकर राम से कहो कि मैं आया हूँ, नहीं तो तुम्हारे कुल को शाप से भस्म कर दूँगा। लक्ष्मण जी जानते ही थे कि जो इस समय राम के पास जायगा उसे प्राण-दण्ड होगा फिर भी बातचीत के बीच में ही पहुँचकर उन्होंने सूचना दे दी।।94।। वहाँ से लौटकर योगमार्ग के जानने वाले लक्ष्मण ने सरयू के किनारे जाकर योग-बल से शरीर छोड़कर बड़े भाई की प्रतिज्ञा की रक्षा कर ली।।95।। अपने चौथाई अंश लक्ष्मण के स्वर्ग चले जाने पर राम उसी प्रकार ढीले पड़ गए जैसे पृथ्वी पर त्रेतायुग में तीन पैर वाला धर्म ढीला पड़ जाता है।।96।। स्थिरबुद्धि वाले राम ने शत्रु-रूपी हाथियों के लिये अंकुश के समान भयदायक कुश को कुशावती का राज्य दे दिया और अपने मधुर वचनों से सज्जनों की आँखों से आँसू की धार बहाने वाले लव को शरावती का राजा बनाया।।97।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदक्प्रतस्थे स्थिरधीःसानुजोऽग्निपुरःसरः।
अन्वितः पतिवात्सल्याद् गृहवर्जमयोध्यया।। 98।।
जगृहुस्तस्य चित्तज्ञाः पदवीं हरिराक्षसाः।
कदम्बमुकुलस्थूलैरभिवृष्टां प्रजाश्रुभिः।। 99।।
उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना।
चक्रे त्रिदिवनिःश्रेणिः सरयूरनुयायिनाम्।। 100।।
यद्गोप्रतरकल्पोऽभूत्संमर्दस्तत्र मज्जताम्।
अतस्तदाख्यया तीर्थं पावनं भुवि पप्रथे।। 101।।
स विभुर्विबुधांशेषु प्रतिषन्नात्ममूर्तिषु।
त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गान्तरमकल्पयत्।। 102।।
निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणाम् विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत्सर्वलोकप्रतिष्ठाम्।
लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे चे।। 103।।

इति महाकवि श्री कालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रामस्वर्गारोहणो नाम पञ्चदशः सर्गः।।

फिर अग्निहोत्र की अग्नि आगे करके भाइयों के साथ वे उत्तर की ओर चले। जब अयोध्यावासियों ने यह सुना तो राम के प्रेम में वे सब भी केवल अपने-अपने घर पीछे छोड़कर उनके साथ हो लिए।।98।। राम के मन की बात जानने वाले वानर और राक्षस भी उनके पीछे-पीछे चले। जिस मार्ग से राम चले जा रहे थे, वह मार्ग राम के पीछे-पीछे जाने वाली जनता के आँसुओं से गीला हो चला।।99।। भक्तों पर कृपा करने वाले राम विमान पर चढ़कर स्वर्ग चले गए और सरयू को उन्होंने अपने पीछे आने वालों के लिये स्वर्ग की सीढ़ी बना दिया [अर्थात् जो सरयू में स्नान करता था, वह तुरन्त स्वर्ग चला जाता था] ।।100।। वहाँ स्नान करने वालों की वैसी ही भीड़ हुई जैसी गौओं को पार कराते समय होती है, इसलिये उस पवित्र तीर्थ का नाम ही संसार में गोप्रतर प्रसिद्ध हो गया।।101।। देवताओं के अंशधारी रीछ, वानरों ने भी अपना देवरूप धारण कर लिया, इसलिये इतने लोग स्वर्ग में पहुँच गए कि सामर्थ्यशाली राम को देवपद प्राप्त करने वाले अयोध्यावासियों के रहने के लिये एक दूसरा स्वर्ग बनाना पड़ा।।102।। विष्णु भगवान् ने इस प्रकार रावणवध करके देवताओं का कार्य पूरा किया और उत्तरगिरि हिमालय पर हनुमान जी को तथा दक्षिणगिरि त्रिकूट पर विभीषण जी को अपने दो कीर्तिस्तम्भों के रूप में स्थापित करके तीनों लोकों को धारण करने वाले भगवान् अपने विराट् शरीर में लीन हो गए।।103।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में
'राम का स्वर्णारोहण' नामक पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। षोडशः सर्गः ।।

अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि।। 1 ।।
ते सेतुवार्त्तागजबन्धमुख्यैरभ्युच्छ्रितः कर्मभिरप्यवन्ध्यैः।
अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां समुद्रा इव न व्यतीयुः।। 2 ।।
चतुर्भुजांशसप्रभवः स तेषां दानप्रवृत्तेरनुपारतानाम्।
सुरद्विपानामिव सामयोनिर्भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः।। 3 ।।
अथार्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे शय्यागृहे सुप्तजने प्रबुद्धः।
कुशः प्रवासस्थकलत्रवेषामदृष्टपूर्वां वनितामपश्यत्।। 4 ।।
सा साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः स्थित्वा पुरस्तात्पुरुहूतभासः।
जेतुः परेषां जयशब्द पूर्वं तस्याञ्जलिं बन्धुमतो बबन्ध।। 5 ।।
अथानपोढार्गलमप्यगारं छायामिवादर्शतलं प्रविष्टाम्।
सविस्मयो दाशरथेस्तनूजः प्रोवाच पूवार्धविसृष्टतल्पः।। 6 ।।
लब्धान्तरा सावरणेऽपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम्।। 7 ।।

सोलहवाँ सर्ग

कुश आदि सात रघुवंशी वीरों ने अपने सबसे बड़े भाई लव को अपना मुखिया बनाया; क्योंकि भ्रातृ प्रेम तो उनके कुल का धर्म ही था।।1।। वे सभी पुल बाँधने, कृषि की रक्षा करने और हाथियों को इकट्ठा करने में कुशल थे। फिर भी जैसे समुद्र अपने तट का उल्लंघन नहीं करता है, वैसे ही उनमें से किसी ने भी अपने राज्य की सीमा लाँघ कर दूसरे भाई के राज्य की सीमा में प्रवेश करने का यत्न नहीं किया।।2।। जैसे सामवेद के कुल में उत्पन्न मतवाले दिग्गजों का कुल आठ भागों में बँट गया था वैसे ही विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए राम का दानी कुल भी आठ भागों में फैला।।3।। एक दिन आधी रात को, जब शयन-गृह का दीप टिमटिमा रहा था और सब लोग सोए हुए थे, कुश को एक स्त्री दिखाई दी। उसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, पर उसका वेश देखने से जान पड़ता था कि उसका पति परदेश चला गया है।।4।। अपनी सम्पत्ति से सज्जनों का उपकार करने वाले, इन्द्र के समान तेजस्वी और शत्रुओं को जीतने वाले कुश के आगे वह स्त्री हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।।5।। जैसे दर्पण में मुँह का प्रतिबिम्ब बैठ जाता है, वैसे ही द्वार बन्द रहने पर भी वह स्त्री घर के भीतर आ गई थी। उसे देख कर कुश को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे शय्या पर आधे उठ कर उससे बोले।।6।। तुम हमारे इस बन्द भवन में घुस तो आई हो, पर तुम्हारे मुख से यह नहीं प्रकट होता कि तुम योगिनी हो, क्योंकि तुम पाले से मारी हुई कमलिनी के समान उदास दिखाई दे रही हो।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किंवा मदभ्यागमकारणं ते।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति।।8।।
तमब्रवीत्सा गुरुणानवद्या या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन।
तस्याः पुरः संप्रति वीतनाथां जानीहि राजन्नधिदेवतां माम्।।9।।
वस्वौकसारामभिभूय साहं सौराज्यवद्धोत्सवया विभूत्या।
समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम्।।10।।
विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेशः पर्यस्तशालः प्रभुणा विना मे।
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्यं दिनान्तमुग्रानिलभिन्नमेघम्।।11।।
निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः स वाह्यते राजपथः शिवाभिः।।12।।
आस्फालितं यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत्।
वन्यैरिदानीं महिषैस्तदम्भः शृङ्गाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम्।।13।।
वृक्षेशया यष्टिनिवासभङ्गान्मृदङ्गशब्दापगमादलास्याः।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषवर्हाः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम्।।14।।
सोपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान् सरागान्।
सद्यो हतन्यङ्कुभिरस्रदिग्धं व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे।।15।।

हे शुभे! तुम कौन हो? तुम्हारे पति का क्या नाम है और मेरे पास किस लिए आई हो? तुम यह समझकर मुँह खोलना कि रघुवंशियों का चित्त पराई स्त्री की ओर कभी नहीं जाता।।8।। उस स्त्री ने उत्तर दिया हे राजन्! जब भगवान् राम बैकुण्ठ जाने लगे, तब जिस निर्दोष अयोध्या पुरी के निवासियों को वे अपने साथ लेते गए, उसी अनाथ अयोध्या पुरी की मैं नगर देवी हूँ।।9।। पहले अच्छा राजा होने के कारण मैं इतनी ऐश्वर्यशालिनी हो गई थी कि मेरे आगे कुबेर की अलकापुरी भी फीकी लगती थी आजकल तुम्हारे ऐसे प्रतापी राजा के रहते हुए भी मेरी बहुत बुरी दशा हो गई है।।10।। स्वामी के न रहने से कोठे-अटारियों के टूट जाने से मेरी निवासभूमि अयोध्या ऐसी उदास लगती है, जैसे सूर्यास्त के समय की वह सन्ध्या, जिसमें वायु के वेग से इधर-उधर छितराए हुए बादल दिखाई देते हों।।11।। रात के समय पहले जिन सड़कों पर चमकते हुए बिछुओं वाली अभिसारिकाएँ चलती थीं, उन्हीं पर आजकल ऐसी सियारिनें घूमती हैं जिनके मुख से चिल्लाते समय चिनगारियाँ निकालती हैं।।12।। नगर की जिन बावड़ियों का जल पहले जलक्रीड़ा करने वाली सुन्दरियों के हाथ के थपेड़ों से मृदंग के समान गम्भीर शब्द करता था, वह आज-कल जंगली भैंसों के सींगों की चोटों से कान फोड़े डालता है।।13।। अंडों के टूट जाने से यहाँ के मोर अब वृक्षों पर जा कर बैठते हैं और मृदंग न बजने के कारण उन्होंने नाचना भी बन्द कर दिया है; अब वे उन जंगली मोरों के समान लगते हैं, जिनकी पूँछें वन की आग से जल गई हों।।14।। और क्या कहें, पहले जिन सीढ़ियों पर सुन्दरियाँ अपने महावर लगे लाल-लाल पैर रखती चलती थीं, उन्हीं पर मृग मारने वाले बाघ अपने रक्त से सने लाल पैर रखते हुए चलते हैं।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृणालभङ्गाः।
नखाङ्कुशाघातविभिन्नकुम्भाः संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति।।16।।
स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णाक्रमधूसराणम्।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति सङ्गान्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्वियुक्ताः।।17।।
कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाङ्कुरेषु।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः।।18।।
आवर्ज्य शाखाः सदयं च यासां पुष्पाण्युपात्तानि विलासिनीभिः।
वन्यैः पुलिन्दैरिव वानरैस्ताः क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः।।19।।
रात्रावनाविष्कृतदीपभासः कान्तामुखश्रीवियुता दिवापि।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः।।20।।
बलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति।
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि दूये सरयूजलानि।।21।।
तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य मामभ्युपैतुं कुलराजधानीम्।
हित्वा तनुं कारणमानुषीं तां तथा गुरुस्ते परमात्ममूर्तिम्।।22।।

जिन चित्रों में ऐसा दिखाया गया था कि हाथी कमल के ताल में उतर रहें हैं और हथिनियाँ उन्हें सूँड़ से कमल के डण्ठल तोड़कर दे रही हैं, उन चित्रित हाथियों के मस्तकों को सिहों ने सच्चे हाथी का मस्तक समझकर नखों से फाड़ दिया है।।16।। जिन बहुत से खंभों में स्त्रियों की मूर्तियाँ बनी हुई थीं आजकल उन मूर्तियों का रंग उड़ गया है। उन खंभों को चन्दन का वृक्ष समझकर जो साँप उनसे लिपटे हैं, उनकी केचुलें छूटकर उन मूर्तियों से सट गई हैं और वे ऐसी लगती हैं मानो उन पत्थर की स्त्रियों ने स्तन ढकने के लिये कोई कपड़ा डाल लिया हो।।17।। जिन भवनों पर कभी मोती की माला के समान शुभ्र चाँदनी चमका करती थी, उन पर अब चाँदनी भी नहीं चमकती; क्योंकि बहुत दिनों से मरम्मत न होने के कारण कोठों के चूने का रंगा काला पड़ गया है और उन पर जहाँ-तहाँ घास जम आई है।।18।। पहले उद्यान की जिन लताओं को धीरे से झुकाकर सुन्दरी स्त्रियाँ फूल उतारा करती थीं, उन मेरी प्यारी लताओं को जंगली म्लेच्छों के समान उत्पाती बन्दर झकझोर रहे हैं।।19।। आज कल अटारियों के झरोखों से न तो रात को दीपकों की किरणें निकलती हैं, न दिन में सुन्दरियों का मुख दिखाई देता है और न कहीं से अगरबत्ती का धुआँ ही निकलता है। अब वे झरोखे मकड़ियों के जालों से ढक गए हैं।।20।। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि अब न तो सरयू के घाटों पर देवताओं के लिये बलि दी जाती है और न स्त्रियों के स्नान करने से उसमें से अंगराग आदि की गन्ध ही निकल रही है। सरयू के तट पर बनी हुई बेंत की झोंपड़ियाँ भी सूनी पड़ी रहती हैं।।21।। इसलिये जैसे तुम्हारे पिता राम ने राक्षसों को मारने के लिये जो मनुष्य शरीर धारण किया था, उसे छोड़कर परमात्मा में पहुँच गए, वैसे ही तुम भी इस नई राजधानी कुशावती को छोड़कर अपनी कुल परंपरा की राजधानी अयोध्या में चल कर रहो।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथेति तस्याः प्रणयं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्प्राग्रहरो रघूणाम्।
पूरप्यभिव्यक्तमुखप्रसादा शरीरबन्धेन तिरोबभूव।।23।।
तदद्भुतं संसदि रात्रिवृत्तं प्रातर्द्विजेभ्यो नृपतिः शशंस।
श्रुत्वा त एनं कुलराजधान्याः साक्षात्पतित्वे वृतमभ्यनन्दन्।।24।।
कुशावतीं श्रोत्रियसात्स कृत्वा यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः।
अनुद्रुतो वायुरिवाभ्रवृन्दैः सैन्यैरयोध्याभिमुखः प्रतस्थे।।25।।
सा केतुमालोपवना बृहद्भिर्विहारशैलानुगतेव नागैः।
सेना रथोदारगृहा प्रयाणे तस्याभवज्जंगमराजधानी।।26।।
तेनातपत्रामलमण्डलेन प्रस्थापितः पूर्वनिवासभूमिम्।
बभौ बलौघः शशिनोदितेन वेलामुदन्वानिव नीयमानः।।27।।
तस्य प्रयातस्य वरूथिनीनां पीडामपर्याप्तवतीप सोढुम्।
वसंधरा विष्णुपदं द्वितीयमध्यारुरोहेव रजश्छलेन।।28।।
उद्यच्छमाना गमनाय पश्चात्पुरो निवेशे पथि च व्रजन्ती।
सा यत्र सेना ददृशे नृपस्य तत्रैव सामग्र्यमतिं चकार।।29।।
तस्य द्विपानां मदवारिसेकात्खुराभिघाताच्च तुरंगमाणाम्।
रेणुः प्रपेदे पथि पङ्कभावं पङ्कोऽपि रेणुत्वमियाय नेतुः।।30।।

कुश ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और कहा—ऐसा ही करेंगे। यह सुनकर अयोध्या की नगरदेवी भी अन्तर्धान हो गई।।23।। राजा ने रात की वह आश्चर्य भरी घटना प्रातःकाल सभा में ब्राह्मणों से कही। यह सुनकर ब्राह्मणों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की कि आप धन्य हैं, जिन्हें कुल-राजधानी ने अपनी इच्छा से अपना पति चुना है।।24।। उन्होंने कुशावती को वेदपाठी ब्राह्मणों को सौंप दी और जैसे वायु के पीछे-पीछे बादल चलते हैं, वैसे ही पीछे चलने वाली सेना के साथ शुभ मुहूर्त में अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।।25।। यात्रा के समय चलती हुई कुश की सेना चलती फिरती राजधानी के समान लगती थी; क्योंकि उसका ध्वजाओं वाला भाग लता वाले उपवनों जैसा लग रहा था, बड़े-बड़े हाथी बनावटी पर्वतों जैसे जान पड़ते थे और रथ ऊँची-ऊँची अटारियों जैसे लग रहे थे।।26।। जैसे चन्द्रमा उदित होकर समुद्र को तट तक खींच लाता है, वैसे ही श्वेत छत्रधारी कुश अपनी सेना को रघुकुल की पुरानी राजधानी अयोध्या की ओर ले चले।।27।। चलते समय कुश की सेना का भार पृथ्वी नहीं सँभाल सकी, इसीलिये उड़ती हुई धूल ऐसी जान पड़ रही थी मानो पृथ्वी विष्णु के दूसरे पद [आकाश] में पहुँच गई हो।।28।। कुशावती से चलती हुई या आगे के पड़ाव पर पहुँची हुई या मार्ग में चलने वाली जितनी भी कुश की सेना की टुकड़ियाँ थीं, वे सब पूरी सेना ही प्रतीत होती थीं।।29।। कुश के हाथियों के मदजल से मार्ग की धूल कीचड़ बन गई और कीचड़ भी घोड़ों की टापों से धूल बन गई।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना।
चकार रेवेव महाविरावा बद्धप्रतिश्रुन्ति गुहामुखानि।।31।।
स धातुभेदारुणयाननेमिः प्रभुः प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः।
व्यलङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि।।32।।
तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात्प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गङ्गाम्।
अयत्नवालव्यजनीबभूवुर्हंसा नभोलङ्घनलोलपक्षाः।।33।।
स पूर्वजानां कपिलेन रोषाद्भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम्।
सुराऽलयप्राप्तिनिमित्तमम्भस्त्रैस्रोतसं नौ लुलितं ववन्दे।।34।।
इत्यध्वनः कैश्चिदहोभिरन्ते कूलं समासाद्य कुशः सरय्वाः।
वेदिप्रतिष्ठान्वितसाध्वराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम्।।35।।
आधूय शाखाः कुसुमद्रुमाणां स्पृष्ट्वा च शीतान्सरयूतरङ्गान्।
तं क्लान्तसैन्यं कुलराजधान्याः प्रत्युज्जगामोपवनान्तवायुः।।36।।
अथोपशल्ये रिपुमग्नशल्यस्तस्याः पुरः पौरसखः स राजा।
कुलध्वजस्तानि चलध्वजानि निवेशयामास बली बलानि।।37।।
तां शिल्पिसंघाः प्रभुणा नियुक्तास्तथागतां संभृतसाधनत्वात्।
पुरं नवीचक्रुरपां विसर्गान्मेघा निदाघग्लपितामिवोर्वीम्।।38।।

मार्ग भूल जाने के कारण वह सेना विन्ध्याचल के आस-पास मार्ग ढूँढ़ने लगी और कई भागों में बँट गई। उस सेना ने नर्मदा के समान जो गम्भीर गर्जन किया उससे पर्वत की गुफाएँ भी गूँज उठीं।।31।। गेरू आदि धातुओं से जिसके रथ के पहिए लाल हो गए थे और जिसकी चलती हुई सेना के शब्द से तुरही के शब्द भी दब गए थे, वह कुश विन्ध्याचलवासी किरातों के हाथ से पाई हुई भेंट की सामग्रियाँ देखते हुए आगे बढ़ चले।।32।। वहाँ पास ही उलटी पश्चिम की ओर बहने वाली गंगा जी पर हाथियों का पुल बनाकर वे पार उतरने लगे। उस समय आकाश में चंचल पंखों वाले हंस उड़ते थे, वे कुश पर डुलाते जाते हुए चँवर के समान लग रहे थे।।33।। कुश ने नावों के चलने से चंचल जल वाली गंगा जी को प्रणाम किया क्योंकि कपिल के कोप से जले हुए उनके पूर्वज सगर के पुत्र उसी जल की कृपा से स्वर्ग पहुँचे थे।।34।। इस प्रकार मार्ग में कुछ दिन बिताकर कुश भी सरयू के किनारे पहुँचे। वहाँ उन्हें बड़े-बड़े यज्ञ करने वाले रघुवंशी राजाओं के गाड़े हुए सैकड़ों यज्ञ के खम्भे दिखाई दिए।।35।। अयोध्या के उपवन में फूले हुए वृक्षों की डालियों को हिलाता हुआ तथा सरयू के शीतल जल के स्पर्श से ठण्डे वायु ने आगे बढ़कर सेना के साथ थके हुए कुश का स्वागत किया।।36।। शत्रु विनाशक प्रजा-हितैषी राजा ने फहराती हुई ध्वजावाली अपनी सेना को नगर के आस-पास के स्थानों में ठहरा दिया।।37।। जैसे इन्द्र की आज्ञा से बादल, जल बरसाकर गरमी से तपी हुई पृथ्वी को हरा-भरा कर देते हैं, वैसे ही कुश की आज्ञा से कारीगरों ने अपने यन्त्रों की सहायता से अयोध्या की काया पलट कर दी।।38।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः सपर्यां सपशूपहारां पुरः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः।
उपोषितैर्वास्तुविधानविद्भिर्निर्वर्तयामास रघुप्रवीरः।। 39।।
तस्याः स राजोपपदं निशान्तं कामीव कान्ताहृदयं प्रविश्य।
यथार्हमन्यैरनुजीविलोकं संभावयामास यथाप्रधानम्।। 40।।
सा मन्दुरासंश्रयिभिस्तुरंगैः शालाविधिस्तम्भगतैश्च नागैः।
पूरावभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी।। 41।।
वसन्स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम्।
न मैथिलेयः स्पृहयांबभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय।। 42।।
अथास्य रत्नग्रथितोत्तरीयमेकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम्।
निःश्वासहार्यांशुकमाजगाम घर्मः प्रियावेषमिवोपदेष्टुम्।। 43।।
अगस्त्यचिह्नादयनात्समीपं दिगुत्तरा भास्वति संनिवृत्ते।
आनन्दशीतामिव बाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं ससर्ज।। 44।।
प्रवृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम्।। 45।।
दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुञ्चदम्भः।
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां नारीनितम्बद्वयसंबभूव।। 46।।

फिर व्रत और उपवास करने वाले वास्तु-विद्या के पण्डितों से रघुवीर कुश ने अनमोल मूर्तियों से भरे घरों वाली अयोध्या का विधि पूर्वक पूजन कराया और पशुओं का बलिदान भी कराया।।39।। जैसे कामी पुरुष स्त्री के हृदय में बैठ जाता है वैसे ही कुश भी अयोध्या के राज भवन में प्रविष्ट हो गए और उन्होंने अपने मन्त्रियों आदि के रहने के लिये दूसरे बहुत से भवन दे दिए।।40।। अयोध्या की हाटों में सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ बिकने को सजी हुई थीं, घुड़साल में घोड़े बँधे हुए थे, हथसारों के खम्भों से हाथी बँधे हुए थे। इस प्रकार वह नगरी ऐसी सुन्दर लगने लगी जैसे सारे शरीर पर गहना पहने हुए कोई स्त्री हो।।41।। अयोध्या फिर पहले जैसी सुन्दर लगने लगी। उसमें निवास करके जानकी जी के पुत्र कुश को ऐसा सुख मिला कि न तो उन्हें सुन्दर-सुन्दर अप्सराओं से युक्त स्वर्ग के स्वामी बनने की इच्छा रह गई और न असंख्य रत्नों वाली अलका पुरी को ही लेने की।।42।। इतने में ग्रीष्म ऋतु आई, जिसने मानो इन्हें अपनी उस प्रिया का स्मरण करा दिया जिसकी ओढ़नी में रत्न लगे हों, जिसके गोरे-गोरे स्तनों पर मोतियों का हार लटका हो और जो साँस से उड़ने वाले महीन कपड़े पहने हुए हो।।43।। गर्मी में जो हिम लगने लगा, वह ऐसा लगता था मानो दक्षिण दिशा से सूर्य के लौट आने की प्रसन्नता में उत्तर दिशा ने आनन्द के ठंडे आँसुओं के समान पानी की ठंडी धारा हिमालय से बहाई हो।।44।। अत्यन्त सन्ताप से भरे दिन और अत्यन्त छोटी रातें, ये दोनों उन पछताते हुए पति-पत्नी के समान दिखाई देने लगे जो आपस में झगड़ा करके एक दूसरे से रूठ बैठे हों।।45।। गर्मी के कारण घर की बावड़ियाँ भी सेवार जमी हुई सीढ़ियों को छोड़कर पीछे हटने लगीं [अर्थात् उनका पानी सूखने लगा] उनमें कमल की डंडियाँ दिखाई देने लगीं और पानी घटकर स्त्रियों की कमर तक रह गया।।46।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनेषु सायंतनमल्लिकानां विजृम्भणोद्गन्धिषु कुड्मलेषु।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदःसशब्दं संख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार।। 47।।
स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षताङ्के भूयिष्ठसंदष्टशिखं कपोले।
च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीषपुष्पं सहसा पपात।। 48।।
यन्त्रप्रवाहैः शिशिरैः परीतान् रसेन धौतान्मलयोद्भवस्य।
शिलाविशेषानधिशय्य निन्युर्धारागृहेष्वातपमृद्धिमन्तः।। 49।।
स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु।
कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे वलमङ्गनानाम्।। 50।।
आपिञ्जरा बद्धरजःकणत्वान्मञ्जर्युदारा शुशुभेऽर्जुनस्य।
दग्ध्वापि देहं गिरिशेन रोषात्खण्डीकृता ज्येव मनोभवस्य।। 51।।
मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गं पुराणशीधुं नवपाटलं च।
संबध्नता कामिजनेषु दोषाः सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टाः।। 52।।
जनस्य तस्मिन्समये विगाढे बभूवतुर्द्वौ सविशेषकान्तौ।
तापापनोदक्षमपादसेवौ स चोदयस्थौ नृपतिः शशी च।। 53।।
अथोर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे सरय्वाः।
विहर्तुमिच्छा वनितासखस्य तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव।। 54।।

वनों में चमेली खिल गई और उसकी सुगन्ध चारों ओर फैलने लगी। सन्ध्या को गुनगुनाते हुए भौंरे उसके एक-एक फूल पर बैठकर मानो फूलों की गिनती करने लगे।।47।। स्त्रियों के गालों पर प्रियतम के हाथों से बने नखक्षतों पर पसीने की बूँदे फैल जाती थीं और कान पर रखे हुए शिरीस के फूलों का केसर उससे सट जाता था। इसलिये जब वे फूल कान पर से गिरते भी थे तो सहसा पृथ्वी पर नहीं गिर पाते थे।।48।। धनी लोग गर्मी से ठंडी रहने वाली उन विशेष प्रकार की शिलाओं पर सोकर दुपहरी बिताते थे, जो चन्दन से धुली होती थीं और जिनके चारों ओर जल-धाराएँ छूटती रहती थीं।।49।। बसन्त बीत जाने के कारण जो कामदेव मन्द पड़ गया था, वह स्त्रियों के उन केशों में जा कर बस गया, जो स्नान करने पर खोल दिए जाते थे और जिसमें धूप से सुगन्धित करके शाम को फूलने वाली चमेली के सुगन्धित फूल खोंस लिए जाते थे।।50।। पराग से भरी कुछ पीली-पीली अर्जुन की मञ्जरी ऐसी लगती थी, मानो कामदेव का शरीर भस्म करने के पश्चात् शिव जी के हाथ से तोड़ी हुई कामदेव के धनुष की डोरी हो।।51।। मनोहर गन्ध वाली आम की बौर, पुरानी मदिरा और नये पाटल के फूल लाकर ग्रीष्म ऋतु ने कामी पुरुषों की सब कमी पूरी कर दी।।52।। उस कठिन ग्रीष्म समय में उदित होकर दो ही तो प्रजा के बहुत प्यारे हुए। एक तो सेवा से प्रसन्न होकर निर्धनता आदि सन्तापों को दूर करने वाले राजा कुश और दूसरी शीतल किरणों से गर्मी ताप दूर करने वाले चन्द्रमा।।53।। एक दिन कुश की इच्छा हुई कि लहरों के लहराने से मतवाले बने हुए हंसों वाले, तट की लताओं के फूलों को बहाने वाले और गर्मी में सुख देने वाले सरयू के जल में अपनी रानियों के साथ विहार करें।।54।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तीरभूमौ विहितोपकार्यामानायिभिस्तामपकृष्टनक्राम्।
विगाहितुं श्रीमहिमानुरूपं प्रचक्रमे चक्रधरप्रभावः।। 55 ।।
सा तीरसोपानपथावतारादन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः।
सनूपुरक्षोभपदाभिरासीदुद्विग्नहंसा सरिदङ्गनाभिः।। 56 ।।
परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां तासां नृपो मज्जनरागदर्शी।
नौसंश्रयः पार्श्वगतां किरातीमुपात्तवालव्यजनां वभासे।। 57 ।।
पश्यावरोधैः शतशो मदीयैर्विगाह्यमानो गलिताङ्गरागैः।
संध्योदयः साभ्र इवैष वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः।। 58 ।।
विलुप्तमन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं नौलुलिताभिरद्भिः।
तद्बध्नतीभिर्मदरागशोभां विलोचनेषु प्रतिमुक्तमासाम्।। 59 ।।
एता गुरुश्रोणिपयोधरत्वादात्मानमुद्वोढुमशक्नुवत्यः।
गाढाङ्गदैर्बाहुभिरप्सु बालाः क्लेशोत्तरं रागवशात्प्लवन्ते।। 60 ।।
अमी शिरीषप्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनी वारिविहारिणीनाम्।
पारिप्लवाःस्रोतसि निम्नगायाःशैवाललोलाँश्छलयन्ति मीनान्।। 61 ।।
आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते न च्छिदुरोऽपिहारः।। 62 ।।

यह निश्चय करके विष्णु के समान प्रभावशाली कुश, सरयू के जल में विहार करने चले। सरयू के तट पर डेरे डाल दिये गए और मल्लाहों ने जाल डालकर ग्राह आदि सब जीव-जन्तु उसमें से निकाल डाले।।55।। जब कुश की रानियाँ सीढ़ियों से पानी में उतरने लगीं, उस समय उनके भुजबन्द एक दूसरे से रगड़ खाने लगे, पैर के बिछुए बजने लगे और इन शब्दों को सुन-सुनकर सरयू के हंस मचल उठे।।56।। रानियाँ एक-दूसरे पर जल के छींटे उड़ाने लगीं। उन रानियों के स्नान की शोभा देखकर नाव पर बैठे राजा पास में चँवर लेकर खड़ी हुई किरातिन से कहने लगे।।57।। 'देख तो! मेरे रनिवास की सैकड़ों रानियों के स्नान करने से और उनके शरीर से धुले हुए अंगार के मिल जाने से सरयू की धारा ऐसी रंग-बिरंगी लगने लगी है जैसे बादलों से भरी सन्ध्या।।58।। नावों के चलने से जल में जो लहरें उठती हैं, उन्होंने इन सुन्दरियों की आँखों का अञ्जन धो दिया और उसके बदले में मदपान के समय की लाली इनकी आँखों में भर दी।।59।। भारी नितम्बों और स्तनों के कारण ये रानियाँ भली-भाँति तैर नहीं पातीं, फिर भी खेल में सम्मिलित होने के कारण ये अपने मोटे-मोटे भुज बन्दों वाली बाँहों से जल में बड़ी कठिनाई से तैर रही हैं।।60।। इन जलक्रीड़ा करने वाली रानियों के कानों से सिर के कर्णफूल खिसककर नदी में गिरकर तैर रहे हैं। इनको देखकर मछलियों को सेवार का भ्रम हो रहा है और वे इन पर मुँह मारने को झपट रही है।।61।। देखो, जल क्रीड़ा में लगी हुई इन रानियों को यह भी नहीं सुध है कि हमारे हार टूट गए हैं और मोती बिखर गए हैं। मोतियों के समान बूँदों को ही ये मोती समझ बैठी हैं कि हार टूटा नहीं है।।62।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्गो भ्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम्।
जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम्।।63।।

तीरस्थलीबर्हिभिरुत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम्।
श्रोत्रेषु संमूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम्।।64।।

संदष्टवस्त्रेष्वबलानितम्बेष्विन्दु-प्रकाशान्तरितोडुतुल्याः।
अमी जलापूरितसूत्रमार्गा मौनं भजन्ते रशनाकलापाः।।65।।

एताः करोत्पीडितवारिधारा दर्पात्सखीभिर्वदनेषु सिक्ताः।
वक्त्रेकराग्रैरलकैस्तरुण्यश्चूर्णारुणान्वारिलवान्वमन्ति।।66।।

उद्बन्धकेशश्च्युतपत्त्रलेखो विश्लेषिमुक्ताफलपत्त्रवेष्टः।
मनोज्ञ एव प्रमदामुखानामम्भोविहाराकुलितोऽपि वेषः।।67।।

स नौविमानादवतीर्य रेमे विलोलहारः सह ताभिरप्सु।
स्कन्धावलग्नोधृतपद्मनीकः करेणुभिर्वन्य इव द्विपेन्द्रः।।68।।

ततोनृपेणानुगताः स्त्रियस्ता भ्राजिष्णुना सातिशयं विरेजुः।
प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम्।।69।।

देखो, सुन्दरी स्त्रियों के शरीर के अंगों के समान जो वस्तुएँ संसार में प्रसिद्ध हैं, वे सब इन सुन्दरियों के आस-पास जुट आई हैं। ये पानी की भँवरें इनकी गहरी नाभि के समान है, लहरें इनकी भौंहों के समान हैं और चकवा-चकवी इनके स्तनों के समान हैं।।63।। ये गा-गाकर जो मृदंग बजाने के समान थपकी दे-देकर जल ठोक रही हैं, उसे सुनकर बैठे हुए मोर अपनी पूँछ उठाकर और बोलकर उनका अभिनन्दन कर रहे हैं।।64।। इन रानियों ने अपने नितम्बों पर श्वेत वस्त्र लपेट लिया है, जिसके नीचे मेखला के घुँघुरू ऐसे दिखाई देते हैं, जैसे चाँदनी से ढके हुए तारे हैं। मेखला के डोरों में जल भर जाने से इन स्त्रियों के इधर से उधर दौड़ने पर भी ये बज नहीं रहे हैं।।65।। जब इनकी सखियाँ इनके मुँह पर पानी डालती हैं और ये अहंकार से अपनी सखियों पर पानी उछालती हैं, तब इनके सीधे लटके हुए बालों से कुंकुम मिली हुई लाल रंग की बूँदे टपकने लगती हैं।।66।। यद्यपि स्नान के कारण बाल खुल जाने से, मुँह पर और स्तनों पर बनी हुई चित्रकारी के धुल जाने से, तथा मोतियों के कर्णफूल कान से निकल जाने से स्त्रियों का वेश बेढंगा हो गया है, फिर भी देख, ये कितनी मनोहर लग रही हैं।।67।। यह कहकर कुश भी पानी में उतर पड़े और जैसे कमलिनियों को उखाड़ कर कन्धे पर लटका कर हाथी अपनी हथिनियों के साथ जलक्रीड़ा करता है, वैसे ही वे भी उन स्त्रियों के साथ जलविहार करने लगे।।68।। उस कान्तिमान् राजा के साथ क्रीड़ा करती हुई वे रानियाँ पहले से भी अधिक सुन्दर लगने लगीं; क्योंकि मोती तो यों ही सुन्दर होता है और फिर यदि वह इन्द्र नीलमणि के साथ गूँथ दिया जाए तब तो कहना ही क्या।।69।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णोदकैः काञ्चनशृङ्गमुक्तैस्तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन्।
तथागतः सोऽतितरां बभासे सधातुनिष्यन्द इवाद्रिराजः।।70।।
तेनावरोधप्रमदासखेन विगाहमानेन सरिद्वरां ताम्।
आकाशगङ्गारतिरप्सरोभिर्वृतो मरुत्वाननुयातलीलः।।71।।
यत्कुम्भयोनेरधिगम्य रामः कुशाय राज्येन समं दिदेश।
तदस्य जैत्राभरणं विहर्तुरज्ञातपातं सलिले ममज्ज।।72।।
स्नात्वा यथाकाममसौ सदारस्तीरोपकार्यां गतमात्र एव।
दिव्येन शून्यं वलयेन बाहुमुपोढनेपथ्यविधिर्ददर्श।।73।।
जयश्रियः संवननं यतस्तदामुक्तपूर्वं गुरुणा च यस्मात्।
सेहेऽस्य न भ्रंशमतो न लोभात्स तुल्यपुष्पाभरणो हि धीरः।।74।।
ततः समाज्ञापयदाशु सर्वानानायिनस्तद्विचये नदीष्णान्।
वन्ध्यश्रमास्ते सरयूं विगाह्य तमूचुरम्लानमुखप्रसादाः।।75।।
कृतः प्रयत्नो न च देव लब्धं मग्नं पयस्याभरणोत्तमं ते।
नागेन लौल्यात्कुमुदेन नूनमुपात्तमन्तर्ह्रदवासिना तत्।।76।।
ततः स कृत्वा धुनराततज्यं धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षः।
गारुत्मतं तीरगतस्तरस्वी भुजंगनाशाय समाददेऽस्त्रम्।।77।।

वे स्त्रियाँ सोने की पिचकारियों से रंग छोड़-छोड़कर जब उन्हें भिगोने लगीं। उस समय वे ऐसे लगने लगे, जैसे पर्वतराज हिमालय पर से गेरू का झरना गिर रहा हो।।70।। स्त्रियों के साथ सरयू में, जलक्रीड़ा करते समय कुश ऐसे लगते थे, मानो देवराज इन्द्र अप्सराओं के साथ आकाशगंगा में जलक्रीड़ा कर रहे हों।।71।। राम को अगस्त्य ऋषि ने जैत्र [अर्थात् सदा जिताने वाला] जो आभूषण दिया था, उसे राम ने राज्य के साथ ही कुश को दे दिया था। जलक्रीड़ा करते समय वह आभूषण पानी में गिर पड़ा और किसी को इसका मान भी नहीं हुआ।।72।। रानियों के साथ इच्छानुसार जलक्रीड़ा करके जब कुश बाहर निकले और डेरे में गए, तब कपड़े बदलने के पहले ही उन्होंने देखा कि भुजा पर वह दिव्य आभूषण नहीं है।।73।। बुद्धिमान् राजा कुश, फूल और आभूषण दोनों को बराबर समझते थे। अतः उन्हें उस आभूषण के खोने का इसलिये दुःख नहीं था कि वह बहुमूल्य था, वरन् इसलिये दुःख हुआ कि वह आभूषण विजय-लक्ष्मी प्राप्त करने वाला था और पिता का चिह्न था।।74।। तब उन्होंने सब धीवरों को आभूषण ढूँढ़ने की आज्ञा दी। बहुत देर तक उन लोगों ने पानी झकोरा पर उनका सब परिश्रम व्यर्थ गया। वे कुश के पास आकर बोले—।।75।। 'हे देव! बहुत परिश्रम करने पर भी हम लोग जल में पड़ा हुआ आपका आभूषण नहीं पा सके। जान पड़ता है कि इस जल में रहने वाले कुमुद नाम के नाग ने लोभ से चुरा लिया है।।76।। यह सुनते ही कुश की आँखें क्रोध से लाल हो गईं और वहीं तट पर खड़े होकर उन्होंने धनुष को ठीक किया और उस पर नागों का नाश करने वाला गारुड़ अस्त्र चढ़ाया।।77।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्ह्रदः संहितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरङ्गहस्तः।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास।। 78।।
तस्मात्समुद्रादिव मथ्यमानादुद्वृत्तनक्रात्सहसोन्ममज्ज।
लक्ष्म्येव सार्धं सुरराजवृक्षः कन्यां पुरस्कृत्य भुजंगराजः।। 79।।
विभूषणप्रत्युपहारहस्तमुपस्थितं वीक्ष्य विशांपतिस्तम्।
सौपर्णमस्त्रं प्रतिसंजहार प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः।। 80।।
त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्रभावात्कुशं द्विषामंकुशमस्त्रविद्वान्।
मानोन्नतेनाप्यभिवन्द्य मूर्ध्ना मूर्धाभिषिक्तं कुमुदो बभाषे।। 81।।
अवैमि कार्यान्तरमानुषस्य विष्णोः सुताख्यामपरां तनुं त्वाम्।
सोऽहं कथं नाम तवाचरेयमाराधनीस्य धृतेर्विघातम्।। 82।।
कराभिघातोत्थितन्दुकेयमालोक्य बालातिकुतूहलेन।
ह्रदात्पतज्ज्योतिरिवान्तरिक्षादादत्त जैत्राभरणं त्वदीयम्।। 83।।
तदेतदाजानुविलम्बिना ते ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन।
भुजेन रक्षापरिघेण भूमेरुपैतु योगं पुनरंसलेन।। 84।।
इमां स्वसारं च यवीयसीं मे कुमुद्वतीं नार्हसि नानुमन्तुम्।
आत्मापराधं नुदतीं चिराय शुश्रूषया पार्थिव पादयोस्ते।। 85।।

उनके धनुष चढ़ाते ही वहाँ का जल, खौलता हुआ, अपने तरंग-रूपी हाथ जोड़े हुए, तट को तोड़ता हुआ ऐसे गरजने लगा जैसे गड्ढें में पड़ा हुआ कोई हाथी चिंग्घाड़ रहा हो।।78।। उस जल को समुद्र के समान मथा जाता देखकर घड़ियाल आदि जीव घबरा उठे। इतने में ही उस जल में से अचानक एक कन्या को आगे किए हुए नागराज कुमुद इस प्रकार निकले मानो लक्ष्मी को साथ लेकर कल्पवृक्ष निकल आया हो।।79।। कुश ने देखा कि कुमुद के हाथ में वही आभूषण है, इसलिये उन्होंने धनुष पर से गारुडास्त्र उतार लिया; क्योंकि सज्जन लोग उन पर क्रोध नहीं करते जो नम्र होकर उनके आगे आते हैं।।80।। त्रिलोकीनाथ राम के पुत्र तथा शत्रुओं को अंकुश के समान दुःख देने वाले राजा कुश के आगे मान से उठा हुआ अपना सिर नवाकर कुमुदने प्रणाम किया; क्योंकि वह कुश के बाण की शक्ति भली-भाँति जानता था। प्रणाम करके वह बोला–।।81।। 'मैं यह जानता हूँ कि आप राक्षसों का नाश करने के लिये मनुष्य का शरीर धारण करने वाले विष्णु के ही दूसरे रूप अर्थात् पुत्र हैं, इसलिये आप पूजनीय हैं। फिर मैं भला आप से कैसे बैर कर सकता हूँ।।82।। यह मेरी कन्या गेंद खेल रही थी। इसकी थपकी से गेंद ऊपर उछल गई। उसे देखने के लिये उसने जो ऊपर आँखें उठाई तो देखा कि आकाश से गिरते हुए तारे के समान आपका आभूषण नीचे चला आ रहा है। इसने झट उसे पकड़ लिया।।83।। आप इसे लीजिए और अपनी उस मोटी और घुटनों तक लम्बी भुजा में फिर बाँध लीजिए, जिसमें धनुष की डोरी की फटकार से घट्ठे पड़ गए हैं और जो पृथ्वी की रक्षा करती है।।84।। हे राजन्! यह मेरी छोटी बहन कुमुद्वती जीवन भर आपकी सेवा करके अपना अपराध मिटाना चाहती है, इसलिये आप इसे अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण कर लीजिए।।85।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यूचिवानुपहृताभरणः क्षितीशं
श्लाघ्यो, भवान्स्वजन इत्यनुभाषितारम्।
संयोजयां विधिवदास समेतबन्धुः,
कन्यामयेन कुमुदः कुलभूषणेन।। 86।।
तस्याः स्पृष्टे मनुजपतिना साहचर्याय हस्ते,
माङ्गल्योर्णावलयिनि पुरः पावकस्योच्छिखस्य।
दिव्यस्तूर्यध्वनिरुदचरद्व्यश्नुवानो दिगन्तान्,
गन्धोदग्रं तदनु ववृषुः पुष्पमाश्चर्यमेघाः।।87।।
इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं,
लब्ध्वा बन्धुं तमपि च कुशः पंचमं तक्षकस्य।
एकः शङ्कां पितृवधरिपोरत्यजद्वैनतेया,
च्छान्तव्यालामवनिमपरः पौरकान्तः शशास।। 88।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
कुमुद्वतीपरिणयो नाम षोडशः सर्गः।।

यह कहकर कुमुदने वह आभूषण कुश को दे दिया। कुश बोले–'आज से आप मेरे आदरणीय सम्बन्धी हुए'। यह सुनकर कुमुदने अपने कुटुम्बियों को बुलाया और बड़ी धूमधाम से अपनी कन्या कुश को ब्याह दी।।86।। जब राजा कुश ने अग्नि के आगे उस कन्या का ऊनी कंगन बँधा हुआ हाथ पकड़ा, उस समय तुरही आदि बाजों की ध्वनि से दिशाएँ गूँज उठी और विचित्र प्रकार के मेघों ने आकर आकाश से सुगन्धित फूल बरसा दिए।।87।। इस प्रकार नागराज कुमुद ने त्रिलोकीनाथ विष्णु अर्थात् राम के सच्चे पुत्र कुश को अपना सम्बन्धी बनाकर गरुड़ से डरना छोड़ दिया; क्योंकि अब वह उसके सम्बन्धी के पिता का वाहन मात्र था। कुश ने भी नागराज तक्षक के पाँचवें पुत्र कुमुद को सम्बन्धी बना लिया जिससे सर्प शान्त हो गए और कुश पृथ्वी पर भली भाँति राज्य करने लगे।।88।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'कुमुद्वती का विवाह'
नाम का सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तदशः सर्गः

अतिथिं नाम काकुत्स्थात्पुत्रं प्राप कुमुद्वती।
पश्चिमाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना।।1।।
स पितुः पितृमान्वंशं मातुश्चानुपमद्युतिः।
अपुनात्सवितेवोभौ मार्गावुत्तरदक्षिणौ।।2।।
तमादौ कुलविद्यानामर्थमर्थविदां वरः।
पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिमग्राहयत्पिता।।3।।
जात्यस्तेनाभिजातेन शूरः शौर्यवता कुशः।
अमन्यतैकमात्मानमनेकं वशिना वशी।।4।।
स कुलोचितमिन्द्रस्य सहायकमुपेयिवान्।
जघान समरे दैत्यं दुर्जयं तेन चावधि।।5।।
तं स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती।
अन्वगात्कुमुदानन्दं शशांकमिव कौमुदी।।6।।
तयोर्दिवस्पतेरासीदेकः सिंहासनार्धभाक्।
द्वितीयापि सखी शच्याःपारिजातांशभागिनी।।7।।
तदात्मसंभवं राज्ये मन्त्रिवृद्धाः समादधुः।
स्मरन्तः पश्चिमामाज्ञां भर्तुः संग्रामयायिनः।।8।।

सतहरवाँ सर्ग

जिस प्रकार रात के चौथे प्रहर [अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त] में बुद्धि को नयापन मिल जाता है वैसे ही कुश को कुमुद्वती से अतिथि नाम का पुत्र प्राप्त हुआ।।1।। जैसे तेजस्वी सूर्य अपने प्रकाश से उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं को पवित्र कर देता है, वैसे ही सुशिक्षित अतिथि ने माता और पिता के दोनों कुलों को पवित्र कर दिया।।2।। पिता कुश ने पहले उसे आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चारों विद्याएँ सिखाईं, फिर राजाओं की कन्याओं से उसका विवाह करा दिया।।3।। अतिथि भी कुश के समान ही कुलीन, शूर और जितेन्द्रिय थे; इसीलिये कुश अपने पुत्र को अपना ही दूसरा रूप समझते थे।।4।। अपने कुल की चलन के अनुसार कुश भी एक बार युद्ध में इन्द्र की सहायता करने गए। वहाँ शक्तिशाली दुर्जय नाम के राक्षस को मारकर वे स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए।।5।। जैसे कुमुदों को खिलाने वाले चन्द्रमा के अस्त होने के साथ-साथ चाँदनी भी छिप जाती है, वैसे ही नागराज कुमुद की बहन कुमुद्वती भी कुश के साथ ही सती हो गई।।6।। कुश को तो इन्द्र के सिंहासन का आधा भाग मिला और कुमुद्वती जा कर इन्द्राणी के साथ पारिजात में आधा भाग ले बैठीं।।7।। लड़ाई में जाते समय कुश ने जो आज्ञा दी थी, उसके अनुसार मंत्रियों ने उनके पुत्र अतिथि को राजा बनाया।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते तस्य कल्पयामासुरभिषेकाय शिल्पिभिः।
विमानं नवमुद्वेदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम्।। 9।।

तत्रैनं हेमकुम्भेषु संभृतैस्तीर्थवारिभिः।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम्।। 10।।

नदद्भिः स्निग्धगम्भीरं तूर्यैराहतपुष्करैः।
अन्वमीयत कल्याणं तस्याविच्छिन्नसंततिः।। 11।।

दूर्वायवांकुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान्।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स भेजे नीराजनाविधीन्।। 12।।

पुरोहितपुरोगास्तं जिष्णुं जैत्रैरथर्वभिः।
उपचक्रमिरे पूर्वमभिषेक्तुं द्विजातयः।। 13।।

तस्यौघमहती मूर्ध्नि निपतन्ती व्यरोचत।
सशब्दमभिषेकश्रीर्गङ्गेव त्रिपुरद्विषः।। 14।।

स्तूयमानः क्षणे तस्मिन्नलक्ष्यत स बन्दिभिः।
प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारङ्गैरभिनन्दितः।। 15।।

तस्य सन्मन्त्रपूताभिः स्नानमद्भिः प्रतीच्छतः।
ववृधे वैद्युतस्याग्नेवृष्टिसेकादिव द्युतिः।। 16।।

स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु।
यावतैषां समाप्येरन्यज्ञः पर्याप्तदक्षिणाः।। 17।।

मंत्रियों ने उसके अभिषेक के लिये कारीगरों से चार खंभों का नया मंडप बनवाया।।9।। प्रजा ने भद्रपीठ पर बैठे हुए राजा अतिथि को सोने के घड़ों में भरे हुए तीर्थों के जल से नहलाया।।10।। थाप पड़ने पर मृदंग आदि बाजों से जो मीठा और गम्भीर शब्द निकल रहा था, वह यह सूचना दे रहा था कि राजा अतिथि का सदा कल्याण होगा।।11।। दूब, जौ के अंकुर बड़ की छाल और महुए के फूल दोनों में रखकर कुल के बूढ़ों ने जो आरती की, उसे राजा अतिथि ने बड़े आदर से स्वीकार किया।।12।। तब पुरोहित जी को आगे करके ब्राह्मण आए और उन्होंने विजयी राजा को अथर्ववेद के उन मंत्रों को पढ़कर नहलाना प्रारम्भ किया जिनसे विजय प्राप्त होती है।।13।। उनके सिर पर गिरती हुई अभिषेक के जल की धारा ऐसी सुन्दर लगती थी, मानो शिवजी के सिर पर गंगा जी की धारा गिर रही हो।।14।। उस समय भाट और चारण जब उनका विरद बखानने लगे तो ऐसा लगता था, मानो बहुत से चातक मिलकर बादल के गुण गा रहे हों।।15।। मन्त्रों से पवित्र हुए जल से स्नान करते समय उनके शरीर का तेज वैसे ही बढ़ गया, जैसे वर्षा के जल से बिजली की चमक बढ़ जाती है।।16।। अभिषेक के पश्चात् उन्होंने यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को इतना धन दिया कि उस धन से वे स्वयं गहरी दक्षिणा दे-देकर अपना एक-एक यज्ञ कर सकते थे।।17।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते प्रीतमनसस्तस्मै यामाशिषमुदैरयन्।
सा तस्य कर्मनिर्वृत्तैर्दूरं पश्चात्कृता फलैः।। 18।।

बन्धच्छेदं स बद्धानां बधार्हाणामवध्यताम्।
धुर्याणां च धुरो मोक्षमदोहं चादिशद्गवाम्।। 19।।

क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः।
लब्धमोक्षास्तदादेशाद्यथेष्टगतयोऽभवन्।। 20।।

ततः कक्ष्यान्तरन्यस्तं गजदन्तासनं शुचिः।
सोत्तरच्छदमध्यास्त नेपथ्यग्रहणाय सः।। 21।।

तं धूपाश्यानकेशान्तं तोयनिर्णिक्तपाणयः।
आकल्पसाधनैस्तैस्तैरुपसेदुः प्रसाधकाः।। 22।।

तेऽस्य मुक्तागुणोन्नद्धं मौलिमन्तर्गतस्रजम्।
प्रत्यूपुः पद्मरागेण प्रभामण्डलशोभिना।। 23।।

चन्दनेनाङ्गरागं च मृगनाभिसुगन्धिना।
समापय्य ततश्चक्रुः पत्रं विन्यस्तरोचनम्।। 24।।

आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान्।
आसीदतिशयप्रेक्ष्यः स राज्यश्रीवधूवरः।। 25।।

ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर उन्हें जो आशीर्वाद दिया, उस आशीर्वाद को फलीभूत होने के लिये बहुत दिन देखने पड़े; क्योंकि आशीर्वाद के समय तो राजा अतिथि अपने पर्व जन्म के सत्कर्मों का ही फल भोग रहे थे, [आशीर्वाद का फल उस फल के समाप्त होने पर प्रारंभ होता] ।।18।। राज्याभिषेक की प्रसन्नता में अतिथि ने आज्ञा दी कि बन्दियों को छोड़ दिया जाय, मृत्यु-दण्ड पाए हुए मारे न जायँ, बोझ ढोने वाले पशुओं के कन्धे पर से जुए उतार लिय जायें और गौओं का दूध बछड़ों को पीने के लिये छोड़ दिया जाय।।19।। उनकी आज्ञा से पिंजड़े के तोते आदि पक्षी भी छोड़ दिए गए जो अपने मन से इधर-उधर उड़कर घूमने लगे।।20।। तब वह अपना राजसी शृंगार कराने के लिये हाथी-दाँत के बने उस सिंहासन पर बैठा जो राजभवन में एक ओर रखा हुआ था और जिस पर बिछावन बिछा हुआ था।।21।। शृंगारियों ने स्वच्छ हाथों से, धूप से सुगंधित केश वाले राजा अतिथि को सब प्रकार से सजा दिया।।22।। फूल और मोतियों की मालाओं से गुँथे हुए राजा के सिर पर उन्होंने वह पद्मरागमणि बाँधा जिसकी सुन्दर चमक चारों ओर फैल गई।।23।। तब उन्होंने कस्तूरी से सुवासित हुए चन्दन का अंगराग लगाकर गोरोचन से राजा का मुँह पर लेप लगाया।।24।। आभूषण और माला पहने हुए, हंस छपा हुआ दुपट्टा ओढे हुए, राजा अतिथि उस समय ऐसे सुन्दर दिखाई देते थे, मानो राजलक्ष्मी रूपी बहू के दूल्हे हों।।25।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपथ्यदर्शिनश्छाया तस्यादर्शे हिरण्मये।
विरराजोदिते सूर्ये मेरौ कल्पतरोरिव।। 26।।
स राजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्तिभिः।
ययावुदीरितालोकः सुधर्मानवमां सभाम्।। 27।।
वितानसहितं तत्र भेजे पैतृकमासनम्।
चूडामणिभिरुद्घृष्टपादपीठं महीक्षिताम्।। 28।।
शुशुभे तेन चाक्रान्तं मङ्गलायतनं महत्।
श्रीवत्सलक्षणं वक्षः कौस्तुभेनेव कैशवम्।। 29।।
बभौ भूयः कुमारत्वादाधिराज्यमवाप्य सः।
रेखाभावादुपारूढः सामग्रयंमिव चन्द्रमाः।। 30।।
प्रसन्नमुखरागं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम्।
मूर्तिमन्तममन्यन्त विश्वासमनुजीविनः।। 31।।
स पुरं पुरुहूतश्रीः कल्पद्रुमनिभध्वजाम्।
क्रममाणश्चकार द्यां नागेनैरावतौजसा।। 32।।
तस्यैकस्योच्छ्रितं छत्रं मूर्ध्नि तेनामलत्विषा।
पूर्वराजवियोगौष्म्यं कृत्स्नस्य जगतो हृतम्।। 33।।

सोने के चौखटे वाले दर्पण में जब वे अपनी सजावट देखने लगे, उस समय उनका प्रतिबिम्ब ऐसा लग रहा था, मानो सूर्योदय के समय सुमेरु पर्वत पर कल्पवृक्ष का प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो।।26।। तब वे अपनी उस सभा की ओर चले, जो किसी भी प्रकार देवताओं की सभा से कम नहीं थी। उनके पीछे-पीछे बहुत से सेवक हाथ से चँवर डुलाते और जय-जयकार करते चल रहे थे।।27।। वहाँ चँदोवा लगे हुए अपने पूर्वजों के सिंहासन पर वे तत्काल जा बैठे। उनके पैर के नीचे रखा हुआ पीढ़ा प्रणाम करने वाले राजाओं के सिर की मणियों की रगड़ से घिस गया।।28।। जैसे भृगु के चरण की चोट से बने हुए श्रीवत्स के चिह्न वाला विष्णु का वक्षःस्थल कौस्तुभमणि से चमक उठता है वैसे ही राजा अतिथि के बैठने से वह सभा-भवन भी जगमगा उठा।।29।। राजा अतिथि को युवराज बनने का अवसर ही नहीं आया; क्योंकि वे कुमार अवस्था के पश्चात् तुरन्त ही इस प्रकार महाराज हो गए मानो, एक कला वाले चन्द्रमा में तुरन्त सोलहों कलाएँ आ गई हों।।30।। उनका मुख सदा प्रसन्न रहता था और वे सबसे हँसकर बोलते थे; इसलिये उनके सेवक उन्हें साक्षात् विश्वास के समान मानते थे।।31।। इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली राजा अतिथि जब ऐरावत के समान बलवान् हाथी पर चढ़कर अयोध्या में घूमने निकले तब कल्पवृक्ष के समान ध्वजाओं वाली अयोध्या नगरी स्वर्ग के समान लगने लगी।।32।। यद्यपि राज-छात्र केवल अतिथि के सिर पर लगा हुआ था; पर उस श्वेतरंग के छत्र ने सारे संसार के उस ताप को दूर कर दिया जो कुश के वियोग से उत्पन्न हो गया था।।33।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमादग्नेः शिखाः पश्चादुदयादंशवो रवेः।
सोऽतीत्य तेजसां वृत्तिं सममेवोत्थितो गुणैः।। 34।।

तं प्रीतिविशदैर्नेत्रैरन्वयुः पौरयोषितः।
शरत्प्रसन्नैर्ज्योतिर्भिर्विभावर्य इव ध्रुवम्।। 35।।

अयोध्यादेवताश्चैनं प्रशस्तायतनार्चिताः।
अनुदध्युरनुध्येयं सांनिध्यैः प्रतिमागतैः।। 36।।

यावन्नाश्यायते वेदिरभिषेकजलाप्लुता।
तावदेवास्य वेलान्तं प्रतापः प्राप दुःसहः।। 37।।

वशिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सायकास्तस्य धन्विनः।
किं तत्साध्यं यदुभये साधयेयुर्न संगताः।। 38।।

स धर्मस्थसखः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयम्।
ददर्श संशयच्छेद्यान्व्यवहारानतन्द्रितः।। 39।।

ततः परमभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः।
युयोज पाकाभिमुखैर्भृत्यान्विज्ञापनाफलैः।। 40।।

प्रजास्तद्गुरुणा नद्यो नभसेव विवर्धिताः।
तस्मिंस्तु भूयसीं वृद्धिं नभस्ये ता इवाययुः।। 41।।

आग की लपटें धुआँ निकलने के पीछे उठती हैं और किरणें सूर्य के उदय होने के पीछे दिखाई देती हैं; पर अतिथि ने इन तेजस्वियों के नियमों को भी उलट दिया; क्योंकि उनके गुण उनके राजा बनने के साथ-साथ प्रकट हो गए।।34।। जैसे शरद् ऋतु की निर्मल रातों के तारे ध्रुव के चारों ओर घूमते हैं, वैसे ही नगर की स्त्रियों की प्रेम-भरी आँखें भी अतिथि के चारों ओर घूमने लगीं।।35।। अयोध्या के बड़े-बड़े मन्दिरों में जिन देवताओं की पूजा की गई, उन्होंने अपनी मूर्तियों में बैठ-बैठकर कृपा के योग्य राजा अतिथि पर बड़ी कृपा की।।36।। अभी अभिषेक के जल से भीगी हुई वेदी सूखने भी न पाई थी कि उनका दुस्सह प्रताप समुद्र के तट तक पहुँच गया।।37।। गुरु वशिष्ठ के मन्त्र और धनुषधारी राजा के बाण दोनों ने, कोई ऐसा कार्य नहीं था, जिसे मिलकर पूरा न कर डाला हो।।38।। धर्मात्माओं के मित्र राजा अतिथि, आलस्य छोड़कर वादी-प्रतिवादियों के पेचीदे झगड़े स्वयं निपटाते थे।।39।। जैसे वृक्षों को फूला हुआ देखकर यह जान लिया जाता है कि इससे इतने फल मिलेंगे वैसे ही राजा अतिथि के प्रसन्न मुख को देखकर ही उनके सेवक जान जाते थे कि हमें इतना धन मिलेगा।।40।। कुश के समय में जो प्रजा सावन की नदी के समान भरी-पूरी रहती थी, फिर वह अतिथि के राज्य में भादों की नदी के समान और भी अधिक उतराने लगी।।41।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यादुवाच न तन्मिथ्या यद्ददौ न जहार तत्।
सोभूद्भग्नव्रतः शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयन्।। 42।।

वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम्।
तानि तस्मिन्समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः।। 43।।

इत्थं जनितरागासु प्रकृतिष्वनुवासरम्।
अक्षोभ्यः स नवोऽप्यासीद्दृढमूल इव द्रुमः।। 44।।

अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः।
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान्षट्पूर्वमजयद्रिपून्।। 45।।

प्रसादाभिमुखे तस्मिँश्चपलापि स्वभावतः।
निकषे हेमरेखेव श्रीरासीदनपायिनी।। 46।।

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः।। 47।।

न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः।
अदृष्टमभवत्किचिद्व्यभ्रस्येव विवस्वतः।। 48।।

रात्रिंदिवविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम्।
तत्सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः।। 49।।

राजा अतिथि ने मुँह से जो कह दिया उसे पूरा कर दिखाया, जिसे जो दे दिया उससे फिर नहीं लिया। पर हाँ, शत्रुओं को उखाड़ कर उन्हें जमाते समय उन्होंने यह नियम तोड़ दिया था।।42।। यौवन, सौन्दर्य और ऐश्वर्य, इनमें से एक भी वस्तु जिनके पास होती है वह मद वाला हो जाता है, पर राजा अतिथि के पास ये सभी थे फिर भी उन्हें अभिमान छू तक न गया था।।43।। इस प्रकार प्रजा उनसे दिन पर दिन अधिक प्रेम करने लगी और नये राजा होने पर भी वे गहरी जड़ वाले वृक्ष के समान अचल हो गए।।44।। यह सोचकर कि बाहरी शत्रु तो सदा होते नहीं और होते भी हैं तो दूर रहते हैं, इसलिये उन्होंने शरीर के भीतर सदा रहने वाले छहों [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य] शत्रुओं को पहले ही जीत लिया।।45।। स्वभाव चंचल लक्ष्मी भी प्रसन्न मुख वाले अतिथि के पास आकर उसी प्रकार अचल होकर बैठ गई, जैसे कसौटी पर बनी हुई सोने की लकीर पक्की होकर बैठ जाती है।।46।। केवल कूटनीति से काम लेना कायरता है और मारकाट से जीतना हिंसक पशुओं का स्वभाव है, इसलिये उन्होंने कूटनीति और मारकाट दोनों को मिलाकर शत्रुओं को जीता।।47।। जैसे खुले आकाश में सूर्य की किरणों के फैल जाने से कुछ भी छिपा नहीं रह जाता, वैसे ही अतिथि ने चारों ओर दूतों का ऐसा जाल बिछा दिया कि प्रजा की कोई बात उनसे छिपी नहीं रह पाती थी।48।। शास्त्रों ने राजाओं के लिए दिन और रात के कर्त्तव्य निर्धारित किए हैं, उन सबको राजा अतिथि विश्वास के साथनियम पूर्वक पालते थे।।49।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः।
स जातु सेव्यमानोपि गुप्तद्वारो न सूच्यते।। 50।।

परेषु स्वेषु च क्षिप्तैरविज्ञातपरस्परैः।
सोऽपसर्पैर्जजागार यथाकालं स्वपन्नपि।। 51।।

दुर्गाणि दुर्ग्रहाण्यासँस्तस्य रोद्धुरपि द्विषाम्।
न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद्गिरिगुहाशयः।। 52।।

भव्यमुख्याः सभारम्भाः प्रत्यवेक्ष्या निरत्ययाः।
गर्भशालिसधर्माणस्तस्य गूढं विपेचिरे।। 53।।

अपथेन प्रववृते न जातूपचितोऽपि सः।
वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानं लवणाम्भसः।। 54।।

कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः।
कस्य कार्यः प्रतीकारः स तन्नौवोदपादयत्।। 55।।

शक्येष्वेवाभवद्यात्रा तस्य शक्तिमतः सतः।
समीरणसहायोऽपि नाम्भःप्रार्थी दवानलः।। 56।।

वे प्रतिदिन मन्त्रियों के साथ राज्य की बातें करते थे, पर वे बातें इतनी गुप्त रखी जाती थीं कि प्रतिदिन व्यवहारों में आने पर भी किसी को उनका ज्ञान नहीं हो पाता।।50।। उन्होंने अपने कर्मचारियों तथा शत्रुओं का भेद जानने के लिये ऐसी चतुराई से उनके पीछे दूत लगा रखे थे कि वे दूत भी आपस में एक दूसरे को नहीं पहचान पाते थे। उन दूतों से सब समाचार मिलते रहने के कारण वे सोते हुए भी मानो जागते रहते थे।।51।। यद्यपि वे युद्ध में ही शत्रुओं को घेरते थे, फिर भी उन्होंने राजधानी के चारों ओर बहुत बड़े-बड़े दुर्ग बनवा दिये थे; क्योंकि हाथियों को मारने वाला सिंह गुफा में हाथियों के भय से नहीं सोता है; वरन् उसका स्वभाव ही वैसा होता है।।52।। वे जो काम करते थे; सब कल्याणकारी होते थे। वे कोई काम करने के पहले उस पर भली भाँति विचार भी करते थे। इसलिए उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती थी। जैसे धान का दाना भीतर ही भीतर पक जाता है, वैसे ही उनका काम भी गुप्तरूप से ही आरम्भ होकर पूरा हो जाता था।।53।। ऐश्वर्यशाली होकर भी उन्होंने खोटे मार्ग में पैर नहीं रखा; क्योंकि ज्वार के समय भी जब समुद्र बढ़ता है, तब नदियों के मार्ग से ही बढ़ता है दूसरे मार्गों से नहीं।।54।। उनमें इतनी शक्ति थी कि प्रजा में यदि किसी कारण असन्तोष हो, तो उसे क्षण भर में दूर कर दें; पर उन्होंने प्रजा में कोई ऐसा असन्तोष उत्पन्न ही नहीं होने दिया, जिसे दूर करने की आवश्यकता पड़े।।55।। वे शक्तिमान् थे, इसलिये शक्तिशाली राजाओं पर हीं चढ़ाई करते थे, दुर्बलों पर नहीं क्योंकि वायु की सहायता मिलने पर भी वन में लगी हुई आग कभी पानी को नहीं जलाती।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न धर्ममर्थकामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ।
नार्थं कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु।। 57।।
हीनान्यनुपकर्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्वते।
तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितान्यतः।। 58।।
परात्मनोः परिच्छिद्य शक्त्यादीनां बलाबलम्।
ययावेभिर्बलिष्ठश्चेत्परस्मादास्त सोऽन्यथा।। 59।।
कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसंग्रहः।
अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते।। 60।।
परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु।
आवृणोदात्मनोरन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन्रिपून्।। 61।।
पित्रा संवर्धितो नित्यं कृतास्त्रः सांपरायिकः।
तस्य दण्डवतो दण्डः स्वदेहान्न व्यशिष्यत।। 62।।
सर्पस्येव शिरोरत्नं नास्य शक्तित्रयं परः।
स चकर्ष परस्मात्तदयस्कान्त इवायसम्।। 63।।
वापीष्विव स्रवन्तीषु वनेषूपवनेष्विव।
सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चेरुर्वेश्मस्विवाद्रिषु।। 64।।

उन्होंने अर्थ और काम के लिये कभी धर्म को नहीं छोड़ा और धर्म से बँधकर अर्थ और काम को छोड़ा और न अर्थ के कारण काम को या काम के कारण अर्थ को छोड़ा वरन् धर्म, अर्थ और काम तीनों के साथ वे एक-सा व्यवहार करते थे।।57।। यदि नीच मित्र मिल जाते हैं, तो कुछ-न-कुछ खोट अवश्य करते हैं यदि धनी मिल जाते हैं तो कुछ न कुछ बाधा डालते हैं, इसलिए उन्होंने ऐसे लोगों को मित्र बनाया जो न नीच ही थे, न धनी ही थे।।58।। चढ़ाई करने के पहले वे अपने और अपने शत्रु के बल और त्रुटि को भली भाँति तोल लेते थे। जब शत्रु से अपना बल अधिक देखते थे तभी उस पर आक्रमण करते थे नहीं तो चुप बैठे रहते थे।।59।। उन्होंने इसलिये ये धन इकट्ठा किया कि एक तो इससे आदर होता और दूसरे, दीन लोग आकर आश्रय लेते हैं; क्योंकि चातक उन्हीं बादलों का स्वागत करते हैं, जिनमें पानी भरा होता है।।60।। शत्रुओं का उद्योग नष्ट करके वे अपने-उद्योग में लग गए। उन्होंने शत्रुओ के दोषों का लाभ उठाकर उन्हें नष्ट कर दिया और अपने दोष दूर कर लिए।।61।। कुश के प्रयत्न ही बढ़ी हुई शस्त्रास्त्र चलाना जानने वाली और युद्ध करने में समर्थ जो उनकी सेना थी उसे दण्डधर अतिथि अपने शरीर के समान सँभाल कर रखते थे।।62।। जैसे सर्प के सिर से मणि नहीं निकाली जा सकती वैसे ही शत्रु इनके प्रभाव, उत्साह और मन्त्र इन तीन शक्तियों को अपनी ओर नहीं खींच सके। पर जैसे चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, वैसे ही उन्होंने शत्रुओं की उन तीनों शक्तियों को अपनी ओर खींच लिया।।63।। अतिथि का इतना प्रताप था कि व्यापारी लोग ऐसे बे-रोक-टोक व्यापार करते थे कि नदियाँउनके लिए बावड़ी जैसी घरेलू वन भी उद्यान जैसे सुख कर और पहाड़ अपने भवन जैसे सुगम हो गये।।64।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपो रक्षन्स विघ्नेभ्यस्तस्करेभ्यपश्च संपदः।
यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंशभाक्।। 65।।

खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः सस्यं वनैर्गजान्।
दिदेश वेतनं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः।। 66।।

स गुणानां बलानां च षण्णां षण्मुखविक्रमः।
बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु वस्तुषु।। 67।।

इति क्रमात्प्रयुञ्जानो राजनीतिं चतुर्विधाम्।
आतीर्थादप्रतीघातं स तस्याः फलमानशे।। 68।।

कूटयुद्धविधिज्ञोऽपि तस्मिन्सन्मार्गयोधिनि।
भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी।। 69।।

प्रायः प्रतापभग्नत्वादरीणां तस्य दुर्लभः।
रणो गन्धद्विपस्येव गन्धभिन्नान्यदन्तिनः।। 70।।

प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः।
स तु तत्समवृद्धिश्च न चाभूत्ताविव क्षयी।। 71।।

उन्होंने विघ्नों से तपस्वियों के तप की रक्षा की, चोरों से प्रजा की सम्पत्ति को बचाया और चारों आश्रमों तथा चारों वर्णों से उनके धन के अनुसार छठा भाग पाया।।65।। जिस प्रकार वे रक्षा कर रहे थे, उसी प्रकार पृथ्वी भी उन्हें ऐश्वर्य देती जा रही थी। खानों ने रत्न दिए, खेतों ने अन्न दिया और वनों ने उन्हें हाथी दिए।।66।। कार्तिकेय के समान पराक्रमी राजा अतिथि यह भली भाँति जानते थे कि [सन्धि, विग्रह, यान, आसन संश्रय और द्वैधीभाव इन] छह राजगुणों को कैसे व्यवहार में लाना चाहिए तथा छह प्रकार की सेनाओं के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए।।67।। इस प्रकार साम, दाम, दण्ड, भेद इन चार उपायों के साथ राजनीति चलाते हुए उन्होंने मन्त्रियों आदि की सहायता से उन उपायों का निर्विघ्न फल पा लिया।।68।। वे कपटयुद्ध भी जानते थे; पर युद्धक्षेत्र में वे धर्म की लड़ाई ही लड़ते थे, इसलिये वीरों की सखी विजयश्री उनके पास अभिसारिका के समान चुपके से पहुँच जाती थी।।69।। युद्ध-क्षेत्र में अतिथि को देखते ही शत्रुओं छक्के छूट जाते थे और वे प्राण लेकर भाग खड़े होते थे, इसलिये जैसे बिना मदवाले हाथी, मद वाले हाथी से नहीं लड़ पाते, वैसे ही प्रतापी राजा अतिथि से लड़ने का कोई साहस ही नहीं करता था।।70।। पूरा बढ़ चुकने पर चन्द्रमा घटने लगता है और समुद्र की भी यही दशा होती है, पर अतिथि के साथ बात उलटी थी। वे चन्द्रमा के समान बढ़े तो सही पर उनके समान घटे नहीं।।71।। जैसे बिना पानी के मेघ समुद्र के पास जाते हैं और वह उन्हें इतना जल दे देता है कि वे संसार भर को जल बाँटने लगते हैं, वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तस्तस्याभिगमनादत्यर्थं महतः कृशाः।
उदधेरिव जीमूताः प्रापुर्दातृत्वमर्थिनः।।72।।
स्तूयमानः स जिह्राय स्तुत्यमेव समाचरन्।
तथापि ववृधे तस्य तत्कारिद्वेषिणो यशः।।73।।
दुरितं दर्शनेन घ्नँस्तत्त्वार्थेन नुदँस्तमः।
प्रजाः स्वतन्त्रयांचक्रे शश्वत्सूर्य इवोदितः।।74।।
इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेऽशवः।
गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम्।।75।।
पराभिसंधानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितम्।
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्यमेव बभूव तत्।।76।।
एवमुद्यन्प्रभावेण शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना।
वृषेव देवो देवानां राज्ञां राजा बभूव सः।।77।।
पञ्चमं लोकपालानामूचुः साधर्म्ययोगतः।
भूतानां महतां षष्ठमष्टमं कुलभूभृताम्।।78।।
दूरापवर्जितच्छत्रैस्तस्याज्ञां शासनार्पिताम्।
दधुः शिरोभिर्भूपाला देवाः पौरंदरीमिव।।79।।

ही जो बहुत से निर्धन विद्वान् अतिथि के पास आते थे, उन्हें वे इतना धन देते थे कि वे विद्वान् स्वयं भी दूसरों को दान देने लगते थे।।72।। उनके सभी काम प्रशंसा के योग्य होते थे; पर जब कोई उनकी प्रशंसा करता था, तब वे सकुचा जाते थे; पर प्रशंसा की इच्छा न करने पर भी उनका यश बढ़ता ही गया।।73।। जैसे निकलते हुए सूर्य के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं वैसे ही उनके दर्शन से पाप भाग जाते थे। वे ज्ञानी भी थे; इसलिए वे दूसरों को तत्त्व-ज्ञान सिखाकर अज्ञान का अँधेरा भी मिटाते थे। इसीलिये उन्होंने प्रजा को सब प्रकार से अपनी मुट्ठी में कर लिया।।74।। चन्द्रमा की किरणें कमलों में तथा सूर्य की किरणें कुमुदों में नहीं बैठ पातीं, पर अतिथि के गुणों ने शत्रुओं के हृदय में भी घर कर लिया और शत्रु भी उनके गुणों का लोहा मानते थे।।75।। अश्वमेध के लिए जब वे दिग्विजय करने निकले, तब उनका काम यद्यपि शत्रुओं को जिस-किसी प्रकार हराना ही था पर उस समय भी उन्होंने धर्म से ही काम लिया, कूटनीति अथवा छल से नहीं।।76।। इस प्रकार शास्त्रों के अनुसार चलने से अतिथि का प्रभाव बढ़ गया और जैसे इन्द्र देवताओं के देवता हैं वैसे ही वे भी राजाओं के राजा हो गए।।77।। इन्द्र आदि चारों लोकपालों के समान पराक्रम होने के कारण लोग उन्हें पाँचवाँ लोकपाल कहने लगे थे। [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन] पाँचों तत्वों के समान महान् होने के कारण लोग उन्हें छठा तत्त्व कहते थे और हिमालय आदि सात कुल पर्वतों के समान विशाल होने के कारण वे आठवें-कुल पर्वत कहलाते थे।।78।। जैसे देवता लोग इन्द्र की आज्ञा मानते है, वैसे ही राजा लोग भी अपने छत्र उतार कर उनकी आज्ञा अपने सिर-माथे चढ़ाते थे।।79।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋत्विजः स तथाऽऽनर्च दक्षिणाभिर्महाक्रतौ।
यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च।।80।।
इन्द्राद्वृष्टिर्नियमितगदोद्रेकवृत्तिर्यमोऽभू
द्यादोनाथः शिवजलपथः कर्मणे नौचराणाम्।
पूर्वापेक्षी तदनु विदधे कोपवृद्धिं कुबेर
स्तस्मिन्दण्डोपनतचरितं भेजिरे लोकपालाः।।81।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
अतिथिवर्णनो नाम सप्तदशः सर्गः।।

अश्वमेध के समय जिन ब्राह्मणों ने यज्ञ कराया था, उनका अतिथि ने इतना सत्कार किया कि लोग इन्हें भी दूसरा कुबेर कहने लगे।।80।। इन्द्र ने उनके साम्राज्य पर वर्षा की, यमराज ने रोगों का बढ़ना रोका, वरुण ने नाव चलाने वालों के लिये जल के मार्ग खोल दिए और कुबेर ने इनका राज-कोश भर दिया। इस प्रकार इन्द्र आदि लोकपाल मानो इनके प्रताप से ही डर कर इनकी सेवा कर रहे थे।।81।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में अतिथि-वर्णन
नाम का सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। अष्टादशः सर्गः ।।

स नैषधस्यार्थपतेः सुतायामुत्पादयामास निषिद्धशत्रुः।
अनूनसारं निषधान्नगेन्द्रात्पुत्रं यमाहुर्निषधाख्यमेव।। 1।।
तेनोरुवीर्येण पिता प्रजायै कल्पिष्यमाणेन ननन्द यूना।
सुवृष्टियोगादिव जीवलोकः सस्येन संपत्तिफलोन्मुखेन।। 2।।
शब्दादि निर्विश्य सुखं चिराय तस्मिन्प्रतिष्ठापितराजशब्दः।
कौमुद्वतेयः कुमुदावदातैर्द्यामर्जितां कर्मभिरारुरोह।। 3।।
पौत्रः कुशस्यापि कुशेशयाक्षः ससागरां सागरधीरचेताः।
एकातपत्रां भुवमेकवीरः पुरार्गलादीर्घभुजो बुभोज।। 4।।
तस्यानलौजास्तनयस्तदन्ते वंशश्रियं प्राप नलाभिधानः।
यो नड्वलानीव गजः परेषां बलान्यमृद्नान्नलिनाभवक्त्रः।। 5।।
नभश्चरैर्गीतयशाः स लेभे नभस्तलश्यामतनुं तनूजम्।
ख्यातं नभःशब्दमयेन नाम्ना कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम्।। 6।।
तस्मै विसृज्योत्तरकोशलानां धर्मोत्तरस्तत्प्रभवे प्रभुत्वम्।
मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध।। 7।।

अठारहवाँ सर्ग

शत्रुओं का नाश करने वाले राजा **अतिथि** की रानी निषध-राज की पुत्री थीं। उस रानी से अतिथि ने निषधपर्वत के समान बलवान् पुत्र उत्पन्न किया और उसका नाम भी निषध रखा।।1।। जैसे समय की वर्षा से फले हुए अनाज के खेतों को देखकर संसार के प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं, वैसे ही अत्यन्त प्रतापी युवराज निषध को देखकर राजा अतिथि भी प्रसन्न हुए।।2।। कुमुद्वती के पुत्र अतिथि ने बहुत दिनों तक सुख भोगा फिर निषध को राजपाट सौंप कर अपने पुण्यों के बल से पाए हुए स्वर्गलोक में सुख भोगने चले गए।।3।। कमल के समान नेत्र वाले, समुद्र के समान गम्भीर चित्त वाले और नगर के प्रधान फाटक की अर्गला के समान बड़ी-बड़ी बाहों वाले अद्वितीय वीर निषध ने भी सागर तक फैली हुई पृथ्वी का भोग किया।।4।। उनके बाद अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र नल राजा हुए। उस कमल के समान सुन्दर मुख वाले राजा ने शत्रुओं के बल को वैसे ही तोड़ डाला जैसे हाथी नरकटके गट्ठे को तोड़ डालता है।।5।। वे इतने यशस्वी थे कि आकाश में गन्धर्व लोग उनका यश गाते थे। उन्हें आकाश के समान साँवला **नभ** नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो लोगों को वैसा ही प्यारा लगा, जैसे सावन का महीना।।6।। धर्मात्मा नल ने उस पुत्र को उत्तरकोशल का राज्य सौंप दिया और स्वयं बुढ़ापे के कारण जंगलों में जाकर मृगों के साथ इसलिये रहने लगे कि फिर संसार में जन्म ना लेना पड़े।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेन द्विपानामिव पुण्डरीको राज्ञामजय्योऽजनि पुण्डरीकः।
शान्ते पितर्याहृतपुण्डरीका यं पुण्डरीकाक्षमिव श्रिता श्रीः।। 8।।
स क्षेमधन्वानममोघधन्वा पुत्रं प्रजाक्षेमविधानदक्षम्।
क्ष्मां लम्भयित्वा क्षमयोपपन्नं वने तपः क्षान्ततरश्चचार।। 9।।
अनीकिनीनां समरेऽग्रयायी तस्यापि देवप्रतिमः सुतोऽभूत्।
व्यश्रूयतानीकपदावसानं देवादि नाम त्रिदिवेऽपि यस्य।। 10।।
पिता समाराधनतत्परेण पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन।
पुत्रस्तथैवात्मजवत्सलेन स तेन पित्रा पितृमान्बभूव।।11।।
पूर्वस्तयोरात्मसमे चिरोढामात्मोद्भवे वर्णचतुष्टयस्य।
धुरं निधायैकनिधिर्गुणानां जगाम यज्वा यजमानलोकम्।। 12।।
वशी सुतस्तस्य वशंवदत्वात्स्वेषामिवासीद्द्विषतामपीष्टः।
सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं माधुर्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम्।। 13।।
अहीनगुर्नाम स गां समग्रामहीनबाहुद्रविणः शशास।
यो हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वाद्युवाप्यनर्थैर्व्यसनैर्विहीनः।। 14।।
गुरोः स चानन्तरमन्तरज्ञः पुंसां पुमानाद्य इवावतीर्णः।
उपक्रमैरस्खलितैश्चतुर्भिश्चतुर्दिगीशश्चतुरो बभूव।। 15।।

नभ को पुण्डरीक नाम का पुत्र हुआ और जैसे हाथियों में पुण्डरीक नाम का हाथी सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही उस समय के राजाओं में वे भी सर्वश्रेष्ठ थे। पिता के स्वर्ग चले जाने पर कमल धारण करने वाली लक्ष्मी ने उन्हें ही विष्णु मानकर वरण कर लिया।।8।। उन सफल धनुषधारी पुण्डरीक ने प्रजा का कल्याण करने में समर्थ और शान्तस्वभाव वाले अपने पुत्र क्षेमधन्वा को राज सौंप दिया और स्वयं शान्त होकर जंगल में तपस्या करने चले गए।।9।। उस क्षेमधन्वा को भी इन्द्र के समान पुत्र हुआ जो युद्ध में सेना के आगे-आगे चलता था और जिसका देव शब्द से आरम्भ होने वाला और अनीक शब्दों से अन्त होने वाला नाम स्वर्ग में भी प्रसिद्ध हो गया।।10।। जैसे इस पितृभक्त पुत्र को पाकर क्षेमधन्वा सुपुत्रवान् हुए, वैसे ही पुत्र को प्यार करने वाले पिता को पा कर देवानीक भी पिता वाले हुए।।11।। बड़े-बड़े यज्ञ करने वाले गुणी क्षेमधन्वा अपने ही समान तेजस्वी पुत्र को चारों वर्णों की रक्षा का भार सौंपकर स्वर्ग चले गए।।12।। उनके जितेन्द्रिय पुत्र देवानीक इतना मधुर बोलते थे कि शत्रु भी उनका वैसा ही आदर करते थे जैसे मित्र; क्योंकि मधुर वचन में ऐसा प्रभाव होता है कि एक बार डराए हुए हिरण भी वश में हो जाते है।।13।। देवानीक के पुत्र का नाम अहीनग था। उनकी बाँहें बड़ी शक्तिशाली थीं। उन्होंने कभी नीच लोगों का साथ नहीं किया, इसलिये व्यसनों से दूर रहकर युवावस्था में ही वे सारी पृथ्वी पर शासन करने लगे।।14।। वे बड़े चतुर थे और सबके मन की बातें जान लेते थे। पिता के बाद राजा होकर वे सफलता के साथ साम-दाम-दंड भेद का प्रयोग करके शीघ्र ही विष्णु के समान चारों दिशाओं के स्वामी हो गए।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन्प्रयाते परलोकयात्रां जेतर्यरीणां तनयं तदीयम्।
उच्चैःशिरस्त्वाज्जितपारियात्रं लक्ष्मीःसिषेवे किल पारियात्रम्।।16।।
तस्याभवत्सूनुरुदारशीलः शिलः शिलापट्टविशालवक्षाः।
जितारिपक्षोऽपि शिलीमुखैर्यः शालीनतामव्रजदीड्यमानः।।17।।
तमात्मसंपन्नमनिन्दितात्मा कृत्वा युवानं युवराजमेव।
सुखानि सोऽभुङ्क्त सुखोपरोधि वृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम्।।18।।
तं रागवन्धिष्ववितृप्तमेव भोगेषु सौभाग्यविशेषभोग्यम्।
विलासिनीनामरतिक्षमापि जरा वृथा मत्सरिणी जहार।।19।।
उन्नाभ इत्युद्गतनामधेयस्तस्याययथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः।
सुतोऽभवत्पङ्कजनाभकल्पः कृत्स्नस्य नाभिर्नृपमण्डलस्य।।20।।
ततः परं वज्रधरप्रभावस्तदात्मजः संयति वज्रघोषः।
बभूव वज्राकरभूषणायाः पतिः पृथिव्याः किल वज्रणाभः।।21।।
तस्मिन्गते द्यां सुकृतोपलब्धां सत्संभवं शङ्खणमर्णवान्ता।
उत्खातशत्रुं वसुधोपतस्थे रत्नोपहारैरुदितैः खनिभ्यः।।22।।
तस्यावसाने हरिदश्वधामा पित्र्यं प्रपेदे पदमश्विरूपः।
वेलातटेषूषितसैनिकाश्वं पुराविदो यं व्युषिताश्वमाहुः।।23।।

उस शत्रु विजयी राजा के स्वर्ग चले जाने पर अयोध्या की राज्य लक्ष्मी उनके प्रतापी पुत्र **पारियात्र** की सेवा करने लगी, जिन्होंने अपने सिर की ऊँचाई से पारियात्र पर्वत को भी नीचा दिखा दिया था।।16।। उन्हें **शिल** नाम का बड़ा शीलवान् पुत्र हुआ जिसकी छाती पत्थर की पाटी जैसी चौड़ी थी। यद्यपि उन्होंने बाणों से शत्रुओं को जीत लिया, फिर भी स्वयं वे नम्र ही रहे।।17।। शुद्ध चरित्र वाले पारियात्र ने बुद्धिमान् शिल को युवराज बनाने पर ही सुख भोगना प्रारंभ किया, क्योंकि राजा रहते हुए उन्हें इतने अधिक काम थे कि उन्हें सुख भोगने के लिये अवसर ही कहाँ मिलता था।।18।। वे अभी भोगों से संतृप्त नहीं थे और सुन्दरी स्त्रियों से भोग कर ही रहे थे कि उन्हें उस वृद्धावस्था ने आ घेरा, जो स्वयं भोगने योग्य न होने पर भी सुन्दरियों से व्यर्थ ही ईर्ष्या करती है।।19।। शिल को उन्नाभ नाम का प्रसिद्ध पुत्र हुआ जिनकी नाभि गहरी थी और जो विष्णु के समान पराक्रमी होने के कारण संसार के सभी राजाओं के मुखिया बन गए।।20।। उनके बाद उनके पुत्र **वज्रनाभ**, हीरे की खानों का भूषण पहनने वाली पृथ्वी के स्वामी हुए। वे इन्द्र के समान प्रभावशाली थे और युद्धक्षेत्र में वज्र के समान गरजते थे।।21।। उन्होंने अपने पुण्य से स्वर्ग प्राप्त किया और उनके बाद **शंखण** नाम का उनका शत्रुविनाशक पुत्र सारी पृथ्वी का शासक हुआ।।22।। उनके बाद उनके अश्विनी कुमार के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र राजा हुए जिन्होंने सब देशों को जीत कर अपनी सेना और घोड़ों को समुद्र के तट पर ठहराया। इसलिये वृद्धों ने उनका नाम **व्युषिताश्व** [अर्थात् बहुत दूर तक घोड़ों को ले जाने वाला] रखा।।23।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आराध्य विश्वेश्वरमीश्वरेण तेन क्षितेर्विश्वसहो विजज्ञे।
पातुं सहो विश्वसखः समग्रां विश्वंभरामात्मजमूर्तिरात्मा।। 24।।
अंशे हिरण्याक्षरिपोः स जाते हिरण्यनाभे तनये नयज्ञः।
द्विषामसह्यः सुतरां तरूणां हिरणयरेता इव सानिलोऽभूत्।। 25।।
पिता पितॄणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुखानि लिप्सुः।
राजानमाजानुविलम्बिबाहुं कृत्वा कृती वल्कलवान्बभूव।। 26।।
कौशल्य इत्युत्तरकोशलानां पत्युः पतङ्गान्वयभूषणस्य।
तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभून्नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः।। 27।।
यशोभिराब्रह्मसमं प्रकाशः स ब्रह्मभूयं गतिमाजगाम।
ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे ब्रह्मिष्ठमेव स्वतनुप्रसूतम्।। 28।।
तस्मिन्कुलापीडनिभे विपीडं सम्यङ्महीं शासति शासनाङ्काम्।
प्रजाश्चिरं सुप्रजसि प्रजेशे ननन्दुरानन्दजलाविलाक्ष्यः।। 29।।
पात्रीकृतात्मा गुरुसेवनेन स्पष्टाकृतिः पत्त्ररथेन्द्रकेतोः।
तं पुत्रिणां पुष्करपत्त्रनेत्रः पुत्रः समारोपयदग्रसंख्याम्।। 30।।
वंशस्थितिं वंशकरेण तेन संभाव्य भावी स सखा मघोनः।
उपस्पृशन्स्पर्शनिवृत्तलौल्यस्त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप।। 31।।

उन्होंने काशी के विश्वेश्वर की आराधना करके विश्वसह नामक पुत्र पाया जो संसार में बड़े प्रिय हुए और जिन्होंने सारी पृथ्वी पर शासन किया।। 24।। उस नीतिज्ञ विश्वसह को हिरण्यनाभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो साक्षात् विष्णु का अंश था। ऐसे पुत्र को पा कर विश्वसह शत्रुओं के लिये वैसे ही भयंकर हो गए, जैसे वायु की सहायता पा कर वृक्षों के लिये अग्नि भयंकर हो उठती है।। 25।। अब वे पिता के ऋण से उऋण हो गए और बहुत सुख भोगकर वृद्धावस्था में पुत्र को राज्य देकर स्वयं वल्कल पहन कर वन में चले गए।। 26।। उत्तरकोशल के स्वामी और सूर्यकुल के भूषण उन हिरण्यनाभ को कौशल्य नाम का पुत्र हुआ, जो सब की आँखों को उसी प्रकार आनन्द देने वाला था मानो दूसरा चन्द्रमा ही हो।। 27।। कौशल्य का यश ब्रह्मा की सभा तक प्रसिद्ध हो गया। वृद्धावस्था में उन्होंने ब्रह्मिष्ठ नाम के अपने ब्रह्मज्ञानी पुत्र को राज्य दे दिया और स्वयं ब्रह्मप्राप्ति के लिये वन में तप करने चले गए।। 28।। भली सन्तान वाले ब्रह्मिष्ठ भी अपने कुल के शिरोमणि थे। उन्होंने बड़ी योग्यता से शासन किया। उनके सुन्दर शासन को देखकर प्रजा को आनन्द के आँसू आ जाते थे। उनके शासन में प्रजा बहुत दिनों तक सुख भोगती रही।। 29।। उनके सुपुत्र ने उन्हें पुत्रवानों का शिरोमणि बना दिया। पिता की सेवाशुश्रूषा करने से वे बड़े योग्य हो गए थे। वे गरुडध्वज विष्णु के समान सुन्दर थे और उन कमललोचन का नाम भी पुत्र ही था।। 30।। विषय-वासनाओं से दूर रह कर इन्द्र के भावी मित्र ब्रह्मिष्ठ ने अपनी कुल प्रतिष्ठा अपने पुत्र नाम वाले पुत्र को सौंप दी और स्वयं त्रिपुष्कर क्षेत्र में स्नान करके स्वर्ग चले गए।। 31।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य प्रभानिर्जितपुष्परागं पौष्यां तिथौ पुष्यमसूत पत्नी।
तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां पुष्टिं जनाः पुष्य इव द्वितीये।। 32।।
महीं महेच्छः परिकीर्य सूनौ मनीषिणो जैमिनयेऽर्पितात्मा।
तस्मात्सयोगादधिगम्य योगमजन्मनेऽकल्पत जन्मभीरुः।। 33।।
ततः परं तत्प्रभवः प्रपेदे ध्रुवोपमेयो ध्रुवसंधिरुर्वीम्।
यस्मिन्नभूज्ज्यायसि सत्यसंधे संधिर्ध्रुवः संनमतामरीणाम्।। 34।।
सुते शिशावेव सुदर्शनाख्ये दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने सः।
मृगायताक्षो मृगयाविहारी सिंहादवापद्विपदं नृसिंहः।। 35।।
स्वर्गामिनस्तस्य तमैकमत्यादमात्यवर्गः कुलतन्तुमेकम्।
अनाथदीनाः प्रकृतिरवेक्ष्य साकेतनाथं विधिच्चकार।। 36।।
नवेन्दुना तन्नभसोपमेयं शावैकसिंहेन च काननेन।
रघोः कुलं कुड्मलपुष्करेण तोयेन चाप्रौढनरेन्द्रमासीत्।। 37।।
लोकेन भावी पितुरेव तुल्यः संभावितो मौलिपरिग्रहात्सः।
दृष्टो हि वृणवन्कलभप्रमाणोऽप्याशाः पुरोवातमवाप्य मेघः।। 38।।
तं राजवीथ्यामधिहस्ति यान्तमाधोरणालम्बितमग्र्यवेशम्।
षड्वर्षदेशीयमपि प्रभुत्वात्प्रैक्षन्त पौराः पितृगौरवेण।। 39।।

राजा पुत्र की पत्नी से पूस की पूर्णिमा के दिन पद्मरागमणि से भी अधिक कान्तिमान् पुष्य नामक पुत्र हुआ। उसके जन्म होने से प्रजा उसी प्रकार धन-धान्य से भरपूर हो गई मानो दूसरा पुष्य नक्षत्र ही निकल आया।।32।। राजा पुत्र बड़े उदार हृदय वाले थे। वे संसार में फिर जन्म लेना नहीं चाहते थे इसीलिये उन्होंने पृथ्वी का भार अपने पुत्र पुष्य को सौंप दिया और स्वयं जैमिनि ऋषि के शिष्य होकर उनसे योग सीख कर आवागमन से मुक्त हो गए।।33।। पुष्य के बाद उनके ध्रुव के समान निश्चल पुत्र ध्रुवसन्धि राजा हुए जिनसे डर कर शत्रुओं ने सन्धि कर ली। उनका लिखा हुआ सन्धिपत्र पक्का होता था; क्योंकि वे अपनी बात के धनी थे।।34।। उनके नेत्र मृगों के नेत्रों के समान बड़े-बड़े थे और वे पुरुषो में सिंह के समान थे। एक दिन वे जंगल में आखेट करते हुए मारे गए। उस समय तक द्वितीया के चन्द्रमा के समान सुन्दर लगने वाला सुदर्शन नाम का उनका पुत्र बालक ही था।।35।। उन स्वर्गगामी राजा के मन्त्रियों ने राजा के न होने से प्रजा की दीनदशा देखकर सर्वसम्मति से उनके इकलौते पुत्र सुदर्शन को विधिपूर्वक साकेत का स्वामी बना दिया।।36।। इस बालक से राजा रघु का कुल वैसे ही शोभा देने लगा जैसे द्वितीया के चन्द्रमा से आकाश, सिंह के बच्चे से वन और कमल की कली से सरोवर शोभा देता है।।37।। उस बालक सुदर्शन ने जब सिर पर मुकुट धारण किया, तभी प्रजा ने आँक लिया कि यह पिता के समान ही तेजस्वी होगा, क्योंकि हाथी के बच्चे के समान छोटा दिखाई देने वाला बादल भी पूर्वी-पवन का सहारा पा कर चारों दिशाओं में फैल जाता है।।38।। जब वे छह वर्ष के छोटे से राजा हाथी पर चढ़कर राजमार्ग से निकलते थे, तब हाथीवान उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय।
तेजोमहिम्ना पुनरावृतात्मा तद्व्याप चामीकरपिञ्जरेण।। 40।।
तस्मादधः किंचिदिवावतीर्णावसंस्पृशन्तौ तपनीयपीठम्।
सालक्तकौ भूपतयः प्रसिद्धैर्ववन्दिरे मौलिभिरस्य पादौ।। 41।।
मणौ महानील इति प्रभाददल्पप्रमाणेऽपि तथा न मिथ्या।
शब्दो महाराज इति प्रतीतस्तथैव तस्मिन्युयुजेऽर्भकेऽपि।। 42।।
पर्यन्तसंचारितचामरस्य कपोललोलोभयकाकपक्षात्।
तस्याननादुच्चरितो विवादश्चस्खाल वेलास्वपि नार्णवानाम्।। 43।।
निर्वृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे न्यस्तं ललाटे तिलकं दधानः।
तेनैव शून्यान्यरिसुन्दरीणां मुखानि स स्मेरमुखश्चकार।। 44।।
शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः खेदं स यायादपि भूषणेन।
नितान्तगुर्वीमपि सोऽनुभावाद्धुरं धरित्र्या बिभरांबभूव।। 45।।
न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कात्स्न्र्येन गृह्णाति लिपिं न यावत्।
सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात्फलान्युपायुङ्क्त स दण्डनीतेः।। 46।।
उरस्यपर्याप्तनिवेशभागा प्रौढीभविष्यन्तमुदीक्षमाणा।
संजातलज्जेव तमातपत्रच्छायाच्छलेनोपजुगूह लक्ष्मीः।। 47।।

राजसी वस्त्रों के कोने को थामे रखता था कि कहीं वे गिर न पड़ें। उस समय भी उन्हें देखकर जनता अपने पिता के समान ही उनका आदर करती थी।।39।। वे छोटे थे, इसलिये जब वे अपने पिता के सिंहासन पर बैठते थे, तो वह पूरा भरता नहीं था। पर उनके शरीर से जो सुवर्ण के समान तेज निकलता था, उससे वह सिंहासन भरा-सा ही जान पड़ता था।।40।। उस सिंहासन से उनके पैर लटकते रहते थे क्योंकि छोटे होने के कारण पाद-पीठ तक पहुँच नहीं पाते थे पर राजा लोग अपने प्रसिद्ध मुकुटों से उन महावर लगे पैरों का वन्दन करते रहते थे।।41।। जैसे छोटा होने पर भी मणि का महानील नाम निरर्थक नहीं होता, वैसे ही बालक राजा सुदर्शन का महाराज नाम भी उनके अनुकूल ही था।।42।। उनके आस-पास चँवर डुलाए जाते थे और उनके गालों पर लटें लटकती रहती थीं। इस बालक अवस्था में भी उन्होंने जो आज्ञाएँ दीं, उन्हें समुद्र के तट वाले लोगों ने भी नहीं टाला, फिर पास रहने वालों की तो बात ही क्या।।43।। सोने का पट्टा बँधे हुए अपने ललाट पर वे स्वयं तिलक लगाते थे और सदा हँसमुख रहते थे, पर संग्राम में शत्रुओं को नष्ट करके उन्होंने शत्रुओं की स्त्रियों के मुख का तिलक और उनकी मुस्कुराहट दोनों छीन लीं।।44।। वे सिर के फूल से भी अधिक सुकुमार थे; इसलिये यद्यपि उन्हें गहने पहनने में भी कष्ट होता था, फिर भी उनमें आत्मशक्ति इतनी थी कि उन्होंने पृथ्वी के अत्यन्त भारी भार को सँभाल लिया।।45।। अभी वे पट्टिका पर भली भाँति अक्षर भी लिखना नहीं सीख पाए थे कि विद्वानों के संसर्ग से वे दण्डनीति और राजनीति की सारी बातें जान गए।।46।। बालक राजा के हृदय को अभी छोटा समझ कर लक्ष्मी उनके युवा होने की आशा लगाए बैठी थीं; पर बीच-बीच में छत्र की छाया बनकर उनका आलिङ्गन कर ही लेती थीं, मानो छोटा पति होने के कारण उनसे खुलकर गले लगने में लजा रही हों।।47।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनश्नुवानेन युगोपमानमबद्धमौर्वीकिणलाञ्छनेन।
अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि चासीद्रक्षावती तस्य भुजेन भूमिः।। 48।।
न केवलं गच्छति तस्य काले ययुः शरीरावयवा विवृद्धिम्।
वंश्या गुणाःखल्वपि लोककान्ताः प्रारम्भसूक्ष्माःप्रथिमानमापुः।। 49।।
स पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरन्निवाक्लेशकरो गुरूणाम्।
तिस्त्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं जग्राह विद्याः प्रकृतीश्च पित्र्याः।। 50।।
व्यूह्य स्थितः किंचिदिवोत्तरार्धमुन्नद्धचूडोऽञ्चितसव्यजानुः।
आकर्णमाकृष्टसबाणधन्वा व्यरोचतास्त्रेषु विनीयमानः।। 51।।
अथ मधु वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं मनसिजतरुपुष्पं रागबन्धप्रवालम्।
अकृतकविधि सर्वाङ्गीणमाकल्पजातं विलसितपदमाद्यं यौवनं स प्रपेदे।। 52।।
प्रतिकृतिरचनाभ्यो दूतिसंदर्शिताभ्यः समधिकतररूपाः शुद्धसंतानकामैः।
अधिविविदुरमात्यैराहृतास्तस्य यूनः प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ राजकन्याः।। 53।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
वंशानुक्रमो नामाष्टादशः सर्गः।।

यद्यपि उनकी भुजा जुए के समान मोटी और लम्बी नहीं हुई थी, धनुष की डोरी खींचने से कड़ी भी नहीं हो पाई थी और तलवार की मुठिया भी नहीं छू सकी थी, फिर भी उसने पृथ्वी की रक्षा भली-भाँति कर ली।।48।। कुछ ही दिनों में केवल उनके शरीर के अंग ही नहीं बढ़े वरन् उनके वे वंश-परम्परा वाले गुण भी बढ़े, जो पहले छोटे ही थे और जो प्रजा को बहुत प्यारे लगते थे।।49।। उन्होंने धर्म, अर्थ और काम फल देने वाले त्रयी (तीनों वेद), वार्ता (कृषि) और दण्ड नीति तीनों विद्याओं को इतनी शीघ्रता से सीख लिया, मानो पूर्वजन्म में ही वे उन्हें पढ़ चुके हों। साथ ही अपने पिता की प्रजा को भी उन्होंने अपने वश में कर लिया।।50।। जब वे धुनर्विद्या सीखते समय अपने शरीर का ऊपरी भाग कुछ आगे बढ़ा देते थे, बाल ऊपर बाँध लेते थे, बाई जाँघ कुछ झुका लेते थे और बाण चढ़ाकर धनुष की डोरी कान तक खींचते थे, उस समय वे बड़े सुन्दर लगते थे।।51।। तब सुदर्शन के शरीर में वह जवानी आ गई, जो स्त्रियों की आँखों की मदिरा होती है, शरीर की स्वाभाविक शोभा होती है और विलास का पहला अड्डा होता है।।52।। दूतियाँ भिन्न-भिन्न राजधानियों में जा कर सुन्दर-सुन्दर राजकुमारियों का चित्र ले आईं और राजा को संतान होने की इच्छा से मन्त्रियों ने चित्र से बढ़कर सुन्दरी उन राजकुमारियों का विवाह महाराज सुदर्शन से करा दिया। विवाह हो जाने पर वे सब राजकुमारियाँ, राजा की पहली रानियों की, पृथ्वी की और राजलक्ष्मी की सौत के समान हो गईं।।53।।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्यों वंशानुक्रम
नाम का अठारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकोनविंशः- सर्गः

अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम्।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी।। 1।।
तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः।
सौधवासमुटजेन विस्मृतः संचिकाय फलनिःस्पृहस्तपः।। 2।।
लब्धपालनविधौ न तत्सुतः खेदमाप गुरुणा हि मेदिनी।
भोक्तुमेव भुजनिर्जितद्विषा न प्रसाधयितुमस्य कल्पिता।। 3।।
सोऽधिकारमभिकः कुलोचितं काश्चन स्वयमवर्तयत्समाः।
संनिवेश्य सचिवेष्वृतः परं स्त्रीविधेयनवयौवनोऽभवत्।। 4।।
कामिनीसहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदङ्गनादिषु।
ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तरः पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सवः।। 5।।
इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षमः सोढुमेकमपि स क्षणान्तरम्।
अन्तरेव विहरन्दिवानिशं न व्यपैक्षत समुत्सुकाः प्रजाः।। 6।।
गौरवाद्यादपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृतिकाङ्क्षितं ददौ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम्।। 7।।

उन्नीसवाँ सर्ग

विद्वान् राजा सुदर्शन ने बुढ़ापे में अपने अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र अग्निवर्ण को राजा बना दिया और स्वयं नैमिषारण्य में रहने लगे।।1।। वहाँ वे तीर्थजल के आगे घर की बावलियों को, भूमि पर बिछे हुए कुश के आगे राजसी पलँग को तथा कुटिया के आगे बड़े-बड़े महलों को भूल गए और फल की इच्छा छोड़कर तप करने लगे।।2।। पिता से पाई हुई पृथ्वी का पालन करने में अग्निवर्ण को कोई कठिनाई नहीं हुई; क्योंकि उनके पिता ने शत्रुओं को पहले ही हरा दिया था। इसलिये इन्हें तो केवल भोग करने के लिये ही राज्य मिला था, राज्य के शत्रुओं को मिटाने के लिये नहीं।।3।। इसका फल यह हुआ कि अग्निवर्ण कामुक हो गए। कुछ दिनों तक तो उन्होंने स्वयं राज-काज देखा, पर फिर मन्त्रियों पर राज्य का भार डाल कर जवानी का रस लेने लगे।।4।। वह कामी राजा कामिनियों के साथ उन भवनों में दिन-रात पड़ा रहने लगा जिसमें बराबर मृदंग बजते रहते थे और प्रतिदिन एक से एक बढ़कर ऐसे उत्सव होते रहते थे कि अगले दिन के उत्सव के धूम-धड़ाके के आगे पहले दिन का उत्सव फीका पड़ जाता था।।5।। उसे ऐसा चसका लग गया कि वह क्षणभर भी भोगविलास के बिना नहीं रह सकता था। इसलिये वह सदा रनिवास के भीतर रहकर ही विहार करने लगा। उसके दर्शन के लिये जनता अधीर रहती थी, पर वह कभी उनकी सुध नहीं लेता था।।6।। यदि कभी मन्त्रियों के कहने-सुनने से वह प्रजा को दर्शन भी देता, तो बस इतना ही कि झरोखे से एक पैर बाहर लटका देता था।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं कृतप्रणतयोऽनुजीविनः कोमलात्मनखरागरूषितम्।
भेजिरे नवदिवाकरातपस्पृष्टपङ्कजतुलाधिरोहणम्।।8।।
यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाश्च दीर्घिकाः।
गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः स व्यगाहत विगाढमन्मथः।।9।।
तत्र सेकहृतलोचनाञ्जनैर्धौतरागपरिपाटलाधरैः।
अङ्गनास्तमधिकं व्यलोभयन्नर्पितप्रकृतकान्तिभिर्मुखैः।।10।।
घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः पानभूमिरचनाः प्रियासखः।
अभ्यपद्यत स वासिताः पुष्पिता कमलिनीरिव द्विपः।।11।।
सातिरेकमदकारणं रहस्तेन दत्तमभिलेषुरङ्गनाः।
ताभिरप्युपहृतं मुखासवं सोऽपिबद्वकुलतुल्यदोहदः।।12।।
अङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे।
वल्लकी च हृदयङ्गमस्वना वल्गुवागपि च वामलोचना।।13।।
स स्वयं प्रहतपुष्करः कृती लोलमाल्यवलयो हरन्मनः।
नर्तकीरभिनयातिलङ्घिनीः पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयत्।।14।।
चारु नृत्यनिगमे च तन्मुखं स्वेदभिन्नतिलकं परिश्रमात्।
प्रेमदत्तवदनानिलः पिबन्नत्यजीवदमरालकेश्वरौ।।15।।

राज कर्मचारी उनके नखों की लाली वाले उस चरण को नमस्कार करके आराधना करते थे जो प्रभात की लाल किरणों से भरे हुए कमल के समान था।।8।। वह महाकामी राजा उन बावलियों में सुन्दर स्त्रियों के साथ विहार करता था, जिनमें विलास- घर भी बने हुए थे। स्त्रियों के ऊँचे-ऊँचे स्तन जब बावली के कमलों से टकराते थे तब वे कमल हिलने लगते थे।।9।। जल में स्नान करने से जब उन स्त्रियों की आँखों का आँजन छूट जाता था और ओठों पर लगी हुई लाली धुल जाती थी, तब उनकी स्वाभाविक सुन्दरता को देखकर वह और भी अधिक मोहित हो उठता था।।10।। हाथी जैसे खिली हुई कमलिनियों की गन्ध भरे सरोवर में हथिनियों के साथ बैठता है, वैसे ही अग्निवर्ण भी सुन्दरी स्त्रियों के साथ मद्य के गंध में बसी हुई पानशाला या मदिरा घर में पहुँचता था।।11।। वहाँ वे स्त्रियाँ अग्नि वर्ण का जूठा मदकारी आसव बड़े प्रेम से पीती थीं। जैसे मौलसिरी का पेड़ स्त्रियों के मुख का आसव पाने को तरसा करता है; उसी प्रकार उन स्त्रियों के मुख से आसव पीने की इच्छा करने वाला अग्निवर्ण भी उनके मुँह का आसव पिया करता था।।12।। गोद में बैठाने योग्य दो ही तो वस्तुएँ हैं—एक तो मनोहर शब्द वाली वीणा और दूसरी मधुर-भाषिणी कामिनी। इन दोनों ने उसकी गोद को सदा भरपूर रखा।।13।। जब नर्तकियों के नाचते समय वह स्वयं मृदंग बजाने लगता था, तब उसके गले की माला हिल उठती थी। उस समय वह ऐसा सुन्दर लगता था कि नर्तकियाँ सुध-बुध खोकर नाचना भी भूल जाती थीं। इसका फल यह होता था कि उन्हें नाचना सिखाने वाले उनके जो गुरु वहाँ बैठे रहते थे, उनके आगे वे अपनी इस बात पर लजा जाती थीं।।14।। जब नृत्य समाप्त हो जाता था और नाचने के परिश्रम से उनके मुख पर पसीने की बूँदे छा जाती थीं तब राजा अग्निवर्ण प्रेम पूर्वक फूँक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य सावरणदृष्टसंधयः काम्यवस्तुषु नवेषु सङ्गिनः।
वल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे सामिभुक्तविषयाः समागमाः।। 16।।
अंगुली किसलयाग्रतर्जनं भ्रूविभङ्गकुटिलं च वीक्षितम्।
मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः।। 17।।
तेन दूतिविदितं निषेदुषा पृष्ठतः सुरतवाररात्रिषु।
शुश्रुवे प्रियजनस्य कातरं विप्रलम्भपरिशङ्किनो वचः।। 18।।
लौल्यमेत्य गृहिणीपरिग्रहान्नर्तकीष्वसुलभासु तद्वपुः।
वर्तते स्म स कथंचिदालिखन्नङ्गुलीक्षरणसन्नवर्तिकः।। 19।।
प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरादायताच्च मदनान्महीक्षितम्।
निन्युरुत्सवविधिच्छलेन तं देव्य उज्झितरुषः कृतार्थताम।। 20।।
प्रातरेत्यपपरिभोगशोभिना दर्शनेन कृतखण्डनव्यथाः।
प्राञ्जलिः प्रणयिनीः प्रसादयन्सोऽधुनोत्प्रणयमन्थरः पुनः।। 21।।

मार-मारकर उनके मुख को चूमने लगता था। उस समय वह समझता था कि मैं इन्द्र और कुबेर से भी बढ़कर सुखी और भाग्यवान् हूँ।।15।। वह सदा नई-नई भोग की सामग्रियाँ चाहता था। जिस वस्तु से उसका मन भर जाता था, उसे वह छोड़ देता था; इसलिये स्त्रियाँ संभोग के समय राजा से आधी ही रति करके उठ खड़ी होती, पूरी नहीं। क्योंकि उन्हें डर था कि यदि राजा पूर्णरूप से तृप्त हो जायगा, तो हमें छोड़ देगा।।16।। कभी-कभी जब वह राजा इन कामिनियों को धोखा या चकमा दे जाता था, तब वे बिगड़ कर अपनी लाल-लाल उँगलियाँ चमका-चमका कर धमकाती थीं, भौंहे तरेरती थीं और राजा को अपनी करधनी से बाँध देती थीं।।17।। जिस दिन रात को उसे किसी स्त्री से संभोग करने जाना होता, तो दूती से सब बातें बताकर वह पास ही छिपकर बैठ जाता। वह स्त्री जब आती और विप्रलब्ध नायिका के समान दूती से विरह की (इस प्रकार) बातें करने लगती [कि पता नहीं वे कब आयेंगे, अभी तक आए क्यों नहीं? इत्यादि] तब वह उन बातों को छिपे-छिपे बड़े प्रेम से सुनता था।।18।। जब कभी उसे रानियाँ रोक लेतीं, तब नर्तकियों के न मिलने से विरह-कातर हो जाता और हाथों में तूलिका लेकर किसी नर्तकी का चित्र बनाने लगता था। उस समय उसे वह नर्तकी स्मरण हो आती और सात्त्विकभाव के कारण उसकी उँगलियों में पसीना आ जाता और कूँची फिसल पड़ती थी। इस प्रकार वह बड़ी कठिनाई से चित्र बना पाता था।।19।। यदि राजा किसी रानी से प्रेम करता तो, वह गर्व से फूली न समाती। यह देखकर उसकी सौतें जल उठती थीं और कामातुर हो जाती थीं और किसी उत्सव का बहाना करके राजा को अपने यहाँ बुलाकर उसके साथ अपनी तपन बुझाती थीं।।20।। रात में बाहर किसी स्त्री से संभोग करके जब राजा प्रातःकाल घर लौटता था, तब रात के भोग वाले सुन्दर वेश में उसे देखकर उसकी प्रेमिकाएँ खंडिता नायिका के समान आँसू बहाने लगती थीं और राजा हाथ जोड़कर उन्हें मना लेता था। पर जब रात की थकावट के कारण वह उनसे भरपूर प्रेम नहीं करता था तो वे फिर व्याकुल हो उठती थीं।।21।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नकीर्तितविपक्षमङ्गनाः प्रत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम्।
प्रच्छादान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलयैर्विवर्तनैः।। 22।।
क्लृप्तपुष्पशयनाँल्लतागृहानेत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः।
अन्वभूत्परिजनाङ्गनारतं सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम्।। 23।।
नाम वल्लभजनस्य ते मया प्राप्य भाग्यमपि तस्य काङ्क्ष्यते।
लोलुपं ननु मनो ममेति तं गोत्रविस्खलितमूचुरङ्गनाः।। 24।।
चूर्णबभ्रुलुलितस्रगाकुलं छिन्नमेखलमलक्तकाङ्कितम्।
उत्थितस्य शयनं विलासिनस्तस्य विभ्रमरतान्यपावृणोत्।। 25।।
स स्वयं चरणरागमादधे योषितां न च तथा समाहितः।
लोभ्यमाननयनः श्लथांशुकैर्मेखलागुणपदैर्नितम्बिभिः।। 26।।
चुम्बने विपरिवर्तिताधरं हस्तरोधि रशनाविघट्टने।
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम्।। 27।।
दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीर्नर्मपूर्वमनुपृष्ठसंस्थितः।
छायया स्मितमनोज्ञया वधूह्रीनिमीलितमुखीश्चकार सः।। 28।।

जब स्त्रियाँ देखती कि राजा स्वप्न में बड़बड़ाते हुए किसी दूसरी स्त्री की बड़ाई कर रहा है तब वे कामिनियाँ बिना बोले ही बिस्तर के कोने पर आँसू गिराती हुई, क्रोध से कँगन तोड़ कर उनसे पीठ फेरकर सो जाती थीं और इस प्रकार उनसे रूठ जाती थीं।।22।। कभी-कभी दूतियाँ राजा को मार्ग दिखाती हुईं उस स्थान पर ले जातीं जहाँ लताओं के बीच में सम्भोग के लिये फूलों की सेज शय्या रहती थी। उस समय उसे यह डर होता कि कहीं ये दासियाँ जाकर रानियों से न कह दें। इसलिये दासियों को फुसलाने के लिये वह उन दासियों से सम्भोग करके उन्हें प्रसन्न कर देता था।।23।। कभी-कभी वह भूल से स्त्रियों के आगे किसी बाहरी प्रेमिका का नाम ले लेता। उसे सुनकर वे स्त्रियाँ कहने लगतीं कि बड़ा अच्छा हुआ जो आपने अपनी प्रेमिका का नाम बता दिया। धन्य है उसका भाग्य! पर क्या करें, हमारा भी तो लोभी मन नहीं मानता। आपको कैसे छोड़ दें?।।24।। जब वह सोकर उठता तब उसका पलंग, फैले हुए केसर के चूर्ण से सुनहरा दिखाई देता था। उस पर फूलों की मसली हुई मालाएँ और टूटी हुई मेखलाएँ पड़ी रहती थीं और जहाँ-तहाँ महावर की छाप पड़ी रहती थीं, जिसे देखकर प्रकट होता था कि वह कितना विलासी है।।25।। कभी-कभी वह स्त्रियों के पैरों में स्वयं महावर लगाने बैठ जाता। पर उसी समय उसकी दृष्टि स्त्रियों के उन नितम्बों पर पड़ जाती थी जिन पर से कपड़ा सरका हुआ रहता था। उन्हें देखकर वह ऐसा मुग्ध हो जाता कि भली भाँति महावर भी नहीं लगा पाता था।।26।। सम्भोग के समय जब वह स्त्रियों के ओठ चूमने लगता, तब वे मुँह फेर लेती थीं और जब कमर का नीवीबन्ध खोलने लगता तब हाथ थाम लेतीं। इस प्रकार वह जो कुछ करना चाहता, स्त्रियाँ कुछ भी नहीं करने देती थीं, फिर भी उसका काम बढ़ता ही गया।।27।। जब कभी स्त्रियाँ दर्पण के आगे खड़ी होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनं न्यस्तपादतलमग्रपादयोः।
प्रार्थयन्त शयनोत्थितं प्रियास्तं निशात्ययविसर्गचुम्बनम्।। 29।।
प्रेक्ष्य दर्पणतलस्थमात्मनो राजवेशमतिशक्रशोभिनम्।
पिप्रिये न स तथा यथा युवा व्यक्तलक्ष्म परिभोगमण्डनम्।। 30।।
मित्रकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितं तमनवस्थितं प्रियाः।
विद्महे शठ पलायनच्छलान्यञ्जसेति रुरुधुः कचग्रहैः।। 31।।
तस्य निर्दयरतिश्रमालसाः कण्ठसूत्रमपदिश्य योषितः।
अध्यशेरत बृहद्भुजान्तरं पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम्।। 32।।
संगमाय निशि गूढचारिणं चारदूतिकथितं पुरोगताः।
वञ्चयिष्यसि कुतस्तमोवृतः कामुकेति चकृषुस्तमङ्गनाः।। 33।।
योषितामुडुपतेरिवार्चिषां स्पर्शनिर्वृतिमसाववाप्नुवन्।
आरुरोह कुमुदाकरोपमां रात्रिजागरपरो दिवाशयः।। 34।।
वेणुना दशनपीडिताधारा वीणया नखपदाङ्कितोरवः।
शिल्पकार्य उभयेन वेजितास्तं विजिह्मनयना व्यलोभयन्।। 35।।

दाँत से काटने आदि संभोग के चिह्नों को देखने लगती थीं, तब राजा उनके पीछे चुपके से आ कर खड़ा हो जाता और मुसकरा देता। जब दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब स्त्रियाँ देखकर मुँह नीचा कर लेती थीं।।28।। जब वह प्रातःकाल पलँग से उठ कर जाने लगता तब स्त्रियों की इच्छा होती कि बिछुड़ने के पहले राजा एक बार गले में बाँहें डालकर चूम तो ले।।29।। वह राजा इन्द्र के वस्त्रों से भी सुन्दर अपने राजसी वस्त्र को दर्पण में देखकर उतना प्रसन्न नहीं होता था, जितना संभोग के चिह्नों को देखकर।।30।। कभी-कभी अपनी रानियों के पास बैठे-बैठे उसके मन में किसी प्रियतमा के पास जाने की इच्छा होती, तो वह यह कहकर उठने लगता—अरे मुझे एक मित्र से मिलने जाना है। यह सुनकर रानियाँ समझ जातीं और कहने लगतीं कि हम भी भली-भाँति जानती हैं कि तुम किस मित्र के यहाँ जा रहे हो और फिर बाल पकड़ कर उसे रोक लेतीं।।31।। जब कभी उसके साथ बहुत देर तक संभोग करने के कारण स्त्रियाँ अलसा जाती थीं, तब वे अपने मोटे-मोटे स्तनों से राजा की छाती के चन्दन को पोंछती हुई उसके वक्षःस्थल पर इस प्रकार सो जाती थीं, मानो वे संभोग का वह कंठसूत्र नाम का आसन साज रही हों, जिसमें स्त्रियाँ पति के ऊपर सो कर अपने स्तनों से धीरे-धीरे अपने प्रियतम की छाती को थपकते हुए कस कर छाती से लिपट जाती हैं।।32।। रात को वह संभोग की इच्छा से छिपकर जब बाहर जाने को होता था, तो दूतियों से समाचार पा कर उसकी स्त्रियाँ उसके आगे पहुँच जाती थीं और यह कहते हुए खींच लाती थीं कि कहिए चकमा देकर रात को किधर चले।।33।। स्त्रियों के स्पर्श से उसे वैसा ही आनन्द मिलता था जैसा चन्द्रमा की किरणों से। अतः वह कुमुदों के समान रात भर जागता रहता और दिन भर सोता था।।34।। उसने गाने वाली स्त्रियों के ओठों पर अपने दाँत के और उनकी जाँघों पर नखों के ऐसे घाव कर दिए थे कि जब वे अपने अधरों पर बाँसुरी और जाँघ पर वीणा रखतीं तब उन्हें बड़ा कष्ट होता और वे ढेढ़ी भौंह से राजा की ओर देखने लगती थीं [कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गसत्त्ववचनाश्रयं मिथः स्त्रीषु नृत्यमुपधाय दर्शयन्।
स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः संजघर्ष सह मित्रसन्निधौ।। 36।।

अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजसाङ्गरागिणः।
प्रावृषि प्रमदवर्हिणेष्वभूत्कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः।। 37।।

विग्रहाच्च शयने पराङ्मुखीर्नानुनेतुमबलाः स तत्वरे।
आचकाङ्क्ष घनशब्दविक्लवास्ता विवृत्य विशतीर्भुजान्तरम्।। 38।।

कार्तिकीषु सवितानहर्म्यभाग्यामिनीषु ललिताङ्गनासखः।
अन्वभुङ्क्त सुरतश्रमापहां मेघमुक्तविशदां स चन्द्रिकाम्।। 39।।

सैकतं च सरयूं विवृण्वतीं श्रोणिबिम्बमिव हंसमेखलाम्।
स्वाप्रियाविलसितानुकारिणीं सौधजालविवरैर्व्यलोकयत्।। 40।।

मर्मरैरगुरुधूपगन्धिभिर्व्यक्तहेमरशनैस्तमेकतः ।
जह्नु-राग्रथनमोक्षलोलुपं हैमनैर्निवसनैः सुमध्यमाः।। 41।।
अर्पितस्तिमितदीपदृष्टयो गर्भवेश्मसु निवातकुक्षिषु।
तस्य सर्वसुरतान्तरक्षमाः साक्षितां शिशिररात्रयो ययुः।। 42।।

सब आपकी ही करतूत है।] उनकी यह भावभंगी देखकर राजा और रीझ उठता था।।35।। इतना ही नहीं, जब वह एकान्त में स्त्रियों को आंगिक, सात्त्विक और वाचिक तीनों प्रकार का अभिनय सिखाकर अपने मित्रों के आगे उनका प्रदर्शन करता था, उस समय वह बड़े-बड़े नाट्यशास्त्रियों के भी कान काटता था।।36।। वर्षा ऋतु में वह कुटज और अर्जुन की माला गले में पहनकर तथा शरीर में कदम्ब के पराग का अंगराग लगाकर, मतवाले मोर से भरे हुए क्रीड़ा-पर्वतों पर विहार किया करता था।।37।। जब पलंग पर सोई हुई स्त्रियाँ रूठ कर पीठ फेर कर सो जातीं थी, तब राजा उन्हें मनाना नहीं चाहता था, वरन् यह चाहता था कि किसी प्रकार बादल गरज उठें, जिससे डर कर ये मेरी छाती से आ चिपटें।।38।। कार्तिक क़ी रातों में वह राजभवन के ऊपर चँदोवा तनवा देता था और सुन्दरियों के साथ उस चाँदनी का आनन्द लेता था, जो संभोग का श्रम दूर करती है और जो बादलों के न रहने से बराबर फैली रहती है।।39।। वह अपने राजभवन के झरोखे से सरयू को देखता था, जिसके तट पर उज्ज्वल हंसों की पातें बैठी रहती थीं। वह दृश्य ऐसा दिखाई देता मानो सरयू, उन सुन्दरियों का अनुकरण कर रही हो, जिनके नितम्बों पर मेखला पड़ी हो।।40।। पतली कमर वाली स्त्रियाँ जाड़े के ऐसे कपड़े पहनती थीं जो माड़ी के कारण करकराते थे और जिनके नीचे झलकती हुई सोने की मेखला को बाँधने और खोलने के लिये लालायित रहने वाला वह राजा मोहित हो जाता था।।41।। सब प्रकार की संभोगक्रीड़ा करने योग्य हेमन्त ऋतु की बड़ी-बड़ी रातों में वह राजभवन की भीतरी कोठियों में विहार किया क़रता था, जहाँ उसके साक्षी केवल वे दीप थे, जो वायु के न आने से एकटक होकर सबको देख रहे थे।।42।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिणेन पवनेन संभृतं प्रेक्ष्य चूतकुसुमं सपल्लवम्।
अन्वनैषुरवधूतविग्रहास्तं दुरुत्सहवियोगमङ्गनाः।। 43।।
ताः स्वमङ्कमधिरोप्य दोलया प्रेङ्खयन्परिजनापवद्धिया।
मुक्तरज्जु निविडं भयच्छलात्कण्ठबन्धनमवाप बाहुभिः।। 44।।
तं पयोधरनिषिक्तचन्दनैर्मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः।
ग्रीष्मवेषविधिभिः सिषेविरे श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः प्रियाः।। 45।।
यत्स लग्नसहकारमासवं रक्तपाटलसमागमं पपौ।
तेन तस्य मधुनिर्गमात्कृशश्चित्तयोनिरभवत्पुनर्नवः।।46।।
एवमिन्द्रियसुखानि निर्विशन्नन्यकार्यविमुखः स पार्थिवः।
आत्मलक्षणनिवेदितानृतूनत्यवापहदनङ्गवाहितः।। 47।।
तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः।
आमयस्तु रतिरागसंभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत्।। 48।।
दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते।। 49।।
तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना।
राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम्।। 50।।

मलयपर्वत से आए हुए दक्षिण के पवन से आमों में बौर छा गए, जिन्हें देखकर प्रेमिकाओं ने कामोन्मत्त होकर राजा से रूठना छोड़ दिया और उसके विरह में व्याकुल होकर स्वयं उसे ढूँढने लगीं।।43।। उन स्त्रियों को गोद में बैठाकर वह उन झूलों में झूलने लगा जिन्हें नौकर झुला रहे थे। राजा ने एक बार झूले को जो झटका दिया तो उन स्त्रियों ने भय का बहाना करके रस्सी छोड़ दी और राजा के गले में बाँह डाल कर उनसे लिपट गईं।।44।। ग्रीष्म ऋतु में स्तनों पर चन्दन लगाकर, मोतियों का आभूषण पहनकर और नितम्ब पर मणि की मेखला लटका कर वे स्त्रियाँ उस राजा के साथ संभोग करके उसे प्रसन्न करती थीं।।45।। उस समय वह आम की बौर और पाटल का लाल फूल पात्र में लगाकर आसव पीता था, जिससे बसंत बीतने से मंद पड़ा हुआ उसका काम फिर जाग उठता था।।46।। इस प्रकार वह कामी राजा राज-काज छोड़कर इन्द्रिय-सुखों का रस लेता हुआ ऋतुएँ बिताने लगा। वह काम-क्रीड़ा के लिये भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार का वेश बनाया करता था, इसलिये उसके वेश को देखकर ज्ञात हो जाता था कि किस समय कौन-सी ऋतु है।।47।। इतना व्यसन में लीन होने पर भी दूसरे राजा उसके राज्य पर आक्रमण नहीं करते थे। फिर भी जैसे दक्ष के शाप से चन्द्रमा को क्षयरोग हो गया था, वैसे ही अधिक भोग-विलास करने से उसे भी क्षय रोग हो गया और धीरे-धीरे बढ़ने लगा।।48।। वैद्यों के बार-बार रोकने पर भी उसने काम को जगाने वाली ये वस्तुएँ नहीं छोड़ीं; क्योंकि जब इन्द्रियाँ एक बार विषय में फँस जाती हैं तब उन्हें रोकना कठिन हो जाता है।।49।। धीरें-धीरे उसका शरीर पीला पड़ गया, दुर्बलता के कारण उसने आभूषण पहनना भी छोड़ दिया, वह नौकरों के कन्धे पर सहारा देकर चलने लगा, उसकी बोली धीमी पड़ गई और यक्ष्मा रोग से सूख कर वह ठीक विरहियों के समान दिखाई देने लगा।।50।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पङ्कशेषमिव घर्मपल्वलम्।
राज्ञि तत्कुलमभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिव दीपभाजनम्।। 51।।

वाढमेषु दिवसेषु पार्थिवः कर्म साधयति पुत्रजन्मने।
इत्यदर्शितरुजोऽस्य मन्त्रिणः शश्वदूचुरघशङ्किनीः प्रजाः।। 52।।

स त्वनेकवनितासखोऽपि सन्पावनीमनवलोक्य संततिम्।
वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं न प्रदीप इव वायुमत्यगात्।। 53।।

तं गृहोपवन एव संगताः पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा।
रोगशान्तिमपदिश्य मन्त्रिणः संभृते गूढमादधुः।। 54।।

तैः कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैराशु तस्य सहधर्मचारिणी।
साधु दृष्टशुभगर्भलक्षणा प्रत्यपद्यत नराधिपश्रियम्।। 55।।

तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोका
दुष्णैर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः।
निर्वापितः कनककुम्भमुखोज्झितेन।
वंशाभिषेकविधिना शिशिरेण गर्भः।। 56।।

राजा के क्षयरोग से रोगी होने पर सूर्यकुल ऐसा रह गया, जैसे एक कला भर बचा हुआ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का चन्द्रमा हो या कीचड़ भर बचा हुआ गर्मी के दिनों का सरोवर हो या तनिक-सी बची हुई दीपक की लौ हो। ।51।। जब प्रजा पूछती थी कि राजा को कोई भयानक रोग तो नहीं है, उस समय मन्त्री लोग प्रजा को यह कहकर समझाते थे कि राजा इस समय पुत्रोत्पत्ति के लिये व्रत आदि कर रहे हैं, इसलिये दुर्बल होते जा रहे हैं। इस प्रकार वे लोग राजा के रोग की बात जनता से छिपा रहे थे। ।52।। अनेक रानियों के होते हुए भी वह राजा पुत्र का मुँह नहीं देख सका और वैद्य लोग राजा को अच्छा नहीं कर सके। जैसे वायु के आगे दीपक का कुछ भी वश नहीं चलता, वैसे ही राजा भी रोग से नहीं बचाया जा सका। ।53।। अन्त्येष्टि की विधि जानने वाले पुरोहित से मिलकर मंत्रियों ने रोग शान्ति बहाने से राजा के शव को राजभवन के उपवन में ही चुपचाप जलती अग्नि में रख दिया कि कहीं बाहर ले जाने से यह रोग प्रजा में न फैल जाय ।54।। मन्त्रियों ने शीघ्र ही प्रजा के नेताओं को इकट्ठा किया और उनकी सम्मति से राजा की उस पटरानी को सिंहासन पर बैठा दिया जिसमें गर्भ के शुभ चिह्न दिखाई दे रहे थे। ।55।। राजा की ऐसी दुःखद मृत्यु से महारानी की आँखों के गरम-गरम आँसुओं से तपे हुए गर्भ पर जब कुल-परम्परा के अनुसार होने वाले अभिषेक के समय सोने के घड़े से शीतल जल पड़ा तब वह गर्भ शीतल हो गया। ।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं भावार्थं प्रसवसमयाकाङ्क्षिणीनां प्रजाना-
मन्तर्गूढक्षितिरिव नभोबीजमुष्टिं दधाना।
मौलैः सार्धं स्थविरसचिवैर्हेमसिंहासनस्था।
राज्ञी राज्यं विधिवदशिषद्भर्तुरव्याहताज्ञा।। 57।।

इति महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
अग्निवर्णशृङ्गारो नामैकोनविंशः सर्गः।।

।। इति रघुवंशम् ।।

जैसे सावन में बोए हुए मुट्ठी भर बीजों को पृथ्वी छिपाए रहती है वैसे ही महारानी भी अपनी उस प्रजा की भलाई के लिये गर्भ धारण किये हुए थीं, जो पुत्र उत्पन्न होने की बाट जोह रही थी। इस प्रकार जिसका कहना कोई टाल नहीं सकता था वह गर्भवती महारानी बूढ़े मन्त्रियों की सम्मति के अनुसार राज-काज चलाने लगी।

महाकवि श्री कालिदास-विरचित रघुवंश महाकाव्य में 'अग्निवर्ण का
शृंगार' नाम का उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

।। रघुवंश महाकाव्य समाप्त हुआ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट-I

महाकवि कालिदास के काव्यों में प्रयुक्त सूक्तियाँ

1. आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्।। पू./53।।
2. आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां।
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रूणाद्धि।। पू./10।।
3. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैः गच्छत्युपरि च दशाचक्रनेमिक्रमेण।। उ./46।।
4. कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः।। उ./37।।
5. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।। पू./5।।
6. के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः।। पू./54।।
7. ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।। पू./41।।
8. न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय।
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किंपुनर्यस्तथोच्चैः।। पू./17।।
9. प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।। उ./51।।
10. प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।। उ./30।।
11. मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।। पू./38।।
12. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः।
कण्ठाश्लेष-प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।। पू./3।।
13. याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाऽधमे लब्धकामा।। पू./6।।
14. रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।। पू./20।।
15. वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति प्रक्षिप्त।। उ./4।।
16. सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्।। उ./17।।
17. स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।। पू./28।।
18. धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।। पू./5।।
19. स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा–,
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।। उ./49।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारसम्भवम्

1. अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा।। 1/27।।
2. अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी।। 4/31।।
3. अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया।। 5/73।।
4. अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म।। 3/19।।
5. अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे।। 1/52।।
6. अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।। 5/75।।
7. अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः।। 4/43।।
8. अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता।। 6/79।।
9. आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति।। 3/40।।
10. ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम्।। 1/51।।
11. एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।। 1/3।।
12. कः करं प्रसारयेत् पन्नगरत्नसूचये?।। 5/43।।
13. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।। 5/5।।
14. कठिनाः खलु स्त्रियः।। 4/5।।
15. कं नाभिनन्दयत्येषा दृष्टा पीयूषवाहिनी?।। 10/48।।
16. कस्य मनो न हि क्षुभ्यति धामधाम्नि?।। 12/22।।
17. कार्येष्ववश्यकार्येषु सिद्धये क्षिप्रकारिता।। 10/25।।
18. कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति।। 7/63।।
19. क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्।। 6/13।।
20. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।। 5/86।।
21. क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव।। 1/12।।
22. दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने।। 4/28।।
23. दावानलप्लोषविपत्तिमन्यो महाम्बुदात् किं हरते वनानाम्।। 12/41।।
24. धिङ्महत्त्वमसतां हृतान्तरम्।। 8/57।।
25. ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च।। 5/19।।
26. ध्रुवमभिमते पूर्णे को वा मुदा न हि माद्यति?।। 12/60।।
27. न कस्य वीर्याय परस्य सङ्गति?।। 15/51।।
28. न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।। 5/83।।
29. न धम्रवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।। 5/16।।
30. नन्दनालोकनमङ्गलेषु क्षणं-क्षणं तृप्यति कस्य चेतः?।। 11/20।।
31. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।। 5/45।।
32. नववैधव्यमसह्यवेदनम्।। 4/1।।
33. न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते।। 5/9।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

34. न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।। 5/77।।
35. न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्।। 3/63।।
36. नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता वेधसा हि गुणदोषयोर्गतिः।। 8/66।।
37. पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः।। 5/4।।
38. पराभिभूता वद किं क्षमन्ते कालातिपातं शरणार्थिनोऽमी।। 9/10।।
39. पुत्रोत्सवे माद्यति का न हर्षात्?।। 11/17।।
40. प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य?।। 12/32।।
41. प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु।। 3/1।।
42. प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः।। 6/20।।
43. प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः।। 6/85।।
44. प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः।। 3/28।।
45. प्रायेणैवं-विधे कार्ये पुरन्ध्रीणां प्रगल्भता।। 6/32।।
46. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।। 5/1।।
47. भर्तृवल्लभतया हि मानसीं मातरस्यति शुचं वधूजनः।। 8/12।।
48. भवत्प्रणीतमाचारमामनन्ते हि साधवः।। 6/31।।
49. भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता ध्रुवं फलाविष्टमहोदयाय।। 12/42।।
50. भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वति गौरवाः क्रियाः।। 5/31।।
51. भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रता।। 6/86।।
52. मनोरथानामगतिर्न विद्यते।। 5/64।।
53. महतां वृथा भवेदसद्ग्रहान्धस्य हितोपदेशनम्।। 15/26।।
54. मुदे न हृद्या किमु बालकेलिः?।। 11/40।।
55. यतः सतां सन्नतगात्रि! सङ्गतंमनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते।। 5/39।।
56. यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते।। 6/56।।
57. येन पूर्वमुदये पुरस्कृता नानुयास्यति कथं तमापदि?।। 8/44।।
58. रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम्।। 11/11।।
59. रविपीतजला तपात्यये पुररोघेण हि युज्यते नदी।। 4/44।।
60. विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।। 1/59।।
61. विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया।। 8/65।।
62. विनियोगप्रसादा हि किंकराः प्रभविष्णुषु ।। 6/62।।
63. विपत्तिरपि संश्लाघ्योपकारव्रतिनः।। 10/23।।
64. विपदा परिभूताः किं व्यवस्यन्ति विलम्बितुम्।। 10/35।।
65. विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं क्षेत्तुमसाम्प्रतम्।। 2/55।।
66. वृत्तं हि महितं सताम्।। 6/12।।
67. व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः।। 3/13।।
68. शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्।। 5/33।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

69. शशिना सह याति कौमुदी।। 4/33।।
70. साम्येत्प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनः।। 2/40।।
71. समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य?।। 3/21।।
72. सह मेघेन तडित् प्रलीयते।। 4/33।।
73. सागरादनपगा हि जाह्नवी, सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक्।। 8/16।।
74. सुतविक्रमे सति न नन्दति का खलु वीरसूः।। 12/59।।
75. स्तोत्रं कस्य न तुष्टये?।। 10/9।।
76. स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः।। 7/22।।
77. स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते।। 4/26।।

रघुवंशम्

1. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।। 1/10।।
2. सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।। 1/18।।
3. प्रतिबद्ध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।। 1/79।।
4. स्ववीर्यगुप्ता हि मनो प्रसूतिः।। 2/4।।
5. भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि।। 2/22।।
6. न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य।। 2/34।।
7. शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति।। 2/40।।
8. स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन।। 2/56।।
9. सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः।। 2/58।।
10. भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ।। 3/14।।
11. क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति।। 3/29।।
12. पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम्।। 3/46।।
13. यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः।। 3/48।।
14. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते।। 62।।
15. प्राणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम्।। 4/64।।
16. आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।। 4/86।।
17. सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा।। 5/13।।
18. पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः।। 5/16।।
19. निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि।। 5/17।।
20. उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य।। 5/54।।
21. प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः।। 5/56।।
22. नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।। 6/22।।
23. भिन्नरुचिर्हि लोकः।। 6/30।।
24. न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली।। 6/69।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25. रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन।। 6/79।।
26. मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम्।। 7/15।।
27. धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः।। 7/55।।
28. न हि तेन पथा तनुत्यजस्तनयावर्जितपिण्डकांक्षिणाः।। 8/26।।
29. ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम्।। 8/38।।
30. प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते।। 8/40।।
31. अभितप्तमयोऽपिं मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।। 8/43।।
32. विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।। 8/46।।
33. धिगिमां देहभृतामसारताम्।। 8/51।।
34. वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः।। 8/83।।
35. परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्।। 8/85।।
36. स्वजनाश्रु किलातिसन्ततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते।। 8/86।।
37. मरणं प्रकृतिः शीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः।। 8/87।।
38. द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः।। 8/90।।
39. अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः।। 9/74।।
40. कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति।। 9/80।।
41. अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम्।। 10/6।।
42. याथार्थ्यं वेद कस्तव।। 10/24।।
43. स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते।। 10/30।।
44. स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यतें।। 10/40।।
45. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।। 11/1।।
46. अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता।। 11/2।।
47. किं महोरगविसर्पि-विक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते।। 11/27।।
49. पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलयति सागरेऽपि यः।। 11/75।।
50. खातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम्।। 11/76।।
51. केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किम्पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः।। 11/80।।
52. निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्त्तये।। 11/89।।
53. अत्यारूढ़ो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः।। 12/33।।
54. काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः।। 12/69।।
55. अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः।। 14/35।।
56. छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः।। 14/40।।
57. अमर्षणः शोणितकांक्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः।। 14/41।।
58. आज्ञा गुरुणामविचारणीया।। 14/46।।
59. त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम्।। 15/3।।
60. धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः।। 15/4।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

61. संमुखीनो हि, जयो रन्ध्रप्रहारिणाम्।। 15/17।।
62. प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः।। 16/80।।
63. वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम्।। 17/43।।
64. न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद्गिरिगुहाशयः।। 17/52।।
65. समीरणसहायोऽपि नाम्भः प्रार्थी दवानलः।। 17/56।।
66. अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते।। 17/60।।
67. सुखोपरोधिवृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम्।। 18/18।।
68. स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते।। 19/49।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट-II

श्लोक-सूची

अंशे हिरण्या र 18.25
अंसलम्बिकु र 19.37
अकरोत् स र 8.26
अकरोदचि र 6.39
अकाले बोधि र 12.81
अकिञ्चनः स कु 5.77
अक्षबीजबल र 11.66
अक्षय्यान्ता मे 2.8
अखण्डितं कु 7.28
अगस्त्यचिह्ना र 16.44
अगुरुसुरभि ऋ 5.12
अगूढसद्भाव कु 5.62
अग्निवर्णम र 19.1
अग्रजेन प्र र 15.8
अग्रे यान्ति र 1.5
अङ्कमङ्कप र 19.13
अङ्काश्रया कु 7.5
अङ्गदं चन्द्र र 15.90
अङ्गसत्त्वव र 19.36
अङ्गानि निद्रा ऋ 6.13
अङ्गुलीकिस र 19.17
अङ्गीलीभिरि कु 8.63
अङ्गेनाङ्गं मे 2.39
अचिरप्रभा 407
अचिराद् र 10.45
अच्छिन्नामल कु 6.69
अजयदेकर र 9.10
अजस्य गृ र 10.24
अजिताधिग र 8.17
अजिनदण्ड र 9.21
अणिमादिगु कु 6.75
अत आहर्त्तु कु 6.28
अतन्द्रिता सा कु 5.14
अतिथि नाम र 17.1
अतिप्रबन्ध र 3.58
अतिष्ठत् प्रत्य र 10.3
अतोऽयम कि कु 5.40
अतोऽयमश्वः र 3.50
अत्रानुगोदं र 13.35
अत्राभिषेकाय र 13.51
अत्रावियुक्त र 13.31
अथ काश्चिद र 8.24
अथ जातु रु र 9.72
अथ जानप र 15.42

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तं सब र 8.75
अथ तस्य क र 8.71
अथ तस्य वि र 8.1
अथ तस्य वि र 10.50
अथ तेन द र 8.73
अथ ते मुनयः कु 6.15
अथ ते मुनयो कु 6.47
अथ तैः कु 4.25
अथ घूमाभि र 15.49
अथ नभस्य र 9.54
अथ नयनस र 2.75
अथ पथि ग र 11.93
अथ प्रजाना र 2.1
अथ प्रदोषे दो र 1.93
अथ प्रभावो र 5.52
अथ प्राचेत 15.63
अथ मदगु र 12.102
अथ मदन कु 4.46
अथ मधु व र 18.52
अथ मोह कु 4.1
अथ मौलि कु 6.25
अथ यथासुख र 9.48
अथ यन्तार र 1.54
अथ रामशि र 12.74
अथ रोधसि र 8.33
अथ कृतवा र 1.4
अथवा मम र 8.47
अथवा मृदु र 8.45
अथ वाल्मी र 15.80
अथवा सुम कु 6.24
अथ विधिम र 5.76
अथ बिबुधग कु 7.49
अथ विश्वात्म कु 6.1
अथ वीक्ष्य र र 8.10
अथ वेलास र 10.35
अथ व्यवस्था र 14.53
अथ समाव र 9.24
अथ सर्वस्य कु 2.3
अथ स ललि कु 2.64
अथ स विष र 3.70
अथ सा पुन कु 4.4
अथ सावर र 15.70
अथ स्तुते र 6.8
अथाङ्गदाश्लि र 6.53
अथाङ्गराजा र 6.30
अथाङ्गिरस कु 6.65
अथाङ्गुलि कु 7.23
अथाग्रहस्ते कु 5.63
अथाग्र्यम्हि र 10.66
अथाजिनाषा कु 5.30
अथात्मनः श र 13.1
अथाथर्वनिधे र 1.59
अथाधिकास्नि र 14.26
अथाधिशिश्ये र 5.28
अथानाथाः प्र र 12.12
अथानपोढा र 16.6
अथानुकूल र 14.47
अथानुरूपा कु 5.7
अथान्धकारं र 2.46
अथाभिषेकं र 14.7
अथाभ्यर्च्य र 1.35
अथार्धरात्रे र 16.4
अथावमानेन कु 1.21
अथास्य गोदा र 3.33
अथास्य रत्न र 16.43
अथाह वर्णी कु 5.65
अथेतरे स र 16.1
अथेन्द्रियक्षो कु 3.69
अथेरिसतं भर र 3.1
अथेश्वरेण र 5.39

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथैकधेनो र 2.49
अथोपनिन्ये कु 3.65
अथोपनींत र 3.29
अथोपयन्त्रा स र 7.1
अथोपरिष्टाद् र 5.43
अथोपशल्ये र 16.37
अथोरगा र 6.59
अथोरुदेशा कु 3.11
अथोर्मिलोलो र 16.54
अथोष्ट्रवामी र 5.32
अथौषधीनाम कु 7.1
अदः शरण्यं र 13.45
अदूरवर्तिनीं र 1.87
अद्यापि नूनं 460 पा
अद्धा श्रियं र 13.65
अद्यप्रभृति कु 6.56
अद्य प्रभृत्य कु 5.86
अद्रिराजत कु 8.47
अद्रे शृङ्गं मे 1.14
अधद्यप्रवर्ति कु 6.7
अधिकं र 8.6
अधिगतं वि र 9.2
अध्यापितस्यो कु 3.6
अध्यास्य र 6.57
अनन्तरत्न कु 1.3
अनन्यभाजं कु 3.63
अनम्राणां स र 3.35
अनयत् प्रभु र 8.19
अनर्ध्यमर्ध्ये कु 1.58
अनवाप्तम र 10.31
अनश्नुवाने र 18.48
अनसूयाति र 12.27
अनाकृष्टस्य र 1.23
अनातुरोत्क मा 3.15
अनिग्रहवा र 13.50
अनित्याः र 17.45
अनिर्दयोप 471 रु.
अनीकिनीनां र 18.10
अनुग्रह प्र र 14.79
अनुभवन्नव र 9.46
अनुभूय वसि र 8.3
अनेन चेदि र 6.24
अनेन कथि र 10.53
अनेन धर्मः कु 5.38
अनेन पर्या र 6.28
अनेन पाणौ र 6.63
अनेन यूना र 6.35
अनेन लीला 471 रू
अनेन संबन्ध कु 7.68
अनेन सार्धं र 6.57
अन्यदाजग र 11.73
अन्या प्रका ऋ 4.15
अन्या प्रियेण ऋ 4.17
अन्याश्चिरं ऋ 4.18
अन्येद्युर र 15.75
अन्येद्युरात्मा र 2.26
अन्योन्यद र 12.87
अन्योन्यमुत्पी कु 1.40
अन्योन्यसूतो र 7.52
अन्वियेष र 11.50
अपगतम ऋ 5.11
अपतुषार र 9.39
अपथेन प्र र 17.54
अपनीतिशि र 4.64
अपमेघोद कु 6.54
अपराधमिमं रू 469
अपशूलं त र 15.17
अपशोकम र 8.86
अपि क्रियार्थं कु 5.33
अपि तुरग र 9.67

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपि त्वदाव कु 5.34
अपि दृष्टवा 402
अपि प्रभुः र 14.83
अपि प्रसन्नं कु 5.35
अपि प्रसन्ने र 5.10
अपि बनान्त 399
अप्यग्रणीर्म र 5.4
अप्वन्यस्मिन मे 1.34
अप्यर्धमार्गे र 7.45
अप्यस्तुति कु 8.6
अप्यौत्सुक्ये 470 रू
अब्रवीच्च र 11.39
अभिनयान् प र 9.33
अभिनवकु 401 पा.
अभिभूय विभू र 8.36
अभिलाष कु 4.41
अभीक्ष्णमु ऋ 2.10
अभ्यभूयत र 4.56
अभ्सासनि र 10.23
अभ्युत्थिताग्नि र 1.53
अम्युन्नताङ्ग कु 1.33
अमंस्त चाने र 3.27
अमदयन्मधु र 9.42
अमी च कु 2.24
अमी जनस्था र 13.22
अमी शिरीष र 16.61
अमी हि वीर्य कु 3.15
अमुं सहास र 13.42
अमुना ननु कु 4.29
अमुनैव कु 4.34
अमुं पुरः प र 2.36
अभूविमाना र 13.33
अमेयो मित र 10.18
अमोघं संद र 12.97
अमोच्यमश्वं र 3.65
अयं सुजातो र 13.49
अयः शंकुचि र 12.95
अयाचितारं कु 1.52
अयाचितोप कु 5.22
अयि जीवित कु 4.3
अयि संप्रति कु 4.28
अयुक्तरूपं कु 5.69
अयोध्यादेव र 17.36
अरण्यबीजा कु 5.15
अरिष्टशय्यां र 3.15
अरिहसि मे 517 पा
अरुणराग र 9.43
अर्घ्यमर्घ्य र 11.69
अर्चिता तस्य र 10.55
अर्धाचिता कु 7.61
अर्धाचिता स र 7.10
अर्पितस्तिमि र 19.42
अलकामत कु 6.37
अलं विवादेन कु. 5.82
अलं ह्रिया र 5.58
अलभ्यशोका कु 5.43
अलं महीपाल र 2.34
अलिपंक्ति कु 4.15
अलिभिरञ्ज र 9.41
अवकाशं कि र 4.58
अवगच्छति र 8.88
अवगम्य कु 4.13
अवचितब कु 1.60
अवजानासि र 1.77
अवधान कु 4.2
अवनिमेक र 9.11
अवन्तिनाथो र 6.32
अवभृथप्र र 9.22
अवस्तुनिर्व कु 5.66
अवाकिरन् र 4.27

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविसअग पा 541
अवृष्टिसंरम्भ कु 3.48
अवेक्ष्य रामं र 15.3
अवैमि कार्या र 16.82
अवैमि चैना र 14.40
अवैमि ते साकु 3.13
अवैमि पूत कु 6.57
अवैमि सौभा कु 5.49
अशून्यतीरां र 14.76
अशोकनिर्भ कु 3.53
असकृदेक र 9.23
असङ्गमद्रि र 3.63
असज्जनेन र 12.46
असमाप्त र 7.86
असम्पदस्त कु 5.80
असंभृतं म कु 1.31
असम्मतः कु 3.5
असह्यपीडं र 1.71
असह्यवातो ऋ 1.10
असह्यविक्र र 4.52
असह्यहुङ्का कु 5.54
असितनय ऋ 3.26
असूत सद्यः कु 3.26
असूत सा कु 1.20
असौ कुमार र 6.78
असौ पुरस्कृ र 13.66
असौ महाका र 6.34
असौ महेन्द्र र 13.20
असौ महेन्द्रा र 6.54
असौ शरण्यः र 6.21
अस्तोतुः स्तूय कु 6.83
अस्त्युत्तरस्यां कु 1.1
अस्त्रं हरादा र 6.62
अस्मिन् सु कु 3.19
अस्य प्रयाणे र 6.33
अस्यांकलक्ष्मी र 6.43
अस्यान्तिकमा 402 रू
अहमेत्य कु 4.20
अहमेव मतो र 8.8
अहं त्वां 399
अहीनगुर्ना र 18.14
अहो स्थिरः कु 5 47
आकम्पयन कु ऋ 6.24
आकम्पितानि ऋ 6.34
आकारसदृ र 1.15
आकीर्णमृषि र 1.50
आकुञ्चि र 6.15
आज्ञापय कु 3.3
आततज्यम् र 11.45
आतपात्यय र 1.52
आत्तशस्त्र र 15.46
आत्मानमात्म कु 2.10
आत्मानमालो कु 7.22
आदिदेशाथ र 15.6
आदिष्टवर्त्मा र 15.10
आदीप्तवह्नि ऋ 6.21
आद्ये बद्धा मे 2.29
आधारबन्ध र 5.6
आधिक्षामां मे 2.26
आधूय शाखाः र 16.36
आधोरणानां र 7.46
आनन्दजः शोर 14.3
आनन्दोत्थं मे 2.3प्र
आपादपद्म र 4.37
आ पिञ्जरा ब र 16.51
आपीनभारो र 2.18
आपृच्छस्त्र मे 1.12
आप्लुतास्तीर कु 6.5
आमुक्ताभर र 17.25
आमूलतो वि ऋ 6.18

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमूलशुद्ध 535 पा
आमेखलं कु 1.5
आम्रीम ऋ 6.38
आयोजनो र 6.42
आरक्तराजि 392
आराध्य र 18 24
आराध्यैनं मे 1.45
आरूढमद्री र 6.77
आर्द्रकेसर कु 8.76
आर्याप्यरुन्ध कु 6.32
आलम्बिहेम ऋ 6.26
आलोकमार्ग र 7.6
आलोकमार्ग र 7.6
आलोकयति 392
आलके ते मे 2.22
आलोचनान्तं कु 7.84
आवर्ज्य र 16.19
आवर्जितजटा कु 2.26
आवर्जिता कु 3.54
आवर्त्तशोभा र 16.63
आविशद्भि कु 8.38
आवृण्वतो लोर 7.42
आशंसता बाणकु 3.14
आशास्यमन्यत् र 5.34
आश्वास्य र 14.58
आश्वास्यैवं मे 2.50
आसक्तबाहु कु 6.8
आससाद मि र 11.52
आससाद मु र 11.23
आसां जलास्फा र 16.62
आसारसिक्त र 13.29
आसीद् वरः र 7.22
आसीनानां सु मे 1.52
आस्फालितं र 16.13
आस्वादवद्भिः र 25
इक्षुच्छाय र 4.20
इक्ष्वाकुवंशगु र 13.70
इक्ष्वाकुवंशप्र र 5 55
इक्ष्वाकुवंश र 14.55
इक्ष्वाकुवंश्यः र 6.71
इच्छाविभू कु 7.29
इतः परानर्भ र 7.67
इतः स दैत्यः कु 2.55
इतराण्यपि र 12.82
इतस्ततर्श्च र 12.59
इतरेऽपि र 15.35
इति क्रमात् र 17.68
इति क्षितीशो र 3.69
इति चैनमु कु 4.27
इति चापि कु 4.37
इति चाह स कु 4.43
इति जित्वा र 4.85
इति तेभ्यः कु 2.16
इति देहवि कु 4.39
इति द्विजातौ कु 5.74
इति ध्रुवे कु 5.5
इति प्रगल्भं र 2 41
इति प्रगल्भं र 2 41
इति प्रगल्भं र 3.47
इति प्रविश्या कु 5.51
इति प्रतिश्रु र 15.74
इति प्रसाद र 10.33
इति वादिन र 1.82
इति विज्ञापि र 1.73
इति विरचि र 5.75
इति विस्मृता र 9.69
इति व्याहृत्य कु 2.62
इति शत्रुषु र 8.23
इति शिरसि र 7.70
इति संतर्ज्य र 15 19

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति स्वसुर्भोज र 7.29
इतो गमिष्या कु 5.84
इत्थं क्षितीशे र 2.67
इत्थंगते ग र 9.81
इत्थं जनित र 17.44
इत्थं द्विजेन र 5.23
इत्थं नागस्त्रि र 16.88
इत्थमाराध्य कु 2.40
इत्थं प्रयुज्या र 5.35
इत्थं रतेः कु 4.45
इत्थं विधिज्ञेन कु 7.86
इत्थं ब्रतं धा र 2.25
इत्यद्भुतैकप्र कु 7.36
इत्यध्वनः कै र 16.35
इत्य्यभौममनु कु 8.28
इत्यर्ध्यपात्रा र 5.12
इत्यपास्तम र 11.30
इत्याख्याते मे 2.37
इत्याप्तवच र 15.48
इत्याप्रसादा र 1.91
इत्यारोपित र 15.91
इत्युक्तवन्तं र 14.43
इत्युक्त्वा र 12.38
इत्युद्गताः र 7.16
इत्यूचिवांस्त कु 6.64
इत्युचिवानु र 16.86
इत्योपधिप्र कु 7.69
इदं रुणद्धि 397
इदमत्तोत्तरं कु 687
इदमुच्छ्वसि र 8.55
इन्दीवरश्याम र 6.65
इन्दोरगत र 17 75
इन्द्राद् वृष्टि र 17.81
इन्द्रियार्थप र 19.6
इमां तटाशो र 13.32
इमां स्वसारं र 16.85
इयं च तेऽन्या कु 5.70
इयमप्रतिबो र 8.58
इयं महेन्द्र कु 5.53
इयेष सा कु 5.2
ईप्सितं तद र 1.79
ईप्सितार्थ कु 6.90
ईश्वरोऽपि कु 8.50
ईषत्तुषारैः ऋ 6.3
उच्चैरुच्चैः कु 2.47
उच्छ्वास ऋ 6.9
उत्खातलोक र 14.73
उत्तरन्ति कु 8.35
उत्तस्थुषः र 9.59
उत्तिष्ठ वत्से र 2.61
उत्तिष्ठ वत्से र 14.6
उत्थापितः र 7.39
उत्पश्यामि मे 1.59
उत्पश्यामि मे 1.22
उत्पाट्य मेरु कु 2.43
उतसङ्गे वा मे 2.23
उदक् प्रतस्थे र 15.98
उदधेरिव र 10.30
उदयमस्त र 9.9
उदये मद र 8.84
उदायुधा र 12.44
उद्घातः कु 2.12
उद्बन्धकेश र 16.67
उद्यच्छमाना र 16.29
उधतैकभु र 11.17
उद्वेजयत्य कु 1.11
उन्नतावनत कु 8.69
उन्नतेन स्थि कु 6.30
उन्नतेषु श कु 8.66
उन्नाभ इत्यु र 18.20

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मीलितं कु 1.32
उन्मुखः सप र 11.26
उपकूलं स र 15.28
उपगतोऽपि र 9.15
उपचितावय र 9.44
उपपन्नं ननु र 1.60
उपपन्नमिदं कु 6.66
उपमान कु 4.5
उपययौ तनु र 9.38
उपशल्यनि र 15.6.
उपस्थितवि र 15.100
उपस्थितां र 14.63
उपहितस्मृ 521 पा.
उपात्तवर्णे कु 5.56
उपात्तविद्यं र 5.38
उपाददे तस्य कु 7.41
उपान्तयोर्नि र 7.50
उपान्तवानी र 13.30
उपेत्य मुनि र 15.92
उपेत्य सा दो र 3.6
उभयमेव र 9.3
उभयोरपि र 8.39
उभयोर्न त र 15.68
उभावुभा र 14.2
उभे एव क्षम कु 2.60
उमापि नीला कु 3.62
उमारूपेण कु 2.59
उमा वधूर्भ कु 6.82
उमावृषाङ्कौ र 3.23
उपस्तनो कु 7.24
उरस्यपर्या र 18.47
उवाच चैनं कु 5.75
उवाच धात्र्या र 3.25
उषसि स ग र 9.71
ऊरुमूलनख कु 8.87
ऋजुतां कु 4.23
ऋत्विजः र 17.80
ऋद्धापणं र 14.30
ऋषिदेवगण र 8.30
ऋषीन् वि र 1.86
ऋष्यशृङ्गाद र 10.4
एकक्रम 397
एकातपत्रं र 2.47
एकैव मूर्त्ति कु 7.44
एकैव सत्या कु 7.4
एको दाश र 12.45
एक्कक्क 397
एतत् कृत्वा मे 2.52
एतदुच्छ्वसित कु 8.70
एतद् गिरेर्मा र 13.26
एतन्मुनेर्मा र 13.38
एतस्मान्मां मे 2.49
एताः करोत्पी र 16.66
एता गुरुश्रो र 15.60
एतावता नन्व कु 1.37
एतावदुक्त र 13.68
एतावदुक्त्वा र 5.18
एतावदुक्त्वा र 2.51
एतावदुक्त्वात कु 6.89
एते वयं सै र 13.17
एते वयममी कु 6.63
एभिः साधो मे 2.17
एते वयममी कु 6.63
एभिः साधो मे 2.17
एवं यदात्थ कु 2.31
एवं वाच्यः स कु 6.31
एवं वादिनि कु 6.84
एवं तयोक्ते र 6.25
एवं तयोरध्व र 5.60
एवमात्त र 11.57

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमाप्तवच र 11.42
एवमालि नि कु 8.5
एवमिन्द्रिय कु 8.20
एवमिन्द्रिय र 19.47
एवमुक्ते त र 15.82
एवमुक्तव र 11.79
एवमुद्यन् प्र र 17.77
एष चारुमु कु 8.73
एष वृक्षशिख कु 8.36
एषा त्वया पे र 13.34
एषा प्रसन्न र 13.48
एषोऽक्षमाला र 13.43
एहि विश्वा कु 6.88
ऐन्द्रमस्त्र मु र 15.22
ऐन्द्रिः किल र 12.22
ऐरावतास्फा र 6.73
कच्चित् सौ मे 2.51
कण्ठस्य त कु 1.42
कण्ठसक्तमृ र 19.29
कण्डूयमाने र 2.37
कथं नु श र 2.54
कदम्बसर्जा ऋ 2.17
कदाचिदास कु 5.6
कनकमलका ऋ 5.13
कनककमल ऋ 6.32
कपालनेत्रा कु 3.39
कपोलकण्डूः क 1.9
कमलवन ऋ 1.28
कम्पेन मूर्ध्नः कु 7.46
कयासि कु 3.8
करकमल ऋ 3.23
कराभिघातो र 16.83
करिणिवि 398
करिणीवि 398
करेण वाता र 13.21
कर्कन्धूना 480 पा
कर्णार्पितो कु 7.17
कर्णे सुयोग्यं ऋ 6.6
कर्त्तव्यं वो कु 6.61
कुर्त्तुं यच्च मे 1.11
कश्चित् करा र 6.13
कश्चित् का मे 1.1
कश्चिद् द्विष र 7.51
कश्चिद् यथा र 6.19
कलत्रनिन्दा र 14.33
कलत्रवन्तमा र 1.32
कलत्रवान र 12.34
कलमन्यभृता र 8.59
कलितान्योन्य कु 6.76
कल्पवृक्षशि कु 8.68
कल्याणबुद्धे र 14.62
कह्लारपद्म ऋ 3.15
काचिद् विभू ऋ 4.14
काञ्चीगुणैः ऋ 4.4
काठिन्यं स्था कु 6.73
कातरोऽसि र 11.78
कातर्य केव र 17.47
का त्वं शुभे र 16.8
कान्तामुख ऋ 6.20
काप्यभिख्या र 1.46
कामरूपेश्व र 4.84
काम कर्णान्त र 4.13
कामं जावति र 12.75
कामं न सो र 18.4
कामं नृपाः र 6.22
कामं प्रकृति र 17.55
कामस्तु कु 3.64
कामिनीसह र 19.5
कामेकपत्नी कु 3.7
काम्बोजाः र 4.69

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कायेन वाचा र 5.5
कारण्डवा ऋ 3.8
कार्त्तिकीषु र 19.39
कार्येषु चैक र 10.40
कार्ष्णेन पत्रि र 15.24
कालक्रमेणाथ कु 1.19
कालागुरु ऋ 2.22
कालान्तरश्या र 16.18
काशांशुका ऋ 3.1
काशैर्मही ऋ 3.2
काषायपरि र 15.77
किं येन सृज कु 6.23
किं वा तवात्य र 14.65
किं किंशुकैः ऋ 6.22
किंचायमरि कु 2.21
किञ्चित्प्र कु 3.47
किन्तु वध्वां र 1.65
किमत्र चित्रं र 5.33
किमप्यहिंस्य र 2.57
किमात्मनि र 14.34
किमित्यपा कु 5.44
किमिदं द्युति कु 2.19
कियच्चिरं कु 5.50
कुसुमं कृत र 8.62
कुसुमजन्म र 9.26
कुसुममेव र 9.28
कुसुमान्यपि र 8.44
कुसुमायुध कु 4.40
कुसुमास्त्र कु 4.35
कुसुमैर्ग्रथि र 8.34
कुसुमोत्खचि र 8.53
कुसुम्भरागा ऋ 6.5
कूटयुद्धवि र 17.69
कुमारभृत्या र 3.12
कुमाराः कृत र 10.78
कुम्भकर्णः र 12.80
कुम्भपूरण र 9.73
कुम्भयोनिर र 15.55
कुन्दैः सवि ऋ 6.25
कुरुष्व ता र 13.18
कुवलयद ऋ 2.23
कुवेरगुप्ता कु 3.25
कुवेरस्य कु 2.22
कुलेन का र 6.79
कुले प्रसूतिः कु 5.41
कुल्याम्भो 4.33 पा.
कुशावतीं र 16.25
कुशेशयाता र 6.18
कुच्छ्रलब्धम र 11.2
कृतप्रतिकृ र 12.94
कृतदण्डः र 15.53
कृतवत्यसि र 8.48
कृतवानसि कु 4.7
कृतसीताप र 15.1
कृतः प्रयत्नो र 16.76
कृताञ्जलि र 14.16
कृतापराधान् ऋ 5.6
कृताभिषेकां कु 5.16
कृताभिषेकै र 10.63
कृशानुरप र 10.74
कृष्णशारच्छ 402
क्लृप्तपुष्प र 19.23
क्लृप्तोपचारां कु 7.88
केवलं स्मर र 10.29
केशान् निता ऋ 3.19
कैलासगौरं र 2.35
केनाभ्यसूया कु 3.4
केवलं प्रिय कु 8.84
कैकेय्यास्तर र 10.70
कैतवेन शयि कु 8.3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशेनाश्रय र 17.60
कौशिकेन स र 11.1
कौसल्य इत्यु र 18.27
क्रतुभिरुचि 560 पा
क्रतुषु तेन र 9.20
क्रथकैशिक र 8.82
क्रमेण निस्ती र 3.7
क्रियतां कथं कु 4.22
क्रियानिमित्ते र 5.7
क्रियाप्रबन्धा र 6.23
क्रीडापतत्रि र 17.20
क्रोधं प्रभो कु 3.72
क्रोशार्धं प्रकृ र 13.79
क्लमं ययौ कु 5.19
क्लिष्टकेस कु 8.83
क्लेशावहा र 14.5
क्वचिच्च र 13.57
क्वचित् खगा र 13.55
क्वचित् पथा र 13.19
क्वचित् प्रभा र 13.56
क्वचित् प्रभा र 13.54
क्व नु ते कु 4.24
क्व नु मां कु 4.6
क्य सूर्यप्र र 1.2
क्षणमात्र र 8.37
क्षतात् किल र 2.53
क्षत्त्रजातम र 11.71
क्षत्त्रियान्त र 11.75
क्षितिरिन्दु र 8.28
क्षीरोदवेलेव कु 7.26
खनिभिः सुषु र 17.66
खं प्रसुप्तमिव कु 8.43
खर्जूरीस्कन्ध र 4.57
खे खेलगामी कु 7.49
गगनादवती कु 6.49
गङ्गास्रोतःप कु 6.38
गच्छन्तीनां मे 1.37
गजगवय ऋ 1.27
गणा नमेरु कु 1.55
गत एव न कु 4.30
गतं भयं भी वि 1.6
गत्वा चौर्ध्वं मे 1.58
गत्वा सद्यः मे 2.18
गत्युत्कम्पा मे 2.9
गन्धश्च धारा र 13.27
गधुम्मादु 391
गन्धोन्मादि 391
गम्भीरायाः मे 1.40
गरुडापात र 12.76
गर्भं दधत्य र 13.4
गहणं गइंद 389
गहनं गजे 389
गात्राणि का ऋ 4.5
ग़ामधास्यत् कु 6.68
गीतान्तरेषु कु 3.38
गुणवत्सुत र 8.11
गुणैराराध र 10.85
गुप्तं ददृशु र 10.60
गुरुः प्रगल्भे कु 1.51
गुरूणि वा ऋ 6.15
गुरोः स चान र 18.15
गुरोः सदार र 2.23
गुरोर्नियोगा कु 3.17
गुरोर्नियोगा र 14.51
गुर्वर्थमर्थी र 5.24
गृहिणौ सचि र 8.67
गुरीर्यियि र 13.3
गृहीतताम्बू ऋ 5.5
गृहीतप्रति र 4.43
गेये को नु र 15.69

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरोअणा 396
गोरोचना 397
गोप्तारं कु 2.52
गौरवाद् यद्र 19.7
ग्रथितमौलि र 1.51
ग्रहैस्ततः प र 3.13
ग्रामेष्वात्म र 1.44
घूर्णमाननय कु 8.80
घ्राणकान्तम र 19.11
चकम्पे तीर्ण र 4.81
चञ्चन्म ऋ 3.3
चतुर्भुजांश र 16.3
चतुर्वर्गफ र 1.22
चतुष्कपु कु 5.68
चन्दनेनाङ्ग र 18.24
चन्द्रं गता कु 1.43
चन्द्रपाद कु 8.67
चमरान् परि र 9.66
चरणयोर्नख र 9.13
चरतः किल र 8.79
चारुणा स्फरि 473रू
चारु नृत्यवि र 19.15
चित्रकूटव र 12.15
चित्रद्विपाः र 16.16
चिंतादुम्मि 389
चिन्तादूनमा 389
चुम्बनादलक कु 8.19
चुम्बने विप र 19.27
चुम्बनेष्वध कु 8.8
चूताङ्करा कु 3.32
चूर्णबभ्रलु र 19.25
छन्नोपान्तः मे 1.18
छायां जनः ऋ 6.11
छायामाण्डल र 4.5
छायाविनीता र 13.46
जगद्योनि कु 2.9
जगाद चैना र 5.27
जगृहुस्तस्य र 15.99
जङ्गमं प्रेष्य कु 6.58
जनपदे न र 9.4
जनस्य त र 16.53
जनस्य साके र 5.31
जनाय शुद्धा र 3.17
जनास्तदालो 15.78
जयश्रियः सं र 16.74
जयाशा यत्र कु 2.49
जलधर संह 391
जलभरन ऋ 2.28
जलहर संह 390
जलानि या र 13.61
जहार चान्ये र 3.56
जातं वंशे मे 1.6
जातः कुले र 6.74
जात्यस्तेनाभि र 17.4
जाने विसृष्टां र 14.72
जाने वो रक्ष र 10.38
जाने सख्या मे 2.31
जालान्तरप्रे र 7.9
जालान्तरप्रे कु 7.60
जालोद्गीर्णै मे 1.32
जिगमिषुर्ध र 9.25
जितसिंहभया कु 6.39
जुगूह तस्याः र 14.49
जुगोपात्मान र 1.21
जेतारं लोक र 12.89
ज्ञाने मौनं क्ष र 1.22
ज्याघातरेखे र 6.55
ज्यानिनादम र 11.15
ज्याबन्धनिष्प र 6.40
ज्येष्ठाभिगम र 12.35

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिर्लेखा मे 1.44
ज्वलित पव ऋ 1.25
ज्वलन्मणि कु 2.38
तं. यथात्म कु 8.16
तं रागबन्धि र 18.19
तं राजव र 18.39
तं लोकपालाः कु 7.45
तं वाहनाद र 9.60
तं विनिष्पि र 12.30
तं विस्मितं र 2.62
तं वीक्ष्य वे कु 5.85
तं वेधा विदधे र 1.29
तं श्लाघ्य र 5.40
तं सन्तः श्री र 1.10
तं स्वसा नाग र 17.6
तं कर्णभूष र 5.65
तं कर्णमूल र 12.2
तं कृतप्रण र 19.8
तं कृपामृदु र 11.83
तं गृहोपव र 19.54
तच्चात्म र 14.20
तच्चोदितश्च र 9.77
तं चेद् वायौ मे 1.53
तडिल्लताश ऋ 2.20
ततः कक्ष्यान्त र 17.21
ततः स कृत्वा र 16.77
ततः सपर्यां र 16.39
ततः समाज्ञा र 16.75
ततः समानी र 2.64
ततः सुनन्दा र 6.80
ततः स्फुरत् कु 3.22 पा
ततस्तदालो र 7.5
ततः परं त र 18.34
ततः परं ते र 3.39
ततः परं दु र 6.31
ततः परम र 17.40
ततः परम कु 6.35
ततः परं व र 18021
ततः प्रकोष्ठे र 3.59
ततः प्रजानां र 3.35
ततः प्रतस्थे र 4.66
ततः प्रहस्या र 4.51
ततः प्रियोपा र 7.63
तत गणैः कु 7.40
ततो गौरीगु र 4.71
ततो धनुष्क र 7.62
ततो निषङ्गा र 3.64
ततो नृपाणां र 6.20
ततो नृपेणा र 16.69
ततो बिभेद र 12.77
तताऽभिषङ्गा र 14.54
ततो भुजङ्गा कु 359
तता मन्दानि कु 2.29
ततो मृगेन्द्र र 2.30
ततो यथाव र 5.19
ततोऽवतीर्या र 7.17
ततो वेलात र 4.44
तत्कृतानुग्र क 2.39
तत्क्षणं वि कु 8.79
तत् तद् भूमि र 1.47
तत् प्रतीपप र 11.62
तत् प्रयातौ कु 6.33
तत् प्रसुप्तभुज र 11.44
तत् प्रार्थितं र 9.56
तत्र काञ्चन कु 8.29
तत्र जन्यं र 4.77
तत्र तीर्थस र 19.2
तत्र दीक्षित र 11.24
तत्र नागफ र 15.83
तत्र निश्चित्य कु 2.63

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र यावधिप र 11.27
तत्र वेत्रासना कु 6.56
तत्र व्यक्तं मे 1.55
तत्र सेकहृ र 19.10
तत्र सौधग र 15.30
तत्र स्कन्धं मे 1.43
तत्र स्वयंवर र 5.64
तत्र हंसधव कु 8.82
तत्र हूणाव र 4.68
तत्राक्षोभ्यं र 4.80
तत्रागारं मे 2.12
तत्राग्निमाधा कु 1.57
तत्राभिषेक र 14.82
तत्रार्चितो र 7.20
तत्रावतीर्या कु 7.70
तत्रावश्यं व मे 1.61
तत्रेश्वरेण र 13.77
तत्रेश्वरो कु 7.72
तत्रैनं हेम र 17.10
तथागतायां र 6.82
तथातितप्तं कु 5.21
तथापि तावत् कु 7.72
तथापि शस्त्र र 3.62
तथा समक्षं कु 5.1
तथेति कामं र 3.67
तथेति गामु र 2.59
तथेति तस्या र 5.26
तथेति तस्याः र 16.23
तथेति प्रति र 1.92
तथेति प्रति 15.93
तथेति शेषा कु 3.22
तथेत्युपस्पृ र 5.59
तथैव सुग्रीव र 14.17
तदङ्गनिष्य र 3.41
तदङ्गमग्र्यं र 3.46
तदङ्गसंसर्ग कु 5.79
तदनु ज्वलनं कु 4.36
तदञ्जनक्ले र 7.27
तदद्भुतं सं र 16.24
तदन्यतस्ता र 5.17
तदन्वये शु र 1.12
तदपोहितुम र 8.54
तदर्हसीमां र 16.22
तदलं तदपा र 8.83
तदागमन कु 6.74
तदात्मसंभ र 17.8
तदाननं मृ र 3.3
तदाप्रभृति कु 5.55
तदा प्रभृत्येव र 2.38
तदिच्छामों कु 2.51
तदिदं क्रियतां कु 4.32
तदिदं परि कु 4.44
तदीयमाक्रन्दि र 2.28
तदीयस्तोयदे कु 2.50
तदीषदार्द्रा कु 7.82
तदेतदाजानु र 16.84
तदेष सर्गः र 14.42
तद् गच्छ सि कु 3.18
तद गतिं म र 11.87
तद्गीतश्रव र 15.66
तद्गौरवान्म कु 7.31
तद्दर्शनादभू कु 6.13
तद्ब्रूत वत्साः कु 2.28
तद् रक्ष कल्या र 2.50
तद् वल्गुना यु र 5.68
तद् व्योम्नि र 12.98
तनुत्यजां वर्म र 7.48
तनुलताविनि र 9.52
तनूनि पाण्डू ऋ 6.10
तं तस्थिवांसं र 5.61

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं दधन्मैथि र 15.56
तं देशमारो कु 3.35
तं धूपाश्यान र 17.22
तं न्यमन्त्रय र 11.32
तन्मीदीयमि र 11.77
तन्मध्ये च मे 2.16
तन्मातरं चा कु 6.92
तन्मूहूर्त्तम कु 8.48
तन्वी मेघज 404
तन्वीश्यामा मे 2.91
तपः परामर्श कु 3.71
तपस्यनधि र 15.51
तपस्विनः कु 3.34
तपस्विवेष र 14.9
तपस्विसंसर्ग र 14.75
तपो रक्षन् ए र 17.65
तमङ्कमारो र 3.26
तमध्वराय र 15.58
तमध्वरे वि र 5.1
तमन्वगिन्द्र कु 7.71
तमपहाय र 9.16
तमब्रवीत् सा र 16.9
तमभ्यगच्छत् कु 7.43
तमभ्यनन्दत् र 3.68
तमभ्यनन्दत् र 15.40
तमरण्यसमा र 8.12
तमर्चयित्वा र 5.3
तमर्थमिव कु 6.79
तमलभन्त र 9.17
तमवेक्ष्य कु 4.26
तमशक्यम र 12.17
तमश्रु नेत्रा र 14.71
तमातिथेयी कु 5.31
तमातिथ्य र 1.58
तमात्मसंप र 18.18
तमादौ कुल र 17.3
तिमाधूतध्व र 12.85
तमापतन्तं र 5.50
तमार्यगृह्यं र 2.33
तमाशु विघ्नं कु 3.74
तमाहितौत्सु र 2.73
तमीशः काम र 4.83
तमुद्वहन्तं र 7.35
तमुपाद्रवदु र 15.23
तमृद्धिमद् कु 7.52
तमृषिः पूज र 15.12
तमेकदृश्यं कु 7.64
तं पयोधर र 19.45
तं पितुर्वध र 11.67
प्रमत्तम र 19.48
तं प्राप्य सर्वा र 6.69
तं प्रीतिविश र 17.35
तं भावार्थं प्र र 19.57
तं भूपतिर्भा र 5.30
तं मातरो कु 7.38
तया दुहित्रा के 1.24
तया प्रवृद्धा कु 7.74
तया वियुक्त 404
तया व्याहृत कु 6.2
तया स्रजा र 6.84
तस्याः स्पृष्टे र 16.87
तस्याग्रभागा 536 पा
तस्यात्मा कु 2.61
तस्याधिकार र 5.63
तस्यानलौजाः र 18.5
तस्यानीकै र 4.53
तस्यानुमेने कु 7.93
तस्यान्वये र 6.41
तस्यापनोदा र 14.39
तस्यापरेष्वपि र 9.58

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याभवत् सू र 18.17
तस्यायमन्त्त र 13.40
तस्यालमेषा र 2.39
तस्यावसाने र 18.23
तस्यास्तथा र 19.56
तस्याभिषेक र 12.4
तस्यास्तिक्तै मे 1.20
तस्यास्तीरे मे 2.14
तस्यां रघोः र 6.68
तस्यामात्मानु र 1.33
तस्यामेवास्य र 15.13
तस्यैकनाग र 5.47
तस्यैकस्यो र 17.33
तस्यै प्रतिश्रु र 14.29
तस्यै भर्तुर र 12.62
तस्योत्सङ्गे मे 1.63
तस्योत्सृ र 4.76
तस्योदये च र 10.73
तस्योपकण्ठे कु 7.51
तस्योपकार्या र 5.41
तस्योपायन कु 2.37
तस्यौघमह र 17.14
तां लोध्रक कु 7.9
तां विलम्बि कु 8.81
तां वीक्ष्य कु 3.57
तां शिल्पि र 16.38
तां सैव वेत्र र 6.26
तां हंसमाला कु 1.30
ताः स्वचारि र 15.73
ताः स्वमङ्कम र 19.44
ता इङ्गुदी र 14.81
तां कस्यांचिद् मे 1.38
तां चावश्यं मे 1.10
तां जानीथाः मे 2.20
तात शुद्धा स र 15.72
तां दृष्टिविष र 15.79
तां देवतापित्र र 2.16
ता नराधि र 11.56
तानर्घ्यानर्घ्य कु 6.50
तां तामवस्थां र 13.5
तां नारदः कु 1.50
तान् हत्वा र 9.65
ताभिर्गर्भः प्र र 10.58
ताभ्यस्तथावि र 10.64
तामगौरवभे कु 6.12
तामङ्कमारो र 14.27
तामग्रतस्ता र 6.37
तामन्तिकन्य र 2.24
ताभ्यगच्छद् र 14.70
तामर्चिताभ्यः कु 8.28
तामर्पयामा र 14.80
तामस्मदर्थे कु 6.29
तामायुष्मन् मे 2.38
तामिमां ति कु 8.53
तामुत्तीर्य मे 1.47
तामुत्थाप्य मे 2.35
तामेकभार्यां र 14.86
तां पार्वती कु 1.26
तां पुण्पदर्शनां र 1.86
तां पुलोमत कु 8.27
तां प्रणोमादर कु 6.91
तां प्रत्यभिव्य र 6.12
तां प्राङ्मुखीं कु 7.13
ताम्बूलवल्ली र 6.64
ताम्बूलीनां द र 4.42
ताम्रपर्णीस र 4.50
ताम्रप्रवाल ऋ 6.17
ताम्रोदरेपु र 5.70
तारागणप्र ऋ 3.7
ता राघवं र 7.12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तावत् पता कु 7.63
तावत् प्रकी र 7.4
तावद् भव कु 7.30
तावुभावपि र 11.82
तासां च कु 7.39
तासां मुखैरा कु 7.62
तासां मुखरा र 7.11
तासु श्रिया र 6.5
तिर्यगूर्ध्वमध कु 6.71
तिष्ठेत् कोप 390
तिसृभिस्त्वम कु 2.6
तिस्रस्त्रिलोक र 7.33
तीरस्थलीव र 16.64
तीर्थे तदीये र 16.33
तीर्थे तोयव्य र 8.95
तीव्रवेगधु र 11.16
तीव्राभि कु 3.73
तुषारसंघात ऋ 5.4
तुषारसंघात कु 1.56
तृणोत्करै ऋ 2.8
तृषाकुलैश्चा ऋ 2.3
तृषा महत्या ऋ 1.14
ते चतुर्थसहि र 11.55
ते च प्रापुरु र 10.6
ते चाकाशम कु 6.36
तेजसः सप र 11.63
ते तस्य कल्प र 17.9
केन कार्मुक र 11.70
तेन दूतिबि र 19.18
तेन द्विपाना र 18.8
तेन भिन्नविष कु 8.89
तेनभूमिनिहि र 11.81
तेन मन्त्रप्र र 12.99
तेनातपत्रा र 16.27
तेनाभिघात र 9.61
तेनामरवधू कु 2.41
तेनार्थवाँल्लो र 14.23
तेनावतीर्य र 9.76
तेनावरोध र 16.71
तेनाष्टौ परि र 8.92
तेनोत्तीर्य र 12.71
तेनारुवीर्ये र 18.2
ते पुत्रयोर्नै र 14.4
ते प्रजानां र 10.83
ते प्रभामण्डलै कु 3.4
ते प्रीतमन र 17.18
ते बहुज्ञस्य र 10.56
ते रामाय व र 15.5
ते रेखाध्वज र 4.88
तेषां दिक्षु मे 1.24
तेषा द्वयोर्द्व र 10.82
तेषा सदश्व र 4.70
तेषामवि कु 2.2
तेषां मध्य कु 6.11
तेषां महार्हा र 6.6
ते सद्मनि कु 6.48
ते सेतुवार्त्ता र 16.2
तेऽस्य मुक्तागु र 17.23
ते हिमालयमा कु 6.94
तैः कृतप्रकृ र 19.55
तैः शिवेषु र 11.33
तैस्त्रयाणां र 12.48
तौ क्षणं शि कु 8.86
तौ दम्पती कु 7.80
तौ दम्पती ब र 9.78
तौ निदेशक र 11.4
तौ पितृनय र 11.5
तौ प्राणमच र 11.31
तौ बलातिव र 11.9
तौ विदेहनग र 11.36

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौ सन्धिषु कु 7.91
तौ समेत्य स र 11.53
तौ सरांसि र 11.11
तौ सीतान्वे र 12.54
तौ सुकेतुसु र 11.14
तौ स्नातकै र 7.28
त्यजत मान र 9.47
त्यागाय संभृ र 1.7
त्याजितैः फ र 4.33
त्रस्तेन ता र 6.49
त्रिदिवोत्सुक र 8.60
त्रिभागशेषासु कु 5.57
त्रिलोकनाथे र 3.45
त्रैताग्निधूमा र 13.37
त्रैलोक्यनाथ र 16.81
त्वं पितृणा कु 2.14
त्वं रक्षसा र 13.24
त्वचं स मे र 3.31
त्वत्संभावित कु 6.20
त्वद्वियोगो 405
त्वं दूरमपि 471 रू
त्वन्निष्यन्दो मे 1.42
त्वमेव हव्यं कु 2.15
त्वमेव तावत् कु 5.67
त्वया पुरस्ता र 13.53
त्वयि निबद्ध 401
त्वयैवं चिन्त्य र 1.64
त्वयय्यादातुं मे 1.46
त्वय्यायत्तं मे 1.16
त्वय्यावेशित र 10.27
त्वां कामिनो 394
त्वामामनन्ति कु 2.13
त्वामारूढं मे 1.8
त्वामालिख्य मे 2.42
त्वमासार मे 1.17
दइआरहि 391
दक्षिणेन प र 19.43
ददौ रसात् कु 3.37
दधति वर ऋ 2.26
दधतो मङ्ग र 12.8
दन्तच्छदैः ऋ 4.13
दयितां यदि र 8.50
दयितारहि 392
दर्पणे च परि कु 8.11
तया हीनं र 1.70
तयोरपाङ्ग र 7.23
तयोरुपान्त र 3.57
तयोर्जगृहतुः र 1.57
तयोर्दिवस्प र 17.7
तयोर्यथाप्रा र 14.25
तयोश्चतु र 12.6
तयोः समाप कु 7.75
तयोस्तस्मि र 12.56
तरङ्गभ्रूभ 400
तव विश्व र 8.64
तव प्रसादात् कु 3.10
तव मन्त्रकृतो र 1.61
तवाधरस्प र 13.13
तवार्हतो ना र 5.11
तवोरुकीर्त्तिः र 14.74
तस्मात् पुर र 13.69
तस्मात् प्रदे कु 7.12
तस्मात् समु र 16.69
तस्मादधः कि र 18.41
तस्माद् गच्छे मे 1.50
तस्मान्मुच्ये र 1.72
तस्मिन् काले मे 2.34
तस्मिन् काले मे 1.39
तस्मिन् कु र 18.29
तस्मिन् क्षणे र 2.60

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मिन् गते र 11.92
तस्मिन् गते र 18.22
तस्मिन्नद्रौ मे 1.2
तस्मिन्नभिद्यो र 6.36
तस्मिन्नवस र 10.5
तस्मिन्नात्मच र 15.96
तस्मिन्नास्थ र 12.23
तस्मिन्नुपायाः कु 2.48
तस्मिन् प्रयाते र 18.16
तस्मिन् मघो कु 3.1
तस्मिन् मुहूर्ते कु 7.56
तस्मिन् वने कु 3.24
तस्मिन् वि र 7.11
तस्मिन् विप्र क 2.1
तस्मिन् रा रै 12.49
तस्मिन् संय कु 6.34
तस्मिन् समा र 6.70
तस्मिन् ह्रदः र 16.78
तस्मै कुशल र 10.34
तस्मै जया कु 7.47
तस्मै निशाच र 12.69
तस्मै विसृज्यो र 18.7
तस्मै शशंस कु 3.60
तस्मै सम्यग्घु र 4.25
तस्मै सभ्याः र 1.55
तस्मै हिमाद्रेः कु 3.16
तस्य कर्कश र 9.68
तस्य कल्पित र 11.51
तस्य जातु र 11.58
तस्य जातु कु 8.25
तस्य दाक्षिण्य र 1.31
तस्य द्विपानां र 16.30
तस्य निर्दय र 19.32
तस्य पाण्डुव र 19.50
तस्य पूर्वोदि र 15.57
तस्य प्रभानि र 18.32
तस्य प्रयात र 16.28
तस्य प्रसह्य र 8.93
तस्य मार्गव र 15.11
तस्य वीक्ष्य र 11.38
तस्य संवृतम र 1.20
तस्य संस्तूय र 15.27
तस्य सन्मन्त्र र 17.16
तस्य सावरण र 19.16
तस्य स्तनप्र र 9.55
तस्य स्थित्वा मे 1.3
तस्य स्फु र 12.90
तस्याः करं कु 7.76
तस्याः किञ्च मे 1.41
तस्याः खुर र 2.2
तस्याः पातुं र 1.51
तस्याः प्रकामं र 6.44
तस्याः प्रतिद्व र 7.68
तस्याः प्रविं कु 1.38
तस्याः प्रसन्ने र 2.68
तस्याः शला कु 3.61
तस्याः सखी कु 3.61
तस्याः स र 7.36
तस्याः स र 16.40
तस्याः सुजा कु 7.20
दर्पणेषु प र 19.28
दशदिगन्त र 9.5
दशरश्मिशतो र 8.29
दशाननकि र 10.75
दष्टतामरस कु 8.32
दष्टमुक्तम कु 8.18
दिग्भ्यो र 15.59
दिने दिने शै र 16.46
दिने दिने कु 1.25
दिनेषु गच्छ र 3.8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलीपसूनोः र 3.54
दिलीपानन्त र 4.2
दिवं यदि कु 5.45
दिवं मरुत्वा र 3.4
दिवसकरम ऋ 3.25
दिवाकराद् कु 1.12
दिवापि कु 7.35
दिशः प्रसेदु र 3.14
दिशि मन्दाय र 4.49
दिष्टान्तमाप्स्य र 9.79
दीर्घापाङ्ग 527 पा
दीर्घाकुर्वन् मे 1.31
दीर्घेष्वमी नि र 5.73
दुकूलवासाः र 7.19
दुकूलवासाः कु 7.73
दुदोह गां स र 1.26
दुरितं दर्श र 17.74
दुरितैरपि र 8.2
दुर्गाणि दुर्ग्र र 17.52
दुर्जातबन्धु र 13.72
दूरमग्रपरि कु 8.40
दूरादयश्च र 13.15
दूरापवर्जि र 17.79
दूर्वायवाङ्कु र 17.12
दृढभक्तिरि र 12.19
दृष्टदोषम र 19.49
दृष्टसारमथ र 11.47
दृष्टा विचिन्व र 12.61
दृष्टिप्रपात कु 3.43
देवास्तदन्ते कु 7.92
दैत्यस्त्रीगण्ड र 10.12
द्रवः संघात कु 2.11
द्रुमा सपुष्पा ऋ 6.2
द्रुमेषु सख्या कु 5.60
द्वयं गतं सं कु 5.71
द्विधा प्रयुक्ते कु 7.90
द्विषां विषह्य र 4.41
द्वेष्योऽपि सं र 1.28
धनुर्भृतोऽभ्य र 2.11
धरायां तस्य र 15.85
धमलोपभया र 1.76
धर्मेणापि पदं कु 6.14
धातारं तप र 10.43
धातुताम्रा कु 6.51
धारास्वनो र 13.47
धियः समग्रैः र 3.30
धूपोष्मणा कु 7.14
धूमज्योतिः मे 1.5
धूमधूम्रो व र 15.16
धूमादग्नेः शि र 17.34
धृतिरस्तमिता र 8.66
ध्रुवमस्मि र 8.49
ध्रुवेण भर्त्रा कु 7.85
ध्वजपटं र 9.45
न किलानययु र 1.27
न केवलं ग र 18.49
न केवलं दरी कु 6.60
न कृपणा प्र र 9.8
नखपदचित ऋ 5.15
न खरो न र 8.9
न चन्दन ऋ 5.3
न चावदद् र 14.57
न चोपलेभे र 10.2
न तस्य र 17.48
न तिर्यगव 507 पा
नदत्सु तूर्ये र 7.38
नदद्भिः स्नि र 17.11
न धर्ममर्थ र 17.57
न नवः प्रभु र 8.22
न नूनमारू कु 7.67

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्वात्मानं मे 2.46
न पृथग्जनव र 8.90
न प्रसेहे स र 4.82
न प्रहर्तुम र 11.84
न बाहुयु ऋ 4.3
नभश्चरैर्गी र 18.6
न मृगयाभि र 9.7
नमस्त्रिमूर्त्तये कु 2.4
न मे ह्रिया र 3.5
नमो विश्वसृ र 10.16
नयगुणोपचि र 9.27
नयनान्यरु कु 4.12
नयविद्भि र 4.10
नरेन्द्रमूला र 3.36
नवजलकण ऋ 2.27
नवजलध 390
नवपरिणय कु 7.95
नवपल्लवसं र 8.57
नवप्रवालो ऋ 4.1
न वेद्मी स कु 5.61
नवेन्दुना त र 18.37
नष्टं धनु ऋ 3.12
न सयतस्त र 3.20
नागेन्द्रहस्ता कु 1.36
नातिपर्याप्त र 15.19
नानामनोज्ञ ऋ 6.27
नाभिदेशनि कु 8.4
नाभिप्ररूढा र 13.6
नाम राम र 11.68
नाम वल्लभ र 19.24
नाम्भसां क र 11.12
निःश्वासेना मे 2.28
निकामतप्ता कु 5.23
निगृह्य शोकं र 14.85
निग्रहात् स्वर र 12.52
नितम्बगुर्वी र 7.25
नितम्बबिम्बैः 1.4
नितान्तनी ऋ 2.2
नितान्तला ऋ 1.5
निद्रावशेन र 5.67
निधानगर्भा र 3.9
निनाय कु 5.26
निपातयन्त्यः ऋ 2.7
नियुज्य तं हो र 3.38
निरुद्धवाता ऋ 5.2
निर्घातोग्रैः कु र 9.64
निर्दिष्टां कुल र 1.95
निर्दोषमभ र 10.72
निर्बन्धपृष्ठः र 14.32
निर्बन्धसंजा र 5.21
निर्माल्यदाम ऋ 4.15
निर्मितेषु पि कु 8.52
निर्ययावथ र 12.83
निर्वर्त्यते यै र 5.8
निर्वर्त्यैवं द र 15.10
निर्वाणभूयि कु 3.52
निर्वाप्य प्रिय र 12.63
निर्विभुज्य द कु 8.49
निर्विष्टमुदधेः र 12.68
निर्विष्टविष र 12.1
निर्वृत्तजाम्बू र 18.44
निर्वृष्टलघु र 4.15
निवर्त्तयास्मा कु 5.73
निवर्त्य राजा र 2.3
निववृते स र 9.14
निवातपद्म र 3.17
निवार्यतामा कु 5.83
निवेदितं नि कु 5.46
निवेश्य वामं र 6.16
निशम्य चै कु 5.3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशम्य देवा र 2.52
निशाः ऋ 1.2
निशाचरोप र 14.64
निशासु र 16.12
निश्चित्य चान र 14.35
निश्शेषविक्षा र 5.44
निषिञ्चन् मा व 2.4
निष्कम्पवृक्षं कु 3.42
निसर्गभिन्ना र 6.29
नीचैराख्यं मे 1.25
नीपं दृष्ट्वा मे 1.21
नीपान्वयः पा र 6.46
नीलकण्ठपरि कु 8.12
नीलकण्ठ 393
नीवारपाका र 5.9
नीवीबन्धो मे 2.5
नूनं तस्याः मे 2.21
नूनं मत्तः परं र 1.66
नूनमुन्नमति कु 8.58
नृत्तं मयूरा र 14.69
नृत्यप्रयोगर ऋ 3.13
नृपतिः प्रकृति र 8.18
नृपतेः प्रति र 9.74
नृपतेर्व्यजना र 8.40
नृपं तमाव र 6.52
नृपस्य वर्णा र 14.67
नेत्रव्रजाः पौ र 6.7
नेत्रा नीताः मे 2.6
नेत्रे निमी ऋ 6.28
नेत्रेषु लोलो ऋ 6.12
नेत्रोत्सवो ऋ 3.9
नेपथ्यदर्शि र 17.26
नैर्ऋतघ्नम र 11.25
नोर्ध्वमीक्षण कु 8.5C
न्यस्ताक्षरा कु 1.7
न्यस्ताक्षराम र 18.46
पक्षच्छिदा गो र 13.7
पञ्चमं लो र 17.78
पञ्चघट्यां त र 12.31
पञ्चानामपि र 4.11
पटुतरदव ऋ 1.22
पणइणि ब 403
पणबन्धमुखान् र 8.21
पतिरङ्कनिषः र 8.42
पतिः पदाति र 7.37
पत्युः शिरश्च कु 7.19
पत्रान्तलग्नै कु 7.89
पदं तुषार कु 1.6
पद्भ्यां स्पृशे 392
पद्मकान्ति कु 8.30
पद्मनाभच कु 7.23
पयोघटैरा र 14.78
पयोधराश्च ऋ 1.6
पयोधरैः ऋ 5.9
पयोधरैः पु र 13.60
पयोधरैर्भी ऋ 2.11
परकमपि र 18.61
परभृतकल ऋ 6.31
परभृते 394
परलोक कु 4.10
परलोकवि कु 4.38
परस्पराक्षि र 1.40
परस्पराभ्यु र 16.‿7
परस्परावि र 10.80
परस्परेण ल र 7.53
परस्परेण वि र 4.79
परस्परेण स्पृ कु 7.66
परस्परेण स्पृ र 7.14
परहुअ 394
परात्मनो प र 17.59

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराभिसन्धा र 17.76
पराध्य्र्यवर्णा र 6.4
परिचयं चल र 9.94
परिणेष्यति कु 4.42
परेण भग्ने र 7.55
परेषु स्वेषु र 17.51
परिकल्पित र 4.6
पर्णशालाम र 12.40
पर्यङ्कबन्ध कु 3.45
पर्यन्तसंचा र 18.43
पर्याप्तपुष्प कु 3.39
पर्याकुलत्वा कु 2.25
पर्यायसेवा कु 2.36
पवनस्यानु र 1.42
पशुपतिरपि कु 6.95
पश्चात् सरः 395
पश्चादुच्चैर्भु मे 1.36
पश्य कल्पतरु कु 8.71
पश्य पक्वफ कु 8.61
पश्य पश्चिम कु 8.34
पश्य पार्वति कु 8.64
पश्यावरौधैः र 16.58
पसरिअख 399
पसरिअ पि 400
पाकं व्रजन्तो ऋ 4.11
पाकभिन्नशर कु 8.74
पाणिपीडनवि कु 8.1
पाण्डुच्छायो मे 1.23
पाण्ड्योऽयमं र 6.60
पात्रीकृतात्मा र 18.30
पादन्यासं क्षि 480 पा
पादन्यासैः मे 1.35
पादपाविद्ध र 12.73
पादानिन्दोर मे 2.27
पारसीकॉस्त र 4.60
पार्थिवीमुद र 11.54
पार्वतीं तदु कु 8.78
पाविअसह 407
पिअअम 395
पिअकरिणी 395
पिअसहिवि 386
पिता पितृणा र 18.26
पिता समारा र 18.11
पितुः प्रयत्ना र 3.22
पितुर्नियोगाद् र 14.21
पितुरनन्तर र 9.1
पित्रा दत्तां रु र 12.7
पित्रा विसृष्टां र 13.67
पित्रा संवर्धि र 17.62
पित्र्यमंशमु र 11.64
पिपासाक्षाम 472रू
पीनस्तनोरः ऋ 4.7
पुंस्कोकिल ऋ 6.16
पुंस्कौकिलै ऋ 6.23
पुडइणिव 490पा
पुण्डरीकात र 8.17
पुत्रजन्मप्र र 10.76
पुत्रो रघुस्त र 6.76
पुनर्ग्रहीतुं कु 5.13
पुरन्दरश्रीः र 2.74
पुरं निषादा र 13.59
पुरस्कृता व र 2.20
पुराणस्य कवे कु 2.17
पुराणस्य क र 10.36
पुरा शक्रमुप र 11.75
पुरा स दर्भा र 13.39
पुरुषस्य पदे र 8.78
पुरुषायुषजी र 1.63
पुरूहूतप्र र 10.49
पुरूहूतध्व र 4.3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरे तावन्त कु 2.33
पुरोपकण्ठी र 6.9
पुरोहितप्र र 17.13
पुव्विरिसा 401
पुष्पं प्रवालो कु 1.44
पुष्पं फलं चा र 14.77
पुष्पासवामो ऋ 4.12
पूर्वं प्रहर्ता र 7.47
पूर्वजन्मधनु र 11.80
पूर्वदिक्प 401
पूर्वभाग कु 7.37
पुर्ववृत्तक र 11.10
पूर्वस्तयोरा र 18.12
पूर्वानुभूतं र 13.28
पृक्तस्तुषारै र 2.13
पृथिवीं शास र 10.1
पृथुजघन ऋ 5.14
पृष्टनामान्व र 15.50
पौत्रः कुशस्या र 18.4
पौरेषु सोऽहं र 14.38
पौरस्त्यानेव र 4.34
प्रकामकामैः ऋ 5.7
प्रचण्डसूर्यः ऋ 1.1
प्रचुरगुडवि ऋ 5.16
प्रजानां विन र 1.24
प्रजानामेव र 1.18
प्रजावती दो र 14.45
प्रजास्तद्गुरु र 17.41
प्रणम्य शिति कु 6.81
प्रणयिनीब 403
प्रणिपत्य सु र 10.15
प्रतापोग्रे त र 4.30
प्रतिकृतिर र 18.53
प्रतिक्षणं सा कु 5.10
प्रतिग्रहीतुं कु 3.66
प्रतिजग्राह र 4.40
प्रतिप्रयातेषु र 14.19
प्रतियोजयि र 8.41
प्रतिशुश्राव र 10.4
प्रत्यक्षोऽप्य र 10.28
प्रतिपद्य कु 4.16
प्रत्यपद्यत र 11.88
प्रत्यपद्यत चि र 11.34
प्रत्यब्रवीच्चै र 2.42
प्रत्यभिज्ञान र 12.64
प्रत्यर्थिभूताम् कु 1.59
प्रत्यासन्ने मे 1.4
प्रत्युवाच त र 11.45
प्रत्युवाच र 11.41
प्रथमपरिग र 7.71
प्रथममन्य र 9.34
प्रदक्षिणप्रक्र कु 7.79
प्रदक्षिणप्र र 7.24
प्रदक्षिणीकृ र 2.21
प्रदक्षिणीकृ र 2.71
प्रफुल्लचू ऋ 6.1
प्रफुल्लनीलो ऋ 4.9
अबुद्धपुण्ड र 10.9
प्रभानुलिप्त र 10.10
प्रभामहत्या कु 1.28
प्रभालेपी ना 403
प्रभावस्त र 12.21
प्रभिन्नवैदूर्य ऋ 2.5
प्रभूतशालि ऋ 4.8
प्रमदामनु र 8.72
प्रमन्यवः र 7.34
प्रमुदितवर र 6.86
प्रययावाति र 12.25
प्रयुक्तपाणि कु 7.78
प्रयुक्तसत्कार कु 5.39

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्ररूढ़शाली ऋ 5.1
प्रलोभिताप्या र 6.58
प्रवातनीलो कु 1.46
प्रवृत्तमात्रे र 13.14
प्रवृत्तावुप र 12.60
प्रवृद्धतापो र 16.45
प्रवृद्धो हीय र 17.71
प्रवेश्य चैनं र 5.62
प्रशमस्थित र 8.15
प्रशमादर्चि कु 2.20
प्रसन्नदिक्पां कु 1.23
प्रसन्नमुख र 17.31
प्रसवैः सप्त 4.23
प्रससादोद र 4.21
प्रसादसुमु र 4.18
प्रसादाभिमु र 18.46
प्रसाधिकाल कु 7.58
प्रसाधिकार र 7.7
प्रसीद प्रिय 500
प्रसीद विश्रा कु 3.9
प्रसृतखर 399
प्रस्थितायां र 1.89
प्रहारमूर्च्छा र 7.44
प्राक्तनानां कु 6.10
प्रागेव जरसा 5.36पा
प्राजापत्योप र 10.52
प्रातः प्रयाणा र 5.29
प्रातरेत्य प र 19.21
प्रातर्यथोक्त र 2.70
प्राप्तसहच 407
प्राप्तानुगः र 9.82
प्राप्य चाशु र 12.42
प्राप्यावन्तीनु मे 1.30
प्रायः प्रताप र 17.70
प्रायो विषाण र 9.62
प्रालेयाद्रेरुप मे 1.57
प्रासादकाला र 14.12
प्रहिणोच्च र 11.49
प्रियकरिणी 395
प्रियङ्गु- ऋ 6.14
प्रियतमाभि र 9.18
प्रियतमावि 395
प्रियम्वदात् र 7.60
प्रियसखी 386
प्रियानुराग र 3.10
प्रेक्ष्य दर्पण र 19.30
प्रेमगर्वित र 19.20
फलमस्योप र 12.37
फलिहसिला 400
बंट्टिण पइँ 393
बद्धकोशमपि कु 8.39
बन्धच्छेदं स र 18.19
बबन्ध चास्रा कु 7.25
बभूव भस्मैव कु 7.32
बभूव रामः र 14.84
बभौ च सं कु 7.8
बभौ तमनु र 12.26
बभौ भूयः र 17.30
बभौ सदश र 10.37
बर्हिण त्वा 393
बलमार्तभ र 8.31
बलाहकाश्चा ऋ 2.4
बलिक्रियाव र 16.21
बलैरध्युषि र 4.46
बहुगुणरम ऋ 4.19
बहुगुणरम ऋ 2.29
बहुतर इव ऋ 1.26
बहुधाप्याग र 10.26
बाढमेषु दि र 19.52
बाणभिन्नह र 11.19

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालार्कप्रति र 12.100
बालेन्दुवक्रा कु 3.29
बाहुप्रतिष्टम्भ र 2.32
बाहुभिर्विट र 10.11
बिभ्रतोऽस्त्रम र 11.78
बिभ्रत्या र 10.62
ब्रह्मावर्तं ज मे 1.48
ब्राह्मये मुहूर्त्ते र 5.36
भक्तिः प्रतीक्ष्ये र 5.14
भक्त्या गुरौ र 2.63
भगवन् परवा र 8.81
भज्यमानमति र 11.46
भयोत्सृष्टवि र 4.54
भरतस्तत्र र 15.88
भर्त्तापि ता र 7.32
भर्त्तुः कण्ठच्छ मे 1.33
भर्त्तुः प्रणाशा र 14.1
भर्त्तुर्मित्रं मे 2.36
भल्लापवर्जि र 4.63
भवति विर र 5.74
भवत्यनिष्टा कु 5.42
भवत्संभावनो कु 6.59
भ्सवल्लब्ध कु 2.32
भवानपीदं र 2.56
भविष्यतः कु 3.58
भव्यमुख्याः र 17.53
भस्मसात्कृ र 11.86
भागीरथी कु 1.15
भावसूचित कु 8.15
भास्करश्च र 11.61
भित्त्वा सद्यः मे 2.44
भिन्नाञ्जन ऋ 3.5
भीमकान्तैर्नृ र 1.16
भुजङ्गमोत्र कु 3.46
भुजमूर्धोरु र 12.88
भुवं कोष्णेन र 1.84
भुवनालोकन कु 2.45
भूतानुकम्पा र 2.48
भूयश्चाह मे 2.48
भूयस्ततो र र 13.76
भूयस्तपोव्य र 15.37
भूर्जेषु मर्म र 4.73
भोगिभोगास र 10.7
भोगिवेष्टन र 4.48
भ्रमरैः कुसुमा र 8.35
भ्रूभेदमात्रे र 13.36
भ्रूभेदिभिः कु 6.45
मइँ जाणिउ 390
मखांशभाजां र 3.44
मणिबन्धन 471रू
मणौ महानी र 18.42
मतङ्गशापा र 5.53
मत्तद्विरेफ ऋ 6.19
मत्तेभ-रद र 4.59
मत्परं दुर्लभं र 1.67
मत्वा देवं मे 2.10
मत्स्यध्वजा र 7.40
मदकल यु 399
मदनेन कु 4.21
मदिराक्षि र 8.68
मदोदग्राः र 4.22
मधुकर म 398
मधु द्विरेफः कु 3.36
मधुश्च ते कु 3.21
मधुसुरभि ऋ 6.33
मध्येन सा कु 1.39
मनसापि न र 8.52
मनीषिताः कु 5.4
मनुप्रभृति र 4.7
मनुष्यवाह्यं र 5.10

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोज्ञकूर्पा ऋ 5.8
मनोज्ञगन्धं र 16.52
मनो नवद्वार कु 3.50
मनोऽभिरा र 1.39
मनोहरैश्च ऋ 4.2
मन्त्रः प्रतिदि र 17.50
मन्दः कविय र 1.3
मन्दं मन्दं मे 1.9
मन्दरान्त कु 8.59
मन्दाकिनी कु 1.29
मन्दाकिन्याः कु 2.44
मन्दाकिन्याः मे 2.4
मन्दानिलाकु ऋ 3.6
मन्दारपुष्पैः 403
मन्दोत्कण्ठा र 4.9
मंमररणि 396
मया ज्ञातं 309
मयि तस्य र 8.77
मयूरः पर 405
मरणं प्रकृतिः र 8.87
मरुतां पश्यता र 12.101
मरुत्प्रयुक्ता र 2.10
मरुपृष्ठान्यु र 4.31
मर्मररणि 396
मर्मरैरगु र 19.41
मलयपव ऋ 6.37
महार्हशय्या कु 5.12
महार्हसिंहा र 7.18
महासारप्र मा 1.15
महिमानं य र 10.32
महींभृतः पु कु 1.27
महीं महेच्छः र 18.33
महेन्द्रमास्था र 6.72
महीक्षतां व र 3.32
मातङ्गनक्रैः र 13.11
मातलिस्तस्य र 12.86
मातृवर्गच र 11.7
मान्यः समे र 2.44
मान्यःभक्ति कु 8.77
मा भूदाश्र र 1.37
मामाकाशप्र मे 2.43
मामाहुः पृथि 399
मार्गं ताव मे 1.13
मार्गसमी ऋ 4.10
मार्गैषिणी र 16.31
मालाःकद ऋ 2.21
मित्रकृत्यम र 19.31
मिथुनं परिक र 8.61
मुक्तशेषवि र 10.13
मुक्तयज्ञो कु 6.6
मुखार्पणेषु र 13.9
मुखावयव र 12.43
मुखेन सा प कु 5.27
मुञ्च कोप कु 8.51
मुदित इव ऋ 2.24
मुनिव्रतैस्ता कु 5.48
मुरलामारु र 4.55
मूढं बुद्धमि कु 6.55
मूर्ते च गंगा 7.42
मृगवनोप र 9.50
मृगाः प्रच ऋ 1.11
मृगाः प्रियाल कु 3.31
मृग्यश्च दर्भा र 13.25
मृणालिकापे कु 5.29
मृदुपवन 393
मेघश्यामा 395
मेने मेनापि कु 6.86
मेरुमेत्य मरु कु 8.22
मैत्रे मुहूर्त्ते कु 7.6
मैथिलः सप र 11.48

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिलस्य ध र 11.72
मोक्षयध्वे स्व र 10.47
मोरां परहु 405
यं सर्वशैलाः कु 1.2
यः कश्चन र 15.7
यः पूरयन् कु 1.8
यः सुबाहुरि र 11.29
यच्चकार वि र 11.18
यज्ञभागभुजां कु 6.72
यज्ञाङ्गयोनि कु 1.17
यज्वभिः सं. कु 2.46
यतिपार्थिव र 8.16
यतो यतः षट् 437पा
यत् कुम्भयो र 16.72
यत्र कल्पद्रुमै कु 6.41
यत्र स्त्रीणां मे 2.7
यत्र स्फटिक कु. 6.42
यत्रांशुकाक्षेप कु 1.14
यत्रौषधीप्र कु 6.43
यत् स लग्न र 19.46
यथा च वृत्ता र 3.66
यथाप्रदेशं कु 7.34
यथा प्रसिद्धै कु 5.9
यथा प्रह्लाद र 4.12
यथाविधिहु र 1.6
यथाश्रुतं वे कु 5.64
यथैव श्लाघ्य कु 6.70
यदध्यक्षेण कु 6.17
यदमोघमपा कु 2.5
यदा च तस्या कु 5.59
यदात्थ राज र 3.48
यदा फलं कु 5.18
यदा बुधैः कु 5.58
यदिदं रथ वि 1.13
यदि हंस 396
यदुच्यते कु 5.36
यदुवाच न 17.42
यदैव पूर्वे कु 1.53
यद् गोप्रतर र 15.101
यद् ब्रह्म स कु 6.16
यन्ता हरेः र 12.103
यन्त्रप्रवाहैः र 16.49
यन्मुखग्रहध कु 8.9
यमात्मनः स र 6.56
यमोऽपि विलि कु 2.23
यवनीमुख र 4.61
यशोभिराब्र 18.28
यश्चाप्सरो कु 1.4
यस्मिन् महीं र 6.75
यस्य चेतसि कु 6.18
यस्यां यक्षाः मे 2.3
यस्यात्मगेहे र 6.47
यस्यावरोध र 6.48
यां सैकतोत्सं र 13.62
या नः प्रीति कु 6.21
यामिनीदिव कु 8.55
यावत् प्रताप र 5.71
यावदादिश र 11.3
यावन्त्येतानि कु 6.80
यावन्नाश्याय र 17.37
या सौराज्य र 15.29
युधाजितश्च र 15.87
युवा युगव्या र 3.34
यूपवत्यव र 11.37
येन रोषप र 11.65
येन संरम्भो मे 1.54
योगनिद्रान्त र 10.14
योगिनी यं कु 6.77
योषितामुडु र 19.34
यौवनान्तं कु 6.44

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौवनोन्नत र 19.9
रक्तकदम्बः 402
रक्तपीतकपि कु 8.45
रक्तभावमय कु 8.65
रक्ताशोक ऋ 6.36
रक्ताशोकश्च मे 2.15
रक्षसा मृग र 12.53
रक्षोवधान्तो र 14.41
रघुनाथोऽप्य र 15.54
रघुपतिरपि र 12.104
रघुमेव नि र 8.5
रघुरश्रुमुख र 8.13
रघुर्भृशं व र 3.61
रघुवंशप्र र 10.68
रघूणामन्वयं र 1.9
रघोरवष्टम्भ र 3.53
रचितं रति कु 4.18
रजःकणैःखु र 1.85
रजनी-तिमि कु 4.11
रजोभिः स्यन्द र 4.29
रणः प्रववृते र 12.72
रतिश्रमक्षामं ऋ 4.6
रतिस्मरौ नू र 7.15
रतेर्गृहीता र 6.2
रत्नच्छाया मे 1.15
रथाङ्गनाम्नो र 3.24
रथात् स र 14.52
रथी निषङ्गी र 7.56
रथा रथाङ्ग र 7.41
रविप्रभोद् ऋ 1.20
रवेर्मयूखै ऋ 1.13
रम्यः प्रदोष ऋ 6.35
रसातलादा र 13.8
रसान्तराण्ये र 10.17
रहःप्रत्यास 475पा
राघवान्वित र 11.35
राघवास्त्रवि र 12.51
राघवोऽपि र 11.89
राघवो रथ र 12.96
राजन् प्रजासु र 15.47
राजर्षिवंश र 14.37
राजसत्त्वम् र 11.90
राजाऽपि तद् र 12.10
रात्रावनावि र 16.20
रात्रिन्दिववि र 17.49
रात्रिर्गता म र 5.66
रात्रिवृत्तमनु कु 7.10
राम इत्यभि र 10.67
राममन्मथ र 11.20
रामं पदाति र 12.84
रामस्त्वास र 12.24
रामस्य मधुरं र 15.34
रामाज्ञया ह र 13.74
रामादेशाद र 15.9
रामोऽपि सह र 12.20
रावणध्वनि कु 8.24
रावणस्यापि र 12.91
रावणावग्र र 10.48
रावणावर र 12.32
रुचिर-कनक ऋ 6.30
रुदता कुत र 8.85
रुद्धनिर्गमन कु 8.60
रुद्धापाङ्गप्र मे 2.32
रूपं तदोज र 5.37
रूपे गीते च र 15.65
रेखामात्रमपि र 1.17
रेखाविभक्तः कु 7.18
रे-रे हंस किं 396
रे-रे हंसा किं 396
रोमोद्गमः कु 7.77

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लए पेक्ख 404
लक्ष्मणः प्रथ र 12.39
लक्ष्मणानु र 11.6
लक्ष्यते स्म र 11.59
लक्ष्यीकृतस्य र 9.57
लग्नद्विरेफं प कु 7.16
लग्नद्विरेफा कु 3.30
लङ्केश्वर प्र र 13.78
लज्जा तिरश्चां कु 1.48
लातगृहद्वार कु 3.41
लताप्रतानो र 2.8
लते प्रेक्षस्व 404
लब्धपालन र 19.3
लब्धप्रतिष्ठाः कु 2.27
लब्धप्रशम र 4.14
लब्धान्तरा र 16.7
ललाटोदयमा र 1.83
ललितविभ्रम र 9.36
लवणेन वि र 15.2
लांगूलविक्षेप कु 1.13
लिङ्गैर्मुदः र 7.30
लोकन्तरसुखं र 1.69
लोकेन भावी र 18.38
लोहितार्कमणि कु 8.75
लौल्यमेत्य गृ र 19.19
वंशस्थितिं वं र 18.31
वक्रः पन्था मे 1.27
वङ्गानुत्खायर 4.36
वचसैव त र 12.92
वचस्यवसिते कु 2.53
वत्सस्य होमा र 2.66
वत्सोत्सुकापि र 2.22
वधनिर्धूत र 12.57
वधूं द्विजः कु 7.83
वधूर्भक्तिमती र 1.90
वधूर्विधात्रा कु 7.87
वनद्विपानां ऋ 2.15
वनान्तरादुपा र 1.49
वनेचराणां व कु 1.10
वनेषु साय र 16.47
वन्यवृत्तिरि र 1.88
वपुर्विरूपाक्ष कु 5.72
वपुषा करणो र 8.38
वयसां पङ्क्त र 15.25
वयोरूपवि र 17.43
वयोवेषवि र 15.67
वर्गावुभौ देव कु 7.53
वर्णप्रकर्षे कु 3.28
वर्णोदकैः का र 16.70
वशी विवेश र 15.38
वशी सुतस्त र 18.13
वसन् स र 16.42
वसिष्ठधेनो र 2.19
वसिष्ठमन्त्रो र 5.27
विसष्ठस्य गु र 17.38
वस्वोकसारा र 16.10
वहन्ति ऋ 2.19
वागर्थाविव र 1.1
वाङ्मनःकर्म र 15.81
वाचंयमत्वात् र 13.44
वाच्यस्त्वया मे 14.61
वाचं न शा 1.28
वापी चास्मि मे 2.13
वापीजलानां ऋ 6.4
वापीष्विव स्र र 17.64
वामनाश्रम र 11.22
वामश्चास्याः मे 2.33
वामेतरस्त र 2.31
वार्षिकं संज र 4.16
वासराणि कु 8.13

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासश्चित्रं मे 2.11
विकचकमल ऋ 3.28
विकचनव ऋ 1.24
विकीर्ण कु 5.37
विक्रमव्यति र 12.93
विग्रहाच्च श र 19.38
विज्जज्झर 393
वितानसहि र 17.28
विदितं तप्य र 10.39
विदितं वो कु 6.26
विद्धिचात्त र 11.76
विद्याधर 394
विद्युत्वन्तं मे 2.1
विद्युल्लेखा-क 391
विद्वानपि त र 15.94
विधिना कृत कु 4.31
विधिप्रयुक्त कु 6.52
विधिप्रयुक्तां कु 5.32
विधेः सायन्त र 1.56
विधेरधिक र 15.62
विनयन्ते स्म र 4.65
विनाशात् र 15.21
विनीताध्वश्र र 4.67
विन्ध्यस्य र 6.61
विन्यस्तवैदू कु 7.10
विन्यस्तशु कु 7.15
विपत्प्रतीका कु 5.76
विपत्रपुष्पां ऋ 2.14
विपाण्डुरं ऋ 2.13
विप्रोषितकु र 12.11
बिबुधैरसि कु 4.19
विभक्तात्मा र 10.65
विभवेऽपि र 8.69
विभावसुः र 3.37
विभूषणप्र र 16.80
विभूषणो कु 5.78
विमुच्य सा कु 5.8
विरक्तसन्ध्या र 13.64
विरचिता र 9.29
विरोधिसत्त्वो कु 5.17
विलपन्निति र 8.70
विललाप स र 8.43
विलासिनीवि र 6.17
विलुप्तमन्तः र 16.59
विलोचनं द र 7.8
विलोचनं कु 7.59
विलोचनेन्दी ऋ 2.12
विलोलनेत्रो ऋ 2.9
विवक्षता कु 5.81
विवस्वता ऋ 1.18
विवृण्वती कु 3.68
विशश्रमुर्न र 4.74
विशीर्णतल्पा र 16.11
विशुष्कक ऋ 1.15
विश्रान्तः मे 1.26
विश्वासु कु-7.48
विषादलुप्त र 3.40
विसृष्टपार्श्वा र 2.9
विसृष्टरागा कु 5.11
विस्रस्तमंसा र 6.14
वीक्ष्य वेदि र 11.25
वीचिक्षोभस्त मे 1.28
वीचिलोलभु र 11.8
वीज्यते स कु 2.42
वीरासनैर्ध्या र 13.52
वृक्षेशया य र 16.14
वृतं तेनेद कु 2.56
वृत्तं रामस्य र 15.64
वृत्तनुपूर्वे कु 1.35
वृथैव संक 460पा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृन्ताच्छ्लथं र 5.69
वेणीभूतप्रतनु मे 1.29
वेणुना दश र 19.35
वेलानिलः के र 13.16
वेलानिलाय र 13.12
वेश्मानि रामः र 14.15
वैदर्भनिर्दि र 6.3
वैदेहि पश्या र 13.2
वैमानिकाः पु र 10.46
वैवस्वतो म र 1.11
वैवाहिकीं कु 6.93
वैवाहिकैः कौ कु 7.2
व्रणगुरुप्रम र 9.32
व्रताय तेना र 2.4
व्याघ्रानभीर र 9.63
व्यादिदेश र 11.43
व्यावृत्तगति कु 2.35
व्याहृता प्रति कु 8.2
व्यूढोरस्को वृ र 1.13
व्यूहावुभौ ता र 7.54
व्यूह्य स्थितः र 18.51
व्योम क्व ऋ 3.4
व्योम पश्चिम र 19.51
शक्यमङ्गुलि कु 8.72
शक्यमोषधिप कु 8.62
शक्येष्वेवाभ र 17.56
शङ्खास्वनाभि र 7.64
शङ्खान्तर कु 7.33
शतैस्तमक्ष्णा र 3.43
शत्रुघा तनि र 15.36
शब्दाख्येयं यद मे 2.40
शब्दादि निर्वि र 18.3
शब्दादीन् वि र 10.25
शब्दायन्ते म मे 1.56
शमितपक्ष र 9.12
शय्यागतेन र 10.69
शय्यां जहत्यु र 5.72
शरदि कुमुद ङ्ग 3.22
शरीरमात्रेण र 5.15
शरीरसादा र 3.2
शरैरुत्सव र 4.78
शशंस तुल्य र 4.72
शशाम वृष्ट्या र 2.14
शशिकरः वि 462पा
शशिनमुप र 6.85
शशिनं पुन र 8.56
शशिना सह कु 4.33
शापान्तो मे मे 2.47
शापोऽप्यदृष्ट र 9.80
शिखरासक्त कु 6.40
शिरसा प्राणि कु 4.17
शिरसिबकु ऋ 2.25
शिरीषपुष्पा कु 1.41
शिरीषपुष्पा र 18.45
शिरोरुहैः श्रो ऋ 2.18
शिलाशयां कु 5.25
शिलीमुखोत्कृ र 7.49
शिष्यतां निधु कु 8.17
शुचौ चतु कु 5.20
शुद्धमाबिलम कु 8.57
शुशुभिरं स्मि र 9.7
शुशुभे तेन र 17.29
शूलिनः कर कु 8.7
शेफालिकाकु ऋ 3.14
शेषान् मासान् मे 2.24
शैलः संपूर्णका कु 6.85
शैलात्मजापि कु 3.75
शैलोपमः शै र 5.46
शैशवेऽभ्यस्त र 1.8
शोचनीयासि र 15.43

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्मश्रुप्रवृद्धि र 13.71
श्यामा लताः ऋ 3.18
श्यामास्वङ्गं मे 2.41
श्येनपक्षप र 11.60
श्रियः पद्मनि र 10.8
श्रुतस्य याया र 3.21
श्रुतदेहविस र 8.25
श्रुताप्सरो कु 3.40
श्रुतिसुखभ्रम र 9.35
श्रुत्वा तथा र 12.13
श्रुत्वा तस्य र 15.44
श्रुत्वा रामः र 12.66
श्रेणीबन्धाद् र 1.41
श्रोत्राभिराम र 2.72
श्लाघ्यस्त्यागो र 15.61
श्वगणिवागु र 9.53
श्वश्रूजनं स र 14.60
श्वश्रूजना र 14.13
श्वसिति वि ऋ 1.23
स एवमुक्त्वा र 3.52
संयुगे सांयुगी कु 2.57
संरम्भं मैथि र 12.36
संहारविक्षे र 5.45
स कदाचिद र 8.32
स किलसंयु र 9.19
स किलाश्रम र 8.14
स कीचकैर्मा 2.12
से कुलोचित र 17.5
स कृत्तिवासा कु 1.54
स क्षेमधन्वा र 18.9
सखा दशर र 15.31
सखी तदीया कु 5.52
स गत्वा सर र 15.95
स गुणानां ब र 16.67
स गुप्तमूल र 4.26
स गोपति कु 7.37
संक्षिप्येत मे 2.45
सङ्गमनीयो 403
संगमाय नि र 19.33
सङ्ग्रामनिर्वि र 6.38
संग्रामस्तुमु र 4.62
स चतुर्धा ब र 10.84
सचन्दनाम्बु ऋ 1.8
स च प्राप म र 15.15
स चानुनीतः र 5.54
स चापमुत्सृ र 3.60
सच्छिन्नबन्ध र 5.49
सच्छिन्नमूल र 7.43
स चापकोटि र 7.66
स जहार त र 12.29
स जाकर्म र 3.18
संचारिणी दी र 6.67
संरुद्धचेष्ट र 2.43
स तक्षपुष्क र 15.89
स तथेति कु 6.3
स तथेति र 8.91
स तद्वक्त्रं र 15.52
स तप प्रति र 8.80
सत्यमर्काच्च कु 6.19
सत्यामपि र 1.94
स तत्र माञ्चे र 6.1
स तावदभि र 17.17
स तावाख्याय र 15.71
स तीरभूमौ र 16.55
स तीर्त्वा र 4.38
स तेजो वै र 10.54
स ते दुहि कु 6.78
स तौ कुशल र 15.32
सत्रान्ते सचि र 4.87
स त्वनेकव र 19.53

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स त्वं निवर्त्त र 2.40
स त्वमेकान्त र 1.81
स त्वं प्रशस्ते र 5.25
स त्वं मदीये र 2.45
स दक्षिणं र 7.57
स दक्षिणा कु 3.70
स ददर्श स र 15.39
सदयं बुभुजे र 8.7
सदा मनाज्ञं ऋ 2.6
स दुष्प्राप र 1.48
स देवदारु कु 3.44
सद्यः प्रवालो कु 3.27
स द्विनेत्रं ह कु 2.30
स धर्मस्थस र 17.39
स धातुभेदा र 16.32
स नन्दिनीस्त र 2.69
स नर्मदारोध र 5.42
स नादं मेघ र 12.79
स निर्विश्य र 4.51
स निवेश्य कु 15.97
स नैषधस्या र 18.1
स नौविमाना र 16.68
संतप्तानां त्व मे 1.7
सन्तस्तस्या र 17.72
संतानकतरु कु 6.46
सन्तानकम र 10.77
सन्तानकाकी कु 7.3
सन्तानकामा र 2.65
संतानश्रव र 15.14
संतानार्थाय र 1.34
संदष्टवस्त्रे र 16.65
संध्ययाप्यनु कु 8.44
संध्याभ्रक र 12.28
स न्यस्तचिह्ना र 2.7
सपत्रलेखेषु ऋ 6.8
सपदि मुकुलि कु 3.76
स परार्ध्यक र 8.27
स पल्वलोत्ती र 2.17
स पाटलायां र 2.29
स पितुः र 17.2
स पुरं पुरु र 17.32
स पूर्वजन्मा र 18.50
स पूर्वजानां र 16.34
स पूर्वतः प र 3.42
स पृष्टः सर्व र 15.41
स पौरकार्या र 14.24
सप्तच्छदक्षी र 5.48
सप्तर्षिहस्ता कु 1.16
सप्तसामोप र 10.21
स प्रजागर कु 8.88
स प्रतापं म र 4.38
स प्रतस्थेऽरि र 12.67
स प्रापदप्रा कु 7.50
स प्राप ह्रद र 12.65
स प्रियामुख कु 8.90
स प्रीतियो कु 7.55
सफेनलाला ऋ 1.21
स बभूव दु र 8.4
सभद्रमुस्त ऋ 1.17
सभाजनायो र 14.18
समतया व र 9.6
समदमधु ऋ 6.29
समदिवस कु 8.91
समदुःखसु र 8.65
सममापन्न र 10.59
सममेव समा र 4.4
समर्थये यत् 404
स माधवेना कु 3.23
स मानसीं मेरु कु 1.18
सम नेऽपि हि र 10.81

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समापतिविधे र 5.20
स मारुति स र 12.78
समुद्गतस्वेद ऋ 1.7
समुद्रपत्न्यो र 13.58
समुद्धृताशेष ऋ 1.19
स मुहूर्तं क्ष र 15.45
स मृण्मये र 5.2
समौलरक्षो र 14.10
संपत्स्यते व कु 2.54
संपन्नशालि ऋ 3.16
संपातविसू 392
सम्प्राप्तविसू 393
संबन्धमाभा र 2.58
संभाव्य भर्त्ता र 6.50
संमोचितः स र 5.56
संमोहनं ना र 5.57
सम्यग्विनीत र 8.94
स ययौ प्रथ र 4.28
सरलासक्त र 4.75
सरसीस्वर र 1.43
स राजककु र 17.27
स राजलोकः र 7.31
स राज्य गुरु र 4.1
स रावणह र 12.55
सरितः कुर्व र 4.24
सरित्समुद्रान् र 14.8
स रोषदष्टा र 7.58
सर्पस्येव शि र 17.63
सर्गशेषप्र कु 6.9
सर्वं सखे कु 3.12
सर्वज्ञस्त्वम र 10.20
सर्वत्र नो वा र 5.13
सर्वातिरक्ति र 1.14
सर्वाभिः कु 2.34
सर्वासु मातृ र 14.22
सर्वैर्बलाङ्गै र 7.59
सर्वोपमाद्रव्य कु 1.49
स लक्ष्मणं ल र 14.44
स ललितकु र 9.70
स वासवेना कु 3.2
स विद्धमात्रः र 5.51
स विभुर्विबु र 15.102
सविभ्रमैः ऋ 1.12
स विवेश पुरी र 8.74
स विश्वजित र 4.86
स वृत्तचूल र 3.28
स विसृष्ट र 12.18
स वेलावप्र र 1.30
स व्यबुध्यत कु 8.85
सव्यापारा मे 2.25
स शापो न र 1.78
स शुश्रुवान् र 14.46
स शाणितैः र 7.65
ससञ्जुरश्व र 4.47
ससत्त्वमादा र 13.10
स संनिपात्या र 14.36
सशीकराम्भो ऋ 2.1
स सीतालक्ष्म र 12.9
स सेतु बन्ध र 12.70
स सेनां मह र 4.32
ससैन्याश्वा र 12.14
स सैन्यपरि र 4.45
सस्वजे प्रि कु 8.14
स स्वयं चर र 19.26
स स्वयं प्रह र 19.14
स हि प्रथम र 12.16
सहअरिदु 388
सहअरिदु 386
सहचरीदुः 386
सहचरीदुः 388

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स हत्वा र 15.26
स हत्वा र 15.58
स हि देवः कु 2.58
स हि पर्वस्य र 4.8
सा किला र 12.5
सा केतुमालो र 16.26
साक्षाद् दृष्टो कु 6.22
सा गौर कु 7.7
साङ्गं च वेद र 15.33
सा चूर्णगौरं र 6.83
सातिरेकम र 19.12
सा तीरसोपा र 16.56
सा दष्टनावा र 14.28
सा दुर्निमित्तो र 14.50
सा दुष्प्रधर्षा र 2.27
साधयाम्यह र 11.91
सा नीयमाना र 14.48
सानुप्लवः प्र र 13.75
सान्ध्यमस्त कु 8.54
सांनिध्ययो र 7.3
सा पौरान् र 12.3
सा बाणवर्षि र 12.50
सा भूधराणा कु 1.22
सा मङ्गल कु 7.11
सा मन्दुरासं र 16.41
सामभिः कु 8.41
सा यूनि र 6.84
राजहसै कु 1.31
सा लाज कु 7.81
लुप्तसंज्ञा कु 14.55
सा वक्रनख र 12.46
सा शूरसेना र 6.41
सा संन्यस्ता मे 2.30
सा संभव कु 7.21
सा साधु र 16.5
सा सीता र 15.84
सा सीता र 12.33
साऽहं तपः र 14.66
सा हि प्रणय र 10.57
सिंहकेसरस कु 7.46
सितांशुका वि 3.12
सितेषु ऋ 1.9
सितात्पला ऋ 2.16
सीकरव्यति कु 8.31
सीतां हित्वा र 14.87
सीता तमुत्था र 14.59
सुखश्रवा म र 3.19
सुगन्धिनिः ऋ 5.10
सुगन्धिनि कु 3.56
सुते शिशावे र 18.35
सुतौ लक्ष्मण र 10.71
सुरगज इ र 10.86
सुरभिसङ्गम र 9.31
सुरतरस ऋ 3.24
सुरतश्रमसं र 8.51
सुरसुन्दरि 402
सुरसुन्दरी 402
सुराः समभ्य कु 3.20
सुरेन्द्रमात्रा र 3.11
सुवदनावद र 9.30
सुवासित ह ऋ 1.3
सूर्याचन्द्रम 397
सेकान्ते मुनि र 1.51
सेनानिवेशान् र 72
सेना परिच्छ र 1.19
सेयं मदीया र 13.63
सेयं स्वदेहा र 2.55
सेव्यमानौ सु र 1.38
सैकतं च स र 19.40
सैषा स्थली र 13.23

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोऽधिकारम र 19.4
सोऽनुमान्य कु 8.21
सोन्मादहंस ऋ 3.11
सोऽपश्यत् प्र र 1.74
सोपानमार्गे र 16.15
सोऽयमान कु 8.42
सोऽस्त्रमुग्रज र 11.28
सोऽस्त्रव्रजैश्छ र 7.60
सोऽहं सपर्या र 5.22
सोऽहं तृष्णा कु 6.27
सोऽहं दाशर र 10.44
सोऽहमाजन्म र 1.5
सोऽहमिज्या र 1.68
सौमित्रिणा र 13.73
सौमित्रिणा र 14.11
सौमित्रेर्निशि र 15.20
स्तनेषु हाराः ऋ 6.7
स्तम्भेषु र 16.17
स्तूयमानः र 17.15
स्तूयमानः र 17.73
स्त्रीणां ऋ 3.27
स्त्री पुसावा कु 2.7
स्याणुदग्ध र 11.13
स्थानमाह्नि कु 8.33
स्थाने तपो कु 7.65
स्थाने त्वां कु 6.67
स्थाने भवाने र 5.16
स्थाने वृता र 7.13
स्थितः स्थि र 2.6
स्थिताः क्षण कु 5.24
स्थित्यै दण्ड र 1.25
स्थित्वा मे 1.19
स्नात्वा र 16.73
स्नानार्द्रमुक्ते र 16.50
स्निग्धगम्भी र 1.36
स्फटिकशिला 400
स्फुटकुमुद ऋ 3.21
स्फुरता वच्छु 406
स्फुरत्प्रभाम र 14.14
स्मरतेव स र 8.63
स्मरसि स्म कु 4.8
स्मरस्तथाभू कु 3.51
स्रगियं यदि र 8.46
स्रष्टुर्वराति र 10.42
स्रस्तां कु 3.55
स्वकालपरि कु 2.8
स्वप्नकीर्त्तित र 19.22
स्वयंविशी कु 5.28
स्वरसंस्कार र 15.76
स्वरेण तस्या कु 1.45
स्वर्गामिनस्त र 18.36
स्वशरीरशरी र 8.89
स्वसुर्विदेहा र 6.66
स्वागत स्वा कु 2.18
स्वाभाविक र 10.79
स्वीमित् वि 2.12
स्वायंभुवान् शा 7.9
स्वासिधारा र 10.41
स्वेदानुविद्ध र 16.48
हंस प्रयच्छ 396
हंसश्रेणीषु र 4.19
हंसैर्जितासु ऋ 3.17
हऊँ पइँ 398
हरकोपाग्नि 471रू
हरस्तु कु 3.67
हरितारुण कु 4.14
हरिर्यथैकः र 3.49
हरेः कुमारो र 3.55
हविरावर्जितं र 1.62
हविर्भुजामे र 13.41

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हविःशमीप र 7.26
हविषे दीर्घ र 1.80
हस्तेन हस्तं र 7.21
हस्ते लीला मे 2.2
हा तातेति क्र र 9.75
हारैः सचन्दन ऋ 3.20
हिअआहिअ 389
हित्वा हाला मे 1.49
हिमव्यपायाद् कु 3.33
हीनान्यनुप र 17.58
हुतहुताशन र 9.40
हुताग्निक ऋ 1.16
हतोष्ठरागै 392
हृदयस्थम र 10.19
हृदयाहित 389
हृदयेवस कु 4.9
हृष्टापि सा र 7.69
हेमताम कु 7.28
हेमपक्षप्र र 10.61
हेमपात्रग र 10.51
हेमाम्भोजप्र मे 1.62
हैयङ्गवीन र 1.45
ह्रामानभूद् क 7.54
ह्रेपिता हि र 11.40

□□□

पुस्तकालय
145178
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access on		25/03/09
Class on		7/11/09
Cat on		
Tag etc.		
Filing		
E.A.R.		
Any others		
Checked		

Recommended By...... डा० ज्ञान प्रकाश शास्त्री

Entered in Database

Signature with Date 25/03/09

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. मिथिलेश पाण्डेय

जन्म तिथि — 1 जुलाई, सन् 1971

पिता — श्री प्रताप नारायण पाण्डेय

माता — श्रीमती शारदा देवी

जन्म स्थान — सुरैला, गौराबादशाहपुर, जौनपुर (उ.प्र.)

शिक्षा — एम. ए. (संस्कृत), पी-एच. डी. (बी.एच.यू, वाराणसी); यू. जी. सी.नेट/ जे. आर. एफ (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली); एडवांस डिप्लोमा इन योग, एडवांस डिप्लोमा इन मराठी, डिप्लोमा इन उर्दू, डिप्लोमा इन फोटोग्राफी (बी. एच.यू वाराणसी)।

सम्प्रति — रीडर, संस्कृत-विभाग, के. ए. (पी. जी.) कालेज, कासगंज, एटा (उ.प्र.)

दूरभाष-क्रमांक — 09412062131

❖ औपनिषदिक ब्रह्मविद्या और शाण्डिल्यविद्या (राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली)।
❖ आदितीर्थ सूकरक्षेत्र (समग्रदृष्टि), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
❖ संस्कृत-निबन्ध-निकरः (उपकार प्रकाशन, आगरा)।
❖ स्वप्नसुमन (काव्यसंग्रह) नमन प्रकाशन, नई दिल्ली।
❖ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा।
❖ ध्वन्यालोक (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा।
❖ वेदान्तसार (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा।
❖ मदनमोहन मालवीय जीवन दर्शन (राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली)।
❖ भारतेन्दु हरिशचन्द्र ग्रन्थावली (सम्पादन), नमन प्रकाशन।
❖ संस्कृत मुख्य परिक्षा (संघ लोक सेवा आयोग), उपकार प्रकाशन।
❖ तर्कशक्ति परिक्षा (यू. जी. सी. नेट/ जे. आर. एफ.) उपकार प्रकाशन।

शोधपत्र — Philosophical Study of the Garuna Purana.
❖ एटा जनपदस्य कवियित्र्यः कवयशच।
❖ बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का संस्कृत-साहित्य में योगदान।
❖ यजुर्वेद में गन्धर्व एवम् अप्सराएँ। कालिदास की बालपोषिका दृष्टि।

पुरस्कार एवं सम्मान — ❖ उ.प्र. सरकार के माध्यमिक शिक्षा मन्त्री द्वारा 'मानस-मनीषी' की उपाधि से सम्मानित।
❖ पं. प्रताप नारायण मिश्र, युवा साहित्यकार पुरस्कार 2006 से पुरस्कृत।

अप्रकाशित कृतियाँ — हिन्दी एवं संस्कृत में लिखित सात पुस्तकें।

विविध — कुशल वक्ता, समालोचक, सम्पादक एवं लब्धप्रतिष्ठ प्राध्यापक।

राधा पब्लिकेशन्स

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली . 110002
फोन : 23254306, 23247003
ई-मेल- radhapubnitin@yahoo.com

ISBN 817487-528-X
9 798174 875289